श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

गीताप्रेस गोरखपुर (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन कलकत्ता)-द्वारा संचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रममें बालकोंके लिये प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासकी उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजसे लगभग ७४ वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यसे की गयी थी कि इसमें पढ़नेवाले बालक अपनी संस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध संस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्राप्तकर सच्चरित्र, आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श भावी नागरिक बन सकें—एतदर्थ भारतीय संस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों एवं प्राचीन आचार-विचारोंकी दीक्षाकी यहाँ विशेष प्रबन्ध है। संस्कृतके मुख्य अध्ययनके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयोंकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम चूरू (राजस्थान)-के पतेपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग ३० हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी हैं। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन 'परिचय-पुस्तिका' निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, पत्रालय—स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ५० वर्ष पूर्व 'साधक-संघ'-की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है। सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको 'साधक-दैनन्दिनी' का वर्तमान मूल्य रु० २.०० तथा डाकखर्च रु० १.००—कुल रु० ३.०० मात्र डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। साधक सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली निःशुल्क मँगवाइये।

पता—संयोजक, 'साधक-संघ' पत्रालय—गीताप्रेस गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग दस हजार परीक्षार्थियोंके लिये २०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पत्रालय—स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

॥ श्रीहरि ॥

'भगवल्लीला-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

वैदिक स्तवन

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ।

हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करे हम दोनोका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करे हम दोनो साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करे हम दोनोकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामे परास्त न हो और हम दोनो जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहे, हमारे अदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनो तापोकी निवृत्ति हो।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा य करोति।
तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा सुख शाश्वत नेतरेषाम्॥

जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूपसे स्थित है जो अद्वितीय और सर्वथा स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण जगत्मे देव-मनुष्यादि सभीको सदा अपने वशमे रखते हैं वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वभवनसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बना लेते है। उन परमात्माको जो ज्ञानी महापुरुष निरन्तर अपने अदर स्थित देखते हैं उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाला—सनातन परमानन्द मिलता है दूसरोको नही।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देव स नो बुद्ध्या शुभया सयुनक्तु॥

जो रूप-रग आदिसे रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण विविध शक्तियोके सम्बन्धसे सृष्टिके आदिमे, अनेक रूप-रग धारण कर लेता है तथा अन्तमे यह सम्पूर्ण विश्व [जिसमे] विलीन भी हो जाता है वह परमात्मा अद्वितीय है वह हम लोगोको शुभ बुद्धिसे सयुक्त करे।

ॐ भद्र कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्रा । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहित यदायु ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषा विश्ववेदा । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

हे देवगण! हम अपने कानोसे शुभ—कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा चुगली गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बाते हमारे कानोमे न पडे और हमारा अपना जीवन यजन-परायण हो—हम सदा भगवान्की आराधनामे ही लगे रहे। न केवल कानोसे सुने नेत्रोसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करे। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्योकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारा शरीर हमारा एक-एक अवयव सुदृढ एव सुपुष्ट हो—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्का स्तवन करते रहे। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमे न बीते। हमे ऐसी आयु मिले जो भगवान्के कार्यमे आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियमे व्याप्त रहकर उसका सरक्षण और सचालन करते है। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमे लगी रह सकती हैं अत उनसे प्रार्थना करना उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा अरिष्ट-निवारक तार्क्ष्य (गरुड) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करे। इनकी कृपासे हमारे साथ प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोकी शान्ति हो।

कुर्वन्तु वो मङ्गलम्

[समस्त देवतागण आपका मङ्गल करे]

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरो वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणा प्रेताधिपाद्या ग्रहा ।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणि कौस्तुभ स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधर कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गौरी श्री कुलदेवता च सुभगा भूमि प्रपूर्णा शुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभि सत्यव्रतारुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दु स्वप्नविध्वसिनी वेलाश्चाम्बुनिधे समीनमकरा कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनयाश्चर्मण्वती देविका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी पुण्या पुण्यजलै समुद्रसहिता कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
लक्ष्मी कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा धेनु कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ।
अश्व सप्तमुखो विष हरिधनु शङ्खोऽमृत चाम्बुधे रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिन कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
ब्रह्मा वेदपति शिव पशुपति सूर्यो ग्रहाणा पति शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपति स्कन्दश्च सेनापति ।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यम पितृपति शक्ति पतीना पति सर्वे ते पतय सुमेरुसहिता कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एव शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान् सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर वरुण और सयमनीपुरीके स्वामी यमराज, सभी ग्रह श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न, नल और कूबर ऐरावत गज, चिन्तामणि रत्न कौस्तुभमणि शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम—ये सब आप लोगाका मङ्गल करे। भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलदेवता, सौभाग्ययुक्त स्त्री, सभी धन-धान्यासे सम्पन्न पृथ्वीदेवी, ब्रह्माकी पत्नी सावित्री और सरस्वती कामधेनु, सत्य एव पातिव्रत्यको धारण करनेवाली वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहादवी कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी रुक्मिणीदेवी तथा दु स्वप्ननाशिनी देवी, मीन और मकरासे सयुक्त समुद्र एव उनकी वेलाएँ—य सब आप लोगोका मङ्गल कर। भागीरथी गङ्गा सिन्धु, सरस्वती यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयू तथा महेन्द्र पर्वतसे नि सृत समस्त नदियाँ, चर्मण्वती देविका नामसे प्रसिद्ध देवनदी, क्षिप्रा वेत्रवती (बेतवा), महानदी, गयाकी फल्गुनदी गण्डकी या नारायणी—ये सब पुण्य जलवाली पवित्र नदियाँ अपने स्वामी समुद्रके साथ आप लोगाका मङ्गल कर। भगवती लक्ष्मी कौस्तुभमणि पारिजात नामका कल्पवृक्ष वारुणीदेवी वैद्यराज धन्वन्तरि चन्द्रमा कामधेनु गो, देवराज इन्द्रका ऐरावत हस्ती रम्भा आदि सभी अप्सराएँ, सात मुखवाला उच्चै श्रवा नामक अश्व कालकूट विष भगवान् विष्णुका शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शख तथा अमृत—ये समुद्रसे उत्पन्न चौदह रत्न आप लागाका प्रतिदिन मङ्गल कर। वेदोके स्वामी ब्रह्मा, पशुपति भगवान् शकर ग्रहोके स्वामी भगवान् सूर्य, देवताआके स्वामी इन्द्र हव्य पदार्थोमे श्रेष्ठ हविर्द्रव्य—पुराडाश देव-सेनापति भगवान् कार्तिकय, यज्ञाक स्वामी भगवान् विष्णु, पितराक पति धर्मराज और सभी स्वामियाकी स्वामिनी शक्तिस्वरूपा भगवती महालक्ष्मी—ये सभी स्वामिगण पर्वतराज सुमेरुगिरिसहित आप लोगाका मङ्गल कर।

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुज शशाङ्ककलयोज्ज्वल शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसाख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयित महो मङ्गलम्॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बडी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है जो आध्यात्मिक आदि तीनो तापाको शान्त कर देनेम समर्थ है जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एव परमानन्दरूपस प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है वह शिव नामक कोई अनिर्वचनीय तेज पुञ्ज सबका मङ्गल कर।

पञ्चदेव-स्तुति

विष्णु

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम्।
कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभैर्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे॥

उदीयमान करोडों सूर्यके समान प्रभातुल्य अपने चारों हाथोंमें शङ्ख गदा पद्म तथा चक्र धारण किये हुए एवं दोनों भागोंमें भगवती लक्ष्मी और पृथ्वीदेवीसे सुशोभित किरीट-मुकुट केयूर हार और कुण्डलोंसे समलंकृत कौस्तुभमणि तथा पीताम्बरसे देदीप्यमान विग्रहयुक्त एवं वक्ष स्थलपर श्रीवत्स-चिह्न धारण किये हुए भगवान् विष्णुका मैं निरन्तर स्मरण-ध्यान करता हूँ।

शिव

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभयमुद्रा है जो प्रसन्न हैं पद्मके आसनपर विराजमान हैं देवतागण जिनके चारों ओर खडे होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं जो विश्वके आदि जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

गणेश

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥

जो नाटे और मोटे शरीरवाले हैं जिनका गजराजके समान मुख और लंबा उदर है जो सुन्दर हैं तथा बहते हुए मदकी सुगन्धके लोभी भौंरोंके चाटनेसे जिनका गण्डस्थल चपल हो रहा है दाँतोंकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके खूनसे जो सिन्दूरकी-सी शोभा धारण करते हैं कामनाओंके दाता और सिद्धि देनेवाले उन पार्वतीके पुत्र गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सूर्य

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

लाल कमलके आसनपर समासीन सम्पूर्ण गुणोंके रत्नाकर अपने दोनों हाथोंमें कमल और अभयमुद्रा धारण किये हुए, पद्मराग तथा मुक्ताफलके समान सुशोभित शरीरवाले अखिल जगत्के स्वामी तीन नेत्रोंसे युक्त भगवान् सूर्यका मैं ध्यान करता हूँ।

दुर्गा

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शङ्ख चक्र धनुष और बाण धारण करती हैं तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद हार कङ्कण खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

दशावतारस्रूप जगदीश्वरकी जय हो!

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि यदम् । विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हर॥ १ ॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे । धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥ २ ॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना । शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥ ३ ॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् । दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥ ४ ॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन । पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हर॥ ५ ॥
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् । स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे॥ ६ ॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् । दशमुखमौलिबलि रमणीयम्॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे॥ ७ ॥
वहसि वपुषि विशदे वसन जलदाभम् । हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे॥ ८ ॥
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् । सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥ ९ ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् । धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे॥ १० ॥
श्रीजयदेवकवरिदमुदितमुदारम् । शृणु सुखद शुभद भवसारम्॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे॥ ११ ॥

हे मत्स्यरूपधारी केशव! हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकालके बढे हुए समुद्रजलम बिना क्लेश नोका चलानेकी लील करते हुए आपने वेदाकी रक्षा की थी, आपको जय हो॥ १ ॥ हे कशव! पृथ्वीको धारण करनेके कारण पड हुए घट्ठासे कठोर और अत्यन्त विशाल आपकी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो॥ २ ॥ चन्द्रमामे स्थित कलङ्करेखाके समान यह पृथ्वी आपक दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही हे ऐसे शूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ३ ॥ हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृङ्गको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके करकमलमे ह, ऐसे नृसिहरूपधारी जगत्पति हरि कशवकी जय हो॥ ४ ॥ हे आश्चर्यमय वामनरूपधारी कशव! आपने पर बढाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-नखाके जलसे लोगाको पवित्र किया ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो॥ ५ ॥ ह कशव! आप जगत्के लोगाको क्षत्रियाके रुधिररूप जलसे स्नान कराकर उनके ताप और पापाका नाश करत हैं, एसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हा॥ ६ ॥ जो युद्धम सब दिशाओमे लोकपालाके लिये लाभनीय रावणके सिराकी सुन्दर बलि देत हैं, एस श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ७ ॥ जो अपने गौर-शरीरम हलका चोटके भयस आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ८ ॥ सदय हृदयके कारण पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी निन्दा करनवाल आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ९ ॥ जो म्लेच्छ-समूहका नाश करनेके लिय धूमकतुक समान अत्यन्त भयकर तलवार चलाते हैं, एसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ १० ॥ जयदेव कविकी कही हुई इस मनोहर आनन्ददायक कल्याणजनक ससारमे साररूपा स्तुतिको सुना हे दशावतारधारी जगत्पति हरि! आपकी जय हो॥ ११ ॥

नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय

नीलप्रवालरुचिर विलसत्त्रिनेत्र पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिश प्रविभक्तभूप बालेन्दुबद्धमुकुट प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नत्र सुशोभित हो रहे है, उनके वामभागके हाथाम पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोमे त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शङ्करके सम्मिलित स्वरूपको जिनके अङ्गोम अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बाल-चन्द्रमा तथा मुकुट विराजित हैं मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ।

नमस्तुभ्य भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे। नम क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नम ॥
नमस्ते ह्यस्मदादीना भूताना प्रभवाय च। वेदकर्मावदाताना द्रव्याणा प्रभवे नम ॥
विद्याना प्रभवे चैव विद्याना पतये नम । नमो व्रताना पतये मन्त्राणा पतये नम ॥
अप्रमयस्य तत्त्वस्य यथा विद्म स्वशक्तित । कीर्तित तव माहात्म्यमपार परमात्मन ॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥

[ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बाले—] भगवन्! आप सुव्रत आर अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज-स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतोक उत्पत्ति-स्थान और वदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोको सम्पन्न करानेवाले, समस्त द्रव्योके स्वामी हैं आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतो एव मन्त्राके स्वामी हैं आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार माहात्म्यका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हो। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है।

शीताशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्ग ध्यानस्थित धरणिभृत्तनयार्चित तम्।
कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठ श्रीशङ्कर कलिमलापहर नमामि॥

चार चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वय ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। ससारको दग्ध हो जानेस बचानेके लिये कालानलके समान महाभीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया। इस कलिकालका मल अपहरण करनेम आप अपना सानी नहीं रखते। एसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम है।

त्रैलोक्यमेतदखिल ससुरासुर च भस्मीभवद् यदि न यो दययार्द्रदेह ।
पीत्वाऽहरद्गरलमाशु भय तदुत्थ विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै॥

आप बड ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करत-धरते न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोसे पूण त्रैलोक्यका नाश हाना ही चाहता है तब उस कालकूटका पान स्वय ही करके तीना लोकाको जल जानेसे बचा लिया। ससारकी रक्षाका इतना खयाल रखनेवाले आपके पादपद्मापर मैं अपना सिर रखता हूँ।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण प्राप्तु यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदव।
भक्त्या सकृत्प्रणमनन सदा ददाति यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम्॥

युग-युगान्तपर्यन्त तपस्या करनपर भी जो फलप्राप्ति भक्ताको अन्य सुरपुङ्गवास भी नहीं हो सकती वही आपको भक्ति-भावपूर्वक प्रणाममात्र करनेस आपके सच्चे भक्ताको सुलभ हो जाती है। बात यह है कि आप आशुतोष हैं—थोडी ही मयास प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि पद्मोद्भवाद्भवमुखाः सततं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति ये यमिनमिन्दुकलावतंसं सन्तः समाधिनिरतास्तमहं नमामि॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरितोंका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं नारदादि बड़े-बड़े महामुनि तक किया करते हैं। साधु-शिरोमणि योगीश्वर भी समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करते रहते हैं। ऐसे आप चन्द्रशेखरको मेरा पुनरपि प्रणाम।

भूतिप्रियोऽपि वितरत्यनिशं विभूतिं भक्ताय यः फणिगणानपि धारयन् सन्।
हन्ति प्रचण्डभवभीमभुजङ्गभीतिं तस्मै नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय॥

आपकी महिमा अपरम्पार है। यह साधारण जनोंकी समझमें आ ही नहीं सकता। देखिये न इधर तो आप स्वयं ही विभूति-प्रिय (विभूति-भस्म) हैं उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्तोंको रोज ही लुटाया करते हैं और देखिये स्वयं तो आप महाभयंकर नागोंको कण्ठ और मालाएँ आदि धारण करते हैं उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सेवकोंकी रक्षा करते हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्ता आपको मेरा नमस्कार है।

प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते

नमामि देवं नरनाथमच्युतं नारायणं लोकगुरुं सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम्॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम्।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम्॥

मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि अव्यक्त अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप परात्पर ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय सर्वव्यापक अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम्॥

जो भक्तोंके प्रेमी अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, नील-कमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार शङ्ख ओर कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं जिनकी सूर्यके समान कान्ति है जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम्॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान् स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं यस्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥

जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित

नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय

नीलप्रवालरुचिर विलसत्त्रिनेत्र पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिश प्रविभक्तभूष बालेन्दुबद्धमुकुट प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनके वामभागके हाथोमे पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथामे त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शङ्करके सम्मिलित स्वरूपको जिनके अङ्गाम अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बाल-चन्द्रमा तथा मुकुट विराजित हैं, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ।

नमस्तुभ्य भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे। नम क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिन नम ॥
नमस्ते ह्यस्मदादीना भूताना प्रभवाय च। वेदकर्मावदाताना द्रव्याणा प्रभवे नम ॥
विद्याना प्रभवे चैव विद्याना पतये नम । नमो व्रताना पतये मन्त्राणा पतये नम ॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्म स्वशक्तित । कीर्तित तव माहात्म्यमपार परमात्मन ॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥

[ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले—] भगवन्। आप सुव्रत और अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज-स्वरूप और शूलधारी हैं, आपका नमस्कार है। आप हम सभी भूतोके उत्पत्ति-स्थान और वदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न करानेवाले समस्त द्रव्याके स्वामी हैं आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतो एव मन्त्राके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा वैसा ही आपके अपार माहात्म्यका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं आपको नमस्कार है।

शीताशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्ग ध्यानस्थित धरणिभृत्तनयार्चित तम्।
कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठ श्रीशङ्कर कलिमलापहर नमामि॥

चारु चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वय ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। ससारको दग्ध हो जानसे बचानेके लिये, कालानलके समान महाभीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया। इस कलिकालका मल अपहरण करनेम आप अपना सानी नहीं रखते। एसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम है।

त्रैलोक्यमेतदखिल ससुरासुर च भस्मीभवेद् यदि न यो दययार्द्रदेह ।
पीत्वाऽहरद्गरलमाशु भय तदुत्थ विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै॥

आप बडे ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करत-धरत न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोसे पूर्ण त्रैलोक्यका नाश होना ही चाहता है तब उस कालकूटका पान स्वय ही करके तीनो लोकाको जल जानेसे बचा लिया। ससारकी रक्षाका इतना खयाल रखनेवाले आपके पादपद्मापर मैं अपना सिर रखता हूँ।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण प्रासु यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदेव।
भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम्॥

युग-युगान्तपर्यन्त तपस्या करनेपर भी जो फलप्राप्ति भक्ताको अन्य सुरपुङ्गवासे भी नहीं हो सकती वही आपको भक्ति-भावपूर्वक प्रणाममात्र करनसे आपके सच्चे भक्ताको सुलभ हो जाती है। बात यह है कि आप आशुतोष हैं—थोडी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि पद्माद्भवोद्भवमुखा सतत मुनीन्द्रा ।
ध्यायन्ति य यमिनमिन्दुकलावतस सन्त समाधिनिरतास्तमह नमामि॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरिताका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं नारदादि बड-बड महामुनि तक किया करत ह। साधु-शिरामणि योगीश्वर भी समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करत रहत ह। एस आप चन्द्रशखरका मरा पुनरपि प्रणाम।

भूतिप्रियोऽपि वितरत्यनिश विभूति भक्ताय य फणिगणानपि धारयन् सन्।
हस्त प्रचण्डभवभीमभुजङ्गभीति तस्मै नमोऽस्तु सतत मम शङ्कराय॥

आपकी महिमा अपरम्पार है। वह साधारण जनाकी समझम आ ही नहीं सकती। देखिय न इधर तो आप स्वय ही विभूति-प्रिय (विभूति-भस्म) हैं, उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्ताका राज ही लुटाया करते ह और देखिये, स्वय तो आप महाभयकर नागाक कठ और मालाएँ आदि धारण करत हैं उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सवकाकी रक्षा करत हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्ता आपको मेरा नमस्कार है।

प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते

नमामि देव नरनाथमच्युत नारायण लोकगुरु सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्यय वेदान्तवद्य पुरुषात्तम हरिम्॥
आनन्दरूप परम परात्पर चिदात्मक ज्ञानवता परा गतिम्।
सर्वात्मक सर्वगतैकरूप ध्येयस्वरूप प्रणमामि माधवम्॥

मैं सम्पूर्ण जीवाके स्वामी भगवान् अच्युतका सनातन लाकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त अचिन्त्य आर अविनाशी हैं उन वेदान्तवद्य पुरुषात्तम श्रीहरिका मैं प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर ज्ञानमय एव ज्ञानियाके परम आश्रय है तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तप्रिय कान्तमतीव निर्मल सुराधिप सूरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुज नीरजवर्णमीश्वर रथाङ्गपाणि प्रणतोऽस्मि केशवम्॥
गदासिशङ्खाब्जकर श्रिय पति सदाशिव शार्ङ्गधर रविप्रभम्।
पीताम्बर हारविराजितादर नमामि विष्णु सतत किरीटिनम्॥

जो भक्ताके प्रेमी अत्यन्त कमनीय और दापासे रहित ह जा समस्त देवताआके स्वामी ह, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं जिनकी चार भुजाएँ है नील-कमलक समान जिनकी श्यामल कान्ति ह जो हाथम चक्र धारण किये रहते हैं उन परमश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथामे गदा तलवार शख और कमल सुशाभित हैं जा लक्ष्मीजीक पति है सदा ही कल्याण करनेवाले ह जा शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं जिनकी सूर्यके समान कान्ति है जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं जिनका उदरभाग हारस विभूपित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शाभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुका मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डल सुदीपिताशेषदिश निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनि जनार्दनं भूतपति नमामि तम्॥
हत्वासुरान् पाति युग युगे सुरान् स्वधर्मसस्थान् भुवि सस्थिता हरि ।
कराति सृष्टि जगत क्षय यस्त वासुदेव प्रणताऽस्मि कशवम्॥

जिनके कपोलापर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे है, जो अपनी कान्तिस सम्पूर्ण दिशाओका पकाशित

कर रह हैं, गन्धर्व आर सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वदिक ऋचाओद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनका म प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्यक युगम पृथ्वीपर अवतार ले दवद्राही दानवाका वध करक अपने धर्मम स्थित दवताओकी रक्षा करत हैं तथा जो इस जगत्‌की सृष्टि एव सहार करत हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् कशवका मैं प्रणाम करता हूँ।

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान् वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ त वेदवेद्य प्रणतोऽस्म्यह सदा॥
देवासुर क्षीरसमुद्रमध्यतो न्यस्तो गिरिर्येन धृत पुरा महान्।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो यस्त विष्णुमाद्य प्रणतोऽस्मि भास्करम्॥

जिन्होने युद्धम मधु आर कटभ—इन दानो दैत्योका मारा तथा मत्स्य-रूप धारण करक रसातलम पहुँचे हुए वदाका लाकर मुझे दिया था उन वदवेद्य परमश्वरका मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालम जिन्होने दवता और असुरोद्वारा क्षीरसमुद्रम डाले हुए महान् मन्दराचलका सबका हित करनके लिय कूर्मरूपस पीठपर धारण किया था उन प्रकाश दनवाल आदिदव भगवान् विष्णुका मैं प्रणाम करता हूँ।

हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पित वराहरूपी भगवान् सनातन ।
यो भूमिमता सकला समुद्धरस्त वेदमूर्ति प्रणमामि सूकरम्॥
कृत्वा नृसिहवपुरात्मन पर हिताय लोकस्य सनातनो हरि ।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितें सुत त नारसिह पुरुष नमामि॥

जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुन्धराका जलस उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था उन वदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनके लिये श्रेष्ठ नृसिहरूप धारण करक अपने तीखे नखोद्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिहका मै प्रणाम करता हूँ।

यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो बलि बबन्ध त्रिभिरूर्जितै पदै ।
जगत्त्रय क्रम्य ददौ पुरदरे त दवमाद्य प्रणतोऽस्मि वामनम्॥
य कार्तवीर्य निजघान रोषात् त्रि सप्तकृत्व क्षितिपात्मजानपि।
त जामदग्न्य क्षितिभारनाशक नतोऽस्मि विष्णु पुरुषोत्तम सदा॥

जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ हुए तीन पगासे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रका द दिया था उन आदिदेव वामनका मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होने कापवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियाका सहार किया पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका म सदा नमस्कार करता हूँ।

सतु महान्त जलधौ बबन्ध य सम्प्राप्य लङ्का सगण दशाननम्।
जघान भूत्यै जगता सनातन त रामदव सतत नतोऽस्मि॥
यथा तु वाराहनृसिहरूपै कृत त्वया देवहित सुराणाम्।
तथाद्य भूम कुरु भारहानि प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते॥

जिन्होन समुद्रपर बहुत बडा पुल बाँधा आर लकाम पहुँचकर त्रिलोकीके कल्याणक लिय रावणका उसक गणासहित मार डाला था उन सनातनदव भगवान् श्रीरामका मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालम] वराह-नृसिह आदि रूपास आपने देवताओका हित किया है उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है।

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

हसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोग दत्त कुमार ऋषभो भगवान् पिता न ।
विष्णु शिवाय जगता कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये॥
गुप्ताऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भस क्ष्माम्।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्॥
सस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषीश्च शक्र च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम्।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सता नृसिहे॥
देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभि ।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बले क्ष्मा याच्ञाच्छलेन समदाददिते सुतेभ्य ॥
नि क्षत्रियामकृत गा च त्रि सप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्नि ।
सोऽब्धि बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलङ्क सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्ति ॥
भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जात करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते॥
एवविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पते ।
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज॥

(श्रीमद्भा० ११। ४। १७—२३)

भगवान् विष्णुन अपन स्वरूपम एकरस स्थित रहत हुए भी सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिय बहुत-से कलावतार ग्रहण किये हैं। विदेहराज! हस दत्तात्रेय सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार और हमारे पिता ऋषभक रूपम अवतीर्ण होकर उन्हाने आत्मसाक्षात्कारक साधनाका उपदेश किया ह। उन्हान ही हयग्राव-अवतार लकर मधु-कैटभ नामक असुराका सहार करके उन लागाक द्वारा चुराये हुए वेदाका उद्धार किया ह। प्रलयक समय मत्स्यावतार लकर उन्हान भावी मनु सत्यव्रत, पृथ्वी आर आपधियाकी—धान्यादिकी रक्षा की और वराहावतार ग्रहण करक पृथ्वीका रसातलसे उद्धार करते समय हिरण्याक्षका सहार किया। कूर्मावतार ग्रहण करके उन्हीं भगवान्न अमृत-मन्थनका कार्य सम्पन्न करनके लिये अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया और उन्हीं भगवान् विष्णुने अपने शरणागत एव आर्त भक्त गजेन्द्रको ग्राहसे छुडाया। एक बार बालखिल्य ऋषि तपस्या करते-करते अत्यन्त दुबल हा गय थ। व जब कश्यप ऋषिक लिये समिधा ला रहे थे तो थककर गायक खुरसे बने हुए गड्ढेम गिर पड मानो समुद्रम गिर गये हा। उन्हाने जब स्तुति की तब भगवान्ने अवतार लेकर उनका उद्धार किया। वृत्रासुरको मारनेक कारण जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी आर वे उसक भयस भागकर छिप गय तब भगवान्ने उस हत्यासे इन्द्रकी रक्षा की, और जब असुराने अनाथ देवाङ्गनाआका बदी बना लिया तब भी भगवान्ने ही उन्ह असुराक चगुलसे छुडाया। जब हिरण्यकशिपुक कारण प्रह्लाद आदि सत पुरुपाका भय पहुँचने लगा तब उनको निर्भय करनके लिय भगवान्ने नृसिहावतार ग्रहण किया और हिरण्यकशिपुको मार डाला। उन्हाने देवताआकी रक्षाक लिय देवासुरसग्रामम दैत्यपतियोका वध किया ओर विभिन्न मन्वन्तराम अपनी शक्तिस अनका कलावतार धारण करक त्रिभुवनका रक्षा की। फिर वामन-अवतार ग्रहण करक उन्होने याचनाके बहाने इस पृथ्वीका दैत्यराज बलिसे छीन लिया आर अदितिनन्दन देवताआका दे दिया। परशुराम-अवतार ग्रहण करके उन्होने ही पृथ्वीका इक्कास बार क्षत्रियहीन किया। परशुरामजी ता हेहयवशका प्रलय करनेके लिये मानो भृगुवशम अग्निरूपसे ही अवतीर्ण हुए थ। उन्हीं भगवान्न रामावताग्म समुद्रपर पुल बाँधा एव रावण और उसकी राजधानी लकाका मटियामट कर दिया। उनका कीर्ति समस्त लोकाक मलका नष्ट करनवाली है। सीतापति भगवान् राम सदा-सर्वदा-सवत्र विजयी-ही-विजया हे। राजन्! अजन्मा होनेपर भी पृथ्वीका भार उतारनेक लिय व ही भगवान् यदुवशम जन्म लगे और एसे-ऐस कर्म करग जिन्ह बड-बड दवता भी नहीं कर सकत। फिर आग चलकर भगवान् ही बुद्धके रूपम प्रकट हाग और यज्ञके अनधिकारियोका यज्ञ करत दखकर अनक प्रकारक तक-वितर्कोस मोहित कर दाग तथा कलियुगके अन्तम कल्कि-अवतार लकर व ही शूद्र राजाआका वध करग। महाबाहु विदेहराज! भगवान्की कीर्ति अनन्त ह। महात्माआने जगत्पति भगवान्क एस-एस अनका जन्म आर कर्मोका प्रचुरतास गान भा किया

ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशै

स्वभावमके कवयो वदन्ति काल तथान्ये परिमुह्यमाना । देवस्यैष महिमा तु लोके येनेद भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्॥
यनावत नित्यमिद हि सर्व ज्ञ कालकालो गुणी सर्वविद्य । तनेशित कर्म विवर्तत ह पृथ्व्यप्तेजाऽनिलखानि चिन्त्यम्॥

कितने ही बुद्धिमान् लाग ता कहते ह कि इस जगत्का कारण स्वभाव है। अर्थात् पदार्थोम जा स्वाभाविक शक्ति है—जैसे अग्निम प्रकाशन-शक्ति ओर दाह-शक्ति वही इस जगत्का कारण है। कुछ दूसर लाग कहत हैं कि काल ही जगत्का कारण है क्याकि समयपर ही वस्तुगत शक्तिका प्राकट्य हाता है, जैसे वृक्षम फल आदि उत्पन्न करनेकी शक्ति समयपर ही प्रकट होती है। इसी प्रकार स्त्रियाम गर्भाधान ऋतुकालम ही हाता है असमयम नहीं हाता—यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। परतु अपनेको पण्डित समझनवाले य वैज्ञानिक मोहम पडे हुए हैं अत ये इस जगत्क वास्तविक कारणका नहीं जानते। वास्तवम तो यह परमदेव सर्वशक्तिमान् परमश्वरकी ही महिमा ह जगत्की विचित्र रचनाका दखने आर उसपर विचार करनेपर उन्हींका महत्त्व प्रकट हाता है। वे स्वभाव आर काल आदि समस्त कारणाके अधिपति है और उन्हींक द्वारा यह ससार-चक्र घुमाया जाता है। इस रहस्यका समझकर इस चक्रस छुटकारा पानक लिय उन्हींकी शरण लनी चाहिय।

जिन जगन्नियन्ता जगदाधार परमश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा—सभी अवस्थाआम सर्वथा व्याप्त है जा कालके भी महाकाल ह—अर्थात् जा कालकी सामास परे ह जो ज्ञानस्वरूप चिन्मय परमात्मा सुहृदता आदि समस्त दिव्य गुणास नित्य सम्पन्न हे समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत ओर चिन्मय हैं जो समस्त ब्रह्माण्डोको भली प्रकारसे जानते हैं उन्हींका चलाया हुआ यह जगत्-चक्र नियमपूर्वक चल रहा है। वे ही पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश—इन पाँचा महाभूतोपर शासन करते हुए इनको अपना-अपना कार्य करनेकी शक्ति दकर इनसे कार्य करवाते हैं। उनकी शक्तिके बिना ये कुछ भी नहीं कर सकते यह बात कनापनिषद्म यक्षके आख्यानद्वारा भलीभाँति समझायी गयी हे। इस रहस्यको समझकर मनुष्यका उन सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका उपर्युक्तभावसे चिन्तन करना चाहिये।

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य यागम् । एकन द्वाभ्या त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मै ॥
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावाश्च सर्वान् विनियाजयेद् य । तयामभावे कृतकर्मनाश कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्य ॥

परमश्वरन ही अपनी शक्तिभूता मूलप्रकृतिस पाँचा स्थूल महाभूत आदिकी रचना-रूप कर्म करके उसका निरीक्षण किया फिर जड तत्त्वके साथ चतन तत्त्वका सयोग कराके नाना रूपाम अनुभव होनवाले विचित्र जगत्की रचना की। अथवा इस प्रकार समझना चाहिय कि एक अविद्या दा पुण्य और पापरूप सचित कर्म-सस्कार सत्त्व रज और तम—ये तीन गुण और एक काल तथा मन बुद्धि अहकार पृथ्वी जल तज वायु और आकाश—ये आठ प्रकृतिभेद इन सबसे तथा अहता ममता आसक्ति आदि आत्मसम्बन्धी सूक्ष्म गुणासे जीवात्माका सम्बन्ध कराक इस जगत्की रचना की। इन दाना प्रकारके वर्णनाका तात्पर्य एक ही है।

जा कर्मयागी सत्त्व रज आर तम—इन तीना गुणासे व्याप्त अपने वर्ण आश्रम और परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यकर्मोका आरम्भ करक उनका आर अपने सब पकारक अहता ममता आसक्ति आदि भावाका उस परब्रह्म परमश्वरम लगा देता है उनके समपण कर दता है उस समर्पणस उन कर्मोक साथ साधकका सम्बन्ध न रहनके कारण व उसे फल नहीं देते। इस प्रकार उनका अभाव हा जानस पहल किय हुए सचित कर्म-सस्काराका भी सर्वथा नाश हा जाता है। इस प्रकार कर्मोका नाश हो जानेसे वह तुरत परमात्माका प्राप्त हा जाता ह क्याकि यह जावात्मा वास्तवम जड-तत्त्वसमुदायसे सर्वथा भिन्न एव अत्यन्त विलक्षण है। उनके साथ इसका सम्बन्ध अज्ञानजनित अहता-ममता आदिक कारण ही है स्वाभाविक नहीं है।

आदि स सयागनिमित्तहतु परस्त्रिकालादकलाऽपि दृष्ट । त विश्वरूप भवभूतमाड्य दव स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्॥
स वृक्षकालाकृतिभि परोऽन्या यस्मात् प्रपञ्च परिवर्ततऽयम् । धर्मावह पापनुद भगश ज्ञात्वात्मस्थममृत विश्वधाम॥

य समस्त जगत्क आदि कारण सर्वशक्तिमान् परमश्वर ताना कालास सर्वथा अतीत हैं। उनमे कालका कोइ भेद नहीं है भूत और भविष्य भी उनकी दृष्टिम वर्तमान हा हैं। व [प्रश्नापनिषद्म बताया गई] सालह कलाआस रहित हानपर भा अर्थात् सबास सर्वथा सम्बन्धरहित हात हुए भा प्रकृतिक साथ जावका सयाग करानवाल कारणक भा कारण हैं। यह बात इस रहस्यका

जाननेवाले ज्ञानी महापुरुषाद्वारा देखी गयी है। वे ही एकमात्र स्तुति करने योग्य हैं। उन्हे ढूँढनेक लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे हृदयम ही स्थित हैं। इस बातपर दृढ विश्वास करक सन प्रकारके रूप धारण करनेवाले तथा जगतूरूपम प्रकट हुए सर्वाधार सर्वशक्तिमान् परम देव पुराणपुरुष परमश्वरकी उपासना करके उन्ह प्राप्त करना चाहिये।

जिनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावस यह प्रपञ्चरूप ससार निरन्तर घूम रहा है—प्रवाहरूपसे सदा चलता रहता हे वे परमात्मा इस ससार-वृक्ष काल और आकृति आदिसे सर्वथा अतीत ओर भिन्न है। अर्थात् वे ससारसे सर्वथा सम्बन्धरहित कालका भी ग्रास कर जानेवाले एव आकाररहित हैं। तथापि वे धर्मकी वृद्धि एव पापका नाश करनेवाले समस्त एश्वर्योके अधिपति और समस्त जगत्के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आश्रित है उन्हींकी सत्तासे टिका हुआ है। अन्तर्यामीरूपसे वे हमारे हृदयम भी हैं। इस प्रकार उन्ह जानकर ज्ञानयोगी उन अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

तमीश्वराणा परम महेश्वर त देवताना परम च दैवतम्। पति पतीनां परम परस्ताद् विदाम देव भुवनेशमीड्यम्॥
न तस्य कार्यं करण च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त ईश्वरोके—लाकपालोके भी महान् शासक हैं अर्थात् वे सब भी उन महेश्वरके अधीन रहकर जगत्का शासन करते हैं। समस्त देवताओके भी वे परम आराध्य है समस्त पतियो—रक्षकाके भी परम पति (रक्षक) हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोके स्वामी हैं। उन स्तुति करने योग्य प्रकाशस्वरूप परम देव परमात्माको हम लाग सबस पर जानते हैं। उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ ओर कोई नहीं है। वे हीं इस जगत्के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं और वे सर्वरूप होकर भी सबसे सर्वथा पृथक् हैं।

उन परब्रह्म परमात्माक कार्य और करण—शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं। अर्थात् उनमे देह इन्द्रिय आदिका भेद नहीं है। [तीसरे अध्यायमे यह बात विस्तारपूर्वक बतायी गयी है कि] वे इन्द्रियोक बिना ही समस्त इन्द्रियाका व्यापार करत हैं। उनसे बडा तो दूर रहे उनके समान भी दूसरा कोई नहीं दीखता वास्तवम उनसे भिन्न कोई है ही नहीं। उन परमश्वरकी ज्ञान बल और क्रियारूप स्वरूपभूत दिव्य शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारण करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप ॥
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभि प्रधानजै स्वभावतो दव एक स्वमावृणात्। स ना दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

जगत्मे काई भी उन परमात्माका स्वामी नहीं है। सभी उनके दास और सवक हैं। उनका शासक—उनपर आज्ञा चलानवाला भी कोई नहीं है। सब उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाका अनुसरण करते और उनके नियन्त्रणमे रहते हैं। उनका काई चिह्नविशेष भी नहीं है क्याकि वे सर्वत्र परिपूर्ण निराकार हैं। तथा वे सबके परम कारण—कारणाक भी कारण आर समस्त अन्त करण और इन्द्रियाके अधिष्ठातृ-देवताआके भी अधिपति—शासक हैं। इन परब्रह्म परमात्माका न तो काई जनक—अर्थात् इन्ह उत्पन्न करनवाला पिता है और न काई इनका अधिपति ही है। ये अजन्मा सनातन सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् हें।

जिस प्रकार मकडी अपनेस प्रकट किये हुए तन्तुजालसे स्वय आच्छादित हा जाती ह—उसम अपनेका छिपा लती ह उसी प्रकार जिन एक देव परमपुरुष परमेश्वरने अपनी स्वरूपभूत मुख्य एव दिव्य अचिन्त्यशक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्याद्वारा स्वभावस ही अपनको आच्छादित कर रखा है जिसके कारण ससारी जाव उन्ह देख नहीं पाते वे सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा हम लोगोको सबके परम आश्रयभूत अपन परब्रह्मस्वरूपम स्थापित कर।

एको देव सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी चेता कवला निगुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणा बहूनामेक बीज बहुधा य करोति। तमात्मस्थ यऽनुपश्यन्ति धारास्तेषा सुख शाश्वत नतरपाम्॥

वे एक ही परमदव परमेश्वर समस्त प्राणियाके हृदयरूप गुहाम छिपे हुए हैं वे सवव्यापी और समस्त प्राणियाक अन्तयामी परमात्मा हैं। वे ही सबके कर्मोके अधिष्ठाता—उनको कर्मानुसार फल दनवाल और समस्त प्राणियाक निवासस्थान—आश्रय हैं तथा वे ही सबक साक्षी—शुभाशुभ कर्मका दखनवाले परम चतनस्वरूप तथा सबको चतना प्रदान करनवाल सवथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृतिके गुणासे अतीत हैं।

जो विशुद्ध चतनस्वरूप परमश्वरक ही अश हानक कारण वास्तवम कुछ नहीं करत एसे अनन्त जावात्माआक जा अकल ही नियन्ता—कर्मफल दनवाले हैं जा एक प्रकृतिरूप बीजको बहुत प्रकारस रचना करके इस विचित्र जगत्क रूपम बनात हैं

उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान परम सुहृद् परमेश्वरको जा धीर पुरुप निरन्तर दखते रहत है निरन्तर उन्हींम तन्मय हुए रहते हैं उन्हींको सदा रहनवाला परम आनन्द प्राप्त होता है दूसराका जा इस प्रकार उनका निरन्नर चिन्तन नहीं करते वह परमानन्द नहीं मिलता—व उससे वञ्चित रह जात ह।

नित्या नित्याना चतनश्चेतनानामेका बहूना या विदधाति कामान्। तत्कारण साख्ययोगाधिगम्य ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशै ॥

जो नित्य चतन सर्वशक्तिमान् सवाधार परमात्मा अकल ही बहुत-म नित्य चेतन जीवात्माआके कर्मफलभागाका विधान करत है जिन्हान इस विचित्र जगत्की रचना करक समस्त जीवसमुदायके लिय उनक कर्मानुसार फलभागका व्यवस्था कर रखी हे उनका प्राप्त करनेक दा साधन ह—एक ज्ञानयाग दूसरा कर्मयाग भक्ति दानाम ही अनुस्यूत है इस कारण उसका अलग वणन नही किया गया। उन ज्ञानयाग और कर्मयागद्वारा प्राप्त किय जाने याग्य सबक कारणरूप परमदेव परमश्वरको जानकर मनुष्य समस्त बन्धनामे सवथा मुक्त हा जाता ह। जा उन्हे जान लेता हे और प्राप्त कर लता हे वह कभी किसी भी कारणसे जन्म-मरणक बन्धनम नहीं पडता। अत मनुष्यका उन सर्वशक्तिमान् सवाधार परमात्माको प्राप्त करनक लिय अपनी याग्यता और रुचिक अनुसार ज्ञानयोग या कर्मयाग—किसा एक साधनमे तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिये। [श्वेताश्वतरोपनिषद्]

भगवल्लीला-कथाका वैशिष्ट्य

को नाम तृप्यद् रसवित् कथाया
महत्तमकान्तपरायणस्य ।
नान्त गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगश्वरा य भवपाद्मुख्या ॥

(श्रामद्भा० १। १८। १४)

ऐसा कान रस-मर्मज्ञ हागा, जा महापुरुषाक एकमात्र जीवन-सवस्व श्राकृष्णकी लाला-कथाआस तृप्त हा जाय? समस्त प्राकृत गुणास अतीत भगवान्के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणाका पार ता ब्रह्मा शकर आदि वड-वड यागश्वर भी नहीं पा सक।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभि कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गद
प्रात्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दत ध्यायति वन्दत जनम्।
मुहु श्वसन् वक्ति हर जगत्पत
नारायणत्यात्ममतिर्गतत्रप ॥
तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृति ।
निदग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयागेण समत्यधाक्षजम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ७। ३४—३६)

जब भगवान्के लीलाशरीरास किय हुए अद्भुत पराक्रम उनक अनुपम गुण आर चरित्राको श्रवण करक अत्यन्त आनन्दके उद्रेकस मनुष्यका रोम-राम खिल उठता है आँसुआक मार कण्ठ गद्गद हा जाता है और वह सकोच छाडकर जार-जारस गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है, जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है कभी करुण-क्रन्दन करन लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावस लागाकी वन्दना करन लगता है, जब वह भगवानम ही तन्मय हो जाता ह बार-बार लबी साँस खींचता है और सकाच छाडकर 'हर! जगत्पत!! नारायण!!!' कहकर पुकारन लगता है—तब भक्तियागके महान् प्रभावस उसक सार बन्धन कट जात हैं आर भगवद्भावका ही भावना करत-करत उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता ह। उस समय उसक जन्म-मृत्युके बाजाका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्का प्राप्त कर लता है।

स वा इद विश्वममाघलील
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतऽस्मिन्।
भूतषु चान्तर्हित आत्मतन्त्र
पाड्वर्गिक जिघ्रति षड्गुणश ॥
न चास्य कश्चिन्निपुणन धातु-
रवैति जन्तु कुमनीष ऊती ।
नामानि रूपाणि मनावचाभि
सतन्वता नटचर्यामिवाज्ञ ॥

स वेद धातु पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणे ।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥

(श्रीमद्भा० १। ३। ३६—३८)

भगवान्की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं, वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता। चक्रपाणि भगवान्की शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपट-भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवा-भावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है।

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित्।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८३। ३)

भगवन्! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका मकरन्द-रस-पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे लीला-कथाके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्मृति अथवा अविद्याको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आशंका ही क्या है?

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३९)

संसारमें भगवान्के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये।

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ।
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। २४)

प्रभो! कलियुगमें जो साधुस्वभाव मनुष्य आपकी इन लीलाओंका श्रवण-कीर्तन करेंगे, वे सुगमतासे ही इस अज्ञानरूप अन्धकारसे पार हो जायँगे।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। ४४)

प्यारे कृष्ण! आपकी एक-एक लीला मनुष्योंके लिये परम मङ्गलमयी और कानोंके लिये अमृतस्वरूप है। जिसे एक बार उस रसका चसका लग जाता है, उसके मनमें फिर किसी दूसरी वस्तुके लिये लालसा ही नहीं रह जाती।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

जिन भगवान्के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्के चरणोंमें आत्मसमर्पण, उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्व-स्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

परब्रह्मकी विश्वरूप-लीलाका दर्शन

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमेश्वर एक हैं, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द एवं परमधाम हैं तथा जो सबमें व्यापक और विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान्‌ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं।

'*हरि अनंत हरि कथा अनंता*' जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी अनन्त है। बड़े-बड़े महात्मा, योगी, ज्ञानी अनादिकालसे उसी अनन्तकी खोज कर रहे हैं। बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी पारखियोंने उस लीलारूपी अमूल्य रत्नको परखनेका प्रयास किया, यह जानते हुए भी कि भगवान्‌की अनन्तता और उनकी लीलाओंकी विचित्रता अकथनीय है, उनकी खोज करना मानवबुद्धिसे परे है। परंतु यह जानकर भी आत्मनिष्ठ महापुरुष उसकी खोज करनेसे नहीं रुकते। अब भी अनेक महात्मा भगवान्‌की लीलाके रहस्यको जाननेके लिये एकान्तमें योग-साधन कर रहे हैं। उस अनन्तकी खोज सृष्टिके आदिकालसे हो रही है और अनन्त कालतक होती ही रहेगी। यह भी तो उनकी लीलाका रहस्य ही है।

लीला क्या है? लीलामय स्वयम्भू भगवान् ही लीलारूप हैं। उनके द्रव्य, कर्म और गुणोंद्वारा ही लीलाका प्रदर्शन होता है। विराट् विश्व उनकी लीलाका ही क्षेत्र है। उनकी प्रत्येक लीलामें गोपनीय रहस्य छिपा रहता है, जिसे संसार नहीं समझ सकता। लीलाओंको प्राकृतिक समझकर श्रद्धा नहीं रहती है, इसीसे उनके गूढ़ तत्त्वोंका बोध नहीं होता। बहुधा लोग लीलाका बाह्य रूप ही देखते हैं, उसकी अन्तरङ्ग-भावनाको और विमलबुद्धिसे नहीं देखते। भगवान्‌की लीलाएँ विश्वमें नित्य हो हुआ करती हैं, परंतु अनित्यता लिये होनेके कारण हम उन्हें समझ नहीं पाते।

आधुनिक पाश्चात्त्य सभ्यताके इस युगमें सभ्य कहलानेवाले बड़े-बड़े महाशय ईश्वरके अस्तित्व एवं उनकी लीलाओंको एक कोरी कल्पना ही समझते हैं और एक अदृश्यकी खोज करनेमें वे अपने अमूल्य समयको नष्ट करना नहीं चाहते। क्यों न हो? कृत्रिमताकी सीमासे बाहर जानेका उनको अवकाश भी तो नहीं मिलता, जड-व्यापारमें जुटी हुई उनकी बुद्धि जडमें ही आकर्षित रहती है। उनका दोष ही क्या? यह भगवान्‌की ही लीला है कि उन्हें जडसे बाहर नहीं होने देती।

लीलातत्त्वको समझना बड़ा ही कठिन है। लीलाके प्रेमी जितना कुछ भी समझ सकते हैं, उतना कह ही डालते हैं—

'तदपि कहे बिनु रहा न कोई'

अपनी-अपनी भावनाके अनुसार कोई सगुणमें, कोई निर्गुणमें प्रभुकी दिव्य लीलाओंकी खोज कर रहा है। अध्यात्मवादी आत्मामें, प्रगतिवादी जगत्‌में, मायावादी मायामें, द्वैतवादी द्वैतमें, शून्यवादी शून्यमें, अनीश्वर जडवादी जड-जगत्‌में, अद्वैतवादी ब्रह्ममें, प्रेमवादी केवल एक प्रेममें ही उस प्रेममूर्ति भगवान् और उनकी प्रेममयी लीलाओंका पता लगा रहे हैं।

'लीला' शब्द कितना प्रिय, कितना सरस और कितना मधुर है, इस शब्दका वाणीमें स्फुरण होते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। 'लीला!' कौन-सी लीला? सांख्यवादियोंकी प्रकृति-लीला, योगियोंकी योगलीला, वेदान्तियोंकी मायालीला, नैयायिकोंकी परमाणु-लीला, वैशेषिकोंकी द्रव्य-लीला, मीमांसकोंकी यज्ञ-लीला, जडवादियोंकी जडलीला या सांसारिक जनोंकी संसार-लीला! क्या ये ही लीलाएँ हैं? नहीं, ये वास्तविक लीलाएँ नहीं हैं। केवल एक भगवान्‌की ही लीला वास्तविक है। उन्हींकी दिव्य लीलाका तो प्रदर्शन विश्वकी समस्त लीलाओंमें हो रहा है।

यह विराट् विश्व उन्हीं पुरुषोत्तमका रूप है। इसमें जो क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही है, वही उनकी लीला है। विश्वात्मा परमात्मा अपनेहीमें अपनी लीलासे अपने विश्वका

प्रकट करके पुन अपनेहीमे उस विलीन कर लेते हैं। अन्तर और वाह्य जगत्म भगवान् आर उनकी लीलाकी ही सत्ता नजर आती हे। श्रुतियाने भी कहा ह—

'ब्रह्मव वेद सर्वम्', 'सर्वं खल्विद ब्रह्म', 'यह सव व्रह्म है।' 'यस्मात् पर नापरमस्ति किंचित्'—इसके आग-पीछे ओर कुछ भी नहीं है। किसी-किसीको यह शका होती है कि आप्तकाम नित्यतृप्त निर्लिप्त ब्रह्मको किस अभावकी पूर्तिक लिये सृष्टि करनी पडी। इसका उत्तर ब्रह्मसूत्रम इस प्रकार दिया गया ह—'लाकवत्तु लीलाकैवल्यम्' अर्थात् सृष्टि उसकी लीलाका विलासमात्र है। अखण्ड पूण ब्रह्म अपने एक ही अशसे जगत्को धारण करक अचलरूपसे स्थित रहता है आर उसकी पूर्णताम कभी किसी प्रकारकी भी न्यूनता नहीं हाती। इसालिये श्रुतिम कहा गया हे—

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह पूर्ण ह यह पूर्ण हे, पूर्णसे ही पूर्णकी वृद्धि हाती है। पूर्णमसे पूर्ण लेनपर भी पूर्ण ही वच रहता हे। भगवान् अशयुक्त होनपर भी पूर्ण हे। कर्ता हानेपर भी अकर्ता हैं। गुणयुक्त हानपर भी गुणातीत हे। सबम व्याप्त होनेपर भी विलग हैं—यही उनका विचित्र लीला हे। जिस समय हमारा ध्यान सृष्टिकी नियमित अलौकिक और विचित्र रचनाकी ओर जाता हे, उस समय सहसा ही भगवान् आर उनकी लीलाका स्मरण हा आता है। समस्त ब्रह्माण्डम, अनेकानेक सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादिमे, असीम आकाशमण्डलम विस्तृत वसुधरामे उन्हींकी अनोखी छटा नजर आने लगती है।

पल-पलपर पलटनेवाले चमत्कार, नाना प्रकारके दृश्य उन्हीकी लीलाके कारण हम देखनेका मिलते ह। पर इसकी विलक्षणता यह ह कि उनकी लीलाका दशन ता हाता ह किंतु उस लीलाके सूत्रधारका दर्शन नही हाता। जैसे कठपुतलीके नाचमे कठपुतली और उसका नृत्य दर्शकाको दिखायी पडता हे परतु कठपुतलियाको नचानेवाला सूत्रधार पर्देक पीछे रहता हे जिस दर्शक दख नहीं पाते। इसी प्रकार यह ससार जो प्रभुकी लीला है, वह तो दीखता हे, पर इसका सचालक—सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता ओर सहारकर्ता प्रभु दिखायी नहीं पडता। परतु जो कुछ दीखता है अर्थात् दीखनेवाला यह जगत् सत्य नहीं ह, यह ता लीलामात्र है। सत्य हे परमात्मप्रभु, यानी ब्रह्म ही सत्य है। इसीलिये स्वामी श्रीशकराचार्यने लिखा—

'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'

इसका तात्पय यह ह कि जगत्का अपना काई अस्तित्व नहा हे, यह मिथ्या ह। ब्रह्म ही अपनी लीलावपुके रूपम जगदवतार धारण करता ह। अर्थात् यही सत्य हे।

सगुण-साकार-स्वरूपम जव कभी प्रभु इस माया-ससारम अवतरित हाते हैं तो वे अपनी माधुर्य-लीलाके साथ-साथ ऐश्वर्य-लीला भी दिखाते हैं, ताकि उनकी भगवत्ताका पता चल जाय। परतु इसका दर्शन आर इसकी अनुभूति उन्हा भक्ताका होती हे, जिन्हे भगवत्कृपास विशेष दृष्टि प्राप्त हाती है। सर्वसाधारण तो प्रभुकी मायास अभिभूत होनेके कारण इस समझ नहीं पाता। भगवान्न कहा—

जन्म कर्म च मे दिव्यमव यो वत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म ओर कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलाकिक हे। इस प्रकार जा मनुष्य तत्त्वस जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नही हाता किंतु मुझे ही प्राप्त हाता हे। भगवान्के दिव्य जन्म आर कर्मके तत्त्वको वही जानता है, जिसपर भगवत्कृपा हाती हे ओर जिसे महापुरुषोका सत्सग मिलता हे।

विभिन्न अवसरापर प्रभुने विराट् विश्वरूपका दर्शन आर उसकी अनुभूति अपन भक्ताको करायी। वटपत्रपर स्थित वालकृष्ण प्रभु अपन श्वाससे माकण्डेयको अपन पटम ल गय वहाँ प्रभुके उदरम मार्कण्डयजीन सम्पूर्ण सृष्टिका दर्शन किया।

वामन-अवतारम भगवान्न राजा वलिस तीन पग भूमिकी माँग की। तान पग भूमि मापनक लिय वामनरूप

प्रभुने विराट् रूप धारणकर राजा बलिको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया।

माता यशोदाको बालकृष्ण भगवान्‌के मुखारविन्दमें सम्पूर्ण विश्वके दर्शन हुए।

कुरुक्षेत्रके मैदानमें भगवान् श्रीकृष्णने मोहसे ग्रसित अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदानकर स्वयम् विराट् विश्वरूपका दर्शन कराया।

इसी प्रकार भगवान् कृष्ण जब पाण्डवोंकी ओरसे शान्ति-सन्देश लेकर कौरवोंके पास आये तो अपनी ऐश्वर्य-लीलाके अन्तर्गत दुर्योधनको भी अपने विराट् विश्वरूपका दर्शन तो कराया, परंतु अहंकारवश दुर्योधन भगवान्‌के उस विश्वरूपका वास्तविक दर्शन प्राप्त न कर सका।

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌के विश्वरूपका वास्तविक दर्शन जिसे प्राप्त नहीं होता, वह स्वयंको ही कर्ता मानता है, अहंकारसे आविष्ट रहता है और संसारकी सभी परिस्थितियोंमें सुखी-दुखी होता रहता है, जो उसके जन्म-मरणके बन्धनका मुख्य कारण है।

जो सत्पुरुष हैं, वे संसारकी प्रत्येक घटनाको भगवान्‌का अवश्यम्भावी मङ्गलमय विधान मानकर संतुष्ट रहते हैं। ऐसे महात्मा इस सत्यका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि उनके अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवान्‌की शक्तिद्वारा ही निर्दिष्ट और संचालित होती है। जो कुछ होता है, वह सब भगवान्‌की प्रकृति (शक्ति) ही करती है। अतः यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्‌की इस लीलामें कुछ भी अनहोनी बात नहीं होती। जो कुछ होता है, वही होता है जो होना है, और जो होना है वही ठीक है, वही मङ्गलमय है। भगवान्‌का कोई भी विधान मङ्गलसे रहित नहीं हो सकता।

वास्तवमें यह जगत् प्रभुका नाट्य-लीलाका रंगमंच है, जिसमें हम सभी अभिनय करनेवाले कलाकार हैं। अभिनयकर्ताओंका सीधा सम्बन्ध नाट्य-मण्डलीके स्वामीसे होता है। उसे जो स्वाँग (पाट) मालिकको ओरसे दिया जाता है, उसे वह कुशलतापूर्वक करता है। जो जितनी कुशलतासे करता है, मालिक उससे उतना ही प्रसन्न होता है। उसका उद्देश्य अपने अभिनयके द्वारा नाट्य-मण्डलीके स्वामीको प्रसन्न करना होता है। अभिनय-मंचपर जो स्वाँग (पाट) अभिनयकर्ताओंको दिये जाते हैं, उनके परस्पर सम्बन्धोंमें भी उनकी कोई आसक्ति नहीं होती, क्योंकि वे सम्बन्ध उतनी देर प्रदर्शनमात्रके लिये होते हैं, जितनी देर वह अभिनय चलता है। इसी प्रकार परमात्मप्रभुके इस संसाररूपी रंगशालामें जिसे जो स्वाँग प्रभुकी ओरसे प्राप्त हुआ है, उसे पूर्ण कुशलतापूर्वक ईमानदारीसे करना ही हम सबका कर्तव्य है।

असलमें अभिनयकर्ताके मनमें कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं हुआ करती। नाटकके स्वामीकी आज्ञाके अनुसार अपना अभिनय करना ही उसकी एकमात्र इच्छा और चेष्टा होती है। इसके अनुसार अपनी सारी कामनाओंको त्यागकर भगवान्‌के इस संसाररूपी लीला-मंचपर उनकी प्रसन्नताके लिये उन्हीं प्रभुके संकेतानुसार कर्म करना ही अपना परम धर्म है, यही उनकी उपासना है और यही उनकी भक्ति। भगवान्‌ने गीता (३। ९)-में कहा—'**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर**'—'अर्जुन! तुम आसक्ति छोड़कर भगवान्‌के लिये भलीभाँति कर्मोंका सम्पादन करो।'

जिस साधककी प्रत्येक कर्ममें यह दृष्टि रहती है तथा बिना किसी आसक्ति और कामनाके इस प्रकारके कर्तव्य-कर्म करता है, वह आगे चलकर भगवान्‌के हाथका सच्चा यन्त्र बन जाता है, फिर उसमें कोई अहंकार नहीं रहता। वह कठपुतलीकी भाँति भगवान् जैसे नचाते हैं वैसे ही नाचता है। भगवान् जो कुछ कराते हैं, वही वह करता है। इस प्रकारका साधक प्रभुसे प्रार्थना करता है—

तुम हो यन्त्री मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ, नित ही परतन्त्र, न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं मन ही, न पृथक् मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥
(पद्य रत्नाकर)

—राधेश्याम खेमका

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका मधुरतम आदि-लीला-चित्रण

विद्वत्परम्पराम आदिकाव्यक प्रणता महर्षि वाल्मीकिकी प्रतिष्ठा कवि-शिरामणिके रूपमे निरापद है क्याकि कवियाने एक स्वरसे श्रद्धापूर्वक सिहनाद किया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवेत्।
कवी इति तता व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

(साहित्यभाण्डागारम्)

अथात् कवि शब्दका प्रयाग जब एक वचनम हागा तब वह केवल वाल्मीकिजीका बाधक होगा द्विवचनम प्रयाग होनेपर महर्षि वाल्मीकि आर व्यासदवजाका बाधक हागा तथा बहुवचनम प्रयाग हानेपर फिर वह दण्डी कालिदाम एव आनन्दवर्धन आदि कवियाका बाधक हागा।

'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगात्थ शाक श्लाकत्वमागत 'क वचनानुसार आदि दिव्य वाणीका प्रस्फुटन महर्षिके श्रीमुखस ता अनायास—सहसा ही हा गया था—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत् क्रौञ्चमिथुनादकमवधी काममाहितम्॥

तभी तो ब्रह्माजीन कहा था—

'मच्छन्दादव त ब्रह्मन् प्रवत्तय सरस्वती।'

अर्थात् 'मरी प्ररणासे सरस्वती तुम्हार मुखम प्रविष्ट हुई हैं ओर तुम्हारे मुखसे ससारका सर्वप्रथम श्लाक प्रकट हुआ हे—उच्चरित हुआ है। इसी छन्द श्लाकम सौ कराडकी सख्याम तुम रामचरितका उपनिबन्धन कराग। वह भूतल-पाताल आर स्वर्गम—सर्वत्र व्याप्त रहगा। जबतक पृथ्वी रहेगी तबतक यह कथा भी रहगी। इसाका आधार बनाकर काटि-काटि रामायण रच जायँगे।'

फिर वसा ही हुआ भी। नित्य त्रलाक्य-भ्रमणकारी 'नारायण'-नामधारी दवर्षि नारदजी घूमत-घूमत आय और वाल्मीकिजीन उनस कुछ प्रश्न पूछ— ससारम सबम बडा पुण्यात्मा सुन्दर बलिष्ठ धर्मी यशस्वी आदि कान व्यक्ति है ?' नारदजीन कहा—'ये ता अत्यन्त दुर्लभ गुण ह किंतु तुम्ह एक ही व्यक्तिको बताता हूँ, जिसम कवल य ही गुण नहीं अपितु अनन्त गुण विद्यमान ह।' नारदजीन उस गुणनिधिके गुणानुवादम सक्षिप्त रामचरित सुना दिया। उसीक आधारपर आदि रामायणकी रचना हुई। भगवती सीता स्वय उनक आश्रमपर अनक वर्षोतक रहा आर उन चरित्राका पुन विस्तारस वाल्मीकिजीस बताया। उसी रामकथाका लव-कुशका कण्ठस्थ कराया गया जिस उन्हाने नैमिपारण्यक यज्ञम सभा ऋपिया एव राजाआका सुनाया।

कालावसानम उस रामकथाक दा सस्करण हा गय—पहला लवद्वारा गाया गया लवपुरीय (लाहारका) पश्चिमात्तरशाखीय वाल्मीकीय रामायण तथा दूसरा कुशका गाया हुआ दाक्षिणात्य प्राच्य आर औदीच्य सस्करण जिसका प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। लवपुरीय सस्करणपर काई टाका नहा ह। दाक्षिणात्य सस्करणपर सकडा टाकाएँ ह।

भगवन्नाम-यश-लीला-कीर्तन करनम महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। प्राय सभी रामचरितकार महर्षिक ही ऋणी ह, क्याकि आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण ही उन कवियाका उपजीव्य है। वद जिस 'परमतत्त्व'का वर्णन करते हें वही 'श्रीमन्नारायण-तत्त्व' श्रीमद्रामायणम श्रारामरूपस निरूपित ह।

पाठक उनका श्रवण-मनन-चिन्तनकर अपन जीवनका रामक समान बनाकर कृतार्थ कर सकत ह। यहाँ ता कवल सक्षिप्त दिशा-निर्देशमात्र किया गया ह। अस्तु आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका आदि-लीला-चित्रण सम्पूर्ण विश्वका चूडान्त लाकादर्श ह। वह सर्वथा अनुकरणीय ओर परमपद प्रदान करनवाला ह। अत वाल्मीकिक पादपद्माम नमन करत हुए निरन्तर श्रीरामलालाका चिन्तन-मनन करत रहना चाहिय।

प्रभुने विराट् रूप धारणकर राजा बलिको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया।

माता यशोदाको बालकृष्ण भगवान्के मुखारविन्दमें सम्पूर्ण विश्वके दर्शन हुए।

कुरुक्षेत्रके मैदानमें भगवान् श्रीकृष्णने मोहसे ग्रसित अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदानकर स्वयमें विराट् विश्वरूपका दर्शन कराया।

इसी प्रकार भगवान् कृष्ण जब पाण्डवोंकी ओरसे शान्ति-संदेश लेकर कौरवोंके पास आये तो अपनी ऐश्वर्य-लीलाके अन्तर्गत दुर्योधनको भी अपने विराट् विश्वरूपका दर्शन तो कराया, परंतु अहंकारवश दुर्योधन भगवान्के उस विश्वरूपका वास्तविक दर्शन प्राप्त न कर सका।

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्के विश्वरूपका वास्तविक दर्शन जिसे प्राप्त नहीं होता, वह स्वयंको ही कर्ता मानता है, अहंकारसे आविष्ट रहता है और संसारकी सभी परिस्थितियोंमें सुखी-दुःखी होता रहता है, जो उसके जन्म-मरणके बन्धनका मुख्य कारण है।

जो सत्पुरुष हैं, वे संसारकी प्रत्येक घटनाको भगवान्का अवश्यम्भावी मङ्गलमय विधान मानकर संतुष्ट रहते हैं। ऐसे महात्मा इस सत्यका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि उनके अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवान्की शक्तिद्वारा ही निर्दिष्ट और संचालित होती है। जो कुछ होता है। वह सब भगवान्की प्रकृति (शक्ति) ही करती है। अतः यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्की इस लीलामें कुछ भी अनहोनी बात नहीं होती। जो कुछ होता है, वही होता है जो होना है, और जो होना है वही ठीक है, वही मङ्गलमय है। भगवान्का कोई भी विधान मङ्गलसे रहित नहीं हो सकता।

वास्तवमें यह जगत् प्रभुकी नाट्य-लीलाका रंगमंच है, जिसमें हम सभी अभिनय करनेवाले कलाकार हैं। अभिनयकर्ताओंका साथी सम्बन्ध नाट्य-मण्डलीके स्वामीसे होता है। उसे जो स्वाँग (पाट) मालिककी ओरसे दिया जाता है, उसे वह कुशलतापूर्वक करता है। जो जितना कुशलतासे करता है, मालिक उससे उतना ही प्रसन्न होता है। उसका उद्देश्य अपने अभिनयके द्वारा नाट्य-मण्डलीके स्वामीको प्रसन्न करना होता है। अभिनय-मंचपर जो स्वाँग (पाट) अभिनयकर्ताओंको दिये जाते हैं, उनके परस्पर सम्बन्धोंमें भी उनकी कोई आसक्ति नहीं होती, क्योंकि वे सम्बन्ध उतनी देर प्रदर्शनमात्रके लिये होते हैं, जितनी देर वह अभिनय चलता है। इसी प्रकार परमात्मप्रभुके इस संसाररूपी रंगशालामें जिसे जो स्वाँग प्रभुकी ओरसे प्राप्त हुआ है, उसे पूर्ण कुशलतापूर्वक ईमानदारीसे करना ही हम सबका कर्तव्य है।

असलमें अभिनयकर्ताके मनमें कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं हुआ करती। नाटकके स्वामीकी आज्ञाके अनुसार अपना अभिनय करना ही उसकी एकमात्र इच्छा और चेष्टा होती है। इसके अनुसार अपनी सारी कामनाओंको त्यागकर भगवान्के इस संसाररूपी लीला-मंचपर उनकी प्रसन्नताके लिये उन्हीं प्रभुके संकेतानुसार कर्म करना ही अपना परम धर्म है, यही उनकी उपासना है और यही उनकी भक्ति। भगवान्ने गीता (३। ९)-में कहा—'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर'—'अर्जुन! तुम आसक्ति छोड़कर भगवान्के लिये भलीभाँति कर्मोंका सम्पादन करो।'

जिस साधककी प्रत्येक कर्ममें यह दृष्टि रहती है तथा बिना किसी आसक्ति और कामनाके इस प्रकारके कर्तव्य-कर्म करता है, वह आगे चलकर भगवान्के हाथका सच्चा यन्त्र बन जाता है, फिर उसमें कोई अहंकार नहीं रहता। वह कठपुतलीकी भाँति भगवान् जैसे नचाते हैं वैसे ही नाचता है। भगवान् जो कुछ कराते हैं, वही वह करता है। इस प्रकारका साधक प्रभुसे प्रार्थना करता है—

तुम हो यन्त्री मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र, न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं मन ही न पृथक् मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥
(पद-रत्नाकर)

—राधेश्याम खेमका

प्रसाद

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका मधुरतम आदि-लीला-चित्रण

विद्वत्परम्परामे आदिकाव्यके प्रणेता महर्षि वाल्मीकिकी श्रेष्ठता कवि-शिरोमणिके रूपमें निरापद है, क्योंकि कवियोंने इसे स्वरस श्रद्धापूर्वक सिंहनाद किया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

(साहित्यभाण्डागारम्)

अर्थात् कवि शब्दका प्रयोग जब एक वचनमें होगा तब वह केवल वाल्मीकिजीका बोधक होगा, द्विवचनमें प्रयोग होनेपर महर्षि वाल्मीकि और व्यासदेवजीका बोधक होगा तथा बहुवचनमें प्रयोग होनेपर फिर वह दण्डी, कालिदास एवं आनन्दवर्धन आदि कवियोंका बोधक होगा।

'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत'—के वचनानुसार आदि दिव्य वाणीका प्रस्फुटन महर्षिके श्रीमुखसे तो अनायास—सहसा हो हो गया था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

तभी तो ब्रह्माजीने कहा था—

'मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।'

अर्थात् 'मेरी प्रेरणासे सरस्वती तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हुई हैं और तुम्हारे मुखसे संसारका सर्वप्रथम श्लोक प्रकट हुआ है—उच्चरित हुआ है। इसी छन्द श्लोकमें सौ करोडकी संख्यामें तुम रामचरितका उपनिबन्धन करोगे। वह भूतल-पाताल और स्वर्गमें—सर्वत्र व्याप्त रहेगा। जबतक पृथ्वी रहेगी, तबतक यह कथा भी रहेगी। इसीको आधार बनाकर कोटि-कोटि रामायण रचे जायँगे।'

फिर वैसा ही हुआ भी। नित्य त्रैलोक्य-भ्रमणकारी 'नारायण'-नामधारी देवर्षि नारदजी घूमते-घूमते आये और वाल्मीकिजीने उनसे कुछ प्रश्न पूछे—'संसारमें सबसे बडा पुण्यात्मा सुन्दर बलिष्ठ धनी यशस्वी आदि कौन व्यक्ति है?' नारदजीने कहा—'ये तो अत्यन्त दुर्लभ गुण हैं, किंतु तुम्हें एक ही व्यक्तिको बताता हूँ, जिसमें केवल ये ही गुण नहीं, अपितु अनन्त गुण विद्यमान हैं।' नारदजीने उस गुणनिधिके गुणानुवादमें संक्षिप्त रामचरित सुना दिया। उसीके आधारपर आदि रामायणकी रचना हुई। भगवती सीता स्वयं उनके आश्रमपर अनेक वर्षोतक रहीं और उन चरित्रोंको पुनः विस्तारसे वाल्मीकिजीसे बताया। उसी रामकथाको लव-कुशको कण्ठस्थ कराया गया, जिसे उन्होंने नैमिषारण्यके यज्ञमें सभी ऋषियों एवं राजाओंको सुनाया।

कालान्तरमें उस रामकथाके दो संस्करण हो गये—पहला लवद्वारा गाया गया लवपुरीय (लाहौरका) पश्चिमोत्तरशाखीय वाल्मीकीय रामायण तथा दूसरा कुशका गाया हुआ दाक्षिणात्य प्राच्य और औदीच्य संस्करण जिसका प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। लवपुरीय संस्करणपर कोई टीका नहीं है। दाक्षिणात्य संस्करणपर सैकडों टीकाएँ हैं।

भगवन्नाम-यश-लीला-कीर्तन करनेमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। प्रायः सभी रामचरितकार महर्षिके ही ऋणी हैं, क्योंकि आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण ही उन कवियोंका उपजीव्य है। वेद जिस 'परमतत्त्व'का वर्णन करते हैं, वही 'श्रीमन्नारायण-तत्त्व' श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है।

पाठक उनका श्रवण-मनन-चिन्तनकर अपने जीवनको रामके समान बनाकर कृतार्थ कर सकते हैं। यहाँ तो केवल संक्षिप्त दिशा-निर्देशमात्र किया गया है। अस्तु, आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी आदि-लीला-चित्रण सम्पूर्ण विश्वका चूडान्त लोकादर्श है। वह सर्वथा अनुकरणीय और परमपद प्रदान करनेवाला है। अतः वाल्मीकिके पादपद्मोंमें नमन करते हुए निरन्तर श्रीरामलीलाका चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये।

भगवान् व्यासदेवका भगवल्लीला-आकर्षण

भगवान् व्यासदवका कथन है कि सभी जप, तप, स्वाध्याय, श्रवण मनन, यज्ञ दान एव तीर्थ आदि धमाचरणाका एकमात्र फल हे—भगवल्लीलाका अनुसधान, चिन्तन वर्णन आर श्रवण—

> इद हि पुसस्तपस श्रुतस्य वा
> स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तया ।
> अविच्युतोऽर्थ कविभिर्निरूपितो
> यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥
> (श्रीमद्भा० १। ५। २२)

विद्वानाने इस बातका निरूपण किया हे कि मनुष्यक तपस्या वदाध्ययन यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय ज्ञान आर दानका एकमात्र प्रयाजन यही है कि पुण्यश्लाक श्रीकृष्णके गुणा ओर लीलाआका वर्णन किया जाय।

तदनुसार ही उन्हान वैदिक ग्रन्था एव अष्टादश महापुराणा, उपपुराणा तथा स्थलपुराणा आदिका निर्माण किया जिनम समस्त भगवत्-चरित्रका निरूपण किया गया। विशषकर भागवतके बारह स्कन्धाम सर्वाधिक सुन्दर चित्रण हुआ उनम भी भगवान्के चोबीस अवताराका वणन दिव्य एव अद्भुत लोकात्तर-चमत्कारपूर्ण ह, उनम भगवान् श्रीराम एव श्रीकृष्णकी लीलाएँ मधुरतम हैं। भगवान् श्रीरामकी बाललीला विश्वामित्रके यज्ञका रक्षा धनुष-भग विवाह वन-यात्रा आर दुष्ट दानवाका वध अति दिव्य-रूपम वर्णित हुआ है। अध्यात्मरामायणम जो ब्रह्माण्डपुराणका परिशिष्ट हे उसम अत्यन्त चमत्कृतरूपस इन लीलाआका मधुरतम वर्णन हुआ ह जा लागाक कण्ठका हार बना हुआ हे। इन्हीं सब भावाका लकर श्रातुलसीदासजान श्रारामचरितमानसकी रचना की जा जन-जनका कण्ठहार बना हुआ है। बाल-वृद्ध स्त्रा तथा शूद्रा तकको इसका कुछ-न-कुछ अश कण्ठस्थ हो गया हे।

ब्रह्मवैवर्तपुराण ओर भागवतम भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीला माखन-चोरी ऊखल-बन्धन यमलार्जुन-उद्धार गा-चारण वृन्दावन-विहार वणुगीत युगलगात गापागात तथा रासलीलाकी झाँकी दखत हा बनती ह साथ ही रुक्मिणी सत्यभामा आदि अष्टमहिषियाक साथ विवाह पाण्डवाकी पग-पगपर रक्षा तथा दुर्योधन दु शासन जरासन्ध शिशुपाल आदि असुरबुद्धिक राजाआक दर्प-दलन करनेकी लीला भी बडी विचित्र है। अजुनका गाताका ज्ञान सुनाने एव विराट्स्वरूपके दर्शन करान-जैस एक-स-एक दिव्य चरित्राक चित्रण हुए ह। अजुनक समान ही भागवतके ग्यारहव स्कन्धम उद्धवजीका ज्ञान प्रदान करनकी लालाका वर्णन किया गया हे जिसका 'भिक्षुक-गीत' सर्वाधिक सर्वोत्तम अश ह।

इसी प्रकार भगवान् व्यासदवन 'शिवपुराण' आर 'लिङ्ग-पुराण'म भगवान् शिवजाकी लीलाआका तथा दवीपुराण कालिकापुराण दवाभागवत आर महाभागवतमें दवीकी लीलाआका एव गणशपुराणम भगवान् गणशका लीलाआका तथा विष्णु-पुराणम भगवान् विष्णुकी लीलाआका गान किया हे और सभीम ऋषि-मुनिया एव उनके चरित्राका गान किया है।

भगवान् व्यासदेव अभी कहीं गये नहीं हैं। आद्य-शकराचार्यजीक साथ सत्ताईस दिनातक बिना हिल-डुल खडे रहकर उलटा शास्त्रार्थ कर उन्ह चकित कर दिया आर उनकी आयुको दागुनी कर दी। आज भी व अपन भक्ताका दर्शन दत रहत ह तथा उनको कृतार्थ करत रहत हे। सारा विश्व-साहित्य उन्हाका उच्छिष्ट हे—'व्यासोच्छिष्ट जगत् सर्वम्'।

प्राणपणसे उनका मनन-चिन्तन करता हुआ मनुष्य उन्हाक समान वन सकता ह। उन्हान सब कुछ कह दिया कुछ भी शष नहा ह। इसीलिय ता भगवान् वदव्यासके अगाध बुद्धिसागरका उपलक्षित करते हुए कहा गया—'यत्र भारते तत्र भारते' अथात् जा महाभारतम नहीं है वह सम्पूर्ण भारतम नहीं ह। यह उनकी कपाका फल है। उन्हाने विश्व-कल्याणक लिय सब कुछ कर दिया हे। वद पुराण महाभारत—सभी ता भगवान्क साक्षात् लीला-विग्रह ही ह। इतनपर भी काई लाभ न उठाय ता इसस बढकर दु ख और आश्चर्यकी बात क्या है आर उनका दाप क्या हे?

अज्ञानक अन्धकाररूपी समुद्रम निमग्न प्राणियोको शिक्षा दनक लिये भगवान्क ललित-ललाम लालाआका रस-पान करानके लिये ही उनका लीला-चित्रण ओर लालावतरण हुआ है। एस महनाय बुद्धिसागर व्यासका कोटिश नमन ह— नमाऽस्तु त व्यास विशालबुद्धे ।

अमलात्मा परमहंस श्रीशुकदेवजीकी भगवल्लीला-निष्ठा

लीला-कथा-रस-वैचित्र्यसे ओतप्रोत, भगवल्लीला-कथाके साक्षात् सगुण-साकार-स्वरूप श्रीमद्भागवत-महापुराणके विषयमे जब शौनकादि महर्षियोंने यह सुना कि इस कथाका गुणगान श्रीशुकदेवजीने किया है, तो वे आश्चर्यचकित होकर बोल उठे—

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥

(श्रीमद्भा० १।४।४)

'वे व्यासनन्दन तो महायोगी समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थे। वे तो प्रच्छन्न-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे फिर वे किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानेमे प्रवृत्त हो गये?'

इस सम्बन्धमे एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार भगवान् सदाशिव पराम्बा भगवती पार्वतीको अमर-कथा सुना रहे थे। पार्वतीजी बीचमे हुँकारी भर रही थीं, परतु कथाके मध्यमे कुछ ही समय-पश्चात् शकरप्रिया निद्राभिभूत हो गयी।

सयोगवश एक शुक भी वहाँ बैठकर कथा-श्रवण कर रहा था। जब पार्वतीजी सो गयीं, तब वही शुक-शावक हुँकारी भरना शुरू कर दिया था। इसलिये शकरजीको पार्वतीजीके सो जानेका पता न चला और उनके द्वारा अमर-कथाका अनवरत प्रवाह चलता रहा। इस प्रकार उस शुकने पूरी कथा सुन ली। इधर जब पार्वतीजी जगीं तो उन्होने अपने प्राणवल्लभसे कहा—'प्रभो, इस वाक्यके बाद मैंने कथा नहीं सुनी है, क्योकि मुझे नींद आ गयी थी।' अब तो देवाधिदेवके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होने वहाँ उपस्थित अपने गणोसे कहा—'आखिर कथाके मध्यमे हुँकारी कौन भर रहा था? शीघ्र पता लगाओ।' गणोने वृक्षपर बैठे शुक-शावककी ओर जब इशारा किया तब शकरजी उसे मारनेके लिये त्रिशूल लेकर दौड पडे।

वह शुक दौडता हुआ व्यास-आश्रममे पहुँचा और जम्हाई लेती हुई व्यास-पत्नी वट्रिकाके मुखमे प्रवेश कर गया। शिवजीने वहाँ पहुँचकर कहा—'मैं वट्रिकाका इस त्रिशूलसे सहार करना चाहता हूँ।' व्यासजीने कहा—'इसका अपराध क्या है?' तब शकरजीने कहा—'इसके मुखमे प्रविष्ट शुकने 'अमर-कथा' सुन ली है।' यह सुनकर व्यासजी मुसकराते हुए बोले—'प्रभो तब तो यह अमर हो ही गया।' निरुपाय शकरजी वहाँसे लौट आये।

इधर कथाके प्रभावसे वह अमलात्मा शुक ब्रह्मनिष्ठ हो व्यास-पत्नीके गर्भमे बारह वर्षोतक निवास करता रहा। जब व्यासदेवने दिव्य दृष्टिसे इस गर्भस्थ शिशुको देखा तो उन्होने पूछा कि 'तुम बाहर क्यो नहीं आते?' तब उसने कहा—'मुझे सासारिक माया घेर लेगी। हाँ यदि भगवान् श्रीकृष्ण आकर यह आश्वासन दे कि मुझपर मायाका प्रभाव नहीं होगा तब मैं बाहर प्रकट हो जाऊँगा।' फिर वैसा ही हुआ।

शुकदेव गर्भसे बाहर निकलते ही ससारसे उपरत होकर एकान्त अरण्यमे चले गये और ध्यानावस्थित हो समाधिस्थ हो गये। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आये और इस श्लोकका निरन्तर गान करने लगे—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

(श्रीमद्भा० १०।२१।५)

इस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर कथा-रस-रूप अनुपम भगवद्विग्रहका रूप-माधुरीने शुकदेवजीके अन्तःकरणको क्षुभित कर दिया उनकी समाधि-भग हो गयी। उन्होने उन मुनिकुमारोसे पूछा—'इस श्लोकको आप लोगोने कहाँसे सीखा?' मुनिकुमारोने कहा—'गुरु व्यासदेवजीसे।' यह सुनकर श्रीशुकदेवजी भगवान् व्यासके पास आये और उनसे भगवल्लीला-कथा-विग्रह-रूप महाग्रन्थ श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। इससे शौनकादि मुनियोके प्रश्नका समाधान हो जाता है कि वे व्यासनन्दन हरिगुणाक्षिप्तमति थे इसलिये ये आत्माराम होनेपर भी इस भागवत-कथामे प्रवृत्त हुए।

अहो! उन व्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका—लीला-निष्ठाका कहाँतक वर्णन किया जाय। यद्यपि निरन्तर आत्मसुखमे विश्रान्त रहनेके कारण उनके हृदयसे द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हो गया था तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाओने उन्हे अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया।

यह है आप्तकाम परम निष्कामकी अतृप्त लीला-कथा-निष्ठा जिसे उन्होने परीक्षित्‌को सुनाया और वे परमपदको प्राप्त हो गये। अतः हम सभीको श्रीशुकदेवजीके चरणोमे कोटिश नमन करते हुए लीला-कथामे सदैव निमग्न रहना चाहिये।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका भगवल्लीला-चिन्तन

आद्यशकराचार्य भगवान् शकर साक्षात् शिवके ही अवतार या विग्रह थे। वे याग ज्ञान तथा वैराग्यके साथ ही भक्तिके भी मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी कर्मठता इतनी प्रचण्ड थी कि उन्हाने थाड ही समयम बौद्धा तथा जैनिया आदिको परास्त कर भारतके चारो सीमाआपर चार मठा, उपमठा आदिका निर्माण करत हुए समस्त देशम सत्य सनातन धर्मकी स्थापना कर दी। साथ ही उपनिपदा, गीता वदान्त-दर्शन आदिपर अद्भुत भाष्याकी रचनाकर अपनी तीव्र प्रतिभा आर दिव्य विज्ञानस समस्त ससारका चकित कर दिया। उनके भाष्याकी उत्कृष्टता दिखानक लिय परवर्ती विद्वानान अनेक भाष्यात्कपदीपिका व्याख्याएँ तथा उपव्याख्याएँ लिखीं। शक्तिकी उपासनापर 'सौन्दर्यलहरी' नृसिह-उपासनापर 'लक्ष्मी-नृसिह-स्तोत्र' तथा इसी प्रकार शिव, विष्णु, कृष्ण गणपति और हनुमान् आदि दवताओंकी उपासनापर भी उनके स्तोत्र अत्यन्त दिव्य एव उत्कृष्ट है।

यद्यपि महर्पि वाल्मीकिन आदिकाव्य श्रीमद्रामायणकी रचनाकर अनुपम कार्य किया, जिसकी कोई तुलना सम्भव नहा है पर आचायक 'श्रीरामभुजगप्रयातस्तात्र'का देखकर भी यही प्रतात हाता है कि केवल २९ श्लाकाम ही इन्हाने भगवान् श्रीरामक प्रति जा अनन्यनिष्ठा विशुद्ध भक्ति और आत्मपरायणता दिखलायी ह उससे एसा लगता है कि उन्हाने वाल्मीकिरामायणमहित तत्कालीन प्राप्त विविध रामचरिताका अनक बार बडी श्रद्धा-भक्तिमे स्वाध्याय किया जा श्रीरामभक्तिम सबसे आगे थे। उनक 'श्रीराम-भुजगप्रयातम्तात्र'क प्रत्येक श्लाकस एसा प्रतीत होता है कि व अहर्निश राम-नामका जप करते श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करत अत्यन्त नम्रतापूर्वक भगवान् रामकी स्तुति करते आर सदा ही अपने आराध्यदवकी नवधाभक्तिम लवलीन रहत थ।

इस स्तुतिम उनक २९ श्लोक हैं पर यह पता नही चलता कि इनम कान-सा पद सर्वोत्तम है। इस स्तोत्रम आचार्यन अपना रामनिष्ठा राम-प्रमका इतने मार्मिक ढगसे वर्णित किया ह कि इस बार-बार पढनेसे मन नहीं हटता। साथ ही पाठकको भी श्रीरामक प्रति भक्ति बढन लगती है। इस स्तात्रके किसी एक मात्र श्लाकक चिन्तन-मननम पाठकाको अपार लाभ ता हाता हा है साथ ही भगवत्पादकी परमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति एव उनक अद्वितीय वेदुष्यका सम्पूर्ण चरित्राङ्कन हो जाता है। स्तुति करते हुए आचार्य शकर भगवत्पाद कहते हैं—

> असीतासमेतैरकोदण्डभूषै-
> रसौमित्रिवन्द्यरचण्डप्रताप ।
> अलङ्केशकालैरसुग्रीवमित्रै-
> ररामाभिधेयैरल दैवतर्न ॥

अर्थात् सीताम समन्वित कादण्ड-धनुपस विभूषित लक्ष्मणजीक द्वारा अभिवन्दित प्रचण्ड प्रतापस समन्वित लङ्केश रावणक लिये काल-स्वरूप सुग्रीवक परम मित्र आर श्रीराम-नामसे सुशाभित परमदेवत भगवान् श्रीरामका छोडकर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है।

इसम परम भक्त श्रीशकराचार्यजीकी काव्यकला वद-शास्त्राका ज्ञान नित्य अद्वैतनिष्ठाके साथ आत्यन्तिक विनय नम्रता निरभिमानता हदयकी स्वच्छता, निमलता पवित्रता भावाकी कामलता ध्यानकी परिपक्वता श्रद्धा-भक्तिका उद्रक और भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्तिनिष्ठा भी सूर्यलोककी भाँति सुस्पष्टरूपसे परिलक्षित—प्रकाशित हाती हैं। इसमे पूरे रामचरितका भी आद्योपान्त निबन्धन हो गया है। वैसे ता इसका प्रत्यक श्लाक अप्रतिम महिमामय है आर बार-बार पठन-मननके बाद भी इसकी नवीनता ओर रमणीयता तथा आकर्पण आर अधिक बढत जाते हैं। पर जिन श्लाकाके अन्तिम चरणाम आवर्तन दीखता ह, व ता आर भी रमणीय लगते हे कितु जिनके अन्तम 'अरामाभिधेयैरल दवतैर्न' यह पद आवृत होता है उसमे उनक हृदयकी राम-भक्ति इस प्रकार उद्वेलित हाती है कि जो किसी भी नीरस पाठकके मनको भी झकझार देगी और दृढ भक्तिके प्रभावस उस रामके सम्मुख लाकर खडा कर देगी। छन्द एव पदबन्ध यद्यपि अत्यन्त सरल हैं पर उनक भाव इतने गम्भीर योग-वैराग्य भक्तियुक्त चमत्कारसे परिपूर्ण हैं कि

जा अत्यन्त सामान्य व्यक्तिको भी उत्कृष्ट भगवद्भक्त बनानेके लिये सक्षम है।

भगवत्पाद आद्यशकराचार्यका यह दिव्य अलाकिक भगवल्लीला-चिन्तन समस्त साधको-भक्ताके लिय परब्रह्मसे परमैक्य स्थापित करानेवाला ह ओर निरन्तर मननीय भी। अत साक्षात् शिवावतार धर्मध्वज आद्य भगवत्पाद सदैव विश्ववन्द्य हैं ध्यय हैं तथा उनका भगवल्लीला-चिन्तन अनुपमय है।

जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-लीलाओका स्मरणकर अभिभूत हो उठे

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान्‌की लीला अपरम्पार हे। भगवान् अपनी दिव्य लीलासे मानवको ही नहीं देवताओ तथा नारदजी-जैसे ब्रह्मर्षिको भी चकित कर दते थ।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णक परम आश्रित थे। उन्हाने भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाआके माध्यमस समय-समयपर उनकी कृपाकी अनुभूति का थी।

एक समयकी बात ह—जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके दशनाक लिये व्याकुल हा उठे तो व द्वारका पहुँचे। द्वारकासे लाटनपर धर्मराज युधिष्ठिरने उनस भगवान् श्रीकृष्णकी कुशलताका समाचार पूछा। अर्जुनक मान हो जानपर युधिष्ठिरको महान् अशुभकी आशका हा गयी। उन्ह त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदजीकी भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वे कहन लग कि क्या हमारे भगवान् श्रीकृष्ण लीलालीन हो गये? क्या व गालाक पधार गये?

अब युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाआके चिन्तनम निमग्न हो उठे। वे कहने लग—'साक्षात् सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने हम तथा हमार परिवारका ही अपनी दिव्य लालाआस आह्लादित नहा किया अपितु उन्हाने न्याय और धर्मकी रक्षाक लिय महाभारतके युद्धमे हमारा नेतृत्व भी किया। व ता हमारे प्राण थ। श्रीकृष्णरूपी प्राण जब इस ससाररूपी दहसे निकल गये ता यह ससार ही हमार लिय निस्सार हो उठा है। उनकी लालाआका दर्शन किय बिना अब हम इस ससारम रहकर क्या करग?'

अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्णक लीलाआके माध्यमस किय गय उपकाराका स्मरणकर कहन लगे—'जब हम द्रौपदाक स्वयवरम गये तब वहाँ द्रुपदकी बहुत ही कठिन प्रतिज्ञा सुनी। हम भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके पावन स्मरणसे ही ऊपर घूमत हुए चक्रके बीचसे बाणद्वारा मछलीकी आँखका नीच जलम परछाइकी आर लक्ष्य करक बेध दने-जेस दुष्कर कायम सफलता मिली। उनकी इस कृपा-लीलाक कारण ही हम द्रौपदीका वरण कर सके।

अर्जुनन प्रभुका कृपा-लीलासे अभिभूत होकर पुन कहा कि एक बार हम तथा भगवान् श्रीकृष्ण खाण्डव वनम बठ थे कि अग्निदेवताक दर्शन हुए। अग्निदवने भगवान् श्रीकृष्णस प्रार्थना करत हुए कहा कि 'प्रभो! हम अजीर्ण हा गया है अत यदि आप आज्ञा द ता हम इस वनकी वनस्पतिका औषधि-रूपम भक्षण कर ल।' भगवान्‌न आज्ञा द दी। अब अग्निदेव कहने लगे कि 'महाराज इस खाण्डव वनम इन्द्रका मित्र तक्षक रहता हे। इन्द्र उसकी रक्षाक लिये सदा तत्पर रहत है। जस ही हम वनम दाह करग वैसे ही इन्द्रदव अपन मित्र तक्षककी रक्षाक लिय जल-वृष्टि कर हमारा सारा परिश्रम निष्फल कर दग।' भगवान् श्रीकृष्णके सकतपर मने तीराकी वषा कर खाण्डव वनके ऊपर तबू वितान-सा तान दिया। जस ही अग्निदवने दाह किया इन्द्रदवन वषा शुरू कर दा किंतु भगवान् श्रीकृष्णकी लालाक कारण वर्षा वनतक पहुँच ही नहा सका आर अग्निदवका आषधि प्राप्त हा गयी।

अर्जुनन पुन भगवान्‌का कृपा-लीलाआस पूर्ण एक घटनाका वणन करत हुए कहा—जिस समय हम वनवासम थ दुवासा ऋषि हमार पास शिष्याक साथ आय और भाजनका इच्छा प्रकट कर शिष्यासहित स्नान करन चल गय। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण भा वहाँ आ गय

और द्रौपदीसे बोले—'हम बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।' द्रौपदी पहलेसे ही चिन्तातुर थी अब कृष्णको भोजन देनेकी चिन्ताने उसकी व्याकुलता और बढ़ा दी। वह कहने लगी—'महाराज सारा भोजन समाप्त हो गया है, अब कुछ भी शेष नहीं है।' भगवान्ने कहा—'हम अपने भोजनका पात्र देखने दो कहीं कुछ बचा होगा उसीसे हमारी तृप्ति हो जायगी।' यह कहकर जब भगवान्ने सूर्य-प्रदत्त उस दिव्य अक्षय पात्रमे देखा तो उसमे उन्हे एक शाकका पत्ता दिखायी पड़ा। वे बड़े प्रमसे उस पत्तेका रसास्वादन करने लगे। उसका इतना तीव्र प्रभाव हुआ कि दुर्वासा अपने सभी शिष्योसमेत बिना भोजन किये ही तृप्त हो गये। सबके पेट फूल गये और भोजनकी किसीको इच्छा ही नहीं हुई।

इसी प्रकार भगवान्ने हमारी सदा रक्षा की। अब हम सब निराधार हो गये व कृष्ण हमे त्यागकर चले गये। युद्धके समय कौरवोकी अनन्त सेनामे अपने सगे-सम्बन्धियोको देखकर जब हम चकित हो गये थे, तब भी भगवान्ने ज्ञानोपदेशद्वारा अर्जुनका मोह दूर किया।

उर्वशीके प्रसगमे भी जो हमे विजय मिली, वह भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रताप था। कीचकने द्रोपदीके प्रति जो दुर्व्यवहार किया और मेरे भाई भीमद्वारा मारा गया इसमे भी भगवत्कृपा ही मुख्य कारण है। उत्तरकुमारको कौरवोके प्रति विजय प्राप्त करानेमे मेरा उद्योग कुछ अधिक नहीं था। यह सब भगवत्कृपाका ही परिणाम था।

इस प्रकार अर्जुन कोटिश भगवत्कृपा-लीलासे अभिभूत होते हुए उन्हीं विश्वरूप लीलाधारीके चिन्तन-मननमे तन्मय हो गये, मानो उन्होने परमात्मप्रभुके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया हो।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

रामावतारका महत्त्व

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी)

अघटन-घटना-पटीयसी अतर्क्य-नाटक-नटी ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोमेसे एक ब्रह्माण्डके मर्त्यलोकमे कर्म करनेकी स्वाधीनता प्राप्त करके मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात् धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं तब धर्मकी ग्लानि होने लगती है और अधर्मका अभ्युत्थान होने लगता है। ऐसी अवस्थामे सत्पुरुषोकी रक्षा पापियोका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवदवतारकी अथवा अन्य शब्दोमे जगज्जननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है। भगवान् और भगवतीमे अभेद है। मायोपहित चैतन्य भगवान् और ब्रह्ममयी जगदम्बा भगवती हैं। अपने बनाये हुए जगत्मे कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोके कार्योसे जब असामञ्जस्य उत्पन्न होता है तब उसे दूर करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमे जगदम्बाका प्रादुर्भाव ही भगवदवतार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराकार है जगदम्बाके आश्रयके बिना साकार-मूर्तिमे भगवदाविर्भाव असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगदम्बाका ही है। चेतनके आश्रयके बिना माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। इसी कारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमे करके शास्त्रोमे भगवान्का जो माहात्म्य-वर्णन किया गया है वह युक्तियुक्त ही है। जगदम्बाके ब्रह्ममयी नाममे इन दोनो भावोका समावेश हो जाता है। शक्ति-उपासक जो भगवदवतारोके साथ काली तारा आदि शक्तियोका सम्बन्ध बतलाते हैं उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता है। हमारे शास्त्रोमे कहीं मतभेद नहीं है जो मतभेद प्रतीत होता है वह दार्शनिक ज्ञानके अभावका ही कुफल है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस लेखमे श्रीरामके गुणानुवाद-रूपसे हम उन महत्त्वोका किंचित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेगे।

आदर्श सामने होनेमे मनुष्योकी शिक्षामे अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सत्-आदर्शोका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योकी सत्-शिक्षाके

लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला तथा विद्याभ्यास अतुलनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरु-भक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी जिसके प्रतापसे वे सब विद्याओंमें निपुण हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुश्रूषासे ही वे 'बला' और 'अतिबला' विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र-शस्त्रकी विद्यामें पारंगत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारण ही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-संकटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा स्त्रीवधरूप ताड़का-वधके रूपसे प्राप्तकर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। क्षत्रिय बालकोंके लिये बालकपनसे ही निर्भीकता वीरता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृतिका होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर वीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देने आदिका कार्य करके बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसी प्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आश्रमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-चक्रसे छूटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब कर्मोंको करते हुए कर्म-त्यागकी प्रवृत्तिकी आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेहराज जनक हैं।

जनकपुरकी फुलवारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके दर्शन हुए थे उस समय श्रीरामने कहा था कि 'मैंने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, फिर सीतापर दृष्टि पड़ते ही मेरा मन क्यों आकर्षित हुआ?' इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने 'मातृवत् परदारेषु'का अभ्यास बालकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यको मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया अपितु वनवासका कठिन व्रत-पालन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यासे कहा था कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आज्ञाओंके पालन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।' ऐसे धर्म-संकटके समय अपने कर्तव्यका निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने क्षेत्रकी अपेक्षा बीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है, क्योंकि पुत्र-संतानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श भ्रातृ-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ दिखलाया है वह एक अद्भुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श भ्रातृ-प्रेम अक्षुण्ण रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्तव्य है वह सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। वनवासमें जाते समय सब प्रकारकी वनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखलाया था और वनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया शूर्पणखाके कान-नाक लक्ष्मणसे कटवाये ससैन्य खरदूषण-त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विध्वंस किया। आदर्श गृहस्थधर्मको कार्यतः निरूपण करनेके लिये लंकामें सीताकी अग्नि-परीक्षा ली और आदर्श प्रजावत्सलता जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है उसको संसारमें प्रचार करनेके लिये ही श्रीरामने सीताको अयोध्यामें परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय

श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

चित्रकूटम भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियाकी सभाक एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधमका आदर्श प्रतिपादन किया ओर उसके अनुसार कार्य किया वह एक अपूर्व दृश्य था। एस धर्मसकटके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदश नरपतिका ही कार्य था जिसका श्रीरामने अद्भुत रीतिसे निभाया।

पञ्चवटीम सीताको रावणस छुडानेकी चेष्टा करत हुए मृत दशरथक मित्र जटायुका दाह-सस्कार श्रीरामने स्वय किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वका अधिक उज्ज्वल बनानेवाला ह। प्रत्येक मनुष्यका महान्-से-महान् हानेपर भी एसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये इससे उसका महत्त्व ही बढता ह।

ऋष्यमूक-पर्वतपर सुग्रीवसे सख्य करके श्रीरामने अपन सख्य-भावको अन्तिम समयतक केसा निभाया वह ता एक दिव्य दृश्य हे। श्रीराम सुग्रीवके प्रेमम उन्मत्त नही थ। व स्वय भी मैत्री-धर्मका पालन करत थे आर सुग्रावसे भी मैत्री-धर्म-पालन करानमे त्रुटि नही करते थ। सीताकी खबर लानेक आयोजन करनम जब सुग्रीवन कुछ विलम्ब किया तब लक्ष्मणको उसके पास भेजकर स्वय उन्हान कहलवाया था—

न स सकुचित पन्था येन वाली हतो गत ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगा ॥

'ह सुग्रीव। वाली मार जानपर जिस रास्तसे गया है वह आज भी बद नही हुआ ह। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डट रहा। वालीके मार्गका अनुसरण न करो।'

समुद्र-तटपर विभीषणक आनपर राजधर्म ओर युद्धधर्मके वशवर्ती हाकर किसीन भी उसका आश्रय दनकी सम्मति नहीं दी परतु श्रीरामन शत्रुका भ्राता होनपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध व्रत बतलात हुए उसका आश्रय दकर शरणागत-वत्सलताका पराकाष्ठा बतला दी था कि अचानक आकर जा मर शरण हाता ह आर 'में आपका ही हूँ' एसा कहता है उस मैं प्राणिमात्रस निभय कर दता हूँ यह मरा व्रत है।

अनेक धर्मोका सकट उपस्थित हानपर ठीक-ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामक चरित्रमे कही भी उस स्वरूपस उनकी च्युति नही हुई है। रामायणम पद-पदपर यह दृश्य प्रत्यक विचारवान् व्यक्ति देख सकता ह।

मानव-चरित्रका बतलानक उपलक्ष्यसे श्रीरामक चरित्रम कई जगह अधीरता पायी जाती है जस सीताक विरहम राना आदि, परतु वास्तवम वह अधीरता नही है, क्याकि उस अधीरतासे उन्हाने कोई अधयका कार्य नहा किया था। इससे मनुष्याको शिक्षा लेनी चाहिय कि जैसे भी कष्टका समय आय अन्तर्धृतिका कभी न छाड। वह अन्तर्धृति ही धर्मका निर्णय कर लगी।

वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डम कथा ह कि एक दिन श्रीराम किसीस एकान्तम बातचीत कर रह थे। कोइ आय नहा इसक लिय लक्ष्मणको पहरदारक रूपम खडा कर दिया था ओर कहा था कि जबतक मरी आज्ञा न हा काई अदर न आय, यदि आया ता दण्ड दिया जायगा। इसी बीचम दुवासाने आकर लक्ष्मणस कहा कि 'अदर जाकर श्रीरामका मर आनकी सूचना द दा।' लक्ष्मणन अपन दण्डकी परवा न करक दुर्वासाक शापस राज्यका बचानेक लिय श्रीरामका उनक आनेकी सूचना दा। उसन साचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशष भयानक नहीं हागी। श्रीरामन आज्ञा उल्लघन करनक अपराधम लक्ष्मणको अयाध्यासे चले जानको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्या न हो अपराध करनपर वह दण्डनीय हाता है। राजधमके सामने प्राणप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकस श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपालन सिद्ध हाता है।

इस लखम श्रीरामक साधारण व्यवहाराकी ही समालाचना की गया ह। उनका अवतारविषयक महत्ताआका नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा विचारवान् व्यक्ति समझ सकग कि श्रीरामावतारकी महत्ता अतुलनीय है आर उनस मनुष्यत्वका शिक्षा बहुत प्रमाणाम मिल सकता है।

श्रीरासलीलारहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्राचीन आर्षग्रन्थाम श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त देदीप्यमान उज्ज्वल ग्रन्थरत्न है। इसके दशम और एकादश स्कन्धाम परमानन्दघन लीला-पुरपोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्रकी दिव्यातिदिव्य लीलाआका वर्णन है। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं। उनकी कोटि-काटि कन्दप-कमनीय मनोहर मूर्ति भावुक भक्ताके लिये जैसी-जैसी मनोमोहिनी है वैसी ही उनकी लीलाएँ भी हैं। यो तो भगवान्‌की सभी लीलाएँ लोकोत्तर आनन्दातिरकका सञ्चार करनवाली हैं, परतु उनकी व्रजलीलाएँ तो महाभाग भक्ता एव कविपुङ्गवाका सर्वस्व ही हैं। उनम भी, जिसका आविर्भाव एकमात्र रसाभिव्यक्तिके लिये ही हुआ था वह महारास तो मानो सर्वथा माधुर्यका ही विलास था। प्रभुकी रासक्रीडा जैसी मधुर है वैसी ही रहस्यमयी भी है। उसके भीतर जा गुह्यातिगुह्य रहस्य निहित है वह आपातत दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। वह इतना गूढ है कि उसमे जितना प्रवेश किया जाता है, उतना ही अधिकाधिक दुरवगाह्य प्रतीत होता है। हम यथामति उसका विचार करनेका प्रयत्न करते है।

इस रासलीलाका वर्णन श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके अध्याय उनतीससे तैंतीसतक है। ये पाँच अध्याय 'श्रीरासपञ्चाध्यायी' क नामस सुप्रसिद्ध ह। य श्रीमद्भागवत-रूप कलेवरक मानो पाँच प्राण हैं अथवा यदि इन्हे श्रीमद्भागवतका हृदय कहा जाय तो भी अयुक्त न हागा।

वस्तुत श्रीमद्भागवत कोई साधारण ग्रन्थ नहा है। श्रीशुकदेवजाका तो मिलना ही बहुत दुर्लभ था, फिर जिस ग्रन्थका वे वर्णन कर उसका महत्त्व क्या कुछ साधारण हो सकता है ? जिस समय शानकादि महर्पियाने यह सुना कि इस ग्रन्थका वर्णन श्रीशुकदेवजीन किया है तो वे आश्चर्यचकित हो गये और बाले—

'तस्य पुत्रो महायागी समदृङ् निर्विकल्पक ।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढा मूढ इवेयत॥'

'वे व्यासनन्दन ता महायागी, समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थ। व ता प्रसन-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे। व किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानम प्रवृत्त हा गये ?'

भला जो गादोहन-वलासे अधिक कहीं खडे नहीं होते थे उन श्रीशुकदेवजीने किस प्रकार श्रीमद्भागवत सुनायी ? एसी शका हानेपर श्रीसूतजीने कहा यह महाराज परीक्षित्‌का साभाग्य ही था।

'स गोदोहनमात्र हि गृहेषु गृहमेधिनाम्।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम्॥'

यहाँ एक दूसरी शका भी हो सकती है। महाभारतके कथनानुसार श्रीशुकदेवजी अपने तपक प्रभावस ब्रह्मभावापन्न हा गये थे। उन्ह बाह्य प्रपञ्चका अनुसधान भी नहीं रहा था। फिर इस महासहिताके स्वाध्यायम उनकी किस प्रकार प्रवृत्ति हुई ?

इसका उत्तर श्रीसूतजी महाराजने इस प्रकार दिया है—

'हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणि ।
अध्यगान्महदाख्यान नित्य विष्णुजनप्रिय ॥'

सूतजी कहते हैं—ठीक है, यद्यपि श्रीशुकदेवजी ऐसे ही निर्विशेष परब्रह्मम परिनिष्ठित थे शास्तृ शिष्य आदि सम्बन्धाम उनकी प्रवृत्ति होनी सर्वथा असम्भव थी तथापि उन्ह एक व्यसन था। उससे आकृष्ट होकर ही उन्हाने इस महान् आख्यानका अध्ययन किया था। व्यास-सूत भगवान् श्रीशुकदवजीकी बुद्धि श्रीहरिके गुणासे आक्षिप्त थी वह हरिगुणगानकी मनोमाहिनी माधुरीमे फँसी हुई था। 'हरते इति हरि ' जा बड-बड योगीन्द्र-मुनीन्द्राके मनको भी हर लेते हें, उन दिव्य मङ्गलमूर्ति भगवान्‌का नाम ही 'श्रीहरि' है। भगवान्‌क परम दिव्य नाम गुण चरित्र एव स्वरूप ऐसे ही मधुर हें। उन्हींक गुणान श्रीशुकदेवजीके शुद्ध ब्रह्माकार-वृत्तिसम्पन्न मनको भी हठात् अपनी आर आकर्पित कर लिया था। इसीसे उन्हाने इस वृहत् सहिताका स्वाध्याय किया था।

अहा! उन श्रीव्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका कहाँ-तक वर्णन किया जाय ? यद्यपि निरन्तर आत्मसुखम विश्रान्त रहनक कारण उनकी मनोवृत्ति किसी दूसरी आर नहीं जाती थी, उनक हृदयस द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हा गया था तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाआन उन्ह अपना ओर आकृष्ट कर ही लिया। इसीस उन्हान भगवल्लीलाक निगूढतम रहस्यभूत इस महाग्रन्थका आविर्भाव किया।

यद्यपि ऐसे महानुभावोंकी प्रवृत्ति ग्रन्थाध्ययनमें नहीं हुआ करती, तथापि भगवल्लीलाओंसे आकृष्टचित्त होनेके कारण ही उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया था—

'परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥'

इस सम्बन्धमें एक इतिहास भी प्रसिद्ध है। एक बार श्रीशुकदेवजी संसारसे उपरत होकर वनमें चले गये और वहाँ ध्यानाभ्यासमें तत्पर होकर समाधिस्थ हो गये। उनकी बुद्धिवृत्ति निखिल दृश्य-प्रपञ्चका निरासकर अशेष-विशेष-शून्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परब्रह्ममें लीन हो गयी और उन्हें बाह्य जगत्का कुछ भी भान न रहा। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आ निकले। उन्होंने उन बालयोगीन्द्रको देखकर कुतूहलवश श्रीव्यासजीसे जाकर कहा कि 'भगवन्! हमने वनमें एक परम सुन्दर बालकको देखा है। वह बहुत दिनोंसे पाषाण-प्रतिमाके समान निश्चल-भावसे एक ही आसनसे बैठा हुआ है। उसे बाह्य जगत्का कुछ भी भान होता नहीं जान पड़ता।'

तब भगवान् व्यासदेवने सारी परिस्थिति समझकर उन्हें एक श्लोक कण्ठ कराया और कहा कि तुम लोग उस बालयोगीके पास जाकर इसे सुमधुर ध्वनिसे गाया करो। तदनन्तर शिष्यगण वनमें जाकर इस श्लोकका गान करने लगे—

'बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

शिष्योंके निरन्तर गान करनेसे भगवान् शुकदेवजीके अन्तःकरणमें इस श्लोकके अर्थकी स्फूर्ति हुई। यह नियम है कि जितना ही चित्त शुद्ध होगा उतना ही शीघ्रतर उसमें भगवत्तत्त्वका अनुभव होगा। इसीसे किन्हीं-किन्हीं उत्तम अधिकारियोंको, जिनकी उपासना पूर्ण हो चुकी होती है, महावाक्यका श्रवण करते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो जाता है।

उस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर भगवद्विग्रहकी अनुपम रूपमाधुरीने उनके चित्तको क्षुभित कर दिया। उनकी समाधि टूट गयी और उन्होंने श्रीश्यामसुन्दरकी स्वरूपमाधुरीका चिन्तन करते हुए इस श्लोकको कई बार उन बालकोंसे कहलाया और कितनी ही बार आनन्दविभोर होकर स्वयं भी कहा। फिर वे भगवान् व्यासदेवके पास जाकर [illegible] सुनाने। [illegible] कि इस [illegible] भी [illegible]

आया क्यों नहीं! जब उन्होंने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका अन्वेषण किया तब उन्हें मालूम हुआ कि उसे यह संदेह है कि जिसका सौन्दर्यमाधुर्य ऐसा विलक्षण है वह मेरे-जैसे अकिञ्चन पुरुषसे स्नेह क्यों करेगा? तब व्यासजीने इस शङ्काकी निवृत्ति करनेके लिये भगवान्की दयालुताको प्रकट करनेवाला यह श्लोक उन बालकोंको पढ़ाया और पूर्ववत् उन्हें श्रीशुकदेवजीके पास जाकर इसे गानेका आदेश किया।

'अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥'

(श्रीमद्भा० ३।२।२३)

—इस श्लोकको सुनकर श्रीशुकदेवजीको आश्वासन हुआ और उन्होंने बालकोंसे पूछा कि तुमने यह श्लोक कहाँसे याद किया है? बालकोंने कहा—'हमारे गुरुदेव श्रीव्यास भगवान्ने एक अष्टादश सहस्र श्लोकोंकी महासंहिता रची है। यह श्लोक उसीका है।'

यह सुनकर वे भगवान् व्यासदेवके पास आये और उनसे उस महाग्रन्थका अध्ययन किया। अध्ययन करनेमें एक दूसरा हेतु और भी था। 'नित्यं विष्णुजनप्रियः'—भगवान् शुकदेवजीको सर्वदा विष्णुभक्तोंका संग प्रिय था। श्रीमद्भागवत वैष्णवोंका परमधन है। अतः इसके कारण उन्हें सदा ही वैष्णवोंका सहवास प्राप्त होता रहेगा, इस लोभसे भी उन्होंने उसका अध्ययन किया।

इससे शौनकजीके प्रश्नका उत्तर हो जाता है। वे हरिगुणाभिक्षिप्तमति थे, इसीलिये आत्माराम होनेपर भी उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया। इस भागवत-शास्त्रमें भगवान्का दिव्यातिदिव्य रहस्य निहित है, अतः जिस प्रकार वशीकरणमन्त्रसे नागोंको अपने अधीन कर लिया जाता है उसी प्रकार इस परम मन्त्रके कारण भक्तजन स्वयं ही आकृष्ट हो जाते हैं। इसके सिवा भगवान्के गुण, चरित्र और स्वरूपकी माधुरी स्वयं भी ऐसी मोहिनी है कि बड़े-बड़े सिद्ध मुनीन्द्र भी उनके कीर्तनमें प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भाष्यकार भगवान् शङ्कराचार्यने नृसिंहतापिनीयोपनिषद्के भाष्यमें कहा है—

मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।

अर्थात् मुक्तजन भी लीलासे देह धारणकर भगवान्का गुणगान किया करते हैं। यहाँ [illegible] विषयमें भी [illegible] जा सकता है।

[illegible]

उस समय बहुतसे ऋषि, मुनि सिद्ध एव योगीन्द्रगण उनके पास आये। उन सबसे उन्होंने यही प्रश्न किया कि 'भगवन्! मैं मरणासन्न हूँ अत मुमूर्षु पुरुषके लिये जो एकमात्र कर्तव्य हो वह मुझे बतलाइये।' इस विषयमें उस मुनीन्द्र-मण्डलीमें विचार हो रहा था भिन्न-भिन्न महानुभाव अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट कर रहे थे, अभी कुछ निश्चय नहीं हो पाया था कि इतनेहीमें शुकदेवजी आ गये। उनसे भी यही प्रश्न हुआ। राजाने पूछा—'भगवन्! अब मेरी मृत्युमें केवल सात दिन शेष हैं, अत कोई ऐसा कृत्य बतलाइये जिसके करनेसे मैं धीरोंकी प्राप्तव्य गतिको प्राप्त कर सकूँ।'

तब श्रीशुकदेवजी बोले—'राजन्! अन्यान्य आत्मज्ञ लोगोंके लिये तो सहस्रों साधन हैं, परंतु भक्तोंके लिये तो एकमात्र श्रीहरिश्रवण ही परमावलम्ब है।' इसके तीन भेद हैं—श्रीहरिका स्वरूपश्रवण गुणकीर्तन और नामकीर्तन। उपनिषदादिसे भगवान्‌का स्वरूपकीर्तन होता है इतिहास-पुराणादिमें रूप-गुण-कीर्तन होता है और विष्णुसहस्र-नामादिसे नाम-कीर्तन होता है।

आचार्योंका ऐसा मत है कि सम्पूर्ण भागवतमें दशम स्कन्ध सार है, उसका भी सारातिसार रासपञ्चाध्यायी है। इस रासपञ्चाध्यायीके अनेक प्रकारके अर्थ किये जाते हैं। आचार्यगण जो एक ही वाक्यकी अनेक प्रकारकी व्याख्या किया करते हैं उसमें उनका यही तात्पर्य होता है कि किसी-न-किसी प्रकार जीवोंका भगवान्‌में प्रेम हो। देवर्षि नारदको संक्षेपमें श्रीमद्भागवतका उपदेश करके उनसे भी ब्रह्माजीने यही कहा था—

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय॥'

श्रीमद्भागवतमें यद्यपि शुद्ध निर्विशेष सच्चिदानन्दघन तत्त्व ही वर्णित है तथापि यह आग्रह भी उचित नहीं है कि उसमें द्वैतका वर्णन है ही नहीं और न निर्गुणवादियोंका यह कथन ही उचित है कि उसमें सगुणवाद नहीं है। वास्तवमें भागवतमें प्रेम-विघातक वेदान्त नहीं है। इसमें तो भक्ति विरक्ति और भगवत्प्रबोध—इन तीनोंका ही वर्णन है।

यद्यपि यह समग्र दशम स्कन्ध आश्रयरूप ही है तथापि लीलाविशेषके लिये इसमें भी अन्तरङ्ग-बहिरङ्गकी कल्पना की गयी है। जिनका भगवान्‌में जितना ही अधिक संसर्ग है वे उतने ही अधिक अन्तरङ्ग हैं। इसका वर्णन 'उज्ज्वल-नीलमणि' नामक ग्रन्थमें बहुत स्पष्टतया किया गया है। मथुरावासियोंकी अपेक्षा गोकुल-निवासी अधिक अन्तरङ्ग हैं, उनसे भी श्रीदामादि नित्यसखा अन्तरङ्ग हैं उनकी अपेक्षा गोपाङ्गनाएँ अन्तरङ्ग हैं गोपाङ्गनाओंमें ललिता-विशाखा आदि प्रधान यूथेश्वरियाँ अधिक अन्तरङ्ग हैं और उन सभीकी अपेक्षा श्रीवृषभानुनन्दिनी अन्तरतम हैं। क्योंकि इस क्रमसे रासलीलामें सर्वान्तरतम व्रजाङ्गनाओंका ही प्रसंग है यह सर्वान्तरतम लीला है।

इससे पूर्व भगवान्‌ने गोपोंको अपना स्वरूप-साक्षात्कार कराया था। यद्यपि कालियदमन गोवर्धनधारण अघासुरादिके वध तथा अन्य अनेक अतिमानुष-लीलाओंके कारण गोपगण यह समझ चुके थे कि कृष्ण कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। फिर वरुणलोकमें उनका ऐश्वर्य देखकर तो गोपोंको यह निश्चय हो ही गया था कि ये साक्षात् भगवान् हैं, तथापि अन्तमें भगवान्‌ने अपने योगबलसे उन्हें अपने निर्विशेष स्वरूपका साक्षात्कार कराया और फिर वैकुण्ठलोकमें ले जाकर अपने सगुण स्वरूपका भी दर्शन कराया। इस प्रकार उन्होंने गोपोंको रासदर्शनका अधिकारी बनाया। यह अधिकार बिना स्वरूप-साक्षात्कारके प्राप्त नहीं होता। आजकल व्रजमें इसे छठी भावना कहते हैं—*छठी भावना रास की।*' पहली पाँच भावनाओंको क्रमश पार कर लेनेपर ही रासदर्शनका अधिकार प्राप्त होता है। पाँचवीं भावनामें देह-सुधि भूल जाता है—*'पाँचे भूले देह-सुधि'।* अर्थात् इस भावनामें ब्रह्मस्थिति हो ही जाती है। ऐसी स्थिति हुए बिना पुरुष रासदर्शनका अधिकारी नहीं होता।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ गोपोंको वैकुण्ठधाममें ले जाकर अपने सगुण-स्वरूपका साक्षात्कार करानेकी बात आती है वहाँ उनके प्रत्यावर्तनके विषयमें कोई उल्लेख नहीं है। इससे कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि यह भगवान्‌के नित्यधामकी नित्यलीलाका ही वर्णन है। इस लोकमें यह लीला हुई ही नहीं थी। यदि ऐसी बात हो तब तो भगवान्‌की इस लोकोत्तर लीलाके विषयमें कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि इस लोकमें न होनेके कारण इसमें इस लोकके नियमोंकी रक्षा करना आवश्यक नहीं हो सकता। किंतु यदि भगवान्‌ने इस लोकमें ही यह लीला की हो तब भी उनके—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

इस कथनमें जो विरोध प्रतीत होता है वह ठीक नहीं क्योंकि भगवान्‌के विषयमें ऐसा नियम नहीं है कि वे लोकमर्यादाका अतिक्रमण करते ही न हों। जब उनके अनन्य

भक्त ओर तत्त्वनिष्ठ मुनिजन भी मर्यादातिलघन करत दख गय ह तो साक्षात् भगवान्क विषयम ता कहना हो क्या ह। उनक पादपद्ममकरन्दका सेवन करनेवाल मुनिजनाकी गतिविधि भी सर्वसाधारणक लिय सुबाध नहीं हुआ करती—

'त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषा मुनीना
वर्त्मास्फुट नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्।'

वस्तुस्थिति ता ऐसी हे कि आत्मतत्त्व सभी प्रकारक शुभाशुभ कर्मोस शून्य ह। जब कि उस आत्मतत्त्वका जाननेवाले महापुरुषाकी अविलुप्त महिमा भी कर्मोस न्यूनाधिक नहीं होती ता श्रीकृष्णरूपम अवतीर्ण साक्षात् परमात्मतत्त्वका किसी भी शुभाशुभ कमम किस प्रकार सश्लेष हो सकता ह? अत प्रकृति ओर प्राकृत सब प्रकारक प्रपञ्चस अतीत परमात्मा सब प्रकारकी शृखलाआस शून्य ह। अब हम यह विचार करना ह कि भगवान्क अवतारका प्रधान प्रयाजन क्या हे? भगवान् स्वय कहत हैं—

'परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युग॥

परतु यह बात एसी ह जसे मच्छरका मारनक लिय ताप लगाया जाय। भला जो भगवान् सर्वज्ञ आर सर्वशक्तिमान् ह जिनक सकल्पमात्रम सम्पूर्ण प्रपञ्च बन गया हे तथा जिनक विषयम यह कहा जाता हैं—'नि श्वसितमस्य वदा वीक्षितमतस्य पञ्च भूतानि स्मितमेतस्य चराचरम् अस्य च सुप्त महाप्रलय ।'

उन्ह क्या इस तुच्छ कार्यक लिय अवतार लनकी आवश्यकता ह? अत इसका ता काई एसा कारण हाना चाहिय जहाँ भगवान्की सर्वज्ञता आर सर्वशक्तिमत्ता कुण्ठित हो जाती हा और जिसक लिय उन्ह दिव्य-मङ्गल-विग्रह धारण करना अनिवार्य हा जाता हा।

हम इसका उत्तर महारानी कुन्ताक इन शब्दास मिलता हे—

तथा परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियागविधानार्थ कथ पश्यम हि स्त्रिय ॥

कुन्ती कहती हैं—'भगवन्! जा अमलात्मा परमहस मुनि हैं उनका भक्तियागका विधान करनक लिय आपका अवतार हाता है हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैस समझ सकती हैं।'

यहाँ भगवान्क अवतारका प्रयाजन अमलात्मा मुनियाक लिय भक्तियागका विधान करना बतलाया गया ह। जैस कमका स्वरूप द्रव्य आर दवता है उसी प्रकार भक्तिका स्वरूप भजनीय हैं। भजनायक बिना भक्ति नहीं हा सकता। प्रमलक्षणा भक्तिका आलम्बन कोई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हा सकता हे, जा महामुनीश्वर प्रकृति-प्राकृत प्रपञ्चातीत परमतत्त्वमें परिनिष्ठित हैं उनक मनका आकषक भगवान्क सिवा प्राकृत पदार्थोम ता काई नहीं हा सकता। अत इस बातका आवश्यकता हाती ह कि उनक परमाराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एव अनन्त सान्दय-माधुयमयी मङ्गलमूर्तिम अवतीर्ण हाकर उन्ह भजनीय-रूपम अपना स्वरूप समपण कर भक्तियागका सम्पादन कर, क्याकि जा कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवताण हुए बिना सम्पन्न न हा सकता हा जिसक सम्पादनम उनकी सर्वशक्तिमत्ता आर सवज्ञता कुण्ठित हा जाय उसाक लिय उनका अवतार्ण हाना सार्थक है।

जिस समय शुद्ध परब्रह्म अपनी अचिन्त्य लाला-शक्तिस काटि-कामकमनाय महामनाहर श्रीकृष्ण-मूर्तिम प्रादुभूत हाग उस समय उस तत्त्वज्ञका भी उनका वह दिव्य-दशन निर्विशेष ब्रह्मदर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दप्रद प्रतात हागा। जिस प्रकार सूर्यको दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा दखनपर उसम जा विचित्रता प्रतीत हाता ह वह कवल नत्रास दखनपर प्रतीत नहीं हाती उसी प्रकार लीला-शक्त्युपहित सगुण ब्रह्मदर्शनम जो आनन्दानुभव हाता ह वह अशष-विशषशून्य शुद्ध परब्रह्मके साक्षात्कारम भा नहीं हाता। इसाम श्रीरामचन्द्रका दर्शन हानपर तत्त्वज्ञशिरामणि महाराज जनकने कहा था—

इन्हहि बिलाकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
सहज बिरागरूप मनु मारा। थकित होत जिमि चद चकोरा॥

महाराज जनकक इस बरबस ब्रह्मसुखत्याग और रामदर्शनानुरागम क्या कारण था? कवल यहा कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूयका अपन नत्रोस ही दखत थे किंतु इस समय व उसक *लीलाशक्तिरूप दूरवीक्षणापहित स्वरूपका* दर्शन कर रह थे। कवल नेत्रस दीखनवाले आदित्यकी अपेक्षा दूरवीक्षणापहित आदित्यदर्शनम विशपता है ही।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते ह उसकी अपक्षा भगवान्का सगुण दिव्य-मङ्गल-विग्रह अधिक आकर्षक क्या हे। इस विषयम भावुकाका एसा कथन ह कि जिस प्रकार पार्थिवत्वम समानता होनेपर भी पाषाणादिकी अपक्षा हारा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासका अपक्षा उसस बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपक्षा उसीस विकसित भगवान्की दिव्य-मङ्गलमयी मूर्ति कहीं *अधिक माधुर्य-*

सम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड स्वभावसे ही मधुर है किंतु यदि उसमें कोई फल लग जाय तो उसकी मधुरिमाका क्या कहना है? मलयाचलोत्पन्न चन्दनके वृक्षमें यदि कोई पुष्प आ जाय तो वह कैसा सौरभसम्पन्न होगा? इसी प्रकार भगवान्‌की सगुण मूर्तिके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनकी सगुण मूर्तिमें है। कारण, इक्षुदण्डकी मधुरिमा पाषाणादिका मूल्य और चन्दनादिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं। इनमें न्यूनाधिकता हो सकती है परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य-माधुर्य एवं आनन्दादि हैं वे निरतिशय हैं।

जो लोग निर्विशेष परब्रह्मका अपरोक्ष साक्षात्कार कर चुके हैं उन्हें कैवल्य तो ज्ञानसे ही प्राप्त होता है किंतु वे जीवन्मुक्तिकालमें भी भगवान्‌की अचिन्त्य लीलामयी शक्तिके योगसे दिव्य मङ्गलमय विग्रहमें आविर्भूत हुए परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी सौन्दर्य-माधुर्य-सुधाका समास्वादन किया करते हैं। अचिन्त्यानन्द सुधासिन्धु श्रीभगवान्‌के जिस माधुर्यका समास्वादन केवल वृत्ति-शून्य अन्तःकरणसे नहीं किया जा सकता उसे भी तत्त्वज्ञ भावुकगण भगवान्‌की दिव्य लीलाशक्तिकी सहायतासे अनुभव कर लेते हैं।

तत्त्वज्ञगण केवल निर्वृत्तिक अन्तःकरणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके योगसे आविर्भूत हुए भगवान्‌के सगुण स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होती है। इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ मुनियोंको उनका भजनीय स्वरूप समर्पणकर भक्तियोगके द्वारा उन्हें अपने सौन्दर्य-माधुर्यका समास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। उन्हें यदि सगुण साकार ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाय तो भी देहपातके अनन्तर वे कैवल्यपद ही प्राप्त करेंगे किंतु सगुणोपासक अपने इष्टदेवका नित्यधाम प्राप्त करेंगे। इसीसे भक्ति-रसायनादि ग्रन्थोंमें तत्त्वज्ञोंका सगुण-दर्शनसे केवल दृष्ट-फल माना है और उपासकको दृष्ट और अदृष्ट दोनों।

अतः ऊपर जो बतलाया है इससे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मङ्गलमय देह धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरङ्गा है।

गोपाङ्गनाओंको भी भगवद्दर्शनके बिना 'त्रुटिर्युगायते'—एक-एक पल युगके समान हो रहा था। उन्हें संतुष्ट करनेमें भगवान्‌का निर्विशेष रूप असमर्थ था। इसलिये ऐसी अवस्थामें भगवान्‌को मूर्तिमान् होकर अवतीर्ण होना ही पड़ा, क्योंकि उनकी तृप्ति तथा जीवन बिना इसके नहीं हो सकते। भगवान्‌के अवतीर्ण हुए बिना वे कार्य नहीं हो सकते थे, इसी कारण प्रभुका प्रादुर्भाव हुआ।

अब, साथ ही यह भी सोचना चाहिये कि—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

—यह श्लोक भी ठीक ही है। यहाँ 'साधु' शब्दसे गोपाङ्गना-जैसे साधु ही समझने चाहिये जिनका परित्राण भगवान्‌के दर्शनोंके बिना हो ही नहीं सकता था तथा दुष्कृती भी साधारण नहीं बल्कि भगवान्‌के अन्तरङ्ग जय-विजय-जैसे दुष्कृती समझने चाहिये जिनका दुष्कृत भगवान्‌की लीला-विशेषके विकासके ही लिये था, अन्य दुष्कृतियोंको तो उनका दुष्कर्म ही नष्ट कर देगा। इसके सिवा धर्मसंस्थापनसे भी भक्तियोगरूप धर्मकी ही स्थापना समझनी चाहिये जो कि ऐसे भजनीयके बिना नहीं हो सकती।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए भगवान् भाष्यकारादिने भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बतलाया है। इस प्रकार यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है, तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गस्थ साधुओंकी रक्षा और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही। आगेके कथनानुसार भगवान्‌में लोक-शिक्षादि भी देखे ही जाते हैं। भगवान् तो सर्वनियन्ता हैं इसलिये उनका प्रादुर्भाव योगारुरुक्षुओंके लिये भी था और योगारूढोंके लिये भी। योगारुरुक्षुओंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमें प्रवृत्त करना था और योगारूढोंको केवल भगवन्निष्ठामें नियुक्त करना था। अतः भगवान्‌की यह उक्ति उचित ही है—

'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

वस्तुतः भगवान् तो विधि-निषेधातीत हैं। वे केवल लोकशिक्षाके लिये ही शास्त्रीय शृङ्खलाका अवलम्बन करते हैं क्योंकि शास्त्रादि लोगोंको मर्यादापालनमें वैसा परिनिष्ठित नहीं कर सकते जैसा कि उस मर्यादाका पालन करनेवाले महापुरुष कर सकते हैं। अतः शास्त्रके अध्ययनके साथ शास्त्रार्थके
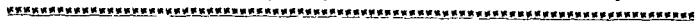
अनुष्ठानमे परिनिष्ठित व्यक्तियोंके सहवासकी भी बहुत आवश्यकता है। अत लोगोंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमे प्रवृत्त करनेके लिये ही भगवान् स्वय भी उनका यथाविधि अनुष्ठान करते हैं—

इसका तात्पर्य यही है कि जो लोग आरुरुक्षु हैं जो ससारसागरसे पार नहीं हुए हैं उनके उपदेशार्थ तो भगवान् लौकिक-वैदिक मर्यादाओंका पालन करते हैं। इसलिये जिन्हे ससाररूप स्वाभाविक मृत्युको पार करना है उन्हे तो मर्यादापालनरूप महौषधका सेवन करना चाहिये। उनके लिये तो भगवान् भी मर्यादापालन करते हैं किंतु जो योगारूढ अमलात्मा परमहस हैं उनके लिये ऐसी कोई विधि नही है उन्हे एकमात्र भगवन्निष्ठामे ही स्थिर करनेके लिये भगवान् मर्यादाका उल्लघन कर देते हैं क्योंकि वे स्वय तो समस्त विरुद्ध धर्मोंके आश्रय ही हैं। उनके लिये मर्यादापालन और मर्यादातिलघन दोनो ही समान हैं।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण 'तत्' पदार्थ हैं और गोपाङ्गनाएँ 'त्वम्' पदार्थ हैं। यदि इन दोनोका परस्पर सश्लेष हो तो क्या वह कामक्रीडा कहा जायगी? स्थूल दृष्टिसे तो अवश्य यह कामक्रीडा-सा मालूम होती है, परतु अन्तरङ्ग दृष्टिसे तो यह जीव और ब्रह्मका अद्भुत सयोग ही है।

श्रीमद्भागवतमे यह कई स्थानोमे देखा जाता है कि गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगमे सतत रहती थी और हर समय उनके दर्शनोके लिये लालायित रहती थी तथा इसी प्रकार भगवान् भी व्रजसुन्दरियोकी विरह-व्यथासे व्याकुल रहते थे। उन दोनोहीको पारस्परिक सयोग बहुत अभीष्ट था। प्रेमका यह स्वभाव है कि प्रेमी परस्पर गाढालिङ्गनके लिये उत्सुक रहा करते हैं। माता अपने सुकुमार शिशुको हृदयसे लगानेमे कितना सुख अनुभव करती है। जो जितना अधिक प्रेमास्पद होता है उसका व्यवधान उतना ही अधिक असह्य होता है।

यहाँ गोपाङ्गनाएँ और भगवान् दोनो ही सच्चिदानन्दस्वरूप थे। अत उनकी लीला प्राकृत है ही नहीं। इसलिये इसमे मर्यादातिलघनका प्रश्न ही नही हो सकता। यह तो वह स्थिति है जिसकी प्राप्तिके लिये सारी मर्यादाओंका पालन किया जाता है।

अत जिस समय भगवान्का प्रादुर्भाव हुआ उस समय उन्होने यही विचार किया कि पहले अवतारके प्रधान प्रयोजनकी ही पूर्ति करनी चाहिये। इसीसे पहले उन्होने अमर्यादित दिव्य लीलाएँ की और पीछे मर्यादित लोक-सग्रहमयी। लोकमे भी यह प्राय देखा जाता है कि उपनयन-सस्कारसे पूर्व उच्छृङ्खल प्रवृत्ति रहती है और उसके पीछे मर्यादानुसार आचरण किया जाता है। यही बात भगवान्के विषयमे भी देखी जाती है। इस प्रकार प्रधान प्रयोजनकी पूर्तिके लिये स्वीकार की हुई भगवान्की उच्छृङ्खलतामे भी एक प्रकारकी सुशृङ्खलता ही है, इस मर्यादातिलघनमे भी विशेष प्रकारका मर्यादापालन ही है।

यद्यपि साधकोंके लिये स्त्रियोंका चिन्तनमात्र भी महान् अनर्थका हेतु होता है तथापि भगवान्ने तो कामजयके लिये ही यह अद्भुत लीला की थी।

टीकाकार श्रीश्रीधरस्वामी लिखते हैं—

'ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डन ॥'

अर्थात् ब्रह्मादि लोकपालोंको जीत लेनेके कारण जो अत्यन्त अभिमानी हो गया था उस कामदेवके दर्पको दलित करनेवाले गोपियोंके रासमण्डलके भूषणस्वरूप श्रीलक्ष्मीपतिकी जय हो। वस्तुत रासक्रीडामे प्रवृत्त होकर भगवान्ने मर्यादाका उल्लघन नहीं किया बल्कि उन्होंने तत्त्वनिष्ठाकी दृढता ही प्रदर्शित की है। अहो! जो साक्षात् शृगाररसकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं उन आकृष्टकारक अनेकविध दिव्य हाव-भाव-कटाक्षोंका सम्प्रयोग होनेपर भी उनका चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। भगवान्की इस स्थितिका श्रीशुकदेवजीने भिन्न-भिन्न शब्दोमे कई जगह वर्णन किया है जैसे—'साक्षान्मन्मथमन्मथ ', 'आत्मन्यवरुद्धसौरत ' 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' इत्यादि।

भगवान् सर्वेश्वर हैं उनकी यह लीला कामजयके लिये ही हुई थी। कामने ब्रह्मादिको जीत लिया था। इससे उसका अभिमान बहुत बढ गया था और अब उसने उन सबके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे भी युद्ध करनेका निश्चय किया। भगवान्ने उसका यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कन्दर्पने भी श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको जानकर विजयकी लालसासे श्रीव्रजाङ्गनाओंके अङ्गरूप काञ्चनमय कामगे दुर्गका आश्रयण किया एव वहाँ प्रधान-प्रधान अवयवोको अपना खास निवासस्थान चुना और अपने मित्र वसन्तकी सहायतासे नाना प्रकारके कुसुमोंके ही धनुष-बाण तथा अस्त्र-शस्त्र लेकर स्वाधीन व्रजाङ्गनाओंके काञ्चनमय अङ्गरूप कामगे दुर्गमे स्थित होकर युद्धकी पूर्ण तैयारी कर ली। इतनेपर भी श्रीकृष्णने उसे दुर्बल ही देखा। यह नियम है कि बडे-बडे योद्धा दुर्बल शत्रुसे युद्ध करना उचित नहीं समझा करते। इसलिये युद्ध करनेसे पूर्व वे उसे सबल कर देते हैं। अपूर्ण

चन्द्रपर राहु भी आक्रमण नहीं करता। जब एक राक्षसकी भी ऐसी नीति है तो सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही ऐसा क्यों न करते? अतः भगवान्ने पहले तो श्रीमहादेवजीके कोपानलसे दग्ध हुए कन्दर्पको पुष्ट किया। वह गोपाङ्गनाओंके हृदयमें स्थित था। उसे वेणुनाद-द्वारा अपनी दिव्य अधर-सुधाका पान कराकर भगवान्ने सबल कर दिया परंतु गोपाङ्गनाओंके हृदयमें तो मन भी रहता है और वह भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त है तथा कामदेव मनोज होनेके कारण उसका पुत्र है। अतः अपने पिताके विरुद्ध वह कोई चेष्टा कैसे कर सकता था और वृद्ध पिताके सामने उससे कोई धृष्टता भी कैसे बन सकती थी? इसलिये उसे निःसंकोच करनेके लिये भगवान्ने वेणुनाद-द्वारा उस मनको अपने पास बुला लिया। अब कामदेव स्वतन्त्र हो गया। गोपाङ्गनाओंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंने उसके अस्त्र-शस्त्र होकर भी सहायता की तथा चन्द्रमा, वसन्त, यमुनापुलिन, निकुञ्ज और मलय-मारुत भी उसके सहकारी हो गये। इस प्रकार पहले सर्वसाधन-सम्पन्न करके फिर उसे परास्त करनेके लिये ही भगवान्ने यह ललित लीला की। इसीसे यहाँ उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ**' कहा गया है।

भगवान्का स्वमाधुर्य ऐसा मोहक था कि जो काम संसारके प्रत्येक प्राणीको मोहित करनेमें समर्थ है, वही जिस समय अपने दल-बल-सहित भगवान्की परम सुन्दर दिव्य मङ्गलमयी मूर्तिके सामने आया तो उनका लावण्य देखकर मानो धूलिमें मिल गया। इसीसे उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ**' कहा गया है। वस्तुतः श्रीकृष्णचन्द्रके पादारविन्दकी नखमणि-चन्द्रिकाका एक रश्मिके माधुर्यका अनुभव करके कन्दर्पका दर्प प्रशान्त हो गया और उसे ऐसी दृढ़ भावना हुई कि मैं लक्षों जन्म कठिन तपस्या करके श्रीव्रजाङ्गनाभावको प्राप्तकर श्रीकृष्णके पादारविन्दकी नखमणिचन्द्रिकाका यथेष्ट सेवन करूँगा, फिर साक्षात् श्रीकृष्ण-रसमें निमग्न व्रजाङ्गनाओंके संनिधानमें कामका क्या प्रभाव रह सकता था? यह भी एक आदर्श है। जिस प्रकार साधकोंके लिये चित्रलिखित स्त्रीको भी न देखना आदर्श है, उसी प्रकार जो बहुत उच्च कोटिके सिद्ध महात्मा हैं उनके लिये मानो यह चेतावनी है कि भाई, तुम अभिमान मत करना, जबतक तुम ऐसी परिस्थितिमें भी अविचलित न रह सको तबतक अपनेको सिद्ध मत मान बैठना। अहा! जिनके नखमणिकी ज्योत्स्नामें भी अनन्तकोटि कन्दर्पोंका दर्प दलित हो जाता है, ऐसे परम सुन्दर व्रजसुन्दरियोंको भी जिन्होंने रमाया उन श्रीहरिके दिव्यातिदिव्य योगका माहात्म्य कहाँतक कहा जा सकता है?

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कामुकोंके लिये तो नर-नारायणका आदर्श भी अनुपयुक्त है। उन्हें तो मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके ही चरणचिह्नोंका अनुसरण करना चाहिये। श्रीनर-नारायणका आदर्श साधकोंके लिये है, उन्हें ऋषभदेवजीके आदर्शका अनुकरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि सर्वकर्म-सन्न्यासका अधिकार सबको नहीं है। उनका आचरण तो परमोत्कृष्ट तत्त्वज्ञोंके लिये ही है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके दिव्यातिदिव्य आचरणोंका तो यदि कोई मनसे भी अनुकरण करेगा तो पतित हो जायगा '**नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः**' क्योंकि वे तो निरतिशय ऐश्वर्यवान् साक्षात् भगवान्की ही अलौकिक लीलाएँ हैं। कोई भी जीव इस स्थितिपर नहीं पहुँच सकता। भला भगवान्के सिवा ऐसा कौन है जिसने सम्पूर्ण जगत्को मोहित करनेवाले कामदेवका मान-मर्दन किया हो! मदनमोहन तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। करना तो दूर, हर किसीको तो इसे सुनना भी नहीं चाहिये, क्योंकि '***छठी भावना रास की***', इसे सुनने-देखनेका अधिकार तो देहाध्याससे ऊपर उठे बिना प्राप्त ही नहीं होता।

भगवान्ने जो कहा है कि—

'**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।**
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

उसका तात्पर्य यह नहीं है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके सभी आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये, बल्कि जो अपनी योग्यताके अनुसार हो उसीका आचरण करना उचित है। भगवान् शंकर हलाहल विषका पान कर गये थे, इसलिये क्या सभीको विष-पान करना चाहिये? तैत्तिरीयोपनिषद्में आचार्य अपने शिष्योंसे कहते हैं—

'**यान्यस्माक*सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।**'

यह बहुत सम्भव है कि कोई चरित्र महापुरुषोंके लिये उचित हो, किंतु साधारण पुरुषोंके लिये उचित न हो। संन्यासी लोग संध्योपासन नहीं करते, इसलिये क्या गृहस्थोंको भी उसे छोड़ देना चाहिये? फिर यहाँ तो अलौकिक लीलाकारी भगवान्की बात है, जिसका अनुकरण करना तो दूर रहा, समझना भी महा कठिन है।

इस प्रकार भगवान्की यह रासलीला उच्च कोटिके योगारूढ़ोंके लिये ही एक उच्च आदर्श है। इसके श्रवणमात्रसे पुण्य होता है।

श्रीकृष्णावतारका रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान्के सब अवतार लीला-परिपूर्ण होते हैं। भगवान्में कोई न्यूनाधिक्य, कोई तारतम्य, कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। परंतु वे जहाँ जिस गुणकी, जिस धर्मकी आवश्यकता होती है, वहाँ उस अवतारके द्वारा मुख्य रूपसे उसीको प्रकट करते हैं। सच्चिदानन्दमें-से कुछ कम कर दिया जाय या उसमें कुछ बढ़ा दिया जाय—ऐसा सामर्थ्य तो किसीमें भी नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका अवतार सत्-तत्त्वकी प्रधानतामें है। सद्धर्म, सद्भाव, सद्विचारसम्पन्न श्रीरामचन्द्र मूर्तिमान् धर्म हैं—'रामो विग्रहवान् धर्मः।' कपिल-दत्तात्रेय आदि अवतार चित्-प्रधान अवतार हैं, उनमें अधिक-से-अधिक ज्ञान ही प्रकट होता है, किंतु भगवान् श्रीकृष्णका अवतार आनन्द-प्रधान अवतार है। सभी अवतारोंकी अपनी पृथक् विशेषता होते हुए भी किसी-किसी अवतारमें विशेष धर्मकी अभिव्यक्ति होती है। श्रीकृष्णमें आनन्द अधिक प्रकट हुआ है। इसलिये आसक्तिके विषय हो जाते हैं श्रीकृष्ण। आनन्दसे सबका प्रेम होता है, अतः सब आनन्द चाहते हैं। मुझे सुख मिले, दुःख कभी न मिले—यह प्रार्थना प्रसिद्ध है—

सुखं मे भूयाद् दुःखं मे मा भूत्।

इस प्रकार सुखके प्रति, आनन्दके प्रति सबका आकर्षण होता है और श्रीकृष्णके जीवनमें उसकी अभिव्यक्ति बहुत अधिक है। इसीलिये वे लोगोंकी प्रीतिको, आसक्तिको अपनी ओर अधिक खींचते हैं, क्योंकि जहाँ सुख होता है वहाँ मन जाता है। भगवान्में लोगोंकी प्रीति हो, आसक्ति हो और दुनियाका जो बखेड़ा है, इन्द्रजाल है, वह भूल जाय—इसके लिये भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होता है। हमारे मनके लिये कोई ऐसा स्थान चाहिये, जहाँ पहुँचकर हम दुनियाके सब दुःखोंको, सब पीड़ाओंको, सब उत्पीड़नोंको, सब शोषणोंको एवं सब अभावोंको भूल जायँ। मनुष्यके हृदयमें एक ऐसा स्थान होना आवश्यक है और उस हृदयके रूपमें स्वयं भगवान् ही रहते हैं। हृदि अयते इति हृदयं ब्रह्म, जो हृदयमें विराजमान हो, उसका नाम हृदय है। हृत् माने संस्कारोंको आकृष्ट करनेवाला। हम जो-जो देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव करते हैं, उनका संस्कार जहाँ इकट्ठा होता है, उसका नाम होता है हृत्। हरति इति हृत्—'ह' धातुसे 'त' जुड़ जाता है। 'हृत्' शब्दका अर्थ होता है अनुभूत विषयोंके संस्कारको अपने अंदर आहरण करके रखनेवाला। उन्हीं संस्कारोंके भीतर भगवान् एक-एक संस्कारको जगाते हैं, शान्त करते हैं और हमारी बुद्धिको भी वही प्रेरणा देते हैं—

धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्० ३।६२।१०)

ध्यान देनेकी बात यह है कि एक मैं हूँ और एक मेरी बुद्धि है। बुद्धि दुनियाके बारेमें सोचती-विचारती रहती है। पर इस बुद्धि-यन्त्रको, इसकी मशीनको जो चलानेवाला है, वही मेरे और मेरी बुद्धिके बीचमें अर्थात् मुझमें सबसे निकट रहता है। पहले हमारा द्रष्टा अन्तर्यामी होता है, फिर उसके द्वारा नियम्य बुद्धि और बुद्धिका प्रपञ्च होता है। वह नियामक कौन है? हमारा परम प्रेमास्पद, हमारी आत्मासे अभिन्न स्वयं भगवान् ही नियामक है।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८।६१)

बुद्धि-यन्त्रपर आरूढ होकर माया दिखायी पड़ रही है। इस यन्त्रको सतत चलानेवाला वह परमेश्वर हमारे हृदयमें विराजमान है। भगवान्की लीला ही ऐसी है। लीला तो करता ही है वह। लीलामें कर्तापनका अभिमान नहीं होता, कर्मका कोई फल उदय नहीं होता और कर्ममें वासना नहीं रहती अर्थात् जिसमें कर्तापन न हो, वासना न हो, फलोदय न हो, उसको लीला कहते हैं। यह कर्मसे विलक्षण है, चरित्रसे विलक्षण है।

यह जो आनन्द-प्रधान लीला है भगवान्की, वह सभी जीवोंको सुख देनेवाली है। तत्त्वज्ञानी पुरुष उसका गान करनेमें आनन्द लेते हैं। हृदयमें जो प्रेम है, रस है, उसकी प्रणालीका नाम संगीत है। वास्तवमें प्रेम ही सौरभ्य है, सुगन्ध है, सारस्य है, मिठास है, सौन्दर्य है, सौकुमार्य है और प्रेम ही सौस्वर्य तथा संगीत है। प्रेम हमारी सब इन्द्रियोंको अपनी ओर खींच लेता है। हमारे जीवनमें एक बार भगवत्-रस आ जाये तो क्या होता है, यह आप गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

जो मोहि राम लागते मीठ।

तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठ॥

इससे जीवन्मुक्त पुरुष, जिन्हें कोई तृष्णा नहीं है, इनका

गान करते हैं स्वय भगवान्के पास बेठकर। जो मुमुक्षु पुरुष हैं उनके लिये यह ससाररूप रोगकी ओषधि है। औषधि क्या होती है? **'ओषति दोषान्, धत्ते गुणान्'** जो हमारे दोषोको मिटा दे और हमारे जीवनम सद्गुणका आधान करे उसका नाम आषधि है। जो लाग इन्द्रियाका जीवन ही जी रह हे उनक लिये भी **'श्रोत्रमनाभिरामात्'**—कानसे सुननेमे भी आनन्दमयी आर मनसे विचार करनम भी आनन्ददायी है। जब हम श्रीमद्भागवतम यह श्लाक पढते हैं, तव पढनेम भी कितना आनन्द आता है—

> **पादन्यासैर्भुजविधुतिभि सस्मितैर्भ्रूविलासै-**
> **र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटै कुण्डलैर्गण्डलोलै ।**
> **स्विद्यन्मुख्य कबररशनाग्रन्थय कृष्णवध्वो**
> **गायन्त्यस्त तडित इव ता मेघचक्रे विरेजु ॥**
>
> (श्रीमद्भा० १०। ३३। ८)

कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण। रसवर्षी बादलाका समूह ओर उसम कौंधती हुइ बिजली। केनापनिषद्म ध्यानकी यह उपासना बतायी हुई हे कि **'विद्युता व्यद्युतत्'** (केन० ४। ४)। इस प्रकारका ध्यान करो कि रसवर्षी घन-घटा छायी हुई हे अपन हृदयम आर उसम जस वारम्बार बिजली कोध जाती ह वैस ही प्रकाश आ जाता है। ठीक यही उपमा देकर श्रीमद्भागवतम रासक प्रसगका वर्णन हे।

श्रीकृष्णका जीवन लौकिक दृष्टिस भी सम्पूर्ण कलाआसे परिपूर्ण ह। महाभारतम वर्णन आता हे कि जब महाभारत-युद्धक समय अर्जुनक घोडे घायल हा जाते या थक जाते तब अर्जुन तो अपन शिविरम जाकर विश्राम करन लगत, किंतु श्रीकृष्ण घाडाकी मालिश करत आर जहाँ चोट लगी हाती वहाँ मरहम-पट्टी करते। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण आयुर्वेदक महान् ज्ञाता थे। वे केवल मनुष्यकी चिकित्सामे ही नहीं पशुआकी चिकित्साम भी निपुण थे। जरासन्धन तईस-तईस अक्षोहिणी सेना लेकर सत्रह बार मथुरापर चढाई की, लेकिन मथुराका एक आदमी भी नहीं मरा और बलराम तथा श्रीकृष्णने उसकी सनाका सहार कर दिया। इससे यह भी सिद्ध हाता है कि उनको युद्ध-विद्याम कितनी निपुणता प्राप्त था। आयुर्वेद धनुर्वेद स्थापत्य-वद अथवा शिल्पवेद सबम व पारगत थे। उन्हान इतना जल्दी द्वारकाकी रचना करवाया था कि सब लाग चकित हा गय थ। श्रीकृष्णका स्थापत्य-वेदका कितना ज्ञान था—इसका परिचायक उनक द्वारा निर्मित धर्मराजका वह सभागार था जिसमें जल-थलका भ्रम हो जाता था।

गन्धर्व-वदके चारा अङ्गा—सगीत, वाद्य, नृत्य और अभिनयमे श्रीकृष्ण निपुण थे। यह केवल वशी-ध्वनि नहीं—आध्यात्मिक लीला-ध्वनि है। आध्यात्मिक उन्नति तो जीवन जीनेकी एक कला है, जिसमे पूरा-का-पूरा सौन्दर्य और पूरा-का-पूरा माधुर्य अभिव्यक्त होता है। जब हम श्रीकृष्णकी लीलापर ध्यान देते हें, तब उसम मनुष्यका मन खींचनेके लिये जा भी सामग्री चाहिय वह सब मिलती है। श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था जीवनम आनन्द प्राप्त करने तथा ध्यानके लिय है, वह अनुकरण करनके लिये नही है। उनकी बाल्यावस्थाका जीवन ता ध्येय जीवन है।

आपको यह बात मालूम होगी कि जब हम आँख बन्द करके दखत हे कि यमुनाजी बह रही हैं, गोवर्धनका शिखर दीख रहा हे आर यह वृन्दावन हे, तब हम कैसा सुखद अनुभव होता है। इसका वर्णन भी केनोपनिषद्में है—**'तद्ध तद्वन नाम'** (४। ६)। वेदाम भी मन्त्र आता ह—

'कि स्विद्वन क उ स वृक्ष आस। (ऋग्वद १०। ८१। ४)

यहाँ प्रश्न है कि वह वन कौन-सा है, वह वृक्ष कोन-सा है, जिसस विश्वकर्माने विश्वसृष्टि बनायी? कृष्णयजुर्वेदके तत्तिरीय ब्राह्मणम इसका उत्तर हे—**'ब्रह्म वन, ब्रह्म स वृक्ष आस।'** अथात् ब्रह्म ही वह वन हे और ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिससे विश्वकर्माने यह सृष्टि रची हे। जैसे कलाकार लकडीम मूर्ति बनाते हे वैस ही ब्रह्म-रूप वृक्षम यह सम्पूर्ण विश्व-सृष्टि बनी हुई हे। जब हम आँख बन्द करके ब्रह्मका ध्यान करते है, तव वह वन जड वन नही होता। वह वन आकृतिम देखनेपर जड-सा लगता हे, परतु वास्तवम चित्-प्रधान वन हाता है चिन्मय वन हाता हे। उसमे जो पर्वत है वृक्ष हैं, लता हे गाय ह, हरिणी ह अन्य पशु ह, पक्षी ह, स्त्री हे पुरुष हैं आर इनम जो क्रियाएँ है भोजन है लेना-दना ह, वह सव चिन्मय हा जाता है। ध्येय वस्तु जड नही होती वह चेतनकी प्रधानतासे हमारे हृदयमे स्थित होती हे। सामान्य लागाको इन सब बाताका जरा कम पता हाता ह इसलिय वे तर्क-वितर्क करते रहते हैं। किंतु गम्भीर दृष्टिस गवेषणापूर्ण विचार करनेपर आपको मालूम पडगा कि जस बाहर घडा दीखता हे वेस भातर दीखनवाला घडा हाता हे। मृत्तिकामय घट वाहर हाता हे और मनामय घट अदर हाता ह। वह यदि गापाक सिरपर हा आर भगवान् उसक साथ छेडछाड

कर रहे हों तब तो उस घटके चिन्मय होनेमें किसी प्रकारके कुतर्क या शंकाके लिये अवकाश ही नहीं रहता।

अब मैं इसका दर्शन तो क्या सुनाऊँ आपको? आइये भगवान्‌के अवतारके बारेमें दो बात कर लें। जबतक मनुष्य अपनेको साकार, शरीरधारी व्यक्तिके रूपमें मानता है और ईश्वरको भी मानता है, तबतक साकार जीवके लिये, वह अंशी भी जिसका वह अंश है, साकार ही हो सकता है। साकार अंशीका ही साकार जीव होगा। जब जीवमें-से आकारकी भ्रान्ति मिटेगी, तब ईश्वरमें उसे आकार नहीं दिखायी पड़ेगा और वे दोनों निराकार-निराकार एक हो जायँगे।

आप इस तर्कपर भी ध्यान दीजिये कि आत्मा निराकार होता हुआ भी शरीरधारी हो जाता है। तब ईश्वर निराकार होकर भी शरीरधारी क्यों नहीं हो सकता?

आप श्रीकृष्णका प्राकट्य चाहे जेलखानेमें मानिये, चाहे यह मानिये कि वह जेलखाना कंसके महलका एक अंश था। चाहे यह मानिये कि देवकी-वसुदेव अपने ही घरमें नजरबन्द किये गये थे। कोई भी स्थान हो, यह निश्चित है कि देवकी-वसुदेव भोजेन्द्रके बन्धनमें थे—'भोजेन्द्र बन्धन।' उसी भोजेन्द्र कंसके बन्धनमें भगवान्‌का अवतार हुआ। मुक्तिमें भगवान्‌का अवतार नहीं हुआ, बन्धनमें अवतार हुआ। यही अवतारका प्रयोजन है। भगवान् मुक्त नहीं रहे, अपने भक्तके हाथों बँध गये—यशोदा मैयाने रस्सीसे बाँध लिया उनको—यही उनकी प्रशंसा है।

'विष्णुसहस्रनाम' में भगवान्‌का एक नाम है 'सत्कृति'। श्रीशंकराचार्यजीने उसका अर्थ किया है कि सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूप कृति जिनकी है, जिन्होंने संसार बनाया है और जो इसकी रक्षा करते हैं, इसका प्रलय करते हैं, उन भगवान्‌का नाम 'सत्कृति' है।

किंतु श्रीवत्साङ्काचार्य कहते हैं कि सत्कृति क्या है? अजन्मा प्रभुका भक्ति-पराधीन होकर जन्म लेना। जो सबके स्वामी हैं, वे चोरी कर-करके लोगोंके मनको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जीवोंके शरीरपर जो पर्दा पड़ा है, उसके निवारणके लिये चीर-हरण करते हैं और नाचकर, गाकर, रिझाकर लोगोंको अपना ओर आकर्षित करते हैं। यही भगवान्‌की सत्कृति है।

इस तरहसे वे भगवान्‌की लीलाका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

एका लीला भगवतो बह्वीनां नु साधिका।

भगवान्‌की लीला तो एक होती है, किंतु उसके अभिप्राय अनेक निकलते हैं—जैसे ब्रह्माकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शिवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, व्यासकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शुकदेवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय और परीक्षित्‌की दृष्टिसे एक अभिप्राय—ऐसी है भगवान्‌की लीला। जब हम उसको केवल अपनी बुद्धि और अपनी दृष्टिमें समेट लेना चाहते हैं, विपर्ययमें हमारा आग्रह हो जाता है—विपर्यय माने उलटी बुद्धि, उलटा ज्ञान, उलटी समझ और यह जिद कि ऐसा नहीं बिलकुल ऐसा ही है—तब लीलाके पीछे भगवान्‌की जो दृष्टि है, वह ओझल हो जाती है।

उदाहरणके तौरपर पूतनाको देखिये। 'पूतानपि नयति'—जो पवित्रात्मा बच्चोंको भी उठाकर ले जाती है और विद्वानोंको भी भ्रममें डाल देती है, उसका नाम पूतना है। 'अविद्या पूतना प्रोक्ता'—पूतना अविद्या है, अज्ञान है। भगवान् श्रीकृष्ण इस अविद्याका नाश करते हैं। पर यह तो हुई विद्वानोंकी दृष्टि। अब भक्तोंकी दृष्टि देखिये। पूतना जातिकी राक्षसी है, स्वभावकी घोर है, खून पीनेवाली है, बच्चोंको मारनेवाली है, कंसकी भेजी हुई है और श्रीकृष्णको मारनेकी नीयतसे उसने अपना स्तन पिलाया है। लेकिन उसके प्रति भगवान्‌की दृष्टि कैसी है? वे न तो उसकी जाति देखते हैं, न स्वभाव देखते हैं, न उसका भोजन देखते हैं, न उसके प्रेरकको देखते हैं, न उसकी क्रिया देखते हैं और न उसके विषको देखते हैं। श्रीकृष्णको तो वह दीखती है माँ—केवल माँ।

गईं मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी पूतनाके प्रसंगमें देखते हैं भगवान्‌का स्वभाव, भगवान्‌की करुणा। भगवान्‌की आँखोंमें उसका दोष नहीं दीखता है, उसके हृदयमें जो प्रीति है, वह दीखता है। भगवान्‌को दीखती है कि पूतनाके रूपमें माँ दूध पिलाने आयी है।

इस प्रकार एक ही लीलाका—एक हुआ आध्यात्मिक दृष्टिसे अविद्याका वर्णन, दूसरा हुआ भगवान्‌के स्वभावका वर्णन और तीसरा हुआ यह वर्णन कि जब पूतनाके दूधपर भगवान्‌ने इतनी कृपा की कि उसको माताकी गति दे दी तो वे जिन गायोंके थनमें अपना मुँह लगाकर दूध पीते हैं, उनको क्या देंगे? जो ग्वालिन गोदमें लेकर अपनी छातीसे सटाकर उनको दूध पिलाती हैं, उन ग्वालिनोंको वे क्या देंगे? भला यशोदा मैयाकी तो रखो अलग। उसका अर्थ क्या

हुआ? देवकी माँ कभी श्रीकृष्णको ब्रह्मरूपमे देखती थीं और कभी पुत्र रूपम देखती थी। दक्षिणमे जा तमिल भाषाका भागवत ह उसम तो ऐसा आता है कि श्रीकृष्ण एक रूपसे तो दवकीके पास हा रह। वे ग्यारह वर्षोतक छिपकर राज दवकी मेयाका दूध पीते थे आर दवकी उनका सँवारती थीं, सजाती थीं। यदि श्रीकृष्ण उनके पास नही रहत तो देवकी मर जातीं। लेकिन आप यह देखिये कि भगवान् यशोदा मेयाके पेटसे पदा हुए कि नहीं हुए—इसम मतभेद है। वल्लभ-सम्प्रदाय आर चेतन्य-सम्प्रदाय दोनाम यह माना जाता है कि यशोदा मयाक पटसे भी श्रीकृष्णका जन्म हुआ था। परतु श्रीधरस्वामी और दूसरे आचार्य मानते हैं कि ऐसा नहीं है यह तो यशोदा मैयाका भाव था। उनको यह शका ही नहीं थी कि उनका बेटा उनके पटसे पैदा हुआ है कि नहीं हुआ। उनका तो यही मालूम था कि यह उन्हींके पेटका बालक हे और इसीके अनुसार उनका भगवान्क प्रति वात्सल्य-भाव था।' इस वात्सल्य-भावकी कितनी महिमा ह—इसको जाननेके लिये पूतनाकी गति देखा गायाकी गति देखा, ग्वालिनोकी गति देखा और यशोदा मयाकी ओर देखो। भगवान् तो सदा-सदाक लिये यशोदा मेयाके ऋणी ह, जिन्हान इतने प्रेमस उनको अपना दूध पिलाया। उनका इतना वर्णन क्यों है? इसीलिये हे कि दूसरा कोई भी यदि भगवान्क साथ मातृभावसे सम्बन्ध जोड, मित्रभावसे सम्बन्ध जाड पतिभावस सम्बन्ध जाडे, तो उसके अपने कर्तृत्वक बलपर नही क्रियाक बलपर नहीं, उपासनाक बलपर नहीं कवल भगवान्की कृपाके बलपर—भगवान्की करुणाके बलपर उसका मङ्गल हो जाता है। यह भगवान्का बल ह कि वह भगवान्का पूज्य हो जाता है। इतना ही नहीं ऋणी हो जात हैं भगवान् उसक ओर ऋणी नहीं वह भगवान्का बाँध भी सकता ह रस्सीम। भक्तिकी एसी महिमाका प्राकट्य ओर कहाँ हे? दखनेम पूतनाका कहानीम अध्यात्म-भाव भा ह अधिदेव-भाव भी है अधिभूत-भाव भी ह परतु भगवान्न उसके साथ जो लीला की वह भक्तोको एक महती प्ररणा द जाती है।

जिनका सब कुछ भगवान्क लिय है आर जिन्हान अपना सब कुछ भगवान्का माना उनक सम्बन्धम भावम कितनी प्रगाढता ह कितना भगवन्मयता है—यह एक दृष्टिकोण है जिसपर आपको ध्यान देना है।

भगवान्की सब लीलाआका वर्णन करना कहाँतक सम्भव है। फिर भी स्थाली-पुलाक-न्यायसे केवल एक चावलका पका देखकर जेस पूरा चावल पका समझ लिया जाता ह, वैसे ही यदि आप भगवान्की किसी एक लीलापर दृष्टि डाले तो सभी लीलाओके बारेम विचार करनेकी प्रेरक विधि प्राप्त हो जाती है। ध्यान कीजिय आपके सामने श्रीकृष्ण एक छोट-से बालकके रूपम हैं मुष्टिमेय कटि हे—माने मुट्ठीमे आ जाय इतनी कमर ह उनकी करधनी बँधी हुइ है पाँवाम नूपुर ह, हाथाम कँगन हैं, गलेमे बघनखा है सिरपर तिलक हे, सुन्दर बाल हें और अपनी मुस्कानसे चितवनसे, हमारे मनको अपनी ओर खींच रहे हे। क्या इस ध्यानसे आपको आनन्द नहा आ रहा हे?

अर बाबा जा छोटा-सा दीखता ह वही सबसे बडा होता हे—'**वामनोह विष्णुरास**' (शतपथब्राह्मण १। २। ५। ५)। यशोदा मयाने दो बार श्रीकृष्णके मुँहमे सम्पूर्ण विश्वको दखा। उनके सामने ता उनकी छातीका दूध पीनेवाला नन्हा-सा बालक था जिसके लिय वात्सल्य रक्तको दूध बनाता है। पिताके प्रेमम वह शक्ति नही भाईक प्रेममे वह शक्ति नहीं, बहनके प्रेमम वह शक्ति नहीं जो शरीरके रक्तको दूधम परिणत कर द। यह तो वात्सल्यकी ही, स्नेहकी ही असीम शक्ति है अमूर्त भाव हे, निराकार भाव है कि वह दूधक रूपम साकार होकर आता है।

सा तत्र ददृशे विश्व जगत् स्थास्नु च ख दिश ।

(श्रामद्भा० १०। ८। ३७)

माँ बच्चका दूध पिलाती हे ओर बच्चका बच्चा समझती ह कितु यह नहा मानती कि वह सम्पूण विश्वका दूध पिला रही है। माँ कितनी पूर्णतास कितनी एकाग्रतासे कितनी भावनासे अपन बच्चका पालन-पोषण करती ह और उसका वह पालन-पोषण भगवान्के दशनका कितना छोटा-सा आलम्बन है। कितना बडा भगवान् आर उसक दशनका कितना छाटा आलम्बन। छान्दाग्यापनिषद्म ता दृष्टान्त है कि एक बडका बीज ल आओ। उस बीजका जो छोटा-सा दाना है उसका दखो। ताडकर दख ला उसम क्या है? कुछ नहीं है। परतु इसी छोट-स बीजम वह वट-वृक्ष छिपा हुआ है जिसम हर साल अरबो दाने पदा होंगे और उन दानाम अरबो वृक्षाके उत्पादनकी क्षमता होगी।

अब आप एक भक्तिका प्रसग लीजिये। धरा और वसुप्रवर द्राणको देखिये। वहाँ भी पृथ्वी और अन्न दाना है। वसुप्रवर द्राण और धरा पृथ्वी। उसमे क्या छिपा है? प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे भगवान् अपुत्र हानपर भी पुत्र हो गये। इसकी एक कथा है—प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे वसुप्रवर द्राण और धरा ही नन्द-यशादारूपमे अवतरित हुए थे। वसुप्रवर द्राण और धराने ब्रह्माजीसे यह वरदान माँगा था कि हम जब भी जन्म ले, तब भगवान्मे हमारी पराभक्ति हो। प्रजापति ब्रह्माने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसीके फलस्वरूप नन्द एव यशोदाको भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपमे प्राप्त हुए—

'ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।'

(श्रीमद्भा० १०। ८। ५१)

भगवान् जब अपुत्र हानपर भी पुत्र हो गये, तब यशादा माताका कितना प्रेम बढा उनके प्रति। वे श्रीकृष्णका लालन-पालन स्वय करती हैं दासियोपर नहा छोडतीं। आजकलकी माताएँ अपने पुत्रको दासियोके सहारे छोड देती हैं, उनको देखकर कहना पडता है कि *'तेरो कठिन हियो री माई!'*

अब पुन स्नेहका एक दृश्य देखिये। एक बार यशादा मैयाने दासियोको हटा दिया। अपने हाथसे दही मथने लगीं और अपने प्यारे पुत्रके बाल-चरित्रका स्मरण करने लगी। यह उनका नित्य-कर्म है। कर्म भी उसके लिये स्मरण भी उसके लिये और सगीत भी—वचन भी उसके लिये। सब कुछ उसके लिये। जब यशोदाजी दहीका मन्थन कर रही थीं तब श्रीकृष्ण वहाँ स्वय आ गये। यदि कोई मनसे वचनसे कर्मसे अपने कर्तव्यमे तन्मय है तो उसको भगवान्के पास जाना नहीं पडता भगवान् स्वय उसके पास आ जाते हैं। केवल आते ही नहीं दूध पीनेके लिये रोने भी लगते हैं। निष्काम भगवान्के मनमे अपने भक्तका दूध पीनेकी कामना हो जाती है। यही भक्तिकी महिमा है। वह अपुत्रको भी पुत्र बना देती है निष्कामको भी सकाम बना देती है नित्य तृप्तको अतृप्त बना देती है निर्ममको भी ममता जगा देती है शान्तमे भी क्रोध उत्पन्न कर देती है सबके मालिकको भी चोर बना देती है और निर्बन्धको भी बन्धनमे बाँध देती है। भगवान् प्रेम है जो अपने भक्त और भक्तिके पासमे आबद्ध हो जाते हैं रस्सीसे बँध जाते हैं—

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्ण कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १८)

मैयाका नाम यशोदा क्यों पडा? इसलिये पडा कि उसने भगवान्को यश दिया—'यशांसि ददाति'। अच्छा माताने क्या यश दिया? यह दिया कि उनको सगुण बना दिया बाँध दिया। होंगे ब्रह्म निर्गुण जिनको रस्सी नहीं लगती होगी। गुण माने रस्सी, निर्गुण माने जिसको रस्सी न लगे। इसलिये वे निर्गुण होनेके कारण कभी बन्धनमे नहीं आते होंगे, लेकिन प्रेम ऐसा है कि वह निर्गुण भगवान्को भी बाँधकर रख देता है।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे॥

देखो दुनियामे बन्धन बहुत हैं रस्सियाँ बहुत हैं, परतु प्रेमकी रस्सी दूसरी चीज होती है। जो भौरा सूखे काठमे छेद करके घर बना लेता है वही भौरा जब कोमल पखुडियोमे कैद होता है तब उसकी वह क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। भगवान् ऐसे कृपालु है कि कभी डरते भी हैं कभी रोते भी हैं, कभी भागते भी है कभी पकडे भी जाते हैं और कभी बँध भी जाते हैं। इसलिये भजन करने योग्य तो यही भगवान् है। यह देखो भक्तिकी महिमा कि माता यशोदा उनको यश देती हैं। उन्होंने नित्यमुक्तको बाँधकर भक्तिकी महिमा दिखा दी और भगवान्ने ऐसी करुणा की कि नित्यमुक्त होनेपर भी बँध गये।

अब देखो वेदान्तकी बात। भगवान्मे न बन्धन है और न मुक्ति है। मैयाने बन्धनका आरोप किया और पिताने बन्धनका अपवाद कर दिया। उसका अर्थ हुआ कि मेरे शरीरमे तो बन्धन नहीं है मैयाने लगाये हैं। यह माताका दृष्टिकोण है प्रमाताका दृष्टिकोण है जो बन्धन लगाता है। परतु आनन्दस्वरूप परमैश्वर्यशाली ज्ञानकी आनन्दकी परम समृद्धिकी यह दृष्टिकोण है कि भगवान्मे बन्धन नहीं है।

अब आपको एक तत्त्व-दृष्टिकी लीला सुनाता हूँ। आपने सुना होगा कि ब्रह्माजीने जब अघासुरकी मुक्ति देखी तब उनको यह आश्चर्य हो गया कि पापकी मुक्ति नहीं पापकी मुक्ति कैसे हो गयी? वह असुर साधु सादे बछडोको भी निगल लेता था तथा उसने भगवान्को भी निगलना चाहा परतु वह भगवान्के स्वरूपमे परिचित नहीं

था। इसलिय उसका जो बाहरी चाला था, वह रह गया ज्यों-का-त्या आर उसकी आत्म-ज्योति श्रीकृष्णकी आत्म-ज्यातिस एक हो गयी। ब्रह्माको इसलिय आश्चर्य हुआ कि व विधि-विधानके चक्करमे रहते ह। विधि-विधानके बारम बाहर कुछ देख ही नहीं पाते क्योकि उनमे तत्त्व-दृष्टि नहा हे। विधि शब्दका अर्थ ब्रह्मा भी है। जब उन्हान अपन विधि-विधानके चक्करम हरी-हरी घासके लोभम फँसे हुए बछडो आर बछडाकी चिन्ताम लग हुए ग्वाल-बालाका हरण कर लिया तब क्या हुआ?

सर्व विधिकृत कृष्ण सहसावजगाम ह॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १७)

श्रीकृष्ण उन सभी अपहृत बछडा, ग्वाल-बाला उनके छडी-छीका भाज्य पदार्थो आर वस्त्रादि परिधानाक रूपम प्रकट हो गय। उन सबका अपन नाम मालूम थे अपन बछडोकी पहचान मालूम थी अपन माँ-बाप मालूम थे। यह दखकर ब्रह्माक आश्चर्यका ठिकाना नही रहा। उनको सबस अधिक आश्चर्य यह हुआ कि जब मैं सृष्टि बनाता हूँ, तब पञ्चभूत मर सामने होत ह। अलग-अलग जीव हाते है उनक अन्त करण हाते ह आर उनकी कम-वासना हाती है। उनकी विद्या उनक कर्म उनकी पूर्व प्रज्ञा अलग-अलग हाती हे। उसके बाद म पुर्जोको जाडकर सृष्टि बनाता हूँ। यहाँ न ता अलग-अलग जीव हे न उनक अलग-अलग अन्त करण है न उनका कोइ कर्म-वासना हे न उपासना है न विद्या ह, न पञ्चभूत ह। तब यह सब क्या हे? क्या भान-मूर्तियाँ हैं? यहाँ दखनका बात यह हे कि श्लाकम **'बभूव'** नहा हे **'बभौ'** है—

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिक
यावद् यष्टिविपाणवणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिक
सर्व विष्णुमय गिराऽङ्गवदज सर्वस्वरूपा बभो॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १९)

अन्तम जब ब्रह्माजाकी आँख खुलीं आर उनका माह-भग हुआ तब उन्हान दखा कि य सब अलग-अलग दिखायी दनवाल अनक नहीं ह एक ही हैं।

यह श्रीमद्भागवतक तत्त्वनिरूपणका शली है। जैस सूर्यम दिन-रातका भेद नहा हाता वेस ही ब्रह्मम जाव-जगत्का भद नहा हाता। यह तत्त्व-दृष्टि है।

अब आपको म एक व्यवहारकी बात सुनाता हूँ। ऐसे ता यह भी भगवान्‌की लीलाका एक नमूना हे। श्रीमद्भागवतमे स्पष्ट लिखा ह—**'य सप्तहायनो बाल करेणैकेन लीलया'** (श्रीमद्भा० १०। २६। ३) अर्थात् सात वर्षके बालकन गोवर्धनको उठा लिया अपनी अँगुलीपर। यह अद्भुत लीला थी उस बालककी। श्रीमद्भागवतम यह भी लिखा ह कि जन्म-दिनसे ले करके कुल ग्यारह वर्षोतक श्रीकृष्ण व्रजम रहे। बारहवें वर्ष मथुरा चले गये। जा लोग यह बात नहीं जानते उन्हीक मनम रासलीला आदि प्रसगाको लकर शकाएँ हाती ह।

अब बालक श्रीकृष्णका व्यवहार-ज्ञान देखो। पहले इन्द्र देवताकी पूजा हाती थी। श्रीजीवगास्वामीन इसका बहुत विश्लषण किया ह अनुसन्धान किया हे। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाका इन्द्रकी पूजा हानी थी। उसको श्रीकृष्णन बद करवा दिया। उस समय श्रीकृष्ण सात वर्षके थे।

जब इन्द्रकी पूजाका समय आया तब श्रीकृष्णन नन्दबाबास पूछा कि बाबा, आपन इन्द्रको दखा ह? बाबाने कहा नहीं देखा हे। श्रीकृष्णने कहा कि जब पूजा करते इतने दिन हा गय आर अभीतक आपन इन्द्रको दखा ही नहीं तब उसकी पूजा क्या करते हैं? दृश्यकी पूजा कीजिय। स्वर्गके देवता इन्द्रकी पूजा मत करें। अपन व्रजम पत्थरका जा गावर्धन पर्वत हे उसकी पूजा कर। अपनी नजरको स्वर्गपरस धरतीपर ले आयें। स्वर्गको दखते-दखते धरताका मत भुला द। हमार पास न काई नगर ह न कटरा हे न गाँव ह न घर ह—

न न पुरा जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।
नित्य वनौकसस्तात वनशलनिवासिन॥

(श्रामद्भा० १०। २४। २४)

हम ता वनवासी ह। वन और पहाडम रहनवाल ह। हम इस धरतीका भूल नही जाना चाहिय। जा आसमानकी आर आँख करक खमूचि बनकर धरतीपर चलता ह उसका ठाकर लगता ह वह गिर पडता ह। इसलिये स्वर्गक दवतास बडा पूजा है इम मर्त्यलाक का।

अन्तम गावर्धनका पूजा हुइ। इन्द्र दवता कुपित हुए। उन्हान व्रजका भारी सकटम डाल दिया। परतु श्रीकृष्णन सबका बचा लिया। उस दृश्यका दखकर भा ग्वाल-बालाक मनम श्रीकृष्णक प्रति काई एश्वर्यका भाव नहीं आया। इस सम्बन्धम श्रीरूपगास्वामीजाका एक श्लाक है।

जिसमें ग्वाल-बाल कहते हैं कि अरे कन्हैया! मार तो बहुत गयी। तुमने नींद नहीं ली। तुम्हारा हाथ गिरि उपर उठा हुआ है। तुम थक गये हो। तुम्हारी थकावट देखकर हमारे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है। आओ, आओ, श्रीदामाके हाथमें दे दो यह पर्वत अथवा इसको अपने दाहिने हाथमें ले लो। हम तुम्हारे बाँये हाथकी सेवा-सम्हाल कर देंगे।

इस प्रकार ग्वाल-बालोंके मनमें श्रीकृष्णके प्रति कोई ऐश्वर्य-दृष्टि है ही नहीं। ऐसा है हमारा लौकिक कृष्ण और उसका क्रान्तिकारी दृष्टिकोण। यह स्वर्गके देवताकी अपेक्षा मर्त्यलोकके वनको पर्वतको अथवा इनके उपयोगी वनवासी पर्वतवासीको अधिक महत्त्व देता है। यह इन्द्रसे अधिक आदर गायोंका करता है, गाय चरानेवालोंका करता है, गायोंको घास-चारा पानी देनेवालोंका करता है। यह है उसकी गोवर्धन-धारण-लीलाका रहस्य। मैंने यह बात आपको बिलकुल लौकिक दृष्टिसे सुनायी है।

अब आप श्रीकृष्णकी रासलीलापर एक नजर डालें। उनके सातवें वर्षमें जो गोवर्धन-पूजन हुआ और इन्द्रके प्रकोपके कारण सात दिनतक गोवर्धन-धारण करना पड़ा उसमें शरद् ऋतु बीत गया। उसके बाद ग्यारह वर्षकी उम्रतक श्रीकृष्णने जो बाल-लीला की उसे आप किस अर्थमें ग्रहण करना चाहते हैं? आपमेंसे खेलते समय बालकोंमें कोई स्त्री बनता है, कोई पुरुष बनता है, कोई मूँछ बना लेता है, कोई डण्डा हाथमें ले लेता है और कोई बूढ़ा बनकर चलता है, कोई युवा बनकर लीला कर रहा है और कोई बालिका युवती बनकर लीला कर रही है—ऐसे ही अनेक प्रकारकी लीलाएँ होती हैं, उनका वर्णन असम्भव है। बात-बातमें तो यह बालक है, यह नाटक है ऐसा वर्णन नहीं किया जा सकेगा। यदि ऐसा कहा जायगा तो उसमें सर्वथा रस-भंग हो जायगा। उसमें तो रसपरिपाकके लिये इतनी तन्मयता चाहिये कि पाँच हजार वर्ष पहले हुई यह लीला परोक्ष न रह जाय अथवा प्रत्यक्ष नाटक भी न बन जाय। जो लोग काव्यमें परोक्ष रस मानते हैं उनको मीमांसक बोलते हैं और जो अपरोक्ष रस मानते हैं उनको ऐसा मानना होता है कि हमारे हृदयमें रंगमंच है और वहाँ लीला हो रही है। यह अपरोक्ष रस अभिनवगुप्तके मतानुसार है। शंकुक आदि बड़े-बड़े आचार्योंने रसको परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष माना है, किंतु अभिनवगुप्त रसको अपरोक्ष मानते हैं।

श्रीमधुसूदन सरस्वतीका कहना है कि जबतक स्थायी-भावावच्छिन्न चैतन्यकी आनन्द-भावावच्छिन्न चैतन्यसे एकता नहीं होगी तबतक रसानुभूति नहीं हो सकती। आप गोपियाँ एक हो जाइये, कृष्णसे एक हो जाइये और फिर गोपी-कृष्ण बनकर नाचिये, तब देखिये रसका कैसा आविर्भाव होता है। इस प्रकार रसानुभूतिकी चार प्रणालियाँ हुईं—परोक्ष रस, प्रत्यक्ष रस, अपरोक्ष रस और तादात्म्य रस—एकत्व रस। यही रासलीला है—

अङ्गनामङ्गनामन्तरेमाधवोमाधवंमाधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पितेमण्डलेमध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत [illegible])

रासका अर्थ क्या है? 'रस एव रासः, रसानां समूहो रासः, रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'—यह भगवान्‌की आनन्द-प्रधान लीला है, जो जीवको विषय रससे विमुख करके पूर्ण रसमें, नित्य रसमें निमग्न करती है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाके पहले श्रीकृष्ण और गोपियोंमें शास्त्रार्थ हुआ। श्रीकृष्णने पूर्व-मीमांसाका पक्ष लेकर कहा कि तुम लोग घर लौट जाओ। वहाँ अपने धर्मका पालन करो। लेकिन गोपियोंने उत्तर मीमांसाका पक्ष लिया और कहा—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।

(जाबालोपनिषद् ४)

इस प्रकार पूर्व पक्ष और उत्तर पक्षमें शास्त्रार्थ हुआ। भक्त कवि सूरदास और नन्ददासने भी उद्धव और गोपियोंका शास्त्रार्थ करवाया। नन्ददास कहते हैं—

कहाँ ब्रह्म को ज्योति ज्ञान कासों कहो ऊधो।
हमरे तो सुन्दर श्याम प्रेम को मारग सूधौ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और गोपियोंका शास्त्रार्थ है। उसमें श्रीकृष्ण हार गये हैं। हारनेवालेके प्रति हरानेवालेके हृदयमें प्रेमका उदय होता है और प्रेममें जो जीत जाता है, उसके प्रति एक स्पर्द्धा बनती है कि उसको कभी-न-कभी हराकर छोड़ेंगे। भक्ति-सिद्धान्त अपनेको छोटा बनाकर भगवान्‌से एक हो जाता है। किसीका प्रेम प्राप्त करना हो तो वाद-विवादमें उसको पराजित मत करो। जब वह और हम एक हो जायँगे तो हमारा सिद्धान्त उसमें और उसका सिद्धान्त हममें अपने-आप ही संचरित हो जायगा। उसमें वाद-विवादकी कोई आवश्यकता नहीं है।

रासलालाम जीवाका कितना वडा पक्ष लिया गया है आप इसपर ध्यान द। ससारम अधिकाश जाव भगवान्क वियागम जी रहे ह। एस कुछ ही भगवत्कृपा-पात्र भावुक भक्त हैं जा भगवान्क सयागका भी अनुभव करत हैं। सयाग और वियाग दाना ही प्रमक विभाग ह आर एक दूसरक सहयागी ह।

न विना विप्रलम्भेन सम्भाग पुष्टिमश्नुते।

जबतक वियागकी पीडा न हागी तबतक सयागक सुखका अनुभव नहीं हागा। जिसका प्यास नहा ह वह पानीका स्वाद नहा जान सकता। हमार महापुरुषान वियागक बारम बताया ह कि वह तापक भा है आर प्रकाशक भा ह। जब किसी महत्त्वपूण व्यक्तिका वियाग हाना है तब उसम क्या-क्या गुण ह क्या-क्या विशप ह और उसका कसा स्वभाव है—इसका चिन्तन हान लगता ह। वियागस विछुड हुए व्यक्तिक स्वरूपका प्रकाश हाना ह। उसक द्वारा जा ताप हाता ह वह हमार हृदयका पिघला दता है और ससारम जा पक्ड ह, कठागता ह उसका वह मिटा दता ह। श्रीमद्भागवतक रासपञ्चाध्यायाम सयाग और वियाग विप्रलम्भ आर सम्भाग दाना शृगाराका वणन करक रसका एसा परिपाक कर दिया गया है कि वहाँ ता काम है नहा विकार हैं नहा। रासलीलाक समय रतिपति कामदवजी आये थ। श्रीकृष्णन कहा कि 'उत्तम्भय' ठहर जा वटा आसमानम। कामदव स्तब्ध हा गया श्रीकृष्णका लाला सुनकर दखकर। जा काम हम कर सकत हैं उसस अधिक महत्त्वपूण आर आश्चययुक्त कम जब दीखता है तब अपन-आप हा स्तम्भका उदय हा जाता है। आपन रासलालाम पढा होगा—

रम रमशा व्रजसुन्दरीभि-
यथार्भक स्वप्रतिविम्बविभ्रम ॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

जिस प्रकार कोई वालक शीशम पड हुए अपन प्रतिविम्बको सच्चा समझकर उसक साथ खलता ह इसी प्रकार श्रीकृष्णका यह एक खल है एक क्रीडा है। उनका अपन स्वरूपका ज्ञान हा गया हा दूसरक स्वरूपम सत्यता हा गया हा आर व भ्रान्त हा गय हा—एसा नहा ह। वहाँ तो कामका लेश भा नहीं है। वल्कि जा उस लीलाका श्रवण-वणन करत ह उनका काम-वासना निवृत्त हा जाती है—

विक्रीडित व्रजवधूभिरिद च विष्णा
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयद् य ।
भक्ति परा भगवति प्रतिलभ्य काम
हृद्रागमाश्वपहिनात्यचिरण धीर ॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

नाट्यशास्त्रम इस रसका वणन एस आता है कि एक नट हा और अनेक नटिनियाँ हा। वहाँ नट इतनी त्वरास अपनका नचाता ह कि सभी नटिनियाका यह प्रतीत होता है कि यह हमारा आर ही दख रहा ह हमार साथ ही नाच रहा ह। इसीको नाट्यशास्त्रम हल्लीशक नृत्य कहत ह। गान्धर्व वदका जा लाकिक आनन्द ह नृत्य ह, सगीत ह, वाद्य ह अभिनय ह वह श्रीकृष्णक जीवनम लाकिक पारलौकिक दाना ही दृष्टियाम पूर्ण प्रकट है। क्या यह वात आपक ध्यानम नहीं आता इस वातपर आपकी दृष्टि नही जाता कि ग्यारह वषक श्रीकृष्ण जब व्रजस मथुरा जात ह तब फिर लौटकर नहा आत। इस भक्ति-भावनाकी वात दूसरी है कि श्रीकृष्ण वृन्दावन छाडकर कहीं नहीं जात। यह ता भावुकाका भावना है आर उस भावनास उनका आनन्द आता ह रस आता है, वह ता हाना हा चाहिय। परतु यह भा ता दखिय कि मथुरा जाकर फिर कभा वृन्दावनका ओर मुख नही करना कम महत्त्वपूर्ण वात ह। क्या इसम असगता आर वराग्यका प्रकाश नहीं है श्रीकृष्णक जावनम? क्या भगवान्का स्वरूप कवल राग ही है कि नाच और गाय? क्या वराग्य उनका स्वरूप नहीं है?

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा॥
(विष्णुपु० ६। ५। ७४)

यदि गावर्धन उठानम ऐश्वय है, यदि प्रात काल उठकर धर्मानुष्ठान करनम धर्म ह यदि आजतक उनका यश विश्वसृष्टिम व्याप्त हा रहा ह यदि रुक्मिणी लक्ष्मी उनकी पत्नी है आर यदि उनक पास उद्धव एव अर्जुनका उपदश करनवाला ज्ञान ह ता जरा यह भी दखिय कि उनका वराग्य कितना ह? इतन बड-बड प्रमियाका असग-भावस छाडकर एकाएक चल जाना—यह क्या उनका भगवत्ता नहा? क्या आप एसा समझत है कि जस स्त्री-पुरुष आपसम आसक्त हाकर आर बाताका भूल जात ह वस हा

भगवान् भी अपनेसे सम्बन्धित जनामे आसक्त होकर अपनी भगवत्ताको हमेशाके लिये लुप्त कर द ? नहीं यदि भगवान्म राग है तो वैराग्य भी है।

असलम जब भगवान्की असगतापरसे दृष्टि हट जाती ह तभी भ्रम होता है। फिर हटती क्यो है ? फिरकापरस्त हो जानेसे, एक पन्थकी सीमामे बँध जानेसे। जब हम पन्थके गन्तव्यको देख नही पाते ओर मार्गम पडनेवाली सरायको धर्मशालाको सब कुछ मानकर वहाँ बँध जात है, तब परमार्थ-यथार्थका दर्शन अथवा साक्षात्कार नहीं हो पाता। अरे भई। अमेरिकाक लोग भारतीय सविधानका पालन क्या कर और भारतक लोग अमेरिकन सविधानका पालन क्यो कर ? आपकी दृष्टिम जा गुण-दाष है,उनके तराजूपर जब श्रीकृष्णको तौलनेके लिये चलते ह, तब आपकी बुद्धि बिलकुल फेल हो जाती है और आपके तराजूपर भगवान् ताले नहीं जाते। यह तो जा निर्विकार परमात्माका साक्षात्कार करके स्वय निर्विकारसे एक हो गये ह उनकी वस्तु है। जब हम किसी एक पन्थमे दुराग्रह करके, राहु-कतु-शनिश्चर-रूप दुराग्रहसे गृहीत होकर भगवान्की लीलाका चिन्तन करते हैं, तब उसम हमको कहीं दाष मालूम पडता है ओर कहीं हम अपनी वासनाके अनुसार उसीको रग देते हैं। इसलिय परमात्माकी निर्विकारताको ध्यानमे रखकर इसपर विचार करो और फिर देखो कि उसका लीला-रहस्य कितना गूढ ह।

निर्विकार परमात्माकी निर्विकार लीला निर्विकार अन्त -करणसे ही समझम आती है। श्रीमद्भागवत सविकार अन्त -करणको निर्विकार बना देता है।

श्रीमद्भागवतम वर्णन आता है कि जब श्रीकृष्ण द्वारकाम कहींस लौटकर आत तो किसीकी ओर सिर झुकाकर किसीका हाथ जोडकर ओर किसीका पाँव छूकर प्रणाम करते किसीको मुसकराकर देख लेते। लेकिन जो गरीब लाग थे उनस एक-एक करक मिलत और पूछत कि आपको क्या कष्ट है ? फिर उनको जो चाहिय था उसकी व्यवस्था करके नगरम प्रवेश करत। आप अमेरिकाके पूँजीवादका मत दखिय रूसक साम्यवादका मत दखिय दखिये अपन ही देशम आजस पाँच हजार वर्ष पहलेकी बात और वह भी लौकिक दृष्टिमे। श्रीकृष्णक जीवनमे लौकिक ज्ञान भी है, लौकिक सुख भी है। वे नृत्य, गीत, वाद्य अभिनय आदि सब कलाओम निपुण हैं। आयुर्वेद धनुर्वेद, स्थापत्य-वेदम पारगत ह। इसलिये एकाङ्गी सृष्टि नहीं होनी चाहिये। आप अगर सबको पालकके पत्तेका रस हा पिलाओग तो फोजम कौन जायगा और वहाँ जाकर क्या करेगा ? यदि आप सबको अल्पाहारी बना दोगे तो वाणीम वेदोच्चारण करनेकी जो सामर्थ्य है, कहाँसे आयेगा ? जब हम बिल्कुल एकाङ्गी दृष्टिकोणसे सोचने लगते है तब हमार महापुरुषोके, श्रीकृष्णके जो चरित्र ह वे अच्छी तरह समझम नहीं आते।

अब आप प्रतीकार्थोंके द्वारा श्रीकृष्णके चरित्रपर विचार कीजिये। भीष्मक समुद्र कितना बडा भयकर होता है। उसम-स निकला विष विष माने रुक्मी। समुद्रममे निकलनवाली मुद्राएँ ह लक्ष्मी-रुक्मिणी। शक्ति—सूर्यकी शक्ति सत्यभामा हैं। उन्हे सूर्यने ही दिया था सत्राजितको। इसलिये श्रीकृष्णमे सूर्य-शक्तिका उपयोग है कि नहीं ? समुद्रकी मुद्राका उपयोग है कि नहीं ? ब्राह्मी शक्ति है जाम्बवती। ब्राह्मी शक्ति माने प्रजनन-शक्ति। ब्रह्माके अवतार थे जाम्बवान्। रामावतारकी कथाम आप यह देखते है कि कौन देवता क्या हुआ ?

मनुष्यम प्रजनन-शक्ति भी चाहिय ताप और प्रकाशकी शक्ति भी चाहिये सम्पदाकी शक्ति भी चाहिये ओर बुद्धिम जो उलझन होती है राग-द्वेष-अभिनिवेश आदि होते हैं इनको दूर करनेकी शक्ति भी होनी चाहिय। इसके अतिरिक्त सौम्य चन्द्रमाकी जो साम्य रश्मियाँ ह सोलह कलाएँ ह—पुरुषम भी सोलह कला मनम भी सोलह कला और एक-एक कलाकी जो सहस्र रश्मियाँ हैं—आह्लादिनी प्रकाशिनी जीवनी आदि वे सब मनुष्यम होनी चाहिये। चन्द्रमाम पेड-पौधा और औषधियोका जीवन देनवाली शक्ति है प्रकाशिनी शक्ति है ओर आह्लादिनी शक्ति भी है। उन सबको सहस्र-सहस्ररूपम प्रकट करके जीवनक लिये जो परमावश्यक तत्त्व ह उसको चन्द्रमा प्रकट करते है। श्रीमद्भागवतम भगवान् श्रीकृष्ण बताते है कि हमार जीवनम इन सब जीवन-रश्मियोका आनन्द-रश्मियोका ज्ञान-रश्मियोका विकास होना चाहिय।

श्रीअयोध्या-माहात्म्य

श्रीलक्ष्मणजीद्वारा श्रीअवधलीलानुभूति

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीश्यामनारायणाचार्यजी महाराज)

विराट् पुरुष भगवान्‌का श्रीअवन्तिकापुरी चरण, श्रीद्वारकापुरी नाभि, वाराणसी नासिका तथा मथुरा ग्रीवा माना गया है। उसी प्रकार विराट् पुरुषका मस्तक श्रीअयोध्यापुरी माना गया है।

शरीरका वैसे तो प्रत्येक अङ्ग अपनी-अपनी जगहपर श्रेष्ठ है, फिर भी शरीरका सबसे मुख्य अङ्ग मस्तक माना गया है। सम्पूर्ण शरीरकी बाह्य या आभ्यन्तर क्रियाका निर्देशन मस्तकके अंदर समाहित मन-बुद्धिके द्वारा होता है। जो मन संकल्प करता है, बुद्धि उसका निश्चय कर देती है। ठीक इसी तरह अयोध्यापुरी भगवान्‌का मस्तक है। सृष्टिके प्रधान कर्णधार श्रीमनु-शतरूपा, इक्ष्वाकु, रुक्मांगद, दिलीप, रघु, हरिश्चन्द्र आदि प्रतापशाली राजाओंने इसी अयोध्यामें रहकर सृष्टिकी बागडोर सँभाली थी।

उदयाचलसे अस्ताचल तक राज्य करनेका सौभाग्य श्रीअयोध्याके नरेशोंको प्राप्त था। यहाँतक कि साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामने भी इसी अयोध्यामें अवतार लेकर अपनेको गौरवान्वित समझा। श्रीअयोध्याकी महिमा सभी शास्त्र-पुराणोंमें वर्णित है। इसका मुख्य कारण है कि साक्षात् परमात्मा श्रीरामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके मानव-समाजको मर्यादाका उपदेश दिया है। इतना ही नहीं, जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त मनुष्यको कैसे जीना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, यहाँतक कि बालक, पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु, परिजन, पुरजन, मन्त्री और गुरुका कैसा बर्ताव एवं आदर्श होना चाहिये—इन सभीका उपदेश श्रीरामके चरित्रसे प्राप्त होता है। ऐसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने भी अयोध्याके प्रभावको समझकर यहाँ अवतार लेना श्रेयस्कर समझा।

वन-यात्रासे लौटते समय श्रीराम स्वयं हनुमान्-लक्ष्मण आदिको सम्बोधन करके श्रीअवधकी महिमाको बखानते हुए कहते हैं—

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

(रा० च० मा० ७। ४। ४)

श्रीरामजी कहते हैं—'भैया! मुझे अवधपुरीके समान कुछ भी प्रिय नहीं लगता, क्योंकि इस पुरीकी अनन्त महिमा है।' इसका अनुभव साक्षात् शेषावतार श्रीलक्ष्मणजीको भी प्राप्त था।

पुराणोंमें एक कथा आती है। एक बार श्रीलक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये श्रीरामजीसे प्रार्थना करने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया! आपकी तीर्थयात्रा जानेकी इच्छा है तो बहुत ही अच्छी बात है। आप श्रीअयोध्यापुरीकी व्यवस्था करके अवश्य पधारिये।' इतना कहनेके बाद श्रीरामजी मुसकराने लगे। श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! दाससे कौन-सी त्रुटि हो गयी, जिसके कारण आप मुसकरा रहे हैं।' श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! समय आनेपर खुद ही आप समझ जायँगे।'

श्रीरामकी आज्ञा प्राप्त करके लक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये अपनी तैयारी करने लगे। सैकड़ों सेवक, मन्त्री, मित्र, पुरजन, परिजन भी साथमें जानेके लिये तैयारीमें लगे हुए थे।

सभीको तीर्थयात्रा जानेकी बड़ी प्रसन्नता थी। गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीने यात्राका मुहूर्त श्रावण शुक्लपक्ष पञ्चमीको निकाले। मुहूर्तके अनुसार सूर्योदयके पहले प्रस्थान करना था। इसीको ध्यानमें रखकर तैयारी हो रही थी। श्रीअयोध्यापुरीकी देख-भाल करनेके लिये श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीहनुमान्‌जी एवं सुमन्त आदि मन्त्रियोंको समझा दिया गया।

इस प्रकार करते-कराते रात्रिके दो बज गये। श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। आज प्रातः पाँच बजे यात्रा करनी है। यदि अब विश्राम करूँगा तो विलम्ब होगा।

अब ब्रह्ममुहूर्त होनेवाला भी है। अतः पहले जाकर श्रीसरयूजीका स्नान कर लें। ऐसा निश्चय करके स्नान करनेके लिये

श्रीलक्ष्मणजी सरयूजीके किनारे पधारे। वहाँ बहुत प्रकाश हो रहा था। राजघाटपर हजारों राजा-महाराजा स्नान कर रहे थे और संध्या करके आकाशमार्गसे चले जा रहे थे।

श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। कोई रामनवमीका पर्व नहीं, कोई उत्सव-विशेष नहीं, फिर इस ब्राह्मवेलामें इतनी भीड़ कैसे इकट्ठी हो गयी। इस प्रकार सोचते हुए महिलाओंके घाटपर पहुँचे जहाँ क्रमशः कौसल्या कैकयी सुमित्रा आदि हजारों माताएँ स्नान कर रही थीं। लक्ष्मणजी यह सारा दृश्य देखकर लौट आये। श्रीरामने पूछा—'लक्ष्मण! आज आपके तीर्थयात्रा जानेका मुहूर्त था, परंतु आप अभीतक स्नान ही नहीं किये।' श्रीलक्ष्मणजी प्रणाम करके कहने लगे—'भगवन्! आज मैंने एक आश्चर्यमय घटना श्रीसरयूजीके किनारे देखी।' श्रीरामके पूछनेपर श्रीलक्ष्मणजीने सारी घटना सुना दी। श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! आपने उन लोगोंसे पूछा नहीं कि आप कौन हैं, कहाँसे पधारे हैं।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! यह तो दाससे बड़ी भूल हो गयी। मैं संकोचवश कुछ भी नहीं पूछ सका क्योंकि वहाँ हजारों लोग स्नान कर रहे थे, परंतु कोई किसीसे बोलता तक नहीं था।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'आज मैं पुनः जाऊँगा और सबसे परिचय पूछूँगा।' श्रीलक्ष्मणजी दूसरे दिन पुनः दो बजे रात्रिमें गये। कलकी तरह आज भी हजारों लोग स्नान कर रहे थे। कोई किसीसे बोलता नहीं है। सबके मुँहपर प्रसन्नता एवं तेज झलक रहा है। श्रीलक्ष्मणजी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोले—'भगवन्! आप लोगोंका परिचय जानना चाहता हूँ।' हजारों राजाओंने कहा—'हम लोग काशी गया जगन्नाथ बद्रीनाथ केदारनाथ श्रीरंगम्, रामेश्वरम् और द्वारकापुरी आदि अड़सठ करोड़ तीर्थ देवताओंका रूप धारण करके यहाँ नित्यप्रति श्रीअयोध्याके दर्शन एवं सरयूजीका स्नान करने आते हैं।' इसके बाद लक्ष्मणजी महिलाओंके घाटपर गये और उन्होंने उन माताओंको प्रणाम करके उनका परिचय पूछा। उन माताओंने कहा—'हम गङ्गा यमुना सरस्वती, ताप्ती तुंगभद्रा कमला कावेरी गंडकी नर्मदा कृष्णा एवं क्षिप्रा आदि भारतकी हजारों पवित्र नदियाँ नित्यप्रति श्रीरामपुरीका दर्शन एवं श्रीसरयूजीका स्नान करने आती हैं।' उसी समय एक विकराल काला पुरुष आकाशमार्गसे आया और श्रीसरयूजीकी धारामें गिरा। थोड़ी देर बाद जलसे निकला तो गौरवर्ण हाथमें शंख चक्र गदा आदि धारण किये प्रकट हुआ। श्रीलक्ष्मणजीने ऋषियोंसे पूछा—'भगवन्! ये देवता कौन हैं जो अभी कितने काले थे और सरयूजीमें गोता लगाते ही गौरवर्णके हो गये।' ऋषियोंने कहा—'लक्ष्मण! ये तीर्थराज प्रयाग हैं। हजारों यात्री नित्यप्रति तीर्थराज प्रयागके संगममें स्नान करके अपना पाप छोड़ जाते हैं। पापका स्वरूप काला होता है इसलिये श्रीसरयूमें स्नान करनेमात्रसे इनका सारा पाप नष्ट हो गया।' श्रीलक्ष्मणजी राजमहलमें आकर यह आश्चर्यमयी घटना श्रीरामजीको सुनाने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया लक्ष्मण! इस पुरीके दर्शन एवं स्नान-हेतु अड़सठ करोड़ तीर्थ अयोध्यामें आते हैं और आप अयोध्या छोड़कर अन्य तीर्थोंका दर्शन करने जा रहे थे। इसीलिये जब आपने मुझसे मुसकरानेका कारण पूछा था तब मैंने कहा था कि उचित समयपर आप स्वयं जान जायँगे। अब आप निर्णय कर लीजिये कि तीर्थयात्रामें जाना है या नहीं।' लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणोंमें गिर गये और बोले—'प्रभु! धन्य है यह अवधपुरी जहाँ सारे तीर्थ दर्शन-स्नान-हेतु आते हैं। अब दास कहीं किसी यात्रामें न जायगा।' अवधकी इस दिव्यलीलाका स्मरण करते हुए बन्धु-बान्धवोंसहित श्रीराम-लक्ष्मण इस घटनाको सभी अयोध्यावासिओंको सुनाने लगे।

अवधकी लीलाका अनुभव करनेके लिये हजारों संत-महात्मा एवं बड़े-बड़े सद्गृहस्थ अपना घर छोड़कर सीताराम-नामका जप करते हुए श्रीअवधकी गलियोंमें विचरण करते रहते हैं।

विविध रूपोमे हनुमान्

(गालोकवासी मत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

स्वामीका काय पूरा हानपर स्वामाकी अपक्षा सवकका सबस अधिक सताप तथा सुख हाता ह। सवकका काई एक रूप नहीं हाता स्वामीका जिमस सुख हा जिस रूपस स्वामाका कार्य सम्पन्न हा सवक वही रूप बना लता है। गरुडजी भगवान् विष्णुकी सवाके आवश्यकतानुसार दास सखा वाहन आसन ध्वजा चाँदना एव व्यजन आदि सब कुछ बन जात हैं। यही बात हनुमान्जीका ह। व दूतका भी काय करत हैं युद्ध भी कर लत हैं पूछनपर सम्मति द दत ह आवश्यकता पडनपर वाहन भी बन जाते ह। एस ही सेवक स्वामीस भी अधिक सम्मानक भाजन बन जात हैं।

हनुमान्जीन सजीवना लाकर लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा भग करायी। युद्धक समय जब रावणन अपन सनापति तथा मन्त्री धूम्राक्षका युद्ध करनक लिय भजा तब बहुत-स वानर एक हा साथ उसस युद्ध करन लग उस समय धूम्राक्षन बड गवक साथ कहा—'म लकाम महावीरक नामस विख्यात हूँ, अत साधारण वानरस नहीं लडता। मैं ता राम लक्ष्मण आर सुग्राव तथा विभीषणका मारन आया हूँ, तुम साधारण वानराका मारकर क्या करूँगा। तुम अपन-अपन प्राणाका लकर भाग जाआ।

इसपर हनुमान्जीन कहा—'मन्त्राजी लकामें आप महावीरक नामस प्रसिद्ध ह और यहाँ वानर मुझ भा महावीर हा कहकर सम्बाधित करत ह। अत पहले आप हमार साथ युद्ध कर तब आग बढ।'

हनुमान्जीका इतना कहना ही था कि धूम्राक्षन बाणाकी बौछार शुरू कर दा। हनुमान्जी भला कब चूकनवाल थ उन्हान एक पहाडका शिखर उठाकर धूम्राक्षका लक्ष्य करक मारा। उससे धूम्राक्ष ता बच गया परतु उसके रथ घाड तथा सारथी सभी चकनाचूर हा गय। तब धूम्राक्षन एक गदा हनुमान्जीक सिरपर मारी किंतु वह एस हा लगा जस काई शिलापर लात मार। तब हनुमान्जीन दूसरा पवत-शिखर उठाकर धूम्राक्षपर मारा। जिसक भाषण आघातस वह दबकर तत्काल मर गया। सभीन हनुमान्जीके इस कायकी अत्यन्त ही प्रशसा की।

रावणन जब दखा कि मर सभी प्रधान-प्रधान सनानायक मरत जा रह ह, ता वह स्वय रथपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीस लडन चला। सम्मुख उस लक्ष्मणजी मिल गय। लक्ष्मणजीन उस राक लिया। दानाम घनघार युद्ध हाने लगा। लक्ष्मणजीकी वीरता दखकर रावण विस्मित हुआ, उसन एक एसा अमोघ बाण छाडा कि लक्ष्मणजी उसस मूर्च्छित हाकर पृथ्वीपर गिर पड। समरम स्वामीक लिय सदा सचत रहनवाल शकरसुवनने जब दखा कि लक्ष्मणजा मूर्च्छित हा गय ता व उन्ह तुरत अपना पाठपर लादकर श्रारामचन्द्रजीक समाप ल गय। अपन भाईका मूर्च्छित तथा अचत दखकर उन्ह अपनी गोदम लिटाकर श्रीराम अत्यन्त करुण विलाप करने लगा। श्रीरामचन्द्रजीका विलाप करत देख वानर दु खी हुए। उसी समय शनै -शनै लक्ष्मणजी स्वय ही सँभल' उन्ह चेत हा गया। मूर्च्छास जागकर उन्हान श्रीरामचन्द्रजीक चरणाम प्रणाम किया। अब श्रारामचन्द्राजाका रावणपर क्राध आया। व कसरीनन्दन मारुतिस बाल—'हनुमान् तुम उस दुष्ट रावणक समीप मुझ ले चला। आज मैं उसक बल-पुरुषार्थका दखूँगा। में बहुत दिनास उस देखना चाहता हूँ।'

हनुमान्जीन प्रार्थना की—'प्रभा! रावण रथपर हे। आप पैदल उसस युद्ध कर यह उचित नही। आप मर कन्धापर बैठकर उसस युद्ध कर।

हनुमान्जीका यह प्रार्थना श्रीरामन स्वाकार कर ली। हनुमान्जीका अपना वाहन बनाकर उनके कन्धापर बैठकर व रावणस युद्ध करनक लिय चल। रावणन जब श्रागमका हनुमान्जीक कन्धपर चढा दखा ता कहा—'म बहुत दिनास रामको खाज रहा था। आज म रामका मारकर राक्षसाक भयका दूर कर दूँगा।'

श्रारामजान यह सनकर कहा—'अर राक्षसाधम शूरवार बकवाद नहीं किया करत व ता रणम अपना कोशल दिखात ह। अच्छा आ जा! आज म तेरा गव खर्व कर दूँगा।'

एसा कहकर श्रीरामजा रावणस युद्ध करन लग। दानाका युद्ध अपूव था। बडी दरतक भयकर युद्ध हाता रहा। हनुमान्जी अपन कौशलसे उसके प्रहाराको बचात रहत। इसपर रावणका बडा क्राध आया। पहल हनुमान्जान उस मूर्च्छित भी किया था। रावणन अपन मनम साचा

वानर ही हत्याका जड है। जिस कामसे देखो उसीमें यह आगे आ जाता है। इसे किसी भी छोटे-से-छोटे कार्यमें लज्जा-संकोच नहीं। यह दूत बनकर समुद्र लाँघ गया इसीने मेरी लंकापुरीमें आग लगायी मेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारा और मेरे मन्त्री धूम्राक्षको रणमें मारा। इसीने सजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणको बचा लिया तथा युद्धमें मुझे घायल किया। अब यह रामका वाहन बनकर आ गया पहले इसीको मार डालूँ। इसके मरनेसे राम निरुपाय हो जायगा। हनुमान्‌जी तो लड नहीं रहे थे वे तो वाहन बने हुए थे। अतः उसके प्रहारसे घायल हो गये। हनुमान्‌जीको घायल देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध आया। अब वे रावणपर और तीव्र प्रहार करने लगे।

बहुत देरसे युद्ध करते रहनेके कारण रावण बहुत थक गया था इसलिये अब वह बेमनसे लड़ रहा था। श्रीराम उसकी दुर्बलताको समझ गये और बोले—'राक्षसराज! प्रतीत होता है चिरकालसे युद्ध करते-करते तुम अत्यन्त ही श्रमित हो गये हो मैं अधर्म युद्ध करना नहीं चाहता अब तुम कल आना हमारा तुम्हारा युद्ध कल होगा।'

यह सुनकर रावण अत्यन्त लज्जित हुआ। यथार्थमें वह बहुत अधिक थक गया था। अतः लौटकर लंकापुरीमें चला गया।

दूसरे दिन युद्ध हुआ श्रीरामने रावणको मार दिया। रावणके मरते ही राक्षसोंकी सेना भाग गयी। वानर-सेना प्रमुदित हुई श्रीरामकी विजय हुई। श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणजीने लंकापुरीमें जाकर विभीषणको लंकाके राज्यपर अभिषिक्त किया। इस शुभ समाचारको लेकर हनुमान् माता जानकीके समीप गये। यह सुनकर जनकनन्दिनीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वे हनुमान्‌जीके उपकारोंके कारण मानो कृतज्ञताके भारसे दब-सी गयीं। उन्होंने कहा—'हनुमान्! तुमने जो साहसके कार्य किये हैं, तुमने जो उपकार किया है उसे व्यक्त करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं है। तुम्हारे ऋणसे मैं कभी उऋण न हो सकूँगी सदा तुम्हारी ऋणी ही बनी रहूँगी।

हनुमान्‌जीने कहा—'माँ! आप कैसी बात कह रही हैं। पुत्र तो माँके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता। माँ मेरी एक इच्छा है आप कहें तो उसे पूरा कर लूँ।'

माता जानकीने कहा—'कौन-सी इच्छा है भैया! इसके पहले जिस समय मैं अशोकवाटिकामें आया था उसी समय रावण आपके समीप आया था जब आपने उसकी बात नहीं मानी तब वह इन राक्षसियोंको आज्ञा दे गया कि 'सीताको भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दो।' इन राक्षसियोंने आपको बहुत पीडाएँ पहुँचायी भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दीं। अब उन्हें देखकर मेरे हाथ खुजला रहे हैं, आपकी आज्ञा हो तो इन्हें दो-दो झापड़ जमा दूँ, आपको कष्ट देनेका इन्हें मजा चखा दूँ, इनकी थोड़ी-सी मरम्मत कर दूँ।

यह सुनकर सीताजीने कहा—'ना भैया! ऐसा कभी मत करना। अरे हनुमान्! तुम समझते नहीं। उस समय ये बेचारी परवश थीं। दूसरेके अधीन थीं। मनुष्य अपनी स्थितिमें विवश होकर न करने योग्य कार्य भी करता है। परिस्थितियाँ उसे ऐसा करनेपर विवश कर देती हैं। ये सब-की-सब निरपराधिनी हैं। पवनतनय इन्हें मारकर तुम्हें क्या मिलेगा। इन्हें दण्ड देनेमें मुझे अत्यन्त दुःख होगा। बेटा! कोई किसीको दुःख-सुख नहीं देता। सब काल करवा लेता है। ये कालकी क्रूर चेष्टाएँ हैं। सबल पुरुषोंको निर्बलोंपर दया करनी चाहिये। तुम तो दो-दो झापड़की बात करते हो ये तो तुम्हारे एक ही थापड़में धराशायी हो जायँगी। उस समय ये रावणके अधीन थीं। जो भी करती थीं रावणकी आज्ञासे करती थीं। इनके कार्योंका उत्तरदायित्व रावणके ही ऊपर था। जब रावण मर गया तो वे बात भी समाप्त हो गयीं। अब तो यह तुम्हारी कृपाकी इच्छुक हैं इनपर कृपा करो इन्हें पारितोषिक दो।'

यह सुनकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'माँ! ये वचन श्रीरामजीकी प्राणप्रियताके ही अनुरूप हैं।'

तदनन्तर श्रीसीता-रामका मिलन हुआ। विभीषणसे पुष्पक विमान लेकर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी लक्ष्मणजी तथा मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर अवधपुरीको चल दिये। मार्गमें कुछ देरके लिये पुष्पक विमान किष्किन्धामें उतरकर पुनः आगे बढ़ा। आगे चलकर हनुमान्‌जीने भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! यहाँ समीपके ही पहाड़पर मेरी माताजी रहती हैं आज्ञा हो तो मैं उनके दर्शन कर आऊँ।'

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'अंजनानन्दवर्धन! हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो तुम हमें माताजीके दर्शनसे वंचित रखना चाहते हो। अंजना केवल तुम्हारी ही माँ है क्या? वे हमारी माँ नहीं हैं क्या भैया? वे तो जगन्माता हैं। हमें भी कृपा करके ले चलो ऐसी वीरप्रसवा माँके

दर्शनासे तो महान् पुण्य होता है।'

यह सुनकर हनुमान्जी लज्जित हुए, उन्होने कुछ भी उत्तर नही दिया। तबतक पुष्पक विमान माता अजनादेवीके समीप उतर पडा।

आगे जाकर हनुमान्जीने माताके चरणकमलोमे साष्टाग प्रणाम किया माताने उठाकर अपने लालको गोदमे बिठा लिया उनका सिर सूँघा और प्यार किया। इतनेमे ही श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी सीताजी तथा अन्यान्य वानर आ गये। हनुमान्जीने कहा—'माँ। ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ये इनके छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं और ये जानकी माता हैं। वनमे राक्षसराज रावण माता सीताका हर ले गया था। असख्य वानरोकी सेना एकत्र करके समुद्रपर पुल बाँधकर रावणको मारकर सीताको छुडाकर अब हम सब लोग अयोध्यापुरी जा रहे हैं।'

इतना सुनते ही माताकी त्योरियाँ बदल गयीं उनका मुख रक्तवर्णका हो गया, उनकी दोनो आँखे लाल-लाल हो गयी वे क्रोधसे भरकर बोलीं—'हनुमान्! तूने मेरे दूधको लज्जित कर दिया। अरे मूर्ख इस छोटेसे कार्यके लिये श्रीरामको इतना कष्ट सहन करना पडा। तूने तो मेरा दूध पिया था। अरे तू अकेला जाकर उस राक्षसराजको पकड लाता नहीं तो उस लकापुरीको ही उखाड लाता। रावणको मच्छरकी भाँति मसल डालता। तूने मेरे दूधको लाञ्छित कर दिया। धिक्कार है तुझे! ऐसा कहकर माताने हनुमान्जीको गोदीसे नीचे फेक दिया। तब श्रीरामचन्द्रजीने माताको प्रणाम करके कहा—'माता तुम्हारा पुत्र सब कुछ करनेमे समर्थ है। वह अकेला ही रावणको मार सकता था, वह अकेला ही लकाको उखाडकर समुद्रमे डुबो सकता था, किंतु माताजी फिर तुम्हारे पुत्रका ही नाम होता—केवल उसीकी प्रसिद्धि होती फिर लोकपावन रामचरित कैसे लिखा जाता? मैने जगत्मे लीलाका विस्तार करनेके लिये ही ऐसा किया है। आप हनुमान्जीपर प्रसन्न हो। इन्होने जो कुछ भी किया मेरी इच्छासे, मेरी आज्ञासे किया है। आप इन्हे पूर्ववत् प्यार करे।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बात सुनकर माँ प्रसन्न हुई। उन्होने जानकी एव लक्ष्मणसहित श्रीरामकी पूजा की और हनुमान्जीको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मणजीके मनमे शका हुई कि 'यह बुढिया बार-बार अपने दूधकी प्रशसा कर रही है। इनके दूधमे ऐसी क्या विशेषता है।' माता रामानुजके भावको ताड गयीं और बोलीं—'प्रतीत होता है कि छोटे राजकुमारको मेरे दूधपर सदेह हो रहा है। मै इन्हे अभी अपने दूधका प्रभाव दिखाती हूँ।' यह कहकर माताने अपने स्तनको दबाकर दूधकी एक धार सामनेके पर्वतपर छोडी। दूधकी धारसे वह समूचा पर्वत फट गया यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए।

तदनन्तर माताकी आज्ञा लेकर सब लोग विमानपर चढकर प्रयागराजमे भगवान् भरद्वाजके आश्रमपर आ गये।

(सकलनकर्ता—डॉ० श्रीविद्याधरजी द्विवेदी)

परमात्म-साक्षात्कार

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोप० २।५)

मानव-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमे तत्परताके साथ नहीं लग जाता वह बहुत बडी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि जबतक यह दुर्लभ मानव-शरीर विद्यमान है भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-सामग्री उपलब्ध है तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्माको जान लिया जाय तो सब प्रकारसे कुशल है—मानव-जन्मकी परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायगा—बार-बार मृत्युरूप ससारके प्रवाहमे बहना पडेगा। फिर, रो-रोकर पश्चात्ताप करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। ससारके त्रिविध तापो और विविध शूलोसे बचनेका यही एक परम साधन है कि जीव मानव-जन्ममे दक्षताके साथ साधन-परायण होकर अपने जीवनको सदाके लिये सार्थक कर ले। मनुष्य-जन्मके सिवा जितनी और योनियाँ हैं सभी केवल कर्मोका फल भोगनेके लिये ही मिलती हैं। उनमे जीव परमात्माको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ लेते हैं और इसीसे वे प्रत्येक जातिके प्रत्येक प्राणीमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं।

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-कर्मकी दिव्यता एक अलौकिक और रहस्यमय विषय है, इसके तत्त्वको वास्तवमें तो भगवान् ही जानते हैं, अथवा यत्किंचित् उनके वे भक्त जानते हैं, जिनको उनकी दिव्य-मूर्तिका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ हो, परंतु वे भी जैसा जानते हैं कदाचित् वैसा कह नहीं सकते। जब एक साधारण विषयको भी मनुष्य जिस प्रकार अनुभव करता है उस प्रकार नहीं कह सकता, तब ऐसे अलौकिक विषयको कोई कैसे कह सकता है? भगवान्‌के जन्म-कर्म तथा स्वरूपकी दिव्यताके विषयमें विस्तारपूर्वक सूक्ष्म विवेचनरूपसे शास्त्रोंमें प्रायः स्पष्ट उल्लेख भी नहीं मिलता, जिसके आधारसे मनुष्य उस विषयमें कुछ विशेष समझ सके, इस स्थितिमें यद्यपि इस विषयपर कुछ लिखनेमें मैं अपनेको असमर्थ मानता हूँ, तथापि अपने मनके कुछ भावोंको यत्किंचित् प्रकट करता हूँ। इस अवस्थामें कुछ अनुचित लिखा जाय तो भक्तजन बालक समझकर मुझे क्षमा करेंगे।

भगवान्‌का जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। इसकी दिव्यताको जाननेवाला करोड़ों मनुष्योंमें शायद ही कोई एक होगा। जो इसकी दिव्यताको जान जाता है, वह मुक्त हो जाता है। भगवान्‌ने गीता (४। ९)-में कहा है—

> जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
> त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

'हे अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।'

इस रहस्यको नहीं जाननेवाले लोग कहा करते हैं कि निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माका साकाररूपमें प्रकट होना न तो सम्भव है और न युक्तिसंगत ही है। वे यह भी शंका करते हैं कि सर्वव्यापक, सर्वत्र समभावसे स्थित सर्वशक्तिमान् भगवान् पूर्णरूपसे एक देशमें कैसे प्रकट हो सकते हैं? और भी अनेक प्रकारकी शंकाएँ की जाती हैं। [illegible] आश्चर्यकी बात नहीं है। जब मनुष्य-जीवनमें इस लोककी किसी अद्भुत बातके सम्बन्धमें भी बिना प्रत्यक्ष ज्ञान हुए उसपर पूरा विश्वास नहीं होता—तब भगवान्‌के विषयमें विश्वास न होना आश्चर्य अथवा असम्भव नहीं कहा जा सकता। भौतिक विषयको तो उसके क्रियासाध्य होनेके कारण विज्ञानको जाननेवाले किसी भी समय प्रकट करके उसपर विश्वास करा भी सकते हैं। किंतु परमात्मा-सम्बन्धी विषय बड़ा ही विलक्षण है। प्रेम और श्रद्धासे स्वयमेव निरन्तर उपासना करके ही मनुष्य इस तत्त्वको प्रत्यक्ष कर सकता है। कोई भी दूसरा मनुष्य अपनी मानवी शक्तिसे इसे प्रकट करके नहीं दिखला सकता। भगवान्‌ने कहा है—

> भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
> ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
>
> (गीता ११। ५४)

'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्ति करके तो इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

विचार करनेपर यह प्रतीत होगा कि ऐसा होना युक्तिसंगत ही है। प्रह्लादको भगवान्‌ने खम्भमेंसे प्रकट होकर दर्शन दिये थे। इस प्रकार भगवान्‌के प्रकट होनेके अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें विभिन्न स्थलोंपर मिलते हैं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं, फिर यह तो सर्वथा युक्तिसंगत है। भगवान् जब सर्वत्र विद्यमान हैं तब उनका स्तम्भमेंसे प्रकट हो जाना कौन आश्चर्यकी बात है? यदि यह कहें कि निराकार सर्वव्यापक परमात्मा एक देशमें पूर्णरूपसे कैसे प्रकट हो सकते हैं, तो इसको समझानेके लिये हम अग्निका उदाहरण सामने रखते हैं, यद्यपि यह सम्पूर्णरूपसे पर्याप्त नहीं है, क्योंकि परमात्माके सदृश व्यापक वस्तु अन्य कोई है ही नहीं जिसकी परमात्माके साथ तुलना की जा सके।

अग्नि-तत्त्व कारणरूपसे अर्थात् परमाणुरूपसे निराकार है और लोकमें समभावसे सभी जगह अप्रकटरूपेण व्याप्त

है। लकडियाके मथनसे चकमक पत्थरसे और दियासलाइकी रगडसे अथवा अन्य साधनाद्वारा चेष्टा करनेपर वह एक जगह अथवा एक ही समय कई जगह प्रकट होती है, और जिस स्थानमें अग्नि प्रकट होती है, उस स्थानमें अपनी पूर्ण शक्तिसे ही प्रकट होती है। अग्निकी छोटी-सी शिखाको देखकर कोई यह कहे कि यहाँ अग्नि पूर्णरूपसे प्रकट नहीं है, तो यह उसकी भूल है। जहाँपर भी अग्नि प्रकट होती है वह अपनी दाहक तथा प्रकाशक शक्तिको पूर्णतया साथ रखती हुई ही प्रकट होती है और आवश्यक होनेपर वह जोरसे प्रज्वलित होकर सारे ब्रह्माण्डको भस्म करनेमें समर्थ हो सकती है। इस तरह पूर्ण शक्तिसम्पन्न होकर एक जगह *या एक ही समय अनेक जगह एकदेशीय साकाररूपमें* प्रकट होनेके साथ ही वह अव्यक्त—निराकाररूपमें सर्वत्र व्याप्त भी रहती है। इसी प्रकार निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन अक्रियरूप परमात्मा अप्रकटरूपसे सब जगह व्याप्त होते हुए भी सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न अपने पूर्ण प्रभावके सहित एक जगह अथवा एक ही कालमें अनेक जगह प्रकट हो सकते हैं, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? इस प्रकार भगवान्‌का प्रकट होना तो सर्व प्रकारसे युक्तिसंगत है।

कोई-कोई पुरुष यह शंका करते हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वे अपने संकल्पमात्रसे ही रावण और कंस आदिको दण्ड दे सकते थे फिर उन्हें श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता थी? यह शंका भी सर्वथा अयुक्त है। ईश्वरके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकारकी शंका करनेका मनुष्यको कोई अधिकार नहीं है तथापि जिनका चित्त अज्ञानसे मोहित है, उनके मनमें ऐसी शंका हो जाया करती है। भगवान्‌के अवतरणमें बहुत-से कारण हो सकते हैं जिनको वस्तुतः वे ही जानते हैं। फिर भी अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कई कारणोंमेंसे एक यह भी कारण समझमें आता है कि वे संसारके जीवोंपर दया करके सगुणरूपमें प्रकट होकर एक ऐसा ऊँचा आदर्श रख जाते हैं—संसारको ऐसा सुलभ और सुखकर मुक्ति-मार्ग बतला जाते हैं जिसमें वर्तमान एवं भावी संसारके असंख्य जीव परमेश्वरके उपदेश और आचरणको लक्ष्यमें रखकर उनका अनुकरण कर कृतार्थ होते रहते हैं।

भगवान्‌के जन्म और विग्रह दिव्य होते हैं, यह बड़े ही रहस्यका विषय है। भगवान्‌का जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका श्रीमद्भागवतका प्रसंग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शंख चक्र, गदा पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है वह हम लोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। *भगवान्‌की तो बात ही निराली है।* एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुनः उसी स्वरूपमें प्रकट होकर दर्शन देता है, परंतु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें उसे कोई मरा हुआ नहीं समझता। जब महर्षि पतञ्जलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं, तब परमात्मा ईश्वरके लिये अपने पहले रूपको छिपाकर दूसरे रूपमें प्रकट होने आदिमें तो बड़ी बात ही क्या है? अवश्य ही *भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण* लोकदृष्टिमें उनके जन्म लेनेके सदृश ही हुआ परंतु वास्तवमें वह जन्म नहीं था वह तो उनका प्रकट होना था। श्रीमद्भागवत (१०। १४। ५५)-में श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

> कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
> जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

'आप इन श्रीकृष्णको सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके आत्मा जानें। इस लोकमें भक्तजनोंके उद्धारके लिये ये भगवान् अपनी मायासे देहधारी-से प्रतीत होते हैं।'

जब भगवान् दिव्यरूपसे प्रकट हुए, तब माता देवकी उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति करती हुई कहती है—

> उपसंहर *विश्वात्मन्नदो* रूपमलौकिकम्।
> शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥
> (श्रीमद्भा० । १०। ३। ३०)

'हे विश्वात्मन्! आप शंख चक्र गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजावाले अपने अद्भुत रूपको छिपा लीजिये।' देवकीके प्रार्थना करनेपर भगवान्‌ने अपने चतुर्भुजरूपको

छिपाकर द्विभुज बालकका रूप धारण कर लिया—

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३। ४६)

इससे उनका प्रकट होना ही स्पष्ट होता है। गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अर्जुनके प्रार्थना करनेपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखलाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमें पुनः द्विभुजरूप होकर दर्शन दिये। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान्के प्रकट और अन्तर्धान होनेको जो लोग मनुष्योंके जन्म और मरणके सदृश समझते हैं, वे भगवान्के तत्त्वको नहीं जानते। अपने जन्मकी दिव्यताको दिखलाते हुए भगवान् गीता (४। ६)-में अर्जुनके प्रति कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

इस श्लोकमें 'अपि' और 'सन्' शब्दोंसे भगवान्का यह कथन स्पष्ट है कि मेरे प्रकट होनेके तत्त्वको नहीं जाननेवाले मूर्खोंको मैं अजन्मा होता हुआ भी जन्मता और मरता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ। जब मैं सगुणरूपसे अन्तर्धान होता हूँ, तब मेरे इस छिपनेके रहस्यको न जाननेवाले मूर्खोंकी दृष्टिमें मैं अविनाशी विनाशभावको प्राप्त होता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ और जब मैं लीलासे साधारणरूपमें प्रकट होता हूँ, तब उसका यथार्थ मर्म न जाननेवाले मूढ़ोंकी दृष्टिमें मैं सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा सारे भूतप्राणियोंका ईश्वर होता हुआ भी साधारण मनुष्य-सा प्रतीत होता हूँ।

उपर्युक्त वर्णनसे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान्का प्रकट होना और अन्तर्धान होना मनुष्योंकी उत्पत्ति और विनाशके सदृश नहीं है। उनका जन्म मनुष्योंके जन्मकी भाँति होता तो एक क्षणके अंदर एक शरीरसे दूसरे शरीरका परिवर्तन करना—जैसे उन्होंने देवकी और अर्जुनके सामने किया था, कभी नहीं बन सकता।

मनुष्योंके शरीरके विनाशकी तरह भगवान्के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये, जिस शरीरका विनाश होता है वह तो यहीं पड़ा रहता है, किंतु देवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके अदृश्य हो जानेपर उन वपुओंकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जिस देहसे एक सौ पचीस वर्षतक लोकहितके लिये विविध लीलाएँ कीं वह देह भी अन्तमें नहीं मिला। वे उसी लीलामय वपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोंने इच्छा की, तब-तब उसी श्यामसुन्दर-शरीरसे पुनः प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। यदि उनकी देहका विनाश हो गया होता तो परमधाम पधारनेके अनन्तर इस प्रकार पुनः प्रकट होना कैसे बनता?

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्का अन्तर्धान होना अपने परमधाममें सिधारना है, न कि मनुष्यदेहोंकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवत (११। ३१। ६)-में भी लिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥

'भगवान् योगधारणाजनित अग्निके द्वारा अपनी लोकाभिराम मोहिनी मूर्तिको भस्म किये बिना ही इस अपने शरीरसे ही परमधामको पधार गये।'

भगवान्का प्राकट्य भूतप्राणियोंकी उत्पत्तिकी अपेक्षा तो नहीं, अपितु योगियोंके प्रकट होनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त विलक्षण है। वह जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। भगवान् मूल प्रकृतिको अपने अधीन किये हुए ही अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं। जगत्के छोटे-बड़े सभी चराचर जीव प्रकृतिके और अपने गुण, कर्म स्वभावके वशमें हुए प्रारब्धके अनुसार सुख-दुःखादि भोगोंको भोगते हैं। यद्यपि योगीजन साधारण मनुष्योंकी भाँति ईश्वरकी मायाके और अपने स्वभावके पराधीन तो नहीं हैं, तथापि उनका जन्म भी मूल प्रकृतिको वशमें करके ईश्वरकी भाँति लीलामात्र नहीं होता। परंतु परमात्मा किसीके वशमें होकर प्रकट नहीं होते। वे अपनी इच्छासे ही अवतरित होते हैं, इसीलिये भगवान्ने गीता (४। ६)-में कहा है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

ईश्वरका प्रकट होना उनकी लीला है और जीवोंका जन्म लेना दुःखमय है। ईश्वर प्रकट होनेमें सर्वथा स्वतन्त्र हैं और जीव जन्म लेनेमें सर्वथा परतन्त्र हैं। ईश्वरके जन्ममें हेतु है जीवोंपर उनकी अहैतुकी दया और जीवोंके जन्ममें हेतु है उनके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म। जीवोंके शरीर अनित्य पापमय रोगग्रस्त लौकिक और पाञ्चभौतिक होते हैं एवं ईश्वरका शरीर परम दिव्य अप्राकृत होता है। वह पाञ्चभौतिक नहीं होता। श्रीमद्भागवत (१०। १४। २)-में ब्रह्माजी कहते हैं—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥

'हे देव! आपके इस दिव्य प्रकट देहकी महिमाको भी कोई नहीं जान सकता, जिसकी रचना पञ्चभूतोंसे न होकर मुझपर अनुग्रह करनेके लिये अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार ही हुई है। फिर आपके उस साक्षात् आत्मसुखानुभव अर्थात् विज्ञानानन्दघन स्वरूपको तो हम लोग समाधिके द्वारा भी नहीं जान सकते।'

इससे भी यह बात समझमें आती है कि भगवान्‌का शरीर लौकिक पञ्चभूतोंसे बना हुआ नहीं था। वह तो उनका खास सङ्कल्प है, दिव्य प्रकृतियोंसे बना है, पाप-पुण्यसे रहित होनेके कारण अनामय अर्थात् रोगसे रहित एवं विशुद्ध है। विज्ञानानन्दघन परमात्माके सगुणरूपमें प्रकट होनेके कारण ही उस रूपको आनन्दमय कहा है। सम्पूर्ण अनन्त आनन्द ही मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गया है या यों समझिये कि साक्षात् प्रेम ही दिव्य मूर्ति धारण कर प्रकट हो गया है। इसीसे जो उस आनन्द और प्रेमार्णव श्यामसुन्दर दिव्य शरीरका तत्त्व जान लेता है, वह प्रेममें मुग्ध हो जाता है, आनन्दमय बन जाता है। प्रेम और आनन्द वास्तवमें एक ही चीज है, क्योंकि प्रेमसे ही आनन्द होता है। प्रकृतिके सम्बन्ध बिना मनुष्यकी चर्मदृष्टिसे वे दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। इसलिये परमेश्वर अपनी प्रकृतिके शुद्ध सत्त्वको साथ लिये हुए प्रकट होते हैं अर्थात् जिन दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिको योगी लोगोंको अनुभव होता है, उन्हीं दिव्य धातुओंसे सम्बन्ध किये हुए भगवान् प्रकट होते हैं और भक्तोंपर अनुग्रह करके वे विज्ञानानन्दघन परमात्मा जब अपने भक्तोंको दर्शन देकर उनसे वार्तालाप करते हैं, तब अपनी लीलासे उपर्युक्त दिव्य तन्मात्राओंको स्वाधीन करके ही वे प्रकट हुआ करते हैं, क्योंकि नेत्र रूपको देख सकता है, अतएव भगवान्‌को रूपवाला बनना पड़ता है, त्वचा स्पर्शको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को स्पर्शवाला बनना पड़ता है, नासिका गन्धको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को दिव्य गन्धमय-वपु धारण करना पड़ता है। इसी प्रकार मन और बुद्धि मायाका कार्य होनेसे मायासे सम्मिलित वस्तुको ही चिन्तन करने और समझनेमें समर्थ हैं। इसलिये निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्मा प्रकृतिके गुणों-सहित अपने भक्तोंको विशेष ज्ञान करानेके लिये साकार होकर प्रकट होते हैं, प्रकृतिके सहित उस शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माके प्रकट होनेका तत्त्व सबकी समझमें नहीं आता। इसीलिये भगवान्‌ने गीता (७। २५)-में कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित अविनाशी परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानता है, अर्थात् मुझे जन्मने-मरनेवाला मानता है।'

तत्त्वको न जाननेके कारण ही लोग भगवान्‌का अपमान भी किया करते हैं और भगवान्‌के शक्ति-सामर्थ्यकी सीमा बाँधते हुए कह देते हैं कि विज्ञानानन्दघन निराकार परमात्मा साकाररूपसे प्रकट हो ही नहीं सकते। वे साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको परमात्मा न मानकर एक मनुष्यविशेष मानते हैं। भगवान्‌के सम्बन्धमें इस प्रकारकी धारणा किसी चक्रवर्ती विश्व-सम्राट्‌को एक साधारण ताल्लुकदार मानकर उसका अपमान करनेकी भाँति ईश्वरकी अवज्ञा या उनका अपमान करना है। भगवान्‌ने गीता (९। ११)-में कहा भी है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

'सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझको साधारण मनुष्य मानते हैं।'

इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि निराकार सर्वव्यापी भगवान् जीवोंके ऊपर दया करके धर्मकी संस्थापनाके लिये दिव्य साकाररूपसे समय-समयपर अवतरित होते हैं इस प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार परमात्माके दिव्य गुणोंके सहित प्रकट होनेके तत्त्वको जो जानता है वही पुरुष उस परमात्माकी दयासे परमगतिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार भगवान्के जन्मकी अलौकिकता है, उसी प्रकार भगवान्के कर्मोंकी भी अलौकिकता है। इसलिये भगवान्के कर्मोंकी दिव्यता जाननेसे पुरुष परमपदको प्राप्त हो जाता है। भगवान्के कर्मोंमें क्या दिव्यता है उसको जानना क्या है और जाननेसे मुक्ति कैसे होती है इस विषयमें कुछ लिखा जाता है। भगवान्के कर्मोंमें अहेतुकी दया समता, स्वतन्त्रता, उदारता, दक्षता और प्रेम आदि गुण भरे रहनेके कारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या सिद्ध योगियोंकी अपेक्षा भी उनके कर्मोंमें अत्यन्त विलक्षणता होती है। वे सर्वशक्तिमान्, सर्वसामर्थ्यवान् तथा असम्भवको भी सम्भव कर देनेवाले होनेपर भी न्यायविरुद्ध कोई कार्य नहीं करते उन विज्ञानानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने सब भूतप्राणियोंपर परम दया करके धर्मकी स्थापना और जीवोंका कल्याण किया। उनकी प्रत्येक क्रियामें प्रेम एवं दक्षता निष्कामता और दया परिपूर्ण हैं। जब भगवान् वृन्दावनमें थे तब उनकी बाललीलाकी प्रत्येक प्रेममयी क्रियाको देखकर गोप और गोपियाँ मुग्ध हो जाया करती थीं भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको जाननेवाले जितने भी स्त्री-पुरुष थे उनमें कोई एक भी ऐसा नहीं था जो उनकी प्रेममयी लीलाको देखकर मुग्ध न हो गया हो। उनकी मुरलीकी तान सुनकर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षीतक मुग्ध हो जाते थे। उनके स्वर और नाचोंकी चेष्टाएँ ऐसी अद्भुत थीं जिनका किसी मनुष्यमें होना असम्भव है। ऐसे असम्भाव भी उनके कर्मोंकी विलक्षणता देखकर उनके तत्त्वको जाननेवाले प्रेमी भक्त पद-पदपर मुग्ध हुआ करते थे। अर्जुन तो उनके कर्म और आचरणोंपर तथा हाव-भाव-चेष्टाको देख-देखकर इतना मुग्ध हो गया था कि वह सदा उनके इशारेपर कठपुतलीकी भाँति कर्म करनेके लिये तैयार रहता था।

भगवान्के लिये कोई कर्तव्य न होनेपर भी वे केवल जीवोंको सन्मार्गमें लगानेके लिये ही कर्म किया करते हैं। गीता (३। २२)-में भगवान्ने स्वयं कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

'हे अर्जुन! यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है तो भी मैं कर्ममें ही बरतता हूँ।' भगवान्को समता बड़ी प्रिय थी। इसलिये गीता (६। ९)-में भी उन्होंने समताका वर्णन किया है—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

'सुहृद्, मित्र वैरी उदासीन, मध्यस्थ द्वेषी और बन्धुगणोंमें तथा धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी जो समान-भाववाला है वह अति श्रेष्ठ है।'

गीतामें केवल कहा ही नहीं अपितु काम पड़नेपर भगवान्ने अपने मित्र और वैरियोंके साथ बर्ताव भी समताका ही किया। महाभारत युद्धके प्रारम्भमें दुर्योधन और अर्जुन युद्धके लिये मदद माँगने द्वारका गये और दोनोंहीने भगवान्से युद्धमें सहायताकी प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि एक ओर मेरी एक अक्षौहिणी नारायणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ पर मैं युद्धमें हथियार नहीं लूँगा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन और दुर्योधन दोनोंके साथ समान व्यवहार किया। यहाँ यह विचारणीय विषय है कि भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुन कितना अधिक प्रिय था वास्तवमें वे कहनेमात्रको ही दो शरीर थे। महाभारत मौसलपर्व (७। २१-२२)-में श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीवसुदेवजीसे कहा था—

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव।

'जो मैं हूँ वह अर्जुन है और जो अर्जुन है वह मैं हूँ, वह जैसा कहे आप वैसा ही कीजियेगा।' तथा श्रीमद्भगवद्गीता (४।३)-में भी भगवान् कहते हैं—

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

इतना होते हुए भी वे अपने प्रिय सखा अर्जुनके विपक्षमें लड़नेवाले उसके शत्रु दुर्योधनको भी समानभावसे सहायता करनेको तैयार हो गये। जो अपने मित्रका शत्रु होता है वह अपना शत्रु ही समझा जाता है। महाभारत उद्योगपर्व (९१। २८)-में भगवान् श्रीकृष्ण जब सन्धि कराने गये तब उन्होंने स्वयं यह कहा भी था—

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
एकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥

'जो पाण्डवोंका वैरी है वह मेरा वैरी है और जो उनके अनुकूल है वह मेरे अनुकूल है। मैं धर्मात्मा पाण्डवोंसे अलग नहीं हूँ। ऐसा होनेपर भी भगवान् दुर्योधनको सच्चे मनसे सहायता की। संसारमें ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने प्रेमी मित्रके शत्रुको उनसे युद्ध करनेके कार्यमें सहायता दे। परंतु भगवान्‌की समताकी बात विलक्षण थी। इस मददको पाकर दुर्योधन भी अपनेको कृतकृत्य मानने लगा और उसने ऐसा समझा कि मानो मैंने कृष्णको ठग लिया—

कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्।
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिव॥

(महाभारत उद्योगपर्व ७। २४)

भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावको दुर्योधन नहीं जानता था इसलिये उसने इसमें उनकी उदारता और समता तथा महत्ताका तत्त्व न जानकर इसे मूर्खता समझा। जो लोग महान् पुरुषोंके प्रभावको नहीं जानते उनको उन महापुरुषोंकी क्रियाओंके अंदर दया, समता एवं उदारता आदि गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। दुर्योधनके उदाहरणसे यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ भी करते थे उन सबमें समता, निःस्वार्थता तथा अनासक्तता आदि भाव पूर्ण रहते थे इसीसे वे कर्मोंके द्वारा कभी लिपायमान नहीं होते थे। गीता (४। १३-१४)-में उन्होंने कहा भी है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

'हे अर्जुन! गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं उनके कर्ताको भी—मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता ही जान। क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है इसलिये मुझको कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मुझको तत्त्वसे जानता है वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता है।' तथा—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥

(गीता ९। ९)

'हे अर्जुन! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते।'

भगवान्‌की तो बात ही क्या है, तत्त्वको जाननेवाला पुरुष भी कर्मोंसे लिपायमान नहीं होता है। अब यह बात समझनेकी है कि उपर्युक्त श्लोकोंसे तत्त्वको जानना क्या है? वह यही है कि भगवान् श्रीकृष्णकी कर्मोंमें आसक्ति विषमता और फलकी इच्छा नहीं रहती थी। जो मनुष्य यह समझकर कि कर्मोंमें आसक्ति, फलकी इच्छा एवं विषमता ही बन्धनके हेतु हैं इन दोषोंका त्याग करके अहंकाररहित होकर कर्म करता है वही कर्मोंके तत्त्वको जानकर कर्म करता है। इस प्रकार कर्मके तत्त्वको जानकर कर्म करनेवाला कर्मके द्वारा नहीं बँधता। ऐसा समझकर जो स्वयं इन दोषोंका त्याग करके कर्म करता है वही इस तत्त्वको समझता है। जैसे संखिया, पारा आदिके दोषोंको मारकर उनका सेवन करनेवालेको हानिकी जगह परम लाभ पहुँचता है इसी प्रकार विषमता, अभिमान, फलकी इच्छा और आसक्तिका त्यागकर कर्मोंका सेवन करनेवाला मनुष्य उनसे न बँधकर मुक्तिको प्राप्त होता है।

दूधमें विष मिला हुआ है यह जानकर कोई भी मनुष्य उस दूधका पान नहीं करता है यदि करता है तो उसे अत्यन्त मूढ़ समझना चाहिये। इसी प्रकार कर्मोंमें आसक्ति, कर्तृत्व-अभिमान, फलकी इच्छा और विषमता आदि दोष

विपसे भी अधिक विप हाकर मनुष्यको वार-वार मृत्युक चक्करम डालनवाले ह, जा पुरुप इस प्रकार समझता हे वह उपर्युक्त दोपासे मुक्त होकर कभी कर्म नहीं करता।

भगवान् श्रीकृष्णके कर्मोंम और भी अनेक विचित्रताएँ हे, जिनको हम नहीं जान सकते और जो यत्किचित् जानते हे, उसका भी समझना बहुत कठिन है। हम तो चीज ही क्या हे, भगवान्की लीलाआको देखकर ऋपि, मुनि और देवतागण भी मोहित हो जाया करते थे। श्रीमद्भागवतम लिखा हे कि एक समय श्रीकृष्णचन्द्रजीकी लीलाआका देखकर ब्रह्माजीको भी मोह हो गया था उन्हाने ग्वाल-वालाके सहित बछडोका ले जाकर एक कन्दरामे रख दिया महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह जानकर तुरत वैसे ही दूसरे ग्वाल-बाल और बछडे रच लिये और गौएँ तथा गोपियो आदि—किसीको यह मालूम नहीं हुआ कि ये बालक तथा बछडे दूसरे ही हैं।

वास्तवम ब्रह्माजी-जेसे महान् देव ईश्वरके विपयमे मोहित हो जायँ यह बात युक्तिसे सम्भव नहीं मालूम होती किंतु ईश्वरक लिय काई बात भी असम्भव नहीं है। वे असम्भवका भी सम्भव करक दिखा सकत हैं। विचारनेकी बात हे कि इस प्रकारके अलौकिक तथा अद्भुत कर्म साधारण मनुष्यकी तो वात ही क्या है, योगी लाग भी नहीं कर सकते।

परमात्माके जन्म और कर्मकी दिव्यताका विपय बडा अलौकिक और रहस्यमय है। अर्जुन भगवान्का अत्यन्त प्रिय सखा था, इसीलिय भगवान्ने यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य अर्जुनके प्रति कहा था।

इस प्रकार भगवान्के जन्म और कर्मकी दिव्यताको जो तत्त्वसे जानता है, वही भगवान्को तत्त्वसे जानता है। अतएव हम सबको इसके तत्त्वको समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। जो पुरुप इस तत्त्वका जितना ही अधिक समझेगा वह उतना ही आनन्दमे मुग्ध होता हुआ परमात्माके नजदीक पहुँचगा। उसके कर्मोंम भी अलौकिकता भासने लगेगी और वह भगवान्के प्रभावको जानकर प्रेममे मुग्ध हो शीघ्र ही परमगतिको प्राप्त हो जायगा।

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन एवं भगवल्लीला-चिन्तनसे ही कल्याण सम्भव है

(पूज्यपाद नित्यलीलालीन श्रीहरिबाबाजी महाराजके सदुपदेश)

पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी महाराज एक महान् सिद्ध सत थे। वे श्रीभगवन्नाम-सकीर्तन तथा भगवल्लीला-चिन्तनको कलियुगमे एकमात्र कल्याणका साधन मानते थे। वे स्वय रासलीलाके रसिक सत थे। श्रीरासलीलामे घटो-घटा खड रहकर वे अपन हाथासे भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाजीको पखा झला करते थे। बाँध (गवा—बँदायू)-मे आयोजित रासलीला-समाराहम हमन एक बार श्रीभगवल्लीलाक महत्त्वपर उनक उपदश लिख लिये थे जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

श्रीराधा-कृष्णका लालाका रसास्वादन करनकी क्षमता वड भाग्यवान् व्यक्तिको प्राप्त हाती है। उन लागाके मन वडे मलिन हैं जा श्रीकृष्ण-राधाम स्त्री-पुरुपका भाव करत हैं। इसीलिय श्रीरासलीलाका रसास्वादन करनसे पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण और जगज्जननी श्रीराधाजीके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर लेना बहुत जरूरी है। इन लीलाआको जाननेक लिये परमोच्च भावासे युक्त निर्मल मनका होना जरूरी है।

वर्तमान समयमे चारा ओर दूपित वातावरण बढता जा रहा हे। सिनेमा तथा अश्लील पुस्तकाक कारण हृदय और मस्तिष्क निरन्तर दूपित होता जा रहा है। ऐसी स्थितिम भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् श्रीराम महादव शकर एव पार्वतीजी आदिकी दिव्य लीलाओका चिन्तन करना चाहिये। यदि हमारा मन भगवान्की दिव्य लीलाओमे रमने लगगा तो सासारिक दृश्य हमारी आँखोम स्वत चुभने लगगे।

भगवल्लीलाके प्रति हमार हृदयम तभी रुचि उत्पन्न हा सकती है जव हम अपने हृदयका पवित्र बनाय। हृदयको पावन वनानेका एकमात्र साधन श्रीभगवन्नाम-सकीर्तन तथा

नाम-जप है। पावन हुआ हृदय ही भगवान्‌की लीलाओंको धारण कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभुजी महाराजने अपने भक्तोंको पूरी तरह प्रभु-प्रेममें तन्मय होकर उनकी लीला-माधुरीको हृदयमें विराजित कर संकीर्तन करनेकी शिक्षा दी थी। मुखमें प्रभुके नामका उच्चारण तथा हृदय, मन और आँखोंमें प्रभुकी छविको धारण करनेवाला व्यक्ति सहजहीमें प्रभुके अनुग्रहका अधिकारी बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः।
सततं कीर्तयेद् भूमि याति मल्लयतां हि सः॥

जो प्राणी नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव आदि नामोंका सदा कीर्तन करता है, वह मुझमें लीन होनेवाले भक्तोंकी भूमिका प्राप्त हो जाता है।

अतः कलियुगमें सदैव मुँहमें भगवान्‌के पवित्र नामका उच्चारण करना चाहिये तथा एकाग्र होकर हृदयमें भगवान्‌की कोई भी अपनी रुचिकी दिव्य लीलाका ध्यान करना चाहिये।

जितने भी अवतार हुए हैं उन सबके आधार श्रीकृष्ण हैं। जिसे वेदान्तमें सच्चिदानन्द कहा जाता है, वही श्रीकृष्ण हैं, अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, समस्त शक्तियोंके आधार एवं चिन्मय हैं। गोपियों और ग्वालोंके साथ लीला करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूर्ण अवतार हैं। भगवान् विभिन्न रूपोंमें लीला करनेके लिये ही अवतार लेते हैं। इसीलिये वे 'लीलावतार' कहलाते हैं।

जब समष्टि लगन होती है, तब भगवान् अवतार लेते हैं और जबतक लगन होती है तबतक उसके भावके अनुसार लीलाके माध्यमसे दर्शन देते हैं। हमें शुद्ध भावसे भगवान्‌की लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उनकी लीलामें सुध-बुध खो देनेका अभ्यास करना चाहिये। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी महाराजकी तरह यदि हम भगवन्नाम-संकीर्तनमें तन्मय हो जायँ तथा केवल भगवान्‌की लीलाका ही निरन्तर चिन्तन करते रहें तो हम बिना किसी संदेहके भगवान्‌की शरणके अधिकारी बन जायँगे।

श्रीकृष्ण साक्षात् जो हैं वही श्रीराधिका हैं और श्रीराधिका जो हैं वही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण राधिकासे भिन्न नहीं हैं। शक्ति और शक्तिवाला जिस प्रकार अभिन्न है, गुलाबका फूल और उसकी सुगन्ध जिस प्रकार अभिन्न है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और राधिकाजी अभिन्न हैं। श्रीजीके कारण ही श्रीकृष्ण पूर्ण हैं, आनन्दकन्द हैं। श्रीजीको शास्त्रोंमें 'ह्लादिनीशक्ति' कहा गया है। ह्लादिनीशक्तिका सार दिव्य प्रेम है। जो व्यक्ति सुबहसे शामतक गंदी-गंदी फिल्में देखता है, गंदी कहानियाँ पढ़ता है, दूषित वातावरणमें रहता है, वह श्रीरामलीला, श्रीकृष्णलीलाके महत्त्वको कदापि नहीं समझ सकता। भक्ष्याभक्ष्यके सेवन करनेवाले कलुषित भावनाओंसे ग्रस्त होनेके कारण भगवान्‌की लीलाओंके प्रति शंकाग्रस्त रहते हैं। इसलिये यदि भगवल्लीलाओंका आनन्द उठाना हो तो सबसे पहले अपने खान-पानको शुद्ध करना चाहिये। मांस, मदिरा, अंडा, प्याज, लहसुन, तम्बाकू-जैसे तामसिक राक्षसी पदार्थोंका तुरंत त्याग करनेका दृढ़ संकल्प लेना चाहिये। भगवान्‌को भोग लगाकर शुद्ध सात्त्विक आहार 'प्रसाद'के रूपमें ग्रहण करना चाहिये। परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर कदापि नहीं देखना चाहिये। परस्त्रियोंमें, माता-बहनके रूपके दर्शन करने चाहिये। इस प्रकार इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेके उपरान्त ही हम भगवान्‌की दिव्य लीलाओंका रसपान करनेके अधिकारी बन सकते हैं।

जिस प्रकार बच्चा रोता है तो माता तुरंत उसे गोदमें लेने दौड़ पड़ती है, उसी प्रकार यदि हम भगवान्‌का ध्यानकर उनके प्रेममें अश्रुपात करने लगें तो परम कृपालु लीलामय भगवान् तुरंत हमें अपनी शरणरूपी गोदमें लेनेको तत्पर हो उठेंगे। जो जीव भगवान्‌से प्रेम रखता है, भगवान्‌की शरणमें जानेको लालायित होता है, भगवान् तुरंत उसे शरण देनेको उसतक पहुँच जाते हैं।

इसलिये सबसे पहले अपने हृदय तथा मनको निष्कपट बनाओ, अहंकारको पास न फटकने दो। अभक्ष्य पदार्थों और तम्बाकू-जैसे दुर्व्यसनोंको पूरी तरह त्याग दो। दूसरोंके दुःखमें दुःखी तथा सुखमें सुखी होनेकी प्रवृत्ति अपनाओ। फिर देखना कि प्रभु मात्र नाम-संकीर्तन तथा लीला-चिन्तनके माध्यमसे तुम्हारे पास स्वयं चले आयेंगे। यही भगवल्लीलाओंका सार-तत्त्व है।

[प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा]

भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जगत्‌के बन्धनसे मुक्त होनेके लिये निःसंकल्प होना बहुत आवश्यक है। जबतक जगत्‌के संकल्प होते रहते हैं, तबतक मनकी जागतिक क्रिया बंद नहीं होती, परंतु मनका निःसंकल्प होना सहज बात नहीं है, फिर भी निःसंकल्प होनेका एक दूसरा बहुत सीधा रास्ता है—संकल्पोंसे लड़ना छोड़ दें, संकल्पोंका विषय बदल दें। जगत्‌के स्थानपर भगवत्-संकल्प करें। भगवान्‌का लीला-गुणानुवाद, श्रवण, पठन, मनन किसलिये? क्या व्यासजी—जिन्होंने वेदोंका विभाग किया, ब्रह्मसूत्रोंकी रचना की, जो ब्रह्मसूत्र समस्त वेदान्तवादियोंके आदर्श हैं, वे इतने निकम्मे बैठे थे कि वेदान्तका परिशीलन छोड़कर वे लीला-कथाका गान करें। क्या नारदजी इतने अल्पबुद्धि व्यक्ति थे, जो व्यासजीको शान्ति प्राप्त करनेके लिये लीला-कथाका गान करनेका अनुरोध करें। परंतु व्यासजी अपनेको अशान्त पाते हैं। यद्यपि संकल्पोंका अभाव व्यासजीमें स्वाभाविक माना जाता है, क्योंकि व्यासजी भगवदवतार हैं, वेदान्त सूत्रोंके निर्माता हैं, उनमें संकल्प क्या हो? तथापि वे अशान्त हैं। नारदजी कहते हैं कि आपको शान्ति इसलिये नहीं मिली कि आपने ज्ञान-विज्ञानका निरूपण किया, परंतु भगवत्-लीला-रसका पान न किया, न कराया, इसीलिये आपका चित्त अशान्त है।

इससे तो बस यही समझना चाहिये कि ये व्यास, शुकदेव, वसिष्ठ और नारद आदि ऐसे साधारण लोग नहीं थे, जो बहुत ऊँची चीजको छोड़कर नीची चीजकी ओर चलें, परंतु हमारा मन तो प्राकृतिक मन है और अमलात्मा मुनियोंका मन तो मनोनाशके द्वारा मिट चुका है। उस मिटे हुए मनके स्थानपर भगवान्‌के गुण, सौन्दर्य आदिका चिन्तन करनेके लिये जो मन बनता है, वह भगवान्‌का दिया हुआ मन बनता है।

उत्तम साधन यह है कि आप केवल भगवत्-सम्बन्धी संकल्प करें। जैसे सन्ध्याका समय है, बछड़ोंको लेकर भगवान् लौटेंगे। भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करें कि भगवान् आ रहे हैं, अभी-अभी भगवान् आनेवाले हैं—इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये। अब मनमें वही भाव, वही संकल्प-विकल्प आते रहें—अब वे बछड़ोंके पीछे आते होंगे। अब मुरली बजाते होंगे। उनकी लीलाओंका अन्त नहीं है। अपने मनमें जैसी लीला जब आवे, किसी क्रमका बन्धन नहीं है कि अमुक प्रकारके क्रमसे ही भगवान्‌की लीलाका चिन्तन हो। जब जैसी मनमें आवे भगवान्‌की लीलाओंका संकल्प-विकल्प मनमें होता रहे, फिर तो मनमें यही चिन्तन होता रहेगा कि हम भी खेलें, हमको भी भगवान् अपना परिकर बना लें। यह साधनाकी बात है।

निकुंज-साधनाकी बात मोटे-रूपमें कह देता हूँ। निकुंज-साधनामें क्या करना पड़ता है। इसमें संकल्पज देहकी सेवाका निर्माण होता है। पहले तो संकल्प करना पड़ता है—'भगवान्‌के मण्डलमें निकुंजका जो मण्डल है, बड़ा विस्तृत है और उसके बहुत-से स्तर हैं, उनमें एक मंजरी-मण्डल है। यह जो मंजरी-भाव है, बड़ा ऊँचा भाव है। उसमें निज-सुखका अभाव है। वे केवल राधा-माधवका सुख-सम्पादन करनेमें ही लगी रहती हैं, उन्हें अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। उन मंजरियोंमेंसे किसी एकको भावराज्यमें भावसे आचार्यत्वके पदपर वरण करें—गुरु मानें। अपनेको संकल्पसे किसी मंजरी-देहमें ले जायँ, मंजरी-कल्पना करें। मंजरीमें उसके रूप-रंग इत्यादिकी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मंजरी-कल्पना करे और उक्त गुरु-मंजरीके साथ सेवामें हिस्सा मिले, ऐसी प्रार्थना करें तथा यह प्रार्थना उस भावराज्यमें संकल्पसे हो, जब स्वीकार हो जाय, तब सेवा प्रारम्भ करें। पहले बाहरकी सेवा प्राप्त होगी। कहीं निकुंजके बाहर झाड़ू इत्यादि लगा दी जाय, कहीं कुछ कटक साफ कर दिये जायँ। पीकदानीको लेकर फेंक दिया जाय। ये बड़े लोगोंकी बातें नहीं, जो बड़े ज्ञान-निष्ठित हैं—उनके लिये तो ये नीचे पागल लोगोंकी चीज हैं। ऐसा करते-करते क्या होगा, उसे मंजरीत्व प्राप्त होगा, पहले

कल्पना-राज्यमें तत्पश्चात् भावराज्यमें। इसके लिये बड़े शास्त्र हैं। एक रासोल्लास-तन्त्र है उसमें बड़ी विधि है और केवल विधिसे काम नहीं चलता विधिवत् साधनामें प्रवृत्त होना पड़ता है फिर क्या होता है कि मंजरी-देहकी प्राप्ति हो जाती है। पहले कल्पना-मंजरी फिर भाव-मंजरी फिर मंजरी देहकी प्राप्ति हो जाती है। इस देहके रहते जब कभी-कभी ऐसी तीव्र इच्छा हो या जब वहाँकी आज्ञा हो तब उस गुरु-मंजरीका अनुकरण करते हुए जो सेवा बतायी जाय उस सेवामें वह साधक नियुक्त हो जाता है। फिर ऐसा होते-होते उस मंजरीके साथ उसका निकुंजमें प्रवेशका अधिकार मिल जाता है।

यह निकुंजमें प्रवेशका अधिकार मामूली चीज नहीं है। जो पुरियोंका अन्तःपुर है उसमें भी सबको प्रवेशाधिकार नहीं है। जैसे मथुरा द्वारका अयोध्या इत्यादि—ये भगवान्‌की लीला-पुरियाँ हैं। व्रज तो वन है, गोष्ठ है वृन्दावन है। यहाँके निकुंज दो प्रकारके हैं धातुनिर्मित निकुंज और रत्ननिर्मित निकुंज। इसके अतिरिक्त बहुत-से निकुंज यहाँ लता-पुष्पनिर्मित हैं। यहाँका अधिकार मिलना तो बहुत कठिन बात है। पुरियोंके अन्तःपुरमें भी सबको प्रवेशका अधिकार नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें जब संजय जाते हैं तो वहाँका वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान्‌के उस अन्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार प्रद्युम्न तथा अभिमन्युको भी नहीं है, जो कि पुत्र हैं। संजय इत्यादि जो भगवान्‌के विशिष्ट अंतरंग सहचर हैं, इन्हें मंजरी-स्थानापन्न ही समझिये। इनको अन्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार है। उसने वहाँका दृश्य देखा। अर्जुन श्रीकृष्ण सत्यभामा और द्रौपदीकी अंतरंग-लीलाका दृश्य। निकुंजमें प्रवेशका अधिकार हर एकको नहीं होता। इसमें प्रवेशका अधिकार जिसे मंजरी-देहसे प्राप्त हो जाता है उसे वैष्णव साधनामें बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है।

इसलिये संकल्पका परित्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवत्-लीला-सम्बन्धी संकल्प और उनमें भी सर्वोत्तम निर्दोष बाल-लीला है—भगवान्‌का बाल-चरित। भगवान्‌के प्राकट्यसे लेकर गोवर्धन उठानेतकका जो बाल-चरित है वह सर्वथा निर्दोष, सबके कामकी चीज, घरमें देखी हुई, अपने बच्चोंकी क्रीडा उसीमें भगवान्‌को देखे। विशेष कुछ करना-कराना नहीं है। उस तरहके संकल्प होने लगे तो क्या होगा? कुछ दिनों बाद ऐसे ही दृश्य आने लगेंगे। यह करके देखनेकी चीज है। यह वही कर सकता है जो करना चाहे। यदि मनमें तीव्र आकांक्षा पैदा हो जाय तो इस सीधी चीज—घरमें देखी हुई चीजको हम भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। फिर क्या होगा कि हमें अकल्पित लीला-दर्शन होने लगेंगे। इस प्रकारकी लीला चलते-फिरते उठते-बैठते, सोते-जागते—हर समय हमारे मनमें आने लगेगी। ध्यान करना नहीं पड़ेगा, लीलाके वे दृश्य जबरदस्ती सामने आने लगेंगे पर आने लगेंगे उनके सामने जो उनको पकड़ना चाहें। उपेक्षा करेंगे तो वहाँ मनमें नहीं आयेंगे और यदि कहीं मनमें यह हो जाय कि आज तो बड़ा हर्ज हो गया बड़ा जरूरी काम था तो भगवान् तो किसीका भी जरूरी काम छीनना नहीं चाहते। जब भगवान्‌की जरूरत पैदा हो तब भगवान्‌को पुकार लेना। भगवान् तो हर समय तैयार हैं।

गोपाङ्गनाओंकी क्या कम परीक्षा हुई ये परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी लेकिन वे इसमें उत्तीर्ण हो गयीं। इस प्रकारके प्रलोभन भय सामने आते हैं। रासमण्डलकी परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी। भगवान् कहते हैं—'नरकमें जाओगी पतियोंको छोड़कर आयी हो ये किसी पतिव्रता स्त्रीका काम नहीं है।' स्वयं भगवान् कहते हैं कोई दूसरा नहीं कहता है कोई भी व्यक्ति उसी वक्त डर जाय काँप जाय। सबमें बड़ी परीक्षा होती है स्वसुखकी। यह बड़ी महीन चीज है। मान लेते हैं कि स्वसुखकी वाञ्छा नहीं है लेकिन स्वसुखकी वाञ्छा ही वहाँ काम करानेमें लगी रहती है। ये तो पीछेकी चीज है। हम तो बहुत पहलेकी बात कहते हैं कि मनमें भगवान्‌का संकल्प करें। आत्माका स्वरूप क्या है कैसा है—ये जाननेकी आवश्यकता नहीं है। ये जिसको जितना जनानेकी आवश्यकता होगी वे जना देंगे और नहीं जनाना चाहें तो कहेंगे कि भई! तुम ज्ञानवान् हो जहाँ जाते हो वहाँ तुम्हें ले चलेंगे तुम इनको जानकर क्या करोगे? भगवान् तो कहते हैं—**सर्वधर्मान् परित्यज्य०**' मेरी शरणमें आ जा मैं

तुम्हे मुक्त कर दूँगा। लकिन सकल्पोका सब तरहसे विनाश होना मामूली बात नहीं है। यदि जगत्का सकल्प आ गया तो जगत्का चिन्तन त्यागके लिय भी न कर। यह मनोवैज्ञानिकाका सिद्धान्त है कि त्यागके लिये भी त्यागके योग्य वस्तुका चिन्तन अधिक न करे, क्याकि इसस त्याग तो होगा नही, उलटे उस वस्तुका चिन्तन करते रहनेसे वह वस्तु मनके सकल्पमे आ जायगी। इसलिये सकल्पाके विषयको बदलना होगा। प्राकृत सकल्पोके स्थानपर भगवत्-सकल्प लाने हाग। भगवान्का चिन्तन किसी प्रकारसे चित्तम आवे। गीताक विभूतियोगम भगवान्ने एक जगह कहा—

द्यूत छलयतामस्मि।

—जुआ बताया अपनेका। किसी भी मनु, याज्ञवल्क्य या पराशरस्मृतिम कहा भी जुएका समर्थन हो ता वताइये। पर भगवान् कहते हैं कि 'म जुआ हूँ।' क्या कहते हैं? किनमे जुआ मैं हूँ—छल करनेवालाम 'छलयताम्'। जुआरियास काई कह कि गीताभवनम बैठो, अमुक-अमुक स्थानस महात्मा आय है, जाकर उनक उपदेश सुना, तो उन्ह फुरसत नहीं हे। पर वे यदि कहते ह—भइया एक काम करो—जुआ खेलते हो? हाँ खेलते हैं। पासा फकते हा? हाँ फेकत है। तो प्रत्येक पासेम कहो—य जुआ भगवान्, तो भगवदाकार-वृत्ति हो गयी। भगवदाकार-वृत्ति हुई कि जुआ छूटा। करना भी यही है। भगवदाकार-वृत्ति होनी चाहिय। इस प्रकार जुआरीकी वृत्ति भगवदाकार हो गयी। भगवान् थे ही काई झूठी बात ता हे नहीं। अत सकल्पामे भगवत्-सम्बन्धा विषयाको लानेकी चष्टा करना चाहिय। सीधी बात यह कि इन्द्रियाम आनेवाल भगवान्क सौन्दर्य-माधुर्यका सकल्प कर। वडा सुन्दर भगवान्का सौन्दर्य। जसा-जसा अपन मनम आव उसी प्रकारक भगवान्क सौन्दयकी कल्पना कर। उस कल्पित रूपका बार-बार अपन मनम दख। उस रूपम मन न लग तो उनकी लालाका दख—

अर खल ही रह हैं—गुल्ली-डडा खल रह हैं आँख-मिचौनी खल रह हैं सखाआक साथ खल रह हैं। य जा भगवान् हैं बडी ठास चाज हैं और सब चाज ता तरन हैं उडनवाली हैं कवल हवा भरा हैं। भगवान्का मनम भरन लगो, बेकारकी हवा अपने-आप निकलने लगगी। भगवान् भर गये हवा निकल गयी। भगवान् मनम जितना भर जायँगे उतना निकलगे नहीं। भगवान्को पकडना आसान है, छाडना आसान नहीं है। भगवान् पकडना जानते हैं छोडना नहीं जानत। मनम भगवान् जितना भर गये उतना स्थान उन्हाने ले लिया, जो उनके अधिकारम आ गया वे उसके सदाके लिय मालिक बन गय। इसलिय भगवत्-सम्बन्धी सकल्प जैसे-जैसे मनम आवे उसी प्रकार करता रहे। इससे भगवत्-सकल्पका मन हा जायगा—उसकी प्रवृत्ति दृढ हो जायगी। मनकी एक बडी सुन्दर स्थिति यह है कि यह तदाकार हाना जानता हे और जिसमे लगाया जाता है उसीक आकारका बन जाता है—तदाकार ही हा जाता है। ब्रह्माकार भी विषयाकार भी।

मनको भोगसे हटाकर भगवान्मे लगाना है। अभी तो एसा हमारा बुरा अभ्यास है कि भोगाम पद-पदपर दु खका अनुभव हा रहा हे तब भी हम उन्हींकी ओर खिचते जाते हे। लकिन भगवत्-सम्बन्धी सकल्प करनेका रस मनको चखा दिया जाय तो मन वह रस अपने-आप लेने लगेगा। चित्त चाहता है शान्ति, चित्त चाहता है आनन्द चित्त चाहता हे द्वन्द्वरहित सुख। ऐसा सुख—आत्यन्तिक नित्य-पूर्ण-सुख सिवाय भगवान्के और कहीं नहीं हे। जो सुखस्वरूप-आनन्दरूप भगवान् हैं उन भगवान्के सम्पर्कका सुख जब चित्तम ठहरने लगे तो अपने-आप उसम एक नवीन सुखकी अनुभूति होने लगगी जो अत्यन्त विलक्षण होगा। जिसन बहुत कमजार एव पतली-सा बत्तीकी रोशनाम रहनका अभ्यास डाला हो तो एक बार तो बिजली दखकर वह चौंधिया ही जायगा। उसे इस राशनीका अनुभव ही नहीं है लेकिन जब बिजली दख लेगा उसका प्रकाश मालूम हा जायगा ता साचेगा इसम न बत्ती चाहिये न तेल चाहिय न दीपक चाहिय और न हवाका भय। अब इतनी अच्छी राशनाक रहत फिर बत्तीको क्या याद करगा?

इसा प्रकार हमारा मन भगवान्का सकल्प करनवाला बनन लग ता क्या हागा ससार उसमस निकलने लगगा। जा य भगवद्-भावका राज्य है वह प्रमका राज्य है। इस राज्य

भगवान्‌को प्रियतम मानकर उनकी लीलाओका सकल्प करना पडता है। मन तो मानता नहीं, मन अभी भरा नहीं है। मनम भगवान्‌का बार-बार लाये तो इससे मन भगवान्‌मे जल्दी लगने लगेगा।

भगवान्‌की ऐसी चरित्र-कथा है कि इसमे सबका मन लगेगा। इस चरित्रम सबका मन स्वाभाविक लगता है। चीज यह मधुर है और इसमे त्यागवाली कठिनता नहीं है। त्याग चाहे कैसा भी हो, मनुष्यको त्याग करना पडता ह। यह भगवद्-भाव जब मिलेगा तो जगत्‌के वर्तमान भावको खा जायगा। चाहे जगत् इसी रूपमे रहे, पर उसकी दृष्टिम यह भगवत्-स्वरूप ही बन जायगा। जगत्‌मे प्रत्येक क्षण प्रत्येक दशामे भगवत्-लीलाके दर्शन होगे। सब जगह भगवान् खेल रह हैं, सब जगह भगवान्‌का लीला-विलास हो रहा है और सभी परिस्थितियोमे उनका लीला-विहार हो रहा है। अत मृत्युमे भी, जीवनम भी, सुखमे भी दु खम भी प्रेमी अपने प्रेमास्पदका सुखद स्पर्श प्राप्त करता रहेगा। जो स्पर्श केवल हाथसे होता है, वह ता स्थूल स्पर्श है। सूक्ष्म स्पर्श या वास्तविक स्पर्शसे अर्थ है—आत्मस्पर्श, ब्रह्मस्पर्श एव भगवत्-स्पर्श। यह स्पर्श इतना सुखद है कि हम लोगाको इसकी कल्पना नहीं है। उसे व्यक्त करनेके लिये शब्द नहीं है। शब्द तो मनकी भाषाके भी नहीं होते हैं और अध्यात्मका कोई शब्द है नहीं। इनको तो सकेतासे, शाखाचन्द्रन्यायसे बताया जाता है—यह गूँगेके गुडके स्वाद-जैस अवर्ण्य है। भगवान्‌के सम्पर्कका जो सुख है, उसे बतलाया नहीं जा सकता—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रा० च० मा० १। २२९। २)

इसको अपने सकल्पामे जैसा आये वैसा ही करना शुरू कर द। अपनी कल्पनाके अनुसार करनसे क्या होगा? यह भाव उत्पन्न होने लगगा—भगवान् सत्य है सर्वमय है, सर्वत्र है, सबके लिये है और सब समय है। भगवान्-सम्बन्धी सकल्प भी यदि भगवान् चाह तो सत्य कर सकते है क्योकि वे वहाँपर हे—सकल्पित जगत्‌म भी तथा उस सकल्पित ध्यानमे भी वे तो हें ही। भगवान्‌का वहाँ अभाव नहीं है, इसलिये जब भगवान्‌का सकल्प करने लगेगे ता सकल्पके अनुसार उनका दर्शन हाने लगेगा। यह करनेकी चीज हैं। जब ठीक ऐसा ही होने लगेगा, तब उसम एक ऐसे आनन्द विशेषकी अनुभूति होगी कि, फिर उसके बाद तो वहाँसे मन हटेगा ही नहीं। फिर वहाँ उसके लिये जागतिक त्याग करना सहज हो जायगा। त्याग करनेमे हमको कठिनता इसीलिये पडती हे कि हम जिस वस्तुक लिये त्याग करते हैं, उसका महत्त्व हमारी दृष्टिम इस त्याग करनेवाली वस्तुकी अपेक्षा बहुत अधिक नहीं हे। वह वस्तु आवश्यक भी हो तो भी उसके लिये त्याग हो जाता है, जैसे—घरम दाल नहीं हे, दाल लानी है, रुपया ले जाय तो दाल थैलीम डालगे और रुपया फेक दगे। ऐसी आवश्यक परिस्थितिम रुपयेका त्याग करनेमे कठिनाई नही होगी।

वैसे ही भगवान्‌की आवश्यकता और भगवान्‌मे प्रियता—ये दो हो जायँ तो फिर और कुछ नही चाहिये। प्रियता तो सर्वोपरि हे। प्रियता होनेपर तो उस प्रेमीके लिये भगवान् मनका निर्माण करके उसके साथ मिलना चाहते हे—

भगवानपि ता रात्री शरदोत्फुल्लमल्लिका ।
वीक्ष्य रन्तु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित ॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

भगवान् स्वय रसास्वादन करना चाहते है। यदि रस पवित्र हो, यदि रस अव्यभिचारी हो, यदि उसमे कुरसता, विरसता, अरसता न हो तो उस रसका रसास्वादन करनेके लिये भगवान् चले आते हैं। मनमे विषय तो हो नहीं और जो समर्पण है जीवनका वह उनके सुखके लिये हो तथा उसमे भरा हो त्याग तो यह रस और सरस बन जाता है। इसम प्रेम-रस भरा रहता है। सरस रस जहाँ बन गया तो उसको लेने भगवान् आते है। सरस रस होता है प्रियताम—प्रियत्वमे। जहाँ भगवान् प्रिय लगे उनका नाम प्रिय हो गया, उनका धाम प्रिय हो गया उनका सब कुछ प्रिय हो गया उनकी बात प्रिय हो गयी, सारा-का-सारा मधुर हो गया। वल्लभाचार्यजीका एक मधुराष्टक है—सारा मधुर-ही-मधुर, ये मधुर क्या? भगवान्‌के माधुर्यका जब प्राकट्य होता है तो सारे जगत्‌म मधुरता भर जाती है। भगवान्‌के रसका प्रादुर्भाव होता है ता जगत् सरस बन जाता है। भगवान्‌के प्रकाशका प्राकट्य होता है तो जगत् प्रकाशमय बन जाता है। परतु जहाँ भगवान्‌का सम्पर्क नहीं वहाँ न रस है, न प्रकाश है और न

औज्ज्वल्य ही। वहाँ तो तम है, अन्धकार है, कुरस है, विरस ह, अरस है। भगवान्‌की चाह पैदा हो जाय, प्रियता न भी हा तब भी काम हो जाता है। जीवमात्र सुख चाहता है, पर अखण्ड-पूर्ण-नित्य-सुख इस ससारमे नहीं है—इसीलिये कहीं भी तृप्ति नहीं मिलती। सिद्धान्त यही हे—इन्द्र हो जायँ, ब्रह्मा हा जायँ तब भी हम आग कुछ और प्राप्त करना चाहत हे। इसका अर्थ यही हे कि नित्य-अखण्ड-पूर्णको चाहत ह वह चाहे आत्मा हो, ब्रह्म हो, भगवान् हो—जा नित्य है, पूर्ण ह, अखण्ड हे उसीको हम चाहते हैं। आवश्यकता ता हा गयी और कहींपर मलका कीडा टट्टीपर जाकर बैठ गया ता वह कहेगा अमृत हे, फिर यदि उसीसे अपनी आवश्यकताकी पूर्ति करता रहेगा तो अमृत कहाँ मिलेगा? सीधी बात तो यह है कि हम सब मलभक्षी हैं, आवश्यकता तो हम अमृतकी है, परन्तु हम मलमे अमृत मानते हैं। दो प्रकारकी मक्खियाका वर्णन आता है। रामकृष्ण परमहसजाने कहा कि दो प्रकारकी मक्खियाँ होती हैं। एक तो मधुमक्खी होती है जा केवल शहद खाती है और एक विष्ठादि मक्खी होती है जो शहद भी खाती है और यदि मल दिख जाय ता वह शहदको छोडकर मल भी खाने लगती ह। इसलिये विषयासक्त लोगोका स्वभाव है मलासक्ति। विषयासक्तिका अर्थ है—मलासक्ति। भोगासक्तिका अर्थ है मलासक्ति।

विषयरूपी विषको माँग-माँग कर पीना चाहते हैं और यदि भगवान्‌ने नही दिया ता कहते ह महाराज, हमको ता अभावमे रख दिया आपने। भाग्य फूट गया हमारा जो आपने कृपा हमपर नहीं की। बोले भगवान्, हम याद आते हैं? वे बोले आप याद आते हैं तो क्या! आप न याद आये, पर हम तकलीफ जो पाते हैं पहले इसे मिटाओ। फिर आपकी बात करेंगे।

रसकी आवश्यकता सबको है क्योकि रस भगवान्‌का स्वरूप है। सभी भगवान्‌को चाहते हैं य भी ठीक है लेकिन हम भगवान्‌की चाह पूरी कर लेते हैं भोगोसे—विषयासे पूरी करना चाहते हैं भगवान्‌को चाहको। चाह पूरी होती भी नहीं और मिलता है दुख-ही-दुख। भगवान्‌की कृपासे वह क्षण हमे तभी प्राप्त होगा जब हमारा मन यथार्थ देखेगा—हम उस रसको ही केवल प्राप्त करना चाहेंगे। हमने तो गदी चीजको मिठाई मान लिया—विषको सुधा समझ लिया। तुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

(रा० च० मा० ७। ४४। २)

जो नर-तन लेकर विषयामे मन लगाते हैं, वे अमृत देकर बदलेमे जहर लेते हैं। ऐसे लोगोको कौन बुद्धिमान् कहेगा जो पारसमणिको खोकर घुँघची लेते हैं—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(रा० च० मा० ७। ४४। ३)

उसको मिलता क्या है? इस जीवनमे भोगोको—नरक-यन्त्रणा और दुर्भाग्य।

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भजन-पद-बिमुख अभागी।

(विनय-पत्रिका १४०)

इसीलिये सावधानीकी आवश्यकता है। सावधान हो करके भगवान्‌मे रस मानकर चले। किसी दूसरी चीजमे मन ललचाया नहीं कि तत्काल गदगी याद कर ली और सच्ची बात तो यह है कि उधर मन लगनेपर स्थिति अपने-आप बनेगी। जिसका मन एक बार भगवान्‌मे खिंचा वह लौटेगा नहीं। यह उसका विलक्षण जादू है। भगवान्‌की ओर मन खिंच जाय ता उसे लौटाना अपने वशकी बात नहीं है, ऐसा मजबूत पकड है कि फिर लौटता नहीं। बस दो काम करे—एक तो मनमे भगवत्-सम्बन्धी बहुत सुन्दर सकल्प करनेका प्रयास करे दूसरे अपनी भाषामे—प्रेम-भावकी भाषामे अपना दुख भगवान्‌के सामने रोवे। कातर प्रार्थना करे कि महाराज, आप कृपा करके ऐसा करे कि मेरे मनमे आपके सिवाय सारे सकल्पोका सन्यास हो जाय। मैं नहीं चाहता किसी और प्रकारका सुख केवल आपका स्मरण मनमे बना रहे—यही सत्य-सकल्प भगवत्-चिन्तनका मूल है। ऐसा करते रहनसे सहज ही भगवान्‌का उनकी लीलाका चिन्तन होता रहेगा। फिर तो हम साधनको ही नहीं साध्यको भी प्राप्त कर लेंगे।

(कैसेट-न० १०६ के आधारपर)

परमशिवकी परम लीला

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीभारतातीर्थजी महाराज)

समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वव्यापी, परमानन्दस्वरूप, निर्विकल्प और सत्यस्वरूप परमतत्त्व परमेश्वरको ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीलोग अविनाशी, कलिल, गूढदेह, ब्रह्मानन्द अमृत तथा विश्वरूप कहते हैं और कहते हैं कि उसे प्राप्त करनेपर पुनरावृत्तिका भय नहीं होता। परमेश्वरकी विचित्र लीला है। सृष्टि, स्थिति और लय उसका ही लीला-विलास है। जो उसके लीला-विलासको जानता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है। श्रीभगवत्पाद आद्यशकराचार्यजीने 'शिवानन्दलहरी' (६६)-मे कहा है—'हे शम्भु! हे पशुपति! समस्त विश्वका सृजन तुम क्रीडार्थ ही करते हो, लोग तुम्हारे क्रीडामृग हैं। मुझसे आचरित जो भी कर्म है वह तुम्हारी सतुष्टिके लिये ही है। मेरे सभी कार्य कौतूहलपूर्ण तुम्हारी क्रीडाका ही कारण या प्रतीक होनेसे मेरी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य ही है'—

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिल क्रीडामृगास्ते जना
यत्कर्माचरित मया च भवत प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करण मच्चेष्टित निश्चित
नित्य मामकरक्षण पशुपते कर्तव्यमेव त्वया॥

अव्याज-करुणासमुद्र भगवान्की विचित्र लीलाओकी पहचान केवल भक्त-हृदय ही कर सकता है। भक्तोके उपकार तथा भक्तोके उद्धारके लिये भगवान्की नाना प्रकारकी लीलाएँ होती हैं। उन लीलाओके स्मरण दर्शन और श्रवणसे भक्तका हृदय बाग-बाग हो जाता है एव पुलकित होकर वह गान करने लगता है—

वक्षस्ताडनमन्तकस्य करिणोऽपस्मारसम्मर्दन
भूभृत्पर्यटन नमत्सुरशिर कोटीरसघर्षणम्।
कर्मेद मृदुलस्य तावकपदद्वन्द्वस्य गौरीपते
मच्चेता मणिपादुकाविहरण शम्भो सदाङ्गीकुरु॥

(शिवानन्दलहरी-८१)

तपस्याके फलक रूपमे महर्षि मृकण्डुने अल्प आयुवाले परतु बुद्धिमान् पुत्र मार्कण्डेयको प्राप्त किया था। बुद्धिमान् इसलिये हैं कि वे परमेश्वरकी अविचल भक्तिके रहस्यको जानते थे। जब वे सोलह वर्षकी आयुके हुए और उनक समीप जब मृत्यु पहुँचनेवाली थी, तब वे माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर देवालयमे भगवान् शकरके सानिध्यम एकाग्रचित्तसे तपस्या करने बैठ गये। यम-किकर उनको ले जानेमे सफल न हुए तो स्वय यम वहाँ पहुँच गय। यम अपने कर्तव्यसे अस्थिर न हुए, परतु भगवान्के सानिध्यम स्थिर बेठे हुए मार्कण्डेयको वे हिला न सके। अपने भक्तकी रक्षाम तत्पर भक्तवत्सल भगवान् परमशिवने लात मारकर अन्तकका ही अन्त कर दिया और मार्कण्डेयको चिरजीवी बना दिया। भगवान्की विचित्र लीला है। उन्होने बादमें अन्तकको जीवित भी कर दिया। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वरके लिये क्या यह असम्भव है?

दारका-वनम यज्ञ-यागादिक समय समुद्भूत अपस्मारका निज पदाघातस सम्मर्दन किया परमशिव परमश्वरने। यह भी उनका लीला-विलास है। ताण्डव-नृत्य करनेवाले नटराजके पादतलमे यह अपस्मार दर्शित है। यह अपस्मार क्या हे? यह तो अज्ञानका प्रतीक है। मृत्युञ्जय परमेश्वरकी प्राप्तिके लिय अज्ञानका नाश आवश्यक हे न।

सुरम्य कैलासम विहार करनेवाले शिवशकरके कोमल चरणाको छूनेके लिये किरीटधारी सुरगणाका ताँता लगा रहता है। देवताओके प्रणिपातके समय भगवान्क मृदुल चरणोको कठिन सघर्षण सहना पडता है। दयानिधि परमेश्वर उसे सह लेते हैं, क्योकि व भक्तप्रिय और भक्तिप्रिय हैं। वस्तुत वे भक्तजनचेतोविहारी हे। भक्तमानस-मणिपादुका-विहरण व सदा स्वीकार करनवाले ह।

तपस्वियोमे अग्रगण्य, भृगुकुलतिलक मार्कण्डय नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। उन्होने अविद्यादि पञ्च क्लेशाको जीत लिया था। कई सहस्र वर्ष अनवरत व श्रीहरिक ध्यानम मग्न रहे। छ मन्वन्तराके अतिदीर्घकालको उन महर्षिन व्यतीत किया और इस सातव वैवस्वत मन्वन्तरम वे तपस्याम लीन रहे। महेन्द्रने उनके तपावृत्तान्तसे भीत होकर उनक तपोभगके लिये अप्सराओ, गन्धर्वो, मदन और वसन्त आदिको प्रेषित किया। मार्कण्डेयके पुण्याश्रमम वे सब पहुँचे। अपनी समस्त शक्तिका प्रयाग करनके बावजूद भी वे लाग ब्रह्मनिष्ठ

महर्षि मार्कण्डेयको तपस्यामें विचलित न कर सके। हताश वे लोग अपना-सा मुँह लेकर महेन्द्रके पास लौटे। महेन्द्रने मार्कण्डेयकी तपोनिष्ठा और प्रभावके बारेमें जानकर दाँतों-तले उँगली दबायी। सभी देवता परमाश्चर्य-चकित हुए। ऐसे मार्कण्डेयको श्रीहरिके अवतार नर-नारायणने दर्शन दिया। भगवल्लीलाको कौन जान सकता है? श्रीमद्भागवत (१२। ८। ३५)-में वर्णन है—

> तं वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी।
> दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत्॥

मार्कण्डेयने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। वे रोमांचित हुए। आनन्द-बाष्पोंके कारण वे नर-नारायणको ठीक-ठीक देख न सके, फिर वे गद्गदकण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे—'हे आत्मबन्धो! यद्यपि सत्त्व, रज और तम-गुणात्मक इस जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-रूप लीला-मूर्तियोंके कारण तुम्हीं हो तथापि उनमें सत्त्वमय रूप ही मोक्षका साधन है, अन्य कोई नहीं—

> सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
> मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य।
> लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
> नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम्॥
> (श्रीमद्भा० १२। ८। ४५)

परब्रह्म परमात्माको स्तुतिसे संतुष्ट कर, उनसे वर-प्राप्तिका अवसर प्राप्त होनेपर महर्षि मार्कण्डेयने कहा—

> जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत।
> वरेणैतावतालं नो यद् भवान् समदृश्यत॥
> गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम्।
> मनसा योगपक्वेन स भवान् मेऽक्षगोचरः॥
> अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे।
> द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम्॥
> (श्रीमद्भा० १२। ९। ४—६)

भगवान्‌की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की मार्कण्डेयने। उनकी ऐसी इच्छा हुई, यह भी तो भगवल्लीला है। अन्यथा लीलामयकी अगोचर लीलाके विस्तारके बारेमें कैसे ज्ञात होता?

एक दिन सायंकाल पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेय ध्यानमग्न थे। देखते-ही-देखते उनको प्रबल प्रभंजनका आघात सहना पड़ा। वे प्रलयंकर झंझावातके चपेटमें आ गये। अनेक वर्ष प्रलय-जलधिकी महामायाकी भयंकरतामें घूमते-घूमते वे आक्रान्त हो गये। तब एक उन्नत स्थानमें उन्होंने एक वटवृक्षको देखा और देखा उसके एक पत्तेपर सोये हुए एक कोमल शिशुको, जिसकी देहकान्तिसे प्रलयान्धकार दूर हो जाता था। वटपत्रशायी शिशु मृदुल-कोमल उँगलियोंवाले अपने दोनों हाथोंसे अपने चरणाम्बुजको अपने मुँहके भीतर रख रहा था। उसे देखकर मार्कण्डेयको अतीव विस्मय हुआ। वे उसके पास पहुँचकर उससे प्रश्न करना चाहते थे। इतनेमें उसके उच्छ्वासमें मशकके समान वे उसके शरीरके भीतर प्रवेश कर गये। प्रलयके पूर्व जगत्‌की जैसी स्थिति थी, वैसा दृश्य देखकर वे विस्मय-विमुग्ध हुए। भूमि, स्वर्ग, नक्षत्रमण्डल, पर्वत, समुद्र, आकाशादि पञ्चभूत, नगर-ग्राम, युग-काल आदि जो असत्य हैं, तो भी वे सत्यके रूपमें दिखायी पड़े। हिमालय, वह स्थान जहाँ नर-नारायणके दर्शन हुए थे, पुष्पभद्रा नदी और अपना आश्रम भी उन्होंने उस शिशुके जठरमें देखा। तदनन्तर शिशुके निःश्वाससे वे बाहर प्रलयसागरमें गिरे। फिर उसी उन्नत स्थानमें वटपत्रशायी शिशुको देखकर, अमृतके समान उसकी मंद मुस्कान और करुणापूर्ण दृष्टिसे आकर्षित होकर उसे गले लगानेके निमित्त उसके पास वे जाना चाहते थे कि वह शिशु अदृश्य हो गया। भगवान्‌की योगमायाका यह वैचित्र्य है! तत्पश्चात् पार्वती-परमेश्वरने मुनि मार्कण्डेयके मायाके अवलोकनसे आक्रान्त मनको अपने दर्शनसे सुख और आराम ही नहीं पहुँचाया, अपितु उनको वर भी प्रदान किया कि भगवान् श्रीहरिकी भक्ति उनमें निरतिशय रूपमें हो, कल्पान्ततक यशस्वी तथा जरा-मरणरहित चिरायु होकर वे पुराणनिर्माणकी शक्तिमें सम्पन्न हों। उन्होंने त्रिकाल-ज्ञान और विशेष ब्रह्मवर्चस्‌का वर भी प्राप्त किया।

भगवल्लीलाके एक और मनोरम प्रसंगका उल्लेख शिवानन्दलहरी (३१-३२)-में है। देव-दानवोंने अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया। तब रज्जुरूपमें स्थित वासुकीके सहस्र मुखोंसे थकावटके कारण महोल्वण हालाहल नामक विष उत्पन्न हुआ। प्रसरित होनेवाली विषज्वालासे सुर-असुर क्षुब्ध और विकल होने लगे। समुद्रके जलचर मीन-मकरादि जीव-जन्तु भी विक्षुब्ध हुए। सभी ओर व्याप्त होनेवाले विषको देखकर दिक्पालोंसहित सभी लोग जगद्रक्षक सदाशिवके सान्निध्यमें दौड़ आये। लोकहित तथा मोक्षमार्गोपदेशमें ऋषियोंके

उद्धारके लिये भवानीश कैलासगिरिमे तपस्या कर रहे थे। प्रणाम कर सभीने परमेश्वरकी स्तुति की। जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत (८।७।२१—२४)-में इस प्रकार किया गया है—

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।
त्राहि न शरणापन्नास्त्रैलोक्यदहनाद् विषात्॥
त्वमेक सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयो।
त त्वामर्चन्ति कुशला प्रपन्नार्तिहर गुरुम्॥
गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधान्॥
त्व ब्रह्म परम गुह्य सदसद्भावभावन।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वर॥

स्वप्रकाश सर्वव्यापक, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-रूपमे सृष्ट्यादि कार्य करनेवाले शरणागतरक्षक, नानाशक्तिरूपमे प्रादुर्भूत होनवाले तथा उपनिषत्प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा वही जगदीश्वर हैं। विषकी ज्वालाओसे त्रिलोककी रक्षा करनेवाले उस दिव्य शक्तिकी—उन परमेश्वर नीलकण्ठ महादेवके परमोपकारको कैसे विस्मृत किया जा सकता है। भक्तका उद्गार है—

नाल वा परमोपकारकमिद ह्येक पशूनाम्पते
पश्यत्कुक्षिगतान् चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।
सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकर भीकर
नि क्षिप्त गरल गलेन मिलित नोद्गीर्णमेव त्वया॥
(शिवानन्दलहरी ३३)

अज्ञानियोके उद्धारक। जगद्रक्षक। निज जठरमे तथा बाहर विद्यमान चराचरगणोकी रक्षाकी दृष्टिमे रखकर तुमने अतिज्वालाकर और भयकर विषको जिसे देखकर सभी देवता भी पलायन कर रहे थे अपने कण्ठमे ही स्थित कर दिया उसे पूरा निगला नही और बाहर भी आने न दिया। यह क्या कम उपकार है? तुम्हारी अपरम्पार महिमाके सम्बन्धमे क्या कहे? हे परमेश्वर। हे महात्मा। सभी देवगण अत्यन्त भयकर विषको देखकर काँप रहे थे उनमे भगदड मची हुई थी। देवताओकी ही जब यह स्थिति है तो अन्य लोगोके बारेमे कहना ही क्या है? ऐसे महान् विषको तुमने कैसे देखा था? अथवा उसे तुमने हाथमे कैसे लिया? हथेलीमे रखा भी कैसे? क्या वह पका जामुनका फल था? अथवा जिह्वापर रखनेके लिये सिद्धगुटिका थी? जिसे तुमने गले या कण्ठमे स्थिर कर दिया। तुम्हीं बताओ कि क्या यह तुम्हारे गलेमे विभूषित नीलमणि है?—

ज्वालाग्र सकलामरातिभयद क्ष्वेड कथ वा त्वया
दृष्ट कि मुकुरो धृत करतले कि पक्वजम्बूफलम्।
जिह्वाया निहिता च सिद्धगुटिका वा कण्ठदेशे धृत
कि त नीलमणिर्विभूषणमय शम्भो महात्मन् वद॥
(शिवानन्दलहरी ३४)

महादेवकी इस अद्भुत लीलाका वर्णन श्रीमद्भागवतकारने इस प्रकार किया है—

तत करतलीकृत्य व्यापि हालाहल विषम्।
अभक्षयन्महादेव कृपया भूतभावन॥
तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मष।
यच्चकार गले नील तच्च साधोर्विभूषणम्॥
तप्यन्ते लोकतापेन साधव प्रायशो जना।
परमाराधन तद्धि पुरुषस्याखिलात्मन॥
(८।७।४२—४४)

सच है कि लोकके तापसे साधु लोग तप्त होते हैं और लोकको तापमुक्त करते हैं। उनकी तपस्याका फल लोकके लिये होता है। अखिलात्मा परमेश्वरके विषयमे यह कोई अतिशयोक्ति नही है। वे नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, नाना रूपमे अपनी असीम शक्तिका वे बोधन करते रहते है। उनकी लीलाएँ भक्तोके उद्धारके लिये ही हैं।

विचार करनेपर ज्ञात होगा कि भगवल्लीलाके नानारूपोके रहस्योद्घाटनके निमित्त क्षीरसागरमन्थन-जैसे प्रसगोकी अवतारणा की गयी है। क्षीरसागरमन्थनके आधार कौन हैं? मन्थन करते समय मदराचलके डूब जानेपर महाकूर्म-रूपमे उसके लिये कौन आधार बने? रज्जुरूप वासुकि कौन हैं? मन्थन करनेसे प्रारम्भमे उत्पन्न महाविषका पान करनेवाले नीलकण्ठ महादेव कौन हैं? धन्वन्तरि कौन है? सभी तो एक ही तत्त्वके नाना लीलारूप हैं, जो इस रहस्यको जानता है, वह परमगतिको प्राप्त कर लेता है। जैसा कि कहा गया है—

तस्मादनादिमध्यान्त वस्त्वेक परम शिवम्।
स ईश्वरो महादेवस्त विज्ञाय विमुच्यते॥
(कूर्मपु० उ० वि० १०। १२)

ईश्वर, महादेव परमशिव आदि सब नाम उस अद्वितीय परम तत्त्वके ही हैं जो इसे जान लेता है वह विमुक्त हो जाता है। अतएव हम सदा भगवल्लीलाके श्रवण-स्मरणसे तथा पठन-मननसे जीवनको सफल बनाना चाहिये।

लीलामयका लीला-तत्त्व

(श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वती परमहंसदेव)

नित्य-भावलोक गोलोकमें सच्चिदानन्दघन-विग्रह रसमय भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ नित्य लीला कर रहे हैं। वहाँपर दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर आदि भाव मूर्तिमान् होकर विराजित हैं। द्वापरयुगके अन्तिम भागमें जीव कर्म और ज्ञानकी कठोर साधनासे तापित-कण्ठ हो भगवान्‌की कृपा-याचना कर रहा था। वह अपने वासना-विदग्ध प्राणोंसे आनन्दकी खोज करते हुए मृगतृष्णासे भ्रान्त मृगकी तरह दिशा-विदिशाओंमें भटक रहा था। ऐसे समयमें जीवको परमानन्द प्रदान करने और उसके प्यासे कण्ठमें मधुर प्रेम-रसकी पूर्ण धारा उड़ेल देनेके लिये भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्ति राधाके साथ श्रीराधाकृष्णके रूपमें व्रजधाममें अवतरित हुए थे। प्रेम ही जगत्‌का श्रेष्ठ भाव है। उस प्रेमका देने उस प्रेमकी शिक्षा प्रदान करने उस प्रेम-रससे जगत्‌को जाग्रत् और सराबोर करनेके लिये भगवान्‌ने अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ मर्त्य-वृन्दावनमें मधुर रास-लीला की थी। कृष्णावतारका उद्देश्य अपूर्ण मानवको प्रेमका आस्वादन कराकर अर्थात् भगवत्प्रेमकी सुधासे तृप्तकर निवृत्तिके पथपर अग्रसर करना था। क्या अपूर्ण जीव कभी पूर्णानन्दकी प्रतिष्ठा कर सकता है? गुणोंसे आवृत गुणमय जीव कभी निर्गुण प्रेमका आदर्श बन सकता है? तब इस अपूर्ण जगत्‌में पूर्ण-स्वरूप कौन है? इसलिये भगवान्‌ने भक्तोंके प्रति अनुग्रह दिखानेके लिये मनुष्यदेहका आश्रय लेकर वैसी ही क्रीडा की थी जिसे सुनकर भक्तगण भगवत्-प्रेमपरायण बन सकें। वह क्रीडा ही वृन्दावन-लीलाके नामसे ख्यात है—

> अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
> भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥
>
> (श्रीमद्भा० १०। ३३। ३७)

सर्वप्रथम लीला क्या है? उसे समझनेकी चेष्टा करेंगे। विषय और विषयीके बीच पारस्परिक सम्बन्धयुक्त वृत्तियोंके स्फुरणको 'लीला' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वको 'विषयी' और आश्रित-तत्त्वको 'विषय' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वमें श्रीभगवान् विषयी और आश्रित-तत्त्व उनके शक्तिवर्गको विषय कहते हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में आपसमें कोई भेद नहीं है। इसलिये शक्तिमान् विषयी भगवान् और उनकी शक्ति विषयके बीच कोई भेद नहीं है। विषयी भगवान् एक एवं अद्वितीय हैं। विषय या शक्ति-समूह श्रीभगवान्‌की लीला-सामर्थ्य है। इसलिये उनसे अभिन्न है।

श्रीभगवान्‌की लीलाएँ मुख्यतः त्रिविध हैं—नित्य-लीला, सृष्टि-लीला और संसार-लीला। नित्यधामकी नित्य-क्रियाका नाम 'नित्य-लीला' है। जगत्-सृजनकी क्रिया 'सृष्टि-लीला' है और जन्म-मृत्यु एवं मोक्ष आदिसे सम्बन्धित क्रियाएँ 'संसार-लीला' हैं। उनमेंसे संसार-लीला-सामर्थ्यका नाम 'जीव-शक्ति', सृष्टि-लीला-सामर्थ्यका नाम 'माया-शक्ति' और नित्य-लीला-सामर्थ्यका नाम 'स्वरूपशक्ति' है। इन तीन शक्तियोंके भी 'शक्ति-रूप' और 'अधिष्ठात्री' या 'अधिष्ठाता'के नामसे दो रूप हैं। उनमेंसे शक्ति-रूप भगवान्‌के स्वरूपके अन्तर्गत आता है तथा अधिष्ठात्री-रूप भिन्न आकारमें प्रकाशित है। स्वरूपशक्तिका शक्तिरूप भगवान्‌की श्रीमूर्तिके अन्तर्गत है और उनकी नित्य-लीलाके परिकरवृन्द उनका अधिष्ठात्री-रूप है। माया-शक्तिका शक्तिरूप भगवान्‌के प्राकट्य-विशेष या अन्तर्यामी परमात्माके अन्तर्गत है और अधिष्ठात्री-रूप 'महामाया' है। जीव-शक्तिका शक्ति-रूप भगवान्‌के अपर आविर्भाव या सत्-स्वरूप ब्रह्मके अन्तर्गत है तथा अधिष्ठात्री-रूप जीव-सृष्टि है। नित्य-लीलामें आश्रय-तत्त्व श्रीभगवान् और उनके शक्ति-रूप तथा शक्तिके अधिष्ठात्री-रूप द्विविध विषय-तत्त्वके पारस्परिक सम्बन्धोंसे उत्पन्न वृत्तियोंका स्फुरण स्वभावतः सिद्ध होता है। जिसके द्वारा वह नित्य-लीला-रस और आस्वादनके योग्य बनती है, वह 'रासलीला' है। यह रासलीलाका सामान्य लक्षण है परंतु जिसके द्वारा नित्य-लीला आस्वादनके योग्य बननेकी पराकाष्ठातक पहुँचती है, वह रासलीलाका विशेष लक्षण है।

विषय-तत्त्व और आश्रय-तत्त्वके स्वाभाविक स्फुरण-रूपी नित्यलीलासे दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं। पहला उद्देश्य साधक-जीवको आकर्षित करना और दूसरा उद्देश्य नित्यसिद्ध-परिकरोंकी वासनाएँ पूर्ण करना है। भगवान् साधक भक्तोंको आकर्षित करने और प्रेमी सिद्ध भक्तोंके मनोरथको पूरा करनेके लिये लीला करते हैं। यह लीला उनकी सच्चिदानन्दमयी वृत्तियोंके स्फुरणके अतिरिक्त और कुछ

नहीं है। अत यह व्रजलीला भक्ताका आकर्षण और स्वरूपानन्द है। भगवान् विश्वमय हैं। इस व्रजलीलाम भक्ताके आकर्षणसे भक्ताके हृदयमे जिस स्वरूपानन्दका उद्रक हुआ था, वह पुन भगवान्का अर्पित हुआ था। इस स्वरूपानन्द-शक्तिकी लीला जगत्मे 'अवतार-लीला'के रूपमे प्रत्यर्पित हुई थी। मर्त्यजीवाके शुष्क कण्ठम स्वरूपानन्दका अमृत प्रदान करनेके लिय भगवान् अवतरित हुए थे। व। ह्लादिनी शक्तिक आकषणके लिये नित्य-मुक्त स्वगणाको साथ लेकर आये थे। स्वगण ह्लादिनी शक्तिका आकर्षित करक तद्गत प्राणासे उसे पुन उन्ह अर्पित करते थे। स्वगणाको अपने सुख या अपन आनन्दका ज्ञान नहीं था। व उस आनन्द या उस सुखका श्रीभगवान्को अर्पित करते थे। भगवान् विश्वरूप हैं, इसलिय उनका वह भाव जगत्म बिखर पडा है। उस शरद्-पूर्णिमाकी रातम फूलाकी महकसे आमोदित होकर दिशाआम जा अमृतकी धारा वह रही थी, वह अब भी मर्त्य-जगत्मे प्रत्येक प्राणमे प्रवाहित है। उस आनन्दको पानेके लिये लीलातत्त्वकी साधना करनी होती है। लीलातत्त्वकी साधनास अन्तर्हदय प्रेमरस-स पूर्ण हा जाता है। इससे मनुष्यका जीवन ओर जन्म धन्य हो जाता है। जीवके हृदयम कामका उन्मेष हानेपर उसम आत्मप्रसाद या आत्मन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती है परतु भगवान्क सयोगस प्रभामयी ह्लादिनी शक्तिपर आश्रित होनेके कारण जीवके अन्तरम भगवत्-मिलनकी इच्छा जागती है। मायाश्रित होनपर जीवक अन्तरम जैविक मिलनकी वासना जागती है तथा आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती हे, परतु यागाश्रित होनेपर भक्तके प्राण भगवान्का पाना चाहत हैं। इसलिये लीलातत्त्वकी साधनासे कामपर विजय प्राप्त की जाती है तथा भगवत्-प्रेमका उद्रक होता है।

भगवान् जीवको इस नित्य-लीला-तत्त्वका आस्वादन करानके लिय ओर साधनाकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये राधाकृष्णक रूपमे व्रजधामम अवतरित हुए थे। इस व्रजलीलाक रहस्यको जाननेके लिये व्रजलीलाके आध्यात्मिक भावको हृदयगम करना चाहिये। तभी सही अर्थमे लीलाका हृदयगम किया जा सकता है।

जीवात्मा जिस समय ससारकी कुटिलता और मायासे परिव्राजित हाता ह उस समय उसके अन्तरम व्रजका भाव खिल उठता हे। जबतक तृणावर्त अघासुर, वकासुररूपी कुटिलताका विनाश नही होता तबतक व्रजलीला कभी भी सम्भव नहीं हे। उस व्रज-भावम प्रकृति-व्रजेश्वरीका मिलन आनन्दधाम ही वृन्दावन हे। जबतक जीवके अन्तरम सासारिक बीज नष्ट नहीं हाते, तबतक जीवकी मुक्ति सम्भव नहीं है। साख्यदर्शनके मतानुसार प्रकृति ओर पुरुषकी घनिष्ठता ही ससारके रूपम प्रकाशित हे। जगत्म प्रकृति और पुरुष एक दूसरेके प्रति पूर्णत आसक्त ह। उनका बिछुडन ही मुक्तिकी सीढी हे।

श्रीराधारानीका श्रीकृष्णस शत वर्षका विच्छेद जीवात्माके शत वर्षकी अनासक्तिजन्य मुक्ति प्राप्त करनेके समान हे। शत वर्षके बाद श्रीराधिकाजीके साथ श्रीकृष्णका मिलन होता है। यह मिलन जीवात्माकी माक्षपद-प्राप्ति हे। व्रजलीलामे इस निगूढ योगतत्त्वका एक-एक करके स्फुरण हुआ है। योगके द्वारा जीवात्मा परमात्माक साथ जितने रूपाम रमण करता है उसके अनुभव ओर मिलनक जितन स्तर हे, वह सब श्रीराधा-कृष्णकी लीलाम प्रकाशित है।

ससारधाम-रूपी गो-गोष्ठमें श्रीकृष्ण प्रजापालन-रूपी गोचारण कर रहे हैं। पहले आनन्दधाम-नन्दालयमे श्रीकृष्णका नन्द महाराजके साथ पिता-पुत्रका सम्बन्ध स्थापित होता है। माता-पिताका पुत्रक प्रति वात्सल्य-भाव भक्ताकी भक्तिसे भी प्रगाढ ह। भक्ताका ईश्वरक प्रति जो अनुराग हे, वह वात्सल्य-भावस भी श्रेष्ठ हे। यशादा आर नन्दका जो वात्सल्य-भाव है, उसे भक्ताक लिये वात्सल्य-भावकी साधनाके आदर्शके रूपम स्वीकार किया जा सकता हे। भक्तगण भगवान्को दूध मलाई आर मक्खनका भोग लगाते हैं। व अन्त करणके सर्वश्रेष्ठ उपहारको भक्ति-रूपी फूल ओर चन्दनस भिगोकर अर्चना करत है। वे नन्द-यशादाकी तरह स्नेहक दृढ बन्धनसे उन्ह बाँधकर रखना चाहते है। सख्यभावम व्रजके ग्वाल-बालाकी तुलना की जा सकती है, परतु नन्द-यशादाका स्नह और व्रजबालाआकी उस प्रीतिकी तुलनाम एक और श्रेष्ठ वस्तु हे—ओर वह हे राधारानीका कृष्णानुराग। भक्ताका भगवत्-अनुराग स्फुरित होकर क्रमश सख्य ओर वात्सल्यभावमे प्रगाढतर होकर राधाप्रेमम पहुँचता ह। पति और पत्नीक प्रमम थाडा दूर रहनेका भाव है परतु राधा-कृष्णके प्रेमम वेसा भाव नहा है। राधा श्रीकृष्णके साथ मिलनके लिय लालायित रहती था। राधा उस मिलनके आनन्द-सागरम निमग्न हो जाया करती थीं। क्षणिक मिलनम यागियाका जो आनन्द हे, राधाका आनन्द उससे कहीं अधिक हे। श्रीराधारानी अपन अन्तरमे इसी तरहका अनुराग लेकर कृष्ण-प्रमम उन्मत्त हुई थीं। राधा-कृष्णका मिलन पति-पत्नीक सयागसे भा अधिक

प्रगाढ है। श्रीभगवान्‌मे यह अनुराग परम भक्तके परानुरक्तिके सदृश है। इस परानुरक्ति या प्रेमके क्रम-विकासको योगतत्त्वसे अनुभव किया जाता है। उस प्रेमके स्फुरणका बाह्य विकास ही व्रजलीला है। विप्रलम्भ-अवस्थामे अधिरूढ-भाव-हेतु जिस सम्भागकी स्फूर्ति हाती है, उसका नाम 'प्रेम-विलास' है। व्रजलीलाम इस प्रेम-विलासकी समस्त अवस्थाआका परिपूर्ण विकास हुआ था।

स्वरूपशक्ति और मायाशक्तिके बीच जीव-शक्ति या तटस्था-शक्ति है। मायाशक्तिद्वारा प्रताडित होकर जीव क्रमश स्वरूपशक्तिकी ओर अग्रसर हाता है। इसे जीवकी क्रमोन्नति कहत हैं। जब भगवद्-भक्तमे स्वरूपशक्ति प्रकाशित होती है, तब वह उस शक्तिको भगवान्‌को अर्पित करता है। स्वरूपशक्ति त्रिविध है—सधिनी, सवित् और ह्लादिनी। भक्ताकी य तीना स्वरूप-शक्तियाँ भगवान्‌को आलिगन करके अधिष्ठित रहती है। सधिनी-शक्तिके सार अशके शुद्ध सत्त्वमे भगवत्-सत्ता विश्राम करती है। सवित्-शक्ति भगवान्‌के भगवत्ता-ज्ञानको प्रतिष्ठित करती है। ह्लादिनी-शक्तिकी सार वस्तु प्रेम और भाव है। भावकी पराकाष्ठाको 'महाभाव' कहते हैं। श्रीराधारानी महाभाव-स्वरूपिणी हैं।

ह्लादिना-शक्ति ही भगवान्‌को आनन्दका आस्वादन कराती है। इस ह्लादिनी-शक्तिकी सहायतासे भक्तोका पोषण होता है। इसलिये उन्हे 'गापी' कहते हैं। जिनक कारण जीवाके हृदयमे नित्यानन्दकी अनुभूति हाता है, उन्हे आनन्द अर्पित करना जीवोका मुख्य कार्य है। जब ह्लादिनी-शक्ति भगवान्‌को अर्पित होता है तब यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आनन्दरससे सराबोर हो जाता है। इससे जगत्‌मे आनन्दकी धारा निरन्तर प्रवाहित होती है। उस आनन्दसे भक्ताको अखण्ड आनन्दकी अनुभूति होता है। आनन्दमय-आनन्दमयीके मिलनके परिणामस्वरूप यह जगत् आनन्द-रससे भर जाता है। इसलिये ह्लादिना-शक्तिने रासलीलामे भगवान्‌का आनन्द-रस दिया था। इसी कारण भगवान्‌ने धरतीपर व्रजलीलाके अन्तर्गत रास-विहार करके जगत्‌को आनन्द-रससे परितृप्त किया था। जिस दिनसे व्रजलीला आरम्भ हुई था उसी दिनसे जीव रस और आनन्दका दिग्दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो रहा है।

भगवान्‌की नित्यलीलाक प्रेम और रसमाधुर्यका प्रकाश करन तथा सासारिक जीवोंका उसे प्राप्त करनेके उपाय सिखानके लिये श्रीकृष्णने व्रजलीलाका अभिनय किया था। प्रकृति और पुरुषकी प्रेमलीलाके रहस्यका पूर्णतया अवगतकर उनकी लीलाके आनन्दसे आत्माका अभिभूत करके रखना ही ससारसे निवृत्तिका एकमात्र उपाय है। ऐसा करनेसे अन्तरमे अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होती है। उस समय फलमे, फूलमे, पेड-पौधामे, वायु-अग्निमे, जल-स्थलमे मनुष्य और मनुष्येतर समस्त जावामे, सर्वत्र उन पुरुष और प्रकृतिकी नित्य-रासलीलाके रसकी अनुभूति हाता है। उस समय सबके साथ अपनी आत्माका मिलन-भाव उत्पन्न होता है—जीवके साथ जीवका सम्बन्ध दूर होकर जीव और चैतन्यके मध्य मिलन होता है। इससे जीवके हृदयमे मिलनजन्य प्रेमरसकी धारा प्रवाहित होती है।

चारो ओर कामकी आग जल रही है। इसलिये चाहे कितना भी कहा कि चित्तवृत्तिका निरोध करूँगा कर्मानुष्ठान करूँगा शास्त्राका पाठ करूँगा और निष्काम कर्म करूँगा, फिर भी उससे कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। क्या कोई उस अविजित कामकी आगके प्रभावसे बच पाया है? प्रकृतिको लेकर काम है। प्रकृतिके परिणामसे ही जीवकी काम्य-वस्तु उत्पन्न होती है। प्रकृतिके इस माया-आवरणको भेदकर योगमायाकी निर्मल शुद्ध ज्योति मर्त्यधाममे बिखरने भक्त-भगवान् तथा आनन्दमय और आनन्दमयीके मिलनजन्य उस धर्मकी आनन्दधाराको मायासे आवृत इस जगत्‌मे प्रवाहित करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए थे। उन्होने जीवको कामकी शिक्षा देनेके लिये व्रजलीला की थी। जीव भगवान्‌की सृष्टि-लीलाके भीतर ससारलीला करते-करते नित्यलीलामे पहुँचकर स्वरूपानन्दका भोग कर सके, यही लीलावतार श्रीकृष्णकी व्रजलीलाका उद्देश्य है।

'ब्रह्मसहिता' कहती है—जो गोविन्द आनन्दचिन्मय रससे प्रतिभावित और आत्मस्वरूप आत्मकलारूपिणी गोपियोंके साथ गोलोकधाममे नित्यलीला कर रहे है मैं उन 'गोविन्द' नामधारी भगवान्‌का भजन करता हूँ। वे ही समस्त जीवाकी आत्मा हैं—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभि ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुष तमह भजामि॥

[बँगला-भाषामे अनूदित—अनुवादक—प्रभाकर महान्ति]

कृष्णस्तु लीलामयः

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सामान्यतया लोकम अपने वास्तविक स्वरूपको छिपाकर समाजको अपने किसी अन्य नाम-रूप तथा कर्मोका बोध करानेकी प्रक्रियाको 'लीला' कहते हैं। वैसे तो 'लीला' शब्द श्लेषण-अर्थमे पठित 'लीङ्' (लीङ् श्लेषणे)-धातुक साथ 'क्विप्' प्रत्यय करनेपर और आदान-अर्थमे पठित 'ला' (ला आदाने)-इस धातुस 'क' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—खेल, क्रीडा, आनन्द, विनोद, स्वेच्छाचारिता, रतिक्रीडा, सुविधा, बालक्रीडा आभास एव हाव-भाव आदि। जिस समय जिस पात्रका रूप धारण करके व्यक्ति लीला करता है उस समय समाजद्वारा वह व्यक्ति उसी पात्रक रूपम देखा-समझा जाता है। नट-नटी अथवा अन्य किसी पात्रका वास्तविक रूप वही जान पाता है जो यवनिकाके अन्तर्गर्भमे प्रवेश करता है अथवा अपनी वास्तविकताको वे नट-नटी ही स्वय जानते हैं, अन्य कोई नहीं। यदि ऐसा न हो तो नाटकके रसका बोध सामान्य जनको हो ही नहीं सकता। वस्तुत यह सारा ससार भ्रम है। सच्चिदानन्दघन परमश्वरका अशभूत यह जीव अलग-अलग शरीर धारण करके विविध पात्रोके रूपमे अपने वास्तविक रूपसे अलग हटकर नाम-रूपात्मक अभिनय कर रहा है।

इसी प्रकार अशरणशरण अकारण करुणावरुणालय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म भी अनित्य-भ्रमात्मक विश्वरूपी रगमचपर लाकहित-हेतु अपने विविध नाम-रूपोसे नित्य लीलाएँ करते रहते है। किंतु इनके वास्तविक स्वरूपको मायारूपी यवनिकाके कारण हमारी सामान्य इन्द्रियाँ न देख पाती हैं और न समझ पाती है। ज्ञान भक्ति कर्म, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य स्नेह, सौहार्द एव सौष्ठवकी मूर्ति रसस्वरूप, निखिल-ब्रह्माण्ड-नियन्ता भगवान्की लीलाएँ अनेकानेक अवतारोके रूपमे इस धराधामके निवासियाको देखनको मिलती रहती हैं। सज्जनोकी रक्षा, दुष्टोके विनाश धर्मकी स्थापना, अधर्मके उन्मूलन एव प्रेम और सौमनस्यकी स्निग्ध-स्नेहिल धाराको प्रवाहित करनेके लिये भगवान् कभी मत्स्य, वराह, नृसिह तथा कच्छप बनते हैं, तो कभी राम, कृष्ण अथवा परशुराम। भारतीय चिन्तन-परम्पराके विद्वद्-धुरीण मनीषियोका मत है कि भगवान्के जो अनेक अवतार हैं, वे अलग-अलग कलाओके हैं, किंतु श्रीकृष्णावतार पूर्ण कलाका अवतार है, क्याकि 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'।

कसके कारागारमे जन्मके समय प्रहरियोका सो जाना वसुदेवद्वारा नवजात शिशुको नन्दबाबाके घर पहुँचाना, मार्गमे शिशु श्रीकृष्णके अङ्गुष्ठसस्पर्शसे यमुनाजलका शान्त होना बादमे खेलते-खेलते अपना अँगूठा पीना शकटासुर-तृणावर्त और पूतना राक्षसीको दण्ड देना, माखनचोरी, गोचारण, कालियनागका विनाश कसमर्दन, रासलीला गोपीप्रेम राधाप्रेम, ग्वालबालाकी मैत्री मथुरागमन, कालयवन-जरासन्ध प्रभृतिका सहार ब्राह्मण-सम्मान, राजदूतकी भूमिका, कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमे महाभारत-युद्धका सचालन, सारथिका कर्म कौरवसहार, उत्तक ऋषिसे वार्ता, द्वारकागमन, फिर प्रभासगमन, यदुकुलका सहार तथा अन्तम भगवान्के स्वधाम-गमन आदि लीलाएँ इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि सामान्य दृष्टिमे श्रीकृष्णचन्द्र ससारके साथ बिलकुल बँधे-बँधे-से दिखायी पडते हैं। उनकी बालक्रीडाकी एक झाँकी देख—

विहाय पीयूषरस मुनीश्वरा
ममाङ्घ्रिराजीवरस पिबन्ति किम्।
इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी
स गोपबाल श्रियमातनोतु व ॥

अर्थात् बालकृष्ण अपने अँगूठेको पीनेके पहले यह सोचते हैं कि क्या कारण है कि बडे-बडे ऋषि-महर्षि अमृतरसको छोडकर मेरे पादारविन्दरसका पान करते है। क्या वह अमृतसे भी ज्यादा स्वादिष्ट है? इसी बातकी परीक्षाके लिये शिशु कृष्ण निज-पद-पान-रूपी लीला किया करते थे। इसी प्रकार रासलीलाका वर्णन करते हुए भागवतकार कहते है—

रासोत्सव सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डित ।

योगेश्वरेण कृष्णान तासा मध्ये द्वयोर्द्वयो ।
प्रविष्टेन गृहीताना कण्ठे स्वनिकट स्त्रिय ॥

तात्पर्य यह कि दो-दा गापियाक मध्यम एक-एक श्रीकृष्ण दीखते थे तथा हर गापी व्रजनन्दनको अपने समीपस्थ समझती थी। मण्डलाकार खडी गोपियाके साथ श्रीकृष्णने नृत्य किया था। इस सदर्भम पद्मपुराणकारका मत ह कि त्रताके जिन ऋषियाकी इच्छा रामके साथ रहनेकी थी, व सभी द्वापरम गोपी बन गये। अन्यत्र गोपियोको श्रुतियाँ तथा देवकन्याएँ आदि कहा गया है। यथा—

पुरा महर्षय सर्वे दण्डकारण्यवासिन ।
दृष्ट्वा राम हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।
ते मर्वे स्त्रीत्वमापन्ना ममुद्भूताश्च गोकुले॥

तथा—

गोप्यस्तु श्रुतया ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका ।
देवकन्याश्च राजन्द्र न मानुष्य कथचन॥

परमार्थत भगवान् श्रीकृष्ण पद्मपत्रमिवाम्भसा ससारसे पूर्णत निर्लिप्त है। वे दुनियाक सभी अनुबन्धोसे ऊपर शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-चतन्य हे। व अपने विराट् स्वरूपके कारण महान्-से-महत्तम आर परमाणुसे भी लघुतम हैं। वे असख्यासख्य ग्राहोंसे आक्रान्त भक्त-गजराजाक रक्षक है ओर असहाय-दीन-आर्त भारतीय नारीकी अस्मिता-लज्जा ओर गोरवको बचानेवाले भी हे। वे एक आर अपनी वशीकी सुरीली तानपर समग्र गोपाङ्गनाआक चित्तापहारक हें तो दूसरी आर निखिल विश्वके सबस बड समरके दिशा-निर्देशक भी ह। जिनक रोम-राममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड समाहित ह एस भवभयहारी विपिनविहारी मुरारी वनवारी नित्यलीलारसधारा गापीवल्लभ यशोदानन्दवर्धन व्रजनन्दनका चरित्र एक सम्पूणताका द्योतक हे। उसमे कोई खण्ड-भाव हो ही नही सकता। क्याकि भगवान् पूर्ण पुरुपोत्तम हे—

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र विश्व-चिन्तनका आदर्श-विन्दु हे। निरुक्तकार कहत ह कि—'**भग इति एश्वर्य नाम तद्वान् भगवान् इति**'—अर्थात् समस्त विश्वका सर्वविध एश्वय जिमक भातर ममाहित है तथा जा ज्ञान-विज्ञान भूत-भविष्यत्-वर्तमान, सत्त्व-रजस्-तमस्, जड-चेतनात्मक समूची सृष्टिका जनक है ओर निखिल ब्रह्माण्डकी समस्त लीलाएँ जिसक भ्रूभगमात्रस सचालित हाती ह एव जो केवल भक्ताकी पूर्ण निष्ठा भक्ति तथा उनक प्रेम ओर समर्पणसे ही बँधता ह, ऐस भगवान्की भक्तिम पगे रसखान कविकी प्रस्तुत पक्तियाँ द्रष्टव्य हें—

नारद-से शुक व्यास रटे— — — —।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

अर्थात् नारद शुकदेव व्याम शपनाग शिव, गणेश सविता एव इन्द्र आदि देवता सतत उपासनाके बावजूद जिनका अन्त न पा सके, जिन्ह अपना न बना सके ऐसे सृष्टि-नियामक व्रजवल्लभको गापाकी सामान्य कन्याएँ थाडेसे छाछपर यथेच्छ नाच नचाती रहती हे। भक्तकी पुकार सुन लीलानायक कभी गोवर्धन धारण करते हें, कभी कुब्जाको सुन्दर बनात ह, कभी दावानलका पान करते हे ता कभी लौह-खम्भको चीरकर प्रकट हो भक्तकी रक्षा करते हैं। गोपियोके लिये प्राणप्रिय तथा उद्धव और श्रीदामाके लिये मित्र नन्द-यशोदाके लिय पुत्र रुक्मिणीक लिये पति राधाक लिये प्रेमी, सामान्यजनक लिये गोप-किशोर इन्द्रक लिये विश्वव्यापी आत्मा देवोके लिये आनन्ददाता, स्त्रियाके लिय रति-पति तथा मुष्टिक-चाणूर एव कसके लिये वे साक्षात् कालस्वरूप दीखते ह। कसकी सभाम इसका वर्णन इस प्रकार किया गया हे—

मल्लै शैलेन्द्रकल्प शिशुरखिलजनै
पुष्पचापोऽङ्गनाभि — ।

आदर्श कर्मयोगी, विश्वमङ्गलरूप सवाधर्मव्रती समदर्शी तथा आदर्श गृहस्थ मुरलीधरके वशाकी ध्वनि सुनकर सम्पूर्ण व्रज ही नहीं सारा त्रैलाक्य भी मुग्ध हा जाता है। इसीलिय रसखानने कहा—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु
बजाई है बासुरिया रँग-भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं
तजहीं तित लाज बिदा करि दानी॥
घूमै घरी घरी नद क द्वार
नवाना कहा कहूँ बाल प्रवानी।

या ब्रजमंडल मैं रसखानि
सु कौन भटू जु लटू नहिं कीनी॥

सर्वताभावेन न कवल मधुर बल्कि जो मधुराधिप हैं—ऐसे नन्दनन्दनकी लीला विश्वकल्याणकी पथप्रदर्शिका है, मानव-जीवनकी समग्र समस्याआका समाधान है। अपने-अपने जीवनको सार्थक बनानेकी सफल कुजी माक्ष-प्राप्तिका निर्विघ्र सुगम राजमार्ग अखण्ड तपश्चर्यास पवित्रीकृत सहृदय-हृदयकी परमपूत सद्भावना एव 'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्' की सवाहिका है। वस्तुतस्तु उनके असख्य नाम हैं और नामानुरूप उनकी अगणित लीलाएँ हैं। जिनकी उपस्थापनामें शब्दोंकी सामर्थ्य भी कुण्ठित हा जाती है। इसीलिय ता उपनिषत्कार कहते हैं कि—

यता वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अत सक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि भगवत्-लीला विशिष्टातिविशिष्ट है, क्याकि जो उनके शत्रु-जैस दीखते है, उन्हे भी भगवान् मुक्ति प्रदान करत हैं। व अजातशत्रु हैं। जो मुक्ति ऋषि-मुनियाको अपन जन्म-जन्मान्तरीय विकट साधनाके बावजूद दुर्लभ है, वह उनका शत्रुभावस भजन करनेवालाके लिये सहज सुलभ है। मात्र नामानुकीर्तन करनवाल आजन्मपातकी अजामिल तकको उन्हाने परमधाम प्रदान किया। भागवत (१२। ४)-म महर्षि वदव्यासका कहना है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला ससार-सागरम विद्यमान है, विविध दु खोके भयावह अग्निसे जलते हुए जीवके पार जाने और शान्तिके लिय एकमेव सफल नौका है।

सुर-मुनिदुर्लभ मुक्तिकी विधायिका तथा मङ्गलरूपात्मिका भगवत्-लीलाका रसास्वाद जिस मिल गया, वह सम्पूण सुख-दु ख, इच्छा-अनिच्छा, कर्माकर्म एव स्व-परकी भावनासे ऊपर उठकर आत्माराममय हो जाता है। वह जन्म-मरणके बन्धनसे सदा-सदाक लिये छूट जाता है। भागवतकारके शब्दाम कह ता कह सकत हैं कि—

तव विक्रीडित कृष्ण नृणा परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहा जन ॥

इस प्रकार गीता हा या महाभारत भागवत हो या अन्य पुराण वद हा या उपनिषद् सम्पूर्ण वाङ्मय भगवत्-लीलाका ही शाब्दिक स्वरूप है। जिसक प्रति हृदयसे समर्पित हाकर काई भी प्राणी आवागमनसे मुक्त हा जाता है—

भगवल्लीलामृत पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

लीला-कथाके श्रवणसे परमधामकी प्राप्ति

इत्थ परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्॥
मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद् वन क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्था ॥

(श्रीमद्भागवत १०। ९०। ४९-५०)

परीक्षित्! प्रकृतिसे अतात परमात्माने अपनद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेक अद्भुत चरित्राका अभिनय किया। उनका एक-एक कर्म स्मरण करनेवालाक कर्मबन्धनाका काट डालनवाला ह। जा यदुवशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओका ही श्रवण करना चाहिये। परीक्षित्! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनाहारिणी लीला-कथाआका अधिकाधिक श्रवण कीर्तन और चिन्तन करने लगता है तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्‌क परमधामम पहुँचा देती हे। यद्यपि कालकी गतिके पर पहुँच जाना बहुत ही कठिन है तथापि भगवान्‌क धामम कालकी दाल नहीं गलती। वह वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता। उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटाने अपना राजपाट छाडकर तपस्या करनके उद्दश्यसे जगलकी यात्रा की है। इसलिये मनुष्यको उनका लीला-कथाका ही श्रवण करना चाहिये।

भगवल्लीलाके कुछ रहस्य

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी जज स्वामी)

तत्त्ववेत्ता जिसे तत्त्व कहते ह, उसे योगशास्त्रमे 'परमात्मा' कहा जाता है, भगवद्भक्त और भागवतशास्त्र उसे षडैश्वर्यसम्पन्न 'भगवान्' कहते हैं, वेदान्तशास्त्राम उसे 'ब्रह्म' कहा गया है। अभिप्राय यह ह कि परमात्मा, भगवान् और ब्रह्मरूपसे प्रसिद्ध अद्वितीय अनन्त सच्चिदानन्द ही तत्त्व है।

भगवान् यद्यपि आप्तकाम अर्थात् पूर्णकाम हैं अतएव उनके अदर कोई कामना नही हो सकती तथापि वे अपने आनन्दके उल्लासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवल्लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोको परम प्रफुल्लित करता है।

'सोऽकामयत। (एकोऽहम्) बहु स्यां प्रजायेय' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६) आदि श्रुतियाका यही तात्पर्य है कि भगवान् अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक रूपाम प्रकट होते हैं। श्रीकृष्णावतारमें बाल-लीला-संदर्भम श्रीहरि मणिमयस्तम्भम अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आनन्दित होते है। उसे माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं, माखन हाथसे गिर पडता है। तब वे रोने लगते ह। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती है।

श्रीमद्भागवत (१। ८। २०)-के अनुसार कुन्तीदेवीने श्रीभगवान्के द्वारका पधारते समय उनकी स्तुति की है। उस स्तुतिमे उन्होने भगवान्से यही कहा है कि आपका अवतार परमहंस-मुनि-अमलात्माओका भक्तियोग प्रदान कर आनन्दित करनेके लिये होता है।

उक्त वचन तथा 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)—इस सूत्रमे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि लोकवत् लीला करनेवाले श्रीहरि भक्तोंके आनन्दको उछालनेके लिये ही अवतार ग्रहण करते हैं।

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता (४। ८)-मे भगवान्ने—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—कहकर अपने अवतारका प्रयोजन धर्मसंस्थापन, साधुपरित्राण और दुष्टोके विनाशके लिये बताया है तथापि दुष्टोका विनाश तो श्रीभगवान्के संकल्पमात्रसे सम्भव है। केनोपनिषद्की कथा है कि यक्षावतार यजनीय श्रीहरिने दृष्टिमात्रसे अग्नि और वायुकी शक्तिको स्तम्भित कर दी। ऐसी स्थितिमे रावण और कंसादिके लिये श्रीभगवान्को साक्षात् अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है? साधुओका रक्षण तो भगवान्की दैवी शक्तियों और 'धर्मो रक्षति रक्षितः' के अनुसार उनके धर्मसे ही सम्भव है, फिर इस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये श्रीप्रभुको अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है?

यद्यपि यह सत्य है कि साधुओका रक्षण और दुष्टोका विनाश भी अवतारलीलामे हो जाता है, तथापि ये गौण प्रयोजन है, मुख्य प्रयोजन तो भक्तोको आनन्द देना ही है।

जलतरंगकी उत्पत्ति जलमे ही होती है, जलतरंग जलमे ही उछलती है और लीन भी जलमे ही होती है अतएव जलतरंग जलरूप ही मान्य है तथापि समुद्र तरंगरूपसे दर्शकोको अत्यन्त प्रमुदित करता है। कभी-कभी तटको स्पर्श करके वहाँ बैठे यात्रियोको तरंगमाला विभोर कर देती है तटवर्ती छोटी-छोटी नौकाओको तथा जलपात्रोको बहाकर ले जाती हुई तरंगमाला कितनी सुहावनी परिलक्षित होती है। वायुयोगसे जलतरंगके रूपमे स्फुरित समुद्रसदृश भगवान् सगुण-साकार श्रीराम-कृष्णादिरूपसे अवतरित होकर अत्यन्त आह्लादक परिलक्षित होते हैं।

अवतारलीलामे श्रीभगवान्का आनन्दांश विशेषरूपसे स्फुरित होता है अचिन्त्य-शक्ति मायाके योगसे विशेष आनन्दका आविर्भाव भक्तोको अत्यन्त आनन्दित करता है। यद्यपि यदा-कदा किसी शाप एवं वरदानका आदर करनेके लिये की गयी भगवल्लीलामे भी साधुओका परित्राण और दुष्टोका विनाश हो जाता है परंतु ये भगवल्लीलाके गौण प्रयोजन हैं मुख्य प्रयोजन तो [illegible] भगवान् [illegible] आनन्दमे

सराबोर करना ही है। श्रीमद्भागवत (११। २। ३९-४०)-मे कवि नामक योगेश्वरने कहा है कि भगवल्लीला-चिन्तन और भगवन्नाम-सकीर्तन तथा स्मरणसे भक्तिका अकुर उदित होता है।

गीतोक्त धर्मसस्थापनार्थ अवतार-प्रयोजनका रहस्य इस प्रकार है—अट्ठाईसवे द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा प्रतिष्ठित कृष्णभक्ति एव भागवतधर्मकी धारा अबतक प्रवाहित है और आगे भी प्रवाहित होती रहेगी। यह भी ध्रुव सत्य है कि अनादि और अनन्त सनातन वैदिक धर्मको अवतार-कालम पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। साधुपरित्राण और दुष्टदलनकी लीला भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-कालमे भी सम्पन्न हुई, किंतु उनके लीलासवरणक तीस वर्ष बाद ही कलियुगके आ जानेपर साधुओका कष्ट और दुष्टोका उत्कर्ष पुन प्रारम्भ हो गया जो आज भी देखनेमे आता है। साधुओंके कष्ट-निवारण और दुष्ट-दलनके लिये आज भी हम भगवान्से कातरस्वरसे प्रार्थना करते हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यह सब कार्य भगवान्के अवतारका गौण प्रयोजन है तथा अपनी मुदमयी लीलाओसे भक्तोको आनन्दित करना मुख्य प्रयोजन है।

अब हम कतिपय शास्त्रीय लीलाआके रहस्यपर कुछ विचार करते हैं। भक्ताकी दृष्टि जबतक भगवान्पर स्थिर रहती है तबतक वे आनन्दविभोर रहते हैं। ज्यो ही उनकी दृष्टि श्रीहरिसे हटती है, व सकटमे फँस जाते है। ब्रह्माजीके वत्सहरण-प्रसगमे श्रीहरि ग्वाल-बालाके साथ बाल-लीलाक व्याजसे सख्य-रसकी वर्षा कर रहे थे। समस्त ग्वाल-बाल बैठे थे। आमोदपूर्वक सब भोजन कर रहे थे। सबकी दृष्टि बीचमे विराजमान भगवान्पर थी। इतनेमे बछडे दूर निकल गय। ग्वाल-बालोकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर बछडोंपर चली गयी। फलस्वरूप ग्वाल-बालाको एक वर्षका वियोग हो गया। इसी प्रकार महारासलीलामे आनन्दकी वर्षा हो रही थी। गोपियाकी दृष्टि अपने सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध ओर माभाग्यपर गयी। उसी क्षण श्रीकृष्ण अन्तर्धान हा गये। फलत गोपियोको भयकर विरह-वेदना सहनी पडी। एक लीला ऊखल-बन्धनकी है, जिसे हम वात्सल्यरसका रास कहते हैं। यशोदा मैया बालकृष्णको गोदम लिये आनन्दमग्न होकर बैठी हैं। श्रीकृष्ण दुग्धपान कर रहे है। माँ-बेटेकी आँखे मिली हुई है। परस्पर रसका आदान-प्रदान हो रहा है। यशोदा माताकी दृष्टि उफनते हुए दूधपर गयी। यद्यपि दूध बालमुकुन्दके लिये ही था फिर भी स्वय यशोदाके दुग्ध-पान कर रहे लालासे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता था। कदाचित् कुछ उफनकर गिर भी पडता तो क्या अनर्थ हो जाता? शेष तो बर्तनम बचा ही रहता, परतु मैया यशोदा अतृप्त बालकृष्णको गोदीसे उतारकर दूध सँभालने चली गयीं। बस, अनर्थ हो गया। दधिभाण्ड फूटे। माखन फैल गया। मैयाने आकर देखा तो कुपित हो गयीं। लालाको दूध पिलानेकी जगह दण्ड देनेका विचार किया। स्नेहमयी माता तो अपने बच्चोको डाँट-फटकार सकती है, दण्ड दिखाकर भयभीत कर सकती है, कुछ देर भोजन बद कर सकती है और हाथ बाँधकर कमरेम बद कर सकती है। यशोदा मैयाने लालाको डाँटा, डराया, धमकाया तथा अन्तम ऊखलसे बाँधनेका प्रयास किया। ठाकुरजी न बँधनेकी लीला करते रहे और अन्तमे बँध गये। नल-कूबरका उद्धार किया। अन्ततोगत्वा व्रजवासियोने यशोदा मैयाको ही दोषी बताया। इस प्रकार वात्सल्यरसकी लीला पूर्ण हुई। मृद्भक्षणकी लीला तो पहले ही सम्पन्न हो चुकी थी। इसके बाद और कोई यशोदाजीद्वारा ताडना देनेकी लीला नही हुई।

इस प्रकार इन सब लीलाआके वर्णनसे यह तथ्य स्वत सिद्ध हो जाता हे कि श्रीभगवान् अवतारकालमे लीला करते हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य भक्ताको आनन्द देना है और इसीक व्याजसे दुष्ट-विनाश, साधुपरित्राण तथा धर्मसस्थापनकी लीलाएँ भा अनायास ही सम्पन्न हाती रहती ह, जिससे महारास-रसिक, लीलाप्रेमी भक्त-साधकोमे भगवत्प्रम तथा भक्ति जाग्रत् होकर निरन्तर सवृद्धिको प्राप्त होती रहती है।

भगवत्तत्त्व-भगवल्लीला-रस-रहस्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवत्तत्त्व

श्रीमद्भागवतके अनुसार अद्वय (अद्वितीय)- ज्ञान तत्त्व है। उसीको ब्रह्म परमात्मा, भगवान्, क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष, पुराण, साक्षात्स्वयज्योति, अज, परेश, नारायण और वासुदेव आदि नामासे निरूपित किया गया है। वह अपनी मायासे सबके हृदयमे अन्तर्यामीरूपसे स्फुरित हो रहा है तथा स्वशक्तिगत सत्त्वसे श्रीराम-कृष्णादि विविध रूपामे अवतरित होता है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(श्रीमद्भा० १। २। ११)

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष पुराण
साक्षात्स्वयज्योतिरज परेश।
नारायणो भगवान् वासुदेव
स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमान॥
(श्रीमद्भा० ५। ११। १३)

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावन।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥
(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

भगवत्तत्त्व यद्यपि सच्चिदानन्दस्वरूप है, तथापि अद्वय-ज्ञानको तत्त्व कहनेका सात्त्विक रहस्य इस प्रकार है—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयमे ज्ञातारूप आश्रय और ज्ञेयरूप विषयसे निरपेक्ष त्रिपुटीका अधिष्ठानात्मक आश्रयरूप बोध अद्वय-ज्ञान है वही तत्त्व है। जिस प्रकार अधिभूत रूप अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य तेज सापेक्ष हैं, उसी प्रकार ज्ञेय ज्ञान और ज्ञाता ब्रह्मसापेक्ष हैं परतु अद्वय-बोधात्मा ब्रह्म ज्ञेयादिसापेक्ष नहीं है। शब्दादि विषयभेदसे अनुगत ज्ञानमे तात्त्विक भेद असिद्ध है। जागरादि अवस्था-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमे वास्तव-भद असिद्ध है। इसी प्रकार दिन पक्ष मास वर्ष कल्पादि-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमें वास्तव-भेद असिद्ध है। इस प्रकार ज्ञानकी नित्यता और एकरूपता ज्ञानको सत् सिद्ध करती हैं। ज्ञानकी अवेद्य अपरोक्षता उसे चित् सिद्ध करती है। ज्ञानकी सच्चिद्रूपता उसे आत्मा सिद्ध करती है। जो सदा रहे और भानका विषय न हो, अपितु भानस्वरूप हो, वही आत्मा हो सकता है। प्राप्त-बोध आत्मा होनेसे परम प्रमास्पद है। परम प्रेमास्पद होनेसे परमानन्दरूप है। इस प्रकार अद्वय-बोधकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध होती है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यके कारण वही विवक्षावशात् ब्रह्म, परमात्मा, भगवानादि नामोसे निरूपित होता है। वेदान्ती उसे ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त भगवान् शब्दसे अभिहित करते है। भक्तोकी भावनाके अनुसार निर्गुण-निराकार भूमिम जिस सच्चिदानन्द-तत्त्वको ब्रह्म कहा जाता है उसीको सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्तादि- गुणगण-समलकृत सगुण-निराकार भूमिमे परमात्मा कहा जाता है तथा श्रीराम-कृष्णादि सगुण-साकार भूमिमे विलसित उसीको भगवान् कहा जाता है। इस प्रकार भगवत्तत्त्वका सात्त्विक विवेचन सूत्रशैलीमें सम्पन्न हुआ।

भगवल्लीला

'लीला'पदका प्रयोग क्रीडा, विनोद आनन्द मनोरञ्जन, चरित, रतिक्रीडा, केलिक्रीडा अनायास, सुगमतापूर्वक, दर्शन, आयास, हाव-भाव छबि सौन्दर्य लावण्य लालित्य, माया आदि अर्थोमे किया जाता है। परमानन्दस्वरूप प्रभुकी अचिन्त्य ह्लादिनी सार-सर्वस्वभूता मायायोगस विविध रूपोमे अभिव्यक्ति और प्रीति तथा प्रवृत्ति लीला है।

कार्यकारणातीत सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुण-निराकार परब्रह्म ही अचिन्त्य सधिनी सवित् और ह्लादिनी-स्वरूपभूता शक्तियोके योगसे सगुण-निराकार अन्तर्यामी होता है। वही श्रीविष्णु, शिव शक्ति सूर्य और गणेशसज्ञक सगुण-साकार भगवान् होता है। सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार भूमिमे पञ्चदेवोंमें सर्वथा साम्य है। सगुण-साकार अवतारभूमिमे नाम रूप लीला और धामको लेकर उनम जो भेद प्रतीत होता है वह लीलामात्र है। निर्गुण-निराकार कार्यकारणातीत परब्रह्म मृत्तिका-तुल्य है। सगुण-निराकार अन्तर्यामी बीजतुल्य है। सगुण-साकार हिरण्यगर्भ और विराट् अकुर वृक्ष शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पतुल्य है। सगुण-साकार श्रीराम-

कृष्णादि फलतुल्य है।

भगवल्लीलाके प्रमुख दो भेद हैं—(१) सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला और (२) अवतार-लीला।

सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला—

इस लीलाके प्रयोजन इस प्रकार हृदयंगम करने योग्य हैं—स्वप्नतुल्य सृष्टि-लीला है। जाग्रत्तुल्य स्थिति-लीला है। सुषुप्तितुल्य संहार-लीला है। जिस प्रकार जलतरंगका उदय-निलय और विलय-स्थान जल है, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसारके उदय, निलय और विलय (उत्पत्ति-स्थिति और संहृति)-स्थान श्रीहरि हैं। अतएव वे जगत्के उपादानकारण हैं। महाकल्पके प्रारम्भमें ईक्षणयोगसे समग्र सृष्टिके स्रष्टा होनेसे वे निमित्तकारण भी हैं। इस प्रकार जालेके मकड़ी-तुल्य, स्वप्नप्रपञ्चके स्वप्नसाक्षीतुल्य श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के अभिन्न-निमित्तोपादानकारण हैं। अतएव जलतरंगकी जलरूपता, मृद्घटकी मृद्रूपता, रज्जुसर्पकी रज्जुरूपताके तुल्य श्रीहरिकी सर्वरूपता सिद्ध है। वे जहाँ घटाकाशके महाकाशतुल्य, जलचन्द्रके जलतुल्य, जीवोंके अंशी-सरीखे हैं, वहाँ आत्मरूप भी। अंशी-सरीखे होनेसे परम आत्मीय हैं और आत्मरूप होनेसे आत्मरूप ही हैं। अतएव परम प्रेमास्पद और एकमात्र प्रेमास्पद श्रीहरि ही हैं।

सृष्टिपरक श्रुतियोंमें विगान (विगीति, विकूलता, अनेकरूपता)-सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य सृष्टिमें संनिहित सिद्ध नहीं होने देती। स्रष्टा परमेश्वरके स्वरूप-प्रतिपादनमें अविगीति सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य स्रष्टामें ही संनिहित सिद्ध करती है। सृष्टि-स्थिति और संहृतिलीलाके व्याजसे परमेश्वर निज निष्प्रपञ्च-स्वरूपमें प्रपञ्चावलम्बनके योगसे जीवोंके मन सुगमतापूर्वक अपनेमें उसी प्रकार रमानेका सुयोग समुपस्थित करते हैं जिस प्रकार निराकार अग्नि स्वयंको साकार कर स्वयंमें मनोयोगको सुगम करता है। 'उपायः सोऽवताराय' (माण्डूक्यकारिका ३। १५)-की उक्तिसे श्रीगौडपाद महाभागने उक्त तथ्यको प्रकाशित किया है। योगदर्शनके अनुसार भोग और अपवर्ग सृष्टिका प्रयोजन है। श्रीमद्भागवतने पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् भोगरूप धर्म, अर्थ और काम तथा अपवर्गरूप मोक्षको सृष्टि-रचनाका प्रयोजन माना है। अर्थात् अकृतार्थ जीवोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करना जीव-रचना एवम् सृष्ट्यादि-लीलाका प्रयोजन है—

> बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
> मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥
>
> (श्रीमद्भा० १०। ८७। २)

तथापि बहिर्मुखताके वशीभूत अन्य प्राणी यहाँतक कि मनुष्य भी विषयेन्द्रियसंस्पर्शज भोगमें ही मनोवृत्तियोंको रमाते हैं, न कि नाम-रूपात्मक जगत्का आकर्षण विदीर्ण कर अस्ति, भाति, प्रियरूप जगदाश्रय श्रीहरिमें। ऐसी स्थितिमें जगद्रचनाका प्रयोजन गिने-चुने प्रबुद्ध मनीषियोंके जीवनमें ही चरितार्थ होता देख भगवान् श्रीराम-कृष्णादि-रूपोंमें अवतरित होते हैं।

अवतार-लीला—

भगवान् विचार करते हैं—'यद्यपि स्थावर-जङ्गमात्मक कार्य-प्रपञ्चका अभिन्न निमित्तोपादानकारण मैं ही हूँ, तथापि जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्मोंके योगसे जगत् बनाता हूँ। गङ्गा, काशी, उर्वशी, स्वर्ग, कल्पतरु, हीरा आदि पदार्थोंकी रचना जहाँ जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप करता हूँ, वहाँ कर्मनाशा, मगध, उलूक, नरक, कीकर, कोयला आदिकी रचना भी जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप ही करता हूँ। स्वर्गादि शुभ वस्तुओंकी रचना कर भी मैं संतुष्ट नहीं होता, क्योंकि कर्मका फल स्वल्प और सीमित ही सम्भव है। पृथ्वी यद्यपि चरम कार्य होनेसे पद्मादि दिव्य पुष्पोंके रूपोंमें विकसित होती है, पद्मादिमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पाँचों विशेषताएँ संनिहित होती हैं, तथापि वे विशेषताके साथ ही विकारकी पराकाष्ठा ही सिद्ध हैं, स्वल्प और सीमित (नश्वर) तो हैं ही। पृथिव्यादिकी अपेक्षा जलादिमें संनिहित निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता, विभुता और प्रत्यग्रूपताकी अवधिरूप मुझ ब्रह्मात्मतत्त्व तक जीवोंकी दृष्टि नहीं पहुँच पाती है, मनोहर रूपादिमें ही उलझ जाती है। ऐसी स्थितिमें अविद्या, काम और कर्मोंके बिना तथा पञ्चभूतोंके बिना ही

स्वयको श्रीराम-कृष्णादि-रूपामे अभिव्यक्त कर हठपूर्वक अधिकाधिक जीवोका हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हे भवबन्धनसे विमुक्त करना आवश्यक है।' ऐसा सोचकर *भगवान्* सकल सुन्दरताओके सनिवेशसे समलकृत विशेषता और पूर्णताकी पराकाष्ठा तथा निर्विकार (कार्यकोटिविनिर्मुक्त) श्रीराम-कृष्णादि-विग्रह धारण करते हैं। वह विग्रह जलनिष्ठ अनागन्तुक अतएव स्वाभाविक शैत्यकी अधिकताके योगसे अभिव्यक्त हिमके तुल्य 'आकाशशरीर ब्रह्म' (तैत्ति० १।६।४) आदि श्रुतियाके अनुसार उस भगवद्विग्रहका निमित्तोपादान वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्द-तत्त्व ही सिद्ध है। महेश्वरकर्तृक ईक्षणसिद्ध किंतु ईक्षणतुल्य तत्त्वान्तरपरिणामरहित होनेसे वह विग्रह कार्य-सरीखा परिलक्षित होनेपर भी वस्तुत कार्यतुल्य बाधित नहीं होता। उस विग्रहमे सनिहित समता, असगतादि गुणगण सम, असग, निर्गुण परमात्माकी ही अभिव्यक्ति होनेसे वस्तुत निर्गुण ही मान्य हैं। भगवद्विग्रहसे विनि सृत शब्दादि भी अशब्द, अस्पर्शादिरूप निर्गुण ही मान्य हैं। उक्त गुणगणोसे समलकृत परमात्मा पामरो और विषयी पुरुषोका मन भी हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हे सारूप्यादि सद्गति प्रदान करते हैं।

ऐसे भक्तवत्सल मननीय नारायण महाप्रभु श्रीकृष्णावतारमें नररूप अर्जुनके प्रति कितने अनुरक्त परिलक्षित होते हे, इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) खाण्डववनदाहके अनन्तर श्रीकृष्णपर सतुष्ट इन्द्रने उन्हें वर माँगनेको कहा। भगवान् वासुदेवने इन्द्रसे यह वर माँगा कि अर्जुनके साथ मेरा प्रेम निरन्तर बढता रहे—

> वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम्।
> ददौ सुरपतिश्चैवं वरं कृष्णाय धीमते॥
>
> (महाभारत आदिपर्व २३३। १३)

आश्रय हैं 'भगवान् प्रीतिके विषय हैं' यह तो प्रसिद्ध ही है परंतु प्रीतिके आश्रय अर्थात् प्रेम करनेवाले भी हैं उक्त दृष्टान्तसे यह तथ्य अत्यन्त स्फुट है। तभी तो महानुभावोंने कहा है—

> 'प्रीति कि रीति रंगीलो हि जानत',
> 'जानत प्रीति-रीति रघुराई।'

(२) अर्जुनके बाणोसे अत्यन्त पीडित होकर भगदत्तने कुपित हो अपने *अकुशको ही वैष्णवास्त्रसे अभिमन्त्रित* करके पाण्डुनन्दन अर्जुनकी छातीपर छोड दिया। भगदत्तका छोडा हुआ वह अस्त्र सबका नाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आटमें करके स्वय ही अपनी छातीपर उसकी चोट सह ली। भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर आकर वह अस्त्र वैजयन्तीमालाके रूपमे परिणत हो गया। वह माला कमलकोशकी विचित्र शोभासे युक्त तथा सभी ऋतुओके पुष्पोसे सम्पन्न थी। उससे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रभा फैल रही थी। उसका एक-एक दल अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। कमलदलोसे सुशोभित तथा हवासे हिलती हुई दलोवाली उस वैजयन्ती-मालामे तीसीके फूलोके समान श्याम वर्णवाले केशिहन्ता शूरसेननन्दन शार्ङ्गधन्वा, शत्रुसूदन, भगवान् केशव अधिकाधिक शोभा पाने लगे, मानो वर्षाकालमे सध्याके मेघोसे आच्छादित श्रेष्ठ पर्वत सुशोभित हो रहा हो।

उस समय अर्जुनके मनमे बडा क्लेश हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'*अनघ!* आपने तो प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध न करके अश्वोंको काबूमे रखूँगा—केवल सारथिका काम करूँगा किंतु कमलनयन! आप वैसी बात कहकर भी अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं सकटमे पड जाता अथवा अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता तो उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। जब मैं युद्धके लिये तत्पर हूँ, तब आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। आपको तो यह भी विदित है कि यदि मेरे हाथमे धनुष और बाण हों तो मैं देवता असुर और मनुष्योसहित इन सम्पूर्ण लोकोंपर विजय प्राप्त कर सकता हूँ।'

तब वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपूर्ण वचन कहे—'अनघ! इस विषयमें यह गोपनीय रहस्यकी बात है सुनो। मैं चार स्वरूप धारण करके सदा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता हूँ। अपनेको ही यहाँ

अनेक रूपाम विभक्त करके समस्त ससारका हितसाधन करता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डलपर वदरिकाश्रमम नर-नारायणरूपम स्थित हो तपश्चर्या करती हैं। दूसरी परमात्मस्वरूप मूर्ति कर्म करनेवाले जगत्को साक्षी-रूपसे देखती रहती है। तीसरी मूर्ति मनुष्यलोकमे अवतरित हा नाना प्रकारके कर्म करती है। चौथी मूर्ति वह है जा सहस्र युगातक एकार्णवक जलम शयन करती है। सहस्र युगक पश्चात् मरा वह चौथा स्वरूप जव योगनिद्रासे उठता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्ताको उत्तम वर प्रदान करता है। एक बार भूदेवीने अपन पुत्र नरकासुरके लिये वर माँगा—'मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे सम्पन्न होकर देवताओ और दानवाके लिये अवध्य हो जाय अत आप कृपापूर्वक अपना वह अस्त्र प्रदान कर।'

मैंने अपना परम उत्तम अमोघ वैष्णवास्त्र उस दे दिया। मनस्विनी पृथ्वीदेवी कृतार्थ होकर चली गयीं। नरकासुर उसे प्राप्त कर शत्रुआका सताप देनवाला तथा अत्यन्त दुर्जय हो गया। नरकासुरसे मेरा वह अस्त्र इस प्राग्ज्योतिपनरश भगदत्तको प्राप्त हुआ। आर्य! इन्द्र तथा रुद्रसहित तीना लोकोंम कोई भी ऐसा वीर नहीं है जो इस अस्त्रके लिय अवध्य हो। अत मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये उस अस्त्रको दूसरे प्रकारसे उसक पाससे हटा दिया है। पार्थ! यह महान् असुर उस उत्कृष्ट अस्त्रसे वचित हो गया है। अब तुम इसे मार डालो।'

(३) खाण्डववनमे जब अर्जुन अपने हाथम धनुप लेकर अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे उस समय ऐरावत-कुलम उत्पन्न अश्वसेन नामक नाग अपनी माताके मुखम घुसकर अपने शरीरको सुरक्षित करक आकाशम उडा जा रहा था। अर्जुनने ठसे एक ही सर्प समझकर कवल उसकी माताका वध किया। उसी वैरको याद करके वह कर्ण तथा अर्जुनका भीषण सग्राम देखकर वडे वेगसे ऊपरकी ओर उछला और उस युद्धस्थलम आ पहुँचा। वह यह सोचकर कि 'दुरात्मा अर्जुनके वैरका बदला लेनेके लिये यही सबसे अच्छा अवसर है', बाणका रूप धारण करके कर्णके तरकसमे घुस गया। जब किसी तरह कर्ण युद्धम अर्जुनसे बढकर पराक्रम न दिखा सका और अर्जुनने अपने बाणाके आघातस कर्णका सारा शरीर क्षत-विक्षत कर दिया, तब कर्णने सर्पमुख-बाणक प्रहारका विचार किया। उत्तम बलशाली कर्णने अर्जुनको मारनेकी इच्छासे ही जिसे सुदीर्घ कालसे सुरक्षित रख छाडा था सानेके तरकसम चन्दनके चूर्णक अदर जिसे रखता था और सदा जिसकी पूजा करता था, उस शत्रुनाशक झुकी हुई गाँठवाले, स्वच्छ महातेजस्वी, सुसचित प्रज्वलित एव भयानक सर्पमुख-बाणको उसने धनुपपर रखा और कानतक खींचकर अर्जुनकी ओर सधान किया। कर्ण युद्धम सव्यसाची अर्जुनका मस्तक काट लेना चाहता था, पर उस यह विदित नहीं था कि अश्वसेन नाग ही यागबलस बाणम प्रविष्ट हा गया है। इन्द्र उस बाणम सर्पको प्रविष्ट दख यह साचकर शिथिल हा गये कि 'अब ता मरा पुत्र मारा गया।' तब जितात्मा ब्रह्माजीन बताया कि—'दवश्वर! दु खी न होओ। विजयश्री अर्जुनको ही प्राप्त हागी।' धनुप आर प्रत्यचासे छूटकर आकाशम जाते ही बाण प्रज्वलित हा उठा। भगवान् श्रीकृष्णने लीलापूर्वक अर्जुनक उत्तम रथको तुरत ही पैरसे दबाकर उसक पहियाका कुछ भाग पृथ्वीमे दबा दिया। साथ ही चन्द्रमाकी किरणाक समान श्वतवर्णवाले उनके घोडे भी धरतीपर घुटने टककर झुक गय। देव ऋषि गन्धर्वादिन पुष्पवृष्टि और स्तुतियास भगवान् मधुसूदनका स्वागत किया। श्रीब्रह्माजीद्वारा निर्मित इन्द्रप्रदत्त विजयप्रद त्रिभुवनविख्यात अर्जुनके किरीटको हडपकर उसे दग्ध करता हुआ बाणरूप सर्प पुन कर्णक तरकसम घुसना ही चाहता था कि कर्णने उसे देख लिया। कर्णका उसने अपना परिचय देते हुए पुन प्रयोग करनेका अनुरोध किया। परतु कर्णने कहा—'मैं सौ अर्जुनको मार सकूँ तो भी एक बाणका दो बार सधान नही कर सकता।' निराश सर्प अपना स्वरूप प्रकट कर अर्जुनके वधके लिये उद्यत हा आकाशमार्गसे अर्जुनपर आक्रमण ही करना चाहता था कि श्रीकृष्णकी प्ररणासे अर्जुनने उसक टुकडे-टुकडे कर दिय।

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

इस परिदृश्यमान विशाल विश्व-ब्रह्माण्डके पीछे एक महान् अद्वितीय तत्त्व विद्यमान है। उसीकी सत्तासे जगत्के समस्त तत्त्वसमूह सत्तावान् और गतिशील हैं। सृष्टि स्थिति और लयका कारण भी वही है—

सदेव साम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

'हे साम्य! सृष्टिके पूर्व एकमात्र अद्वितीय सत् ब्रह्म ही था अन्य कुछ नहीं था। उसी परम सत्तासे निखिल विश्व-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है।' जैसे श्रुतिमें कहा है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति॥

'ये सब प्रत्यक्ष दीख पडनेवाले सम्पूर्ण भूत-प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होकर जिसमें रहते हैं और अन्तमें जिसमें लयभावको प्राप्त हो जाते हैं, उसीको जाननेकी इच्छा कर, वही ब्रह्म है।' वही निरुपाधिक ब्रह्म मायाविशिष्ट होकर सृष्टिकर्ता परमेश्वर-सञ्ज्ञक बन जाता है। उसी परमेश्वरने—'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'-के अनुसार सृष्टिकी रचना की है।

अब यहाँपर शका यह होती है कि वह परमेश्वर इस दु खमय ससारको क्या रचता है क्या वह अकेला रहनेमें घबराता था? डरता था? इसके समाधानके लिये कहना यह है कि परमेश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। उसे भला किससे भय हो सकता है अर्थात् किसीसे भी नहीं। भय द्वैतमें होता है—'द्वितीयाद् वै भयं भवति।' अद्वैतमें भय नहीं होता है। पुन शका होती है—तो क्या परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना करता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं है। इसके लिये कहना यह है कि ईश्वर किसी प्रयोजनको लेकर सृष्टिकी रचना नहीं करता है क्योंकि वह पूर्णकाम तथा आप्तकाम है। 'आप्तकामस्य का स्पृहा'— आप्तकामको क्योंकर इच्छा हो सकती है अभिप्राय यह कि उसका कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है। अत परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना नहीं करता इसलिये उसके परमेश्वर होनेमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।

यहाँपर पुन शका उठाते हुए कहते हैं कि तो क्या ईश्वरकी यह सृष्टि-रचना किसी प्रयोजनके बिना उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्तिमात्र है? इस शकाके समाधानके लिये कहना है कि नहीं, उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति भी नहीं है, क्योंकि यदि परमेश्वर सृष्टिकी रचना नहीं करता, तब भी उसपर अल्पज्ञताका दोष लग हो जाता। ऐसी स्थितिमें परमेश्वरमें उभयपाशरज्जु गले पडती। अतएव परमेश्वरकी सृष्टि-रचना उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति नहीं, अपितु उनका वह स्वभाव है। जैसे हमारा श्वास और प्रश्वास स्वत ही एक बार बाहर जाता है एक बार भीतर जाता है वह उसका स्वभाव है। अत परमेश्वरकी सृष्टि-रचनामें कोई हेतु या प्रयोजन न होनेपर भी उसका स्वभाव या लीला-विलास मात्र कहा जा सकता है। इसलिये ब्रह्मसूत्रमें कहा भी है—'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥' जैसे लोकमें प्रयोजनके बिना ही क्रीडा आदिमें किसी विशिष्ट पुरुषकी प्रवृत्ति देखी जाती है, वैसे ही परमात्माकी भी यह जगत्-रचना प्रयोजनरहित केवल लीला-विलासमात्र है। भाष्यकार भगवान् शकराचार्यने भी अपने भाष्यमें लिखा है—

यथा लोके कस्यचिदाप्तैषणस्य राज्ञो राजामात्यस्य वा व्यतिरिक्तं किंचित्प्रयोजनमनभिसंधाय केवलं लीलारूपाः प्रवृत्तयः क्रीडाविहारेषु भवन्ति, यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किंचित्प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किंचित् प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति।' (ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य० २। १। ३३) 'जैसे लोकमें आप्तैषणावाले ऐसे किसी राजा अथवा मन्त्री आदिकी क्रीडा-क्षेत्रोंमें प्रवृत्तियाँ किसी अन्य प्रयोजनकी अभिलाषा न करके केवल लीलारूप होती हैं तथैव ईश्वरकी सृष्टि-रचना भी अपने किसी प्रयोजनसे रहित केवल लीलामात्र होती है। जैसे श्वास और प्रश्वास आदि किसी बाह्य प्रयोजनकी इच्छाके बिना स्वभावसे ही होते हैं वैसे ही अन्य किसी प्रयोजनके बिना स्वभावसे ईश्वरकी भी केवल लीलारूप प्रवृत्तिमात्र होती है।

परतु निर्गुण-निराकारमे लीला नहीं हो सकती है। सगुण-साकारमे ही लीला होती है। इसलिये परमेश्वरने जगत्‌की रचना की और—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' सृष्टिकी रचना करके उसमे वह अनुप्रविष्ट हो गया। अर्थात् वह अनेक रूपोमे हो गया है। जैसे वेदमे कहा गया है—'इन्द्रो मायाभि पुरु रूप ईयते। (ऋ० ६। ४७। १८)' इन्द्र 'इन्द्रो ब्रह्मेति' (कौषीतकि ब्राह्मण) परमेश्वर अपनी माया-शक्तिके द्वारा अनेक रूपोमे हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उपाधिको धारणकर वह ब्रह्म अनेक रूपोमे हो जाता है किंतु स्वरूपत एक ही रहता है। जैसे श्रुतिमे कहा है—

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।

जैसे प्रतिबिम्बके रूपमे चन्द्रमा अनेक भासनपर भी बिम्बस्थानीय चन्द्रमा एक ही रहता है वैसे ही ब्रह्मात्माके विषयमे भी समझ लेना चाहिये। वही परमेश्वर जगत्‌का अधीश्वर है और वही अनेक अवतार धारणकर विचित्र लीलाएँ करता है।

अवतार और उनका प्रयोजन

अवतरण करनेको 'अवतार' कहते हैं। अर्थात् जो 'देवानामशावेशवशेन प्रादुर्भाव ' है, वही अवतार है। जिसका ज्ञान अविलुप्त रहता हुआ मायिक जगत्‌मे मानुषी लीलाएँ करता है, वही अवतार है। अब यहाँपर प्रश्न होता है कि परमेश्वर किस प्रयोजनसे अवतार धारण करता है? इस विषयमे भगवान् स्वय ही गीतामे कहते हैं—'जब-जब धर्मकी ग्लानि—हानि और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं विशेष रूप धारण करता हूँ अर्थात् विभूति-सम्पन्न रूप धारण करता हूँ। साधु अर्थात् धार्मिक सत्पुरुषोका उद्धार और पापकर्म करनेवालोका विनाश करनेके लिये एव धर्मकी पुन भलीप्रकारसे स्थापना करनेके लिये युग-युगमें मैं प्रकट होता हूँ अर्थात् अवतार धारण करता हूँ।'

यदि यहाँपर पुन शका की जाय कि परमेश्वर जब किसी समय कहींपर भी अवतार धारण करता है तब अन्यत्र उसका अभाव हो जाता होगा उस कालमे जगत्‌की व्यवस्था कैसे होती होगी? इसका समाधान यह है कि कहींपर भी किसी भी कालमे अवतार धारण करनेपर परमेश्वरकी सत्ताका लोप नहीं होता। इसलिये जगत्‌की व्यवस्थामे कोई अन्तर नहीं पडता। इस विषयमे कठोपनिषद् (२। २। ९)-मे कहा है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो
रूप रूप प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च॥

जैसे एक ही अग्नि सम्पूर्ण जगत्‌मे अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपोंमें भासित होता है, वैसे ही चैतन्य-स्वरूप परमात्मा भी अनेक रूपोंमें भासित होता है। आकाशके समान अविकारी रूपसे वह उनसे बाहर भी है। यदि पुन शका हो कि भगवान्‌के सब अवतार केवल भारतवर्षमे ही हुए हैं, अन्य किसी देशमे नहीं। ऐसा क्यों? क्या परमेश्वरका इसमे कोई पक्षपात नहीं है? इसका समाधान यह है कि परमेश्वरका इसमे कोई पक्षपात नहीं है। यह बात तो पहले ही कही जा चुकी है कि भगवान्‌का अवतार धर्मकी रक्षाके लिये होता है और वह धर्म वैदिक सनातनधर्म। वेद प्रतिपादित होनेके कारण वह वैदिक है और 'सदातन सनातन '—इस न्यायमे अनादि सनातन कालसे चला आया होनेके कारण वह सनातन है। इसलिये इसे 'वैदिक सनातनधर्म'के नामसे कहते है। शेष अन्य सब धर्म इसीकी शाखा उपशाखाएँ मात्र हैं। 'ध्रियते इति धर्म ' जिसे धारण किया जाता है वही धर्म है।

इस वैदिक सनातनधर्मका उद्भव आर्यावर्तदेश भारतवर्षमे ही हुआ है, इसलिये इसकी रक्षाके लिये सभी अवतार इसी भारतवर्षमे ही हुए, यही इसका तात्पर्य है। अवतार भी एक दो नहीं है किंतु पूरे चौबीस है। अभी एक कल्कि अवतार लेना शेष है। मत्स्य कूर्म वाराह नृसिंह, वामन श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोके नाम है। परमेश्वरके इन अवतारोने एक-से-एक बढकर विचित्र लीलाएँ की हैं, जो पुराण-प्रसिद्ध हैं। अतएव अन्तमे यही कहा जा सकता है कि परमेश्वरकी यह सृष्टि-रचना केवल 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' मात्र ही है।

भगवान्‌का लीला-वैभव

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

श्रीपरमेश्वर नाम-रूपासे रहित हैं, तथापि अति विचित्र इस जगत्‌की सृष्टि-स्थिति-सहार आदिके कर्ता हैं। इन कार्योंमें उन्हे किंचिदपि परिश्रम नहीं करना पडता ये सब लीलासे ही बना देते हैं। बिना शरीरक तथा बिना किसी परिश्रमके सृष्टि-स्थिति-सहार आदि करना ही उनकी लीला कही जाती है।

इसी तथ्यको श्रीवेदव्यासजीने अपने वेदान्त-सूत्र '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**'-म स्पष्ट किया है। लीला वह है जो बिना परिश्रमके स्वाभाविक रूपसे तथा बिना किसी विशेष उद्देश्यस सम्पन्न हाता है। ये दोना ही लीलाकी विशेषताएँ हैं।

मानव जन्मत स्वाभाविक रूपसे उच्छ्वास-नि श्वास लता रहता है। इसक लिये उसे कोई विशष प्रयत्न करना पडता हे क्या? बालकगण क्रीडामग्न हा सिकतास विचित्र-विचित्र घर आदि बना देते हैं, नाश भी कर देते है। इनमे उनका उद्देश्य क्या होता है? कुछ भी नहीं। इसी तरह भगवान् भी अपना सृष्ट्यादि कर्म कर डालते हैं। उनकी यह कार्य-प्रणाली सुचारु-रूपसे शास्त्राम विशदीकृत ह।

श्रीपरमात्मा सर्वव्यापी हैं। सब लोगाके हृदयम अन्तर्यामी होकर बैठे ह। व कूटस्थ हैं तथा नित्य भी।

वे सृष्टि-स्थिति आदिके कारण होते हुए भी अशरीरी ह। शरीरक बिना भी मायास सब कार्य बना देत हे। यह माया भी उनस ही है। यही उनकी लीला है।

इसी तत्त्वका विशदीकारक वाक्य ह—'**माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम्।**' इस कार्य-प्रणालीसे श्रीपरमेश्वरको काई भी लाभ नहीं है परतु हम हाता है महान् लाभ—'मोक्ष-प्राप्ति।' पुनर्जन्मरहित नित्य-विशुद्ध भाव ही माक्ष है।

एक बार दवर्षि नारदजान भगवान् श्रीकृष्णस प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप अपनी लीला-विभूतिक दर्शनका सौभाग्य प्रदान कर।' भगवान् श्रीकृष्णन कहा—'जाकर मर वासस्थलाका दशन कर वहीं आपको मरी लीला-विभूतिका अनुभव हा जायगा।'

नारदजा एक घरम घुम ता क्या दखते हैं? वहाँ श्रीभगवान् नित्यकर्मानुष्ठानम रत हैं और दूसर घरम घुस ता भगवान्‌का पूजा-पाठम निरत दखत हैं तथा तीसर घरम गय तो भगवान्‌को नायिकासे लीला-विनादम मग्न पाते हैं। इस प्रकारके विभिन्न दृश्य देखकर एव भगवान्‌की सर्वव्यापकताका अनुभवकर अन्तमे नारदजी श्रीकृष्णभगवान्‌से बोले—'आप सर्वत्र विराजते हैं। यही आपकी लीला-विभूति है'—इसका परिपूर्ण अनुभव हुआ मुझ।

ऐसे ही रासलीलामे भी एक ही भगवान् अनेक रूपोमें अपनका विभक्तकर प्रत्यक गोपियोके साथ लीला करने लगे। सभी गोपियाँ अपने ही साथ भगवान्‌को देखकर अत्यन्त हर्षित हुई।

एक बार सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्माजीको भी ऐसा ही अनुभव हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण गाय-बछडाको चराते थे। उनके साथ थे कइ गोप-बालक। ब्रह्माजीने सब-के-सब गाय-बछडाका अपहरण कर लिया, गोप-बालकोको भी न छाडा। पर क्या हुआ? भगवान् श्रीकृष्ण उन सबका रूप धारण करक शामको घर लौटे। उतनी ही सख्या, वय-रूपादिके गाय-बछड एव गोप-बालक विद्यमान रहे। यथावत् सब कार्य हाते रहे। कहीं कोई गडबडी नहीं। किसाका इस लीला-रहस्यका आभास नहीं।

निशि-दिन बीतते रहे। ब्रह्माजी अपने कार्यकी फलश्रुतिके अनुसधानम गाकुल पधारे। यहाँ वसे ही गायो एव गोप-बालकोको देखकर यह समझ नहीं पाय कि कौन असली है कौन नकली? क्या करे बेचारे। यह तो है भगवान्‌की लीला। भ्रमित-चकित हो गय सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी।

महाभारतके युद्धक्षेत्र—कुरुक्षेत्रमें सेनाआके देखते-देखते माहित हाकर अपना कर्तव्य भूलकर अर्जुन वदान्ती बन बैठे। उन्ह विश्वरूप दिखाकर, अपनी लीला-विभूतिका अनुभव कराकर भगवान् श्रीकृष्णन बताया—'मया हतास्त्व जहि मा व्यथिष्ठा।' इसी प्रकार अनन्त लीलाएँ करत-करत परमात्मा जगत्‌का सहार भी कर डालते हैं। यह है उनकी लीला।

अत स्पष्ट ह कि श्रीपरमात्मा निरूप हाकर ही मायासे सृष्टि-स्थिति-सहार आदि बिना किसी प्रयाजन तथा प्रयत्नके करवात हैं हम अमूल्य फल दिलानके लिय ही। यह है श्रीभगवान्‌का लीला-वैभव।

श्रीकृष्णलीलाका विश्वव्यापी प्रभाव

(श्रीमद् ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपादजी महाराज)

[अन्ताराष्ट्रिय कृष्णभावनामृत-सघके सस्थापक श्रीकृष्णकृपा-श्रीमूर्ति श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराजने भारत ही नहीं, पूरे ससारके देशोंका भ्रमणकर वहाँके लोगाको भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओ तथा उनके नाम-सकीर्तनके प्रभावसे परिचित कराकर करोडो व्यक्तियोको सनातनधर्ममे दीक्षित किया। अब ये अग्रेज (ईसाई) कृष्ण-भक्त बन सिरपर लम्बी चोटी एव माथेपर तिलक धारण किये श्रीकृष्ण-लीलाके चिन्तनमे लीन रहते हैं। उनके माध्यमसे ब्रिटेन अमेरिका, फ्रास, जापान, जर्मनी, कनाडा आदि देशामे भव्यतम श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिराका निर्माण हुआ, टैक्सास, डल्लास आदिमे गुरुकुला तथा गोशालाआकी स्थापना हुई, वहाँ रथयात्राएँ प्रदर्शित कर भगवान्की दिव्य लीलाआके दर्शनाकी परम्परा शुरू हुई।

सन् १९७१ मे भक्त श्रीरामशरणदासजी 'पिलखुवा' तथा उनके सुपुत्र श्रीशिवकुमारजी गोयलको स्वामी प्रभुपादसे साक्षात्कारका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय कुछ प्रश्नोत्तर उनसे किये गये थे। उसके प्रमुख अशोको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।—स०]

मैंने भौतिकवादस अति त्रस्त ससारके लोगोको सच्ची सुख-शान्तिका मार्ग दिखानेका सकल्प लेकर 'श्रीकृष्ण-भावनामृत-अभियान' शुरू किया था। मैंने विभिन्न धर्मशास्त्राका अध्ययन करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला कि भगवान्की दिव्य लीलाआ तथा उनक उपदेशाके माध्यमसे ही ससार ऐसी सत्प्रेरणा तथा शिक्षा ग्रहण कर सकता है, जिससे मानवमात्रका लौकिक और पारलौकिक जीवन सफल हो सके। जब सबस पहले मैं सन् १९६५ म अमेरिका पहुँचा तथा उसी वर्ष पश्चिमी वर्जीनियाकी पहाडियाम 'नव-वृन्दावन' की स्थापना की ता उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओकी दिव्य कथाएँ सुनकर भौतिक जगत्के अनेक शीर्ष बुद्धिजीवी कह उठे थे—'आज हम समझे हैं कि श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाआका क्या प्रयाजन था। उनकी प्रत्यक लीलाके पाछे मानवके कल्याणकी भावना निहित थी।'

कुल ८४ लाख योनियाँ हैं और उन सबम श्रीकृष्णकी चेतना व्याप्त है। कृष्ण हर शरीरम घटित हानेवाली हर बातको जानते है। जब हम अपन हृदय या मस्तिष्कमे श्रीकृष्णका उनकी दिव्य लीलाआका उनके पावन नामाका चिन्तन करते हैं ता कृष्ण तुरत हमार इस चिन्तनको समझकर हमपर कृपा बरसानेके लिये तत्पर हो उठत हैं। भगवान् होनेके कारण कृष्णका हरेकके प्रति समभाव है—

समोऽह सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय ।

मानव अपनी इच्छाओकी पूर्तिके लिये सासारिक लोगाको प्रसन्न करनेका प्रयास करता है। यदि वह भगवान् श्रीकृष्णको अपना मित्र बना ले तो उसकी तमाम सदिच्छाएँ स्वत पूर्ण हो जायँगी।

कृष्णभावना कोई विश्वास या आस्थाका ही प्रश्न नहीं, अपितु यह एक विज्ञान भी है। इस शरीरके भीतर जो 'जीवन-शक्ति' हे, हम उसकी बात कृष्णभावनामे करते हैं। यह कृष्णभावना एक 'आध्यात्मिक विज्ञान' है। 'हरे कृष्ण आन्दोलन' जीवमात्रको भगवान्के विज्ञान तथा श्रीकृष्ण-श्रीरामकी लीलाआका रहस्य समझाकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करनकी दिशाम प्रयत्नशील है। वे हम लागाको यह समझाना चाहते हैं कि जब शरीरका अन्त होगा—विनाश होगा तब भी आपका अन्त नहीं होगा। यदि शरीर रहते श्रीकृष्णकी शरणमे चले गये तो शरीरके अन्तम भगवान्की लीलाम लीन हो जाओग।

चैतन्य महाप्रभुका आदेश

चैतन्य महाप्रभुका आदेश है—

'यार देख तार कह कृष्ण उपदेश
आमार आज्ञाय गुरू हमा तार एइ दश

—'भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतमे कृष्णने जिस तरह आदेश दिये हैं, उनका पालन करनेके लिये हर-एकको उपदेश दो तथा हर प्राणीका तारनेका प्रयास करो।'

'श्रीकृष्णभावनामृत-आन्दोलन'का यही लक्ष्य है। उसका अभियान भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंके प्रचार, उनके उपदेशोके विस्तार तथा श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे पूरे ससारके प्राणियोको तारनेके लिये है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वय कहते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानज तम ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

'उनपर दया करनेके लिये उनके हृदयमे स्थित मैं स्वय अज्ञानसे उत्पन्न अन्धकारको ज्ञानके प्रकाशमय दीपकद्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

यदि आप वास्तवमे कृष्णभावनाभावित हो तो आपको कृष्णकी विशेष कृपा प्राप्त होने लगेगी। कृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं, वे अपनी दिव्य लीलासे भक्तोको अनुप्राणित करनेमे एक क्षणकी देरी भी नहीं लगाते।

चैतन्य महाप्रभु, भक्त सूरदास, मीराबाई-जैसे असख्य भक्तोको भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलासे आह्लादित करनेकी कृपा की है।

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे जीवके अहकार कृत्रिमता उसकी क्षुद्र भावनाको निरर्थक एव पतनशील सिद्ध किया है। श्रीकृष्ण श्रीराम तथा अन्य अवतारोकी लीलाओंका प्रयोजन ही 'परम सत्य'का उद्घाटित कर अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करना है। भगवान् समय-समयपर अपनी लीलाद्वारा असहायो तथा धार्मिक जनोकी सहायता करनेके लिये तत्पर रहे हैं। अहकार एव क्रूरताके नशेमे चूर हुए पापियोसे जीवकी रक्षाके लिये वे दौडे-दौडे आते हैं। अन्तमें अधर्मका नाश तथा धर्मकी स्थापनाकी लीला कर जगत्‌को अपने धर्मकी रक्षाका शाश्वत सदेश देते हैं।

श्रीकृष्ण-लीलाओंका व्यापक प्रभाव

भगवान्‌की पावन लीलाओंका श्रवणकर आज ससारके सभी देशोमे तेजीसे 'श्रीकृष्णभावनामृत-अभियान'का विस्तार हो रहा है। भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंके प्रभावने मांसाहारी समाजको शाकाहार एव दुग्धाहारके प्रति आकर्षित करना शुरू कर दिया है। अमेरिका, ब्रिटेन जापान तथा फ्रास एव जर्मनी ही नहीं चीन और रूस-जैसे कम्युनिस्ट देशोके भी लाखो ईसाई अडा, मास, मछली त्यागकर *भगवान् श्रीकृष्णको भोग लगाये तथा पवित्र प्रसाद ग्रहण* कर जब *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* का उद्घोष कर सडकोपर नृत्य करते हैं तो मै सोचता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके प्रत्यक्ष प्रभावका इससे ज्वलन्त उदाहरण और क्या हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका महान् वाङ्मय-स्वरूप श्रीमद्भागवत तथा भगवान् श्रीकृष्णकी पावन वाणीका साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता आज ससारकी प्राय प्रत्येक भाषामे अनूदित हो चुकी है। ससारके अनेक शीर्ष बुद्धिजीवी तथा विभिन्न वर्गोंके अग्रणी लोग भौतिकवादके भ्रम-जालको त्यागकर श्रीकृष्णकी शरणमे आते जा रहे हैं। वे पुनर्जन्म तथा सनातनधर्मके सस्कारोपर दृढ *विश्वास* रखने लगे हैं। कर्मोंके फलपर उनकी दृढ आस्था होती जा रही है। इसे मैं भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंका प्रभाव ही मानता हूँ।

'श्रीकृष्णभावनामृत-प्रचार-अभियान'के दौरान मैने यह भी अनुभव किया कि ससारके युवाजनोका विज्ञान—अब भौतिक विज्ञानसे मोह-भग होता जा रहा है। वे यह जान गये हैं कि वैज्ञानिक जन्म तथा मृत्युकी समस्या एव रहस्यका निदान कदापि नहीं कर सकते।

पाश्चात्य देशोके लोग अपनेको सुसभ्य और सुशिक्षित होनेका दावा करते थे *किंतु उन्होने जिस प्रकार गर्भस्थ* शिशुका पता लगाकर उसे मारनेके तरीके खोजे भ्रूण-हत्याओंके पापका विज्ञान निकाला उसे देखकर क्या उन्हे सभ्य कहा जा सकता है? यह तो कुत्तो एव पशु-पक्षियोसे भी बदतर सभ्यता है। कुत्ते-बिल्ली भी अपनी सतानको नहीं मारते। हमारे धर्मशास्त्रोमे गर्भस्थ शिशुके प्रति ममता एव स्नेह व्यक्त करनेका तरीका बताया गया है किंतु वर्तमान समयकी तथाकथित सभ्य माताएँ गर्भस्थ शिशु 'कन्या' है यह पता चलते ही उसे क्रूरतापूर्वक मरवा देती हैं। यह

विज्ञान नहीं; क्रूरतम कार्यका निकृष्टतम उदाहरण है। इसी प्रकार छोटी-छोटी बातोंपर तलाक देनेकी प्रवृत्तिसे भी पश्चिमी देशोंके परिवार उजड़ते जा रहे हैं। वे जब श्रीकृष्ण-जीवन-लीलाका अध्ययन करते हैं—भारतीय संयुक्त परिवार-प्रणालीको देखते हैं तो दंग रह जाते हैं।

इसी कारण अतिभौतिकवादसे त्रस्त विदेशी अब अपने जीवनसे, आधुनिकतम सुविधाओंसे ऊबकर श्रीकृष्ण तथा सनातन धर्मकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं और साथ ही वे श्रीकृष्ण-लीलाओंसे वात्सल्य, पारिवारिक स्नेह मर्यादा तथा एक दूसरेके प्रति कर्तव्य-भावना आदिकी प्रेरणा ले रहे हैं।

यह भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका ही प्रभाव है कि विदेशोंके अनेक नगरोंमें श्रीकृष्ण-बलरामके भव्य मन्दिरोंकी स्थापना हो चुकी है। गोशालाओंकी स्थापना कर अंग्रेज फ्रांसीसी आदि गोपालनके महत्त्वको समझने लगे हैं। गोमांस ही नहीं, अपितु हर प्रकारके मांस तथा शराब-जैसी अखाद्य वस्तुओंका प्रयोग न करनेका संकल्प लेकर वे पूरी तरह शुद्ध शाकाहारी बनते जा रहे हैं। जगह-जगह गुरुकुलोंकी स्थापना करके बच्चोंको श्रीकृष्ण-लीलाओंका दिग्दर्शन कराया जाता है। उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता तथा लीला-वाङ्मयके साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी जाती है।

हम भारतीय तथा हिंदू कहलानेवाले चोटी, यज्ञोपवीत तथा तिलक-जैसे धर्म-चिह्नोंकी उपेक्षा—अवहेलना करने लगे हैं, जबकि ये विदेशी कृष्ण-भक्त इन धार्मिक चिह्नोंको गर्वपूर्वक धारण कर हाथमें सुमिरनी लिये भगवान्का जाप करते हुए सड़कोंपर निकलनेमें तनिक भी नहीं हिचकिचाते। वे ढोलक-मँजीरोंके साथ—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—की ध्वनिपर नृत्य करनेमें अपना जीवन सफल मानते हैं। हम इस बातका संतोष है कि चैतन्य महाप्रभु-जैसी विभूतियोंका श्रीकृष्णलीला एवं भगवन्नाम-संकीर्तन-अभियान अब विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है। समझदार लोग इस संसारकी असारता तथा भौतिक सुखोंकी निःसारताको समझकर भगवान्की दिव्य लीलाओंमें लीन हो जानेमें ही अपना जीवन सफल मानने लगे हैं।

भगवल्लीलाकी तात्त्विक मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

श्रुतियोंने भगवान्को रसरूप माना है—'रसो वै सः' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ७)। रसाभिव्यक्तिके लिये ही भगवान्का अवतार भी होता है। रसाभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक दुष्टोंका दलन तथा अन्तःशत्रु—कामादिका शमन भी भगवान्के अवतारसे सिद्ध होता है। 'इदं विष्णुर्वि च क्रमे त्रेधा नि दधे पदम्' (ऋग्वेद १। २२। १७) आदि श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये जहाँ श्रीवामन भगवान्का अवतार होता है वहाँ 'रसो वै सः', 'तद् दूरे तद्वन्तिके' (ईशावास्योपनिषद् ५), 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तैत्तिरीयोपनिषद् ३। १) आदि स्वरूपप्रतिपादक निमित्तोपादान-कारणपरक श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये श्रीकृष्णावतार होता है। अतएव कारणब्रह्म और कारणातीत परब्रह्म ही श्रीकृष्णरूपसे स्फुरित हैं। श्रीकृष्णावतारमें सबसे महत्त्वपूर्ण आनन्दाभिव्यञ्जक लीला रासलीला मानी जाती है। उत्पत्ति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—रसरूप श्रीकृष्णचन्द्रकी विविध रूपोंमें तथा विविध व्यक्तियोंमें अभिव्यक्ति। लय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है विविध वस्तुओंमें संनिहित रस-तत्त्वकी श्रीकृष्णके प्रति स्फूर्ति। 'कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।' (श्रीमद्भा० १०। ३३। २०)—'जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप श्रीकृष्णने धारण किये।'

व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि वे हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। 'तदङ्गसङ्ग-

प्रमुदा कुलन्द्रिया ' भगवान्के अङ्गाका सस्पर्श प्राप्त करके गोपियोकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हा गयीं।

उक्त वचनोसे उत्पत्ति प्रक्रियाक अनुसार रासलीला चरितार्थ है क्योकि भागवतकार लिखते हैं—

एव परिष्वङ्गकराभिमर्श-
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासै ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भक स्वप्रतिबिम्बविभ्रम ॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

'जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकार-भावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हे अपने हृदयमे लगाते, कभी हाथसे उनका अङ्ग स्पर्श करते कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते, तो कभी लीलासे उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होने व्रजसुन्दरियोके साथ क्रीडा की—विहार किया।'

उक्त वचनसे प्रलय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीला चरितार्थ है।

स्थिति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—तत्त्वशोधन। पृथिवी जल तेज वायु, आकाश अहम्, महत् और अव्यक्तका पृथक्-पृथक् तथा युगपत् शोधन श्रीकृष्णावतारमे चरितार्थ है। मृद्भक्षण और नवनीत-भक्षण आदि पृथिवीशोधन-लीला है। कालियदमन तथा ह्रदशोधन जलशोधन-लीला है। दावानलपान तेज शोधन-लीला है। तृणावर्तोद्धार वायुशोधन-लीला है। व्योमासुर-उद्धार आकाशशोधन-लीला है। अघासुर-उद्धार अहशोधन-लीला है। ब्रह्मपराभव महत्-शोधन-लीला है। पूतनावध अविद्यारूपा अव्यक्तशोधन-लीला है। अष्टधाप्रकृतिरूपा गोपाङ्गनाओके दुकूलापहरणके अनन्तर रसाविष्ट स्वसस्पृष्ट वस्त्रप्रदानसे स्वसम्मिलनके निमित्त गोपाङ्गनाओमे शक्तिपात युगपत् सर्वतत्त्वशोधन-लीला है।

श्रीहरिकी दुष्टदलन-लीला भी मनोरम ही है। रसाभिव्यक्तिमे प्रतिबन्धक तामस शरीरका अपहरण कर वैरभावसे स्मरणके प्रभावसे ब्रह्माभिव्यञ्जक ब्राह्मीतनुको प्रदान करना रसाभिव्यक्ति नहीं तो और क्या है ?

श्रीहरि दुर्जनप्रदत्त यातनाको दूरकर रोगादिसे त्राण दिलाकर—जीवनदान देकर, धन-मान देकर, बन्धु-बान्धवोंका वियोग दूरकर, तत्त्वोपदेश देकर, जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनन्दको अभिव्यक्तकर आर्त अर्थार्थी जिज्ञासु, ज्ञानी और प्रेमी सभी प्रकारके साधुओका परित्राण करते हैं। इस प्रकार साधु-परित्राण भी रसाभिव्यक्ति ही है।

भगवान् अपने शापित जय-विजयपर कितने अनुग्रहयुक्त थे, यह तथ्य श्रीमद्भागवतके अनुशीलनसे अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। श्रीसनकादि योगीश्वरोद्वारा शापित जय-विजयको शीघ्र ही ब्रह्मदण्डरूप शापसे मुक्ति मिल सके और वे निर्वासनकाल समाप्त कर शीघ्र ही श्रीहरिके समीप आ जायँ, इसके प्रति विह्वल भगवान् सनकादि मुनियोसे विनय करते हुए बोले—

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्य ।
भूयो ममान्तिकमिता तदनुग्रहो मे
यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवास ॥
(श्रीमद्भा० ३। १६। १२)

'मेरे इन सेवकोने मेरा अभिप्राय न समझकर ही आप महानुभावोका अपमान किया है। इसलिये मेरे अनुरोधसे आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासनकाल शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराधके अनुरूप अधमगतिको भोगकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आये।'

निज पार्षदोको मेरे प्रति क्रोधान्वित होकर प्रवृद्ध क्रोधावेश-सम्भव एकाग्रतारूप समाधिके द्वारा सुदृढ योग-सम्पन्न होकर पुन शीघ्र ही मेरे पास लौट आओगे। ऐसा आश्वासन तथा शाप देनेवाले मुनियोको हानि और ग्लानिसे मुक्त करते हुए 'ब्राह्मणो! आपने इन्हे जो शाप दिया है—सच जानिये वह मेरी ही प्रेरणासे हुआ है।'—यह कथन श्रीहरिको जय-विजय और सनकादि सभीके प्रति वात्सल्ययुक्त सिद्ध करता है। भगवान्के इस स्वभावको परखनेवाले श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हुए बिना कैसे रह सकते हैं ?

श्रीप्रह्लादजीके सिरपर वात्सल्यपूर्ण वरदहस्त और हिरण्यकशिपुके वक्ष स्थलका तीक्ष्ण नाखूनोसे विदारण—ये दोनो ही अनुग्रह नहीं तो और क्या है ? एक वात्सल्यमयी

शल्यचिकित्साम निपुण माँ अपने स्वस्थ बच्चेको दूध पिलाती और व्रणपीडित बच्चेके व्रणको चीरकर रक्त वहाती हुई परिलक्षित होनेपर भी मर्मज्ञ महानुभावाकी दृष्टिमे दोनापर यथाकाल यथायोग्य अनुग्रह ही बरसाती सिद्ध होती है।

उक्त दो उदाहरणाके अतिरिक्त तीसरा उदाहरण अर्जुन और भीष्मपर यथावसर यथोचित अनुग्रहकी वर्षाका है—

तीसरे दिनके युद्धम अर्जुन, भीम, धृष्टद्युम्न, घटोत्कच, सात्यकि, अभिमन्यु आदिके पराक्रमसे कौरवसेना अत्यन्त भयविह्वल हाकर युद्धभूमिसे पलायन करने लगी। भीष्म और द्रोण भी पलायन करते हुए सैनिकोको रोक नहीं सके। सेनाकी दुर्दशा दखकर दुर्योधनने भीष्मपितामहके समीप जाकर कहा—'आपक, अस्त्रविद्यानिपुण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके जीवित रहते मेरी सेनाका इस प्रकार भागना आप लोगोके पराक्रमके अनुरूप मैं नहीं मानता। नि सदेह आप पाण्डवापर कृपा करके उन्हे क्षमा कर रहे हैं। मैंने आपक, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके वचनपर विश्वास करक ही कर्णके साथ कर्तव्यकी सम्मति करके यह युद्ध प्रारम्भ किया था। आप अपने पराक्रमके अनुरूप युद्ध करके शत्रुओको नष्ट कर दीजिये।'

दुर्योधनक ये वचन सुनकर महापराक्रमी भीष्म बार-बार हँसकर और फिर क्रोधसे नेत्र लाल करके दुर्योधनसे बोले—'हे राजेन्द्र! मैंने बहुत बार सत्य और हितकर वचन कहा कि इन्द्रसहित सब देवता भी युद्धमे पाण्डवोको जीत नहीं सकते। मैं इस समय वृद्ध और गतायु होकर भी जो कुछ कर सकता हूँ, वह यथाशक्ति करूँगा। तुम अपने भाइयासहित मेरा पराक्रम देखो। इस समय सब लागाके सामने मैं अकेला ही सेनासहित पाण्डवाको रोकूँगा।'

भीष्मके ये वचन सुनकर दुर्योधनादि प्रसन्न होकर शख और नगाडे आदि बजाने लगे। इस महानादको सुनकर पाण्डवगण भी शख भेरी आदि बाजे बजाने लगे। उस दिनका पूर्वभाग समाप्तप्राय हो चुका था। सूर्यदव कुछ पश्चिम आकाशकी ओर झुक चले थे। पाण्डवलोग विजय-लाभ करके प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। इसी समय भीष्मने यथाशक्ति पराक्रम प्रकट करके पाण्डवाको रोकनकी प्रतिज्ञा की। भीष्म हाथम मण्डलाकार धनुष लेकर नागसदृश प्रज्वलित अग्रभागवाले बाण छोडने लगे। वे अलातचक्रकी तरह इधर-उधर सब जगह दिखायी पडने लगे। भीष्मक हाथकी स्फूर्तिके कारण पाण्डव और सृञ्जयगण युद्धभूमिम एकमात्र वीर भीष्मको सैकडो और हजारोके तुल्य दख रहे थे। वे सभी वीर भीष्मको मायावी जानने लगे। सहस्रा क्षत्रियगण पतगाकी तरह माहित होकर स्वय ही अपने नाशके लिये अमानुषिक रूपमे विचरनेवाले क्रुद्ध भीष्मरूप अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लग। पाण्डवपक्षक वहुत-से याद्धा कवच और केश खोलकर इधर-उधर प्राणाकी रक्षाकी भावनासे आर्तनाद करते हुए भागने लगे। तब यदुनन्दन श्रीकृष्णने सेनिकोको भागते देखकर रथ लौटाकर अर्जुनसे कहा—'हे पार्थ! यह वही समय है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय तुम भीष्मपर प्रहार करा।'

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा पाकर अर्जुनने कहा—'हे वासुदव! जहाँपर भीष्मका रथ है, वहाँ इस सैन्यमागरके मध्यसे मेरा रथ ले चलिये।' फिर क्या था, श्रीकृष्णने रथको हाँका और जहाँपर भीष्मका सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य रथ खडा था वहाँपर श्वेत अश्वासे शोभित अर्जुनका रथ पहुँचा दिया। युधिष्ठिरकी सेना अर्जुनको भीष्मस युद्ध करनेके लिये उद्यत देखकर लौट पडी। तत्पश्चात् कुरुकुलप्रधान भीष्मने बार-बार सिहनाद करके शीघ्र ही बाणोकी वर्षा करके अर्जुनका रथ ढक दिया। तब अर्जुनने मघके समान गरजनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुप चढाकर तीक्ष्ण बाणसे भीष्मका धनुष काट डाला। फिर क्या था अर्जुनकी प्रशसा करके भीष्म घोर पराक्रम दिखाने लगे, परतु अर्जुन मृदुयुद्ध ही करते रहे। श्रीकृष्णने यह जानकर कि आज ही भीष्म पाण्डवपक्षका सहार कर डालेगे। मन-ही-मन सोचा—पाण्डवाके हितकी रक्षाके लिय आज मैं ही भीष्मको मारूँगा। यद्यपि भीष्म तीक्ष्ण बाण मार रहे थे किंतु अर्जुन पितामहके गौरवकी रक्षाके लिये अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। सात्यकिसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'आज

कौरव-सेनाका एक भी वीर मेरे क्रोधसे नहीं बच सकता। मैं अभी भयंकर चक्र हाथमें लेकर भीष्मको मार डालूँगा। धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको और उनके पक्षके मुख्य राजाओंको मारकर आज मैं प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बिठाऊँगा।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने घोड़ाकी रास हाथसे छोड़ दी। सहस्र वज्रसहित बहुत ही तीक्ष्ण सूर्यसदृश प्रभासम्पन्न सुदर्शनचक्रको हाथमें घुमाते हुए वे रथसे कूद पड़े। सिंह जैसे गजराजको मारनेके लिये दौड़े, वैसे ही श्रीकृष्ण भीष्मको मारनेके लिये कौरव-सेनाकी ओर दौड़े। उस समय उनके शरीरका पीताम्बर आकाशमें स्थित बिजलीयुक्त मेघके समान शोभाको प्राप्त होने लगा। क्रुद्ध श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये देखकर सब प्राणी ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। सबने समझा कि अब कुरुकुलका नाश हुआ। धूमकेतु जैसे चराचर जगत्को जलानेके लिये उदित होता है वैसे ही लोकगुरु वासुदेव चक्र हाथमें लेकर जीवलोकको जलानेवाले प्रलयकालके अग्निके समान भीष्मकी ओर वेगसे दौड़े। श्रीकृष्णको चक्र लिये हुए अपनी ओर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अविचल-भावसे गाण्डीवके समान श्रेष्ठ धनुषकी डोरी बजाते हुए कहने लगे—'हे श्रीकृष्ण! हे जगन्निवास! हे चक्रपाणि! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले शरण्य हैं। आप बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथपरसे मुझे मार गिराइये। आप मुझको मारेंगे तो मुझे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्त होगा। हे यदुनाथ! आप मुझे मारने दौड़े इससे मेरी प्रतिष्ठा एवं कीर्ति और भी बढ़ गयी।'

भीष्मके ये वचन सुनकर वेगके साथ उनके सामने जानेके लिये उद्यत श्रीकृष्णने कहा—'हे भीष्म! आपके कारण ही दुर्योधन भाई-बन्धुओं-सहित विनष्ट होगा। द्यूतमें आसक्त राजाको उससे रोकना ही धार्मिक मन्त्रियोंका कर्तव्य है। यदि कोई राजा काल-विपर्ययके कारण उस उपदेशको न मानकर धर्मविरुद्ध कार्यको न छोड़ना चाहे तो उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वचनको सुनकर भीष्मने कहा—'हे जनार्दन! दैव ही प्रबल है। मैंने हित-कामनासे बार-बार धृतराष्ट्रसे कहा कि यदुवंशी आदिने अपने हितके लिये कंसको छोड़ दिया था, तुम भी दुर्योधनको त्याग दो। परंतु उसने दैववश बुद्धि विपरीत होनेके कारण मेरा एक हितोपदेश नहीं सुना।'

इसी समय विशालबाहु वीर अर्जुन रथसे कूदकर यदुवीर श्रीकृष्णके पीछे दौड़े। अर्जुनने जाकर श्रीकृष्णके दोनों हाथ पकड़ लिये। योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र उस समय क्रोधमें थे, इस कारण यद्यपि अर्जुनने उन्हें रोकना चाहा, तो भी वे उसी प्रकार अर्जुनको खींचते हुए भीष्मकी ओर चले जैसे प्रबल आँधी किसी वृक्षको खींच ले जाती है। दसवें पगपर जाकर अर्जुन बलपूर्वक पाँवोंको जमाकर श्रीकृष्णको रोक सके। उस समय श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधसे व्याप्त हो रहे थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान लम्बी साँस खींच रहे थे। उनके सखा अर्जुन आर्तभावसे प्रेमपूर्वक बोले—'महाबाहो! लौटिये, अपनी प्रतिज्ञाको झूठी मत कीजिये। केशव! आपने पहले जो कहा था कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' इस वचनकी रक्षा कीजिये। अन्यथा माधव! लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सारा भार मुझपर है। मैं अपने अस्त्र-शस्त्र सत्य और सुकृतकी शपथ खाकर कहता हूँ कि पितामह भीष्मका वध करूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण महामना अर्जुनका यह वचन सुनकर तथा उनके पराक्रमको जानते हुए और ऊपरसे कुछ भी न बोलकर पुनः क्रोधपूर्वक ही रथपर जा बैठे।

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि। वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा॥

(श्रीमद्भागवत १०। १। १६)

भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है।

सूरसागरमें कृष्णलीलाका सरसतम वर्णन

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज आदिबदरी)

श्रीकृष्णने भारतीय चिन्तनधाराको एक नया मोड प्रदान किया है। 'स्वर्ग और मोक्ष मरणके बादका विषय है'—यह विचारधारा श्रीकृष्णकी लीलाओमे पूर्णत ध्वस्त हो गयी है। जीते-जी जीवन्मुक्तिका आनन्द अध्यात्म-जीवनदर्शनकी विशेषता है। यही सूरकी साधना है, जो उनके पदोमे प्रतिबिम्बित हो उठी है। देहकी आसक्ति और वासनाके बन्धनको छोडना ही मुक्ति है। समस्त धर्मशास्त्र इस विषयमे एक मत हैं कि 'आसक्ति अध्यात्म-विकासमे बाधक है'—यह कह देना जितना सरल प्रतीत होता है, वास्तवमे व्यवहारकी दृष्टिसे उतना है नहीं। वल्लभाचार्यजी इस शास्त्रीय विचारसे अनभिज्ञ भला कैसे हो सकते हैं अत उन्होने यह तो स्वीकार किया कि आसक्ति सर्वथा त्याज्य है, किंतु यदि उसे त्याग देना सम्भव न हो तब सतोमे आसक्ति करनी चाहिये क्योकि सत स्वयमेव आसक्तिकी औषधि है—

सग सर्वात्मना त्याज्य स चेत्त्यक्तु न शक्यते।
स सद्भि सह कर्तव्य सन्त सगस्य भेषजम्॥

आइये भक्तशिरोमणि सूरदासकी रचनाओके सगद्वारा इस आसक्ति-रोगका उपचार करे। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। १६)-मे परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञ कालकालो गुणी सर्वविद् य ।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश
स*सारमोक्षस्थितिबन्धहेतु ॥

'यह विश्वका कर्ता विश्ववेत्ता आत्मयोनि (स्वयम्भू) ज्ञाता कालका प्रेरक अपहतपाप्मत्वादि गुणोसे युक्त और सम्पूर्ण विद्याओका आश्रय है तथा वही प्रधान और पुरुषका अध्यक्ष गुणोका नियामक एव ससारके मोक्ष स्थिति और बन्धनका हेतु भी है।' इसी क्लिष्टतम परमेश्वर-तत्त्वका निरूपण सूरदासने कितने सहज ढगसे प्रस्तुत किया है—

जाको ब्रह्मा अंत न पावै।
तापै नद की नारि जसोदा घर को टहल करावै॥
सेष सनक नारद गनेस मुनि जाके गुन नित गावैं।
निसि बासर खोजत पचिहारैं मनसा ध्यान न आवै॥
धनि गोकुल धनि-धनि ब्रज-बनिता निरखत स्याम बधावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिं के बस सतनि दुरस दिखावैं॥

वेदव्यासने श्रीमद्भागवत-पुराणान्तर्गत भगवान् कृष्णके प्राकट्यका जो स्वरूप वर्णन किया है—

तमद्भुत बालकमम्बुजेक्षण
चतुर्भुज शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्म गलशोभिकौस्तुभ
पीताम्बर सान्द्रपयोदसौभगम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ३। ९)

—ठीक यही वर्णन सूरदासजीकी भावनामे प्रखर-रूपमे प्रतिबिम्बित हो उठा है—

बुध रोहिनी-अष्टमी-सगम, बसुदेव निकट बुलायौ।
सकल लोकनायक सुखदायक अजन जन्म धरि आयौ॥
माथैं मुकुट सुभग पीताबर उर सोभित भृगु रेखा।
सख चक्र-गदा पद्म बिराजत अति प्रताप सिसु-भेषा॥
जननी निरखि भई तन ब्याकुल यह न चरित कहुँ देखा।
बैठी सकुचि निकट पति बोल्यौ दुहुनि पुत्र मुख पेखा॥

जिस प्रज्ञाचक्षुके समक्ष लाखो आँखोवाले भी चक्षुविहीन-जैसे ही हैं उसकी अन्तर्दृष्टिने कृष्ण-जन्मसे सलग्न 'नालोच्छेदन'-जैसी अनिवार्य क्रियाका कैसा विचित्र और अनूठा वर्णन किया है। दाईका हठ उसके अन्त करणकी सरस अभिव्यक्ति है और यशोदाका उपहार तो जैसे शब्दोमे सजीव हो उठा है—

जसुदा नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ वहै आजु हौं लैहौं॥
औरनि कै हैं गोप खरिक बहु मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ देख्यौ नन्द दुलारौ॥
बहुत दिनन की आसा लागी झगरिनि झगरौ कीनौं।
मनमैं बिहँसि तबै नँदरानी हार हिये कौ दीनौं॥
जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक सकल बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगट मटन कौं भू भार॥

कृष्ण-चरित्रसे सम्बन्धित साहित्यमे ज्योतिष शास्त्रानुसार श्रीकृष्णकी जन्मकुण्डलीका जितना प्रामाणिक चित्रण सूरने

किया है, उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक ग्रहकी स्थिति और उसका फल-विवरण सूरदासके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञानका परिचायक है—

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकैं चाहत तुमहिं सुनायौ॥
संबत सरस बिभावन भादौं, आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ रोहिनी अर्द्ध निसि हर्षन जोग उदार॥
वृष है लग्न उच्च के निसिपति तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथैं सिंह रासि के दिनकर जीति सकल महि लैहैं॥
पचऐं बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठऐं सुक्र तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं॥
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतऐं राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं॥
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति नवनिधि घर मैं ऐहैं॥
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं॥
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैं अवतरे आनि कै सूरदास के स्वामी॥

नन्हे बच्चोंका रूठना, मचलना, रोना और हठ करना साधारण बात है, पर अपनी माँसे इस बातके लिये झगड़ना कि 'माँ! मेरी चोटी क्यों नहीं बढ़ रही है?' असाधारण बात है। नन्हे कृष्ण न केवल माँसे हठपूर्वक पूछते हैं, वरन् इस चोटीके न बढ़नेका कारण भी अपनी ओरसे सजीव एवं सशक्त ढंगसे प्रस्तुत करते हैं कि—'तू कच्चा दूध तो भरपेट देती है, पर माखन-रोटी बिना शिखावर्धन नहीं हो पायेगा'—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
...
काँचौ दूध पियावति पचि पचि देति न माखन-रोटी।

'कृष्ण' शब्दका परिष्कृत अर्थ अपनी ओर आकर्षित करना भी होता है। रसखान तो कृष्णके हाथसे माखन-रोटी छुड़ाकर भाग जानेवाले कौएके भाग्यकी सराहना करते हैं, पर उस तप पूत सूरदासका अन्तःकरण तो कृष्णका भोजन करा देनेके पश्चात् उनसे नन्दसे उनका मधुमय जूठन माँगता है—

भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ माँगत सूर जुठनियाँ।

महर्षि व्यासजीके वचनानुसार श्रीकृष्णकी पौगण्ड-अवस्था (छठे वर्ष)-में गौ चरानेकी स्मृति प्रथम हो जाती है—

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
(श्रीमद्भा० १०। १५। १)

सचमुच जिनका कोमलाङ्ग गोधूलिधूसरित ग्वाल-सखाओंके साथ गोधूलिवेलामें गौओंको यथास्थान बाँधनेके लिये जा रहा हो, उन सलोने बाल-गोपालके चरणोंमें प्रणाम करनेको किसका मन नहीं चाहेगा?

उक्त नयनाभिराम दृश्यपर सूरका शब्द-कौशल अनुपमेय है। कितने सरलभावसे कृष्ण माँसे मनुहार कर रहे हैं—'मैया! अब मैं बड़ा हो गया हूँ। अब मुझे वनमें डर नहीं लगेगा। सभी सखा—रैता पैता, मना मनसुखा और हलधर भैया भी तो साथ हैं। भूख लगेगी तो दही-भातकी काँवरि तू देगी ही'—

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं बड़ो भयौ न डरैहौं॥
रैता, पैता मना मनसुखा हलधर संगहि रैहौं।
बंसीबट तर ग्वालनि कैं सँग खेलत अति सुख पैहौं॥
ओदन भोजन दै दधि काँवरि भूख लगे तैं खैहौं।
सूरदास है साखि जमुन जल सौंह देहु जु नहैहौं॥

ऐसी अनुपम रूप-माधुरीपर भला कौन मुग्ध न होगा?

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी।
सूरसिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दीठि हमारी॥

महापुरुषोंके जीवन-आख्यानोंद्वारा बचपनमें ही बालकोंको कथा-श्रवण करवाना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट परम्परा रही है। नन्हे कन्हैयाको बाल्यावस्थामें ही माताद्वारा मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवनी सुनाना सूरदासके मनोभावोंकी इसी आदर्श परम्पराका परिचायक है—

सुनि सुत एक कथा कहौं प्यारी।
कमल नैन मन आनंद उपज्यौ चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत जनक-सुता ताकी बर नारी॥
तात बचन लगि राज तज्यौ तिन अनुज घरनि सँग गए बनचारी।
धावत कनक मृगा के पाछैं राजिव लोचन परम उदारी॥
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ सुनि नँद-नंदन नींद निवारी।
चाप चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु जननि भ्रम भारी॥

राजसूय यज्ञमें देवर्षि नारदद्वारा भगवान्‌का स्वरूप-

वर्णन सूरका भी ग्राह्य है—'साक्षात् स विबुधारिघ्न क्षत्रे नारायणो विभु' तथा 'सदिदेश पुरा योऽसौ विबुधान् भूतकृत् स्वयम्' जो सर्वव्यापक हो, स्वय नारायण हो, सम्पूर्ण भूतोका उत्पादक हो, स्वय कर्ता-धर्ता हो, पर उस आँधरे भिखारीको तबतक सताप नहीं होता है, जबतक कि वह उस ब्रह्माण्डनायकसे रुदन कराकर भाजन न मँगवा ले। यह भक्तिका पराकाष्ठातीत स्वरूप है। भला जो जगत्के रचयिता हो उनका कौन माता-पिता हो सकता है—

मातु पिता इनके नहिं कोइ।
आपुहिं करता आपुहिं हरता त्रिगुन रहित हैं सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज ये हैं ऐसे ओइ।
जल थल कीट-ब्रह्म के व्यापक और न इन सरि होइ॥
बसुधा-भार-उतारन कार्जै आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन भाजन माँगत रोइ॥

कृष्णलीलामे जहाँ अनेक चेतन पात्र हैं, वहीं कुछ ऐसे जड पात्र भी हैं जिनके बिना कृष्ण अपूर्ण-से प्रतीत होते हैं, उन्हींमसे एक है बाँसुरी। जड होकर भी चेतनका चित्त हरण करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली बाँसुरी सूरकी दृष्टिमे—

मुरली तौ यह बाँस की।
बाजति स्वास मरति नहिं जानतिं भई रहति पिय पास की॥
चेतन कौ चित हरति अचेतन भूखी डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रज-बासिनि सौं लिय रहति है गाम की॥

श्रीकृष्ण-लीलाओके सम्बन्धमे इस कालजयी कविके कृतित्वका विवेचन उस समयतक अपूर्ण ही रहेगा, जबतक गम्भीर अध्ययनद्वारा उनकी सार्थक वाणीसे नि सृत भक्ति और ज्ञानकी निर्मल धाराम अवगाहन न किया जाय। भगवद्भजनसे रहित मानव-देहको ऊँट बैल और भैंसा कह देनेसे भी जब सूरको सतुष्टि नहीं हुई— *'सूरदास भगवत भजन बिनु, मनो ऊँट वृष भैंसो'* तब उन्होने और भी निम्नस्तरीय पशुओसे मानवकी तुलना करते हुए कहा—*'सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान सियार'* -यह उपदेशकी भाषा नहीं अपितु सूरदास स्वय अपनेको इगित कर कहते हैं—'सूरदासरूपी कुत्तेको पालनेवाले स्वामी इसे घरहीमे बाँधकर रखो। मेरे कारण दूसरोसे गाली क्यो सुनते हो'—

अब अनखाइ कहौं घर अपने राखौं बाँधि बिचार॥
'सूर स्वान के पालनहारे आवति है नित गारी।'

यह भी तो कृष्णलीलाका ही एक रूप है—प्रतिदिनकी भाँति आज भी श्यामने सूरके हाथमे इकतारा देकर कहा—'सुनाओ कोई नया पद! तुम बजाओ मैं नाचूँगा।'

अभी सूर इकतारेका स्वर मिला ही रहे थे कि न जाने उस नटखटको क्या सूझा—सूरदासके हाथसे इकतारा ले लिया और बोला—'तुम रोज गाते-बजाते हो और मैं सुन-सुनकर नाचता हूँ, पर आज मैं गाऊँगा-बजाऊँगा और तुम नाचोगे।'

'मैं नाचूँ! यह क्या कौतुक है कन्हाई! मुझ बूढेको नचाओगे! पर मुझे नाचना आता कहाँ है?'

'नहीं आज तो नाचना ही पडेगा।'

'अच्छा गिरधारी! नहीं मानते हो तो नाच लूँगा, पर एक बात बताओ! कितनी बार नचाओगे। चौरासी लाख बार मुझे नचाकर भी तुम्हारा मन नहीं भरा! अब अधिक न नचाओ मुरली-मनोहर!'

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना कठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज चलत असगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेटा बाँध्यौ लोभ-तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

जगलके लोगोद्वारा आतकित किये जानेसे आप भयाक्रान्त क्यो है? चाहे ससार दाँत पीसकर मर जाय पर प्रभुके शरणागतका बाल भी बाँका नहीं कर सकता—

सूर केस नहि टार सकै कोउ दाँत पीसि जो जग मरै

जलनिधिसे रत्न निकालना तो अभ्यस्त गोताखोरोका ही कौशल है और फिर सूर-सागरके सहस्राधिक पदोंमेसे चयन तो अधिकारी मनीषी ही कर सकते हैं, मुझ-जैसे अल्पज्ञकी क्या बिसात! बस हम तो इतना ही चाहिये कि हम तेरे गुलाम कहलाते रहे सुन-सुनकर प्रफुल्लित होते रहे और तेरी जूँठन प्राप्त करते रहे—

सब कोउ कहत गुलाम स्यामको सुनत सिहात हियौ।
सूरदास प्रभु जू को चेरो जूठनि खाय जियौ॥

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलाका प्रयोजन

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपालवैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

अखिल ब्रह्माण्डनायक, वेदान्तवेद्य, परमब्रह्म, नराकार सच्चिदानन्दविग्रह श्रीगोपालजी ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि शब्दासे अभिधेय यथार्थत एक ही तत्त्व हैं। **'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म'**—इस श्रुति-वचनसे अद्वितीय एक ही तत्त्व ब्रह्म-पदसे वेदान्तोम प्रतिपादित है।

जब उनकी रमण करनेकी अभिलाषा हुई तब **'एकाकी न रमते, द्वितीयमैच्छत्'**—इस श्रुति-वाक्यसे अकेले रमण न कर सकनेपर दूसरेकी इच्छा हुई। दूसरा कोई न होनेपर जब **'एकोऽह बहु स्याम'** इस श्रुतिसे स्वय बहुविध होनेकी इच्छा की, तब **'स आत्मान स्वयमकुरुत'**—इस श्रुतिसे उन्होने स्वयको आधार बनाकर अपनेको ही प्रपञ्चरूपमे परिणत कर लिया।

'स एकधा भवति, द्विधा भवति, बहुधा भवति'—इस श्रुतिसे एकविध कृष्ण द्विविध राधाकृष्ण एव राम-कृष्ण तथा बहुविध गो गाप गोपी आदि लीलाके उपकरण-रूपसे प्रकट हो गये। अत सभी नित्य ही सिद्ध हुए ओर प्रपञ्च ब्रह्मात्मक होनेसे उनकी लीला-प्रयाजनकी सार्थकता स्वत सिद्ध ही है।

मथुरापुरीम लीलानट गोपाल-वेषधारी श्रीकृष्णने अवतार लिया है। आत्माराम-पूर्णकाम होनेपर भा उनका भूमिपर अवतरण मानव-कल्याणक लिय ही है—

नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

भगवल्लीलाएँ माधुर्य-एश्वर्य—इन दा भागाम विभक्त हैं। माधुय-लाला व्रजमे तथा एश्वय-लीला द्वारकाम की है। बाललीला पागण्ड-लीला एव किशोर-लीला व्रजमें की है। उनम प्रथम बाललीला गाकुलम की है। पौगण्डलाला वृन्दावन गावर्धन नन्दगाँव बरसाना और कामवनादिम की है। किशार-लाला वृन्दावन एव मथुरापुरीम की है।

य लीलाएँ आन्तर्य तथा बाह्य-भेदस दा प्रकारकी हैं। भगवान्‌न जितना लीलाएँ की हैं उनम गापाल-लीला ही प्रमुख है। क्योकि गोचारणक लिय वृन्दावन गावधन एव यमुना-पुलिनपर जाकर गौआको चराते हुए ग्वाल-बाल सखाआसहित क्रीडा करते हैं। उनकी क्रीडाका भग करनेके लिये कसादि दैत्याद्वारा जितने दत्य-दानवाका भेजा जाता है, वे सभी लीला-लीलामें ही मार दिये जाते हैं। उसके बाद वे प्रभु निर्भय अपने गोप-सखाआके साथ विहार-विलास करते हैं।

अन्तरङ्ग-लीला निकुजामे करते हैं। उस लीलाकी अधिनायिका श्रीराधारानी हैं। अष्ट सखियाके सौ-सौ यूथ हाते हैं। वे सहेली कहलाती हैं। उनम भी प्रत्येकक सौ यूथ सहचरी कहलाती है। बहिरङ्ग-लीलाके नायक कृष्ण कन्हैया-दाऊभैया है, सगी-सखा-ग्वाल-बाल समवयस्क होते हैं। ग्वाल-बालाको गायाकी देख-रेखम लगाकर तथा दाऊदयालकी सेवाम सौंपकर किसी बहानेसे निकुजमे प्रवेश कर राधाके साथ रमण-लीला करते हैं। पुन कुछ काल-बाद उनको भी छलकर ग्वालोके साथ कदुकादि क्रीडा करते हैं। इस प्रकार गोचारणके प्रसगवश भीतरी-बाहरी द्विविध लीलाएँ करनेसे गोपाल-लीला ही लीलाका प्रमुख केन्द्र है।

वशीधरकी वशी प्यारी सखी है जा दूतीका कार्य करती है। मुरलीमनाहरकी लीला अति अद्भुत शृगाररससे परिपूरित है जो वर्णनातीत है तथा भगवान् कृष्णके जन्म-कर्म भी दिव्य हैं— **जन्म कर्म च मे दिव्यम्** —इस भगवद्-वाक्यसे स्पष्ट ही है। उनके स्वरूप-गुण-कर्मोकी स्फूर्ति भगवत्कृपाके विना असाध्य ही है क्याकि—

जगद्धिताय साऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ५५)

यशादाजान ऊखलस बाँधनक लिय जब रज्जु-खण्ड उठाया तब कृष्णकी आँखास अश्रुपूरित काजलक कजरारे कण गालापर छलक रह थ। मुखका नीचाकर भयभात भावनास खड दखकर मुझ माहित कर दिया क्याकि भय भी जिसम भयभात हाता है फिर वही भयभात कैसे?

इस दामादर-लाला प्रकरणम भा स्पष्ट हाता है कि

जब माता यशोदा बेत उठाकर हाथ पकडकर डराती हुई बोलीं तो कृष्ण कजरारे नैन मींजते हुए रोने लगे। भाड फाडनका कारण यह था कि मया दूध पिलाते समय उफनते दूधकी कडाही उतारनेके लिये अतृप्त कृष्णका गादीस उतारकर वगसे चली गयी थीं। यद्यपि भगवान् कृष्णको भूख-प्यास आदि जेव-धर्म लिप्त नहीं कर सकत तथापि उनका ऐसा करना यशोदाजीका निरोध करनक लिय शिशुत्व-नाट्य ही ह।

काटिकाम लावण्यधाम घनश्याम गापीजनाक अभिराम श्यामसुन्दरका दखकर खचराकी नारियाँ भा मोहित हो गयी थीं। पुन भूचराकी नारियाँ माहित हो जायँ ता कहना ही क्या? उनकी मानवीय लीलाके अनुरूप स्वरूप धारण करना योगमायाक बलका दिखानेक लिये ही था जिसको दर्पणम दखकर वे स्वय विस्मित हा गये थ, क्याकि उनके श्रीअङ्गासे भूषणाकी शोभा होती थी। एसा असाधारण स्वरूप धारण कर विश्व-विमोहन, मनमाहन कृष्णने अनुपम लीलाएँ की है। सज्जनाक ऊपर अनुग्रह करनक लिय ही स्वकीय भक्ताकी भावनाके अनुरूप रूप ग्रहण किया ह। उनक रूप-गुण-कर्मादिके श्रवण-कीतन-स्मरणादिसे कलियुगाय जीवाका उद्धार हो—इस प्रयाजनसे ही लीलाएँ की ह। मुमुक्षु-बुभुक्षु सभीका अभीष्ट कार्य सिद्ध करना ही लीलापुरुषोत्तम श्राकृष्णकी ईश्वरता है।

व श्रीकृष्ण अवतारी पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं। उन्हींक अशावतार, कलावतार तथा आवशावतार आदि हाते हैं। कृष्ण किसीके अश-कला नहीं हैं—'**एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'—इस प्रथमस्कन्धीय भागवतवचनस सिद्ध ह।

उनका अवतार विश्वविश्रुता मथुरापुरीम कसासुरके कारागारमे देवकी-वसुदेवजीके समक्ष हुआ है। दवकी-वसुदेवने तप करके भगवत्प्रसादसे उनक समान ही पुत्रका इच्छा की थी। अत चतुर्भुजरूपस प्रकट हुए तथा द्रोण-वसुन्धराने तपकर पुत्रीभूत हरिका प्रमसे लाड-प्यार करनका वरदान माँगा था। दोनाका प्रसन्न करनक लिय **द्विभुजाऽपि चतुर्भुज**' यागश्वर कृष्णन दवकी-वसुदेवका इच्छानुसार विश्वासके लिये दाना रूप दिखाय। 'एकान्तम गगाचार्यको भेजकर नामकरण-सस्कार कराना' इसका परिचायक हे। ग्यारह वषतक अपने प्रकाशका छिपाकर बलदाऊजाक साथ नन्दक घर रह थे—'गूढार्चि सवलाऽवमत् (भागवत)। जब अक्रूरजीका भेजकर कसने उनको धनुर्याग-दर्शनके व्याजसे बुलाया तब उन्हाने मथुराम पदार्पण करते ही चमत्कारिक लीलाएँ दिखाकर सभी मथुरावासियाको वशीभूत कर लिया। मथुरा जात समय गोपियाका विलाप तथा उद्धवजीको नन्दगाँव भेजकर सान्त्वना देना इसका द्योतक है कि कृष्ण एक ही थे। यदि गाकुलनाथ पृथक् कृष्ण हाते ता ऐसा रुदन-भमरगीत व्यर्थ ही ह।

इस प्रकार व्रजम माधुर्य-लीला करके व्रजवासियोका निरोध किया क्याकि बिना भगवन्निष्ठाक भगवत्प्राप्ति दुर्लभ हा हे। उनकी प्राप्तिम मद-मान बाधक होत हैं। रसिकशिरोमणि रासविहारी गोपालन गोपियाक मद एव प्रियाजीके मानको दूर करनेके लिये ही स्वरूपको तिरोहित किया था। अर्थात् उन्हींक हृदय-कमलम अन्तर्हित हा गये थे। गापियान उन्ह सम्पूर्ण वनाम ढूँढा गुल्म-लताआस पूछा कहा उत्तर न मिलनेपर हताश हाकर यमुना-पुलिनपर बठकर श्यामसुन्दरको पुकारती हुई गीत गान लगा—

> **न खलु गोपिकानन्दनो भवा-**
> **नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।**
> **विखनसार्थितो विश्वगुप्तये**
> **सख उदेयिवान् सात्वता कुले॥**
> (श्रामद्भा० १०। ३१। ४)

—गोपियाकी इस उक्तिस भी प्रमाणित हाता है कि कृष्णने यादवकुलम '**वसुदवगृहे साक्षादवतीर्ण स्वमायया**' स्वच्छया या स्वजनेच्छया अवतार लिया है। यशादाजाका ता पुत्री हुई थी जिसका लकर वसुदवजी मथुरा चले गये। वहाँ कसक हाथसे उछलकर आकाशम जाकर कसस कह दिया—'मुझ मारनसे क्या? तेरा मारनवाला कहीं और स्थित है।' केशी दैत्यक वधके पश्चात् नारदजीन भी कसको सूचित कर दिया था—'**द्वाभ्या त पुरुषा हता** ' व्रजम जहाँ-जहाँ तुमन अपने दत्य-दानव भेज थे, वे सभी कृष्ण-कन्हेया और दाऊ भैयाद्वारा लीलाम ही मार डाले गये। यह सुन क्रोधाविष्ट कसन दवकी-वसुदवका मारनक लिय शस्त्र उठाया ता नारदन उसे रोक दिया था तब उसन वसुदव-देवकीको कैद कर दिया। इसक बाद कुरुक्षेत्रम आगन्तुक ऋषि-मुनियास वसुदवजान कर्मबन्धनस छुटकारा पानका उपाय पूछा ता नारदजान उनका मायामोहित जानकर कृष्णक सत्य-स्वरूपका परिचय दिया था। उनक उपदशास वसुदव-

देवकीका माह दूर हुआ। इस प्रकारकी बहुविध कृष्णलीलाएँ निरन्तर चिन्तनीय तो हैं, लेकिन अनुकरणीय नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञम अग्र-पूजाके पात्र-चयनके अवसरपर सहदेवने 'एष वे देवता सर्वा ' इत्यादि वचनोसे कृष्णको सर्वोच्च बताया तथा सभी सभासदाने सहर्ष अनुमोदन किया। इस चरित्रसे भी कृष्णकी महत्ता प्रतीत होती है। असहिष्णु शिशुपालका वध भी वहीं हुआ था। 'मान विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्'—इस उक्तिसे यह भी स्पष्ट ह कि सभी राजाआका मान-मर्दन करनेक लिये ही उन्हाने रुक्मिणी-हरणादि लीलाएँ की हैं। द्वारकामे ऐश्वर्य-लीलाआके द्वारा सभीको यह दिखा दिया कि पूर्णपुरुषोत्तम कृष्णके सिवाय काई परम देवता नहीं हे। उनकी लीलाका मुख्य प्रयोजन हे—शिष्टापर अनुग्रह और दुष्टाका निग्रहकर आत्मनिष्ठ बनाकर ससारसे मुक्त कर देना।

यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, तथापि निग्रह-अनुग्रहरूप परस्पर विरुद्ध कार्य करनेसे उनम विषमता-निदयता आदि दाष नहीं हैं। दुष्टाका निग्रह किये बिना वेदिक सद्धर्म-मर्यादाकी तथा देव द्विज, गा ओर साधु-सताकी रक्षा असम्भव है। दुष्टाको दण्ड देना भी अनुग्रह है।

सर्वजनोद्धारक श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। प्रधानतया श्रीभागवतम महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीने उनकी लीलाका वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसी रसीली लीलाएँ अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं, तभी तो श्रीधर स्वामीने अपनी अद्वितीय टीकामे कह दिया कि—'वर्वर्ति सर्वोपरि।'

पार्वती-पटलमे श्रीसदाशिवजीने पार्वतीके प्रति दिव्य श्रीकृष्ण-लीलासे परिपूर्ण होनेके कारण ही भागवत माहात्म्यके सम्बन्धमे कहा कि—

यदि न स्याद् भागवत कलौ सर्वमलाकुले।
तदा गति कथ नृणा सत्य सत्य मयोदितम्॥

अर्थात् सभी दोषासे परिपूर्ण कलिकालमे यदि श्रीमद्भागवत न हो ता मानवाका कल्याण कैसे होगा, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि भागवतके श्रवण-कीर्तन-मनन करनसे मनुष्यका मोक्ष हो जाता है। इन माहात्म्यपूर्ण वचनासे यह सर्वविध सिद्ध है कि स्वजनोके उद्धारार्थ ही लीला है। उनकी महिमा अपार है। गागरमे सागर नहीं समाता अत यहीं उपराम करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा

'मै कहाँ हूँ?' प्रलयाब्धिके मध्य एक सुमहत् प्रकाशमय अरुण कमल खिला था। उसकी कर्णिकापर एक पद्मके ही रगका बालक बैठा था। बालकने चारा ओर दखनेकी इच्छा की और वह चतुर्मुख हो गया। वहाँ उस कमल और समुद्रको छोड़कर कुछ नहीं था। तेज पुञ्ज पद्मके अतिरिक्त दिशाएँ अन्धकारमय थीं। बालकने कमलनालम प्रवेश किया। कमलमूल जाननेकी उत्कण्ठा थी।

सहस्रा वर्ष कमलनालम नीच जानपर भी जब उसका अन्त न मिला, तब ब्रह्माजी लौट आय। सहसा अलक्ष्यवाणीने उन्हे 'तप! तप! तप!' —तपस्याका आदेश दिया। युगाके तपके पश्चात् हृदयमे ही उन्हाने उस कमलनाभके दर्शन किये, जो सहस्रफणमौलि हिमश्वेत शषकी शय्यापर सोये हुए कृपापूर्वक उनकी आर देख रहे थे।

'सृष्टि ता बढ़ती ही नहीं। ब्रह्माजीकी स्वाभाविक रुचि सृष्टिकर्मम थी। वे बराबर अपन मनसे मानसिक सृष्टि कर रहे थे। मानसिक सृष्टिके प्राणी कल्पान्त अमर ता हा गये, पर उनकी प्रवृत्ति सृष्टिम तबतक न हुई। अन्तमे स्वय स्रष्टाने अपने दाहिने भागसे मनु और वाम भागम शतरूपाका प्रकट किया। यह जोड़ी सृष्टि बढानम प्रवृत्त हुई। मनुकी कन्या देवहूति महर्षि कर्दमको बियाही गयी। इस प्रकार मानसिक सृष्टिका भी सहयाग क्रमश मिला।

भगवान् ब्रह्मा असुराके उपास्य रह है। सृष्टिकर्मम लग रहनस वे बहुत कठार तप करनेपर ही तुष्ट हाते हैं। इन्द्र और विराचनने उन्हींसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। सृष्टिम सामञ्जस्य बनाय रखनक लिय, असुरास पराजित देवताआकी रक्षाके लिये बार-बार उन्हें क्षीरसागरशायी प्रभुस प्रार्थना करनी पड़ी है। पृथु या विश्वामित्रकी भाँति काई समर्थ जब सृष्टिम व्यतिक्रम करने लगता है तब भी उसे समझानेके लिय उन्हें आना पड़ता है। ये हसवाहन प्रभु नित्य ही जगत्के प्रति सचिन्त रहत हैं। उनके चरित पुराणाम बहुत अधिक है। समस्त कार्योत्पादनक ये ही अधिष्ठाता हैं।

भगवल्लीलाका तत्त्व

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्म, क्रिया और लीला—तीनो एक दीखत हुए भी वास्तवमे सर्वथा भिन्न हैं। जा कर्तृत्वाभिमानपूर्वक किया जाय तथा अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेवाला हो वह 'कर्म' होता है। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक न की जाय तथा जो फल देनेवाली भी न हो वह 'क्रिया' हाती है, जैसे—श्वासोका चलना, आँखोका खुलना और बद होना आदि। जो क्रिया कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छासे रहित तो होती ही है, साथ-साथ दिव्य तथा दुनियामात्रका हित करनेवाला भी होती है, वह 'लीला' होती है। सासारिक लोगोके द्वारा 'कर्म' होता है, मुक्त पुरुषोके द्वारा 'क्रिया' होती है और भगवान्‌के द्वारा 'लीला' होती है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

'ईश्वरका सृष्टिरचना आदि कार्य लाकमे तत्त्वज्ञ महापुरुषोकी तरह केवल लीलामात्र है।'

भगवान्‌की छोटी-से-छोटी तथा बडी-से-बडी प्रत्येक क्रिया 'लीला' होती है। लीलामे भगवान् सामान्य मनुष्या-जैसी क्रिया करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं*। भगवान्‌की लीला दिव्य होती है—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' (गीता ४। ९)। यह दिव्यता देवताआकी दिव्यतासे भी विलक्षण होती है। देवताओकी दिव्यता मनुष्याकी अपक्षासे होनेके कारण सापेक्ष और सीमित होती है, पर भगवान्‌की दिव्यता निरपेक्ष और असीम होती है। यद्यपि जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी महापुरुषोकी क्रियाएँ भी दिव्य होती है, तथापि वे भी भगवल्लीलाके समान नहीं होतीं। भगवान्‌की साधारण लौकिक लीला भी अत्यन्त अलौकिक होती है। जैसे, भगवान्‌की रासलीला लौकिक दीखती है, पर उसको पढने-सुननेसे साधकको कामवृत्तिका नाश हो जाता है†।

यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है—'आद्योऽवतार पुरुष परस्य' (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। तात्पर्य है कि भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं। परतु जीवने भोगासक्तिके कारण जगत्‌को भगवद्रूपसे स्वीकार न करके नाशवान् जगत्-रूपसे ही धारण कर रखा है—'जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्' (गीता ७। ५)। इस धारणाको मिटानेके लिये साधकको दृढतासे ऐसा मानना चाहिये कि जो दीख रहा है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो हो रहा है, वह भगवान्‌की लीला है। ऐसा मानने (स्वीकार करने)-पर जगत् जगत्-रूपसे नहीं रहेगा और 'भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है'—इसका अनुभव हो जायगा। दूसरे शब्दामे, ससार लुप्त हो जायगा और केवल भगवान् रह जायँगे। कारण कि प्रत्येक वस्तु एव व्यक्तिको भगवान्‌का स्वरूप और प्रत्येक क्रियाको भगवल्लीला माननेसे भोगासक्ति, राग-द्वेष नहीं रहगे। भागासक्तिका नाश होनेपर जो क्रियाएँ पहले लौकिक दीखती थीं, वही क्रियाएँ अलौकिक भगवल्लीला-रूपसे दीखने लगगी और जहाँ पहले भोगासक्ति थी, वहाँ भगवत्प्रेम हो जायगा।

साधकको ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् जैसा रूप

---

*तस्य कर्तारमपि मा विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (गीता ४। १३)

उस (सृष्टि-रचना आदि)-का कर्ता होनेपर भी मुझ अव्यय परमेश्वरको तू अकर्ता जान।'

न मा कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। (गीता ४। १४)

'कर्मोके फलमे मेरी स्पृहा नहीं है इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते।'

† विक्रीडित व्रजवधूभिरिद च विष्णो श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् य ।

भक्ति परा भगवति प्रतिलभ्य काम हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर ॥ (श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

'परीक्षित्! जा धार पुरुष व्रजयुवतियोके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है उसे भगवान्‌के चरणामे पराभक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शाघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका काम-भाव सदाके लिये नष्ट हो जाता है।'

देवकीका मोह दूर हुआ। इस प्रकारकी बहुविध कृष्णलीलाएँ निरन्तर चिन्तनीय तो है, लेकिन अनुकरणीय नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्र-पूजाके पात्र-चयनके अवसरपर सहदेवने 'एष वै देवता सर्वा' इत्यादि वचनोंसे कृष्णको सर्वोच्च बताया तथा सभी सभासदोंने सहर्ष अनुमोदन किया। इस चरित्रसे भी कृष्णकी महत्ता प्रतीत होती है। असहिष्णु शिशुपालका वध भी वहीं हुआ था। 'मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्'—इस उक्तिसे यह भी स्पष्ट है कि सभी राजाओंका मान-मर्दन करनेके लिये ही उन्होंने रुक्मिणी-हरणादि लीलाएँ की हैं। द्वारकामें ऐश्वर्य-लीलाओंके द्वारा सभीको यह दिखा दिया कि पूर्णपुरुषोत्तम कृष्णके सिवाय कोई परम देवता नहीं है। उनकी लीलाका मुख्य प्रयोजन है—शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रहकर आत्मनिष्ठ बनाकर संसारसे मुक्त कर देना।

यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं तथापि निग्रह-अनुग्रहरूप परस्पर विरुद्ध कार्य करनेसे उनमें विषमता-निर्दयता आदि दोष नहीं हैं। दुष्टोंका निग्रह किये बिना वैदिक सद्धर्म-मर्यादाकी तथा देव, द्विज, गौ और साधु-संतोंकी रक्षा असम्भव है। दुष्टोंको दण्ड देना भी अनुग्रह है।

सर्वजनोद्धारक श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। प्रधानतः श्रीभागवतमें महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीने उनकी लीलाका वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसी रसाली लीलाएँ अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं, तभी तो श्रीधर स्वामीने अपनी अद्वितीय टीकामें कह दिया कि—'वर्वर्ति सर्वोपरि।'

पार्वती-पटलमें श्रीसदाशिवजीने पार्वतीके प्रति श्लिष्ट श्रीकृष्ण-लीलासे परिपूर्ण होनेके कारण ही भागवत माहात्म्यके सम्बन्धमें कहा कि—

> यदि न स्याद् भागवतं कलौ सर्वमलाकुले।
> तदा गतिः कथं नृणां सत्यं सत्यं मयोदितम्॥

अर्थात् सभी दोषोंसे परिपूर्ण कलिकालमें यदि श्रीमद्भागवत न हो तो मानवोंका कल्याण कैसे होगा, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि भागवतके श्रवण-कीर्तन-मनन करनेसे मनुष्यका मोक्ष हो जाता है। इन माहात्म्यपूर्ण वचनोंसे यह सर्वविध सिद्ध है कि स्वजनोंके उद्धारार्थ ही लीला है। उनकी महिमा अपार है। गागरमें सागर नहीं समाता अतः यहीं उपराम करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा

'मैं कहाँ हूँ?' प्रलयाब्धिके मध्य एक सुमहत् प्रकाशमय अरुण कमल खिला था। उसकी कर्णिकापर एक पद्मके ही रंगका बालक बैठा था। बालकने चारों ओर देखनेकी इच्छा की और वह चतुर्मुख हो गया। वहाँ उस कमल और समुद्रको छोड़कर कुछ नहीं था। तेज पुञ्ज पद्मके अतिरिक्त दिशाएँ अन्धकारमय थीं। बालकने कमलनालमें प्रवेश किया। कमलमूल जाननेकी उत्कण्ठा थी।

सहस्रों वर्ष कमलनालमें नीचे जानेपर भी जब उसका अन्त न मिला, तब ब्रह्माजी लौट आये। सहसा अलक्ष्यवाणीने उन्हें 'तप! तप! तप!'—तपस्याका आदेश दिया। युगोंके तपके पश्चात् हृदयमें ही उन्होंने उस कमलनाभके दर्शन किये, जो सहस्रफणामौलि हिमश्वेत शेषकी शय्यापर सोये हुए कृपापूर्वक उनकी ओर देख रहे थे।

'सृष्टि तो बढ़ती ही नहीं।' ब्रह्माजीकी स्वाभाविक रुचि सृष्टिकर्ममें थी। वे बराबर अपने मनसे मानसिक सृष्टि कर रहे थे। मानसिक सृष्टिके प्राणी कल्पान्त अमर तो हो गये, पर उनकी प्रवृत्ति सृष्टिमें तबतक न हुई। अन्तमें स्वयं स्रष्टाने अपने दाहिने भागसे मनु और वाम भागसे शतरूपाको प्रकट किया। यह जोड़ी सृष्टि बढ़ानेमें प्रवृत्त हुई। मनुकी कन्या देवहूति महर्षि कर्दमको विवाही गयी। इस प्रकार मानसिक सृष्टिका भी सहयोग क्रमशः मिला।

भगवान् ब्रह्मा असुरोंके उपास्य रहे हैं। सृष्टिकर्ममें लगे रहनेसे वे बहुत कठोर तप करनेपर ही तुष्ट होते हैं। इन्द्र और विरोचनने उन्हींसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। सृष्टिमें सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिये, असुरोंसे पराजित देवताओंकी रक्षाके लिये बार-बार उन्हें क्षीरसागरशायी प्रभुसे प्रार्थना करनी पड़ी है। पृथु या विश्वामित्रकी भाँति कोई समर्थ जब सृष्टिमें व्यतिक्रम करने लगता है, तब भी उसे समझानेके लिये उन्हें आना पड़ता है। वे हंसवाहन प्रभु नित्य ही जगत्‌के प्रति सचिन्त रहते हैं। उनके चरित पुराणोंमें बहुत अधिक हैं। समस्त कार्योत्पादनके वे ही अधिष्ठाता हैं।

भगवल्लीलाका तत्त्व

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्म, क्रिया और लीला—तीनो एक दीखते हुए भी वास्तवमे सर्वथा भिन्न हैं। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक किया जाय तथा अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेवाला हो, वह 'कर्म' होता है। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक न की जाय तथा जो फल देनेवाली भी न हो, वह 'क्रिया' होती है, जैसे—श्वासोका चलना, आँखोका खुलना और बद होना आदि। जो क्रिया कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छासे रहित तो होती ही है, साथ-साथ दिव्य तथा दुनियामात्रका हित करनेवाला भी होती है, वह 'लीला' होती है। सासारिक लोगोके द्वारा 'कर्म' होता है, मुक्त पुरुषाके द्वारा 'क्रिया' होती है और भगवान्‌के द्वारा 'लीला' होती है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

'ईश्वरका सृष्टिरचना आदि कार्य लोकम तत्त्वज्ञ महापुरुषाकी तरह केवल लीलामात्र है।'

भगवान्‌की छोटी-से-छोटी तथा बडी-से-बडी प्रत्येक क्रिया 'लीला' होती है। लीलामे भगवान् सामान्य मनुष्यो-जैसी क्रिया करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं*। भगवान्‌की लीला दिव्य होती है—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' (गीता ४। ९)। यह दिव्यता देवताआकी दिव्यतासे भी विलक्षण होती है। देवताओकी दिव्यता मनुष्योकी अपेक्षासे होनेके कारण सापेक्ष और सीमित होती है, पर भगवान्‌की दिव्यता निरपेक्ष और असीम होती है। यद्यपि जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी महापुरुषोकी क्रियाएँ भी दिव्य होती हैं, तथापि वे भी भगवल्लीलाके समान नहीं होतीं। भगवान्‌की साधारण लौकिक लीला भी अत्यन्त अलौकिक होती है। जैस, भगवान्‌की रासलीला लौकिक दीखती है, पर उसको पढने-सुननेसे साधककी कामवृत्तिका नाश हो जाता है†।

यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है—'आद्योऽवतार पुरुष परस्य' (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। तात्पर्य है कि भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं। परतु जीवने भोगासक्तिके कारण जगत्‌को भगवद्रूपसे स्वीकार न करके नाशवान् जगत्-रूपसे ही धारण कर रखा है—'जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्' (गीता ७। ५)। इस धारणाको मिटानेके लिये साधकको दृढतासे ऐसा मानना चाहिये कि जो दीख रहा है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो हो रहा हे वह भगवान्‌की लीला है। एसा मानने (स्वीकार करने)-पर जगत् जगत्-रूपसे नहीं रहेगा और 'भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है'—इसका अनुभव हो जायगा। दूसरे शब्दोम, ससार लुप्त हो जायगा और केवल भगवान् रह जायँगे। कारण कि प्रत्येक वस्तु एव व्यक्तिको भगवान्‌का स्वरूप और प्रत्येक क्रियाको भगवल्लीला माननेसे भोगासक्ति, राग-द्वेष नहीं रहेगे। भोगासक्तिका नाश होनेपर जो क्रियाएँ पहले लौकिक दीखती थीं, वही क्रियाएँ अलौकिक भगवल्लीला-रूपसे दीखने लगेगी ओर जहाँ पहले भोगासक्ति थी, वहाँ भगवत्प्रेम हो जायगा।

साधकको ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् जेसा रूप

---

*तस्य कर्तारमपि मा विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (गीता ४। १३)

'उस (सृष्टि-रचना आदि)-का कर्ता होनेपर भी मुझ अव्यय परमेश्वरको तू अकर्ता जान।

न मा कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। (गीता ४। १४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है इसलिय मुझे कर्म लिप्त नहीं करते।'

† विक्रीडित व्रजवधूभिरिद च विष्णो श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् य ।
भक्ति परा भगवति प्रतिलभ्य काम हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर ॥ (श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

परीक्षित्! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियाके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाक साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है उसे भगवान्‌के चरणोंमें पराभक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृत्यके राग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका काम-भाव सदाके लिये नष्ट हो जाता है।

धारण करते हैं उसीके अनुरूप लीला करते हैं*। जब वे अर्चावतार अर्थात् मूर्तिका रूप धारण करते हैं, तब वे मूर्तिकी तरह ही अचल रहनेकी लीला करते हैं। अगर वे अचल नहीं रहेंग तो वह अर्चावतार कैसे रहेगा? भगवान्ने राम कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूप भी धारण किये। उन्होंने जैसा रूप धारण किया, वैसी ही लीला की। जैसे वराहावतारम भगवान्ने सूअर बनकर लीला की और वामनावतारम ब्रह्मचारी ब्राह्मण बनकर लीला की।

भगवल्लीलाको पढने-सुननेसे अन्त करण शुद्ध होता है, ससारकी आसक्ति मिटती है और भगवान्म प्रम होता है। ज्ञानस्वरूप भगवान् शकर, ब्रह्माजी, सनकादिक ऋषि, देवर्षि नारद आदि भी भगवान्की लीलाआको गाकर और सुनकर प्रेममग्न हो जात हैं। भगवान् अवतार लेकर जिन स्थानाम लीलाएँ करते हैं वे स्थान भी इतन पवित्र हो जाते ह कि उनमें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निवास करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। इसका कारण यह है कि भगवान् मात्र जीवाका कल्याण करनेके उद्देश्यसे ही अवतार लेकर लीलाएँ करते हैं—'नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।' (श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

अलख-निरञ्जन स्वसवद्य श्रीनाथ दैवत शिवगारक्षका लीला-वैभव अनिर्वचनीय आर उन्हीकी सिसृक्षा-शक्ति आदिमहामाया-कल्पित किवा सृजित होकर भी नितान्त अमायिक है—निरञ्जन हे। श्रीनाथ एक मात्र सच्चिदानन्दस्वरूप शिवकी तरह स्वसवेद्य अखण्ड नित्यसनातन हैं और इसी प्रकार इनकी स्वरूपाभिव्यक्ति लीला-स्वरूपता भी नित्य-नवीन स्वसवेद्य अखण्ड-निरञ्जन, अज्ञनातीत-मायातीत-निर्मल शुद्धस्वरूपिणी है। नाथ-सम्प्रदायके ही नहीं समस्त चराचरके परम उपास्य अलख-निरञ्जन आदिनाथ विश्वातीत सदाशिव है। व उत्पत्ति-स्थिति और सहार-लयके मूल अधिष्ठान हैं। व जगदानन्द-हेतु परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर ह।

'श्रीनाथ दवत ही स्वसवेद्य अलख-निरञ्जन शिवगोरक्ष हैं।' ऐसी स्थितिम श्रीनाथ देवत शिवगोरक्षकी लीलासम्पत्तिमें तिलमात्र भी भेद नही है—सम्पूर्ण सामजस्य किवा सच्चिदानन्दायित, मायातीत स्वरूपायित लीला-चेतन्याभि-व्यक्ति हे।

श्रीनाथ दैवत (शिवगारक्ष)-का अचिन्त्य लीला-वैभव उनके अनिर्वचनीय तात्त्विक स्वरूप-श्रीनाथस्वरूपके विमर्श-निर्वचनम ही परिव्याप्त है और उनकी सिसृक्षा-शक्ति—उनके विश्वव्यापक विष्णु-रूपमे ही यह अमायिक निरञ्जन नित्य-निरन्तर लीलातत्त्व अनुस्यूत है। श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमे यही युक्तियुक्त है—

अवाच्यमुच्येत कथ पद तत्
अचिन्त्यमप्यस्ति कथ विचिन्तयेत्।

---

*भगवान् श्रीकृष्ण उत्तङ्क ऋषिसे कहते ह—

धर्मसरक्षणार्थाय धर्मसस्थापनाय च॥
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिपु लोकपु भार्गव। (महाभारत आश्व० ५४। १३-१४)

मैं धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये तीना लोकामे बहुत-सी योनियोमे अवतार धारण करके उन-उन रूपो और वेषोद्वारा तदनुरूप बर्ताव करता हूँ।

यदा त्वह देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन। तदाह देववत् सर्वमाचरामि न सशय॥
यदा गन्धर्वयानौ वा वर्तामि भृगुनन्दन। तदा गन्धर्ववत् सर्वमाचरामि न सशय॥
नागयोना यदा चैव तदा वर्तामि नागवत्। यक्षराक्षसयान्यास्तु यथावद् विचराम्यहम्॥

(महा० आश्व० ५४। १७—१९)

भृगुनन्दन। जब मैं देवयानिमें अवतार लेता हूँ, तब दवताआका ही भाँति सार आचार-विचारका पालन करता हूँ, इसमें सशय नहीं है। जब मैं गन्धर्वयानिम प्रकट हाता हूँ, तब मर सार आचार-विचार गन्धर्वोंक ही समान हाते हैं इसम सन्देह नहीं है। जब मैं नागयानिम जन्म ग्रहण करता हूँ, तब नागाकी तरह बर्ताव करता हूँ। यक्षा और राक्षसाकी यानियामें प्रकट होनपर मैं उन्हींके आचार विचारका यथावत् रूपस पालन करता हूँ।

अतो यदस्त्येव तदस्ति तस्मै
नमोऽस्तु कस्मै बत नाथतेजसे॥
(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

जो पद अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है, अचिन्त्यका चिन्तन किस तरह किया जाय, इसलिये जो है वह ऐसा ही है, मेरा तो उस नाथतेज (दैवत)-को नमस्कार है।

श्रीनाथस्वरूप परब्रह्मतत्त्व है, यह निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण महत्तत्त्व है यह निर्मल व्योमविज्ञानरूप आनन्दब्रह्म है, इस तरह ब्रह्मज्ञ इसका निर्वचन करते हैं। स्वत शिवगोरक्षका स्वरूप इसका निर्णय है—

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत्।
व्योमविज्ञानमानन्दं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदु ॥
(गोरक्षपद्धति २। ९३)

शिव (शक्तिमान्) और शक्तिके लीलायित तत्त्वके साथ त्रिदेवक्रममे लीला-व्याप्ति-हेतु सदाशिवसे ईश्वर, ईश्वरसे रुद्र रुद्रसे विष्णु, विष्णुसे ब्रह्माका रूप निर्वचित है। इनके द्वारा सृजन, नियमन (रक्षण) और संहरणकी लीला चलती रहती है—**सदाशिवात् ईश्वर , ईश्वराद् रुद्र , रुद्राद् विष्णु विष्णोर्ब्रह्मेति।** (सिद्धसिद्धान्तपद्धति १। ३७)

त्रिदेव-शक्तिके लीलानुक्रमका बड़ा ही सूक्ष्म निरूपण गोरक्षसिद्धान्त-संग्रहके प्रारम्भिक दो श्लोको (मङ्गलाचरण)-मे मिलता है जिनसे नाथ दैवतके लीला-वैभवपर सहज प्रकाश पडता है। इसमे श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमे श्रीनाथ दैवत और उनका सम्पूर्ण लीला-वैभव अभिव्यक्त है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नम ॥
मध्ये नाथ परंज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्।
वामभागे स्थित शम्भु सव्ये विष्णुस्तथैव च॥

जिनकी बायीं ओर निर्गुणस्वरूप ब्रह्म और दायीं ओर अद्भुत निजा शक्ति—इच्छा-शक्ति पराम्बा महामाया विद्यमान हैं और बीचमे जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार, अलख-निरञ्जन विद्यमान हैं उन श्रीनाथ-आदिनाथ परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी बायीं ओर कल्याणस्वरूप शिव और दायीं ओर विश्वरूप-विश्वव्यापक परमेश्वर विष्णु विराजमान हैं और मध्यभागमे परम ज्योति -स्वरूप श्रीनाथ ही विद्यमान हैं, यही श्रीनाथ-स्वरूप अखण्ड ज्योति हमारे हृदयस्थित (अज्ञान) अन्धकारका नाश करती है। श्रीनाथस्वरूपलीला-वैभवका कर्तृत्व शक्तिमान् शिव और शिवस्वरूपिणी सिसृक्षा-शक्ति, स्वाश्रित चैतन्य निरञ्जनके निर्गुण-निर्विकार-निराकार परमात्मतत्त्वके लीलाविलासका पर्याय है।

परमात्मा अमायिक निराकार और निष्कल परब्रह्म अलख-निरञ्जन है, वह अञ्जन (माया)-मे अथवा दृश्य-प्रपञ्चमे उसी तरह अप्रकट है, जिस तरह तिलमे तेल अप्रकट रहता है। जिस तरह तिल पेरनेसे तेलकी प्राप्ति हो जाती है उसी तरह अञ्जनमे योग-ज्ञानके प्रकाशमे मैंने निरञ्जन ब्रह्मका साक्षात्कार-लीलादर्शन कर लिया है। मैंने साकारमे निराकारका, मूर्तमे अमूर्त परमात्माका स्पर्श (अनुभव) कर लिया है। यह निगूढ लीला (खेल) सनातन है। सच्चिदानन्द-स्वरूप अलख ब्रह्म ही सर्वत्र अभिव्यक्त है। मेरे द्वारा शून्यमे जो नहीं कहा गया है तथा जिस अखिलब्रह्माण्डनायक परब्रह्म अलख-निरञ्जनका दर्शन किया गया है, वह स्वसंवेद्य तत्त्व है। इसलिये शब्दके माध्यमसे उसके स्वरूप-निरूपणमे तथा अनुभूतिमे किसीको विश्वास नहीं होगा। पर वह सत्य है—निरालम्ब-निराधार निरञ्जन और शून्य है। शून्य-स्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार ही कैवल्य-पदकी प्राप्ति है। उसमे तादात्म्य-लाभ कर मेरा द्वैतभाव मिट गया है।

द्वैताद्वैतविलक्षण अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय लीलाके समान ही प्रत्यक्ष बहिरङ्ग-लीला भी श्रीनाथ दैवतके परिप्रेक्ष्यमे अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय है। '**एकमेवाद्वितीयम्**' उसकी यथार्थता किंवा सार्थकता है।

भक्तानुरक्त होकर श्रीनाथ दैवत लीलावैभव-प्रसृत है। शिवसंहितामे कहा गया है—

भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम्।
(शिवसंहिता १। २)

भक्त—जीवमात्रके प्रति अनुराग (अनुरक्ति) ही भगवल्लीला-वैभवके प्राकट्यका मुख्य हेतु है। श्रीमद्भागवतमे कहा गया है—

पोषणं तदनुग्रह ।
(श्रीमद्भा० २। १०। ४)

यह भगवदनुग्रह ही श्रीनाथ दैवत लीला-वैभवमे अप्रत्यक्ष-

प्रत्यक्ष-विलक्षण स्वसवेद्य मायातीत निरञ्जन-स्वरूप प्रकट-अभिव्यक्त ह। नाथ दैवत-लीला-वेभव-कर्तृत्वम परमेश्वर शिव, उनकी आद्या तत्स्वरूपिणी सिसृक्षाशक्ति महामाया और विश्वव्यापक विष्णुका वृत्तान्त अनुभवगम्य होता है। *आदिनाथ शिवने सप्तशृगपर क्षीरसागरम जब भगवती* महाशक्तिको महायागज्ञानका उपदेश दिया, तब उस लीलाम मत्स्यादरम स्थित विष्णुने उसे सुना और शिवने उन्ह अपना सुत 'मत्स्यन्द्रनाथ सिद्धनाथ' स्वीकार किया। श्रीनाथ-*तीथावलीम महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिहने श्रीरुक्मिणीके* साथ प्रभास क्षेत्रमे शिवगोरक्षद्वारा रुक्मिणी-कृष्ण-ककण-बन्धन-सिद्धिकी लीला निरूपित की है और ऐसे ही लीला-परिवेशमे गोरखनाथ शिवावतारने मत्स्येन्द्रनाथकी सद्-गुरुता स्वीकार कर अपने-आपको कृतार्थ किया हे।

विश्ववन्द्य शिव ही गारखनाथ हैं, साक्षात् शिव हैं। वे अगम्य हैं, अगोचर हे। अनन्तलोकनाथ ह। इसलिये अनन्त लोक उनकी अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष लीलासे समलकृत है। *परब्रह्म (शिव)-के मानसोल्लास-सृष्टिकी इच्छाके उत्साहमात्रसे* (शिवम ही शयन करनेवाली—लयको प्राप्त होनेवाली) पराशक्ति (जगदीश्वरी गौरी पार्वती) जाग्रत् हाती है—अभिव्यक्त हाती है। आदिनाथ परम शिवम पराशक्ति अधिष्ठित है। इस पराशक्तिके स्वाभिव्यक्त परमेश्वर शिवके स्पन्दनमात्रसे अपराशक्ति—(क्रिया-प्रधान) लीलाशक्ति जाग जाती है। यह लीलाशक्ति सृष्टिक्रमम परमश्वरकी सहायता करती है। इस लीला-शक्तिको इसीकी प्रेरणास तत्त्वोपदेश देने-हेतु क्षीरसागरम सप्तशृगपर व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था ही श्रीनाथ दैवतके लीला-वैभवका एक महनीय उपक्रम हे।

नारदपुराणक उत्तरभाग (६९।१७।२३)-म श्रीनाथ दवतका लीलाङ्कन इस प्रकार हे—उपदशामृत (अमरकथामृत)-का श्रवण करते-करत जब भगवती महामाया पार्वती निद्राभिभूत हो गयीं, तब मत्स्यक उदरस निकलकर मत्स्येन्द्र-स्वरूप विष्णुन उसका श्रवण किया। उन्होने शिव-पार्वतीको नमस्कार कर समस्त लाला-वृत्तान्त—महायागज्ञान निरूपित कर दिया। शिवन प्रसन्नतापूर्वक उन्ह अपनी गोदम बैठाकर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र '*सिद्धनाथ मत्स्यन्द्रनाथ*' कहा।

इसी निरञ्जनीय श्रीनाथ देवत-लीलावभवका महत्त्वाङ्कन हठयाग-प्रदापिका (१।५)-की ज्यात्स्ना टीकाम ब्रह्मानन्दन इस प्रकार प्रकट किया है—

आदिनाथ शिव ही समस्त नाथामे आदिनाथ हैं। नाथसम्प्रदायी कहते हैं कि इन्हीं नाथस नाथसम्प्रदाय प्रवर्तित है। मत्स्यन्द्र आदिनाथक शिष्य हैं। किवदन्ती है कि एक बार आदिनाथ किसी द्वीपम स्थित थे। इस *स्थानको निर्जन और एकान्त जानकर उन्हाने भगवती* गिरिजाका यागज्ञानका उपदेश दिया। तीरके समीप नीरम स्थित एक मत्स्यने उस उपदशका *श्रवण किया।* जा वहाँ एकाग्रचित्त निश्चलकाय होकर स्थित था। उसको उस *हालतम दखकर कृपालु आदिनाथने साचा कि इसने योगज्ञानका* श्रवण कर लिया ह, उन्हान उसपर जल छिडका, जल छिडकने मात्रसे वह दिव्यकाय मत्स्येन्द्र सिद्ध हो गया। उन्हीं मत्स्येन्द्र सिद्धको मत्स्येन्द्रनाथ कहा जाता है।

सत योगी ज्ञानेश्वर अपन ज्ञानेश्वरी गीता (भाष्य)-मे इसी तथ्यपर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशकरने न जाने कब एक बार शक्ति पार्वतीके कानम जो उपदेश दिया था वह क्षीरसमुद्रकी *लहराम किसी मत्स्यके पेटम गुप्त मत्स्येन्द्रनाथके हाथ* लगा। मत्स्येन्द्रनाथ सप्तशृग-पर्वतपर चारगीनाथसे मिले, जिनके हाथ-पर लूल थे। मिलते ही चोरगीनाथ पूर्णाङ्ग हो गय। अचल समाधिका उपभोग लेनकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथने उपदश गोरखनाथको दिया। इस तरह उन्होंने योगरूपी कमलिनीके सरावर-विपयाको ध्वस करनेवाले एक ही वीर शकरके रूपम उस पदपर अभिषिक्त किया। शकरसे *प्राप्त* यह अद्वैतानन्दवैभव गोरखनाथसे गहिनीनाथने ग्रहण किया। व सब प्राणियाको कलिकालसे ग्रस्त देखकर दौड आये और श्रीनिवृत्तिनाथको यह आज्ञा दी कि आदिगुरु शकरके शिष्य-परम्परानुसार हम जो ज्ञाननिधि प्राप्त हुई, उसे लेकर कलिके जीवाकी रक्षा करो। कदरी (कदली) योगेश्वरमठ (मगलदीप) मगलारकी परम्परा भी अनुश्रुत है कि सह्याद्रिपर्वत-परिसरम समुद्र-तटपर शकरने सूक्ष्म शरीर धारणकर पार्वतीको योगज्ञानोपदेश दिया। तो माया-मीन-रूप धारणकर विष्णुने वह अमरकथा सुनी थी और शिवकी वत्सलतास पुत्ररूपमे स्वीकृत हुए।

इन उपर्युक्त समस्त वृत्तान्तासे यही प्रकट होता है कि श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवके निरूपणम श्रीनाथस्वरूप शिव उनका निजा शक्ति पार्वती और विष्णुकीही प्रधानता है—स्पष्ट है कि यागरहस्य-प्राकट्यम शिवश्रीनाथ ही अभिनयलीलाक

विशिष्ट पात्र हैं। पावती अपराशक्तिकी स्वरूप-शक्ति हैं और उपदेश-श्रवण करनेवाले विष्णुने शिव-पार्वतीके पुत्ररूपम वत्सलता प्राप्त की तथा पुत्ररूप विष्णु शिव-गुरुके रूपम प्रणम्यतासे विभूषित हो उठे। इस वृत्तान्तका यथार्थ तत्त्व गोरक्ष-शतकके प्रारम्भिक दो श्लोको—मङ्गलाचरणम मिलता हे। शिवगोरक्षको गुरुके चरणम प्रणति है—

श्रीगुरु परमानन्द वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सानिध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनु ॥

मै अपने गुरुदेव (मत्स्येन्द्रनाथ)-की वन्दना करता हूँ जो साक्षात् परमानन्द हैं जो सच्चिदानन्दस्वरूप-आनन्दविग्रह अथवा मूर्तिमान् आनन्द ह, जिनके सानिध्यसे ही यह शरीर चिदानन्द चिन्मय ओर परमानन्द हो जाता है।

महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिह-रचित श्रीनाथतीर्थावलीम श्रीरुक्मिणी-कृष्ण-ककण-बन्धन सिद्ध होना श्रीनाथ दैवतका विशिष्ट लीला-दर्शन हे। इसम शिवगोरक्षका महत्त्व निरूपित है। श्रीरुक्मिणी और श्रीकृष्णके विवाहके अवसरपर द्वापर युगम गोरक्षनाथ (शिव)-ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनको आशीर्वाद प्रदान किया था। मानसिह महाराजने प्रभास क्षेत्रका वर्णन करते हुए कहा है—

इत पश्चात्त्र देशे प्रभास क्षेत्रमुत्तमम्।
तत्र गोरक्षमठिका नाम धामास्ति पावनम्॥
रुक्मिणीकृष्णयोस्तत्राभूत् पुरा पाणिपीडनम्।
रुक्मिणीरूपलावण्यान्मोहिता सकला सुरा ॥
बभूवु शक्तिरहितास्तस्या ककणबन्धने।
तदा देवा सऋषय प्रजग्मुर्मिलिता परे॥
गोरक्षनाथ राजन्त गुप्तभावेन तत्र तम्।
स्तुवन्त प्रार्थयामासुर्दर्शन तस्य शूलिन ॥
स्तुत्या तुष्टा योगीन्द्रस्तेभ्य सदर्शन ददौ।
साधित पाश्रय तैस्तेन तस्या ककणबन्धनम्॥
ततस्तुष्टुवुर्नाथ रुक्मिणीदेवकी सुतौ।
भक्त्या परमया सा तु प्रसिद्धा जगतीतले॥
ततोऽसि तुष्टा योगीन्द्रो वरदानान्मुखोऽभवत्।
उवाच स वर वृत्त युवा यन्मनसीप्सितम्॥
ततस्तौ ववृतुर्नाथ भवानत्रैव तिष्ठतु।
तथास्त्विति वर दत्त्वा नाथस्तत्रैव तस्थिवान्॥

(श्रीनाथतीर्थावली ३१। ३८)

(रवतक पर्वतसे) पश्चिम देशम क्षेत्रामे श्रेष्ठ प्रभास क्षेत्र है। वहाँ गोरखमठिका नामका परम धाम ह। वहीं रुक्मिणी और श्रीकृष्णजीका परिणय (विवाह) हुआ था। श्रीरुक्मिणीजीके रूपलावण्यसे देवता मोहित हो गये और उनके ककण-बन्धनमे असमर्थ हो गये। तब ऋषियो तथा अन्य लोगोने वहाँ विराजमान गोरक्षनाथकी स्तुति की कि आप दर्शन दीजिये। स्तुतिसे सतुष्ट होकर योगीन्द्र गोरक्षनाथने उन लोगोको दर्शन दिया। उनकी प्रार्थनासे ककण-बन्धन सिद्ध हुआ। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजीने परमभक्तिसे उनकी स्तुति की, जो ससारम प्रसिद्ध है। गोरक्षनाथ योगीन्द्रने स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। दोनोने निवेदन किया कि ह नाथ! आप यहीं निवास कीजिये। नाथजीने 'तथास्तु' कहा और प्रतिष्ठित हो गये।

इसी लीलानुक्रमम यह भी स्मरणीय है कि श्रीकल्पद्रुम तन्त्र श्रीकृष्ण और महर्षि गर्गके सवादके रूपम प्रसिद्ध है। गर्गाचार्यने श्रीकृष्णको गोरक्षोपासनाका उपदेश दिया था। इसम वर्णन आता ह—

विना गोरक्षमन्त्रेण योगसिद्धिर्न जायते।

उसम श्रीनाथ दैवत गोरक्षनाथके ध्यान आदिपर प्रकाश डाला गया है।

समस्त श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव साक्षात् श्रीनाथस्वरूप आदिनाथ अलख-निरञ्जन शिवका ही स्वसवेद्य साक्षात्कार है—

ददीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वय शिव ।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

यह निर्विवाद ह—

एक सत्तापूरितानन्दरूप
पूर्णो व्यापी वर्तते नास्ति किंचित्।
एतज्ज्ञान य करोत्येव नित्य
मुक्त स स्यान्मृत्युससारदु खात्॥

(शिवसहिता १। ९५)

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवकी यही सार्थकता है कि एक सत्तासे पूर्ण यह आत्मा ही सर्वत्र आनन्दस्वरूप विद्यमान ह उससे भिन्न कोई नहीं ह जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर उसीमे चित्त रमा लिया वही पुरुष जन्म-मरणरूपी ससार-बन्धनसे मुक्त हो गया। यही श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवसे श्रीनाथस्वरूपकी प्राप्ति है।

भगवल्लीला-रहस्य

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीव्रजरागर्षीजी ब्रह्मचारी)

उस अनन्तका अन्त कौन जान सकता है, अवाङ्मन-सगोचरका वर्णन कैसे किया जा सकता है और निर्गुण-निराकार निर्विकार ब्रह्मको सर्वसुलभ सगुण-साकार कैसे बनाया जा सकता है?

यह अद्भुत पहेली अज्ञात-अनबूझी ही बनी रहती ये सभी प्रश्न अनुत्तरित ही बने रहते, यदि शास्त्रों और आचार्योंके द्वारा भगवल्लीला-रहस्यका विधिवत् समाधान न किया गया होता।

भगवल्लीलाकी गरिमा महिमा सत्ता, महत्ता उपयोगिता और आवश्यकताको उजागर करनेके लिये ही आचार्योंने उस कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु सक्षम समर्थ सर्वाधिष्ठान सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान अखण्ड अनन्त सदा एकरस रहनेवाले ब्रह्मको 'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते-'के सिद्धान्तद्वारा लोक-लीलाओंका स्वाँग करते हुए दिखाकर सबके लिये गति मति भक्ति और मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसीको वेदान्तसूत्रोंमें 'लोकवत्तु लीला-कैवल्यम्' (वेदान्तदर्शन २। १। ३३) कहकर प्रदर्शित किया गया है।

शास्त्रोंमें भक्ति मुक्ति, शान्ति, रति और विरति (निर्वेद)—इन सबके स्फुरण और जागरणका मूल कारण भगवल्लीलाओंको ही माना गया है। इसीलिये अद्वैतवादी भगवान् शंकराचार्यने भी भगवल्लीलाओंकी सतत सार्थकताको स्वीकार करते हुए कहा है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।'

जैसे अपार जलराशिवाला सिंधु बिंदु बन करके ही लोगोंकी पिपासा शान्त करता है, जैसे सर्वव्यापी महाकाश घटाकाश या मठाकाश बन करके ही लोगोंको सुख-सुविधाएँ प्रदान करता है, वैसे ही सर्वव्यापी सर्वाधार अनादि अनन्त शुद्ध-बुद्ध ब्रह्म अपनी अघटितघटनापटीयसी मायाशक्तिके द्वारा लोकलीलाएँ करके धर्म अर्थ काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धि बड़ी ही सरलता सरसता और सुगमतासे सबको सुलभ करा देता है। यथा—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिव रामु कहेउ कामारी॥
(रा० च० मा० १। ३१४। १)

अजका जन्म होना, अव्यक्तका व्यक्तीकरण और निर्गुण-निराकारका सगुण-साकार विग्रह धारण करना—ये ही सब भगवल्लीलाके ऐसे चमत्कार हैं, जिन्हें गीतादि अध्यात्म-ग्रन्थों और पुराणोंमें अनेक प्रकारसे दिखाया गया है। साधारण जनोंकी कौन कहे, बड़े-बड़े विद्वानोंको भी ये भगवल्लीलाएँ चकित विस्मित कर देती हैं। गीतामें कहा गया है कि—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
(२। २९)

ये भगवल्लीलाएँ नास्तिकको आस्तिक, भोगीको योगी, स्वार्थीको परमार्थी कृपणको उदार और नीरसको सरस बनाकर मानव-जीवनके चरम लक्ष्यका भी बोध कराती हैं। इसीलिये भगवान्की इन लीलाओंका मुख्य हेतु उनकी कृपा ही माना जाता है— मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।'

भक्तोंको इन भगवल्लीलाओंका रसास्वादन, समास्वादन करानेके उद्देश्यसे लीलाओंमें माधुर्यभावकी प्रधानता रहती है। ऐश्वर्यादिभाव गौण होकर समयानुसार यदा-कदा विशेष अवसरोंपर ही प्रकट होते हैं।

खेल खेलते समय खेलमें हार जानेपर एक राजकुमारको चोर बनकर दण्ड भुगतना पड़ा। वहाँपर खड़े किसी भावुक महानुभावने दयार्द्र होकर राजकुमारसे अपने राजकीय अधिकारोंका प्रयोग करनेके लिये कहा। राजकुमारने बड़े ही विनम्र स्वरमें उत्तर दिया—'भैया राजपुत्र होनेके कारण यदि मैं इस खेलमें अपने राजकीय अधिकारोंका प्रयोग करूँ तब तो इस क्रीडा—लीलाका माधुर्य ही समाप्त हो जायगा। मुझे इस चोर-क्रीडा-लीलामें दण्ड मिलनेसे जो आनन्द आ रहा है वह राजकुमार और उसके राजकीय अधिकारोंकी गरिमासे कई गुना अधिक है।' किंतु इस लौकिक क्रीडा-लीलासे भी कई गुना अधिक मीठा और आनन्दप्रद होता

है वह भगवल्लीला-रहस्यका रसास्वादन।

भगवल्लीलाओंका श्रवण मनन निदिध्यासन ओर दर्शन, इसके साथ ही भगवल्लीलाओंकी साधना, आराधना और उपासना करनेसे लोगोंमें एक नयी शिक्षा नयी दीक्षा नया उपदेश नया संदेश नयी स्फुरणा नयी प्रेरणा और नयी चेतनाकी जागृति होती है।

भगवल्लीलाओंका सौन्दर्य-माधुर्य इतना अधिक है कि उस आनन्दका अनुभव बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र, आप्तकाम, पूर्णकाम परमनिष्काम सनकादि शुकादिक एवं नारदादिकोंके लिये भी दुर्लभ बताया गया है। जो सुख-सौभाग्य इन्द्रादिक ब्रह्मादिक और सर्वप्रकारके अर्थ-अधिकारोंसे समन्वित देवताओंको भी सरलतासे सुलभ नहीं हो पाता, वह सुख वह आनन्द भगवान्‌की लीलामाधुरीका भक्तिभावसे रसास्वादन, समास्वादन करनेवाले भावुक भक्तोंको अति सुगमतासे अनुभूत होता है। तभी तो रसखान-जैसे भक्त आठो सिद्धियों और नवो निधियोंका परित्याग करके भी भगवल्लीलाएँ देखनेकी प्रबलतम इच्छा प्रकट करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका व्रजाङ्गनाओं, गोपाङ्गनाओंपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अब वह अपने कानोंसे कृष्णलीला-चर्चाके अतिरिक्त कुछ सुनना ही नहीं चाहती वे अब अपनी आँखोंसे कृष्णलीलाके अतिरिक्त और कुछ देखना ही नहीं चाहती। लोगोंके द्वारा कुलटा कुलमर्यादा-विघातिका आदि कहा जानेपर भी वे कृष्णलीलाओंसे तदाकार होकर निर्भीकतापूर्वक ललकार कर कहती है—

> कोऊ कहै कुलटा कुलीन-अकुलीन कोऊ
> पाँति नाँति जगसे बनाय सब न्यारी हो।
> गोरे वर्ण अपनो ही तनिको न नीको लगै
> अंग अंग रोम-रोम श्याम रंग धारी हो॥
> नेति नेति वेद नित जिसका गायन करें
> उसके हो चरणोंमें तन मन वारी हो।
> हो तो हम निपट लबारी और गँवारी किंतु,
> केसवकी लीलाओंपर सर्बस हारी हो॥

वेदकी ऋचाओं उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों इतिहास-पुराणोंके आख्यानों तथा काव्यग्रन्थोंके सुमधुर गीतोंद्वारा भगवल्लीलाके गुह्यतम रहस्योंका अनेक प्रकारसे उद्घाटन किया गया है।

तैत्तिरीयोपनिषद्‌के ब्रह्मानन्दवल्लीके षष्ठ अनुवाकमें भगवल्लीला-रहस्यका स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा— **'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेय'** अर्थात् उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं अनेक नाम-रूप धारण करके लोक-लीला करूँ।

इसी प्रकार ऐतरेयोपनिषद्‌के प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही भगवल्लीलाका सूत्ररूपमें संकेत उपलब्ध होता है— **'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।'**

वेदान्तसूत्रोंमें तो **'जन्माद्यस्य यतः'** (१। १। २)-के सूत्रसे लोकलीला-रहस्यका प्रारम्भ करके आगे अनेक प्रकारकी शंकाएँ उठाकर इस भगवल्लीला-वैचित्र्यका बड़ी ही कुशलतापूर्वक तर्कसंगत ढंगसे समाधान किया गया है। स्थानाभावसे उसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है।

भगवल्लीलाओंसे सम्बन्धित ये वैदिक और दार्शनिक सूत्र, पुराणों और काव्यग्रन्थोंमें अतिरोचक एवं बृहदाकार होते चले गये हैं। धीरे-धीरे भगवल्लीलाओंके ये रहस्य जनमानसमें इतने गहरे समा गये कि भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवनचरित्र ही रामलीला कहा जाने लगा और भगवान् श्रीकृष्णका जीवनवृत्त भी कृष्णलीला अथवा रासलीलासे सम्बोधित होने लगा। आगे चलकर इन भगवल्लीलाओंका मन्थन करके 'मीठो और कठौताभर'—महामधुर ब्रह्मरस राम-रस कृष्ण-रसके रूपमें लोगोंको पिलाया जाने लगा।

इन भगवल्लीलाओंकी महिमाका कहाँतक वर्णन करें? आस्तिक-नास्तिक ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी मूर्ख-पण्डित धनी-निर्धन, द्वैती-अद्वैती सभी अपने-अपने आख्यानों व्याख्यानों एवं दैनिक व्यवहारोंमें इनका आश्रय लेने लगे।

जाति-पाँति, बल-पौरुष आयु-अवस्था आदिका भी कोई विशेष प्रतिबन्ध इन लीलाओंके श्रवण-दर्शनमें नहीं है। भगवल्लीलाओंका यह अनुपम प्रभाव है कि जानसे, अनजानसे इच्छासे अनिच्छासे वैरसे अथवा प्रेमसे किसी भी प्रकारसे इनमें मन लगनेपर कल्याण हो जाता है।

अतः उन अकारणकरुण करुणावरुणालय परात्पर परब्रह्म परमात्माकी पावन लीलाओंके श्रवण कीर्तन स्मरण और दर्शनादिसे साधकों भक्तोंके जीवनमें सद्यः सुख-शान्ति और भगवत्प्राप्तिके साथ कृतकृत्यता तथा पूर्णता भी आ जाती है।

श्रीकृष्णके लीला-विलासका परिचय—लीलाका अर्थ

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

'लीला' शब्दके अर्थका विचार विस्तारसे शब्दकल्पद्रुम (चतुर्थ भाग, पृष्ठ २२४)-मे किया गया हे। सामान्यत लीलाका अर्थ है—केलि, विलास तथा शृगारभाव-चेष्टा। श्रीमद्भागवतपुराणके प्रथम स्कन्ध (१। १८)-म ही इस शब्दका समुचित सनिवेश उपलब्ध हाता हे—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथा शुभा ।
लीला विदधत स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

लीलाके दो प्रकार होते हैं—प्रकटा और अप्रकटा।

गोकुले मथुराया च द्वारकाया च शार्ङ्गिण ।
यास्तत्र तथा प्रकटास्तत्र तत्रेव सन्ति ता ॥
(भागवतामृतम्)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनन्त हैं, किंतु प्रमुख रूपसे उनकी तीन लीलाएँ विशेष प्रसिद्ध है। इन तीनो लीलाआम सर्वथा एक्य हे। इसका आरम्भ हाता है—व्रज-लीलाम तदनन्तर आती है माथुर-लीला ओर अन्तिम है द्वारका-लीला।

एक ही व्यक्तिने इन तीन लीलाआका प्रदर्शन अपने जीवनक विभिन्न भागाम किया था। अत श्रीकृष्णकी एकताम किसी प्रकारका सदह नहीं किया जा सकता। जा व्यक्ति श्रीकृष्णक व्यक्तित्वम भेद मानता ह उसका चिन्तन सवथा निराधार है।

श्रीकृष्णका गापियाके साथ लीला-विलासका सम्बन्ध जीवनक आरम्भस लकर अन्ततक रहता है। माताके उदराश्रित हानस लकर आग बढता चला गया था। उन्हान उस समय अपन ज्यष्ठ भाताका गाकुलम नन्दक घरम राहिणी माताक गर्भम यागमायाक आश्रयस सनिविष्ट करा दिया था जा 'सकर्षण' नामस विख्यात हुए। शिशुक प्रभावस दवकी तथा वसुदवका कारागारम रखनपर भी उनक जीवनम अद्भुत लीला दृष्टिगाचर हुइ था। रक्षक लागाका निद्रा आ गया थी तथा उनक बन्धन मुक्त हा गय थे। कृष्ण जब अपन जीवनक आरम्भम गाकुल आये तब यशादाका कन्याकी प्राप्ति हुइ था। यह भी कृष्णक जीवनक आरम्भिक कालका लीला-विलास था।

श्रीकृष्णके आरम्भिक जीवनम गोपियोके साथ नाना प्रकारकी लीलाओका विन्यास दृष्टिगोचर हाता हे। कसद्वारा कृष्णको मारनेके अनेक उपायामे उनकी लीलाका विलास दृष्टिगोचर होता हे। कृष्णकी जीवन-लीलाको समाप्त करनेके लिये कसने विविध चेष्टाएँ की थीं ओर इनम कृष्णके जीवनका विलास प्रचुर मात्रामे दखा जा सकता हे। उन्हे मारनेके लिये पूतना भेजी गयी थी और बालक कृष्णने उसे दूध पीत ही मार डाला। यह भी उनके आरम्भिक जीवनका विलास ही था।

यमुनाजीमे कालियनागकी नाना प्रकारकी चेष्टाएँ दीखती है, जिनक कारण यमुनाका जल विषमिश्रित हा गया था। कृष्णने कालियनागके सिरपर नृत्यकर उसक दापको दूर करनेका प्रयास किया था। यह उनकी नृत्य-लीलाका सद्य विलास था।

गोपियाके चीरहरणके प्रसगमे लीलाका विलास सद्य स्फुरित होता है। इस लीलाक द्वारा उन्होने नग्न-स्नानक दोपका सदाक लिय व्रजसे दूर कर दिया था नदीकी पवित्रताकी रक्षा की थी और साथ ही उन्हाने यह प्रदर्शित किया था कि भगवान्का सानिध्य प्राप्त करनेक लिये मनुष्यको ऊपरी दोपाको हटाना पडगा तभी उनक साथ उसका सर्वथा मिलन सम्भव होगा।

गावर्धन-धारण-लीलाका महत्त्व सबके सामन कृष्णने दिखाया था। व्रजक लाग इन्द्रकी पूजा करत थ। कृष्णन इसका अनौचित्य सिद्ध किया आर इन्द्रक महत्त्वका कम करनकी दृष्टिस यह लीला प्रदर्शित की थी। श्रीकृष्णन ब्रह्माका गर्व चूर्ण करनक लिय अपन सकल्पस गाप ग्वाल-बाल तथा अन्य जीवाका छिपा रखा था तथा एक वर्पक अनन्तर उन सबका उसी रूपम प्रकट किया। किसीका भी इस अन्तरग लीलाका गम्भीरताका—रहस्यका पता नहीं चला और ब्रह्माक गर्वको भी कृष्णन चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।

श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण उनके जीवनकालम हा

हाने लगा था। यह विशेष रूप है लीलाका। रासके समय गापियाके गर्वको दूर करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वय अन्तर्हित हो गये, तब गोपियोने उनके जीवनकी समस्त घटनाआका स्वय अनुकरण किया था। कृष्णकी जितनी लीलाएँ पहले हो चुकी थी, उन सबका अनुकरणकर गोपियान उन्ह पुनर्जीवित कर दिया था। कोई पूतना बनी थी तो कोई यमलार्जुन। इसी प्रकार कृष्णद्वारा सम्पादित लीलाआको गोपियोने पूर्णतया अनुकरणके द्वारा दिखलाया था। यह विचित्र घटना है।

इसी प्रसगम सुदामाजीकी छोटी कुटिया हटाकर भगवान्ने वहाँ महल खडा कर दिया था। गुरुके यहाँ पढने गये तो उन्होने सान्दीपनि गुरुके मृत पुत्रको पुन जीवित करके गुरुदक्षिणाके रूपमे उन्हे समर्पित कर दिया था। श्रीकृष्णके जावनकी ये लीलाएँ सर्वदा स्मरणीय रहगी। इनका विस्मरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाके विषयमे स्वय कहते हैं—

कृष्ण वदन्ति मा लोकास्त्वयैव रहित यदा।
श्रीकृष्ण च तथा तेऽपि त्वयैव सहित परम्॥

(ब्रह्मवैवर्त ६। ६३)

श्रीकृष्णका जीवन वृन्दावनमे आनेपर वहाँ रहनेवाली गोपियोके साथ इतना हिल-मिल गया कि उसका पार्थक्य करना नितान्त असम्भव है। गोपियोके साथ होनेवाली प्रमलीलाका वर्णन यथार्थत कठिन होता है। राधाके साथ की गयी उनकी प्रेमलीला इतनी मधुरिमामयी है कि उसका यथार्थ वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। दोनो आपसमे मिलकर प्रेमके उत्कर्षको स्वय चखते हैं तथा दूसराको भी चखाते हैं। कृष्णका राधाके लिये जिस लीला-विलासका उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है, वह रागानुगा-भक्तिका चरम उत्कर्ष है। भक्त कवियाने इस आनन्दमयी दशाकी अभिव्यञ्जना अपने काव्योमे बडी सरसताके साथ किया है। इस प्रेमदशाका सुन्दर चित्रण निम्न पक्तियामे देखिये—

घर तजो बन तजों नागर-नगर तजों।
बंसीवट-तट तजों काहू पै न लगिहौं
× × ×
बावरो भयो है लोक, बावरी वहत मोको
बावरी कहैते मै काहू ना बरजिहौ॥
कहै या सुनै या तजो, बाप और मैया तजो
दैया तजो मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं।

माधुर्य-रसोपासनाकी कैसी दिव्य भावविभूति है यह!

प्रेम तथा कामका तारतम्य

प्रेम तथा काममे अन्तर होता है—

प्रेममे त्यागकी भावना प्रबल होती है और काममे स्वार्थकी भावना निहित होती है। नारदजीकी दृष्टिमे प्रेमकी प्रधान पहचान है—'तत्सुखसुखित्वम्'—प्रियतमके सुखम अपनेको सुखी मानना। राधाका जीवन ही कृष्णमय था। काम दूसरेके द्वारा अपनी तृप्ति चाहता है, परतु प्रेम अपने द्वारा प्रेमपात्रकी तृप्ति चाहता है। दोनोका तारतम्य चैतन्य-चरितामृतमे बडे सुन्दर शब्दोमे अभिव्यक्त किया गया है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम प्रेम।
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर
अतएव गोपी गणे नाहि काम गन्ध
कृष्ण सुख हेतु मात्र कृष्णेर सम्बन्ध॥

श्रीकृष्णका राधाके साथ जो लीला-विलास है, प्रेम-प्राचुर्य है, उसकी गम्भीरताका वर्णन कथमपि सम्भव नहीं। दक्षिण भारतके आलवारोकी भक्तिभावनाम राधा-कृष्णके गम्भीर प्रेमभावनाकी जो स्थिति है, उसे यथार्थत समझनेमे भक्त लोग सर्वथा असमर्थ रहते हैं। आलवारोके जीवनका आदर्श इस पद्यमे बडी सुन्दरताके साथ अकित किया गया है—

व्याधस्याचरण ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
ज्ञातिर्वा विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जाया किमु नामरूपमधिक किं तत् सुदाम्नो धन
भक्त्या तुष्यति केवल न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधव॥

तात्पर्य यह कि भक्तोमे दोषाकी सत्ता होनेपर भी माधव उनसे केवल गुणोके कारण ही प्रसन्न नहीं होते, प्रत्युत भक्तिके द्वारा प्रसन्न होते हैं।

श्रीमुरलीमनोहर

वशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्पर किमपि तत्त्वमह न जाने॥

लीला-चिन्तन

[प्रभुके भजनमे मन लग जाय, इसके लिये भौतिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओका दर्शन करना अपेक्षाकृत सरल है, परतु प्रभु लीलाका चिन्तन-मनन सर्व-साधारणके वशकी बात नही है। सगुण-साकार सच्चिदानन्दप्रभुकी लीलाओके चिन्तन-मननसे साधकको एक प्रकारकी समाधि-जैसी अवस्था प्राप्त होती है। उतने क्षणोके लिये बाह्य चेतना सुषुप्त-सी हा जानेके कारण साधकको एक विशेष प्रकारके आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती हे, जो सासारिक अनुभूतियोसे विलक्षण है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते वह साधक स्वय भी भावविभोर हो जाता है भगवन्मय बन जाता है एव लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमे समाहित कर देता हे।

विशिष्ट सतोद्वारा अनुभूत लीलाओको चिन्तन-मननकी दृष्टिसे यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया जा रहा है जिससे 'कल्याण' के पाठक-साधकाको भी यह सौभाग्य प्राप्त हो सके।

सर्वप्रथम यहाँ प्रस्तुत है पूज्य भाईजीक एक निकटस्थ साधुद्वारा पूर्वकालमे लिखित आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन मदनमोहन श्यामसुन्दरकी मधुर-मनोहर बाल-लीलाका चिन्तन।—सम्पादक]

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

जन्म-महोत्सव

व्रजेन्द्रगेहिनी यशोदा नेत्र निमीलित किये मणिमय दीवालके सहार चुपचाप निस्पन्द बठी हे। श्रारोहिणीजीकी आँख भी बद है। अन्य समस्त परिचारिकाएँ भी निद्राभिभूत होकर बाह्यज्ञानशून्य हो रही हैं। इसलिये दिव्य नराकृति परब्रह्मको सूतिकागारम पदार्पण करत तो किसीने नहीं देखा परतु उनके आते हा समस्त सूतिकागार एक अभिनव चिन्मय रसस प्लावित हो गया, वहाँका अणु-अणु उस रसम निमग्न हो गया। व्रजमहिषीकी लीलाप्रेरित प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छा रोहिणी तथा परिचारिकाओकी योगमायाप्रेरित तन्द्रा एव निद्रा भी उस रसक स्पर्शसे चिन्मय भावसमाधि बन गयी।

यशोदाके क्रोडसे सलग्न सच्चिदानन्दकन्द श्रीहरि शिशुरूपम अवस्थित हैं। कदाचित् अनन्त सौभाग्यवश कोई कवि दिव्यातिदिव्य नेत्र पाकर उस क्षणकी शोभाका अनुभव करता अनुभवको वाणीस व्यक्त करनेकी शक्ति पाता तो वह इतना ही कह सकता— मानो चिदानन्द-सुधा-रस-सरोवरमे अभी-अभी एक अद्भुत अपूर्व नवीनतम नीलपद्म प्रस्फुटित हुआ हो—वह अभूतपूर्व अरविन्द, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध भ्रमराने आजतक नहीं पाया था जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर अनिलको आजतक नहीं प्राप्त हुआ था जल जिस अरविन्दको उत्पन्न ही न कर सका था जलके वक्ष स्थलपर खेलनेवाली चञ्चल तरङ्ग जिस पद्मको प्रकम्पित करनेका गर्व न कर सकी थीं जिस कमलको आजतक कहीं किसीने भी नहीं देखा था!'

> अनाघ्रात भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
> रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः ।
> अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
> यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत् ॥*
>
> (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। ११)

अचिन्त्यलीलामहाशक्तिकी प्रेरणासे सर्वप्रथम रोहिणी माताकी आँख खुलती है। वे जान पाती हैं—'यशोदाने पुत्र प्रसव किया है।' परिचारिकाएँ भी जाग उठती हैं पर उस इन्द्रनीलद्युति शिशुका सौन्दर्य कुछ इतना निराला है कि

---

* भाव यह है—अप्रतिम अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूपका जो माधुर्य है वैसा इसमे पूर्वके अवतारोमे भक्तो (भृङ्गै)-ने भी अनुभव नहीं किया। कवीश्वरों (अनिलै)-ने भी भगवल्लीलाका वर्णन करते हुए ऐसी अतुलनीय रूपमाधुरीका विस्तार आजतक नहीं किया भगवान् ऐसे अतुलनीय सुन्दर मधुर मनोहररूपसे प्रापञ्चिक जगत् (नीरेषु)-मे कभी प्रकट ही नहीं हुए। यह रूप त्रिगुणो (ऊर्मीकणभरैः)-से सर्वथा परेका है।

सभी निर्निमेष नयनासे देखती ही रह जाती हैं, किसीको भी समयोचित कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता। व सद्योजात शिशुका मधुर अस्फुट क्रन्दन सुन पा रही हैं, लकिन काष्ठपुत्तलिकाकी भाँति सभी ज्यों-की-त्या, जहाँ-की-तहाँ खडी हैं—आनन्दातिरकसे सबक शरीर सर्वथा अवश हा गय हैं। अवश्य ही सर्वान्तर्यामी विभु अवश शरीरम भी सजग हैं। अत वे ही मानो विलम्ब होत दखकर श्रीरोहिणीजीके मुखसे बाल पड—'अरी! तुम सब क्या दखती ही रहोगी? कोई दोडकर व्रजश्वरका सूचना तो द दो।' सचमुच अन्तर्यामी यदि न बोलते तो पता नहीं, शिशुरूप श्रीहरिको वात्सल्य-रस-पानके लिये कितनी दर और राना पडता, क्याकि रोहिणीजी तो आनन्दम बसुध हैं, उनम समयाचित आदेश देनकी शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी है! अस्तु।

इस आदशन परिचारिकाआक अन्तर्हदयम बहते हुए आनन्दस्रातका तरङ्गित कर दिया। फिर क्या था दूसरे ही क्षण सूतिकागार आनन्द-कोलाहलस मुखरित हा उठा। साथ ही जो करना था, उसम सभी जुट पडी। एक व्रजेश्वरका सूचना दने गाष्ठकी ओर दौडी, एक दाईका बुलान गयी एक उपनन्द-पत्नीको परम शुभ समाचार दकर क्षणाम ही लाट आयी एक सहनाइवालके घर जा पहुँची ओर एक बावली-सी विविध अनर्गल आनन्दध्वनि करती हुई समस्त व्रजपुरमे सूचना देता हुई दोडन लगी। यह सब हा रहा ह परतु सूतिकागारम व्रजेश्वरी तो अभी भी किसी अनिर्वचनीय भावसमाधिम निमग्न हैं।

उपनन्द-पत्नी आया पश्चात् निकटवर्ती पुर-महिलाआका दल नन्द-प्राङ्गणम एकत्र हान लगा। तुमुल आनन्दध्वनिस प्रसूतिगृह ही नहा समस्त प्रासाद निनादित हा उठा। व्रजरानीकी भावसमाधि शिथिल हुई धीर-धीर आँख खालकर वे देखने लगी। कुछ क्षण निहारत रहकर समझ पायीं—गर्भस्थ शिशु भूमिष्ठ हा गया है पर यह क्या? जननीक मुखमण्डलपर आश्चर्य एव भय छा जाता ह। व देखती ह 'शिशुक श्याम अङ्गाम मरा मुख प्रतिबिम्बित हा रहा ह—यह भी भला सम्भव ह?' वात्सल्य-प्रेमवती माताका हृदय अनिष्ट-आशङ्कास काँप उठता ह। व साचने लगती हैं—'निश्चय ही में जब मूर्च्छित थी तब कोई बालापहारिणी यागिनी मायासे मरा वप धारणकर यहाँ आ गयी ह और वह अन्तरिक्षम अवस्थित है, यह उसीकी प्रतिच्छाया है। हाय! हाय! नृसिह! जय नृसिह! रक्षा करो। भयहारी नृसिह-नामके प्रभावस योगिनी नष्ट हो जाय। नृसिह! नृसिह! डाकिनी, चली जा। अन्यथा तू नष्ट हो जायगी।' व्रजमहिषी एक साथ ही आकुल कण्ठस बहुत-कुछ बाल गयीं। इस व्याकुलताने दृष्टिकी एकाग्रता नष्ट कर दी। बस प्रतिबिम्ब तिराहित हा गया। उसी क्षण वात्सल्यरसघनविग्रह यशादाका हृदय-मचित स्नेह-रस उमडा आँखाम आया तथा सामने कोई भी व्यवधान न पाकर अश्रुबिन्दुआक रूपम झरन लगा। भावाभिभूत नन्दरानी कभी अपन सिरका अत्यन्त नीचे झुकाकर कभी बायीं ओर टेढा करके, कभी दाहिना ओर घुमाकर और कभी ऊँचा उठाकर पुत्रक सोन्दर्यका सुख ले रही ह। इससे अश्रुबिन्दु भी ढलककर मालाकर बन गय। मानो माताने एक निर्मल मुक्ताहारकी प्रथम भेट दी हा। यह भेट सर्वथा उपयुक्त ही है, क्याकि देवाराधनका नियम ही है—पहल माला समर्पित हाती ह तब नवेद्य-अर्पण हाता हे। यहाँ भी तो प्रेमदेवकी आराधना ही हा रही हे। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधनाक उपकरण कुछ भी हा पर नियमका व्यतिक्रम क्या हो। इसीलिय माना जननी यशादा भा वात्सल्य-रस-सार स्तनदुग्धका नवद्य चढानके पूर्व अश्रुबिन्दुआकी मनाहर माला अर्पण कर रही हैं—

> ज्ञात्वा जातमपत्यमीक्षितुमथ न्यञ्चत्तनुस्तत्तना-
> वालाक्य प्रतिबिम्बिता निजतनूमन्यति शङ्काकुला।
> गच्छारादिति तन्निरासनपरा पश्यन्त्यमुष्यानन
> मुक्ताहारमिवोपढौकितवती स्नेहाश्रुणो बिन्दुभि ॥
>
> (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। १४)

इधर गादाहनम सलग्न व्रजराज नन्दजीक पास सूचना देने परिचारिका आयी। प्रतिदिनका नियम ह—व्रजन्द्र आधी रात ढलत हा स्वय गाष्ठम चल आत ह गायाकी सँभाल करते ह। आज भी आये थे। अपन इष्टदव नारायणका स्मरण करते हुए एक गायके समीप खडे थे। परिचारिकाने कहा—'महाभाग! आपका पुत्ररतकी प्राप्ति हुई है।' व्रजराजको प्रतात हुआ माना हठात् किसीन कानाम अमृत उडल

दिया—नहीं, नहीं उनके चारों ओर अमृतका महासागर लहराने लगा। वे उसमें निमग्न हो गये, इतना ही नहीं, आनन्दमन्दाकिनीकी प्रबल धारासे उस महासागरमें एक आवर्त (भँवर) बन गया है। व्रजराज उस आवर्तमें फँसकर चक्कर लगा रहे हैं। आनन्दमन्दाकिनी व्रजराजको अपने भुजपाशमें लपटकर घुमा रही है—

प्रविष्ट इवामृतमहार्णवेषु, आलिङ्गित इवानन्दमन्दाकिन्या।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। १८)

व्रजेन्द्र नन्दबाबा बाह्यज्ञान खोकर अन्तश्चेतनाके जगत्में जा पहुँचे। एक अतीत दृश्य सामने आ गया—व्रजराज व्रजरानीसे कह रहे हैं—'प्रिये! स्पष्ट जानता हूँ, मेरे द्वारा सम्पादित इन पुत्रेष्टि आदि अनेक यज्ञानुष्ठानोंकी सफलता असम्भव-सी है, फिर भी परिजनों, गोपबन्धुजनोंका आग्रह देखकर आयोजन स्वीकार कर लेता हूँ। संकल्पके अनुरूप ही तो परिणाम होगा। असम्भव वस्तुके लिये किये गये संकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है? अनुष्ठान आरम्भ करते हुए जब मैं संकल्प करने बैठता हूँ तो चित्त एक अनोखी पुत्रकी कल्पना कर बैठता है। तू ही बता भला मेरे इष्टदेव नारायणसे अधिक सुन्दर त्रिलोकमें, त्रिकालमें भी कोई सम्भव है क्या? असम्भव! सर्वथा असम्भव! पर चित्तभूमिकामें ठीक संकल्पके क्षण ऐसे ही एक, इष्टदेव नारायणकी अपेक्षा भी अधिक अनिर्वचनीय अनन्त असीम सुन्दर बालककी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। ओह! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ—यह बालक तुम्हारी गोदमें तुम्हारे दुग्धस्रावी स्तनोंपर बैठकर खेल रहा है। उसके श्याम अङ्गोंको, चञ्चल सुन्दर दीर्घ नेत्रोंको देखकर मैं सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जाग्रत्। यह सचमुच क्या है मैं निर्णय ही नहीं कर पाया। मनमें आया एक बार तुमसे पूछूँ कि तुम्हारे हृदयमें भी ऐसी ही अनुभूति उस समय होती है क्या'—

श्यामश्चञ्चलचारुदीर्घनयनो बालस्तवाङ्कस्थले
दुग्धागारिपयोधरे स्फुटमसौ क्रीडन्मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत्? किमु जागरः? किमथवत्यत्र निश्चीयते
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि! स्फुरति किं सोऽयं तवाप्यन्तरे?

(श्रीगोपालचम्पू)

व्रजरानी बोलीं—'स्वामिन्! ठीक ऐसी ही कल्पना मुझे भी उस समय होती है। लज्जावश अबतक आपसे न कह सकी।'

बाह्यज्ञानशून्य व्रजराज एक ही क्षणमें इस दृश्यको देख गये। परिचारिका खड़ी रहकर इनकी दशा देख रही थी। उसे क्या पता, व्रजराज क्या देख रहे हैं। वह अन्य गोपोंको लक्ष्यकर बोली—'तुम लोग सभी चलो, गोवत्सोंको छोड़ दो, दूध पी लेने दो, एक बार चलकर उस अद्भुत बालकको तो देखो। नेत्र शीतल हो जायँगे। आजतक ' कहते-कहते परिचारिका वहीं बैठ गयी। नन्दरायको बुलाने आयी है, यह बात वह भूल-सी गयी। उसकी आँखोंके सामने प्रसूतिगृह आ गया, वहीं बैठी-बैठी वह सौन्दर्यनिधि शिशुको देखने लग गयी।

व्रजराजका मन अभीतक उसी भावस्रोतका रस ले रहा है। वे देख रहे हैं—हम लोगोंने एक वर्षतक श्रीनारायणकी उपासना की है। श्रीनारायण स्वप्नमें दर्शन देकर कह रहे हैं—'गोपवर! वह सचमुच तुम्हारा अनादिसिद्ध पुत्र है तुम्हारा संकल्प शीघ्र ही सत्य होगा।' इस घटनाके बाद कुछ दिन बीत गये हैं। आज माघकृष्णा प्रतिपदा है आजकी रजनी एक विचित्र शोभासे सम्पन्न-सी प्रतीत हो रही है। हठात् व्रजरानी तन्द्रासे जागकर कहती हैं—'नाथ! अभी-अभी मैंने स्पष्ट देखा है—ठीक वही बालक तुम्हारे हृदयसे निकलकर मेरे हृदयमें आ बैठा है। एक आश्चर्यकी बात और है। उसके सुन्दर श्याम शरीरके ऊपर एक ज्योतिर्मयी दिव्यकुमारीका मानो आवरण पड़ा हुआ है। पहली दृष्टिमें वह ज्योतिमयी बालिका-सा दीखता है पर किंचित् गम्भीरतासे देखनेपर उसका अप्रतिम सुन्दर श्याम कलेवर स्पष्ट दीखने लग जाता है।' सुनकर व्रजराज आनन्दमुग्ध हो गये हैं। वे स्वयं भी ऐसी अनुभूति कर चुके हैं।

उपर्युक्त घटनावलीका दृश्य व्रजराजके मनोराज्यकी कल्पना नहीं है। वह सर्वथा इसी रूपमें घटित हो चुका है।

परिचारिकाके शब्दाने तो अतीतकी स्मृतिको उद्बुद्धमात्र कर दिया, जिससे वह घटना मानो वर्तमानम अभी-अभी हो रही हे इस रूपम व्रजराजको वह दीखने लगी। जो हो किसी अज्ञात प्रेरणासे नन्दरायके कानोमे अब वह शब्दावली पुन गूँज उठी—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' नन्दरायने आँख खाल दीं तथा वे अविलम्ब प्रासादकी ओर दौड पडे। पीछे-पीछे परिचारिका भी दौडी। पथमें जाते हुए नन्दराय साचते जा रहे हे—क्या सचमुच वही, वही श्याम बालक उत्पन्न हुआ ह? पर हृदयक उमडते हुए आनन्द-प्रवाहम विवेक लुप्त हो गया है, विचारशक्ति आनन्द-तरङ्गोसे तरङ्गित हो रही है—चञ्चल बन गयी है। फिर निर्णय कोन करे? व्रजन्द्र निर्णय नहीं कर सके—

आह्लादेन सम जज्ञ बाल कि कि स एव स ।
एव विवक्तु नन्दस्य नासीन्मतिमती मति ॥

(श्रीगोपालचम्पू)

व्रजराज आकर प्रसूतिगृहके सामने आँगनमे खडे हो जाते ह। प्राणोंकी उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्रका मुख दखूँगा, पर देख नहा पात। प्रसूतिगृहक कपाट खुले हें, पर उपनन्द-सनन्दका परिवार पडासकी गापियाकी भीड कपाटकी अपेक्षा अधिक सुदृढ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्त पुरम आत ता गोपियाँ घूँघटकी आट कर लेती किनार हो जातीं, परतु आज तो आह्लादवश व जानतक नहीं पायीं कि व्रजेश्वर खडे है, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रह ह। नन्दरायक प्राण व्याकुल हो उठ। तत्क्षण ही उन दर्शक गापियाके अन्तरालस कुछ क्षणक लिये एक क्षुद्र छिद्र ज्ञा गया व्रजशको अपन पुत्रका एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हा गयी। अहा! वही ह वहा है! सचमुच वही शिशु आया है! इतनम छिद्रक सामन एक गापी आ गयी छिद्र बद हो गया व्रजराजकी आँख भी बद हो गयीं। पर आश्चर्य है अब माना काई व्यवधान नहीं। गापश स्पष्ट दख पा रहे ह प्रसूति-पर्यङ्कपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है माना अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हा नहीं नहीं समस्त उपनिपद्रूप कल्पलता-श्रेणीका मधुर फल हा—

कुसुममिव चिरतरसमयसमुत्पन्नसुकृतकल्पमहीरुहारामस्य, फलमिव सकलोपनिषत्कल्पलतावितते ।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। १८)

उपनन्दजी नन्दके आनेसे पूर्व ही आ गये थे। वे समयाचित व्यवस्थामे लगे हैं। ब्राह्मणाको बुलानेक लिये दूत भेज चुके हे। अब तोरणद्वारके पास नगारेवालाको समस्त व्रजम घोपणा करनकी बात समझा रहे हैं। गद्गद कण्ठस कह रहे हैं—

नैन भरि देखो नदकुमार।
जसुमति-कूख चद्रमा प्रगट्यौ या व्रज कौ उजियार॥
वन जिन जाउ आजु कोऊ गोसुत अरु गाय गुवार।
अपने अपन भेष सबै मिलि लावौ बिबिध सिगार॥
हरद-दूब-अच्छत-दधि-कुकुम मडित करौ दुवार।
पूरौ चौक बिबिध मुक्ताफल गावौ मगलचार॥

सहनाईवाले सदल-बल आ पहुँचे हे। नगारेवालोने पहला डका लगाया। दूसरे ही क्षण सहनाईवालाने भी मधुरातिमधुर रागिनीकी तान छेड दी। नन्दप्रासादकी मणिमय भित्ति आच्छादन (छत) और स्तम्भाको निनादित करती हुई वह सुरीली ध्वनि समस्त व्रजपुरमे फैलने लगी। यद्यपि इससे पहले भी व्रजम अनेक बार सहनाई बजी थी तथापि आजकी तान तो आज ही बजी हे।

अब ब्राह्मण आ गय है। व्रजेश स्नान करके, अलकृत होकर ब्राह्मणोका प्रणाम करते हैं। मातृकापूजन नान्दीमुख-श्राद्ध सम्पन्न करक ब्राह्मणाको साथ लिये हुए वे सूतिकागारमे आते हैं। विधिवत् जातकर्म-संस्कार आरम्भ हाता है। यह नित्य अजन्माका जातकर्म है। जिनके एक-एक रोमकूपमे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित है प्रत्येक ब्रह्माण्डम एक-एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणम सृजनका कार्य वहन करते है, आज उन्हींका ब्रह्ममुखनि सृत वदमन्त्रासे संस्कार हो रहा है। यह कैसी विडम्बना है! लीलाविहारिन्! तुम्हारी मुनि-मन-माहनकारिणी लीलाका धन्य है! अस्तु, 'भूस्त्वयि' इत्यादि मन्त्राका पाठ करके शिशुक बिम्बविडम्बित अधरोष्ठका किंचित् खालकर सुवर्णसयुक्त अनामिका अँगुलास घृतका एक कण चटाया गया। आयुर्ष्यक्रिया करत समय ब्राह्मण

दवता शिशुक दक्षिण कर्णम 'अग्निरायुष्मान्' इत्यादि जपनेक लिये मुख निकट ले गय। उन्ह प्रतीत हुआ मानो यह कर्ण नहीं किसी अनिर्वचनीय श्यामल तेजालतिकाका नवोन्मिषित पल्लव है। जपत समय ब्राह्मणके सारे शरीरम कम्प हाने लगा। ब्राह्मण आश्चर्यम थे कि सारे अङ्ग काँपने क्या लग, आजतक तो ऐसी घटना नहीं हुई! इसके बाद 'दिवस्परि' इत्यादि मन्त्रस बालकका स्पर्श किया गया, फिर भूमि अभिमन्त्रित की गयी। एक बार बालकका अङ्ग पुन पाछ दिया गया। आगकी अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गयीं। अन्तमे शिशुके कुञ्चितकेशकलापमण्डित मस्तकसे सटाकर 'आपो देवेषु' इत्यादि मन्त्रसे एक जल-पात्र सूतिका-पर्यङ्कके नीचे रखा गया। इस तरह जातकर्म-सस्कार सम्पन्न हुआ—

वाचयित्वा स्वस्त्ययन जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चन तथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। २)

अव दाई नाल-छेदन करती है। किसकी नाल?

जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक सकल बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे मेटन कौं भू भार॥

× × ×

जाकैं नार भए ब्रह्मादिक सकल जोग-ब्रत साध्यौ।
ताकौ नार छीनि ब्रजजुवती बाँटि तगा सौं बाँध्यौ॥

नग पानेका इतना सुन्दरतम अवसर धात्रीके जावनम कभा नहीं आया था। इस विचित्र सुन्दर शिशुका देखकर ही वह सब कुछ पा चुकी थी निहाल हो चुकी थी पर व्रजरानीस प्रणय-झगडा करक नग लेनका सुदुर्लभ आनन्द वह क्या छोडन लगी। लेना ही चाहिये व्रजश-कुलकी धात्री जो ठहरी—

औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ सताप जनम कौ दख्यौ नद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आशा लागी झगरिनि झगरौ कीनौ।

तथा व्रजश्वरी भी कब चूकनवाली थीं—

मन मैं बिहँसि तबै नँदरानी हार हिये कौ लीनौ॥

नन्दरानाक गलका सुशोभित करनवाला मणिमुक्ताका मनाहर मूल्यवान् हार सौभाग्यमया दाईके गलम झूलने लगा। धात्रीने उत्फुल्ल नेत्रास एक बार व्रजश्वरीकी ओर देखा, फिर शिशुकी आर, क्षणाम ही नाल-छेदन सम्पन्न हो गया। अबतक शीलवती व्रजरानीके चित्तम शास्त्रमर्यादाका विचार था, स्तनदानके पूर्व ही जातकर्म-सस्कार हा जाना चाहिय—यह मर्यादा मानो व्रजन्द्रगहिनीक हृदयम बाँध-सी बनी थी, इस बाँधसे वात्सल्यरसकी धाराएँ रुकी हुई थीं। अब मयादा पूरी हा चुकी। व्रजरानी बडी ललकस हाथ बढाती है, अपन हृदय-धनको उठाकर छातीस लगा लेती हैं। द्विदल जवा-पुष्पकी कलिका-सदृश अधरोष्ठको खोलकर उसम अपना स्तनाग्र दे देती ह। वात्सल्य-रस-सुधा-साररूप दूध झर रहा है आर अलौकिक नराकृति परब्रह्म बड प्रेमसे ओर उत्कण्ठास उसका पान कर रह हैं।

इधर व्रजेश्वर ब्राह्मणाको दक्षिणा द रह ह। व्रजराजने उस दिन बीस लाख गाय ब्राह्मणोका दीं। गायाक सींग सुवर्णपत्रास, खुर रजतपत्रासे मढे हैं, प्रत्येकके कण्ठ-देशम बहुमूल्य मणियाकी माला ह। सभी नवप्रसूता ह। व्रजेशकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात पर्वत निर्मित हुए, उन पर्वतापर सघन पत्रावलीकी तरह रत्न बिछा दिये गये फिर पर्वताको सुनहल वस्त्रास सर्वत्र ढक दिया गया। ये पर्वत भी ब्राह्मणाके लिय ही बने थ, उन्ह दान कर दिया गया। व्रजराज जिस समय इस पर्वतदानका सकल्प पढन लगे, उस समय आश्चर्यम भर हुए ब्राह्मण कुछ क्षण अवाक् रह गये।

अब समस्त व्रज सजाया जा रहा है। व्रजका प्रत्येक प्रासाद प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार प्राङ्गण, गृहद्वार-प्राङ्गणका कोना-कोनातक पहले झाड दिया गया, पश्चात् चन्दन-वारिस धो दिया गया फिर सर्वत्र पुष्प-रस-सार (इत्र) छिडक दिया गया। रग-बिरगे वस्त्र एव सुकोमलतम पल्लवाके बदनवार बाँधे गये। चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ यथास्थान फहरा रही है। पुष्पमालाकी लडियाँ मणिमय स्तम्भा एव गवाक्ष-रन्ध्राप बाँध दी गयी ह। प्रत्यक द्वारपर आमपल्लवसमन्वित जलपूर्ण मङ्गलघट ह। हरिद्रा, दूब अक्षत, दधि आर कुकुमसे प्रत्येक द्वार-दश चित्रित हे। स्थान-स्थानपर मातियाक चोक पूर गय हैं।

व्रजशके ऐसे सजे हुए तारण-द्वारपर एक आर ऊँच आसनपर विराजमान ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मङ्गलवचनाका पाठ कर रहे हे। उनस कुछ दूरपर सूत पुराणका पारायण

कर रहे हैं। उनसे कुछ हटकर मागध व्रजेश-वशावलीका कीर्तन कर रहे हे। उनसे सटी हुई बदीजनाकी पक्तियाँ है, वे मधुर स्वरम व्रजेशकी स्तुति गा रहे हैं। ब्राह्मणाके ठीक सामने दूसरी ओर सगीतज्ञोका दल है, वे वीणाके स्वरम स्वर मिलाकर सुमधुर रागिनी अलाप रहे हैं। उनस कुछ दूरपर भेरी बजानेवालोका दल है। इनसे कुछ हटकर दुन्दुभियाँ बज रही हे। इनसे कुछ दूरपर बदीजनाके ठीक सामने सहनाईवाले मधुर तान छेडते हुए रसकी वर्षा कर रह हे। बीचम राजपथ हे, जिसपर गाओ, गापा और गापाङ्गनाओकी भीड उमडी चली आ रही है।

गो, गोवत्स आदिको हल्दी-तेलसे रँगकर, गैरिक आदि धातुआस चित्रितकर मयूरपिच्छ एव पुष्परचित माला पहनाकर, सुवर्णभृखलासे मण्डित करके तथा स्वय बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण, अँगरखे, पगडीसे विभूषित होकर हाथोम, काँवरोमे, सिरपर घी, दही, नवनीत, आमिक्षा (फटे हुए दूधसे बने द्रव्य—छेना आदि)-से पूर्ण घडे लिये व्रजके समस्त गाप नन्दभवनकी ओर आ रह हैं। उनके पीछे दौडती हुई गापाङ्गनाएँ आ रही है—

सुनि धाईं सब ब्रज नारि सहज सिँगार किय।
तन पहिरे नूतन चीर काजर नैन दिये॥
कसि कचुकि तिलक लिलार सोभित हार हिये।
कर-ककन कचन-थार मगल-साज लिये॥
सुभ स्त्रवननि तरल तरौन बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस मानौ मेघ फुही॥
मुख मडित रोरी रग सैंदुर माँग छुही॥
उर अचल उडत न जानि सारी सुरँग सुही।
ते अपनैं-अपनैं मेल निकासीं भाँति भली।
मनु लाल मुनैयनि पाँति पिंजरा तोरि चली॥
गुन गावन मगल-गीत मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि फलीं कमल-कली॥

गापाङ्गनाएँ गोपासे थीं पीछे पर पहुँचीं पहले—

पिय-पहलै पहुँचीं जाइ अति आनद भरीं।

गापाङ्गनाआका स्वागत रोहिणी एव उपनन्द-पत्नीने किया। पश्चात् वे सब क्रमश सूतिकागारम गयीं। शिशुका श्रीमुख देखकर अनुभव करन लगीं कि स्रष्टाने नेत्राकी सृष्टि इस नन्दपुत्रको निहारनेके लिये ही की है, आज वह नत्र-निर्माणका फल प्राप्त हो गया—

अनन्तर प्रविश्य सूतिकाभवनमालोक्य च तमभिनव नव नयननिर्माणस्य फलमिव।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। २२)

गोपाङ्गनाएँ नन्दनन्दनको आशीर्वाद देन लगीं—

चिरजीवौ जसुदा-नद पूरन काम करी।
धनि दिन है धनि यह राति धनि धनि पहर घरी॥
धनि-धन्य महरि कौ कोख भाग-सुहाग भरी।
जिनि जायौ ऐसौ पूत सब सुख-फरनि फरी॥
थिर थाप्यौ सब परिवार मन की सूल हरी॥

पाहि चिर व्रजराजकुमार।
अस्मानत्र शिशो। सुकुमार।

(श्रीगोपालचम्पू)

'रे सुकुमार बालक। रे व्रजराजकुमार। तू बडा होकर चिरकालतक हम लोगाकी रक्षा कर।'

बाहर समस्त व्रजगोपोकी मण्डली गायासहित आ पहुँची है—

सुन ग्वालनि गाइ बहोरि बालक बालि लए।
गुहि गुजा घसि बनधातु, अगिनि चित्र ठए॥
सिर दधि माखन के माट गावत गीत नए।
डफ-झाँझ-मृदग बजाइ सब नँद-भवन गए॥

नन्दजी सबसे यथायोग्य मिलते है। आनन्दम उन्मत्त-से हुए गोप हल्दी-दही छींटते हुए विविध भाव-भङ्गिमाओका प्रदर्शन कर रहे हे—

मिलि नाचत करत कलाल, छिरकत हरद-दही।
मानु बरषत भादौं मास नदी घृत-दूध बही॥
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद मगन गुवाल काहूँ बदत नहीं॥
इक धाइ नद पै जाइ पुनि पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहिं हँसि-हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि देत न सक करैं।
एक दधि रोचन अरु दूब सबनि के सीस धरैं॥

गोपाका आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा है। बूढे व्रजेन्द्रको भी उन सबन अपने बीचमे ले लिया है और इतना दूध दही, घृत और नवनीत ढरकाया है कि नदी-सी बह चली है। दूध-दहीके अनेक गम्भीर गर्त बन गये हैं। उनमे लोटते हुए गोपोका शरीर सर्वथा उज्ज्वल दीखने लगा है, मानो ये गोप दुग्धसागरकी चञ्चल तरङ्गे हो।

व्रजेन्द्र कभी तो इस दूध-दहीकी नदीम स्नान करने आते हैं कभी रत्नराशि लुटानेके लिये द्वारदेशपर खडे हो जाते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, कोई भी विद्योपजीवी आकर खडा हुआ कि नन्दराज रत्नोकी झोली, वस्त्रोकी गठरी और गोधनकी टोली लेकर उसक पास जा पहुचे, सदाके लिये उसका मँगतापन मिटा दिया। व्रजेश-कुलके सूत, मागध, बदीजन आज अयाची बन गये—इसमे तो कहना ही क्या है।

व्रजेन्द्र जो इतनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। उनका भडार ही अब अनन्त असीम बन गया हे, क्योकि सारे विश्वकी समस्त सम्पत्ति जिनकी चरणसेविका लक्ष्मीजीकी आशिक विभूति है, वे स्वय आज पुत्रके रूपमे व्रजेशके घर पधारे हैं। प्राकृत भडारकी सीमा होती है, उसमेस कुछ निकालनपर उतना अश कम हो जाता है, उतन अशकी पूर्णता अपेक्षित होती हे। पर व्रजेशका भडार प्राकृत नहीं, वह ऐसा है कि उसमसे जितना वे निकालगे, उतना ही बचा रह जायगा। अपनी जानम सम्पूर्ण निकाल लगे तो भी उसम सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये उनके देनेम आज विराम नहीं, हिसाब नहीं, दते ही चले जा रहे हैं। हाँ दते समय व्रजेशके वात्सल्य-प्रमपरिभावित मनम निरन्तर केवल एक भावना है—

अनेन प्रीयता विष्णुस्तेन स्तान्मे सुत शिवम्।

(श्रीगोपालचम्पू)

'इस दानसे मेरे इष्टदेव नारायण प्रसन्न हो उनकी प्रसन्नतासे मेरे पुत्रका कल्याण हो।'

भीतर, अन्त पुरम हरिद्रा-तैलकी कीच मची है। गोपाङ्गनाएँ परस्पर एक-दूसरेपर हल्दी-तेल छिडक रही हैं। छिडकती हुई बाहर आती हैं और व्रजेन्द्रकी एव गोपोकी दशा देखकर आनन्दमे निमग्न हाकर गाने लगती हैं—

पश्य सखीकुल! गोकुलराज
पुत्रोत्सवमनु खेलाभाजम्।
उदधिप्रभदधिसम्प्लवदेश
परितो घूर्णितमन्दरवेशम्॥
मध्यधटीफणिराजे कृष्ट
हृद्यसुहृद्भिरतीव च हृष्टम्।
मध्ये मध्ये दुर्लभदान
ददत दधत विस्मयभानम्॥
एक पुनरलमभवदपूर्वं
अजनि विधुर्वत यदित पूर्वम्॥*

(श्रीगोपालचम्पू)

आज व्रजेश्वरने सबसे अधिक सम्मान श्रीरोहिणीजीका किया है। आजका सम्मान रोहिणीने स्वीकार भी कर लिया है। इससे पूर्व रोहिणीने कभी नन्द-घरके सुन्दर वस्त्र सुन्दर आभूषणाकी ओर ताकातक नहीं था। वे सदा पतिवियोग, पति-बन्धनसे मन-ही-मन खिन्न रहती थीं। पर आज यशोदानन्दनका मुख देखते ही रोहिणीका रोम-रोम आनन्दमे निमग्न हो गया। इसीसे वे नन्दप्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणासे सुसज्जित हाकर पुर-महिलाआके सत्कारमे लगी हुई हैं।

दिन बीत चुका है। पर गोप-गोपाङ्गनाआका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। अभी भी उसी नृत्य उसी आनन्द-कोलाहलसे नन्द-प्रासाद मुखरित हो रहा है। एक वृद्ध

* सखियो! गोकुलेश्वर नन्दजीको तो देखो। पुत्रोत्सवके आनन्दमें निमग्न होकर आज वे कितने चञ्चल कितने कौतुक-परायण हो रहे हैं। बहनो! यह सामनेका दृश्य देखकर मुझे तो सागर-मन्थनकी स्मृति हो रही है। देखो तो सही दहीसे भरा हुआ यह व्रज सागर-जैसा हो गया है और उसमे मन्दर-पर्वत-से होकर नन्दजी सर्वत्र घूम रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र घृत-दधिसे चिकना होकर फूलकर ठीक वासुकि नाग-जैसा बन गया है। उसे पकडकर उनके प्रिय सुहृद्जन उन्हे इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और व अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इतना ही नहीं जैसे समुद्र-मन्थनके समय अनेक रत्न निकल रह थ मन्दर-पर्वत सागरके रत्नाको निकाल-निकालकर फक रहा था वैसे ही ये नन्दजी बीच-बीचमे रत्नराशि लुटाने लग जाते हैं। अहा! आज इनकी कैसी आश्चर्यमयी शोभा है। पर बहनो! क्या बताऊँ आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं इस सागर-मन्थनमे तो एक अपूर्व बात हुई है। सर्वत्र प्रसिद्ध है—चन्द्रमा मन्थन प्रारम्भ हानपर—सागर मथे जानेपर निकले थे पर नन्दका यह शिशु-चन्द्र ता मन्थन प्रारम्भ होनक पूर्व ही प्रकट हा गया।

बन्दी भी दिनभरसे अतिशय सुमधुर कण्ठस गाता रहा है। दिनभर उसके नेत्रासे अविरल अश्रुधारा बहती रही है। अब सूर्य अस्ताचलको जा रहे है, पर वह अब भी पीली पगडी बाँधे सहनाईवालेके स्वरमे स्वर मिलाकर गा रहा है—

आज कहूँ ते या गोकुल म अद्भुत बरषा आई।
मनिगन-हेम-हीर-धारा की ब्रजपति अति झरि लाई॥
बानी बेद पढत द्विज-दादुर हिऐ हरषि हरियार।
दधि-घृत-नीर-छीर-नाना रँग बहि चले खार पनारे॥
पटह-निसान-भेरि-सहनाई महा गरज की घारे।
मागध सूत बदत चातक-पिक, बोलत बदी मोरे॥
भूषन बसन अमोल नदजू नर-नारिन पहराए।
साखा-फल-दल-फूलन माना उपवन झालर लाए॥
आनँद भरि नाचत ब्रजनारी पहिरे रँग रँग सारी।
बरन-बरन बादरन लपटी बिद्युत न्यार न्यारी॥
दरिद्र-दवानल बुझे सबन के जाचक-सावर पूरे।
बाढ़ी सुभग सुजस की सरिता दुरित-तारतरु चूरे॥
ऊल्हौ ललित तमाल बाल एक भई सबन मन फूल।
छाया हित अकुलाय गदाधर तक्यौ चरन कौ मूल॥

शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमे स्वर्णवृष्टि

शिशिरका ब्राह्ममुहूर्त है। दो घडी पश्चात् माघशुक्ला चतुर्दशीका प्रभात होगा। इसके साथ व्रजेन्द्रनन्दनक अन्नप्राशनका उत्सव-समारोह भी आरम्भ हागा माना इसकी सूचना प्रात -समीरको भी मिल चुकी है। इसीलिये वह गवाक्षरन्ध्राक पथसे आया आकर प्रथम पर्यङ्कशायिनी व्रजेन्द्रमहिषीके फिर उनके वक्ष स्थलपर विराजित निद्रित व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रके पादारविन्द उसन स्पर्श किये। स्पर्शस कृतार्थ हाकर राशि-राशि कुन्दपुष्पासे सचित परिमल अपने दुकूलसे निकालकर शयनागारमे सर्वत्र बिखर दिया। उत्सवके उपलक्षम अपनी क्षुद्र भेट चढा दी तथा फिर अतिशय शीघ्रतासे आनन्दातिरकवश चञ्चल होकर 'झुर-झुर' शब्द करता हुआ अन्य व्रजवासियोको जगाने चला गया।

व्रजरानी ता जागी हुई ही हैं। वे सारी रात क्षणभरक लिये भी सा नहीं सकी हे फिर भी रात्रि कब कैसे समाप्त हो गयी यह उन्हाने नही जाना। जानतीं कैसे ? व तो अनेक सुखमय मनोरथाकी कल्पनाम विभोर थीं नीलमणिका भावी अन्नप्राशन प्रत्यक्ष वर्तमान-सा बनकर नेत्रोंम भरा था। व उस दृश्यम अपन नीलमणिम तन्मय हा रही थीं किंतु प्रात -समारक स्पशस जननीक प्रशान्त वात्सल्यसिन्धुम एक कम्पन हुआ। उसम एक लहर उठ आयी। जननाक कृष्णमय मन-प्राण इस लहरीसे सिक्त हा गये एव तत्क्षण उनम स्फुरणा हुई—कहीं मर नीलमणिके अङ्ग अनावृत हा शिशिरका शातल वायुम उनम ठढ लग गया तो ? बस व्रजरानी तुरत उठ बैठीं एव वस्त्र सँभालन लगीं। वास्तवम ही यशोदानन्दनके श्रीअङ्गोसे कहीं-कहीं वस्त्र हट गये थे। जननी उन्ह गोदम लेकर वस्त्रोस ढँकने लगीं। इसी समय उनका ध्यान नीलमणिके वक्ष स्थलकी ओर गया, वक्ष -स्थलपरका श्रीवत्सचिह्न मणिदीपक प्रकाशमे स्पष्ट चम-चम कर रहा था, किंतु जननाको पुन भ्रम हो ही गया। इससे पूर्व भी जननी कई वार भ्रमित हो चुकी हैं। इस भ्रमका प्रारम्भ तो प्रथम स्तनदानके समय हुआ था। उस समय जातकर्मके पश्चात् जननी स्तन्यपान करा रही थीं। पुत्रके प्रत्यक अङ्गका सौन्दर्य निरखती हुई जननीने हृदयकी ओर देखा था। हृदयक दक्षिण भागमे रोमावलीका अनादिसिद्ध श्रीवत्स नामक चिह्न अङ्कित था ही। उसकी शोभा भी अद्भुत ही था मानो मृणालतन्तुआका चूर्ण एकत्र हो गया हा। वैसा ही सुन्दर वैसा ही सुस्निग्ध। किंतु श्रीवत्सको दखकर जननीने तो यह समझा था—म शिशुको स्तन्य पिला रही हूँ, मरे स्तनक्षरित दुग्धकण ही पुत्रके कपोलपर होते हुए वक्ष स्थलपर आ ढलके हैं उन दुग्धकणासे ही यह चिह्न निर्मित हा गया हे। इतना ही नहीं जननी सुकोमलतम सूक्ष्म वस्त्राञ्चलसे धीरे-धारे उस पाछ देनेका प्रयत्न करने लगी थीं किंतु चिह्न मिटता न था। जब वस्त्रसे उस चिह्नका मार्जन न कर सकीं तब व साचने लगी थी कि सम्भवत यह किसी महापुरुषका लक्षण हो—

वक्षसि दक्षिणभागे मृणालतन्तुक्षोदसोदरसुभग-सुस्निग्धश्रीवत्साख्यरामराजिलक्ष्म लक्षयित्वा स्तनरस-कणनिपातविन्यासविशेषोऽयमिति पुनरपि मृदुतर-

चीनसिचयाञ्चलनापसारयन्ती यदा तत्रापसरति, तदा किमपीद महापुरुषलक्षणमिति चिन्तयन्ती।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू २। १७)

इसी तरह आज पुन पूर्वकी भाँति जननीको एक क्षणके लिय भ्रम हो जाता है कि निद्रित नीलमणिक अधरासे क्षरित दुग्धकण ही यहाँ आकर इस रूपमे परिणत हो गये हे। अवश्य ही इस बार व मार्जन करने नही जाता, क्याकि तुरत ही अन्तर्वृत्ति सचत कर देती है। जननी अपनी भूलपर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वस्त्रासे शीत-निवारणकी उचित व्यवस्था करक पुत्रको हृदयस लगा लेती हैं।

सूर्योदयम अभी विलम्ब है किंतु गोपसुन्दरियाक दल-के-दल नन्द-प्राङ्गणम एकत्र हाने लगे। घडीभर दिन चढते-चढत ता नन्दभवन गोप-वनिताआसे सर्वत्र परिपूर्ण हो गया। नन्दभवनमें पुर-महिलाआके लिय समय-असमयकी रोकथाम ता है नहीं तथा व्रजपुरम नन्दनन्दनक अन्नप्राशनमुहूर्तकी सूचना फैल चुकी है। इसलिय आज यमुना-स्नान करके कितनी ही गोपसुन्दरियाँ तो घर भी नहीं गयीं सीधे नन्दभवनम ही चला आयीं। जिनके अतिशय अल्पवयस्क पुत्र हैं, उन्ह ही आनेमे कुछ विलम्ब हुआ, पर आया सब। छाटे शिशुआका गादम लिये किंचित् वयस्क पुत्राकी अँगुली पकड मङ्गलगीत गाते आती हुइ गापसुन्दरियाकी मधुर कण्ठध्वनिसे सुमधुर झन्-झन्, झिन्-झिन्, रुन-झुन रुन-झुन, कङ्कण-किङ्किणी-नूपुरध्वनिमे राजपथ तथा राजपथक दोना आर स्थित उत्तुङ्ग प्रासाद प्रतिशब्दित—प्रतिध्वनित होन लगे। उन गोपाङ्गनाआकी प्रत्यक भावभङ्गीसे एक अद्भुत वात्सल्य अप्रतिम मातृभावका निर्झर झरता जा रहा ह।

उपनन्दजीने आदेश द रखा है कि आज मध्याह्नतक गाचारण स्थगित रह। व्रजेन्द्रनन्दनक अन्नप्राशनक पश्चात् समय रहनेपर गाय निकटवर्ती वनम कुछ समय घुमा ली जायँ। अत गोपमण्डली भी शीघ्रतासे गायाका दुहकर उनक सामन प्रचुर हरित-तृण डालकर तथा स्वय स्नान आदि ममापकर, विविध वशभूषासे अलकृत हाकर नन्दभवनकी आर उमड पडती है। उनकी पत्नियाँ माताएँ ता पहल ही चली गयी हैं। गायाकी व्यवस्था करनेक लिय य रक थे। उनकी व्यवस्था तो इन्हान कर भी दी। किंतु शीघ्र-से-शीघ्र नन्दभवन पहुँचनेकी नेत्रास नन्दनन्दनका जी भरकर निहारनकी प्रबल उत्कण्ठावश दूधकी उचित व्यवस्था य नहीं ही कर सके। दुहे हुए दूधसे पूर्ण भाण्डाको घर पहुँचानतकका भी धैर्य इनम न रहा। कुछ ही भाण्ड घर आय अधिकाश गोष्ठम ही रह गये और तो क्या बहुत-सी गायें बिना दुह ही रह गयी। गावत्साको यो ही उन्मुक्त कर दिया गया। चाकडी भरते हुए बछडे अपनी माताआसे जा मिल। इसी अवस्थामें उन्ह छाडकर गोप द्रुतगतिस नन्दालयकी ओर चल पडे।

यथासमय व्रजरानी नित्यकमस निवृत्त होकर पुत्रका गोदमे लिये आँगनम चली आता है। गापाङ्गनाआकी अपार भीड उन्हे चारा आरस घेर लेती है। निकटतम कुटुम्बियाको नन्दरानीने दासी भेजकर निमन्त्रित किया है। व सब आ गयी हैं। व्रजरानी एक बार भडारकी आर जाती हैं। वहाँ पुत्रको गादम लिये श्रीरोहिणीजी सारा व्यवस्था कर रही हैं—

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कचन के थार भराए, भाँति भाँति के बासन॥

श्रीराहिणीजीका यह परिश्रम देखकर व्रजरानाका आँखाम स्नेह-जल भर आता ह। सजल नेत्रास व कुछ क्षण रोहिणीजीको ओर दखकर फिर उन निमन्त्रित कुटुम्बी व्रजवधुआकी आर दखने लगता ह। इतना सकत पयास है। व शतश व्रजवधुएँ तुरत ही पकवान बनानम जुट पडता है—

नद घरनि ब्रज बधू बुलाईं ज सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति काउ घृत-पक षटरस क बह भाँति॥
बहुत प्रकार किए सब व्यजन अमित बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल कामल-सुठि-सुन्दर दखि महरि मन मान॥

व्रजन्द्रका उत्साह ता दखन याग्य हा ह। उनकी याजना एसी है कि उनक पुत्रका अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एव भविष्यक इतिहासम अद्वितीय बन जाय। नन्द-प्रासादम सलग्न कालिन्दीतीरपर्यन्त विस्तीर्ण सुमनाहर नन्दाद्यानम व्रजन्द्रन एक नयी सृष्टि-सा रच दा है। उस सुरम्य उद्यानम नौ छाटा-छाटी नदियाका निर्माण हुआ ह। जलकी न

नहीं, विभिन्न भोज्यरसोंकी। पहली नदी दधिकी है, उसमे दधिकी धवल धारा बह रही हे, दोनो तट दधिसे भरपूर ह। दूसरी गोदुग्धकी नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा हे। तीसरी नदी घृतकी है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है, दोनां किनारे घृतसिक्त हो गये है। चौथी गुडकी नदी है, पीताभ गुडकी यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है—मानो सचमुच ही किसी नदीकी पीताभ जलधारा हिमके सयोगसे जम गयी हा, एसी इस गुडकुल्या (गुडकी नदी)-की शोभा है। पाँचवीं तैल-नदी प्रवाहित हो रही ह, मन्द मन्थरगतिसे धीरे-धीरे यमुनाकी ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण ह यह मधुकुल्या है, इसम मधुधारा बह रही हे। सातवी नवनीत-नदी है, उज्ज्वल हिमपिण्डकी भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। इसका प्रवाह परिलक्षित नहीं हाता। इन सातके अतिरिक्त तक्र-नदियाँ भी है। ये कई हैं तथा द्रुतगतिस झर-झर करती हुई यमुनाकी आर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करादक नदियाँ है इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधाराएँ अत्यन्त प्रखर गतिसे उद्यानकी परिक्रमा कर रही ह।

इन नदियाक मध्यवर्ती देशम उज्ज्वल प्रस्तरखण्डास पटी हुई भूमिपर व्रजन्द्रन शालितण्डुलाक एक शत एव पृथुकतण्डुला (चिउरा)-क एक शत पवत बनवाय हैं। वहीं सात लवण-पर्वताका भी निर्माण करवाया है। इसी तरह शर्कराक सात एव लड्डूक सात पर्वत निमित हुए हें। परिपक्व सुमधुर फलाक सालह पर्वत रचे गये हैं। यवचूर्ण (जौक आट) तथा गाधूमचूण (गहूँके आट)-क भी अनक पवत बन हैं। मादकाका पर्वत निर्मित हुआ हे। विशप कौशलस निमित अत्यन्त सुस्वादु, एक प्रकारकी पूरियाक अनक पवत खड किय गय हैं। इन पूरियाके पवतापर राशि-राशि सुसस्कृत लड्डू रख दिय गय हैं। इनस कुछ हटकर व्रजन्द्रन सात कौडियाक पवत बनवाय हैं। वहींपर सुवासित जलयुक्त कर्पूरादिमिश्रित चन्दन-अगुर-कस्तूरी-कुकुम समन्वित ताम्बूलाका अत्यन्त विस्तृत परतु द्वारहीन एक मन्दिर निर्माण करवाया है। विभिन्न जातिका रत्नराशि एव सुवर्ण, सुरम्य मुक्ताफल तथा प्रवालपुञ्ज ढेर-के-ढेर यथास्थान रख दिये गये हे। रग-बिरगे सुन्दर वस्त्र एव सुन्दर आभूषणाके स्तूप लग गये हैं—

दधिकुल्या दुग्धकुल्या घृतकुल्या प्रपूरिताम्॥
गुडकुल्या तैलकुल्या मधुकुल्या च विस्तृताम्।
नवनीतकुल्या पूर्णा च तक्रकुल्या यदृच्छया॥
शर्करोदककुल्या च परिपूर्णा च लीलया।
तण्डुलाना च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्॥
पृथुकाना शैलशत लवणाना च सप्त च।
सप्त शैलाञ्छर्कराणा लड्डुकाना च सप्त च॥
परिपक्वफलाना च तत्र षोडश पर्वतान्।
यवगोधूमचूर्णाना पक्वलड्डुकपिण्डकान्॥
मोदकाना च शैल च स्वस्तिकाना च पर्वतान्।
कपर्दकानामत्युच्च शैलान् सप्त च नारद॥
कर्पूरादिकयुक्ताना ताम्बूलाना च मन्दिरम्।
विस्तृत द्वारहीन च वासितोदकसयुतम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम्।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च॥
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदान्वित।
नानाविधानि चारूणि वासासि भूषणानि च॥
पुत्रान्नप्राशने नन्द कारयामास कौतुकात्।

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णजन्मखण्ड अ० १३ १५२—१६२)

जिस आँगनम श्रीकृष्णचन्द्र अन्नप्राशन करग उस भी व्रजेन्द्रने स्वय उपस्थित रहकर सजाया है। सुमार्जित चन्दनवारिस सर्वत्र सिक्त विशाल सुन्दर प्राङ्गणम चारो आरस ऊँच-ऊँच सघन कदलीस्तम्भ खड कर दिय गये हैं। कदलास्तम्भापर यथास्थान सूक्ष्म वस्त्राम ग्रथित आम्र नवपल्लव टँग हैं। स्थान-स्थानपर फल-पल्लवसमन्वित चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पपरिशाभित अनक मङ्गलकलश रख हैं। कराशाक समाप पुष्प-समूहाक चित्र-विचित्र वस्त्राक ढेर लग हैं। ब्राह्मणाक विराजनक लिय यथास्थान आसन एव उनका पूजाक लिये मधुपर्कपूरित अनक पात्र रख हैं तथा शत-शत स्वर्णसिहासन दानक लिय सजा सजाकर रख हुए हैं।

यह सारी व्यवस्था व्रजेन्द्रने केवल तीन पहरम की है। असख्य गोपसेवकाको लेकर आधी रातके समय व्रजेश्वरने कार्य प्रारम्भ किया था। पहर दिन चढते-चढते सारी व्यवस्था पूर्ण हो गयी है। अब इधर रेवती नक्षत्र भी प्रारम्भ हो चुका है। शुभ योग भी आ गया है। आज चन्द्र तो मीन लग्नम अवस्थित हे ही। ब्राह्मण भी कदलीमण्डपम पधार गये हैं। अत अविलम्ब क्रिया आरम्भ हो जाती है।

शास्त्र-विधिका अनुसरण करते हुए व्रजेन्द्र, व्रजरानी दोना ही पुन मङ्गलस्नान करते ह। स्वय निवृत्त होकर फिर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको स्नान कराती हैं पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर आसनपर नन्ददम्पति विराजते हैं। उस समय व्रजरानीकी गोदम श्रीकृष्णचन्द्रका देखकर व्रजेन्द्र कुछ क्षणके लिये तो सब कुछ भूल जाते हैं। याजक भूदेवाकी भी यही दशा होती है। मङ्गलगान करती हुई व्रजाङ्गनाएँ भी श्रीकृष्णचन्द्रकी वह दिव्य छबि देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। ब्राह्मण कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर आचमन स्वस्तिवाचन दीपप्रज्वालन अर्घ्यस्थापन आदि सम्पन्न कराते ह, पर उनकी मुद्रा ऐसी हा गयी है मानो किसी गाढ समाधिस अभी-अभी उठे हा। व्रजेन्द्र भी नान्दीश्राद्ध आदि सभी कर्मोका समाधान करते जा रहे हैं—किंतु इस तरह, जैसे उनके हाथोसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा दे रही हो स्वय वे इस शरीरसे कहीं अलग चल गय हा।

शास्त्रीय कमकाण्ड पूरा होते ही एक साथ दुन्दुभि ढक्का पटह, मृदङ्ग, मुरज आनक, वशी, सनहनी, कास्य आदि वाद्य बजने लगते हैं। उमगम भरे वन्दीजन वाद्य-स्वरम अपना स्वर मिलाकर गाने लगते हे। व्रजाङ्गनाएँ ता सुमधुर कण्ठसे पहलेसे ही गा रही है। इनके अतिरिक्त इसी समय आकाशपथम विद्याधरियाँ नृत्य करने लगती हैं और गन्धर्व गान करन लगते है। विशुद्ध-प्रेमरस-भावितचित्त व्रजवासी आश्चर्यस आकाशकी आर दखत हैं, नृत्य-गानका अनुभव करते हैं, पर किसाको दख नहीं पाते। वे साचते हैं—सम्भव हे हमार ही नृत्यगानकी प्रतिध्वनि हा अथवा अभी-अभी व्रजन्द्रनन्दनके अन्नप्राशन-सस्कार-सम्बन्धी दी हुई आहुतिका ग्रहण करनके लिय अन्तरिक्षम जा दववृन्द पधारे थे, उन्हीका नर्तन-गायन हो, अस्तु!

अब तुमुल आनन्द-कोलाहलसे पुलकित होते हुए व्रजन्द्र अपने पुत्रके अधरसे अन्नका स्पर्श कराते ह—

> घरी जानि सुत-मुख-जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
> महर बोलि बैठारि मडली आनँद करत विनोद॥
> कनक-थार भरि खीर धरी लै तापर घृत-मधु नाइ।
> नँद लै लै हरि मुख जुठरावत नारि उठीं सब गाइ॥
> षटरस के परकार जहाँ लगि लै-लै अधर छुवावत।
> बिस्वभर जगदीस जगत-गुरु परसत मुख करुवावत॥

जिस समय व्रजेन्द्र तीक्ष्ण, कटु, अम्ल लवण रसाका कृष्णचन्द्रके अधरोसे स्पर्श करात हैं उस समय वे अभिनव बाल्यमाधुरीका प्रकाश करते हुए अपने हाठ सिकोडने लगते हैं। ओह! जो अपने एक क्षुद्र अशम स्थित अनन्त ब्रह्माण्डको क्षणभरम चूर्ण-विचूर्णकर विलीन कर लेते है, ऐसे अनन्त महाप्रलय, महाभोजनके समय भी जिनम विकृति नहीं आती उनका कणिकामात्र तीक्ष्ण कटु आदि रसास मुख करुआना—मुख विकृत करना कितना आश्चर्यमय है, यह कितना मोहक लीला-विलास है!

व्रजेन्द्रको भी ऐसा प्रतीत हुआ कि एस सुकोमलतम पाटलदलसदृश अधरोपर तीक्ष्ण, कटु रस रखना अत्याचार है, महान् क्रूरता अत्यन्त नृशसता है। इसलिये उन्हान अतिशय शीघ्रतासे जल लेकर श्रीकृष्णके अधरोंका पोंछ दिया पाछकर व्रजरानीकी गोदम उन्ह रख दिया।

> तनक-तनक जल अधर पोंछि कै जसुमति प पहुँचाए।

व्रजरानी गोदमे लेकर चाहती हैं कि इस छाडँ ही नहीं, हृदयसे लगाय ही रहूँ पर अन्य व्रजाङ्गनाआकी व्याकुलता देखकर वे द्रवित हो जाती हैं। पासम खडी यशादानन्दनको हृदयपर धारण करनक लिये अत्यन्त उत्कण्ठित एक गोपीकी गादम व पुत्रको रख दती हैं। फिर ता क्रमश गोदम ल-लेकर मुख चूम-चूमकर गापसुन्दरियाँ कृतार्थ हा जाती हैं—

> हरषवत जुबती सब लै-लै मुख चूमतिं उर लाए।

इन सब कामास निवृत्त हाकर व्रजन्द्र अगणित ब्राह्मणाको भाजन कराते हैं। दक्षिणाका ता कहना ही क्या है। इतनी प्रचुर

दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणको मिली है कि वे ढो नहीं सकते। इनके अतिरिक्त कितना दान हुआ, इसकी इयत्ता करना सम्भव नहीं। वे सब अन्नादिके पवत भी वितरण कर दिये गये। दधि-दुग्धकी नदियोंके लिय तो कोई प्रतिबन्ध ही नहीं है। जो चाह, जितना चाह, उसमसे ले सकता है। बहुताने लिये भी, पर वह तो नदी है, चतुर्थांश भी रिक्त न हो सकी। इसलिय वह आनन्दोन्मत्त हुए गापोकी, गापबालकाकी क्रीडास्थला बन गयी। उसमें कूद-कूदकर वे स्नान करने लगे। व्रजन्द्रने साच-समझकर ही इनका निर्माण कराया था। व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमे दूध-दही बिखेरकर गोपाने दधि-दुग्धकी धारा बहा दी थी, गर्त बना दिये थे। आज व्रजेन्द्रने उनका आनन्द-वर्द्धन करनेक लिय अपनी ओरसे दधि-दुग्ध आदिकी नदियाँ बहा दी।

ब्राह्मण-भाजन अतिथि-सत्कार समाप्तकर गोपकुलके साथ व्रजेन्द्र भोजन करन बेठते हे—

महर गाप सबही मिलि बैठे पनबारे परसाए।
भाजन करत अधिक रुचि उपजी जो जाकैं मन भाए॥

व्रजन्द्र भाजन करके उठ ही थे कि कुछ गोपबालकाने आकर कहा—'बाबा! हम लोग ता यहाँ थ उत्सवमे विभोर थे पीछस किमान आकाशसे समस्त गाकुलम स्वर्णकी वृष्टि की हे।' वास्तवमे ही वृष्टि हुई थी। कुबेर दर्शनकर कृतार्थ हानकी आशासे श्रीकृष्णचन्द्रका अन्नप्राशन देखने आय थ। मनम आया—अपन स्वामी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको म क्या भेट चढाऊँ? मेरे पास है ही क्या? सब वस्तु तो उनकी ही है पर उनका वस्तु ही उन्ह अर्पण कर देनेपर व प्रसन्न हो जाते हे फिर सकाच क्या है। ला नाथ! मेरा यह क्षुद्र उपहार तुम्हारी प्रीतिका कारण हो। यह सोचकर कुबेरने तीन मुहूर्ततक स्वर्ण-वृष्टि करके गाकुलको परिपूर्ण कर दिया था—

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा।
चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गाकुलम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णजन्मखण्ड अ० १३। १७१)

गोप इस स्वर्ण-वृष्टिसे चकित अवश्य हुए, परतु यह उनक आदरकी वस्तु नहीं बन सकी। कैसे बने? जिन व्रजवासियाके सामने व्रजेन्द्रनन्दन हैं, उनके लिये इस तुच्छातितुच्छ स्वर्णराशिका मूल्य ही क्या है? ऐश्वर्यज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमे य व्रजगोप गोपसुन्दरियाँ तो तन्मय हैं। उनके लिये व्रजेन्द्रनन्दन तत्त्वत क्या हैं, इसके अनुसधानकी आवश्यकता नहीं, क्योकि वस्तुस्थिति तो अनुसधानकी अपेक्षा नहीं रखती। वह ता जा है, वह रहेगी ही। ये व्रजन्द्रनन्दन ही तो आत्माके आत्मा है प्रियोके भी प्रियतम ह इन्हींके लिये देहादि भी प्रिय है इनसे प्रेम करनमे ही जीवनकी परम सार्थकता है—शेषशायी पुरुषके रूपम व्रजेन्द्रनन्दनने ही तो यह कहा है—

अहमात्माऽऽत्मना धात प्रेष्ठ सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रति कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रिय॥
(श्रीमद्भा० ३। ९। ४२)

ऐसे इन स्वय भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनका पाकर इनके प्रति अपना मन-प्राण न्योछावर कर देनेवाले व्रजपुरवासियोके लिये तो कुबेरका वैभव अत्यन्त नगण्य है। व भला इस तुच्छ वस्तुको क्या आदर दे?

इस तरह व्रजेन्द्रनन्दनका *अन्नप्राशन*-सस्कार समाप्त हुआ। उस दिनकी सध्या आयी रात्रि आयी, फिर नूतन प्रभात आया। जननी यशोदा एव व्रजवासियाके लिये ये आठ पहर क्षणक समान बीत गये। जननी तो आठो पहर श्रीकृष्णचन्द्रका मुख ही देखती रही है। एक दिनसे नहीं पाँच महीने इक्कीस दिन हो गये हैं। इतने दिनसे वे निरन्तर पुत्रकी छवि देखती आयी हैं और बलिहार जाती रही हैं—

जननी देखि छबि बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहिं पाएँ हरष दिन अरु राति॥
बाल लीला निरखि हरषति धन्य धन्य व्रजनारि।
निरखि जननी बदन किलकत त्रिदस पति दै तारि॥
धन्य नँद धनि धन्य गोपी धन्य व्रज कौ बास।
धन्य धरनी करन पावन जन्म सूरजदास॥

श्रीकृष्णकी मनोहर बाललीलाएँ

निर्मल चन्द्रज्योत्स्नासे उद्भासित नन्द-प्राङ्गणमें व्रज-पुरन्ध्रियाके तालवन्धपर श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे हैं—

निर्मञ्छन तव भजाम कुलेश-लाल्य!
बाल्यातिमोहन! बलानुज! नृत्य नृत्य।
इत्यङ्गनाभिरुदितस्थि थि थि थि थीति
क्लृप्तेन तालवलयेन हरिर्ननर्त्त॥

(श्रीगोपालचम्पू)

'व्रजेशदुलार! अपनी बाल्यचेष्टासे विमोहित करनेवाले! हम सब तेरी बलिहार जायँ। तू नाच दे! नाच दे! बलराम-अनुज! यह ले—'थेई थेई थेई तत्त थेई'—इस प्रकार मनुहार करती हुई व्रजसुन्दरियाँ ताल देने लगीं एव श्रीकृष्णचन्द्र नाचने लगे।

आजसे पद्रह दिवस पूर्व अशोक-आलवाल (थाल्हे)-में अर्घ्य समपण करत हुए, वृक्षशाखाकी ओटसे व्रजेन्द्रमहिषीने अपन नीलमणिका सर्वप्रथम नृत्य दखा था—

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत मनहिं मनहिं रिझावत॥
बाहँ उठाइ काजरी धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नद पुकारत कबहुँक घर मैं आवत॥
माखन तनक आपनैं कर लै तनक बदन मैं नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिब खभ मैं लौनी लिए खवावत॥
दुरि देखति जसुमति यह लीला हरष अनद बढावत।
सूर स्याम के बाल-चरित नित नितही देखत भावत॥

जननी अशोक-पूजन भूल गयीं। अर्घ्यपात्र हाथामे ही रह गया। निर्निमेष नयनासे नीलमणिका अद्भुत अस्फुट गायन रुनझुन-रुनझुन तालसमन्वित नतन देखती हुई न जाने कितने समयके लिये वे आत्मविस्मृत हो गयीं।

इसके दूसरे दिन प्राणाका उत्कण्ठा लिये व्रजेन्द्र आय। पुत्रका वह मनोहर नृत्य उन्हाने दखना चाहा किंतु पिताका देखकर श्रीकृष्णचन्द्र किंचित् सकुचित होने लगे। जननीने उन्हे गोदमे उठा लिया कपोलोंको बारम्बार चूमकर वात्सल्यकी धाराम स्नान कराने लगा। जब इस रसधाराम वह सकाच बह चला तब जननी उन्हे पुन मणिभूमिपर खडा करके प्रोत्साहन दने लगीं—

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया नदहि नाचि दिखावहु॥
तारी देहु आपने कर की परम प्रीति उपजावहु।
आन जतु-धुनि सुनि कत डरपत मो भुज कठ लगावहु॥
जनि सका जिय करौ लाल मेरे काहे कौं भरमावहु।
बाहँ उचाइ कान्हि की नाईं धौरी धेनु बुलावहु॥
नाचहु नैंकु जाउँ बलि तेरी मेरी साध पुरावहु।
रतन जटित किंकिनि पग-नूपुर अपनैं रग बजावहु॥
कनक-खभ प्रतिबिंबित सिसु इक लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु॥

बस जननीका प्रेमनिर्बन्ध और पिताके प्राणोकी लालसा—दोनाने श्रीकृष्णचन्द्रको नचा ही तो दिया। नूपुरकी रुनझुन-रुनझुन तालपर करताली देत हुए वे नाचने लगे। उनके साथ व्रजेन्द्रका मन भी नाचने लगा। इतना ही नहीं, शरीरसे सर्वथा निकलकर व्रजेन्द्रका मन उस नूपुरध्वनिमे ही मानो विलीन हो गया। मन-शून्य व्रजेन्द्र प्रवालस्तम्भपर अपने शरीरका भार दिये, अपलक नेत्रामे उस छबिको भरे एक पहरके लिये अन्य सब कुछ भूल गये।

अब तो व्रजपुरमे यह लहर-सी दौड गयी। दल-की-दल व्रजवनिताएँ श्रीकृष्णचन्द्रका यह नृत्य देखने आने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र भी मुक्तहस्त होकर अपनी यह मधुरिमा वितरण कर रहे थे। केवल इतना ही नहीं वे इसपर अन्य अनेक बाल्यसुलभ चेष्टाओंकी पुट भी लगा देते थे। मानो श्रीकृष्णचन्द्रकी शैशवधारा क्रमश गम्भीर होती जा रही थी—पहले बुद्बुदे उठे, फिर धारा फेनिल हो उठी, इसके बाद उनके वक्ष स्थलपर तरग नृत्य करने लगीं और फिर उसमे आवर्त (भँवर) बन गये। इस प्रकार पहले उनके मुखारविन्दसे अस्फुट स्खलित शब्द निस्सरित हुए, पश्चात् उज्ज्वल हास्यरञ्जित तोतली वाणी निकली, फिर मधुर गायन-नर्तन आरम्भ हुआ और पुन ये नृत्यगीत अत्यन्त मनोहर बाल्यभङ्गिमाओंसे सम्पुटित होने लगे। एक अद्भुत लीलामृतधारा व्रजपुरमे प्रवाहित हो रही थी। इस [illegible] इसके एक कणका आस्वाद इन्दिरा तो स्वप्नमें [illegible] सकीं किंतु व्रजवनिताएँ अञ्जलि भरकर पान क[illegible]

मुनीन्द्र-वाञ्छित मुक्ति-सुख भी इस परमानन्दकी तुलनाम उन्ह नमक-जैसा कटु प्रतीत हो रहा था—

धनी सहज यह लूट हरिकेलि गोपीन कैं, सुपनें ये कृपा कमला न पावै।
निगम निरधार त्रिपुरारहु विचार रह्यौ, पचि रह्यौ सेस नहिं पार पावै॥
किनरी बहुर अरु बहुर गंधरबनी पंनगनी चितवन नहिं मांझ पावैं।
देत करताल ये लाल गोपाल सौं पकर ब्रजबाल कपि ज्यौं नचावैं॥
कोऊ कहै ललन पकराव मोहि पाँवरी कोऊ कहै लाल बल लाऔ पीढ़ी।
कोऊ कहै ललन गहाव मोहि सोहनी कोऊ कहै लाल चढ़ि आउ सीढ़ी॥
कोऊ कहै ललन देखौ मोर कैसैं नचैं कोऊ कहै भ्रमर कैसैं गुंजारैं।
कोऊ कहै पौर लगि दौर आऔ लाल, रीझ मोतीन के हार वारैं॥
जो कछु कहैं ब्रजबधू सोइ सोइ करत तोतरे बैन बोलन सुहावैं।
राय परत वस्तु जब भारी न उठै तबै चूम मुख जननी उर सौं लगावैं।
बैन कहि लोनी पुनि चाहि रहत बदन हँस स्वभुज बीच लै लै कलोलैं॥
धाम के काम ब्रजबाम सब भूल रहीं कान्ह बलराम के सग डोलै॥
सूर गिरिधरन मधु चरित मधु पान कै और अमृत कछू आन लागै।
और सुख रक की कौन इच्छा करै मुक्तिहू लौन सा खारी लागै॥

कभी स्वजनोका आनन्दवर्द्धन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र बाहुक्षेप करते—ताल ठोकत। उस समय गोपिकाएँ कदाचित् कह बैठतीं—'नीलमणि! तेरी अपेक्षा तो राममें बल अधिक है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण अपने चूर्णकुन्तलमण्डित सिरको हिला-हिलाकर असम्मति प्रकट करते। रोहिणीनन्दन राम भी अपने अनुजकी ओर देखकर हँसने लगते। गोपाङ्गनाएँ दोनाको पुचकारकर पास खडा कर देतीं और स्वय दा मण्डलाम विभक्त हा जातीं। एक मण्डली श्रीकृष्णको अधिक बलवान् बताती दूसरी रोहिणीतनय रामका पक्ष-समर्थन करती। फिर ता—

बलेन सममन्योन्य प्राबल्य दर्शयन्निव।
ऊर्ध्वाधोभावमासाद्य सर्वा हासयति स्म स ॥

(श्रीगोपालचम्पू)

श्रीबलदाऊके साथ श्रीकृष्णचन्द्र नन्ही-सी भुजा फैलाकर लिपट पडते। दोनो परस्पर एक-दूसरेके प्रति अपना प्राबल्य दिखाते हुए-से कभी श्रीकृष्ण ऊपर तो राम नीचे, राम ऊपर तो श्रीकृष्ण नीचे—इस प्रकार एक परम मनोहारी अभिनव मल्ल-क्रीडाकी रचना करते। अपनी [illegible] बाल्यमाधुरीसे ब्रजसुन्दरियाको हँसा-हँसाकर लोट-पाट कर देते। दोनो भाइयाकी शोभा भी—वे जब कभी भी एकत्र होते—अद्भुत ही होती। ओह! स्वच्छता तो ऐसी माना स्फटिकमणिके पार्श्वम महामरकत हो। स्निग्धता वह, माना पूर्णचन्द्रमण्डित जलधर-अकुर हो। सौरभ्य सौकुमार्य ऐस माना पुण्डरीक (उज्ज्वल कमल)-के सहित नीलोत्पल विकसित हुआ हो। सुखमयी ऐसी चेष्टा माना हसवलित यमुनालहरी हो। श्रीअङ्गकान्ति ऐसी माना ज्योत्स्नाखण्ड-समन्वित तिमिर-अकुर हो।

तदा स्फटिकमणिनेव महामारकत, चन्द्रमसेव जलदाङ्कुर, पुण्डरीकेणेव नीलोत्पलम्, हसेनव यमुना-तरङ्ग, ज्योत्स्नाशकलेनेव तिमिरकडम्ब ।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू)

अस्तु! तबसे आज एक पक्ष पूर्ण हा रहा है। श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्यदर्शन गान-श्रवण क्रीडावलाकन हो ब्रजसुन्दरियाकी अविच्छिन्न दिनचर्या है। अब इस [illegible] कोजागरी (आश्विन-पूर्णिमाकी) रजनीम जागरण [illegible] जिससे वे नन्दालयम एकत्र हुई हैं तथा महान् [illegible] आज अभीतक श्रीकृष्णचन्द्र भी निद्रित [illegible] कैस? उन्ह तो जगत्के समक्ष, जगत् [illegible] मुनीन्द्रोके सामन अपनी अप्रतिम [illegible] करनी है। अपनी अतुल [illegible] ही ता वे प्रतिक्षण [illegible] बाल्यचेष्टाका विक[illegible] कर देते थे—

दर्शय[illegible]
ब्रज[illegible]

[illegible]

रगमचपर अवस्थित होकर वे तो प्रतीक्षा कर रहे हे कि गोपसुन्दरियाँ आये ओर अभिनय आरम्भ हो। उनके नेत्राम आज निद्रा कहाँ? इसीलिये गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णचन्द्रको जागे हुए ही पाती हैं दिनकी भाँति ही उन्हे सर्वथा निरालस्य एव चञ्चल देखकर नचाने लग जाती ह, श्रीकृष्णचन्द्र भी 'थेइ थेइ थइ तत्त थेई' तालपर पद-सचालन करते हुए नाच रहे हैं।

व्रजरानी समागत गोपरामाओकी समुचित अभ्यर्थना इस समय नहीं कर पा रही हैं पर उन्हे दखकर उनके आनन्दका पार नहीं, क्योकि नन्दरानी सोच रही हैं—ये जागरण रखकर श्रीनारायणका नामोच्चारण करेंगी, उतने समयतक मेरे नीलमणिको कोई विपत्ति स्पर्शतक नहीं कर सकेगी। तृणावर्त-निधनके दिनसे जननी अत्यन्त सावधान जो रहती हैं। और तो क्या, समीरके झोकासे तरपत्र प्रकम्पित होते देखकर चचल पत्राकी ध्वनिमात्र सुनकर वे पुत्रको गोदमे उठा लेती हैं। केवल व्रजरानी ही नहीं, व्रजेन्द्र भी अतिशय सजग हैं। उन्होने अपनी महती सभामे सर्वसम्मतिसे उसी दिन यह निश्चय कर लिया है—नियम बना दिया है—

गोष्ठमिद दुष्टानामधिष्ठान वृत्तम्।
तस्माद् गृह एव गोपनीयमिद बालयुगलमिति॥

(श्रीगोपालचम्पू)

—'यह गोष्ठ तो दुष्टोका आवास बन गया है। इसलिये दोनो बालकोको अन्तर्गृहमे ही छिपाये रखना चाहिये।' इसीलिये उस दिनसे श्रीकृष्णचन्द्र तोरणद्वारसे उस पार न जा सके। विशाल मणिमय प्राङ्गण ही तबसे उनका लीलामच बना हुआ है। उसी मचपर इस समय नूपुरकी स्वरलहरी झकृत हो रही है व्रजतरुणियाँ श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्य देखकर तन-मन-प्राण न्योछावर कर रही है। अस्तु!

अचानक नृत्यको विराम करके श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगते हैं तथा समीपवर्ती मन्थन-गगरीकी ओर देखते हैं। गगरीमें गगनस्थ चन्द्र प्रतिबिम्बित है। इस प्रतिबिम्बने ही श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान आकर्षित किया है। अब वे और भी समीप आकर उसे देखते हैं। सोचते हैं—यह ऐसी सुन्दर वस्तु क्या है! फिर कुछ क्षण बाद जननीसे पूछते हैं—'री मैया! गगरीमें यह अत्यन्त उज्ज्वल क्या प्रगट हुआ है?'

जननी पुत्रकी भोली बात सुनकर केवल उनके मुखकमलकी ओर देखती हैं, कोई उत्तर नहीं देतीं। उत्तर न पाकर श्रीकृष्ण किंचित् दूर खडी हुई जननीके पास जाकर अचल पकडकर फिर प्रश्न करते हैं। इस बार जननी हँसकर कहती है—'मेरे लाल! यह चन्द्र-प्रतिबिम्ब है!' श्रीकृष्ण विस्फारितनेत्र होकर आश्चर्यमे भरकर बोले—'यह चन्द्र है?' उत्तरमे जननीके मुखसे निकल पडा—'हाँ, मेरे प्राणधन! यह चन्द्र है!' फिर तो श्रीकृष्णके उल्लासकी सीमा न रही। हाथोको नचाकर ताली पीटकर वे बोले—'मेरी मैया! तू इसे गगरीसे निकालकर मेरे हाथोपर रख दे!'

नन्दरानी हँसने लगती हैं, व्रजसुन्दरियाँ हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाती हैं, किंतु श्रीकृष्ण जननीके अचलको छोर पकडे बारम्बार कह रहे हैं—'री! उसे निकाल दे शीघ्र निकालकर मेरे हाथोमे दे दे।' जननी पुत्रको अन्य बातोमे भुलाना चाहती हैं पर वे तो भूलते ही नहीं, बल्कि रोना आरम्भ करते है। इसी समय समीप अवस्थित प्रभावती (उपनन्दपत्नी)-को एक सुन्दर बुद्धि उपज आती है। वे नन्दरानीको धीरेसे कानमे सकेत कर देती हैं। सकेत करके स्वय भडारमे चली जाती हैं, एक विशाल नवनीतखण्ड पीठकी ओर छिपाकर ले आती हैं तथा श्रीकृष्णकी दृष्टि बचाकर मन्थन-गगरीमे डाल देती हैं। यह हो जानेपर अचलसे पुत्रकी आँख पोछती हुई जननी बोलीं—'अच्छा चल मैं तेरे हाथपर रख देती हूँ।' जननी आती हैं गगरीके पास आकर उसमे हाथ डालकर उज्ज्वल नवनीतखण्ड निकाल लेती हैं तथा नीलमणिके हाथोपर रख देती हैं। आह! श्रीकृष्णचन्द्रके आनन्दका पार नहीं—जैसे सचमुच चन्द्र ही उनके हाथमें आ गया हो! आनन्दमे निमग्न हुए नीलमणि गगरीकी ओर देखते हैं। यद्यपि गोपिकाओके निकट खडे हो जानेसे प्रतिबिम्ब विलुप्त हो गया है, तथापि श्रीकृष्णचन्द्र यह सोच रहे हैं कि चन्द्र गगरीसे निकलकर मेरे हाथोपर आ गया है—

रुदन्तमिन्दय मन्थगर्गर्यां प्रतिरूपिण।
पिण्डेन नावनीतेन यशोदा र्दयतार्भकम्॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू)

नवनीतपिण्ड लेकर वे आँगनमें दौडे। उनके पीछे नन्दरानी एव गोपिकाएँ भी दौडीं। पर बाहर जानेका डर है

गोपिकाओंकी भीडसे रुद्ध है। वे बाहर जा ही कैसे सकते हैं? इसीलिये पुन मन्थन-गगरीके ही समीप आ जाते हैं। अब भी चन्द्र गगरीम प्रतिभासित हो रहा है। नीलमणिकी दृष्टि भी उसपर पड ही जाती है। बस!
नीलमणिने समझ लिया—जननीने मेरी वञ्चना की है, चन्द्र तो अभी भी गगरीमे ही है। उनके पङ्कजनयनोमे रोष-मान-व्यथा भर जाती है। वे वहीं भूमिपर लोट जाते हैं, हाथ-पैर पटक-पटककर करुणक्रन्दन प्रारम्भ करते हैं।

रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र जननीकी गोदम भी नहीं उठना चाहते। किसी प्रकार जननी उन्हे वक्ष स्थलपर उठा लेती हैं। समझाती हैं—मेरे लाल! चन्द्र तो गगनमे है, गगरीमे नहीं। वह देख—

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहिं लिए चदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत॥

श्रीकृष्णचन्द्र गगनस्थ चन्द्रको देखकर चुप हो जाते हैं। वे कभी आकाशचन्द्रकी ओर तो कभी गगरीमे प्रतिबिम्बित चन्द्रकी ओर देखने लगते हैं। उन्हे प्रतीत हो रहा है—दो चन्द्र हे, एक गगरीमे, एक आकाशमे । जननी पुत्रका मनोभाव जान लेती हैं। समझाती हैं—'मेरे प्राणधन! देख चन्द्र तेरा मुख देखने आता है जब तू गगरीकी ओर देखता हे, तब चन्द्र गगरीम आ जाता है, तू आकाशकी ओर देखता है, तब आकाशम चला जाता हे।' जननीके इस उत्तरसे नीलमणिका यह समाधान तो हो जाता है कि चन्द्र एक है पर इससे क्या हुआ? उन्हे तो चन्द्र जो चाहिये। उसे पानेके लिये वे उपाय सोचते है एव चन्द्रको ला देनेके लिये जननीके सामने पुन मचल उठते है—

मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं माता सौं कहि ताहिं मँगावत।
लागी भूख चद मैं खैहौं देहि देहि रिस करि बिरुझावत॥

हठीले पुत्रको जननी बार-बार समझा रही हैं—

(आछे मेरे) लाल हो ऐसी आरि न कीजै।
मधु मेवा-पकवान मिठाई जोइ भावै सोइ लीजै॥
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ अरु माठौ पय पीजै।
पालागौं हठ अधिक करौ जनि अति रिस तैं तन छीजै॥

—किंतु श्रीकृष्ण मानते नहीं। जननी समझ नहीं पातीं कि कैसे समझाऊँ। वे सोच रही हैं—गगनस्थ चन्द्रको दिखाकर मैंने भूल की—

किहिं बिधि करि कान्हहिं समुझैहौं?
मैं ही भूलि चद दिखरायौ ताहि कहत मैं खैहौं।

कुछ देर सोचती रहकर फिर जननी बोलीं—

अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ खान कहत तिहिं तात॥

अच्छी बात है। खिलौना ही सही। तू इसे ला तो दे। मैं खाऊँगा नहीं, इससे खेलूँगा। मैं इस खिलोनेको लूँगा ही—श्रीकृष्णचन्द्र पहलेकी अपेक्षा भी और अधिक हठ कर बैठे—

मैया मैं तौ चद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौं॥

अब व्रजसुन्दरियाँ एक नयी युक्ति करती हे। निर्मल पात्रम जल भर देती हैं। उस जलपात्रम जननी चन्द्रका आवाहन कर रही हे—

बार-बार जसुमति सुत बोधति आउ चद तोहिं लाल बुलावै।
मधु-मेवा-पकवान मिठाई आपुन खैहै तोहिं खवावै॥
हाथहिं पर तोहिं लीन्हे खेलै नैंकु नहीं धरनी बैठावै।
जल-बासन कर लै जु उठावति याही मैं तू तन धरि आवै॥

—कुछ देर इस भाँति चन्द्रको आनेके लिये बार-बार निमन्त्रितकर जननी जलपात्रको भूमिपर स्थापित कर देती हैं एव उल्लासभरे स्वरमे कहती हैं—

लै लै मोहन चदा लै।
कमल नैन बलि जाउँ सुचित है नीचैं नैंकु चितै॥
जा कारन तैं सुनि सुत सुदर कीन्ही इती अरै।
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया भाजन माहिं परै॥
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है जल पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढि चद कौ जो भावै सो कै॥
गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है पछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं कत मेरौ लाल हठै॥

इस बार श्रीकृष्णचन्द्रका मनोरथ मानो पूर्ण हो गया वे आनन्दमे भर जाते है क्योंकि जलपात्रम उन्हे चन्द्रके स्पष्ट दर्शन हो रहे हे। वे गोदसे उतरकर चन्द्रको पकडनेके उद्देश्यसे अपने दोनो हस्तकमल जलपात्रमे डाल देते हैं। झलमल-झलमल करती हुई चन्द्र-परछाई विलीन हो जाती है। ठीक उसी समय योगमायाप्रेरित एक शुभ्र मेघखण्ड

आकाशचन्द्रको आच्छादित कर लेता है। श्रीकृष्णचन्द्र दृष्टि फिराकर आकाशकी ओर देखते हैं—वहाँ भी चन्द्र नहीं है। जननीसे पूछते हैं—'री मैया! चन्द्र कहाँ चला गया?' मैया उत्तर देती है—'मेरे लाल! तू उसे हाथोंसे पकडना चाहता था, तुझसे डरकर वह पातालमें भाग गया।' 'पाताल क्या है?' —श्रीकृष्णने अतिशय आश्चर्यमें भरकर बडी उतावलीसे पूछा। जननीको अब कहीं पुत्रको भुलानेका सूत्र प्राप्त हुआ। वे बोलीं—'मेरे नीलमणि! पातालकी बडी सुन्दर कथा है, चल, तुझे पातालकी कथा सुनाऊँ।'

—यह कहती हुई नन्दरानी नीलमणिको हृदयसे लगाकर शय्या-मन्दिरकी ओर चल पडती हैं।

व्रजसुन्दरियाँ हम कोजागरीका जागरण करने आयी हैं—यह कहकर आयी थीं। अत वे व्रजेन्द्रके नारायणमन्दिरकी ओर चली जाती है। वहाँ जाकर वे जागरण कर भी रही हैं, पर उनके नयन-मन-प्राणोंमें तो श्रीकृष्णचन्द्र छाये हुए हैं। इसलिये वे नारायणका नामोच्चारण तो भूल गयी हैं, उसके बदले परस्पर एक दूसरीको अपने चित्तकी दशा सुना रही हैं। एक गोपसुन्दरी अपनी दशा बता रही है—

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन खेलत आँगन बारौ री।
ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ तन मन ह्वै गयौ कारौ री॥
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर दै पलकनि कौ तारौ री।
मोहिं भ्रम भयो सखी उर अपनैं चहु दिसि भयौ उज्यारौ री॥
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिं ताहू तैं अति भारौ री।
जैसैं बूँद परत बारिधि मैं त्यौं गुन ज्ञान हमारौ री॥
हौं उन माहँ कि वै मोहिं महियाँ परत न देह सँभारौ री।
तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु दुहुँ मैं एक न न्यारौ री॥
जल-थल-नभ कानन-घर-भीतर जहँ लौं दृष्टि पसारौ री।
तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री॥

मणिस्तम्भ-लीला (प्रथम नवनीत-हरण-लीला)

ग्वालिनने प्रत्याशाभरी आँखोंसे व्रजरानीकी ओर देखा। कदाचित् कोई-सा कार्यभार वे मुझे पुन सौंप दें, कुछ क्षण यहाँ और रुक जानेका मिस हो जाय, श्रीकृष्णचन्द्रका सौन्दर्य निहारकर मैं शीतल होती रहूँ—अन्तस्तलके ये आकुल भाव उसके नेत्रोंकी ओटसे झाँक रहे थे। इधर रन्धनशालाके द्वारपर अवस्थित व्रजरानी भी सोच रही थीं—क्या करूँ? किसकी सहायता लूँ? रोहिणीजी तो समागत ब्राह्मणोंकी सेवा-सत्कारमें लगी हैं, परिचारिकाएँ गोष्ठसे आये हुए दुग्धपूरित कलशोंको यथास्थान रखनेमें अत्यन्त व्यस्त हैं, व्रजेश्वर नारायण-सेवामें सलग्न हैं, शीघ्र ही भोग-सामग्रियोंको नारायणमन्दिरमें पहुँचा देनेका आदेश भी आ चुका है, दधि-मन्थनका कार्य अधूरा छोडकर मैं उठ भी आयी, पर मेरा नीलमणि स्तन्यपानके लिये अचल पकड खडा है, स्तन्यपानके लिये मचल रहा है। इसे दूध पिलाकर पुन वस्त्रपरिवर्तन कर मैं रन्धनशालामें तो चली जाऊँगी, किंतु इस आधे मथे दहीसे माखन तो निकला नहीं। विलम्ब होनेपर तो निकलेगा ही नहीं। फिर पद्मगन्धा कजरीसे दूधका सद्योमथित नवनीत आज मैं अपने नीलमणिको कैसे दे पाऊँगी? अच्छा, इस ग्वालिनसे बिलोनेको कह दूँ क्या ? बस, दो हृदयकी ये चंचल धाराएँ अनात चेतनाके धरातलपर जा मिलीं, व्रजरानी उस गोपसुन्दरीकी ओर दृष्टि फेरकर कह ही तो उठीं—

पाहुनी करि दै तनक मह्यौ।
हौं लागी गृह-काज-रसोई जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मनमोहन मेरो अंचल आनि गह्यौ॥

अब तो उसके हर्षका पार नहीं। आनन्दमें निमग्न वह मथानीकी ओर चली। अवश्य ही उसकी दृष्टि मथानीको नहीं देख पा रही है, दृष्टि तो यशोदारानीके अङ्कमें विराजित श्रीकृष्णचन्द्रके रूपसे भरी है। वह कुञ्चित केशकलाप, ललाटका वह केसरबिन्दु, रतनारे चंचल नयन, सुढार युग्म कपोल, अरुणिम अधर, कठुलाभूषित कम्बुकण्ठ, व्याघ्रनखराजित वक्षःस्थल, सुन्दर नाभिकमल, किङ्किणी-भूषित कटिदेश, सुकोमल छोटे बाहुयुगल, हस्तकमल, सुन्दर मनोहर जानु, गुल्फ, चरणतल—गोपसुन्दरीके नेत्रमें तो ये भरे हैं, मथानी समा सके, इतना अवकाश नेत्रोंमें कहाँ। इसीलिये अनुमानसे मथानीके समीप वह जा तो पहुँची, पर देख न पा सकी कि कहाँ क्या है। आते ही दधिभाण्डसे चरणोंका वेगपूर्ण स्पर्श हुआ, वह दधिपात्र उलटा हो गया, दहीकी धारा बह चली। गोपसुन्दरीने हाथसे टटोलकर केवल यह समझा कि मटका तिरछा हो गया है, अपनी जानमें सीधा करके वह

बिलोने चली। प्रेमविवश हुई ग्वालिन यह नहीं जानती कि वह रीते पात्रम ही मन्थनदण्ड चला रही है दही तो बाहर बह गया ह—

ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढारकि रह्यौ॥

यशादारानीन भी तब जाना कि जब श्रीकृष्णचन्द्र स्तन्यपानस विरत होकर हँसते हुए-से उस ग्वालिनकी ओर देखन लगे, जननीको उस ओर देखनेके लिये इङ्गित करने लगे। अन्यथा जननी तो बिलोनेका आदेश देकर अपने नीलमणिमे ऐसी उलझ गयी थीं कि अन्य सब कुछ विस्मृत हो गया था। वे तो अपन नीलमणिको स्तन्यदान करनेम तन्मय हो रही थीं। श्रीकृष्णचन्द्रने ही उन्ह जगाया तथा जागकर जननीने दखा—है! माखन ता वहता जा रहा है! जननीने पुकारकर कहा—'री सखी! अपनेको सँभाल!' अब कही जाकर व्रजसुन्दरीको मथानीकी दधिपात्रकी वास्तविक अवस्थाका भान हुआ फिर तो सकोच-लज्जामे वह बह चली। व्रजरानीको भी सकाच हुआ कि इसकी सुख-समाधि मैंने तोड दी—

माखन जात जानि नँदरानी सखी सम्हारि कह्यौ।
सूर स्याम-मुख निरखि मगन भई दुहुनि सँकोच सह्यौ॥

इसके दूसरे दिनकी बात है। ग्वालिन पुन नन्दभवनमे आयी। आकर देखा—व्रजश्वरी दूध पीनेके लिये अपने नीलमणिको मधुर मनुहार कर रही हैं। अग्रज बलराज भी समीप ही बेठे हैं। उन्होंने तो जननीका लाड स्वीकारकर दूध पी लिया किंतु हठीले श्रीकृष्णचन्द्र नहीं पीते। अन्तमे जननी बडी ही आकर्षक युक्ति अपने पुत्रके सामने रखती हैं—

कजरी कौ पय पियहु लाल जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसैं देखि और ब्रज बालक त्यौं बल-बैस चढ़ै॥

तथा इस प्रलोभनम श्रीकृष्णचन्द्र फँस ही जाते है। कजरीके दुग्धपानसे मेरी वेणी बडी लबी हो जायगी, इस उल्लासम भरकर वे दूध पीने लग जाते हैं किंतु साथ-साथ अपने घनकृष्ण केशापर हाथ रखकर देखते जा रह हैं कि वेणी वास्तवमे बढी या नहीं। जब बढती नहीं दीखती तब उन्ह अपनी जननीकी वञ्चनाका भान हाता है। उस समय उनके मुखारविन्दपर नाचती हुई विविध भावलहरियाकी शोभा दखने ही योग्य है। पराजयका रोष अब भविष्यम दुग्धपानसे विरत हानेकी भावना जननीके प्रति अविश्वास क्षुधाकी निवृत्ति दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति—ये सब एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो रहे हैं। यशोदारानी हँसी सवरण न कर सकीं—

पुनि पीवत हीं कच टकटोरत जूँठहि जननि रढै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढै॥

अपनेको भूली-सी रहकर ग्वालिन यह दृश्य देख रही थी। इतनेम जननीसे रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र वहाँसे उठकर उसके समीप आकर खडे हा गये। ग्वालिनका उनके शरीरसे किंचित् स्पर्श हो गया, फिर तो वह बाह्यज्ञान-शून्य हो गयी। जब चेतना हुई तब घरके लोगाने उसे बताया पूरे आठ पहर वह प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति निस्पन्द बैठी थी। किंतु वह नन्दभवनसे अपने आवासम कैसे चली आयी यह प्रश्न किसीके मनम उदय न हुआ स्वय ग्वालिनने भी इसका रहस्य न जाना। जाननेका अवकाश ही जो न था। वह तो निरन्तर देख रही थी—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र दुग्धपान कर रह हैं एव वणी बढी कि नहीं, इसकी परीक्षा कर रहे है। जब समाधिसे बाहर आयी तब भी झाँकी नेत्राक सामने बनी ही थी, चिर अभ्यासवश आधी घडीम ही उसन आवश्यक गृहकार्यकी व्यवस्था कर दी और नन्दभवनकी आर दौड चली। अस्तु—

आज तीसरे दिन वह पुन आयी है तथा देख रही है—विविध पक्वान्न-मिष्टान्न थालोमे सजाकर सामने रखकर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड लडा रही हैं किंतु पक्वान्न भोजन करनेकी बात तो दूर श्रीकृष्णचन्द्र उस आर ताक भी नहीं रहे हैं, बल्कि खीझकर कह रहे हैं—

मैया री मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै॥

वह गापसुन्दरी श्यामसुन्दरके ठीक पीछे खडी है श्रीकृष्णचन्द्रके मधुर वचनासे अमृत झर रहा ह उसे पीकर वह मत्त होती जा रही है। इस मत्तताके आवेशवश ही उसके अन्तस्तलम आज सहसा एक वासना जाग उठती है—'क्या श्रीकृष्णचन्द्र कभी मेरे घर चलगे मेरे घरका नवनीत ग्रहण करगे? पर मेर सामने रहनपर तो ये सकुचित हो जायँगे। अत मे तो दधि-मन्थन करके छिप जाऊँ और तब ये मथानीक समीप जायँ, वहाँ बैठकर यथारुचि माखन आरोगे मै यह देखकर निहाल हा जाऊँ। मेरे नेत्रोकी यह साध कभी पूरी हागी क्या?'

ग्वालिन ता अपनी जानम अपने गनम मनारथचित्र अकित कर रही ह पर ये अकित हा रहे हें अनन्तैश्वर्य-निकतन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रमके भूख, सर्वान्तर्यामी स्वय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मन पटलपर—

बैठें जाइ मथनियाँ कैं ढिग मैं तब रहौं छपाना।
सूरदास प्रभु अतरजामा ग्वालिनि मन की जानी॥

इस मनारथक प्रवाहम ग्वालिनका मन ही नहीं शरीर भी माना बह चला। सहसा वह नन्दभवनस लौट पडी अपने घर आ पहुँची। जात समय दधिमन्थन किय बिना ही चली गयी था। अब आकर यन्त्र-परिचालितकी भाँति दही बिलान लग जाती ह। रह-रहकर उस एसा प्रतीत हा रहा ह, माना श्रीकृष्णचन्द्र उसक द्वारपर पधारे हैं, अचकचाकर वह कभी-कभी विस्फारित नत्रासे द्वारकी आर दखने भी लग जाती है, परन्तु द्वार सूना पाकर पुन अपने भावाम विभोर हो जाती है। उस यह पता नहीं कि मनोरथतन्तुम बँधे आकृष्ट हाते हुए वाञ्छाकल्पतर स्वय भगवान् व्रजन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वास्तवम ही उसक घरकी आर चल पड हैं।

सचमुच ज्या ही गापसुन्दरी नेत्रासे ओझल हुई कि बस श्रीकृष्णचन्द्र जननाकी गादस कूदकर बाहरकी ओर भाग चल। जननीन लपककर थाम तो लिया पर अतिशय चेष्टा करक भी आज पक्वान्न-मिष्टान्न व उन्ह न खिला सकीं। केवल किंचित् माखन ही मुखम डाल सकीं। आज क्षणभरका भी विलम्ब श्रीकृष्णचन्द्रका सर्वथा असह्य हो रहा है। वे हाथ छुडाकर आखिर भाग हा गय। यशोदारानीको भी आश्चर्य हो रहा ह क्यांकि नीलमणिको बाहर जानक लिये इतना अधिक व्यग्र उन्हान पहली बार दखा हे। अस्तु—

श्रीकृष्णचन्द्र क्षणभरमे ही गापसुन्दरीके घरपर चल आये—

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
दख्यो द्वार नहीं कोउ इत-उत चितै चल तब भीतर॥

बलराम एव अन्य गापबालक घरसे उनके साथ अवश्य चल थे किंतु पथम सभी पीछ रह गये भ्रान्त हाकर दूसरी आर बढ गय। श्रीकृष्णचन्द्र निर्बाध एकाकी ग्वालिनके घरपर आय ह। ग्वालिनने द्वारकी ओर देखा—ह! नन्दनन्दन ता मर द्वारपर खड ह। आह! यह रूप! ग्वालिनके प्राणामे स्पन्दन हान लगता ह लकिन क्षणभरका भी विलम्ब मनारथका ताड दगा। ग्वालिन विद्युत्-गतिस मणिस्तम्भकी आटम अपनका छिपा लती है—

हरि आवत गोपा जब जान्यौ आपुन रही छपाइ।

तथा श्रीकृष्णचन्द्र चुपचाप भीतर प्रवेश कर जाते हैं, मथानीके निकट जाकर शान्त-मौन होकर बठ जात हैं—

सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग बैठि रह अरगाइ॥

ओह! उस समय उनकी अतुलित शाभा निहारकर गोपसुन्दरीका अणु-अणु मानो झकार कर उठता है—

मुख पर चद डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं भौंह पर धनु वारि॥
भाल केसरि तिलक छबि पर मदनसर सत वारि।
× × ×
मीन खजन मृगज वारौं कमल के कुल वारि॥
× × ×
झलक ललित कपोलछबि पर मुकुट सत सत वारि॥
नसिका पर कीर वारौं अधर बिद्रुम वारि।
दसन पर कन बज्र वारौं बीज दाड़िम वारि॥
चिबुक पर चितवित्त वारौं प्रान डारौं वारि।
सूर हरि की अगसोभा को सकै निरवारि।

किंतु अब वह सौन्दर्यसागर मानो तरगित हो उठता है श्रीकृष्णचन्द्र ग्वालिनके मनोरथकी पूर्ति करत हुए नवनीत हरणकी लीला करने चलते हैं। उनके पास ही नवनीतपूर्ण एक पात्र पडा है। चचल नेत्रासे एक बार वे द्वारकी ओर देखते ह तथा फिर पात्रमस माखन निकालकर खाने लगते है। सहसा मणिस्तम्भमे उन्हे अपना प्रतिबिम्ब दीख पडता है। उन्ह प्रतीत होता है कि मेर आनेसे पूव एक अन्य शिशु यहाँ आया हे मणिस्तम्भसे सटकर खडा है। श्रीकृष्णचन्द्रको यह भय होने लगता है कि कही यह मेरी चोरी प्रकट न कर दे। वे उसे प्रलाभित करने लगते हें। उससे कहते हे—'भैया! देख तू किसीसे मेरी बात बता न दना भला! आजसे हम दानो साथी हुए, हम लाग सभी वस्तु आधी आधी बाँट लग। यह ले मैं खा रहा हूँ तू भी खा!' यह कहकर श्रीकृष्णचन्द्र अपन हाथासे नवनीत उठाकर प्रतिबिम्ब मुखम डाल दत है। तत्क्षण माखन नीचे गिर जाता है, वे साचते ह शिशु रूठा हुआ हैं। उसे पुन समझाते हैं—'अरे! तू फक क्या दे रहा हे? बावला हा गया है! भैया यह ठीक नहीं तू भी खा ल मैं भी खाऊँ अच्छा बाँटकर खायगा? ले यह एक लौंदा तर हाथपर एक मेरे हाथपर। हें! तूने फिर गिरा दिया! क्या सब लना चाहता ह? नहीं-नहीं यह

ता उचित नहीं। अच्छा, अब तू मान जा खा ले, कितना मीठा है! यदि तुझ भी अत्यन्त रुचिकर लगे ता मैं कमोरी भरकर तुझ माखन दूँ।'

नन्दनन्दनकी यह मुग्ध चेष्टा देखकर ग्वालिनके हृदयमे प्रेम-समुद्र लहरान लगता हे, रसतरगोके आवेगसे धैर्यका बॉध टूट जाता है। आनन्दपूरित हँसीके रूपम तरग मुखसे बाहर आ जाती हैं, ग्वालिन स्तम्भकी ओटसे मुख निकालकर हँसने लगती हे। बस, फिर तो यवनिका गिर गयी। दृश्य परिवर्तित हा गया। श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालिनको देख लिया। एक अप्रतिम सुमधुर सकोचकी छाया नन्दनन्दनके मुखचन्द्रको आवृत कर लेती है, साथ ही वे तुरत उठकर कुञ्जवीथीकी ओर भाग चलते हैं—

आजु सखी मनि खभ निकट हरि, जहँ गोरस कौं गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी॥
अरध विभाग आजु तैं हम तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिं डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी॥
बाँट न लेहु सबै चाहत हौ यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक परम रुचि लागै तौ भरि देउँ कमोरी॥
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुज की खोरी॥

आह! जिनसे इस जगत्का सृजन सस्थान, सहार है, जिनकी सत्तापर ही जगत्की सत्ता अवलम्बित हे, जगत्का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हें, जो सर्वज्ञ हैं, अखण्ड अबाध ज्ञानसम्पन्न है, स्वयप्रकाश हैं, जो अपने सकल्पमात्रसे पद्मयानिम वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमे योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हा जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उनका अपने प्रतिबिम्बसे माहित हो जाना कितना आश्चर्यमय हे। जिस मायासे मोहित होकर जगत्क मूढ प्राणी 'म-मेर' का प्रलाप कर रहे हैं, वही माया जिनके दृष्टिपथमे ठहर भी नहीं पाती, लज्जित होकर भाग खडी होती है—

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धिय ॥
(श्रीमद्भा० २। ५। १३)

—उनका मणिस्तम्भम अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भ्रमित हो जाना कितना मोहक है! ओह! जिन विराट्के कटिसे ऊपरक भागम भूलाक नाभिमे भुवर्लोक हृदयमे स्वर्लोक, वक्ष स्थलमे महर्लोक, ग्रीवामे जनलाक, स्तनोम तपोलोक एव मस्तकमे सत्यलोकको कल्पना है, कटिदेशमें अतल ऊरुओम वितल, जानुओम सुतल, जघाआमे तलातल गुल्फाम महातल, एडियाम रसातल एव पादतलमे पाताल कल्पित है, जिन विराट्क मुखसे वाणी एव अग्नि उत्पन्न हुए गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पक्ति एव जगती—ये सात छन्द जिनकी सात धातुआसे निर्गत हुए, हव्य, कव्य, अमृतमय अन्न, समस्त रस रसनेन्द्रिय एव वरुण जिनकी जिह्वासे निस्सृत हुए, पञ्चप्राण एव वायु जिनके नासाछिद्रासे उद्भूत हुए अश्विनीकुमार, ओषधिसमुदाय, माद (साधारण गन्ध), प्रमाद (विशेष गन्ध) जिन विराट्की घ्राणन्द्रियसे उत्पन्न हुए, रूप एव नेज जिनके नेत्रेन्द्रियसे निकले सूर्य एव स्वर्ग जिनके नेत्रगोलकसे प्रकट हुए समस्त दिशाएँ, समस्त तीर्थ जिनके कर्णयुगलसे व्यक्त हुए आकाश एव शब्द जिनके श्रोत्रेन्द्रियसे निकले, जिन विराट्का शरीरसस्थान समस्त वस्तुआका सारस्वरूप एव समस्त सौन्दर्यका भाजन है, जिनकी त्वचासे सार यज्ञ, स्पर्श एव वायु निकले, जिनक रामस यज्ञक उपकरणभूत समस्त उद्भिज्ज उद्भूत हुए, जिनके केश श्मश्रु (दाढी-मूँछ) एव नखासे मेघ विद्युत्, शिला तथा लाह प्रकट हुए, जिनकी भुजाओस रक्षक लाकपाल आविर्भूत हुए जिनका पदसचालन 'भू , भुव , स्व '—त्रिलाकका निर्माण कर देता है जिनके भयहारी चरणकमल अप्राप्तकी प्राप्ति एव प्राप्तकी रक्षा कर देते हैं, समस्त कामनाआकी पूर्ति कर दते ह जा विराट् जल वीर्य सर्ग पर्जन्य प्रजापति कामसुख यम मित्र, मलत्याग हिसा निर्ऋति, मृत्यु, निरयक उद्गम है, जिनके पृष्ठदेशसे पराजय अधर्म, अज्ञान उद्भूत हुए, जिनकी नाडियासे नद-नदी-समूहका निर्माण हुआ जिनक अस्थिसस्थानस पर्वतश्रेणियाँ निर्मित हुईं जिनक उदरम मूलप्रकृति रस नामक धातु, समुद्र, समस्त प्राणी-समुदाय प्राणियाका निधन समाया हुआ है जिनके हृदयसे मनकी अभिव्यक्ति हुई, जिनका चित्त ब्रह्मा शकर नारद धर्म सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारका आश्रय हे विज्ञान एव अन्त करणका आधार है, अधिक क्या जिन विराट्की ही अभिव्यक्ति ये ब्रह्मा शकर नारद सनकादि हैं सुर असुर, नर नाग हैं, खग मृग सरीसृप ह, गन्धर्व अप्सराएँ हैं यक्ष राक्षस भूत प्रेत सर्प ह, जिनकी मूर्तिम पशु हैं

पितर हैं, सिद्ध हैं, विद्याधर है, चारण हैं, द्रुमपुञ्ज हैं, जिन विराट्की परिणति नभ-जल-थलवासी विविध जीव हैं, जिन विराट्के ही रूप ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारावलि, तडित्, मेघ हैं, अतीत, वर्तमान एव भविष्यके विश्व जिनके रूप हैं,* उन विराट्पुरषके भी स्रष्टा स्वय भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका यह नवनीत-हरण, यह मुग्धभाव, यह शैशव-नाट्य कितना विस्मित कर देनेवाला है! भक्तवत्सलताका ऐसा निदर्शन व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त और कहीं है क्या? व्रजेन्द्रनन्दन! यशोदाप्राणधन! श्रीकृष्णचन्द्र! बलिहारी है तुम्हारी ऐसी मुनिमनहरणी मोहिनी भक्तसर्वस्वदायिनी लीलाकी।

वह बडभागिनी गोपसुन्दरी तो आनन्दातिरेकवश आत्मविस्मृत-सी हो गयी—विक्षिप्त-सी हुई घरसे बाहर निकल पडी। उसकी यह अत्यन्त अद्भुत विचित्र दशा देखकर अन्य गोपसुन्दरियाँ तो चकित रह गयीं। उसके रोम-रोमसे आनन्द झर रहा है, इतना तो स्पष्ट था, किंतु इस परमानन्दका हेतु कोई भी व्रजसुन्दरी ढूँढ नहीं पा रही थी। सभी कारण पूछतीं, पर बताये कौन? ग्वालिन तो दूसरे मनोराज्यम रह रही थी। जब कभी यहाँ इस शरीरमे आती भी तो कण्ठको रुद्ध पाती, सखियोको कुछ भी बतानेमें असमर्थ हो जाती। दूसरे दिन सारा भेद खुल गया, परतु आज तो ग्वालिन केवल इतना ही बता सकी—'बहिन! मैंने एक अनूप रूपके दर्शन पाये हैं'—

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछतिं सखी परस्पर बातैं, पायौ पर्‍यौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम-रोम गद-गद मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री हमकौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारौ जिय एक हमारी हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं देख्यौ रूप अनूप॥

---

*भूर्लोक कल्पित पद्भ्या भुवर्लोकोऽस्य नाभित । हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मन ॥
ग्रीवाया जनलोकश्च तपोलोक स्तनद्वयात् । मूर्धभि सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोक सनातन ॥
तत्कट्या चातल क्लृप्तमूरुभ्या वितल विभो । जानुभ्या सुतल शुद्ध जङ्घाभ्या तु तलातलम्॥
महातल तु गुल्फाभ्या प्रपदाभ्या रसातलम् । पाताल पादतलत इति लाकमय पुमान्॥

× × ×

वाचा वह्नेर्मुख क्षेत्र छन्दसा सप्त धातव । हव्यकव्यामृतान्नाना जिह्वा सर्वरसस्य च॥
सर्वासूना च वायोश्च तन्नास परमायने । अश्विनोरोषधीना च घ्राणो मोदप्रमोदयो ॥
रूपाणा तेजसा चक्षुर्दिव सूर्यस्य चाक्षिणी । कर्णौ दिशा च तीर्थाना श्रोत्रमाकाशशब्दयो ।
तद्गात्र वस्तुसाराणा सौभगस्य च भाजनम्॥
त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमधस्य चैव हि । रोमाण्युद्भिज्जजातीना यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृत ॥
केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् । बाहवो लोकपालाना प्रायश क्षेमकर्मणाम्॥
विक्रमो भूर्भुव स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च । सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम्॥
अपा वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापते । पुस शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृते ॥
पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद । हिसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुद स्मृत ॥
पराभूतरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिम । नाड्यो नदनदीना तु गोत्राणामस्थिसहति ॥
अव्यक्तरससिन्धूना भूताना निधनस्य च । उदर विदित पुसो हृदय मनस पदम्॥
धर्मस्य मम तुभ्य च कुमाराणा भवस्य च । विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम्॥
अह भवान् भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजा । सुरासुरनरा नागा खगा मृगसरीसृपा ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगा । पशव पितर सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमा ॥
अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकस । ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडित स्तनयित्नव ॥
सर्वं पुरुष एवेद भूत भव्य भवच्च यत्।
(श्रीमद्भा० २।५।३८—४१ २।६।१—१५)

श्रीरामलीला-चिन्तन

[मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका विशेष महत्त्व है। श्रीरामके जीवनमे भगवत्ता, अलौकिकता और दिव्य गुणोका दर्शन तो होता ही है साथ ही उनका चरित मानवोचित मर्यादाओसे भी बँधा है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। इसलिये रामलीला-दर्शनके सभी अधिकारी हैं।

वास्तवमे परमात्मप्रभुके जिस स्वरूप, गुण और लीला-चरितका चिन्तन-मनन साधकद्वारा होता है, वे गुण साधकमे भी स्वत आ जाते हैं। इसलिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका लीला-चरित सर्वसाधारणके लिये परम हितकारी है। अत यहाँ श्रीराम-जन्म, सीता-राम-विवाह वन-गमन और राज्याभिषेक आदि लीलाओको सक्षिप्तरूपमे प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।—स०]

मर्यादापुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव[१]—(श्रीराम-जन्म-महोत्सव)

साकेत मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नित्यधाम है। अयोध्या सामान्य नगर दीखनपर भी भगवत्स्वरूप दिव्य भूमि है और अब तो इस समाचारसे वहाँकी प्रजा अत्यन्त उल्लसित हो उठी थी कि महारानियाँ अन्तर्वत्नी (गर्भवती) हैं। महाराज दशरथने देव-मन्दिराम विशेष अर्चन-अनुष्ठानोकी व्यवस्था करवा दी थी।

पुसवन तथा गर्भाधान-सस्कारका प्रश्न ही नहीं था। महाराज दशरथने महारानियोको अग्निदेवस प्राप्त पायस प्रदान किया था, इसे 'पुसवन' कहना हा तो कहा जा सकता है। उस पायसक प्राशनको 'गर्भाधान' मानना पडेगा। महारानियाके अन्तर्वत्नी होनक तीसरे मास सविधि 'सीमन्तोन्नयन-सस्कार' सम्पन्न हुआ।

चक्रवर्ती महाराज बार-बार महारानियासे पूछते रहत थे कि उनक मनम कोई इच्छा होती है? केवल महारानी कौसल्याने दोहद (गर्भवती माताकी इच्छा) सूचित की। उनके मनम ऋषियो-ब्राह्मणाक पूजन तथा दान करनेकी इच्छा बनी रहती थी।

'तुम प्रारम्भसे ऐसी हो।' महाराजने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम्ह देव-विप्रपूजन तथा दानम ता सदासे रुचि है। अपन लिय कोई विशेष आहार आभरण वस्त्र अथवा कहीं जाने कुछ देखनकी भी इच्छा होती है?'

महारानीन कहा—'मुझे दूसराको भाजन कराकर उसे तृप्त देखनम आनन्द आता है। वस्त्राभरण स्वर्ण-अन्न एव गौ आदि पाकर जब ब्राह्मण अथवा अन्य कोई प्रसन्न होता ह, तब मेरा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। हाँ! इन दिनो एक विशेष इच्छा अवश्य हा रही है।'

'वही तो मैं बार-बार पूछता हूँ।' महाराजने आग्रहपूर्वक जानना चाहा।

'महाराज, घोषित कर द कि राज्यमे जो भी अभाव-पीडित हो ऋणग्रस्त हों व राजकीय कोषसे जितना धन चाह ले ल।' महारानीने पुन अनुरोधके स्वरम कहा—'मैं चाहती हूँ कि राज्यम किसीको किसी भी प्रकारका कष्ट न हो।'

महाराजने सस्मित कहा—'घोषणा ता मैं आज ही करवा देता हूँ, किंतु देवि, दशरथ कभी इतना कृपण अथवा प्रमत्त नहीं रहा कि राज्यमे कोई किसीसे ऋण ग्रहण करे अथवा अभावका पीडा सहे। प्रजाम किसी प्रकारका कष्ट नहीं है, देवि! इस सम्बन्धमे आश्वस्त रह सकती हैं।'

'तुम्हारी अपनी कोई इच्छा?' महाराजने कैकयीसे पूछा।

'महाराज! मैं ता कभी सेवा-प्रिय रही नहीं, परतु इन दिना बडी जीजीके समीपसे हटनेको मन ही नहीं हाता है।' हँसकर महारानीने पुन कहा—'बार-बार जी करता है कि उनक सदनकी सब दासियाको पृथक् कर दूँ और उनकी सब सेवा स्वय करूँ लेकिन यह भी कर नही पाती, कारण कि किसी दासीको सेवाधिकारस वचित कैस करूँ? और बडी जीजीस तो इन दिना पता नहीं क्या कुछ कहनेम मुझ सकाच हाने लगा है। लगता है कि जो आनेवाला है वह

१-प्रस्तुत लखमे श्रीसुदर्शन सिह चक्र जीद्वारा लिखित श्रीरामचरित क कुछ अश सक्षपमें उद्धृत किये गये हैं।

बडी जीजीके कुमारका दृढ अनुगामी रहेगा।'

'मुझे कोई इच्छा नहीं हाती।' महाराजके पूछनेपर सुमित्राने बडे ही सरल भावसे कह दिया—'अपनी दोनों बहनोकी सुविधाकी व्यवस्था मेरा स्वत्व हे ओर मुझे इसमे परम सतोष है। दोनोने स्नेहपूर्वक मुझे यह अधिकार दे रखा है। मुझे भी कुछ चाहिये—यह ता में साच ही नहीं पाती।'

महाराजने अत्यन्त कुशल सेविकाएँ महारानियाकी सवाम नियुक्त कर रखी थीं। वे सेवाम, आवश्यक उपचारम तो निपुण थीं ही, इस विषयम भी अत्यन्त ख्यात थीं कि अन्तर्वत्नीके वस्त्र, आभरण कैसे होने चाहिये, उनके समीप कौन-से रत्न कब रहने चाहिये उनका शृगार एव अगराग किस ऋतुम किस दिन कैसा रहे—इस विषयम उनस अधिक ज्ञाता मिलना दुष्कर है।

इन दिना अयोध्यामे दुर्लभ पदार्थ भी सामान्य हो गय हैं—आकाश स्वच्छ रहता है, दिशाएँ निर्मल रहती हैं, नदियाम-सरोवरामे स्वच्छ जल परिपूर्ण रहता है, वायु सदा मन्द सुख-स्पर्शी चलता है एव वर्षा समयपर और सुहावनी होती है तथा सूर्यातप केवल शीत-निवारण करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति जैसे शृगार करके किसीके स्वागतम प्रतीक्षारत हो। स्वच्छता सम्पन्नता शोभा एव सगीतसे विश्व भव्य हा गया है। लगता है कि भगवती ज्येष्ठाने अपन सब उपकरण समट लिये और उन्ह लेकर कहीं ग्रहान्तर चली गयीं।

अयाध्याम प्रतीक्षा चल रही है—प्रतीक्षा चल रही है जन-जनक मानसम और प्रतीक्षा ता चल रही है स्वगम ऋषि-लाकोंम तथा ब्रह्मलाकतकम। परमपुरुष धरापर महाराज दशरथक राजसदनम आविर्भूत हानवाले हैं। उनके आगमनकी प्रतीक्षा चल रही है।

अयाध्याम ता लाग रात्रिम निद्रास चौंक-चौंक पडत हैं—'राजभवनम मङ्गल-ध्वनि गूँजी? स्वय महाराज दशरथक समीप जब अन्त पुरम काई सविका आती है ता उस देनक लिय महाराजका फर अपन कण्ठकी मणिमालापर पहुँच जाता है। य विभ्रम्त हा जात हैं कि—'यह शिशु-जन्मका शुभ-सवाद दन आ रही है।'

महागम्भा हा भी क्या महर्षि वसिष्ठ तथा दूसर ऋषिगण तक जो सहज वीतराग परम गम्भीर हैं, राजसदनसे किसीको आता देखते है तो समुत्सुक होकर यज्ञाहुतिके लिये बढाये हुए हाथका रोक लेते हैं, वह इसलिये कि सम्भवत —'राजकुमारके जातकर्मका आमन्त्रण आ रहा है।'

सचमुच वह समय आ गया। चैत्र-मास, शुक्ल-पक्ष नवमी-तिथि, दिवस मङ्गलवार, अन्तत जो मर्यादापुरुषोत्तम पधार रहे थे, उनके स्वागतके लिय काल मधुमास शुक्ल-पक्षकी मध्य तिथि रिक्ता—किसी भी शुभाशुभस शून्या-शुद्धा तथा मध्याह्नके ज्याति-क्षणसे अधिक उपयुक्त समय क्या प्रस्तुत कर सकता था! पावन पुनर्वसु-नक्षत्रका तृतीय चरण था।

कर्क-लग्नका उदयकाल था आर लग्नाधिप चन्द्रक साथ उच्चक गुरु वहाँ आसीन थे। मेषम सूर्यनारायण तुलाम शनिदव मीनम आचार्य शुक्र, मकरम राहु तथा वृश्चिकम कतु भी उच्चस्थ थे। बुध मिथुनम स्वगृही थे। वृषम राहु तथा वृश्चिकम कतु भी उच्चस्थ थे।

सहसा महारानी कौसल्याका कक्ष ज्यातिके अपार अम्बारस भर उठा। काटि-काटि पूर्णचन्द्र-ज्यात्स्ना—असाम

तज परतु सुशीतल सुमधुर, आह्लादक। महारानाको ता पता ही नहीं लगा कि प्रसववदना क्या हाती है? उन्हें न तन्द्रा आयी और न व मूर्च्छित हुई किंतु जा नत्राके सामने था—सहसा व विश्वास नहीं कर सकीं कि वह प्रत्यक्ष है। उन्होंन दानों करास नत्र मल—'मैं स्वप्न ता नहीं दख रहा हूँ।'

कुछ दरम महाराना कौसल्या कवल तन्द्राका प्राप्त हुई। व चकित आनन्दमग्न थीं। नत्र मलकर भा दख लिया—'नहीं व स्वप्न नहीं दख रही हैं।' व जाग्रत् हैं आर प्रत्यक्ष दख

आशीर्वाद देत हुए कहा—'नवजात चिरायु हो। चिरायु हा उसके आनेवाले अनुज।'

महर्षिगण एव विप्रवृन्द राजसदनकी ओर प्रस्थान कर रह थे। आज अयोध्याम किसीस कुछ कहनेकी आवश्यकता नही थी। आपचारिक शिष्टाचार आनन्दातिरेकक प्रवाहम वह चुका था। वाद्य, शखनाद वेद-ध्वनिसे गगन गूँज रहा था। गायक, सूत, मागध वन्दी पूरे उत्साहम थे। उन्ह यह भी अपेक्षा नहीं थी कि उनका सगीत, उनका काव्य या स्तवन कोई सुन भी रहा हे अथवा नहीं। स्त्री-पुरुष सब सुसज्जित हो विविध उपहार लिये राजसदनकी ओर दाड पडे थे। राजपथापर रथ अश्व या गजके लिय मार्ग नहीं रह गया था।

महाराज दशरथका राजकोप खुल गया था, यह कहना बहुत अल्प वर्णन हे। अयोध्याम प्रत्यक दे रहा था—लुटा रहा था। जा सम्मुख मिल जाय उसे ही दे रहा था। कोई नहीं दखता था कि वह सवक हाकर अपने सम्पन्नतम स्वामीको ही देने लगा हे। यहाँ तक कि दासियाँ भी आभूषण उछाल रही थीं सम्मुख जा मिले उसीकी ओर।

दधि, दूर्वा, लाजा, कुकुम हरिद्रा आर सुगन्धित पुष्पसार (इत्र)—इनसे राजपथ, वीथिकाआ-प्रागणाम काच हा जाती यदि गगनकी अजस्र पुष्प-वर्षा वहाँ सुमन-राशि आस्तृत न करती हाती। गगन मघाच्छन्न-जसा वन गया कुकुम उडनस। आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष सब रगासे लथपथ आर आनन्दमग्न। उछलत-कूदते नाचते-गाते स्तुति करत जय-ध्वनि करते लागाका समुदाय। शख तथा मङ्गलवाद्याका चित्ताकर्पक स्वर।

महाराज दशरथने मुनियाके माथ राजभवनम प्रवेश किया। स्नान करके दवताआ एव पितराका तर्पण-पूजन किया। महर्षि वसिष्ठन ब्राह्मणोंक साथ सविधि जातकम कराया।

महाराज दशरथका पुत्र-मुख-दशन करक जा आह्लाद हुआ—अङ्ग-अङ्ग शिथिल स्तब्ध रह गया। राम-राम उत्थित दह स्वद-स्नात। किसी प्रकार महर्पिक चरण-कमलाम शिराका रखा—'यह आपका मूर्तिभूत आशीवाद ।

महर्पिका कण्ठ भी मन्त्र-पाठम असमर्थ हा रहा था। इस महोत्सवका वर्णन अशक्य है और दान—आभूषणों तथा रत्नास आवृत अयाध्याक पथ तथा प्रागण चलनक अयोग्य हा गये थे। उनका हटानेकी विशप व्यवस्था महाराजक मन्त्रियाका करनी पडी।

भरतादिका जन्म

अयाध्याम महात्सवका महापूर प्रवाहित हो रहा था। चैत्रशुक्ल नवमीक मध्याह्नम महाराज दशरथका राजमदन प्रथम पुत्रके प्रादुर्भावसे प्राज्ज्वल हुआ। मधुमास, मङ्गलवार महामङ्गल लकर आया। पता ही नहीं लगा कि वह दिन कैसे क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया आर कस व्यतीत हो गयी वह रजनी।

धन्य था वह मङ्गलवार। अपने जाते-जाते अपने अन्तिम प्रहरम वह अयाध्याको एक आर उपहार दता गया। एसा उपहार जा त्रिभुवनम अतुलनीय रहा ओर रहगा। किसीने सध्या समाप्त नहीं की थी अभा सूर्योदय हुआ नहीं था। बुधवारका प्रभात तो हानवाला था अत अवश्य ही सब लागान सध्याक सकल्पम अव दशमी तिथिका उच्चारण किया था। चन्द्रमा-पुष्य नक्षत्रपर आ चुक थे आर मान-लग्न था। इसा ममय महारानी ककयीके सदनसे पुत्रके पदार्पणका मङ्गल-वाद्य गूँजा।

धर्मप्राण जन थे अयोध्याक, किंतु आज आह्निक कृत्यम यह व्याघात सबको प्रिय—अत्यन्त प्रिय लगा। ऋषि-मुनियान ही नहा, महर्षि वसिष्ठन भा बहुत शीघ्रताम प्रात कालीन तर्पण-हवन समाप्त किया। लगता था कि भगवान् भुवन-भास्करका भी अपन वशकी यह परमोत्तम श्रीवृद्धि-दशनका कुतूहल हे इसी कारण वे भी त्वरित पदास गगनम उठ आय ह।

वहा उल्लास वही जयनाद एव वाद्यध्वनि—अभा ता प्रथम महात्सव ही चल रहा था—इस कारण जा दूसरा आया था उसका पहलम पृथक् अस्तित्व हा नहीं था। वह अपन लिय पृथक् महात्सवका अवसर भा लकर नहीं आया।

अयाध्याक पथ-वाथियाँ उनक दिय-लुटाय पदार्थोंस पटत जा रह थ। उन्ह लगता था कि उन्ह ग्रहाता मिल नहीं रह हैं—जा मिलत भी ह व अत्यल्प भी बहुत आग्रह करनपर स्वीकार करत ह।

अभी इस महोत्सवका जैसे प्रारम्भ ही हुआ हो, अभी नर-नारी सबका उत्साह पूरे आवगम ही था कि महारानी सुमित्राक सदनसें भी मङ्गल-वाद्य गूँज उठा। महाराज दशरथके कुमाराको लोकाराध्य हाना था अत सभी कुमार आराधनाके पावन-कौलम ही प्रकट हुए।

दशमी-तिथि, बुधवार वही चैत्रमासका शुक्लपक्ष। मध्याह्नका ही समय। महारानी सुमित्राके युग्मज सतान हुई—दो कुमार।

प्राय युग्मज शिशुओकी आकृति तथा प्रकृति समान हाती ह। महारानी सुमित्राक दोना शिशुआका शरीर तप्त-स्वर्ण-गौर किंतु शरीरके अङ्ग तो जसे चारा कुमाराके एक ही साँचेम ढले थे। इन दाना कुमाराम भेद कर पाना दाना नील-सुन्दर कुमारोम भेद कर पानेस भी कठिन था।

महारानी सुमित्राने पहली बात शिशुआको दखते ही कही—'मैं निश्चिन्त हो गयी। ये दोनो अपने अग्रजाके अनुगामी बनग। मैं अपनी दाना बहनाकी सेवासे सतुष्ट हूँ। अब ये दाना मुझ चाराकी माताका गारव देन आ गये हैं।'

महाराज दशरथका जैसे चारा पुरुषार्थ साकार प्राप्त हो गय। इन कुमाराका दर्शन करक महर्षि वसिष्ठने कहा—'राजन्! धन्य हा तुम! श्रीनारायणका तुमपर असीम अनुग्रह। सृष्टिम वे अपने चतुर्व्यूहात्मक स्वरूपासे आपको पिताका गौरव देने पधारे।'

महाराजक चार कुमार—परम सुन्दर भुवन-मनाहारी चारा शिशु 'युग-युग जीते रह।'

आशीर्वाद ब्राह्मण वदमन्त्राके द्वारा दत हैं और आज ता वे 'स्वस्ति'-पाठ करत आशीर्वाद दत मानो थकत ही नहीं। आशीर्वाद तो जन-जनक हृदयसे निकल रहा है। महिलाएँ अचल फैलाकर सूर्यनारायणस दवताओंम आशीर्वाद माँगने लगी हैं—इन चारा राजकुमाराक लिय।

अयोध्याम अब अविराम महात्सव चलना था। असख्य अतिथि आ रहे थे। उनके आवासकी आतिथ्यकी व्यवस्था राजकर्मचारियाने प्रारम्भ कर दी थी और महर्षि वसिष्ठने महाराजका आगत तपस्वा, ऋषि-मुनि-गणाकी आरस निश्चिन्त कर दिया था।

अयाध्याम यह पहचाननका उपाय नहीं रह गया था कि आगताम मानव-वेशम कितने दिव्य लाकाक पूज्य ह, कितनी दवियाँ है। सबका ही पूजनीयक समान सत्कार और सभी ता आत थे स्नहका सवाका अवसर पानकी उत्कण्ठाका भाव लकर।

नित्य-नूतन पुरी अयोध्या। नित्य-नूतन महात्सव। नित्य-नूतन उत्साह जन-जनम। अब तो अतिथियाका अजस्र प्रवाह अयाध्याकी ओर उमड पडा था। अयोध्याम महाराज दशरथक अन्त पुरम जा शिशु आ गये थ, त्रिभुवन जसे उनक जन्मोत्सवम उन्मद हो उठा था।

बालक्रीडा

चक्रवर्ती महाराजके कुमार बडे हुए और खडे हाकर चलन भी लगे फिर ये किसी एक ही प्राङ्गणमें कस रह सकत थे? चाह जब य भवन-द्वारसे निकल पडते हैं और जिधर मनम आये उधर ही चल दते हैं। सेवक-सेविकाएँ साथ रहत हैं किंतु बालकाको मना करनेकी आज्ञा उन्ह नहीं ह। ये सब केवल सुरक्षा तथा सहायता ही कर सकते हैं।

कुमार-क्रीडा

अयोध्याक नागरिकोका आनन्द शत-सहस्र-गुणित हो उठा जब चक्रवर्ती सम्राट्‌क कुमार राजसदनस बाहर क्रीडाके लिये निकलने लग। कितनी आकाक्षा थी सबकी कि कुमार उनके गृह उनके आपण-स्थानतक भा कभी पधारें। अब उस अभिलाषाक पुष्पित-फलित होनका अवसर आ गया।

चरणाम स्वर्ण-रत्न-खचित उपानह कटिम कौशेय कछनी, स्कन्धपर दुकूल कण्ठम मौक्तिक माला वनमाला तथा भुजाआम रत्नाङ्गद कलाईयाम कङ्कण अञ्जन-रञ्जित खञ्जन-मञ्जु विशाल दृग, तिलक-भूषित भाल कर्णोम रत्न-कुण्डल घुँघराली सघन-सुकामल अलक मस्तक मणिरत्न-खचित कुलहियास मनारम करोम [illegible] धनुष और चमकत बाण। अभी य परम सुकुमार [illegible] कहाँ ह कि कटिपर तूणीर धारण कर सक। [illegible] इनके साथ निषङ्ग लिय चलत हैं, [illegible]-पुत्तिनपर लक्ष्य-वेधकी क्रीडा करना चाह [illegible]

प्राय एक ही रथम चारा [illegible] ह। [illegible] तथा मन्त्री-पुत्र साथ हात हैं [illegible] ही अनक रथ साथ [illegible]

इनके साथ ही रहना चाहते ह।

चक्रवर्ती महाराजके सेवक तथा मन्त्री साथ चलते हैं—'राजकुमार जिस वस्तुको लेना चाहे, उसका पूरा निष्क्रय दिया जाय। यह आज्ञा ह', किंतु वणिक् कहाँ इसे स्वीकार करत हैं। उनका एक ही स्वर है—'हमारे पिता-पितामहकी परम्परास प्राप्त सम्पत्ति सम्राट्का प्रसाद है। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि हम महाराजाधिराजके कुमारोकी अल्प सवा भी कर सक। काइ क्षुद्र उपहार तक भी राजकुमार स्वय पधारनेपर स्वीकार न कर। ऐसा अपराध तो हमारा नहीं माना जाना चाहिये।'

वस्त्र-आभूषण, मिष्टान्न, पुष्पसार मालाएँ आदि सबके व्यापारी हैं। राजकुमार जब चाहे जिसकी प्रार्थनापर उसके यहाँ जा खड होते ह और बालक अब चाहे जितना भी अस्वीकार कर, वह अपना श्रेष्ठतम उपहार राजसदन भेजगा ही। मन्त्री प्रबन्ध कर दते है कि उस व्यापारीको निष्क्रय न कहकर राजकीय पारितोषिक रूपमे अनेक गुणित धन प्राप्त हा जाय।

इस प्रकार श्रीरामका समय अपने अनुजाक साथ आमाद-प्रमाद और बाल-क्रीडाम व्यतीत हाने लगा। जैसे-जैस व बड हान लग, अपने पूज्य पिता दशरथक राजकाज तथा अन्य कार्योम स्वत रुचि लेत और अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे सत्-परामर्श भी दनका प्रयास करते। कुमारकी इन विशपताआका देखकर राजा दशरथका हदय अत्यन्त आह्लादित हा जाता।

महर्षि विश्वामित्रका शुभागमन

अयाध्याक चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ दिनक प्रथम प्रहरक अन्तम राजसभाम सिहासनपर विराजमान हुए ही थ कि द्वारपालन समाचार दिया—'ऋषि विश्वामित्र महाराजस साक्षात्कार करन पधार हैं।'

'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र!' अच्छी बात यह थी कि रघुकुल-गुरु महर्षि वसिष्ठ उस समय राजसभाम ही थे। व सहसा [illegible] अपन आसनस उठ और उन्हान महाराजस कहा— 'ब्रह्मर्षि परम राजर्षि रह हैं अत ऋषियाक साथ सनापतियाका भी उनका स्वागत करना चाहिय।'

महर्षि वसिष्ठ मन्त्री वामदव जाबालि आदि सभा उपस्थित ऋषिगण उठे। सभी मन्त्री और सेनापति महाराजके साथ हो गये। महाराज शीघ्रतापूर्वक द्वारपर पहुँच। शख ध्वनि, विप्रोका मन्त्रपाठ एक क्षणको विरमित हुआ जब महाराजन भूमिम पडकर दण्डवत् प्रणिपात किया—'यह ऐक्ष्वाकु अज-तनय दशरथ श्रीचरणाम प्रणत है।'

विश्वामित्रजीने महाराजको उठाया। वसिष्ठजीने उन्हें अङ्कमाल दी। दूसर सभी ऋषियाने उनकी वन्दना की। मन्त्रपाठ वाद्यध्वनिक स्वागतके मध्य महाराज विश्वामित्रजीको राजसभामे ले आये। वहाँ रत्नसिहासनपर मृगचर्म आस्तृत करके उन्हे विराजमान कराकर महाराजन उनके चरण धोये। उस पादोदकस पूरी राजसभा सिंचित हुइ और उसे राजसदन सिंचित करनेको भेज दिया गया।

अर्घ्य, पाद्य चन्दन-माल्य धूप-दीपादिसे पूजा करक महाराजने कहा—'आज मरे जन्म-जन्मान्तरके पुण्याका उदय हुआ है। आज मर पितर परितृप्त हुए। आज मुझपर भगवान् जनादनकी कृपाका अवतरण हुआ कि आपके चरण-दर्शनका सोभाग्य मिला। आज आपका पादोदक पाकर मैं निष्कलुप हो गया। आपन जेसे इतनी अहैतुकी कृपा की है वैसे ही राजसदन पधारकर अपना प्रसाद प्राप्त करनेका साभाग्य अन्त -पुरवासिया तथा राजकुमाराका भी प्रदान कर।'

'राजन्! नियम यह है कि याचक अतिथि अपनी याचना-पूर्ति हानेपर ही आहार ग्रहण करता है।' विश्वामित्रजीने कहा—'मैं आप सत्यसन्ध तथा परमादारक समाप याचक बनकर आया हूँ।'

'भगवन्! दशरथका इसस महान् सौभाग्य और क्या हागा।' महाराजन अजलि बाँधकर भक्ति-विभार-स्वरमें कहा—'यह सम्पूण राज्य समस्त काप सारी सना पूरा अन्त पुर, मैं स्वय और मरे सत्र पुत्र आपक हैं। मैं अपना मस्तक भी देकर सवा कर सकूँ ता कृतार्थ हा जाऊँगा।

'रघुकुलकी परम्पराक अनुरूप आपका वचन है। विश्वामित्रने शान्त-स्वरम कहा—'विवश हाकर ही मैं आपक समीप याचना करन आया हूँ।'

'आप आज्ञा कर।' महाराजन कहा—'मैं अपना सर्वस्व दकर उस पूरा करूँगा।'

'राजन्! आप सत्यनिष्ठ हैं और परम उदार हैं। इस यज्ञम

कोई ऐसा कृपण या कापुरुष नहीं हुआ जो आगत तपस्वीको निराश कर दे।' विश्वामित्रने फिर कहा—'आप तो प्रख्यात महादानी हैं। मुझे आपके औदार्यपर भरोसा न होता तो मैं तपोवन छोड़कर अयोध्या नहीं आता।'

महाराजने कहा—'धर्म और सत्यसे महान् कुछ नहीं है। आप आज्ञा करें।'

'मुझे हिमालयमें अपनी तपोभूमि कौशिकीके तटपर तपस्या करना प्रिय है। लोकमें और परलोकमें भी मेरी कोई स्पृहा नहीं है।' विश्वामित्रजीने कहना प्रारम्भ किया—'किंतु मैंने एक पार्वण-यज्ञका संकल्प किया और गङ्गातटपर सिद्धाश्रम आ गया। वह अनादि पुण्यस्थली मुझे प्रिय लगी। वहाँ पहलेसे ही अनेक तपस्वी मुनिगण रहते थे। सबने मुझे सहयोग दिया।'

महर्षि वसिष्ठ प्रारम्भसे ही चौंक गये थे—'ऐसी क्या समस्या है जो विश्वामित्रजी नहीं सुलझा पाते। सृष्टिमें इनके लिये दुर्लभ, दुर्गम अलभ्य अशक्य तो कुछ है नहीं। तब ये कहना क्या चाहते हैं।'

मन्त्रियोंको, ऋषियोंको भी आश्चर्य था—विश्वामित्रजी और याचना?

'लेकिन मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाता है। जब पर्वपर हम लोग यज्ञारम्भ करते हैं, राक्षस आकर अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा करके यज्ञ-स्थान भ्रष्ट कर देते हैं।' विश्वामित्रजीने कहा—'आपके कुलगुरुके सम्मुख ही मैंने शस्त्र-न्यास किया। कोई यज्ञ-दीक्षित ऋषि अस्त्र लेकर असुर-संहार करे, यह उचित नहीं है। शाप देकर भी मैं उन सबको भस्म कर सकता हूँ, किंतु अनेक बार इसी प्रकार मेरा तप नष्ट हो चुका है। अतः मैं आपके समीप आया हूँ। यज्ञ-विघ्न करनेवाले राक्षसोंके नायक दूसरे किसीसे भी अवध्य हैं। अब उनकी मृत्युका समय आ गया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामके करोंसे ही उनकी मृत्यु विहित है। अतः मैं रामकी याचना करता हूँ।'

'श्रीरामकी याचना?' महाराज दशरथ तो सुनते ही लगभग मूर्च्छित-से हो गये। बड़े कातर कण्ठसे उन्होंने कहा—'भगवन्! वृद्धावस्थामें मुझे चार पुत्र प्राप्त हुए। चारों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और उनमें भी राम तो मेरे प्राण हैं। अभी तो राम पूरे सोलह वर्षके भी नहीं हुए। ये बालक हैं, कोई युद्ध-विशारद नहीं और न शत्रुके बलाबलको जानते हैं।'

'राजन्! कमललोचन रामके प्रभावको मैं जानता हूँ, आपके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जानते हैं और दूसरे तपोधन जानते हैं। आप इनके प्रभावको नहीं जानते। आप तो इन्हें अपना सुकुमार पुत्र मात्र जानते हैं।' विश्वामित्र गम्भीर होकर बोले—'आप किसी प्रकारका भय मत करें। मैं इनकी रक्षाका दायित्व लेता हूँ। इनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। इनका बहुत मङ्गल होगा।'

महर्षि वसिष्ठ संतुष्ट हो गये। जब विश्वामित्रजी रक्षाका दायित्व लेते हैं तब सृष्टिमें अनिष्ट करनेकी शक्ति किसमें है। ब्रह्मर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके भाइयोंके साथ श्रीराम पिताके समीप बैठे थे। विश्वामित्रजी बात कर रहे थे महाराजसे, किंतु उनकी अपलक दृष्टि श्रीरामके मुखपर लगी थी। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामकी ओर देखा तो उन शील-सिन्धुने किंचित् मस्तक झुका दिया। यह उनकी स्वीकृति थी विश्वामित्रजीके साथ जानेकी।

'मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ।' महाराजने कातर प्रार्थना की—'वृद्ध हो गया फिर भी मरणपर्यन्त युद्ध करूँगा। आप श्रीरामको ले जाना चाहते हैं तो मुझे ससैन्य साथ चलनेकी अनुमति दें।'

'राजन्! वे राक्षस-नायक हैं मारीच और सुबाहु। लंकाधिप राक्षसराज रावणके वे अनुचर हैं। रावण स्वयं नहीं आता उसने अपने इन सेवकोंको हमारे उत्पीडनके लिये नियुक्त कर रखा है।' विश्वामित्रजीने अब संकटका स्वरूप स्पष्ट किया—'आप अयोध्याकी सेना लेकर चलेंगे तो दशग्रीव भी ससैन्य आ धमकेगा। श्रीराम बालक हैं अतः उनके जानेसे आतंक नहीं फैलेगा। वे उन दुष्ट असुरोंको समाप्त कर देंगे। रावणको आनेका अवसर नहीं मिलेगा।'

'मैं युद्धमें अब इस वार्धक्यमें मायावी दशग्रीवको पराजित कर सकूँगा इसकी आशा मुझे नहीं है।' महाराजने स्पष्ट कहा—'उस क्रूरसे शत्रुता करना बुद्धिमानी नहीं है। मैं उसके अनुचरोंके विरुद्ध युद्ध करने अपने पुत्रोंको नहीं भेज सकता। आप मुझे क्षमा ।'

महाराज दशरथकी बात पूरी नहीं हुई। विश्वामित्रजी क्रुद्ध हो सिंहासनसे उठकर खडे हो गये। उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। उन्होने अत्यन्त उग्र स्वरसे कहा—'पहले प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे भग कर रहे हो? तुम ऐसा कर नहीं सकते।'

'ब्रह्मर्षि!' रघुकुलगुरु वसिष्ठजी अत्यन्त सशक हो उठे। उन्होंने उठकर विश्वामित्रका हाथ पकडा और आसनपर बैठाया तथा अनुरोधके स्वरमे कहा—'आप मुझे भी कुछ समय अवश्य दगे। अन्तत में रघुकुलका पुरोहित हूँ। महाराज और श्रीराम मेरे भी शिष्य हैं।'

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने वसिष्ठकी ओर देखा और फिर श्रीरामकी ओर देखा। उन पद्मपलाश-लोचनोसे दृष्टि मिलते ही विश्वामित्रकी कठोर भृकुटि सीधी हो गयी। उनका रोषसे तमकता मुख सहज हो गया। वे सहज स्वरमे बोले—'अपनी प्रतिज्ञा भग करके यदि आप सुखी होते हो तो मैं लौट जाऊँगा, किंतु विश्व सदा यही कहेगा कि रघुकुलका प्रथम नरेश दशरथ था, जिसके यहाँसे तपस्वी अतिथि निराश लौट गया और उस नरेशने तपस्वीको वचन देकर उसका मोहवश पालन नहीं किया।'

'राजन्! आप अपनी प्रतिज्ञा भग करके धर्मको नष्ट मत करो।' अब महर्षि वसिष्ठ बोले—'श्रीराम अस्त्रज्ञ हो या न हो ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिसके रक्षक हैं उसका त्रिभुवनके सब राक्षस मिलकर भी क्या बिगाड लेंगे? आपको पता नहीं है कि अमित-तेजा कृशाश्वने अपने सब अस्त्र विश्वामित्रजीको दे दिये हैं। सुप्रभाके भी सब अस्त्र इनके समीप हैं। देवताओ तथा असुरोके समीप भी कोई ऐसा दिव्यास्त्र नहीं जो इन्हे उपलब्ध न हो। त्रिलोकीमे अभूतपूर्व अस्त्रज्ञ विश्वामित्रजी हैं। इनके समान अस्त्रज्ञ आगे भी नहीं होगा। इनके रक्षणमे रामको क्या भय है? ये राक्षसोंका वध करनेमे स्वय समर्थ हैं किंतु आपके पुत्रका हित करने आये हैं।'

महाराज दशरथके लिये अपने कुलगुरुकी आज्ञाको टाल देना सम्भव नहीं था। उन्होंने अत्यन्त कातरभावसे कुलगुरुकी ओर देखा।

'आप कुछ क्षण मुझे क्षमा करें। महर्षिने विश्वामित्रजीसे कहा। उनके सकेतके अनुसार महाराज उनके पीछे एकान्त-मन्त्रणा-कक्षमे चले गये।

महर्षि विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणका प्रस्थान

'आप अब अपने श्रीचरणोसे राजसदनको पवित्र करें।' महर्षि वसिष्ठने राजसभामें पहुँचते ही विश्वामित्रजीसे प्रार्थना-भरे स्वरमें कहा—'अयोध्या-नरेशको आपके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त होना चाहिये। आप आहार ग्रहण करके किंचित् विश्राम कर लें। श्रीरामको भी लक्ष्मणके साथ भोजन करके माताओसे अनुज्ञा प्राप्त करनेका अवसर दें। दोनों राजकुमार इसके अनन्तर आपका अनुगमन करेंगे।'

'चक्रवर्ती महाराजका अक्षय यश भुवनको पवित्र करेगा।' ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सुप्रसन्न होकर राजसदनके अन्तःपुरमे जानेके लिये उठ पडे। महर्षि वसिष्ठको उनका साथ देना था।

सानुज श्रीरामने माताओको प्रणाम किया। प्राणप्रिय पुत्रोको ऋषिके साथ राक्षसोसे सग्राम करने जानेको भेजना बहुत दारुण, अत्यन्त दुःखद है परतु क्षत्राणी तो पुत्र उत्पन्न ही करती है युद्धमे सहर्ष भेजनेके लिये। अतः महारानियोंने उन्हे अङ्कसे लगाकर आशीर्वाद दिया। भरत-शत्रुघ्नने श्रीरामकी पद-वन्दना की।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका इष्टदेवके समान राजसदनमे सत्कार हुआ किंतु वे आज ही प्रस्थान कर देना चाहते थे अतः शीघ्र गमनोद्यत हो गये। पुत्रो मन्त्रियो तथा कुलगुरुके साथ महाराज सरयू-तटतक ब्रह्मर्षिके साथ आये।

'राजन्! आप किसी प्रकारकी शका मत करें।' विश्वामित्रजीने आश्वासन दिया—'इनका कल्याण होगा। ये आपके यशको उज्ज्वल करके आपके चरणोमे प्रणाम करेंगे। विश्वामित्र अपने नेत्रगोलकोके समान इन्हे मानेगा।'

राजसदनसे चलते समय ही ब्राह्मणोके साथ महर्षि वसिष्ठने मङ्गल-पाठ किया था। सरयू-तटपर श्रीराम-लक्ष्मणने पिताको कुलगुरुको ब्राह्मणोको पुनः प्रणाम किया। भाइयोको अङ्कमाल दी। दोनो महर्षि मिले परस्पर। आशीर्वाद प्राप्तकर दोनो भाई विश्वामित्रजीके साथ अयोध्यासे प्रस्थान कर गये।

मस्तकोपर राजकुमारोके योग्य मुकुट नहीं थे। घुँघराली काली अलकोमे पुष्पमाल्य सजे थे। ललाटपर लगे कुकुम-

तिलकपर अक्षतक दाने चिपके थे। कुटिल भृकुटि, विशाल मनाहर लोचन, कर्णोमे झलमलाते रत्नकुण्डल कम्बुकण्ठोम मौक्तिक मालाएँ, वनमाला, उत्तरीय। पीठपर कसे त्राण वाम-स्कन्धपर धनुष, कटिमे पीतपट—दोना भाइयोकी अद्भुत छटा थी।

महर्षि विश्वामित्रने सरयूके दक्षिण-तटसे यात्रा प्रारम्भ की। मार्गम दाना राजकुमाराको महर्षिने कई विद्याएँ प्रदान कीं। चलते-चलते एक वन आया। ताडका राक्षसी इसी वनमे रहती है। दो कोसतक इस वनम कोई प्रवेश नहीं करता। यह जन-वर्जित क्षेत्र हो गया है। महर्षि विश्वामित्रने दोना राजकुमाराका सावधान करते हुए ताडका-वधका सकेत किया फिर क्या था? एक बाणसे ही प्रभुने ताडकाका उद्धार कर दिया और वह वन निरापद हो गया।

इसी प्रकार अन्य राक्षसासे भी वहाँके यज्ञ-स्थलको मुक्त करना था। दोना राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ आग बढ और सिद्धाश्रमम पहुँचे, जहाँ कई तपस्वी निवास करत थे। विश्वामित्र इस सिद्धाश्रमके कुलपति थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ। मारीच-सुबाहु आदि राक्षसाने अपन दलबलके साथ यज्ञको ध्वस करनेका प्रयत्न किया। प्रभुने सभी राक्षसाका सहारकर उस भूमिको भी निरापद कर दिया। दोना राजकुमाराने कुछ समय यज्ञाश्रमम निवास किया। इसी क्रमम महर्षि विश्वामित्रने विदेहराज जनक ओर उनकी तनया भगवती सीताकी चर्चा राजकुमारासे की और जनकपुरसे परिचित कराया। इसी बीच महर्षिको यह समाचार मिला कि जनकपुरम विदेहराजके द्वारा धनुष-यज्ञ और सीता-स्वयवरका आयोजन किया गया है। राजकुमाराको भी इस समारोहको देखनकी उत्सुकता हानी स्वाभाविक थी। दाना राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ जनकपुरके लिये प्रस्थान कर गये।

जनकपुरमे पदार्पण तथा नगर-दर्शन

अकस्मात् पहुँचे थे महर्षि विश्वामित्र मिथिलाम। ऋषि-मुनि किसीको पूर्व सूचना देकर कदाचित् ही आत हैं। अपनी इच्छाके धनी इन आत्माराम आप्तकाम महापुरुषाका पदार्पण मानवका सौभाग्य। लकिन विश्वामित्रजी अनवसर नहीं आये थ। मिथिला-नरेश महायज्ञ कर रहे थे।

वहाँ उपस्थित सभीने यथाविधि सम्मान किया। सब जानते थे कि एक विख्यात कुलपति ऋषिको किसीके भी आश्रमकी अपेक्षा पृथक् आवासम सुविधा होती है। अत विश्वामित्रजीके लिये पृथक् आवासकी सुन्दर व्यवस्था की गयी।

जलका सुपास (सुभीता) था। आम्रोपवनकी शीतल छाया थी और आस-पासके ऋषि-मुनियाने कन्द, मूल, फलकी राशि अर्पित कर दी थी प्रथम सत्कारम। महर्षि विश्वामित्र तथा उनके साथके तपस्वी इधर-उधर वृक्षोकी छायाम सुविधानुसार बैठ गये।

मध्याह्न-स्नान, सध्यादिके अनन्तर जब फलाहार करके महर्षि अल्प विश्राम कर चुके श्रीराम सानुज महर्षिके समीप आकर बैठ गये। लक्ष्मणने अग्रजके मुखकी ओर देखा। उनके मनम हो रहा था—'जनकपुरीकी प्रशसा है कि यह विवेकी लोगोकी नगरी है। वीतराग, नि स्पृह केवल कर्तव्य-पालनार्थ कर्म-तत्पर नागरिकोका नगर कैसा होता होगा? इस नगरको एक दृष्टि देख तो आना चाहिये।'

अनुजकी साभिप्राय दृष्टिका तात्पर्य श्रीरामने समझ लिया। उन्हाने महर्षिके चरणाम मस्तक झुकाकर अजलि बाँध ली। इस शील-सौजन्य एव शिष्टतापर मुग्ध महर्षि पुलकित-भावम बोले—'वत्स! बिना सकोच कहो, क्या चाहते हो?'

'भगवन्! लक्ष्मण नगर-दर्शनको उत्सुक हैं।' श्रीरामने कहा—'अनुमति हो तो इन्हे ले जाऊँ। मैं शीघ्र इनको लेकर लौट आऊँगा।'

'तुम्हारे देखने योग्य है यह विदेहपुरी।' महर्षिने अनुमति दे दी। 'नगरक पुण्यात्मा नागरिकोको तुम दोनो भाइयाका दर्शन होना चाहिये तुम जाओ। किसी प्रकार लौटनम शीघ्रताकी आवश्यकता नहीं है।'

किसीको साथ भेजनकी आवश्यकता नहीं थी। कोई तपस्वी साथ होगा ता राजकुमाराको सकोच होगा। अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजक कुमाराको किसा भी नगरम न भटकनेका भय था न कोई सूचना आवश्यक थी। मिथिला तो निरापद शान्त नगरी थी।

पहली ही दृष्टिम मिथिलाने दाना कुमाराकी दृष्टिको आकृष्ट कर लिया। अयोध्याकी शाभाकी समता नहीं थी

सृष्टिम, किंतु मिथिलाका आकर्षण भी कम नहीं था। अयोध्याके निर्माणमे साज-सज्जाम जहाँ सौन्दर्य था, वहीं उस कलामे अपार वभव एव अजेय प्रभुत्वकी झलक सर्वत्र प्रकट थी परतु मिथिलाका निर्माण, साज-सज्जा सर्वथा पृथक् थी उससे। नगर सुसज्ज था, किंतु उस सज्जामे सौकुमार्य एव सात्त्विकता थी। उपमा ही देना हो तो कहना होगा कि अयोध्या 'सम्राज्ञी' प्रतीत होती थी और मिथिला 'स्वयवरोन्मुखी राजकन्या।'

राजपथ, वीथियाँ चतुष्क, भवनद्वार सब सुसज्ज थे, किंतु सर्वत्र वही सुकुमारता वही सात्त्विकता। कहीं राजस-प्रदर्शनका एक बिन्दु तक नहीं था वहाँ। वैभव था—विराट् वभव था, किंतु रत्नखचित द्वारोमे भी हस सरोज, कुसुम-कलिकाएँ और देवकुमारियाँ अकित थीं। कसरी तथा महावृषभ चित्राकनमे भी स्थान नहीं पा सके थे।

राजपथ तथा वीथियाँ कौशय पटाक छाया-वितानोसे जा-मुक्ता-झालरासे अलकृत थी। पथपर सुकुमार सुमन एव लाजाके चित्राकन थे। द्वारा तथा चतुष्कापर प्रदीप-समन्वित मङ्गल-कलश शोभित थ। सुरभि-सिंचित थे पथ और गवाक्षोस सुरभित धूम्र उठ रहा था।

श्रीरामने सानुज नगरम प्रवश किया तो सर्वप्रथम बालकोका समूह समीप दौड आया। यह समूह क्रमश बढता गया। बालकोके लिये अपना-पराया कहाँ होता है! उन्हे परिचय करते कितनी दर लगती है! कोइ बालक दौडा आता था और श्रीराम या लक्ष्मणका हाथ पकडकर कहने लगता था—'मेरा नाम जयध्वज है। म निमिवशी क्षत्रिय हूँ। मेरे पिता महाराजके कृपापात्र हैं। आप दोनो कहाँसे आये? क्या नाम है आप दोनोका? कब आ गये हमारे नगरमे? मैंने तो पहले आपको कभी नहीं देखा। आपके पिताश्री साथ आये ह? कहाँ आवास लिया है आपने? मेरे भवन चलकर विराजे। मेरी माताजी बहुत प्रसन्न होगी। मेरे पिताजी आप दोनोका आपके पिताश्री और सबकाका भी सत्कार करगे। आइये! मेरा भवन दूर नहीं ह।
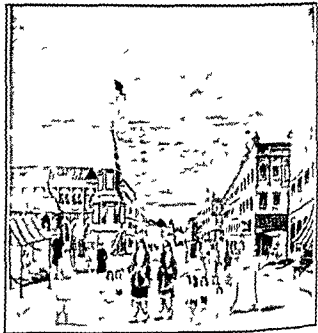
लोग भवनोसे पथम आ गये। पथके दोनो ओरके भवनोके गवाक्ष, छज्जे पुर-नारियोसे भर उठे। वृद्धाएँ द्वारोपर आ खडी हुई। भवनोसे लाजा दूर्वा, पुष्पके साथ केसरके सीकरोकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जिधरसे निकल रहे थे, उधरके पथ एव भवनोपरसे आशीर्वादकी मङ्गल-ध्वनि गूँजती चलती थी।

'महर्षि विश्वामित्रके साथ चक्रवर्ती महाराज दशरथके दो कुमार नगरमे आये हैं।' पूरे नगरमे चर्चा फैल गयी—'इन्दीवर-सुन्दर श्रीराम और स्वर्ण-गौर लक्ष्मण। मन्मथ इनके चरणोंमे बैठे तो बहुत कुरूप दीखेगा, इतना सौन्दर्य और ऐसे शीलसिन्धु कि दोनोमेसे किसी एकने भी तो किसी गवाक्षकी ओर दृष्टि नहीं उठायी।'

'दोनो कुमार बहुत विनयी ह।'

नगरमे दोनो अयोध्याके राजकुमारोकी ही चर्चा थी और घरोमे आज बालक प्रमुख हो गये थे। वृद्धाएँ, वधुएँ, कुमारियाँ ही नहीं पुरुष भी बालकोको समीप बैठाकर बार-बार अनेक प्रकारसे पूछ रहे थे दोनो कुमारोंके सम्बन्धमे और बालक इस प्रकार गवके साथ वर्णन कर रहे थे कि जैसे दोनो कुमार उनके अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हो और उनके सम्बन्धमें सब कुछ वे जानते ही हो।

श्रीसीता-राम-विवाह-लीला

(साकेतवासी लक्ष्मणकिलाधीश स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

[यद्यपि प्रभुकी समस्त लीलाएँ मङ्गलमयी हैं, आनन्दमयी हैं किंतु विवाह-लीला परम मङ्गलमयी है, क्योंकि इस लीलामे युगलकिशोर चितचोरका मङ्गलमय दुलह-दुलहिनरूपमे भक्तोको दर्शन प्राप्त होता है। त्रिदेव अपनी-अपनी पत्नियोके साथ युगलरूपका दर्शनकर आनन्दमे विभार हो गये तथा शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥

प्रभुके नाम रूप लीला तथा धामके साथ ही मधुरा-भक्तिका विवेचन जिस प्रकार विवाह-प्रसगमे हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अतएव श्रीगोस्वामीजीने इस विवाह-लीलाको महामङ्गलमयी कहा है। मिथिलामे नगर-दर्शनसे लेकर विवाह-पर्यन्तकी लीलाओका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।—स०]

मिथिला-प्रसगमे श्रीराघवेन्द्रके नगर-दर्शनका समाचार सुनते ही नर-नारीगण धाम-काम छोडकर दौड पडे—

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रक निधि लूटन लागी॥

मिथिलामे बाल-वृद्ध नर-नारीगण सभी प्रभुके दर्शनार्थ दौडे, यहाँ कोई किसीको रोकनेवाला नहीं। रगभूमिके प्रसगमे स्पष्ट है—

चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

नगर-दर्शनमे भी गोस्वामीजीने कहा है कि श्रीराघवेन्द्रने अपनी रूप-माधुरीसे समस्त नर-नारियोको वशमें कर लिया—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

गोस्वामीजी 'नर'का नाम प्रथम लेते हैं 'नारी' का नाम बादमे लेते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारियोको वशमे करना सरल है किंतु नरको वशमे करना कठिन है। श्रीराम-रूपकी यही विशेषता है कि कठोर चित्तवाले पुरुषोको भी अपने रूप-गुणोसे वशमे कर लेते हैं।

इस सदर्भमे सर्वप्रथम श्रीविदेहराज जनकका प्रसग सामने आता है। वह अपने सचिव पुरोहित सेनापति एव बन्धु-बान्धवोके साथ श्रीराघवेन्द्रका दर्शनकर विमुग्ध हो गये। उनका ब्रह्मानन्द भी शिथिल हो गया। उनके मनने ब्रह्मानन्दका परित्याग कर दिया—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

जब ज्ञानिशिरोमणिकी ऐसी दशा हो गयी तब अन्य पुरवासियोकी दशाका वर्णन कहाँ सम्भव है? फिर कोमल हृदयवाली सखियोकी दशा तो नितान्त विलक्षण हो गयी। उन्होने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा काम आदि समस्त रूप-सम्पन्नोको श्रीरामरूपके समक्ष नगण्य कर दिया—

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पच पुरारी॥

तब फिर अन्य देवोकी क्या सामर्थ्य है? इनके रोम-रोमपर कोटि-कोटि काम न्योछावर कर दिये—

अग अग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥

अन्तमे यह निर्णय दिया कि ऐसा कौन तनुधारी है जो इनको देखकर मोहित न हो जाय—

कहहु सखा अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

यह मिथिलाका सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सूत्रके अनुसार सुर-असुर नर-वानर आदि सभीका श्रीराघवेन्द्रकी रूप-माधुरीपर मोहित होना सूचित है। प्रभुको देखकर सर्प-बिच्छू भी अपने विषका परित्याग कर देते हैं। यह आश्चर्य-घटना मानसमे पठनीय है। ऐसे चराचर-मोहक श्रीरामरूपको देखकर भी सखियाँ कहती हैं कि यह वर श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीके योग्य है—*'जोगु जानकिहि यह बरु अहई।'* मधुर-रसका प्राण निष्कामता है। इसलिये परम वीतराग साधक इनके अधिकारी माने गये हैं। मिथिलाके मधुर-भावमे स्वसुखका गन्ध लेशमात्र भी नहीं है। एकमात्र तत्सुखसुखित्व अर्थात् श्रीयुगलकिशोरके सुखमे सुखी रहनेका भाव है। युगल-भावकी उपासना ही यहाँकि मधुर-भावकी चरम परिणति है। चारो राजकुमारोके दर्शन करनेके पश्चात् इन सखियोके मनोरथ ध्यान देने योग्य तथा मननीय है—

पुर नारि सकल पसारि अचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

वे विधिसे अचल फैलाकर याचना करती हैं कि श्रीसीताजीका श्रीराममे, श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतजीसे, श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मणकुमारसे तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीका श्रीशत्रुघ्नकुमारका विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करें। युगलोपासनाका यह उज्ज्वल स्वरूप अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता।

युगल-उपासनाका मूल स्रोत मिथिला है। यहीं युगलकिशोरका प्रथम मिलन हुआ। मधुर-भावके समस्त आलम्बन-उद्दीपन-विभाव आदि रस-तरंग यहीं तरंगायित हुई। श्रीप्रिया तथा प्रियतम एक दूसरेसे मिलनेके लिये लालायित रहे।

दोनों अनजान प्रिया-प्रियतमकी उत्कण्ठा मिलनकी तीव्र इच्छा ही मिलनको रसमय बना सकती है। पुष्पवाटिकामें दो अपरिचितोंका मिलन हुआ। प्रथम मिलनमें प्रियाप्रियतमको चुपकेसे हृदयके एकान्त कुंजमें बिठाकर नेत्रके कपाट बंद कर लेती है—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

उधर श्रीरामचन्द्र श्रीराजकिशोरीका चित्र अपने कोमल हृदयकी भित्तिपर अंकित कर चले जाते हैं। जाते समय श्रीराजकिशोरीजी मृग, पक्षी, तरु और लता आदिको देखनेके बहाने राजकिशोरको देखती हैं। इस गुप्त दर्शनमें जो उत्कण्ठा एवं प्रेम है उसका वर्णन असम्भव है—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

उधर राजनन्दन श्रीरघुनन्दन भ्रातासे वार्तालाप करते हैं किंतु मन श्रीजनकनन्दिनीजीके रूपमें लुब्ध है—*'मन सिय रूप लोभान'* तथा संध्या-वन्दनको भूलकर श्रीराजकिशोरीकी शोभाका वर्णन करते हैं। चन्द्रमाको देखकर उद्दीपन-विभाव प्रकट हो गया। तथा—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी।

प्रीतिका यह प्रवाह भूप-भवनमें अत्यन्त वेगसे प्रवाहित हुआ है। एक ओर चक्रवर्तीन्द्रनन्दन श्रीरघुनन्दनकी सुकुमारता दूसरी ओर धनुषकी कठोरता—इन दोनोंके विरोधने स्वरूपमें मिलनकी उत्कण्ठामें असाधारण वृद्धि हुई।

जब श्रीविदेहराज धनुभंग न होनेपर दुखी और निराश होकर यह कह रहे थे कि *'तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥'* तब श्रीजानकीजीकी दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो उठी थी, किंतु श्रीलक्ष्मणकुमारकी वीर वाणीका श्रवणकर प्रीति-लतिका पुनः प्रफुल्लित हो गयी—

लखन सकोप बचन जे बोले।
सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥

जब छोटे सरकारके प्रतापसे पृथ्वी डोल गयी, तब बड़े सरकारके बल-प्रतापकी क्या बात है? प्रीति-सागरमें ज्वारभाटाकी भाँति उथल-पुथल तबतक चलती रही जबतक धनुभंग नहीं हुआ। धनुभंगमें जैसे-जैसे विलम्ब होता है, उत्कण्ठाका वेग तीव्र होता जाता है—

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
गननायक बरदायक देवा॥

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥

इस प्रकार देवताओंसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने तथा श्रीमिथिला-राजकिशोरीके अङ्ग-अङ्ग पुलकित होने तथा नेत्रोंसे प्रेम-जलकी वर्षा होने आदिसे यह स्पष्ट है कि इस पूर्वराग-प्रसंगमें स्वेद, रोमाञ्च, स्तम्भ आदि आठों सात्त्विक भावोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अभी भी दोनोंके हृदयमें मिलनोत्कण्ठाकी प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है, किंतु दोनोंके मिलनमें बाधक धनुषकी कठोरता अभी भी विद्यमान है। इसलिये पितृप्रण एवं धनुर्भंग—दोनों अवरोध प्रीति-रसकी वृद्धिमें महान् योगदान कर रहे हैं। जैसे नदीकी वर्षाके पश्चात् जब नदी वेगके साथ समुद्रमें मिलनेके लिये दौड़ती है, तब उसके तीव्र वेगमें तृण, काष्ठ, वृक्ष-शिलाखण्ड—सभी उसके साथ बहकर समुद्रकी ओर अनायास चल पड़ते हैं, उसी प्रकार प्रेमी प्रेमास्पदके मध्य आनेवाले समस्त अवरोध—विघ्न-बाधाएँ प्रीतिरस-सरितामें प्रवाहित हो जाती हैं। जो अवरोध लौकिक दृष्टिसे बाधक हैं, वे सब आध्यात्मिक प्रेमकी वाधिकामें प्रीति-रस-वर्धक हैं, अतः

मानसका पूर्वराग विप्रलम्भ-प्रसग अलौकिक आश्चर्यमय है।

इधर प्रियके दर्शनसे प्रियाके मृग-शावक-नयनासे प्रेमाश्रु प्रवाहित हैं। किंतु पिताकी प्रतिज्ञाका स्मरण हाते ही मनम क्षोभ उत्पन्न हो जाता है—

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥

गीतावलीम सखियाँ कहती हैं—'सखि! महाराज जनकके मनकी रीति प्रीति-रहित ह—उनक मनम प्रेमका काई स्थान नहीं है। यदि एसी मनोहर मूर्तिका देखनक बाद भी उनका पहला विचार और निश्चय बना रहा तथा उनका हृदय नहीं बदला ता वे पूर्णत प्रीति-शून्य है। सखि! कोई महाराजका क्या नहीं समझाता है कि प्रतिज्ञा तथा राजकुमारको प्रेमके तराजूपर एक बार तोल कर ता देख। राजमर्यादाकी तुलापर नहीं किंतु प्रमकी तुलापर तालनपर प्रतिज्ञा हलकी हा जायगी तथा राजकुमार भारी हो जायँगे'—

जनक मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति

×　　×

पन औ कुवँर दोउ प्रेमकी तुला धौं तोरु॥

जस-जसे धनुर्भंगम विलम्ब हा रहा ह, वैसे-वैस मिलनोत्कण्ठाका वग बढ रहा है। पिताक दारुण हठकी चिन्ता हृदयको अत्यन्त विकल किये हुए हे—

अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

धनुष कठोर ह राजकुमार अत्यन्त कोमल हैं। एसी दशामे राजकिशोरका धनुष ताडनके लिय विवश किया जाना सभीक लिये लज्जाजनक है। यदि महाराज विवेक खो बैठे हैं ता सचिव एव सभासद उनको क्या नहीं समझाते हैं? जैस शिरीष-सुमनम हीरका भदन असम्भव ह, वैसे ही सुकुमार राजकुमारसे कठोर धनुषका भजन कठिन हे—

सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

धनुषमे प्रार्थना करती ह कि श्रीरघुनन्दन जितने कोमल हैं उसी अनुपातम तुम हलके हो जाओ। श्रीराजकिशोरीजीका इतना परिताप ह कि एक-एक क्षण सकडा युगाक समान प्रतीत हो रह हैं—

अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

वे प्रभुको ओर दखती हैं साथ ही पृथ्वीकी ओर देख रही हैं। उनके चचल नत्र एस लग रह ह माना कामदेवकी दो मछलियाँ विधु-मण्डलम डोल-क्रीडा कर रही हो—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।

खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मडल डोल॥

प्रेम-रस-रसिकाने प्रेम-गोपनका महत्त्व स्वीकार किया है। चैलाचल-आच्छादित नत्रासे प्रियक दर्शनका एक विलक्षण रस है। प्राणश्वरसे प्रेयसीका चित्त मिला होनेपर भी घूँघटकी ओटसे दखनमे जो आनन्द है वह अचलरहित नत्रासे देखनेम नहीं है—

प्राणेश्वरश्चतुरया मिलितेऽपि चित्त

चैलाञ्चलव्यवहितेन निरीक्षणीय ।

श्रीराजकिशोरीजीने अपन प्रमका गोपन जिस कौशलमे किया वह अनिर्वाच्य है—

लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥

जिस प्रकार कृपण सुवर्णको छिपाकर रखता है, उसी प्रकार श्रीराजकिशोरीजीने भी नेत्रस निसृत प्रेम-जलको नत्रक कोनेमे छिपा लिया। यदि नत्र-जल बाहर गिरता तो लोग जान जाते। भाव-गोपनकी यह मुद्रा वास्तवम विस्मयकारिणी हे।

देवताओस बार-बार प्रार्थना करनेपर भी जब विश्वास नहीं हुआ कि श्रीराजकिशोर धनुर्भंग कर सकगे तब किशोरीजीने अपन अलौकिक स्नेहपर विश्वास कर प्रेम-प्रण ठान लिया।

अब प्रेमराज्यकी राजधानी मिथिलापुरीम दो प्रण प्रकट हो गये। एक जनकराजका दूसरा जनककिशोरीका। जनक-प्रण तो सर्वत्र प्रसिद्ध है जो मर्यादाकी सीमा ह तथा जनकराजकिशोरीका प्रण प्रमकी सीमा हे।

स्नेह दो प्रकारका हाता हे एक असत्य और एक सत्य। स्वार्थसे सम्बन्धित स्नेह असत्य हाता हे तथा स्वार्थरहित स्नेह सत्य हाता ह। श्रीराजकिशोरीजीका स्नेह सत्य है। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे तो दोनोका पुरातन प्रेम ह—*'प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥'* किंतु माधुर्यकी दृष्टिसे उनका प्रेम अलौकिक ह।

अन्तम श्रीराजकिशोरीजी इसी सिद्धान्तपर दृढ हो गयी कि जिसपर जिसका सत्य स्नेह होता ह वह उसको अवश्य प्राप्त होता ह—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥

यह स्नेह-रीतिकी पराकाष्ठा है। रतिके परिपाक होनेपर प्रेम और प्रेमके परिपाक होनेपर स्नेह-रसका उदय होता है। घृत-स्नेह तथा मधु-स्नेहके भेदसे स्नेह भी दो प्रकारका होता है। घृत-स्नेहमें तदीयत्व तथा मधु-स्नेहमें मदीयत्व है। श्रीराजकिशोरीमें मधु-स्नेह है। अतः इस स्नेहके परवश होकर श्रीराजकिशोर धनुर्भंगके लिये व्याकुल हो गये—

सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

जैसे छोटे साँपको गरुड देखता है उसी प्रकार श्रीराजकिशोरजीने धनुषकी ओर देखा। जैसे गरुडकी दृष्टि पड़ते ही सर्प सिकुड़ कर छोटा हो जाता है उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्रको देखते ही धनुष सिकुड़कर छोटा हो गया।

इस प्रकार प्रिया-प्रेम-परतन्त्र श्रीराघवेन्द्रने देखा कि श्रीराजकिशोरीकी व्याकुलता इतनी अधिक है कि उनका एक निमेष कल्पके समान प्रतीत हो रहा है। अतः श्रीरामभद्रने खेल-खेलमें शिव-धनुषको तोड़ डाला—
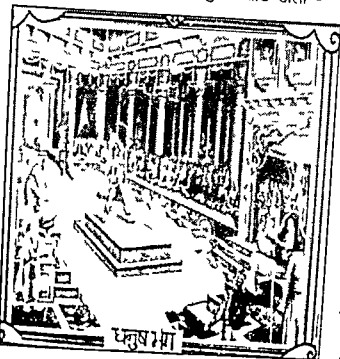
भई बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

× × ×

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि समस्त लोकोंमें जय-जयकार होने लगा तथा प्रमुदित नर-नारीगण *'हय गय धन मनि चीर'* न्योछावर करने लगे। विविध वाद्य बजने लगे सखियाँ मङ्गलगान करने लगीं। श्रीराजकिशोरीके सुखका क्या कहना? उन्हें तो जैसे चातकीको स्वातिजल मिल गया हो—

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

श्रीशतानन्दजीकी आज्ञासे श्रीजनकराजनन्दिनी श्रीरघुनन्दनको जयमाल पहनानेके लिये चलीं। साथमें सुन्दर सखियाँ मङ्गलगान करती चल रही हैं। बाल मरालकी गतिसे श्रीराजकिशोरीजी चल रही हैं, उनके अङ्गमें अपार सुषमा है—*'सुषमा अंग अपार।'* सखियोंके मध्यमें श्रीराजकिशोरीजी उसी प्रकार शोभा पा रही हैं जैसे छवि-समूहके मध्यमें महाछबि शोभित हो। कर-कमलमें जयमाल इस प्रकार शोभायमान है, मानो विश्व-विजयकी शोभा विद्यमान है। श्रीराजकिशोरीके मनमें उत्साह है, किंतु तनमें संकोच है गूढ़ प्रेम किसीको पता नहीं है। समीप जाकर श्रीराघवेन्द्रकी शोभा देखकर चित्रलिखित-सी प्रतीत होने लगीं। चतुर सखीके समझानेपर युगल कर-कमलोंसे जयमाल उठा रही हैं किंतु प्रेमके कारण पहना नहीं पा रही हैं। मानो दो नालसहित कमल सभीत चन्द्रमाको जयमाल पहना रहा हो। सखियाँ छविका दर्शन कर गान करने लगीं। जयमाल लेकर श्रीराजकिशोरीने जब श्रीरघुनन्दनके वक्षःस्थलकी ओर देखा तो उनके हृदयमें एक सुन्दर राजकुमारीका चित्र दीखा—

जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

साधारण अर्थ तो यही है कि भित्ति-चित्रकी भाँति राजकुमारी प्रतीत हो रही थीं। जैसे दीवारका चित्र जडवत् होता है उसी प्रकार चेष्टाशून्य हो गयीं—प्रेमकी सर्वश्रेष्ठ दशा है जडता।

श्रीअवधके एक सिद्ध संतने- *रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।'* का विलक्षण अर्थ करते हुए कहा है—

राजकुमारीजीने प्रियतमके वक्षःस्थलमें एक राजकुमारीका चित्र देखा। बस मान-लीला प्रारम्भ हो गयी। श्रीराजकिशोरीजीको मानवश यह भ्रम हो गया कि इनके हृदयमें पहलेसे ही एक राजकुमारी बैठी है फिर इनको

जयमाला पहनानेस क्या लाभ? राजकिशोरीजीकी यह स्थिति देखकर एक चतुर सखीको यह समझाना पडा कि इनके हृदयम जा चित्र है वह आपका ही हे। आप अपनी अँगुलीकी अँगूठी आरसीसे मिलान कर देख ल। आपके मुखचन्द्रसे चित्र अभिन्न है या नहीं? श्रीराजकिशोरीने जब मिलान किया ता उनका भ्रम दूर हो गया। उन्हींका चित्र प्रियतमके हृदयमे विराजमान मिला, कितु उनका आश्चर्य और बढ गया कि मेरा चित्र इनको मिला कैसे? तब सखीन कहा कि पुष्पवाटिकाम चुपकेसे आपका चित्र हृदयकी भित्तिपर राजकुमारने खींच लिया था, इसका आपको भान नहीं हो सका'—

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥

चतुर सखीने इस रहस्यको बताकर उनका मान दूर कर दिया। रसशास्त्रमं स्नेहकी पराकाष्ठाम मान-रसका उदय कहा गया हे। मानके बिना मधुर-रसकी पुष्टि नहीं होती— एसा भी कहा गया है। जब मान दूर हुआ तब भी एक समस्या सामने खडी हा गयी। श्रीरघुनन्दन थोडे बडे ह, सिरपर चौतनी भी धारण किये हैं—

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥

ऐसी स्थितिम जबतक श्रीरामचन्द्र झुकते नहीं हैं

तबतक श्रीकिशोरीजी उनको जयमाला कैसे पहनावे? श्रीरघुकुलावतस रघुवर झुकनेमे सकाच कर रहे ह, क्योकि राजसमाज सामने है। प्रेमरसकी दृष्टिम अभीसे लाडिलीजूके समक्ष झुकनेसे कही सर्वदा झुकना न पड यह भी आशका है। इस रहस्यको सखियाँ समझ गयीं, अत उन्होने सगीतके उच्चतम राग-तालामे गान प्रारम्भ कर दिया। सगीत-लहरीमे राघवेन्द्र थोडा झुके और श्रीकिशोरीजीने श्रीराघवेन्द्रको जयमाला पहना दी। श्रीरघुवरके उरमे जयमाला देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे। नगरमे तथा आकाशमे बाजे बजने लग।

देवता किन्नर, मनुष्य नाग और मुनीश्वर 'जय हो, जय हो' एसा कह-कहकर आशीर्वाद दे रहे ह। देवागनाएँ नृत्य-गान करती हैं बारम्बार पुष्पाकी अजलियाँ अर्पण की जा रही हैं। ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे ह, भाट विरदावली—वशयशका उच्चारण कर रहे हैं। पृथ्वी, पाताल और आकाशम यह यश फैल गया कि श्रीरामजीने शिव-धनुष तोडकर श्रीसीताजीका वरण कर लिया—

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भजेउ चापा॥

नगरके नर-नारी आरती उतार रहे हैं ओर अपनी धन-सम्पत्ति निछावर कर रह हैं। आनन्दातिरेकके कारण धनका लोभ नहीं रह गया है। अपने सामर्थ्यसे अधिक धन न्योछावर कर रह हैं। श्रीसीतारामजीकी जोडी ऐसी सुशोभित हो रही है, मानो छबि और शृगार एक ही स्थानपर एकत्र हो गये हा। सखियाँ श्रीसीताजीसे कहती हें—'प्रभुके चरणाका स्पर्श करो', कितु वे अत्यन्त भयके कारण चरणोका स्पर्श नहीं करती हैं। यहाँ श्रीसीताजी छबि हैं और श्रीरामजी शृगार है। यथा—

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥

श्रीसीताजी गौरवर्णा हैं और छबिका वर्ण भी उज्ज्वल हे। श्रीरामजी श्याम हें तथा शृगार भी श्याम-वर्ण है—'श्यामो भवति शृगार '। अतएव गौर-श्याम जोडीकी महाशाभा हे। जयमाल पहनानेके पश्चात् वधूको वरक चरणाका स्पर्श करना चाहिये कितु श्रीसीताजी भयभीत हैं, अत चरणस्पर्श नहीं करतीं। यह रहस्य सखियाँ नहा जानती हें, अतएव व समझती हैं कि लज्जाके कारण सीताजी प्रभुके चरणाका स्पर्श नहीं कर रही हैं। अत सखियाँ लाक-वेद-विधिज्ञा सर्वज्ञा श्रीसीताजीका लोकरीति बताती हैं और श्रीजानकीजीको

प्रभुके श्रीचरणाका स्पर्श करनेको कहती हैं, किंतु फिर भी अति भीत हानेके कारण श्रीराजकिशोरीजी चरण-स्पश नहीं करती हें, क्योकि उन्ह ऋषि गौतमकी पत्नी अहल्याकी गतिका स्मरण करके भय हा रहा है कि कहीं इन चरणाका स्पर्श करनस मेरी गति भी ऋषिपत्नीकी भाँति न हा जाय। इस भयसे श्रीचरणाका हाथसे स्पर्श नहीं करती हैं। रघुकुलभूषण राघवेन्द्र श्रीसीताजीकी एसी अलौकिक प्रीति देखकर मनम हँसने लग—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥

इस प्रकार धनुप-यज्ञ एव श्रीसीय-स्वयवर भी सम्पन्न हुआ। दुष्ट राजाओके कटु वचनाका श्रवणकर साधु राजाआन भलीभाँति उनका प्रतिवाद किया तथा उन्ह फटकारा। श्रीलक्ष्मणकुमार श्रीराघवेन्द्रक भयसे कुछ बाल नहीं सकते, किंतु उनकी भृकुटी टेढी हो गयी। वे राजाआकी ओर क्रोधसे उसी प्रकार देखने लगे, जैसे मत्त गजराजका देखकर सिह-शावक दखता है। उसी समय धनुर्भंग सुनकर श्रीपरशुरामजी पधारते हैं जिनको देखकर समस्त राजा हतप्रभ हा जाते हैं तथा उनको प्रणाम कर धीरेसे चल देते हैं। तब श्रीजनकजी श्रीसीताजीको बुलाकर प्रणाम कराते हैं—

सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

श्रीपरशुरामजीने आशीर्वाद दिया सखियाँ प्रसन्न हुई पुन श्रीराजकिशोरीजीको अपन समाजम ल गयीं। 'सौभाग्यवती भव सावित्री भव' इत्यादि आशीर्वाद सुनकर सखियाँ प्रसन्न हुइ कि श्रीराघवेन्द्रको अब इनसे कोई भय नहीं है इस आशीर्वादम दोनोंका कल्याण भी निश्चित है। श्रीविश्वामित्रजीने दोनो भ्राताआका परिचय देते हुए उनके चरणाम प्रणाम कराया। मनाज-मदमर्दन श्रीरघुनन्दनके अपार मान्दर्यको देखकर श्रीपरशुरामजीके नेत्र चकित हो गय अर्थात् पलकाका गिरना बद हो गया। यद्यपि श्रीपरशुरामजी अत्यन्त क्रुद्ध है किंतु श्रीराम-रूपका ऐसा चमत्कार है कि उनका क्राध प्रभुके दर्शनमात्रसे दूर हा गया तथा वे श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्रके चकोर बन गये—

रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

श्रीपरशुरामजी विदेहराजकी आर देखकर जानत हुए भी अनजानकी भाँति पूछते ह कि यह भारी भीड कैसी हे? श्रीजनकजीन सब समाचार कह सुनाया जिस कारण सब राजा आय थे। समाचार सुनकर उन्हाने जब दूसरा आर दखा ता भूमिपर धनुपके टुकड दीख पड तब वे अत्यन्त क्रोधम भरकर जनकजीस इस प्रकार बोल—'रे जड जनक! सच-सच बता धनुप किसने ताडा है?'

इस प्रसगमें ध्यान रखने याग्य बात यह है कि श्रीपरशुरामजी जानत हुए अनजान बनकर पूछ रहे हैं अत इसस स्पष्ट है कि इनके आगमनका विशप प्रयोजन है। प्रथम तो श्रीमिथिलापुरीम अमङ्गलको राकना है क्योंकि दुष्ट राजाआके प्रति श्रीलक्ष्मणकुमारका क्रोध बढ रहा था। वे एक क्षणम ही दुष्ट राजाआका वध कर डालते। जयमालके पश्चात् जो मङ्गलमय वातावरण बना था, वह अमङ्गलमें परिणत हो जाता। दूसरा कारण है कि प्रभुके क्षमा-गुणका विस्तार करना। अन्तमें स्वय प्रभुकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा है कि अनजानमें मैंने आपको बहुत अनुचित वचन कहे हैं, अत क्षमाके मन्दिर दोनों भ्राता हमें क्षमा कर दें—

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

'रघुकुलकतु! आपकी जय हो जय हो जय हो' ऐसा कहकर श्रीपरशुरामजी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गय। श्रीपरशुरामजीके आगमनका तृतीय हेतु हे—श्रीराघवेन्द्रकी भगवत्ताका प्रकाशन। अहल्योद्धार, शैव-धनुर्भंग तथा परशुराम पराजय आदि प्रसगोसे श्रीरघुनाथजीकी असाधारण भगवत्ता तथा सर्वावतारी होना स्पष्ट है। पुन मिथिलाम विवाह महोत्सव प्रारम्भ हो गया। दवताओने नगाड बजाये तथा प्रभुपर पुष्पाकी वर्षा की। नगरके समस्त नर-नारी प्रसन्न हा गये—

अति गहगहे बाजने बाज । सबहिं मनोहर मगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

घमाघम बाजे बजने लगे सभीने सुन्दर मङ्गल-साज सँवारकर रखे। समूह-के-समूह सुन्दर मुखवाली-सुनयनी, कोकिल-बयनी स्त्रियाँ परस्पर मधुर गान करने लगीं। श्रीजनकजीन श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया और बोले—'प्रभो! आपकी कृपासे श्रीरामजीने धनुष तोड दिया। दोना भ्राताओने मुझ कृतार्थ किया अब जो उचित हो उसक लिये आज्ञा करें।' मुनि बोल—'राजन्! विवाह धनुपके अधीन था। यद्यपि धनुपके टूटते ही विवाह हा गया यह बात देव-दानव—सभीको विदित है फिर भी अब आप जाकर वशकी

परम्पराके अनुसार विप्रों, कुल-वृद्धोंसे पूछकर वेद-विहित आचारका पालन करें। अवधपुरीमें दूत भेजिये जो जाकर श्रीदशरथजीको बुला लावें। राजाने उसी समय दूतोंको बुलाकर अयोध्यापुरी भेज दिया। सभी महाजनोंको बुलाकर बाजार, मार्ग, देव-मन्दिर तथा समस्त नगरको सजानेकी आज्ञा दी। पुनः परिचारकोंको बुलाकर विचित्र मण्डप बनानेकी आज्ञा दी। मण्डप-रचनाकी विधिमें निपुण कारीगरोंने ब्रह्माजीकी वन्दना कर कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने सोनेके केलेके खम्भे बनाये, उनमें हरित मणियोंके पत्ते तथा फल एवं पद्मरागमणिके फूल ऐसे रचकर बनाये गये कि उस विचित्र रचनाको देखकर ब्रह्माका मन चकित हो गया कि यह केलेका वृक्ष वास्तविक है या कृत्रिम—

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

×

रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥

हरित मणिके ही बाँस बनाये गये, क्योंकि मण्डपमें हरे बाँस ही लगाये जाते हैं। पानोंकी लता सुवर्णकी बनायी गयी, क्योंकि पके पान पीले होते हैं। सोनेकी नाग-बेलिको रचकर उससे मण्डप बाँधा गया तथा बीच-बीचमें मुक्ताओंकी माला शोभित थी। माणिक, मरकत, हीरा तथा फिरोजाको चीरकर कमल बनाये गये। भौंरे तथा अनेक रंगके पक्षी बनाये गये जो पवनके संचारसे कलरव करते हुए गुंजार करते थे। यदि ये मणियोंके पक्षी मौन होते तो कृत्रिम जान पड़ते।

खम्भोंमें देवताओंकी प्रतिमाएँ गढ़कर निकाली गयी हैं तथा वे मङ्गल-पदार्थ लिये खड़ी हैं। खड़ी हुई प्रतिमा बनानेका भाव यह है कि श्रीरामचन्द्रजी इस मण्डपमें जब पधारेंगे उस समय उनके आगमनपर सबको उठकर खड़ा होना चाहिये, किंतु पत्थरमें गढ़ी हुई कृत्रिम प्रतिमाएँ कैसे उठेंगी? न उठनेके कारण इनका धर्म भी जायगा तथा लोग इनको कृत्रिम जानेंगे। मिथिलाके गुणियोंका कौशल यहाँ दर्शनीय है। अनेक प्रकारकी गजमुक्तामय चौक पुरायी गयीं। नीलमको खरादकर सुन्दर आमके पत्ते बनाये। सोनेकी बौर-पन्नोंके घौर (गुच्छ) रेशमकी डोरसे बँधे हुए शोभा दे रहे हैं।

इस प्रकार मिथिला-मण्डपकी अलौकिक शोभाके विस्तारके लिये उसमें वंदनवार लटकाये। अगणित मङ्गल-कलश, ध्वजा, पताका, पाटम्बर, चमर आदिसे तथा मणिमय मनोहर दीपक आदिसे मण्डप सुशोभित है। मण्डपकी ऐसी शोभा है कि उसका वर्णन हो नहीं किया जा सकता—*'जाइ न बरनि बिचित्र बिताना'।* वास्तवमें जिस मण्डपमें दुलहिन श्रीविदेहराजनन्दिनी हों तथा दूलह दशरथनन्दन श्रीरघुनन्दन हों उस मण्डपका वर्णन करे ऐसी बुद्धि किस कविकी है? युगल सरकार ऐश्वर्यकी दृष्टिसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशकोंके भी प्रकाशक हैं। उन्हींके प्रकाश-लेशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। अतः प्रकाश-प्रकाश्यका वर्णन कैसे हो? यह भी भाव है कि श्रीजनकराजनन्दिनीकी कृपासे निर्मल मतिको प्राप्तकर कुछ वर्णन किया—*'जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ'* -से स्पष्ट है।

श्रीजनक-भवनकी जैसी शोभा है, वैसी ही नगरके प्रत्येक घर-घरमें दीख पड़ती है। जिसने उस समय मिथिलापुरीको देखा, उसे चौदहों भुवन तुच्छ लगते हैं। जो सम्पत्ति नीचके घरमें थी, उसे देखकर सुरपति इन्द्र भी मोहित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि मानसकार जनकके भवनको देखकर इन्द्रके मोहित होनेकी बात कहते तो जनकपुरकी बड़ाई नहीं होती, राजमहल मात्रकी ही बड़ाई होती, परंतु नीचके घरको देखकर इन्द्रके मोहित होनेके वर्णनसे सम्पूर्ण नगरकी बड़ाई हुई। जब जनकपुरका नीच भी इन्द्रसे अधिक ऐश्वर्यवाला है, तब राजाकी सम्पदाको कौन कह सकता है—

जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥
जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

जिस नगरमें महालक्ष्मी नारीका कपट-वेष धारण कर वास करती हों, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें शेष-शारदाको भी संकोच होता है। कुछ लोग इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं कि श्रीजानकीजीके अंशसे तो अगणित उमा, रमा तथा ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

अतः 'लच्छि' शब्दसे सम्पदाकी देवी लक्ष्मी अभिप्रेत हैं। श्रीसीय-रघुवीर-विवाह-दर्शनार्थ वेष बदलकर वे मिथिलामें निवास कर रही हैं। आगे परिछनमें उनका आगमन होगा—

सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥

दिव्य मण्डपके निर्माणके बाद अब बारातके शुभागमन-

स्वागतकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी। दूताको अयोध्या भेजा गया—

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥

मुनिकी आज्ञासे महाराजने श्रीअवधपुरसे दशरथजीको बुलाने जो दूत भेजे थे, वे वहाँ महाराजके दरबारमे पहुँचकर श्रीदशरथजी महाराजको प्रणामकर उन्हे पत्रिका दी। आनन्दित होकर उन्होने स्वय उठकर पत्रिका ले ली। पत्रिका पढते ही दोना नेत्रास अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। शरीर पुलकित हो गया। हृदय प्रसन्नतासे भर आया। श्रीराम-लक्ष्मणजी हृदयमे हैं तथा हाथमे सुन्दर पत्रिका है। वे अत्यन्त भाव-विह्वल हैं फिर भी धैर्य धारणकर उन्हाने पत्रिका पढी। माङ्गलिक समाचार सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गयी। चारा ओर आनन्द छा गया। मुनिकी आज्ञा है कि श्रीभरत-शत्रुघ्नजीके साथ बारात लेकर जनकपुर पधारे। यह मधुर बेला है।

श्रीभरतजी सखाआके साथ खेल रहे थे समाचार पाते ही मित्रो तथा शत्रुघ्नजीके साथ वहाँ आ गये। प्रेमसे सकुचाते हुए पिताजीसे पूछते हैं—'हे तात! पत्रिका कहाँसे आयी है? प्राणप्रिय दोना भाई कुशलसे तो हैं? किस देशमे हैं?' प्रेमसिक्त वचन सुनकर राजाने पुन पत्रिका पढी। पत्रिका सुनकर दोनो भ्राता पुलकित हो गये, स्नेह शरीरमे नहीं समाता। श्रीभरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाको बहुत सुख प्राप्त हुआ। यहाँ श्रीभरतजीका श्रीराम-प्रेम दर्शनीय है। महाराजने दूताको समीप बैठाकर उनसे मधुर वचन कहे—'भैया! कहो दोना बालक कुशलसे तो हैं? तुमने अपनी आँखासे उन्हे भलीभाँति देखा है? श्याम-गौर नित्य-किशोर विश्वामित्रजीके साथ हैं। यदि तुम पहचानते हो तो उनका स्वभाव कहो,' प्रेमवश राजा इस प्रकार बार-बार पूछ रहे हैं। जिस दिनसे मुनि उनको साथ ले गये हैं उस दिनसे आज ही सच्ची खबर पायी है। विदेहराजने उनको कैसे पहचाना?

प्रेमपूर्ण वचन सुनकर दूत मुसकराने लगे। महाराजसे बोले—'आपके समान कोई भी धन्य नहीं है विश्वके विभूषण जिनके राम-लक्ष्मण पुत्र हैं। आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं—पुरुषसिंह तथा तीनो लोकोके प्रकाशक हैं। जिनके प्रतापके सामने चन्द्रमा मलिन तथा सूर्य शीतल हैं उनके लिये आप कहते हैं कैसे पहचाना? क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है? श्रीकिशोरीजीके स्वयवरमे अनेक राजा आये, किंतु शिवजीके धनुषको कोई उठा तक न सका। जहाँ सभी वीर हार गये सबकी शक्ति शिवजीके धनुषने तोड डाली, बाणासुर, रावण आदि भी पराजित हो गये वहाँ श्रीरामजीने बिना प्रयास कठोर धनुषको उसी प्रकार तोड डाला—जैसे हाथी कमलकी डडीको तोड डालता है। परशुरामजी भी पराजित होकर लौट गये। श्रीरामजीके समान ही श्रीलक्ष्मणजी भी तेजस्वी हैं। उनको देखकर सभी राजा ऐसे काँपने लगते थे जैसे सिंह-शावकसे हाथी काँपने लगता है। देव! आपके दोना पुत्राको देखकर अब कोई आँखके सामने नहीं आता।'

उपनिषद्मे कहा गया है कि 'जिसको देखनेके बाद अन्य किसीको देखनेकी इच्छा न रह जाय—वही भूमा पूर्ण आनन्द है।' दूतकी वही स्थिति है जो बडी साधनाके बाद ब्रह्मज्ञानीकी होती है। दूतके वचन सुनकर सभासहित महाराज प्रेममे निमग्न हो गये तथा दूतोको न्योछावर देने लगे। दूतने कहा—'यह अनीति है'—ऐसा कहकर कान बद कर लिये। धर्म समझकर सभीने सुख माना। दूत श्रीजानकीजीको अपनी कन्याके समान जानते हैं, फिर पुत्रीका धन कैसे ले? आज भी भारतमे अनेक स्थानामे यह प्रथा है कि जहाँ ग्रामकी कन्याका विवाह होता है, लोग वहाँका जल तक नहीं पीते, न्योछावर लेनेकी बात तो दूर रही। ऐसी बात कानसे सुनना भी नहीं चाहते इसलिये कान बद कर लिये। दूताकी इस निष्ठापर चारो पुरुषार्थ न्योछावर करने योग्य हैं। महाराजने वसिष्ठजीको पत्रिका दी तथा सब कथा सुनायी। गुरुदेवने कहा कि पुण्यात्मा पुरुषके लिये समस्त पृथ्वी सुखसे भरी रहती है। जिस प्रकार नदियाँ स्वय समुद्रमे जाती हैं उसी प्रकार सुख-सम्पत्तियाँ धर्मात्माके पास चली जाती है। वसिष्ठजीने बारात लेकर मिथिला चलनेकी आज्ञा दी। महाराजने रनिवासमे जाकर पत्रिका रानियोको बाँचकर सुनायी। सभी रानियाँ शुभ समाचार सुनकर आनन्दविभोर हो गयीं। ब्राह्मणो एव याचकोको न्योछावर देने लगीं। चारो राजकुमाराको चिरजीवी होनेका आशीर्वाद देते हुए याचक चले गये—

चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥

समाचार सुनते ही घर-घरमे बधाइयाँ बजने लगीं। श्रीजनकसुता तथा श्रीरघुवीरके विवाहका उत्साह चौदहो लोकामे भर गया—

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥

यद्यपि श्रीअवध सदा सुहावनी तथा श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पावन पुरी है, फिर भी प्रीतिकी अधिकताके कारण मङ्गल-रचनाआद्वारा पुरी अधिक सजायी जा रही है। अवधपुरी इतनी सुन्दर है कि नारदादि सनकादि इसका दर्शन करते ही अपने वैराग्यको भूल जाते हैं—

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। दखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

जहाँ-तहाँ बिजली-सी कान्तिवाली मृग-शावक-नयनी, रति-मानमर्दनी सुहागिनी स्त्रियाँ सुहाग-शृगार किये हुए सुन्दर वाणीसे मङ्गल-गान कर रही ह। विश्वभरको मोहित करनेवाले मण्डपकी रचना जहाँ हुई है, उस राजमहलका वर्णन कान कर सकता है? कहीं वन्दी विरदावली गा रहे हैं कहीं ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। सुन्दर स्त्रियाँ श्रीरामजी तथा श्रीसीताजीका नाम लकर मङ्गल-गान कर रही है। उत्साह बडा है तथा महल छोटा है अत उमडकर चारा दिशाआम निकल चला। जहाँ समस्त देवताआक शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया, उस दशरथजीके राजमहलकी शाभाका वर्णन कौन कवि कर सकता हे?

महाराजन श्रीभरतजीको बुलाकर घोडा-हाथी सजाकर बारातम चलनकी आज्ञा दी। श्रीभरतजीन समस्त उच्च अधिकारियाका घाडे तथा हाथी सजानेकी आज्ञा दी। उनपर श्रीभरतजीके समान अवस्थावाल बने-ठन रँगीले राजकुमार सवार हुए प्रत्यक सवारके साथ दो-दा पैदल सिपाही चल रह है। सभी वीर नगरसे बाहर आकर अपन-अपने चतुर घाडाको अनेक चालासे फिरा रह हे। सुसज्जित रथम श्याम-कर्ण घाडे लग हें। रथपर चढकर नगरके बाहर बारात एकत्र होने लगी शुभ शकुन होने लगे।

सबक हृदयम अपार हर्ष है शरीर पुलकित है। सभीको यही लालसा लगी है कि श्रीराम-लक्ष्मण दाना भ्राताआको नत्र भरकर कब दखग? श्रीअवधवासी नर-नारी-बाल-वृद्ध—सभीका श्रीराम-लक्ष्मण प्राणास भी अधिक प्रिय हैं अत उनके दशनकी लालसाम हर्ष स्वाभाविक है। यहाँ अयाध्यावासियाकी श्रीरामभक्तिका सम्यक् परिचय मिलता है। हाथियाक गर्जन और घटा रथा घाडा तथा नगाडाक घार शब्दक सामन अपना-पराया कुछ सुनायी नहीं दता। अटारियापर चढी स्त्रियाँ थालियाम मङ्गल-आरता लिये दख रहा हैं तथा सुन्दर गीत गा रही हैं। सुमन्तजी दो सुसज्जित रथ महाराजक पास लाय। एकपर श्रीवसिष्ठजी विराजमान हुए तथा दूसरपर चक्रवर्तीजी स्वय विराजमान हुए। सर्वत्र मङ्गल-गान हा रह ह। रसील रागम शहनाइयाँ बज रही है। दवगण पुष्पाकी वर्षा कर रह ह। सवकगण विभिन्न प्रकारके करतब दिखाते चलत ह। विदूषक हास्य-विनाद करते हुए चल रह ह। राजकुमारगण मृदग-निशान आदिका शब्द सुनकर घोडाका इस प्रकार नचात ह कि तालक बधानस डिगत नहीं। तालकी गतिसे घोडाको नचाना सगीत-कलाकी पराकाष्ठा ह। बारात एसी सजी ह कि उसका वर्णन असम्भव ह। मङ्गलदायक शकुन हो रह ह। नीलकण्ठ बायीं आर चारा ल रहा ह दाहिनी आर काक अच्छ खतम शाभित ह। नकुलका दशन हो रहा है। तीना प्रकारकी हवा अनुकूल हाकर बह रही ह। यात्राम पीछकी हवा शुभ हाती हे आगकी नहा। भाग्यवती सुन्दर स्त्री बालक तथा जलस भर घडक साथ आ रही ह। लोमडी पीछ फिरकर दशन दती ह। गाय अपन बच्चाका सामने खडी दूध पिलाती ह। मृग-समूह दाहिनी आर आ गये। क्षेमकरी पक्षी कल्याणकी सूचना द रही ह। श्यामा पक्षी बायीं आर वृक्षपर दिखायी दी। दही मछली तथा दा विद्वान् ब्राह्मण पुस्तक हाथम लिये सामन आय। सभी शकुन सच्चे होनेक लिये एक साथ प्रकट हा गय। अभीतक य शकुन काटि-काटि वर-कन्याके विवाहम प्रकट हुए हाग कितु किसी कन्याका अखण्ड सौभाग्य पाय नही रहा। प्रथम बार अखण्ड साभाग्यवता श्रीकिशोरीजीको प्राप्त कर सभी शकुन सच्चे हा गय—

राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि असि ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साचे॥

महाराज श्रीदशरथजीका आगमन सुनकर महाराज जनकने नदियाम सतुका निर्माण करा दिया। बीच-बीचम ठहरनक लिय सुन्दर निवास-स्थान बनवाय। जहाँ दव-लाकक समान एश्वर्य भरा पडा था। सभी बराती भाजन शय्या वस्त्र आदि अपन-अपन मनक अनुकूल पान लग। नित्य-नवीन सुखका दखकर सभी बराती घरका भूल गय। अयाध्यावासियाका वैभव असाधारण ह। शष भी उसका वर्णन नहीं कर सकते—

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

ऐसा ही सुख यहाँ मिला कि घर भूल गये। अथवा घरसे भी ज्यादा यहाँ सेवा हुई, इसलिये भी घर भूल गये। महाराज श्रीजनकने सुवर्णके कलश, अमृतके समान पकवान तथा फल आदि भूषण-वसन बारातकी अगवानीके समय भेंट-स्वरूप भिजवाये। दधि चिउड़ा एवं अन्य भेंटकी वस्तुएँ बहँगियामें भर-भरकर कहार ले चले। मिथिलामें दही-चिउड़ाका महत्त्व प्रसिद्ध है। दधि अधिक हो चिउड़ा कम हो उसे दधि-चिउड़ा कहा जाता है। यदि चिउड़ा अधिक हो दधि कम तो उसे चिउड़ा-दधि कहा जाता है। अगवानियोंने जब बारातको देखा तो उनके हृदय भर गये। बारातियोंने भी सुसज्जित अगवानोंको देखकर नगाड़े बजाये। प्रसन्न होकर एक दूसरेसे मिलने लगे। जब बारात कन्याके गृह पहुँचती है तो इधरसे लोग अगवानीके लिये चलते हैं—इसीको यहाँ वर्णन किया गया।

देवांगनाएँ पुष्प-वर्षा कर गीत गा रही हैं और देवता नगाड़े बजा रहे हैं। अगवानीकी वस्तुएँ दशरथजीके समक्ष रखी गयीं। उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया। पुनः वे याचकोंको न्योछावरके रूपमें दे दी गयीं। आदरपूर्वक बारातको जनवासेमें लिवा ले चले। रंग-बिरंगके बहुमूल्य वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। जिन्हें देखकर कुबेर भी धनका अभिमान छोड़ देते हैं। बारातको सुन्दर जनवासा दिया जहाँ सबको आराम था। बारात नगरमें आ गयी यह जानकर श्रीजानकीजीने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखायी—

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥

हृदयमें स्मरणकर समस्त सिद्धियोंको बुलाया तथा महाराज श्रीदशरथजीकी पहुनाई करनेके लिये भेजा। श्रीकिशोरीजीकी आज्ञा पाकर सिद्धियाँ समस्त सम्पत्ति-सुख तथा देवलोकके भोग-विलासोंको लिये जनवासेमें उपस्थित हो गयीं। '*कछु निज महिमा*'—का तात्पर्य यह है कि श्रीराज-किशोरीके लिये सिद्धियोंको बुलाकर बारातका स्वागत करना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, इसलिये '*कछु निज महिमा*' का प्रयोग किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

श्रीकिशोरीजीके कृपा-कटाक्षसे लोकपाल बनते हैं। समस्त सिद्धियाँ उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। इतना ही नहीं उमा-रमा-ब्रह्माणी अपनी-अपनी पतियोंके साथ श्रीजानकीजीकी वन्दना करती हैं। इनके कृपा-कटाक्ष देवता चाहते हैं किंतु अपने पति श्रीराघवको छोड़कर अन्य देवताओंकी ओर देखनेका इन्हें अवकाश ही नहीं मिलता—

उमा रमा ब्रह्मादि बन्दिता। जगदम्बा सततमनिन्दिता॥
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।

श्रीराजकिशोरीजीने जिन सिद्धियोंको जनवासेमें भेजा है वे साधारण सिद्धियाँ नहीं थीं, क्योंकि महाराज दशरथजीके महलमें साधारण सिद्धियाँ दासी बनकर सेवा करती हैं। गीतावलीमें गोस्वामीजी कहते हैं—

अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं।
समउ समाज राज दसरथको लोकप सकल सिहाहिं॥

मुनियोंके आश्रममें भी सिद्धियाँ सेवा करती हैं, किंतु यहाँ वसिष्ठ आदि ऋषिगण तथा श्रीदशरथजी इन सिद्धियोंके चमत्कारको नहीं जान सके। सभी लोग श्रीजनकजीका ही ऐश्वर्य समझ रहे हैं। गुप्त रहस्य किसीने नहीं जाना। श्रीराजकिशोरीजीकी महिमाको केवल श्रीरघुनाथजी ही जान पाये। इससे वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। प्रभुने विचार किया कि यद्यपि श्रीजनकराजने स्वागतकी पूरी व्यवस्था की है किंतु कोई त्रुटि न रहे इसलिये श्रीकिशोरीजीने स्वागतकी व्यवस्था स्वयं सँभाल ली। अब विनोदमें भी श्रीराघवेन्द्र यह नहीं कह सकेंगे कि अमुक त्रुटि रह गयी। इसी हेतुको जानकर प्रभु प्रसन्न हुए—

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

पिताका आगमन सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें अत्यन्त आनन्द है। संकोचवश गुरुजीसे कह नहीं सकते, मनमें पिताके दर्शनकी बड़ी लालसा है। इस विनम्रताको देखकर महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया। दोनों भाइयोंको हृदयसे लगा लिया। अब वे जनवासेको चले जहाँ श्रीदशरथजी [illegible]। तो ऐसा लगा मानो [illegible] [illegible] [illegible]

सचार हो गया। वसिष्ठजी एव ब्राह्मणोको प्रणामकर आशीवाद प्राप्त किया। भरतजीने शत्रुघ्नजीके साथ प्रभुको प्रणाम किया—श्रीरामभद्रने उन्हे हृदयसे लगा लिया। श्रीरघुनाथजी सभी अवधवासियोंसे यथायोग्य मिले। श्रीरामजीको देखकर बारातियोके नेत्र शीतल हो गये। राजाके पास चारों पुत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष—ये चारो फल शरीर धारण किये हुए शोभित हैं। बारातसहित राजाका आदर-सत्कार कर अगवानी करनेवाले लोग लौट आये।

बारात लग्नसे बहुत पहले आ गयी थी, अत पुरवासियोको ब्रह्मानन्दका अनुभव होने लगा। वे ब्रह्माजीसे विनय करते है कि दिन-रात बढ जायँ। विवाह मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको हुआ बारात कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको आ गयी। ब्रह्माका दिन-रात सबसे बडा होता है—चारो युग एक हजार बार बीत जाते हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है तथा इतनी ही बडी रात्रि होती है। अत विधिसे विनती करते है इन दिन-रातोको अपने दिन-रातोंके समान बडे कर दीजिये। श्रीजनकजीके सुकृतोकी मूर्ति श्रीजानकीजी है श्रीदशरथजीके सुकृत श्रीरामजी हैं। उनके समान न कोई हुआ न होनेवाला है। हम सब सम्पूर्ण पुण्योकी राशि है जो श्रीजनकपुरके निवासी हुए। हमने श्रीजानकीजी तथा श्रीरामजीकी छवि देखी हमारे समान सुकृती कौन होगा? इतना ही नहीं हम लोग श्रीरघुवीर-विवाहको भी दर्शन करेगे। प्रेमके वश महाराज बार-बार श्रीसीताजीको बुलायेगे तब दोनो भाई उन्हे विदा कराने आया करेगे फिर तो अनेक प्रकारसे उनकी पहुनाई होगी क्योकि ऐसी ससुराल किसको प्यारी न लगेगी? जब दोनो भ्राता बार-बार पधारेगे तब उनको देखकर सभी पुरवासी सुखी होगे।

सखि! जैसी श्रीराम-लक्ष्मणजीकी जोडी है वैसे ही महाराजके साथ दो और पुत्र है। एक श्याम है दूसरे गोरे है श्रीभरतजी श्रीरामजीके समान तथा श्रीलक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी एक-रूप है। दोनो अनुपम सुन्दर है तीनो लोकोमे इनकी उपमाके योग्य कोई नहीं है। सब जनकपुरकी स्त्रियाँ अचल फैलाकर विधिको यह वचन सुना रही है कि चारो भाइयोका इसी नगरमे विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करे—

पुर नारि सकल पसारि अचल बिधिहिं बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

मिथिलाकी इस 'तत्सुखसुखित्व'-की भावनापर समस्त उपासकोकी उपासना न्योछावर करने योग्य है, ऐसी निष्कामता अन्यत्र दुर्लभ है। नगर-दर्शनमे प्रथम बार जब स्त्रियोंने श्रीराघवेन्द्रको देखा तब भी कहा कि ये श्रीजानकीजीके योग्य वर हैं। अब पुन दूसरी बार कह रही हैं कि चारो राजकुमारियोंके साथ चारो राजकुमारोका विवाह यहाँ हो और हम सब मङ्गल-गान करेगी। श्रीयुगल-सरकारके सुखके समक्ष अपने सुखोका परित्याग करनेवाला उपासक अत्यन्त दुर्लभ है। पूर्वाचार्योंके रहस्य-ग्रन्थके अनुशीलनसे स्पष्ट है कि अवध-मिथिलाकी युगलोपासनामे सखियोकी अवस्था आठसे ग्यारह वर्ष मात्र है। ऐसी अवस्थामें विवाहका प्रश्न ही नहीं। श्रीप्रिया-प्रियतमको नित्य-विलास-आमोद-प्रमोदमे कोई सकोच न हो इसलिये इन्होने अपनी अवस्था छोटी रखी है। मधुरोपासनामे यह भावना अत्यन्त रमणीय एव अनुकरणीय है।

जिस तिथिकी प्रतीक्षा थी वह मङ्गलोका मूल लग्नका दिन आ गया। हिम ऋतुमे सुन्दर अगहनका महीना आया। ग्रह तिथि नक्षत्र योग दिन आदि शोधकर ब्रह्माजीने उस लग्न-पत्रिकाको नारदजीके हाथ श्रीजनकजीके पास भेज दिया। श्रीजनकजीके ज्योतिषियोने प्रथम ही इसी तिथिको निश्चित कर लिया था। महाराजने शतानन्दजीसे कहा कि अब विलम्बका क्या कारण है? मन्त्रियोने समस्त मङ्गल-साज सजा दिये। सौभाग्यवती स्त्रियाँ मङ्गल-गीत गा रही हैं ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे है। जनवासेमे श्रीदशरथजीको बुलाया गया। शिव-ब्रह्मादि देवगण विमानपर चढकर ऐसे अनुरक्त हो गये कि सभीको अपने-अपने लोक तुच्छ लगने लगे। यहाँका समस्त रचनाएँ अलौकिक तथा अप्राकृत दीख पडीं। रूप एव गुणोके निधान नगरके नर-नारियोको देखकर देवता तथा देवांगनाएँ ऐसे फीके पड गये जैसे चन्द्रमाके प्रकाशमे तारागण। अपनी एक भी करनी न देखकर ब्रह्माजीको भी आश्चर्य हुआ। श्रीशिवजीने सभी देवताओको समझाया कि आश्चर्यमे मत भूलो जाओ। हृदयमे धैर्य धारणकर विचार करो कि यह श्रीसिय-रघुवीरका विवाह है। जिनका नाम लेते ही ससारमे समस्त

अमङ्गलके मूल नष्ट हो जाते ह तथा धर्म अर्थ, काम ओर मोक्ष—ये चारो पुरुपार्थ सहजम प्राप्त हो जात ह—य वही श्रीसीता-रामजी हैं। जिनके नामकी एसी महिमा है, उनकी विवाह-लीलाका वर्णन कान कर सकता हे? भाव यह ह कि जब कवल नामका यह चमत्कार है तब यहाँ ता नाम रूप लीला आर धाम चारो विराजमान हैं। श्रीसीता-रामजीकी ही भाँति उनके युगल-धाम भी दिव्य ह ब्रह्माकी सृष्टिस पर ह—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

चारो राजकुमार श्रीमहाराज दशरथजीके साथ जनवाससे विवाह-मण्डपकी आर चले। मोरके कण्ठकी द्युतिके समान श्याम अग ह तडित-विनिन्दक पीत वस्त्र धारण किये हुए ह। विवाहके आभूपण अगम सजाये हुए हैं। अलौकिक सौन्दय ह। चचल घोडोको नचाते जा रहे ह। जिस घोडपर श्रीरघुनन्दन विराजमान हैं उसकी चाल देखकर गरुड भी लज्जित हैं माना कामदेवने घोडेका वेप धारण कर लिया ह आर अपनी अवस्था बल रूप गुण आर चालसे समस्त लोकोको मोहित कर रहा ह। मणिमण्डित जडाऊ जीन जगमगा रही ह। किंकिनी-लगामको देखकर सुर-नर-मुनि सब ठगे-स रह गये। प्रभुके मनम अपने मनको लयलीन करके चलता हुआ घोडा एसी छवि पा रहा ह मानो कोई बादल बिजली तथा तारागणमे विभूपित सुन्दर मोरको नचा रहा है। जिस घोडपर श्रीरामजी सवार ह शारदा भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं। शिवजी अपने पद्रह नेत्रोसे दूलह-सरकारका दर्शन कर रहे ह। विष्णु-भगवान्‌ने जब दूलह-रूपमे श्रीरघुनन्दनको देखा तो लक्ष्मीसहित लक्ष्मीपति मोहित हो गये। रमासहित रमापतिका मोहित होना एक असाधारण लीला ह। रमापति श्रीहरि अपने रूप-गुणोसे चराचरको मोहित करनेवाले हैं उनका मोहित होना श्रीरामरूपकी उत्कृष्टताका द्योतक है। श्रीहरिके अन्य अवतारोमे न तो एसी विवाह-लीला हुई न बारात निकली। न तो इस प्रकार घोडपर सवार होकर परिछनके लिये चले। न तो मौर सिरपर धारण करके करकमलोमे मेंहदी तथा चरणकमलोमे महावर लगा आर न ही इस प्रकार दूलह-रूपमे किसीको दर्शन हुआ था। इसी रस-वैचित्र्यके कारण ब्रह्माने आठ नेत्रसे कार्तिकेयने बारह नेत्रसे तथा इन्द्रने हजारो नेत्रोसे दूलह-चितचारका दर्शन किया।

जब महारानी सुनयना सौभाग्यवती स्त्रियोके साथ परिछनके लिये मङ्गल सजाने लगीं तब इन्द्राणी, सरस्वती और भवानी आदि चतुर देवपत्नियाँ कपटसे श्रेष्ठ नारियोका वेप बनाकर रनिवासमे जा मिलीं। आनन्दातिरेकके कारण न तो इनके तरफ किसीका ध्यान गया और न ही किसीने इन्हे पहचाना। मिथिलाका परिछन भी विलक्षण है—मङ्गल वस्तुओसे परिपूर्ण थालमे ताम्बूल दीपक तथा लोढा भी होता ह। पानके पत्तेमे घी लगाकर दीपककी बत्तीमे उसे गर्म करके दूलहके दोनो गाल सेंके जाते हैं। लोढाको भी गर्मकर कपालमे संस्पर्श कराया जाता ह। श्रीलक्ष्मणकुमारने श्रीपरशुरामजीसे जो वार्तालाप किया उसमे ईंटका जवाब पत्थरसे दिया था अत मिथिलाकी सखियाँ सोचने लगीं कि यदि इसी प्रकार मण्डप कोहबर तथा कलवामे दोको चार जवाब देगे तो कठिनाई होगी अत गालको सेक देना चाहिये। गर्म होनेपर कम बोलेगे ठंडा होनेपर अधिक बोलेगे। इस माधुर्य-भावकी तुलना असम्भव ह। मिथिलावासी गर्वके साथ गाते हैं कि—

आजु मिथिला नगरिया निहाल सखिया
चारो दुलहामे बड़का कमाल सखिया।
जिनका लागी जोगी मुनि यड़ तप कैयलन
सेह हमर मिथिलामे पाहुन बनकर अइलन।
आज लोढ़ासे सेकाइल इनकर गाल सखिया॥

मिथिलावासिनीका रूप धारणकर उमा तथा रमा आदिने जब दूलह-चितचारके कपालका संस्पर्श प्राप्त किया तब वे कृतार्थ हो गयीं। परिछनकर कुल-रीतिके अनुसार महारानीने सभी व्यवहार किये। नाना प्रकारके वस्त्र-पाँवडे पड रहे हैं। आरती आदिके पश्चात् श्रीराघवेन्द्र मण्डपमे पधारे। ब्रह्मादि देवता विप्र-वेप बनाकर विवाह-महोत्सव देखने लगे। नाई बारी भाट नट निछावर पाकर दूलहको आशीर्वाद दे रहे हैं। देवगण कहते ह कि जबसे ब्रह्माजीने ससार बनाया तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने हैं किंतु समान-समधी हमने आज ही देखे। मण्डपकी रचना देखकर मुनियोके मन मोहित हो गये। विधि हरि महेश दिक्पाल तथा सूर्य आदि जो श्रीरघुवीरका प्रभाव जानते हैं वे कपटसे ब्राह्मणका सुन्दर वेश बनाये हुए कौतुक देखकर आनन्दित हो रहे हैं। श्रीरघुनाथजीने उन्हे पहचान लिया

तथा उन्हे मानसिक आसन दिया।

रामचद्र मुख चद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥

श्रीमिथिलेश-राजकिशोरी सीताजीका शृगारकर सखियाँ मण्डपमें लिवा ले चलीं। सभी सोलह शृगार किये हैं तथा मत्त गजगामिनी है। उनका मनाहर गान सुनकर मुनिगण ध्यान छोड देते है तथा कामदेव-रूपी कोकिल लज्जित हो जाते हैं। नूपुर, मजीर, ककण-तालकी गतिपर बज रहे है। सहज-सुन्दर जनक-लाडिली श्रीसीताजी स्त्रियाके झुडम ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो छबि-रूपा स्त्री-समाजके बीचमे परमा शोभा शोभित हो—

सोहति बनिता बृद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥

यहाँ सखियोके शृगार आदिका वर्णनकर परोक्षरूपसे श्रीराजकिशोरीजीकी भी शोभाका सकेत कर दिया। जब सखियोके करधनी, मजीर, नूपुर आदि तालकी गतिस बज रहे हैं, तब स्वामिनीजूके भूषणाकी ध्वनिका वर्णन कौन करे? श्रीराजकिशोरीजीकी सुन्दरताका वर्णन सम्भव नहीं है क्याकि सौन्दर्य अपार है, बुद्धि तुच्छ ह। श्रीरामचन्द्रजी श्रीकिशोरीजीको देखकर पूर्णकाम हो गये। यद्यपि प्रभु पूर्णकाम है, किंतु श्रीजीकी प्राप्तिसे अपने अवतारका मुख्य प्रयोजन सिद्ध हुआ। श्रीराजकिशोरीजीके बिना उनकी लीला रसमयी नहीं होती। इस प्रकार श्रीराजकिशोरीजी मण्डपम विराजमान हो गयीं।

दूलहको देखकर राजा-रानी प्रेममे मग्न हो गये तथा दम्पति उनके पद-कमलाका पखारने लगे—

लागे पखारन पाय पकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥

*　　　　*

करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

वर तथा कन्याकी हथेलियाको मिलाकर अथात् वरकी दक्षिण हथेलीपर कन्याकी दक्षिण हथेली रखवाकर दाना कुलगुरु शाखोच्चार करने लग। पाणिग्रहण हुआ यह देखकर देव-मुनि सभी आनन्दसे भर गये। श्राजनकजान लोक-वेद-विधानसे कन्यादान किया। जैसे हिमाचलन शिवजीको पार्वती तथा सागरने श्रीहरिको लक्ष्मी दी वस ही श्रीजनकजीने श्रीरामभद्रका श्रीसीताजी समर्पण की। सुन्दर वर तथा कन्या भाँवरी फेर रहे है, सभी लोग नेत्राका लाभ ले रह हैं। इस अद्वितीय मनोहर जोडीका वर्णन नहीं हो सकता। श्रीसीता-रामजीकी सुन्दर परछाई मणि-खम्भोमे ऐसे झलक रही है माना काम विवाह देख रहे है। दर्शनकी लालसासे प्रकट हाते हैं और सकाचसे छिपते ह। मुनियोने आनन्दपूर्वक भाँवरी फिरवायी तथा नेगसहित सब रीति निपटायी। सात भाँवरी भी पूरी हुई। श्रीरामचन्द्रजी जब श्रीकिशारीजीक सिरम सिन्दूर दे रह ह, उस समयकी छटा ऐसी लग रही ह मानो कमलम भली प्रकार लाल पराग भरकर सप अमृतक लोभसे चन्द्रमाको भूषित कर रहा हे। फिर वसिष्ठजीने आज्ञा दी तब दुलहा-दुलहिन दानो एक आसनपर विराजमान हो गये।

चादहा लोकाम उत्साह भर गया। सभी कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हा गया। जिह्वा एक ह मङ्गल महान् है, अत किस प्रकार वर्णन कर? वेसे तो प्रभुका अन्य समग्र चरित्र मङ्गलमय ही है किंतु विवाह-लीला महामङ्गलमयी है। बाललीला मङ्गलमयी थी किंतु श्रीकिशोरीजीकी अनुपस्थितिके कारण महामङ्गलमयी नहा हो सकी। बार-बार श्रीरामललाजीको श्रीजनकललीका स्मरण होता रहता था। राज्याभिषक-लीला भी मङ्गलमयी थी क्याकि युगल-सरकार सिहासनपर एक साथ विराजमान थे। श्रीदशरथजी महाराजक धाम पधारनेक कारण उनका अभाव बना रहा। माताआके वेधव्यके कारण भी वह उत्सव फीका रहा। विवाह-लीलाम ता समस्त राज-समाज दव-समाज एकत्रित हैं। एक मण्डपम चारा जाडीका दर्शनकर सभी कृतकृत्य हैं। अत यह विवाह-लीला महामङ्गलमयी ह—

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मगलु महा॥

वसिष्ठजीकी आज्ञास श्रीजनकजान श्रीमाण्डवी श्रीश्रुतिकीर्ति श्राउर्मिलाजी—इन तीना कन्याआका बुला लिया। प्रथम महाराज कुशध्वजका गुण-शील-सुख-शाभामयी बडी कन्या श्रामाण्डवाजीका श्रीभरतजीक साथ विवाह कर दिया फिर श्रीजानकीजीकी छाटी बहिन श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मण-कुमारक साथ तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीका श्रीशत्रुघ्नजाक साथ विवाह कर दिया। सब सुन्दरा दुलहिन सुन्दर दुलहाक साथ एक ही मण्डपम एसी शाभित हा रही हैं माना जीवक

हृदयमें चारों जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियोंके साथ विराजमान हैं। 'जाग्रत्'-अवस्था श्रीश्रुतिकीर्तिजी और उनके विभु स्वामी विश्व-आत्मा श्रीशत्रुघ्नजी हैं। 'स्वप्न'-अवस्था श्रीउर्मिलाजी तथा उनके स्वामी श्रीलक्ष्मणकुमार विश्व-भावन हैं। 'सुषुप्ति'-अवस्था श्रीमाण्डवीजी प्राज्ञ श्रीभरतजी एवं 'तुरीय'-अवस्था श्रीसीताजी तथा स्वयं अन्तर्यामी श्रीरघुनाथजी हैं—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥

विवाहके पश्चात् महाराज जनवासे पधारे तथा मुनिकी आज्ञासे सुन्दरी सखियाँ मङ्गल-गान करती हुई दुलहिनोंसहित चारों दुलहोंको लेकर कोहबरमें चलीं। कोहबरमें अनेक मधुर हास्य-विनोद-पूर्ण लीलाएँ होती हैं। जिसमें दुलहा-दुलहिन दोनोंको जितानेका प्रयास सखियाँ करती हैं। इस विनोद-लीलामें जिसकी विजय होती है, वही वर श्रेष्ठ घोषित किये जाते हैं। इसमें दुलहिनकी विजय तथा दुलहाकी पराजय निश्चितप्राय है—

नव सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुन्दरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

श्रीराजकिशोरीजी बार-बार श्रीरघुनाथजीकी ओर देखती हैं, फिर सकुचा जाती हैं, किंतु मन नहीं सकुचाता। प्रेम-प्यासे नैन सुन्दर मछलीकी छविका हरण कर रहे हैं। भरसक श्रीकिशोरीजी लज्जाके मारे श्रीरामजीकी ओर नहीं देखतीं। यहाँ कंगन सखियाँ हैं, वे भी गान एवं हास्य-विनोद करती हुई घूम-फिर रही हैं। अतः अनुकूल समय पाकर अपने प्रियतमको देखती हैं। गोस्वामी भी यह प्रेम-विवशता उपासकोंके लिये रसमय है।

कोहबरमें उस समय श्रीरामचन्द्रकी अपार शोभाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—प्रभुका श्याम शरीर स्वाभाविक सुन्दर है, कान्ति-धामकी शोभाको लज्जित करनेवाला है। महावरसे युक्त चरण शोभा दे रहे हैं, जिनमें मुनियोंके मनरूपी मधुप लुभा रहे हैं। [illegible] सुन्दर भूषण शोभित हैं। [illegible]
[illegible]

भूषण विराजमान हैं। मणि-मोती-मण्डित पीला दुपट्टा काँखा सोती पड़ा है। कानोंमें कुण्डल, भृकुटी सुन्दर, नासिका मनोहर, मस्तकपर तिलक सुन्दरताका निवास-स्थान है। माथेपर मङ्गलमय मणि-मुक्ताओंसे गुँथा हुआ मौर सोह रहा है। सुन्दर मौरमें महामणि गुँथे हुए हैं। सभी अङ्ग चित्तको चुरानेवाले हैं। नगरकी स्त्रियाँ तथा देवपत्नियाँ दूलहको देखकर तिनका तोड़ती हैं, जिससे किसीकी नजर न लगे। मणि-वस्त्र-आभूषणोंको न्योछावर कर आरती उतारती तथा मङ्गल-गीत गाती हैं। देवता फूल बरसाते हैं, सूत-मागध सुयश गाते हैं। सुवासिनी स्त्रियाँ दुलहा-दुलहिनको कोहबरमें लाकर गीत गाकर लौकिक रीति करने लगती हैं। गौरीजी श्रीराघवेन्द्रको लहकौरि सिखाती हैं तथा श्रीसरस्वतीजी श्रीराजकिशोरीजीको। समस्त रनिवास हास-विलासमें निमग्न है। सखियाँ सभी जन्मका फल पा रही हैं। अपने हाथके मणियोंमें स्वरूप-निधान श्रीराघवेन्द्रका प्रतिबिम्ब देखकर श्रीजानकीजी दर्शनमें वियोगके भयसे भुजवल्ली तथा दृष्टिको नहीं हटातीं। हास्य-विलास-मोद-विनोद कहा नहीं जाता, सखियाँ ही जानती हैं—

कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।

मानसकारने विवाहकी फलश्रुतिमें कहा है कि जो श्रीसीता-रामजीके विवाहका गान-श्रवण करता है, उसका सदा मङ्गल होता है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

इतना ही नहीं, दूलह-दुलहिनकी छविका दर्शन ही जीवनका फल है—

दूलह राम सीय दुलही री!
घन दामिनि बर बरन हरन मन सुन्दरता नखसिख निबही री॥
ब्याह बिभूषन बसन बिभूषित सखि अवली लखि ठगि सी रही री।
जीवन जनम लाहु लोचन फल है इतनोइ लह्यो आजु सही री॥
सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री।
मथि माखन सिय राम सँवारे सकल भुवन छबि मनहु मही री॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री।
रूप रासि बिरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री॥
(गीतावली १।१०५)

[क्रमशः]

॥ ॐ ॥

श्रीशिव-लीला-चिन्तन

[महामहेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ एव लीलाओका रहस्य जनाते हे वे जान सकते ह। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाआका देख-सुनकर देवी-देवता एव मुनियाको भी भ्रम हो जाया करता हे, फिर साधारण लोगाकी तो बात ही क्या? परतु वास्तवमे शिवजी महाराज ह बडे ही आशुतोष। स्वल्प भी उपासना करनेवालेपर वे अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी कुछ लीलाओका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत ह।—स०]

सतीशिरोमणि सती और भगवान् सदाशिव

भगवान् शकर स्वभावसे ही विरक्त एव आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भम ही उन्हान स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यम बाधा पडती दिखायी दी। व शकरजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहत थ जा विध्वसकारी असुराका दमन करनवाला तथा दवताआका सरक्षक हो। इसके लिये उन्हान शकरजीसे विवाह करनक लिये अनुराध किया, किंतु वे अपने सकल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीघकालीन समाधिम सलग्न हाकर सदा अपने इष्टदव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते थे। सृष्टि और सहारक झमेलम पडना उन्ह स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खाजम थ जो महादवजीके अनुकूल हा उनके तेजको धारण कर सके ओर अपन दिव्य सौन्दर्यस उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनम समर्थ हो, किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हे दिखायी न दी। तब उन्होने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करनी ही उचित समझी।

ब्रह्माजीके नौ मानस पुत्राम प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध है। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे हुई थी। एक समय शापवश इनको यह शरीर त्यागना पडा। उसके बाद वे दस प्रचेताओंके अशस उनकी पत्नी मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए। तबसे प्राचेतस दक्षके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी।[1] ब्रह्माजीक आदेशसे दक्षने आराधना करक भगवतीको पुत्रारूपम प्राप्त किया परतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे ता म तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी तथा शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भालापन देखकर ही माता-पितान उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनस ही भगवान् शकरकी आर आकृष्ट था। कुछ बडी होनपर उन्हाने खेल-कूद और मनोरजनसे मनको हटा लिया और वे नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगीं। वे प्रात काल ब्राह्ममुहूर्तम उठकर गङ्गास्नान करतीं और भगवान्की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल तथा बिल्वपत्र आदिस उसकी विधिवत् पूजा करती थीं फिर नत्र बद करक मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान करतीं और उनस मिलनक लिय उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती था।

सच्चे प्रमकी पिपासा प्रतिक्षण बढती ही रहती है यही दशा सतीकी भी थी—उनक मन-प्राण भगवान् शकरके लिय व्याकुल रहन लगे, उन्हे विरहका एक-एक क्षण युगक समान प्रतीत हाता था, उनकी जिह्वापर 'शिव'-का नाम था एव हृदयम उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी तथा उनकी आँख शिवक सिवा दूसरे पुरुषका दखना नहीं चाहती थीं। वे सोचतीं—'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करग? क्या कभी ऐसा समय भी आयगा, जब म अपन-आपको उनक चरणाम समपित करक यह तन, मन, जीवन आर यौवन सार्थक कर सकूँगी?' इन्हीं भावनाआम वे बसुध रहती थीं। सतीकी यह प्रम-साधना आगे चलकर कठोर तपस्याके रूपम

१-कहीं-कहीं स्वायम्भुव मनुकी कन्या 'प्रसूति'को इनकी धर्मपत्नी बताया गया है।

परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शकरके पास गये और उनसे असुर-विनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा। ब्रह्माजीने कहा—'महेश्वर! दक्ष-कन्या सती आपका पतिरूपम प्राप्त करनेके लिय तपस्या कर रही है। वे ही आपके सर्वथा अनुरूप हे आप उन्ह ग्रहण कर।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओको विदा कर दिया।

सतीकी व्रताराधना अव पूर्ण होनेको आयी। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि थी। सतीने उस दिन बडे प्रेम और भक्तिके साथ अपन प्राणाराध्य महेश्वरका पूजन किया। दूसर दिन व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् शिव एकान्त कुटीरम सतीक सम्मुख पकट हुए। सती निहाल हो गयीं।

जिनकी बाट जोहत-जोहत युग बीत गय थे उन्हीं आराध्यदवका सहसा सामन पाकर वे क्षणभरक लिय लज्जाम जडवत् हो गयीं। मन आनन्दके समुद्रम हिलार लेन लगा उनकी आँख भगवान्‌क चरणाम जा लगीं तथा शरीर रोमाचित हो उठा। उन्हाने काँपत हाथोस प्रियतमका चरण-स्पर्श किया और भक्तिभावसे प्रणाम करक प्रमाश्रुओस वे उनर पाँव पखारन लगीं।

भगवान्‌न अपन हाथोम सतीको उठाकर खडा किया। उस समय उनका रोम-रोम अनिर्वचनीय रसम डूबा हुआ था। शकरजी सतीकी तपस्याका उद्देश्य जानते थे, तो भी उन्होने उन्हींके मुँहसे उनका मनोरथ सुननेकी इच्छासे कहा—'दक्ष-कुमारी! मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत सतुष्ट हूँ। बताओ किसलिये तुमने अपने कोमल अङ्गोको इस कठोर साधनाके द्वारा कष्ट पहुँचाया है?'

सती सकोचमे मुख नीचे किये हुए ही बोलीं—'देवाधिदेव! आप घटघटवासी हैं, मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है। आप स्वय ही आज्ञा दे, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' सतीका वह अलौकिक प्रेम देखकर भगवान् शिव उनके हाथो बिना दाम बिक गये। वे सहसा बोल उठे—'देवि! तुम मरी पत्नी बनकर मुझे अनुगृहीत करो।' सतीका हाथ भगवान् शिवके हाथम था। प्रभुकी वह अनुरागभरी वाणी सुनकर वे पुन रमणी-सुलभ लज्जाके वशीभूत हो गयीं। उनकी जन्म-जन्मकी साध अब पूरी होने जा रही थी। उस समय उनके मनम कितना सुख कितना आह्लाद था, इसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होने थोडी ही देरमे अपनेको सँभाला और मन्द मुसकानके साथ सकोचयुक्त वाणीमें कहा—'भगवन्! मै अपने पिताके अधीन हूँ आप उनकी अनुमतिसे मुझे अपनी सेवाका सौभाग्य प्रदान करे।'

'बहुत अच्छा' कहकर शकरजीने सतीको आश्वासन दिया और उससे विदा लेकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर सतीकी तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी बात दक्षके घरमे फैल गयी। उसे सुनकर दक्ष बहुत चिन्तित थे कि 'किस प्रकार सतीका विवाह शिवजीके साथ होगा?' इतनेहीमें भगवान् शकरकी अनुमतिसे ब्रह्माजीने आकर कहा—'मैं स्वय ही शकरजीको साथ लेकर यहाँ आऊँगा तुम विवाहकी तैयारी करो।' नियत समयपर ब्रह्मा आदि देवताओके साथ भगवान् शिव विवाहके लिये पधारे। उस समय भी उनका वही विचित्र वेष था। दक्षको उनकी वेश-भूषापर क्षोभ हुआ फिर भी उन्होने समारोहपूर्वक सतीका विवाह शिवजीके साथ कर दिया।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो पतिके साथ कैलासधाम चली गयीं। वे भगवान् शिवके साथ दीर्घकालतक वहाँके सुरम्य प्रदेशोम सुखसे रहने लगीं।

देवताओ और यक्षोकी कन्याएँ उनकी सेवा किया करती थीं। भगवान् शिवके पास अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, योगी, यति, सत-महात्मा पधारते और सत्सगका लाभ उठाया करते थे। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामे बडा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमे रहते हुए उन्हे कितने ही युग बीत गये। सतीके तन, मन और प्राण केवल शिवकी आराधनामे लगे रहते थे। उनके पति, प्राणेश और देवता सब कुछ भगवान् शिव ही थे।

एक बार त्रेतायुगमे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवशमे अवतार लिया था। उस समय वे पिताकी आज्ञासे राज्यका परित्याग करके तापस-वेषमे दण्डकवनके भीतर विचरण कर रहे थे। इसी समय रावणने मारीचको कपटमृग बनाकर भेजा था और एकान्त आश्रमसे सीताको हर लिया था एव श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके साथ वनमे सीताकी खोज कर रहे थे। जिनमे कभी सयोग-वियोग नहीं है, उनमे भी विरहका दु ख प्रत्यक्ष देखा जा रहा था।

इसी अवसरपर भगवान् शकर सतीदेवीके साथ अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासकी ओर लौट रहे थे। जब उन्होने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा तब उनके हृदयमे बडा आनन्द हुआ। श्रीराम शोभाके समुद्र हे, उन्हे शिवजीने आँख भरकर देखा, परतु ठीक अवसर न होनेके कारण परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पडा—*'जय सच्चिदानद जग पावन।'* शकरजी सतीके साथ चले जा रहे थे आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमे बारम्बार रोमाच हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमे बडा सदेह हुआ। वे सोचने लगी—'शकरजी तो सारे जगत्के वन्दनीय है, मनुष्य और मुनि सब इनको मस्तक झुकाते हैं फिर इन्होने एक राजकुमारको 'सच्चिदानन्द परमधाम' कहकर प्रणाम कैसे किया और उसकी शोभा देखकर ये इतने प्रेममग्न कैसे हो गये कि अबतक इनके हृदयमे प्रीति रोकनेसे भी नही रुकती। जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक मायारहित अजन्मा अगोचर इच्छारहित और भेदशून्य है, जिसे वेद भी नहीं जान पाता वह क्या देह धारण करके मनुष्य बन सकता है? देवताओके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु है, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हे, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेगे? परतु शिवजीने सर्वज्ञ होकर भी उन्हे 'सच्चिदानन्द' कहा है, उनकी बात भी तो झूठी नहीं हो सकती।'

इस प्रकार सतीके मनमे महान् सदेह उत्पन्न हो गया। यद्यपि उन्होने प्रकट रूपसे कुछ भी नहीं कहा, फिर भी अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। उन्होने सतीको समझाकर कहा कि 'समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति मायापति, नित्य, परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोके हितके लिये अपनी इच्छासे ही 'रघुकुल-रत्न' होकर अवतार लिया है।' पर सतीके मनमे उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन-ही-मन भगवान्‌की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—'यदि तुम्हारे मनमे अधिक सदेह है, तो जाकर परीक्षा क्यो नहीं लेती? जबतक तुम लौट न आओगी मै इसी बटकी छाँहमे बैठा रहूँगा।'

भोली-भाली सतीपर भगवान्‌की योगमायाका प्रभाव पड चुका था। वे पतिकी आज्ञा पाकर भगवान्‌की परीक्षा लेने चल पडीं। इधर शकरजी अनुमान करने लगे—'आज सतीका कल्याण नहीं है। मेरे समझानेपर भी जब सदेह दूर नहीं हुआ तो विधाता ही विपरीत है, इसमे भलाई नहीं है। जो कुछ रामने रच रखा है, वही होगा तर्क करके कौन प्रपचमे फँसे।' यो विचारकर वे भगवान्‌का नाम जपने लगे। उधर सतीने खूब सोच-विचारकर सीताका रूप धारण किया और आगे बढकर उस मार्गपर चली गयी, जिधर श्रीरामचन्द्रजी आ रहे थे। लक्ष्मणजी सीताको मार्गमे खडी देखकर चकित हो गये। जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है उन सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने सारी बात जानकर मन-ही-मन अपनी मायाके बलका बखान करते हुए हाथ जोडकर सीतारूपिणी सतीको प्रणाम किया। अपना और अपने पिताका नाम बतलाया तथा हँसकर पूछा—'देवि! शिवजी कहाँ हैं? आप वनमे अकेली क्यो विचर रही है?' अब तो सतीजी सकोचसे गड गयीं। वे भयभीत होकर शकरजीके पास लौट आयीं। उनके हृदयमे बडी चिन्ता हो गयी थी वे सोचने लगीं—'हाय! मैने स्वामीका कहना नहीं

माना अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजीपर आरोपित किया। अब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी।'

फिर वे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उस स्थानकी ओर चलीं, जहाँ शिवजी उनकी प्रतीक्षामें बैठे थे। निकट जानेपर शिवजीने हँसकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—'सच-सच बताओ, किस प्रकार परीक्षा ली है?' सतीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर भयके मारे शिवजीसे अपने सीतारूप धारण करनेकी बात छिपा ली। शंकरजीने ध्यान लगाकर देखा और सतीने जो कुछ किया था वह सब जान लिया, फिर उन्होंने श्रीरामजीकी मायाको मस्तक झुकाया।

'सतीने सीताका वेष बना लिया', यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा—'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है। सती परम पवित्र है, अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके किंतु उनके हृदयमें बड़ा संताप था। तब उन्होंने श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्‌की याद आते ही उनके हृदयमें यह संकल्प उदित हुआ—'*एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।*' ऐसा निश्चय करके वे श्रीरामका स्मरण करते हुए चल दिये। उस समय आकाशवाणी हुई—'महेश्वर! आपकी जय हो। आपने भक्तिकी अच्छी दृढ़ता प्रदान की। आपको छोड़कर ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, सर्वसमर्थ हैं और भगवान् हैं।'

सतीने भी वह आकाशवाणी सुनी। उनके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी। उन्होंने सकुचाते हुए पूछा—'दयामय! कहिये, आपने कौन-सा प्रण किया है। प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। मुझ दीनपर दया करके अपनी की हुई प्रतिज्ञा बताइये।' सतीने भाँति-भाँतिसे पूछा किंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब सतीने अनुमान किया—'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। हाय! मैंने इनसे भी छल किया। स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है।' अपनी करनीको याद करके सतीके हृदयमें बड़ा सोच और अपार चिन्ता हुई। उन्होंने समझ लिया कि शिवजी कृपाके अथाह सागर हैं, इसीसे प्रकटमें इन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा, किंतु उनकी मुखाकृतिका भाव देखकर सतीको यह विश्वास हो गया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है।

त्यागका विचार आते ही उनका हृदय व्याकुल हो गया। सतीको चिन्तामग्न देख शंकरजी उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर कथा-वार्ता कहने लगे। मार्गमें अनेक प्रकारके इतिहासका वर्णन करते हुए वे कैलासधाम पहुँचे। वहाँ अपनी प्रतिज्ञाको याद करके वे वटवृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गये तथा अपने सहज स्वरूपका स्मरण किया और अखण्ड समाधि लग गयी। सतीजी कैलासपर रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। एक-एक दिन एक-एक युगके समान बीत रहा था और इस दुःख समुद्रसे पार होनेका कोई उपाय भी नहीं सूझता था।

इस प्रकार दक्ष-कुमारी सतीके दारुण दुःखकी कोई सीमा नहीं थी। वे रात-दिन चिन्ताकी आगमें झुलस रही थीं। इस अवस्थामें पड़े-पड़े उनके सत्तासी हजार वर्ष बीत गये। इतने दिनों बाद शिवकी समाधि खुली, वे स्पष्ट वाणीमें 'राम-राम'का उच्चारण करने लगे। तब सतीने जाना कि जगदीश्वर शिव समाधिसे जगे हैं। उन्होंने जाकर शंकरजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया और श्रीहरिकी रसमयी कथाएँ सुनाने लगे। इस प्रकार दयालु महेश्वरने सतीके संतप्त हृदयको कुछ शीतल करनेका प्रयत्न किया। भगवच्चर्चामें लग जानेसे मानसिक दुःखका आवेग बहुत कुछ कम हो गया।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति'के पदपर अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृदयमें बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। संसारमें कौन ऐसा है जिसे प्रभुता पाकर मद न हो। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ देवताओं महात्माओंको जिनमें शंकरजी भी थे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। शंकरजीपर उनके रोषका कुछ विशेष कारण था। वे उनके स्वरूप-तत्त्वसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। सतीके विवाहके कुछ ही समय बाद एक बार प्रजापतियोंने यज्ञका आयोजन किया था। उसमें बड़े-बड़े ऋषि देवता मुनि और अग्नि आदि भी अपने अनुयायियोंसहित उपस्थित हुए थे। ब्रह्मा

और शिवजी भी उस सभामें विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी वहाँ पधारे। सभी सभासद उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये। केवल ब्रह्माजी और महादेवजी अपने स्थानपर बैठे रहे। ब्रह्माजी दक्षके पिता ही थे, अतः उन्होंने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु शंकरजीका बैठे रहना उनको बहुत बुरा लगा। उन्हें इस बातके लिये खेद था कि 'शंकरजीने उठकर मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया।' अतः उन्होंने भरी सभामें उनकी बड़ी निन्दा की, कठोर वचन सुनाये और शाप तक दे डाला। भगवान् शंकर चुपचाप चले आये। उन्होंने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इतनेपर भी दक्षका रोष उनके प्रति शान्त नहीं हुआ था। वे शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे द्वेष रखने लगे। यहाँतक कि अपनी पुत्री सतीके प्रति भी उनका भाव अच्छा नहीं रह गया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर साधनेका अच्छा अवसर मिला। पहले तो उन्होंने वाजपेय यज्ञ किया और उसमें शंकरजीको भाग नहीं लेने दिया। उसके बाद पुनः बड़े समारोहके साथ 'बृहस्पति-सव' नामक यज्ञका आयोजन किया। इस उत्सवमें प्रायः सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता और उपदेवता आदि आमन्त्रित थे। सबने अपनी-अपनी पत्नीके साथ जाकर यज्ञोत्सवमें भाग लिया और स्वस्तिवाचन किया। केवल ब्रह्मा और विष्णु कुछ सोचकर उस यज्ञमें सम्मिलित नहीं हुए। सतीने देखा, कैलासशिखरके ऊपर आकाशमार्गसे विमानोंकी श्रेणियाँ चली जा रही हैं। उनमें देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा किन्नर आदि बैठे हैं। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी हैं, जो चमकीले कुण्डल, हार तथा विविध रत्नमय आभूषण पहने भलीभाँति सज-धजकर गीत गाती हुई जा रही हैं।

सतीने पूछा— भगवन्! यह सब क्या है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं?' भगवान् शिवने मुसकराते हुए कहा—'तुम्हारे पिताके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। उसीमें ये लोग निमन्त्रित हैं।' पिताके यज्ञकी बात सुनकर सतीको कुछ हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा—'यदि स्वामीकी आज्ञा हो तो यज्ञके ही बहाने कुछ दिन वहीं चलकर रहूँ।' यह विचारकर वे भय, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई वाणीमें बोलीं—'देव! पिताजीके घर यज्ञ हो रहा है तो उसमें मेरी अन्य बहनें भी अवश्य पधारेंगी। माता और पितासे मिले मुझे युग बीत गये। इस अवसरपर आपकी आज्ञा हो तो आप और मैं दोनों वहाँ चलें। यज्ञका उत्सव भी देखेंगे और सबसे भेंट-मुलाकात भी हो जायगी। प्रभो! यह ठीक है कि उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया, अतः वहाँ जाना ठीक नहीं है, तथापि पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सम्भव है अति व्यस्तताके कारण वे निमन्त्रण देना भूल गये हों, अथवा देनेपर भी यहाँ पहुँच न पाया हो।'

शिवजीने कहा—'इसमें संदेह नहीं कि माता-पिता आदि गुरुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, परंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब वहाँके लोग प्रेम रखते हों। जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जानेसे कदापि कल्याण नहीं होता। तुम्हारे पिता मुझसे द्वेष रखते हैं, अतः तुम्हें उनको और उनके अनुयायियोंको देखनेका भी विचार नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो इसका परिणाम अच्छा न होगा, क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिका जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।'

इसके बाद शंकरजीने बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया, पर सती रहना नहीं चाहती थीं। स्वजनोंके स्नेहका स्मरण करके उनका हृदय भर आया। वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंके साथ सतीको अकेली ही विदा कर दिया। सती अपने समस्त सेवकोंके साथ गङ्गातटपर बनी हुई दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। मण्डपमें पहुँचनेपर दक्षने सतीका किंचित् भी सत्कार नहीं किया। उनकी चुप्पी देखकर दूसरे लोग भी उन्हींके भयसे कुछ भी न बोले। केवल माता और बहनें सतीसे प्रेमपूर्वक मिलीं और उन्हें आदरपूर्वक उपहारकी वस्तुएँ देने लगीं, किंतु पितासे अपमानित होनेके कारण स्वाभिमानिनी सतीने किसीकी दी हुई कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की। सतीको स्वामीकी कही हुई बात याद आने लगी।

उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देकर उनका घोर अपमान किया गया था। सतीने इस बातको और भी

लक्ष्य किया। इससे उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उनकी भौंहें तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं और ऐसा जान पड़ा मानो वे सम्पूर्ण जगत्‌को भस्म कर डालेंगी। उनका यह भाव देखकर शिवके पार्षद भी दक्षको दण्ड देनेके लिये उद्यत हो गये, किंतु सतीने उन्हें रोक दिया और समस्त सभासदोंके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'पिताजी! भगवान् शंकर सम्पूर्ण देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं, उनसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। उनके लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वरूप हैं, अतः उनका किसीके साथ भी वैर-विरोध नहीं है। ऐसे भगवान्‌के साथ आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है? विप्रवर! आप-जैसे ज्ञानशून्य लोग ही दूसरोंके गुणोंमें भी दोष देखते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष ऐसा नहीं करते। जो दूसरोंके थोड़े-से गुणोंको भी बहुत बड़े रूपमें देखना चाहते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं। आपने ऐसे महापुरुषोंमें भी दोष देखना आरम्भ किया है। जो दुष्ट इस मुर्दे शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे ईर्ष्यावश सदा ही महात्माजनोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि महापुरुषोंकी चरण-धूलि उन निन्दा करनेवाले पापियोंके तेजका नाश कर देती है, अतः उनके लिये यही उचित भी है। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम बातचीतके प्रसंगमें भी जिह्वापर आ जाय तो नाम लेनेवालेके समस्त पापोंका तत्काल विनाश कर देता है। जिनके शासनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, जिनकी कीर्ति परम पवित्र है, उन्हीं मङ्गलमय शिवसे आप द्वेष करते हैं—यह महान् आश्चर्य है। सचमुच ही आप अमङ्गलरूप हैं। अहो! महापुरुषोंके मनरूपी भ्रमर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन करते हैं तथा जो भोग चाहनेवाले पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी प्रदान करते हैं, उन्हीं विश्वबन्धु भगवान् भूतनाथसे आप वैर करते हैं, यह आपके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है। सुनती हूँ, आप कहा करते हैं कि वे केवल नाममात्रके शिव हैं, उनका वेष तो महान् अशिव—अभद्र है, क्योंकि वे नरमुण्डोंकी माला, चिताकी राख और हड्डियाँ धारण किये, जटा बिखराये, भूत-पिशाचोंके साथ नित्य श्मशानमें विचरण करते रहते हैं। मालूम होता है, शिवके उस अशिव रूपका ज्ञान सबसे अधिक आपको ही है; आपके सिवा दूसरे देवता ब्रह्मा आदि भी इस बातको नहीं जानते। तभी तो वे शिवके चरणोंपर चढ़े हुए निर्माल्यको अथवा उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। पिताजी! शास्त्र क्या कहता है? यदि कोई उच्छृंखल प्राणी धर्मकी रक्षा करनेवाले ईश्वरकी निन्दा करे, तो अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर दोनों कान मूँद ले और वहाँसे हट जाय। अथवा यदि शक्ति हो तो उस बकवादीकी दुष्ट जिह्वाको काटकर फेंक दे, ऐसा करते समय कदाचित् प्राणोंपर संकट आ जाय तो प्राणोंका भी त्याग दे, यही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं, अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं धारण करूँगी। यदि भूलसे कोई दूषित अन्न खा लिया जाय तो वमन करके उसे निकाल देना ही आत्मशुद्धिके लिये आवश्यक बताया गया है। भगवान् शिव जब-जब आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें भी दाक्षायणी (दक्षकुमारी)-के नामसे पुकारते हैं, तब-तब उस हास-परिहासको भूलकर मेरा मन तुरंत ही दुःखके अगाध समुद्रमें डूब जाता है। अतः आपके अङ्गसे उत्पन्न हुए इस शवतुल्य शरीरका अब त्याग देती हूँ, क्योंकि यह मेरे लिये कलंकरूप है।'

यज्ञमण्डपमें इस प्रकार कहकर देवी सती मौन हो उत्तर-दिशामें बैठ गयीं। उनका शरीर पीताम्बरसे ढका था। वे आचमन करके नेत्र बंद किये योगमार्गमें स्थित हो गयीं। पहले उन्होंने आसनको स्थिर किया, फिर प्राण और अपान वायुको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थापित किया। तदनन्तर उदान वायुको नाभि-चक्रसे धीरे-धीरे ऊपर उठाया और बुद्धिसहित हृदयमें स्थापित कर दिया, फिर हृदयस्थित वायुको वे कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले गयीं। महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शिव जिसको बड़े आदरके साथ अपने अङ्कमें बिठा चुके थे, उसी शरीरको मनस्विनी सतीदेवी दक्षपर क्रोध होनेके कारण त्याग देना चाहती थीं, अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें अग्नि और वायुकी धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी जगद्गुरु भगवान् शिवके चरणारविन्द-मकरन्दका चिन्तन करने लगीं

उसके सिवा दूसरी किसी वस्तुका उन्हे भान न रहा। उस समय उनका वह दिव्य देह, जो स्वभावसे ही निष्पाप था, तत्काल योगाग्निसे जलकर भस्म हो गया।[1]

इस प्रकार पतिप्राणा सतीकी एहलौकिक लीला समाप्त हुई। उन्होने जीवनभर सदा ही तन, मन, प्राणसे अपने पति भगवान् शिवकी सेवा और समाराधना की तथा अन्तमे भी उन्हींका चिन्तन करते-करते प्राण-त्याग किया। मरते समय भी उन्होने भगवान्से यही वर माँगा था कि 'प्रत्येक जन्ममे मेरा भगवान् शिवके ही चरणोमे अनुराग हो[2]।' इसीलिये वे पुन गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमे प्रकट हुईं और उन्हाने भगवान् शकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। सतीका यह दिव्य पतिप्रेम भारतकी नारियोके लिये आदर्श बन गया। आज घर-घरमे सती-पूजाकी जो प्रथा चली आती है, उसमे दक्ष-कन्या सतीके प्रति ही भारतीय नारियाँ अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करती हैं। सतीजी भगवान् शिवके लिये ही उत्पन्न हुईं, उन्हींकी सेवाके लिये जीवित रहीं और उसीमे बाधा पडनेपर फिर उन्हींको सम्पूर्णरूपसे प्राप्त करनके लिये उन्हाने अपने शरीरको त्याग दिया। गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर सतीने अपना शरीर छोडा था, वह आज भी 'सौनिक तीर्थ'के नामसे विख्यात है।

पार्वती-शंकरकी विवाह-लीला

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥
(रा०च०मा० १। २३५)

सतीत्व ही नारीका सौन्दर्य है पातिव्रत्यकी रक्षा ही उसका व्रत है। मन वाणी और क्रियाद्वारा पतिक चरणामे पवित्र प्रेम ही उसका धर्म है। ऊँची-स-ऊँची स्थितिको पाकर भी मनमे अहकारका उदय न होना, भारी-से-भारी सकट आनेपर भी धैर्य न छोडना स्वय कष्ट सहकर भी स्वामी तथा कुटुम्बीजनाको यथायोग्य सेवासे प्रसन्न रखना, विनय कामलता दया प्रेम लज्जा सुशीलता ओर वत्सलता आदि सद्गुणाका हृदयम धारण करना—यह प्रत्येक साध्वी नारीका स्वभाव होता है। नारी न भीरु हाती है, न अबला। भीरुता ओर अबलापनको तो वह अपने पति और गुरुजनोके सामने केवल विनयकी रक्षा और अविनयसे बचनेके लिये धारण किये रहती है। सती नारीकी सबसे बडी शक्ति है उसका पातिव्रत्य, जो सम्पूर्ण जगत्को सबल और निर्भय बना सकता हे। वह प्राणोके रहते सतीत्वपर आँच नहीं आने देती। आवश्यकता हुई तो सतीत्वकी रक्षाक लिये वह शस्त्र भी ग्रहण करती हे और आततायीके लिये भयानक रणचण्डी बन जाती है। अपने पति और पुत्राके ललाटमे रक्तका चन्दन लगाकर स्वय ही उन्हे रणम भेजती है और इस प्रकार ससारमें वह वीराङ्गना एव वीरजननीके रूपमे सम्मानित होती है। नारीके इन सभी सद्गुणो और सभी रूपोका एकत्र समन्वय देखना हा तो जगज्जननी भगवती पार्वतीके जीवनपर दृष्टिपात

१-तत स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासव जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्। ददर्श दहो हतकल्मष सती सद्य प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥
(श्रीमद्भा० ४। ४। २७)

२-सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥ (रा०च०मा० १। ६५। ५)

उनक मनम बडा क्षोभ हुआ और उन्होंने आँख खोलकर सब ओर देखा। आमके पत्तोंमें छिपे हुए कामदेवपर उनकी दृष्टि पड गयी। शिवजीने जैसे ही अपना तीसरा नेत्र खोला, कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत्‌मे हाहाकार मच गया। कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनकर मूर्च्छित हो गयी। वह रोती, चिल्लाती और करुण विलाप करती हुई शिवजीकी शरणमें गयी। आशुतोष शिव अबलाकी करुण पुकार सुनकर पिघल गये और बोले—'रति! तुम्हारा पति मरा नहीं है, केवल उसका शरीर जल गया है। अब वह बिना शरीरके ही सबमें व्याप्त हो सकेगा। अबसे उसका नाम 'अनङ्ग' होगा। जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा उस समय तुम्हारा पति उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होगा। तभीसे उसे अपने खोये हुए शरीरकी भी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर रति लौट गयी। इसी समय गिरिराज हिमालयने वहाँ पहुँचकर अपनी कन्याको गोदमें उठा लिया और सखियोंसहित उसे घर ले आये। शंकरजीकी भक्ति और दृढतासे संतुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें दर्शन दिया और पार्वतीजीसे विवाह करनेको विवश किया। शिवने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।[1]

घर आनेपर पार्वतीजीने भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये घोर तपस्या करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपना यह विचार माता-पितापर भी प्रकट किया। हिमवान्‌को तो यह अभीष्ट ही था, किंतु माताका कोमल हृदय इसे सहन न कर सका। उसने सोचा 'मेरी सुकुमारी कन्या इन कोमल अङ्गोंसे तपस्याका कष्ट कैसे सह सकेगी।' इस विचारसे उसका हृदय भर आया नेत्रोंमें आँसू छलक आये। मैनाने पार्वतीको छातीसे लगा लिया और कहा—बेटी 'उ' 'मा' (ऐसा न कर) तभीसे पार्वतीका नाम 'उमा' पड गया। माता-पिताको हर तरहसे समझा-बुझाकर पार्वतीजी बडे हर्षके साथ तपस्या करनेके लिये चलीं। हिमालयके एक सुन्दर शिखरपर पार्वतीने घोर तपस्या आरम्भ की। उनका सुकुमार शरीर तपके योग्य नहीं था तो भी शिवके चरणोंका चिन्तन करके उन्होंने सब भोग छोड दिये। स्वामीके चरणोंमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा कि शरीरकी सुध-बुध बिसर गयी।

इस प्रकार रात-दिन कठोर तपस्याके द्वारा अपने सुकोमल अङ्गोंको सुखाकर पार्वतीने कठोर शरीरवाले तपस्वियोंको भी लज्जित कर दिया। इसी बीचमें पार्वतीके आश्रमपर एक तेजस्वी ब्रह्मचारी आया। उसका शरीर

ब्रह्मचर्यके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रहा था। अतिथिका सत्कार करनेवाली देवी पार्वतीने बडे आदरसे आगे बढकर ब्रह्मचारीका विधिवत् पूजन किया। ब्रह्मचारीने उनकी पूजा ग्रहण करके पलभर अपनी थकावट मिटायी फिर पार्वतीकी तपश्चर्याकी महान् प्रशंसा करते हुए तपका उद्देश्य जानना चाहा। ब्रह्मचारीने ऐसे ढंगसे बात कही मानो उसने पार्वतीके हृदयमें पैठकर सब बात जान ली हो। उन्हें सुनकर पार्वती ऐसी लजा गयी कि अपने मनकी बात मुँहसे न निकाल सकीं अतः उन्होंने सखीकी ओर देखकर उसे कहनेके लिये संकेत किया। तब पार्वतीजीकी सखीने ब्रह्मचारीको बडे मधुर शब्दोंमें पार्वतीकी मानसिक स्थितिका वर्णन करते हुए यह बता दिया कि ये पिनाकपाणि श्रीमहादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तप कर रही हैं। इसपर ब्रह्मचारीने अपनी अरुचि व्यक्त करते हुए महादेवजीके अशुभ वेषका वर्णन करके उनकी निन्दा की

१-सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

ओर अन्तम कहा कि 'मर विचारस तुम्ह अपने मनको इस अनुचित आग्रहस हटा लेना चाहिये। कहाँ तुम आर कहाँ वह। दोनाम आकाश-पातालका अन्तर है।'

ब्रह्मचाराकी एसी उलटी-सीधी बात सुनकर पार्वतीक आठ क्राधसे कॉपने लगे, भौंह तन गया ओर आँखे लाल हो गयीं। उन्हान ब्रह्मचारीकी आर आँख तररकर देखा आर कहा—'निश्चय ही महादेवजीक वास्तविक स्वरूपको तुम नहीं जानते, तभी तुम्हार मुँहसे ऐसी बात निकली हैं। मूर्ख लोग महात्मा पुरुपाके उम अलाकिक चरित्रकी निन्दा ही करत हैं जिसके रहस्यका जानने या समझनेकी उनम क्षमता नहा होती। जो लाग अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति दूर करना चाहते है अथवा धनके लिय उत्सुक रहते ह व ही ढूँढ-ढूँढकर माङ्गलिक कही जानवाली वस्तुआका सवन करत ह परतु जो सम्पूर्ण जगत्का शरण देनेवाल ह जिनक मनम काई इच्छा ही नहीं है, उन महश्वरको एसी वस्तुआसे क्या लेना है? कहत हा उनक पास कुछ नहीं है व श्मशानम घूमते है और उनका रूप भयकर है किंतु सच वात यह है कि अकिंचन हाते हुए भी व ही सम्पूर्ण सम्पदाआके दाता हे। श्मशानम विचरनेवाल हाकर भी वे ताना लाकाक रक्षक ह भयानक रूपवाल हानेपर भी व हा शिव (कल्याणकारी) कहलात ह। पिनाकपाणि महादवजाक यथार्थ स्वरूपका जाननवाले इस ससारम नहीं ह। वे सुन्दर आभूपण पहन या साँप लपट रह। हाथीका खाल आढ अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण कर। हाथम कपाल लिय हा अथवा माथपर चन्द्रमाका मुकुट सजाय हा ससारम जितन भी रूप हैं, सब उन्हींके हैं, अत उनका रूप एसा हे, ऐसा नहीं है, इस बातका निश्चय नही किया जा सकता। जिन्हें तुम निर्धन कहत हो, व ही जब अपने बलपर चढकर चलते हैं उस समय मदोन्मत्त एरावत हाथीपर चढकर चलनवाला इन्द्र भी आकर उनक चरणाम मस्तक झुकाता ह और खिल हुए पारिजात पुष्पाक परागस उनके चरणाकी अँगुलियाका लाल रगका बना दता ह। तुम्हारी आत्मा अपन स्वरूपसे भ्रष्ट हा चुकी हे। तुम शकरजीके दाप ही बतलाना चाहते थ ता भी तुम्हार मुखसे एक बात ता उनके लिय अच्छी ही निकल गयी। अर! जा ब्रह्माजीका भी उत्पन्न करनवाल ह उन महश्वरक जन्म कुल आर माता-पिता आदिका पता हो ही कस सकता ह? जा सबक माता-पिता हैं उनके माता-पिता दूसर कोन हा सकते ह अस्तु, इस विवादस काई लाभ नहा, तुमन शकरजीक बारम जैसा सुना ह, वे वेसे ही सही मरा प्रम-रसम डूबा हुआ मन उन्हाम रम गया है। अब उस उनका आरस हटाया नहीं जा सकता। प्रमीका अन्त करण प्रेमास्पदक दोपापर दृष्टि नहीं डालता[१]।'

इतनम ही पार्वतीन देखा, ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है, तब व सहसा बाल उठीं—'सखी! देखा इस ब्रह्मचारीक ओठ फडक रहे ह। यह पुन कुछ कहना चाहता है, इसे राक दा। अब यह एक शब्द भी बोलने न पाय क्याकि जा महात्मा पुरपाकी निन्दा करता ह कवल वही नहा पापी हाता जा उसके मुँहस सुनता ह उस भी पापका भागी हाना पडता हे।[२] अथवा म ही यहाँस उठकर

१-गास्वामी तुलसीदासजान भी इस प्रसगका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। सप्तर्षियाने पावताकी प्रम-पराक्षा लत समय जब महादवजाक दाप आर विष्णुक गुणाका वर्णन करक उनका मन विष्णुकी आर खींचनका प्रयत्न किया तथा नारदक उपदशका हानिकर बताकर उन्हे तपस्यास विरत करनेकी चेष्टा की उस समय पार्वतान उन्हे मुँहताड उत्तर देत हुए कहा था—

महादव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेहा सन काम॥

(रा० च० मा० १। ८०)

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ सभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

(रा० च० मा० १। ८१। ५)

२-निवार्यतामालि किमप्ययं बटु पुनर्विवक्षु स्फुरितोत्तराधर।
न केवल यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्॥

(कुमारसम्भव ५। ८३)

चली जाऊँगी।' यो कहकर उमा ज्यो ही चलनेको उद्यत हुई, महादेवजीने अपना वास्तविक रूप प्रकट करके मुसकराते हुए उनका हाथ पकड लिया। अपने जीवन-निधिको सहसा सामने उपस्थित देख पार्वतीजीके शरीरमे कम्पन होने लगा। समस्त अङ्ग पसीने-पसीने हो गये। आगे चलनेको जो पैर उठ चुका था वह जहाँ-का-तहाँ रुक गया। भगवान् शकर बोले—'कोमलाङ्गी! आजसे मै तपस्यासे मोल लिया हुआ तुम्हारा सेवक हूँ।' इतना सुनते ही पार्वती अनिर्वचनीय आनन्दमे डूब गयी। तपस्यासे उन्हे जितना कष्ट हुआ था वह सब जाता रहा। मनोवाञ्छित फल मिल जानेके कारण उनके तन-मन दोनो हरे हो गये। तदनन्तर पार्वतीने अपनी सखीके मुँहसे यह कहलाया कि 'मेरे इस शरीरके स्वामी मेरे पिता हैं अत आप उन्हीके पास आदेश देकर मेरा वरण करे।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

कुछ कालके बाद हिमालयके विशाल शिखरपर पार्वतीका स्वयवर रचाया गया। उस समय सम्पूर्ण देवताओके विमानोसे वह स्थान खचाखच भरा हुआ था। इन्द्र वरुण यम, कुबेर अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण देवता गन्धर्व यक्ष नाग और किन्नरगण मनोहर वेष बनाये वहाँ उपस्थित थे। भगवती उमा माला हाथमे लिये देवसमाजमे खडी हुईं। इसी समय उनकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शकर पाँच शिखावाले बालक बनकर उनकी गोदमे आकर सो गये। देवीने ध्यानके द्वारा उन्हे पहचानकर बडे प्रेमके साथ अङ्कमे ले लिया। पार्वतीका सकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं अत भगवान् शकरको हृदयमे रखकर स्वयवरसे लौट पडीं। इन्द्रने उस बालकको अपने मार्गका कण्टक माना और उसे मार डालनेके लिये वज्रको ऊपर उठाया। यह देख शिशुरूपधारी शिवने उन्हे वज्रसहित स्तम्भित कर दिया। वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब भगदेवताने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा

किंतु उनकी भी बाँह जडवत् हो गयी। यह देख ब्रह्माजीने भगवान् शिवको पहचान लिया और देवताओको उनकी शरणमे जानेके लिये कहा। देवता भगवान्के चरणोमे गिर पडे। महेश्वर प्रसन्न हो गये फिर सब देवताओका शरीर पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर भगवान् शिव अपने साक्षात् स्वरूपमे प्रकट हुए। पार्वतीने अपने हाथकी माला उनके चरणोमे चढा दी।

तत्पश्चात् भगवान् शकर और पार्वतीका विवाह बडे धूमधामसे सम्पन्न हुआ। वरपक्षकी ओरसे ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता बारात लेकर आये थे हिमवान्ने सबका बडे प्रेमसे स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर विदाईका समय आया। उस समय प्रेम और करुणाका समुद्र उमड पडा। सबके नेत्रोसे आँसू बह रहे थे। माताने अपनी लाडिली पुत्रीको गोदमें बिठाकर शिक्षा दी—'बेटी! तू सदा शिवजीके चरणोकी पूजा करना। नारियोका यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है[1]।' इतना कहते-कहते माताके नेत्रोमे आँसू भर आये। उन्होने कन्याको छातीसे चिपका लिया। उसके बाद पार्वती सबसे मिल-जुलकर विदा हुई। हिमवान्ने सब बरातियोको भी

१-करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥ (रा०च०मा० १। १०२। ३)

आदरपूर्वक विदा किया।

कैलास पहुँचकर युगाक बाद दो अनादि दम्पतियाका पुनर्मिलन हुआ। वे सदास ही एक प्राण—एक आत्मा थे ओर पुन उसी प्रकार रहन लग। फिर पार्वतीसे छ मुखोवाले स्कन्द उत्पन्न हुए। छहा कृत्तिकाएँ भी इन्ह पुत्र मानती थीं, इसीसे इनका नाम 'कार्तिकेय' भी है। इन्हाने तारकासुरको मारकर दवताआको निर्भय किया। दवसेनाक अध्यक्ष-पदपर अभिषिक्त होनेसे इनका नाम 'सेनानी' भी हा गया। पार्वतीजीक दूसर पुत्र 'गणश' हैं। य अनादि देवता माने गये हैं। इनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विभिन्न पुराणाम भिन्न-भिन्न प्रकारका मिलता है। एक समयकी बात है पार्वतीजीन स्नान करनसे पहले अपन शरीरम उवटन लगवाया। उसस जा मैल गिरी, उसको हाथम लेकर दवीने कौतूहलवश एक बालकको प्रतिमा बनायी। वह प्रतिमा बडी सुन्दर बन गयी। एसा जान पडा माना कोई सुन्दर बालक सो रहा है। यह देख उन्होने उसम अपनी शक्तिसे प्राण-सचार कर दिया। बालक सजीव हो उठा आर बोला 'मेरे लिये क्या आज्ञा ह ?' देवीने कहा—'तुम हाथम शस्त्र लेकर इस स्थानपर पहरा दो, में स्नानके लिये जाती हूँ। जबतक स्नान करके लोट न आऊँ तबतक किसीको अदर न आने देना।' या कहकर उमादेवी स्नानके लिये चली गयीं आर बालक पहरा दने लगा। कुछ ही देरम भगवान् शिव आये और घरक भीतर प्रवेश करने लगे। बालकने उन्हे रोका, फिर तो उन दोनाम भयकर सग्राम छिड गया। शिवने त्रिशूलसे बालकका मस्तक काट गिराया। यह देख पार्वती धरतीपर लोटकर करुणक्रन्दन करन लगीं। चारा आर हाहाकार मच गया। भगवान् शिव बालकका जीवित करनकी इच्छासे इधर-उधर दृष्टिपात करन लगे, किंतु उसका कटा हुआ मस्तक कहीं नहीं मिला। इतनेमे उनकी दृष्टि गजासुरपर पडी। उन्हाने तुरत उस दैत्यका मस्तक काटकर हाथम ल लिया और उस बालकके धडस जोड दिया। बालक जी उठा। तवस उसका नाम 'गजानन' पडा। य गजानन ही अनादि सिद्ध गणशक मूर्तिमान् स्वरूप हुए। इन्हान भगवन्नामक प्रभावस समस्त

देवादि गणोका अध्यक्षत्व प्राप्त किया ह।

एक बार पार्वतीदेवी केलासके समीप बहनवाली गङ्गाजीक तटपर स्नान करने गयीं। उस समय वहाँ सम्पूर्ण दवता दवीकी स्तुति कर रह थे। पार्वतीने पूछा 'आप लाग यहाँ किसकी स्तुति करत हें ?' इतनेहीम उन्हींक शरीरसे एक कल्याणमयी दवी प्रकट हुई आर बालीं— य देवता शुम्भ और निशुम्भ नामक दत्यास पराजित आर पीडित होकर यहाँ एकत्रित हुए हें आर मरी ही स्तुति करते हें।' व अम्बिकादवी पार्वतीजीक ही शरीरकाशस प्रकट हुइ थीं इसलिये उन्ह 'काशिकी' कहते हैं। काशिकाके प्रकट होनेके बाद पार्वतीजाका शरीर काले रगका हा गया अत व हिमालय-निवासिना 'कालिकादवी' के नामस विख्यात हुई। इस प्रकार उनक दा रूप हा गय 'गारी' आर 'काली'। इन दाना ही रूपोस उन्हाने धूम्रलाचन चण्ड-मुण्ड रक्तबाज निशुम्भ ओर शुम्भ आदि बड-बड दैत्याका सहार करक सम्पूर्ण जगत्का कल्याण किया। व काशिकादवी ही 'महासरस्वती' क नामस प्रसिद्ध है। इसा प्रकार पार्वती दवीन अन्यान्य भक्ताका भी अपनी कृपाम ही अनुगृहीत किया था। हैहयराज कार्तवीर्य अजुनपर कृपा करनवाली आदिशक्ति महामायादवी य ही हें।

एक समयकी वात ह दवता असुरापर विजय पाकर अभिमानसे फूल उठे ओर ऐसा मानन लग कि हमने अपनी ही शक्तिस विजय पायी ह। इतनहीम एक तजस्वी यक्ष प्रकट हुआ। 'वह कान ह?' इसका पता लगानक लिय क्रमश अग्नि आर वायु गये। यक्षन उनक सामन एक तिनका रख दिया उसे व अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न जला सके न उडा सक। अन्तम इन्द्र गय। यक्ष अन्तधान हा गया। उसकी जगह पार्वतीजी खडी थीं, उन्हान बताया 'वह ब्रह्म था। उसीकी शक्तिसे तुमने विजय पायी हे।' देवताआका अभिमान दूर हा गया। इस प्रकार सबस पहले ब्रह्मविद्यारूपा उमास ही ब्रह्मका ज्ञान हुआ। (यह प्रसग केनापनिपद्म आया ह।)

एक वार दवदव महेश्वरक पूछनपर गङ्गा आदि पवित्र नदियाक सामन पतिव्रताशिरोमणि श्रीपार्वती—उमाने स्त्रीधर्मका वणन करत हुए कहा—

नारी-धर्म

'दवि! मुझ स्त्रियाक धर्मका जमा ज्ञान ह उसक अनुसार उसका विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यान देकर सुना—विवाहक समय कन्याक भाइ-बन्धु पहल हा उस स्त्री-धमका उपदश कर देत हें जव कि वह अग्निक समीप अपन पतिका सहधर्मिणी वनती ह। जिसक स्वभाव वातचीत आर आचरण उत्तम हा जिसका देखनसे भा पतिका सुख मिलता हा जा अपन पतिक सिवा दूसर किसी पुरुषमें मन नही लगाती और स्वामाक ममक्ष सदा प्रसन्नमुख वना रहती ह वह स्त्री धर्माचरण करनवाला मानी गयी ह। जा साध्वी स्त्री अपन स्वामीका सदा दव-तुल्य समझता है वही धमपरायण और वही धमक फलका भागिनी हाती ह। जा पतिका दवताक समान सवा-शुश्रूषा और परिचया करती पतिक सिवा और किसास हार्दिक प्रम नहीं करती कभा रज नही हाता तथा उत्तम व्रतका पालन करती है पुत्रक मुखकी भाँति स्वामाक मुखको आर सदा निहारता रहता है और नियमित आहारका सवन करती ह वह साध्वा स्त्रा धमचारिणा है। 'पति और पत्नीका एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये।' इस मङ्गलमय दाम्पत्यधमका सुनकर जा स्त्री धर्म-परायण हा जाती है वह पतिक समान व्रतका पालन करनवाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्रा सदा अपन पतिको देवताके समान देखती है। पति आर पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना)-रूप धर्म परम मङ्गलमय है। जा अपने हृदयक अनुरागक कारण स्वामीक अधीन रहती है, अपने चित्तका प्रसन्न रखती है उत्तम व्रतका पालन करती ह आर देखनेमें सुखदायक—सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपन पतिके सिवा ओर किसीका चिन्तन नहीं करता वह प्रसन्नवदन रहनवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीक कठार वचन कहन या क्रूरदृष्टिस दखनेपर भा प्रसन्नतासे मुसकराती रहती ह, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसर किसी पुरुषकी आर देखना ता दूर रहा जो पुरुपक समान नाम धारण करनवाल चन्द्रमा सूर्य और किसी वृक्षकी आर भी दृष्टि नहीं डालती वही पतिव्रत धर्मका पालन करनेवाली ह। जो नारी अपने दरिद्र रोगी दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सवा करती है उसाका धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता ह। जो स्त्री अपन हृदयको शुद्ध रखता गृहकार्य करनेमें कुशल हाता पतिस प्रम करती और पतिको हा अपने प्राण समझती है वहा धर्मका फल पानका अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्नचित्तस पतिकी सवा-शुश्रूषाम लगी रहती है पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती ह आर उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती हे वह नारा-धर्मका फल पाती है। जिसक हृदयमें पतिक लिय जैसी चाह हाती हे वैसी काम भाग ऐश्वर्य और सुखक लिय नहीं हाती जा प्रतिदिन प्रात काल उठनमें रुचि रखती गृहक काम-काजम याग दती और घरका झाड-बुहारकर उस गायक गाबरस लीप-पातकर स्वच्छ बनाये रखता है जा पतिक साथ रहकर नित्य अग्निहात्र करता दवताआका पुष्प आर वलि अपण करती तथा देवता अतिथि और साम-ससुर आदि पाष्य-वर्गका भाजन दकर न्याय और विधिक अनुसार शप अन्नका स्वय भाजन करती है

तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंमें युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग, ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्गको भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर निःशंक भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये। भगवन्! आपकी आज्ञासे मैंने यह स्त्री-धर्मका वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बताये धर्मके अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत्य-धर्मके फलकी भागिनी होती है।'

पार्वतीजी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। भगवती सीताको इन्हींकी आराधनासे श्रीरघुनाथजीकी प्राप्ति हुई थी। ये महादेवजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके अनुरोधसे महादेवजीने अनेकानेक उपयोगी तथा गुप्त साधनोंका वर्णन किया है, जो भिन्न-भिन्न पुराणों, तन्त्रों, आगमों तथा गुरुपरम्परासे उपलब्ध होते हैं। बहुत-से मन्त्रोंका प्राकट्य भी इन्हींकी दयासे हुआ है। भगवान्के बहुत-से शतनाम, सहस्रनाम तथा अन्य स्तोत्र, व्रत आदि माहात्म्यसहित इन्हींके प्रयत्नसे प्रकट हुए हैं। इस प्रकार इनके द्वारा लोककल्याणके असंख्य कार्य हुए हैं।

भगवान् सदाशिवने पराम्बा—भगवती पार्वतीको ही सर्वप्रथम अमर कथाका श्रवण कराया था। गौरीशंकरकी मङ्गलमयी विवाह-लीला-कथाका पठन-श्रवण-मनन और चिन्तन सबके लिये कल्याणकारी है।

भगवान् शंकरका शाश्वत नृत्य

भगवान् शंकरको पुराणोंमें 'रुद्र' कहा गया है, क्योंकि वे प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। भगवान् शंकरका नृत्य शाश्वत है, क्योंकि उनमें कल्याणकी मङ्गलमयी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बड़ी-से-बड़ी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नादका ही परिणाम है। स्वयं भगवान् शंकरने स्वीकार किया है—

> नित्यमासकरणक्रमान्मियच्चित्रभावशतसन्निवशिनी ।
> निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीनतयामि परनृत्तदर्शिक ॥

अर्थात् मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणरश्मिरूपी नटियोंको नचाता हूँ, ये इन्द्रियदेवियाँ सदैव अपने वर्तिक्रमके प्रत्याहरणमें उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके संनिवेशवाली हैं।

नृत्यसे भगवान् शंकर ब्रह्माण्डमें गति लाते हैं और जीव-निर्जीवकी सृष्टि करते हैं। उनके नृत्यकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर। उनका नृत्य भयंकर है, लेकिन शिवत्वसे शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्डका कभी भी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करनेवाले हैं। उन्हें संहार कदापि प्रिय नहीं, लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थितिको प्राप्त कर लेता है तो उनको नर्तन विवश होकर प्रलयकारी रूप ग्रहण कर लेता है, परंतु शिवका यह क्रिया भी निःसंदेह जगत्की रक्षाके लिये ही होती है—

> जगद्रक्षार्थं त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

पुष्पदन्तने लिखा है—'नर्तनके समय शंकरके पदाघातसे

पृथ्वी डालने लगती है। परिधिकी तरह परिपुष्ट भुजाओंके घूमनसे आकाश सन्त्रस्त हो उठता है। लेकिन उस समय भी शकरके मनम सहारकी नहीं, निर्माणकी भावना ही होती है।'

शकरका नृत्य यथार्थमे ईशकी पञ्चक्रियाओ (सृष्टि, स्थिति, सहार, तिरोभाव और अनुग्रह)-का द्योतक है। अलग-अलग ये क्रियाएँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिवकी क्रियाएँ है। इन समस्त क्रियाओकी निष्पत्ति शिवस हे—यही नटराजकी प्रतिमाका सकत है।

भगवान् शिवका 'नटराज-नृत्य' उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति करता हुआ **'सत्य शिव सुन्दरम्'** का अमर सदेश देता-सा प्रतीत होता है। नटराजके रूपमे शिवकी कल्पना भारतीय सस्कृति और धर्मकी एक एसी समन्वयात्मक विशेषता है, जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चतुर्भुज नटराजके एक हाथमे रजोगुणका प्रतीक डमरू है जो द्यावा, पृथ्वी, अनन्तलोक और जीव-जगत्की सृष्टि करता हे और उनके दूसरे हाथमे है तमोगुणकी प्रतीक अग्नि जिससे वे उन बन्धनोका सहार करते है जो मानवात्माको बाँधे रहते हैं। भूमिपर आरोपित एक चरणसे वे माया मोह और अविद्याको दबाये रहत हैं और उठ हुए दूसरे पैरस सकटोसे त्रस्त प्राणियोको मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक्का प्रतीक है और भुजाओपर लिपटा हुआ सर्प कालका प्रतीक है।

'अशुभदभेदागम'म नटराजके चारो हाथोका वर्णन यो किया गया है—नटराजकी मूर्ति उत्तम दशतालम बनती है। नटराज-मूर्तिका सामनेका बायाँ हाथ दण्डहस्त या गजहस्त मुद्राम होकर उत्थित वामपादकी ओर सकेत करता है। दूसरे वामहस्तम पञ्चस्फुलिङ्गयुक्त अग्नि रहती है। सामनेका हाथ वरद मुद्राम होता है पीछेके दाहिने हाथमे डमरू होता है। डमरूका विशद और अद्भुत वर्णन पुराणो एव अन्य ग्रन्थोम प्राप्त होता है। सस्कृतके प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिके कथनानुसार भगवान् शकरके नृत्य करते समय उनके डमरूके घोषसे जो 'अ इ उ ण् ' इत्यादि चौदह सूत्र निकले उन्हे सनकादि ऋषियोने सगृहीत किया और उसीसे सस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

शिवकी जटा-लटाएँ पाँचसे तेरहतक दिखलायी गयी हैं। जटाओमे नर-कपाल और चन्द्रमा भी दिखाये गय हैं जो अमृत-तत्त्वके प्रतीक है। इसके अतिरिक्त धर्मकी प्रतीक गङ्गाका स्रोत-स्थान भी उनकी जटाएँ ही हैं। उनकी लबी जटाएँ वैसे सदा बँधी रहती हैं लेकिन युगान्तरोंमें (जब पापिनी और आसुरी शक्तियोस विश्व त्रस्त हो उठता है) एकाध बार सृष्टिके त्राणके लिये खुलती हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड नटराजकी नाट्यशाला है, लेकिन उनकी व्याप्ति अनन्त है। आकाश उनका शरीर है। आठो दिशाएँ उनकी भुजाएँ हैं। तीनो ज्योति (सूर्य चन्द्र अग्नि) उनके तीन नेत्र हैं। शिवका प्रथम नेत्र धरातल द्वितीय आकाश तृतीय बुद्धिके अधिदेव सूर्य एव ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी तृतीय नेत्रके खुलनसे काम भस्म हो गया था। शिवकी निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती हे और द्विधाको तिरोहित कर स्थैर्य और निश्चितता प्रदान करती है।

नटराज सर्वाङ्गम विभूतिसे अनुलिप्त-आच्छन्न रहते हैं। भस्म मौलिक तत्त्व है इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। शिवपुराणम तो यहाँतक कहा गया हे कि भस्मसे ही शकरजी सृष्टिकी रचना करते है। नटराजकी कुछ प्रतिमाएँ त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दु खोका सूचक है। त्रिशूल ही उनका परम प्रिय अस्त्र है।

नटराज-स्वरूपकी कथा

भगवान् शिव तो आशुतोष हैं वे किसीका अकल्याण नहीं चाहते फिर उन्होने नटराज-स्वरूप क्यो ग्रहण किया? इस सम्बन्धम दक्षिणम बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। सर्वमान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि तारगम नामक एक निर्जन स्थानम कुछ मीमासक अभिमानी ऋषिगण निवास करते थे और वहाँके लोगोंको अपने स्वार्थोकी सिद्धि-हेतु तग किया करते थे। उनका मिथ्याभिमान चूर करनेके लिये वहाँकी जनताने शिवाराधना की। फलत ऋषियोके समक्ष भगवान् शिव गये परतु अभिमानी ऋषियोने उन्हे वहाँ देखकर उनका सम्मान न किया और उलटे उनके प्रति क्रोध प्रकट किया। अभिमानी ऋषियोने वाराहको भगवानपर आक्रमण करनेका आदेश दिया। भयानक गुर्राहटके साथ वह शिवजीपर टूटा परतु अमित बलशाली

भगवान्‌ने उसे पकडकर एक छिगुलीमात्रसे उसकी खाल उधेड डाली और उसे पहन लिया। य देखकर ऋषिगण आगबबूला हो उठे और भयकर विषधर नागको शिवजीकी ओर फेका परतु ज्यो ही वह शिवजीके पास पहुँचा उन्होने उसे गलेमे मालावत् लपेट लिया। क्रोध और अभिमानमे पागल ऋषियोने अपन मन्त्रबलसे वहाँ एक राक्षस पैदा किया। वह राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भगवान् शकरकी ओर दौडा, किंतु महिमामय भगवान्‌ने उसे पकडकर पैरोसे रौद डाला और उसके शवपर खडे होकर नृत्य करने लगे। यही भगवान् शिवके नटराज-स्वरूपके प्राकट्यकी कथा है।

शकर और शक्ति

शकर कभी अकले नृत्य नहीं करते नृत्यके समय उनकी अर्धाङ्गभूता शक्ति (गौरी) उनके साथ रहती हैं। 'प्रदोषस्तोत्र' म लिखा है—

> कैलासभवने त्रिजगज्जनित्रीं
> गौरीं निवेश्य कनकशैलाचितरत्नपीठे।
> नृत्य विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
> देवा प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे॥

लेकिन शकरका यह अनादि और अनन्त नृत्य केवल उन्हींको दिखलायी पडता है, जो मायासे ही नहीं, महामायासे भी ऊपर उठ चुके हैं। (श्रीअशोक महाजन)

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शिवोपासना

लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियाँ थीं। उनमस जाम्बवतीको एक भी पुत्र नहीं था। उन्होने एक बार श्रीकृष्णजीसे प्रार्थना की कि 'हे देव! मुझे एक भी पुत्र नहीं ह इसलिये म बडी चिन्तित रहती हूँ। आपने भगवान् शकरकी आराधना करके रुक्मिणीके आठ पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार आप मर लिये भी शकरजीकी आराधना कीजिये। हे प्रभो! आपके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। आप अपने समान पुत्र दकर मुझे कृतार्थ एव चिन्तारहित कीजिये।'

जाम्बवतीकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुडपर आरूढ हो हिमालय पर्वतकी ओर चल पडे। वहाँ वे एक आश्रमम उतर गये। उस आश्रमकी शोभा विचित्र थी। धव, कदम्ब नारिकेल, केतक जम्बु, वट, बिल्व सरल कपित्थ प्रियाल साल तथा तमाल आदि अनेक प्रकारक वृक्षोस वह आश्रम एकदम हरा-भरा हो रहा था। भिन्न-भिन्न प्रकारके विहग सुस्वाद और सुपक्व फलोके लोभसे उनपर मँडरा रहे थे। मृग वानर शार्दूल, सिह व्याघ्र महिष ऋक्ष आदि अनेक श्वापदोसे उसम एक विचित्र रमणीयता दृष्टिगोचर हो रही थी।

देवियोके गीतसे धाराक निनादोसे विहगमोक कलरवसे मत्त-मतगजोके गर्जनसे किनरोक मनोहर गानसे और सामवेदकी रमणीय ध्वनिसे वह आश्रम कर्णप्रिय शब्दोसे गुजायमान हो रहा था।

वहाँपर असख्य मुनि तपस्या कर रहे थे। कोई केवल वायु पीकर जीवन-निर्वाह करते थे तो कोई केवल जल पीकर अपने शरीरकी रक्षा कर रहे थे ओर कोइ दो-चार घूँट दूध पीकर अपने पाञ्चभौतिक शरीरका पोषण कर रहे थे। वे सब केवल चीर अथवा वल्कल धारण किये हुए कठिन व्रतका पालन कर रहे थे और अपने जीवन-लाभका पूर्ण फल पा रहे थे।

भगवान् श्रीकृष्ण भी उसी परम पुनीत वनके एक रुचिर प्रदेशमे महर्षि उपमन्युकी दीक्षा लेकर तपस्या करने लग। उन्होने दण्ड और मेखला धारण कर लिया। हाथमे कुशा ले लिया। मुण्डन करा लिया। एक शिवलिङ्ग स्थापित करके उनकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे पूजा करते हुए घोर तप करने लगे। प्रारम्भम उन्होने एक महीनेतक केवल फल खाया। दूसरे महीनेम केवल जल पीकर निर्वाह किया। तीसरे तथा चौथे और पाँचवे महीनेमे केवल वायु पीकर समय बिताया। ऊपरकी ओर बाँह उठाये हुए एक पैरपर खडे हो वे पाँच महीनेतक 'पञ्चाक्षर-मन्त्र' का एकाग्रचित्तसे जप करते रहे। एक दिन शिवार्चन करके व आकाशकी ओर देखते हुए भगवान् शकरका ध्यान कर रहे थे। उसी समय आकाशम सहस्र सूर्यके समान एक देदीप्यमान तेज दृष्टिगोचर हुआ। उस तेजके मध्यमे जगन्माता पार्वतीसमेत भगवान् शकर विराजमान थ। महादेवजी किरीटसे सुशोभित हो रहे थे त्रिशूल हाथमे लिय हुए थे व्याघ्रचर्म अपने

शरीरम लपेट हुए थे नागका यज्ञोपवीत पहने हुए थे और अनेक वर्णके दिव्य पुष्पाकी माला घुटनातक लटकती हुई अपूर्व शोभा द रही थी। प्रमथ आदि गण उनके आस-पास विद्यमान थे। सभी देवता सभी मुनि तथा सभी विद्याधर हाथ जोडकर उनकी स्तुति कर रहे थे।

उनके तजसे भगवान् श्रीकृष्णकी आँख बद हो गयीं आर वे हाथ जोड खड रह गये। उसी समय श्रीशिवजीने समीप आकर कहा कि 'हे श्रीकृष्ण। आप मेर बडे प्यारे हैं आपने मेरी सकडा बार आराधना की है। में आपसे बहुत प्रसन्न हूँ।' तव भगवान् श्रीकृष्णने उनको आदरसहित नमस्कार कर इस स्तोत्रस स्तुति करना प्रारम्भ किया—

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिप त्वामृपयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्व च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्य च वदन्ति सन्त ॥
त्व वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भव ।
धाता त्वष्टा विधाता च त्व प्रभु सर्वतोमुख ॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्वया सृष्टमिद कृत्स्न त्रैलोक्य सचराचरम्॥
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्न
य वायव सप्त तथैव चाग्नय ।
य दवसस्थास्तवदेवताश्च
तस्मात् पर त्वामृपयो वदन्ति॥
वदाश्च यज्ञा सामश्च दक्षिणा पावको हवि ।
यज्ञापग च यत् किचिद् भगवास्तदसशयम्॥
इष्ट दत्तमधीत च व्रतानि नियमाश्च ये।
ह्री कीर्ति श्रीर्द्युतिस्तुष्टि सिद्धिश्चैव तदर्पणी॥
काम क्राधा भय लाभा मद स्तम्भाऽथ मत्सर ।
आधया व्याधयश्चैव भगवस्तनवस्तव॥
कृतिर्विकार प्रणय प्रधान वीजमव्ययम्।
मनस परमा यानि प्रभावश्चापि शाश्वत ॥
अव्यक्त पावनाऽचिन्त्य सहस्रांशुर्हिरण्मय ।
आदिर्गणाना सर्वेषा भवान् वै जीविताश्रय ॥
महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्व शम्भु स्वयम्भुव ।
बुद्धि प्रज्ञोपलब्धिश्च सवित् ख्यातिर्धृति स्मृति ॥
पर्यायवाचकै शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।
त्वा बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोह विनियच्छति॥
हृदय सर्वभूताना क्षेत्रज्ञस्त्वमृपिस्तुत ।
सर्वत पाणिपादस्त्व सर्वतोऽक्षिशिरामुख ॥
सर्वत श्रुतिमाँल्लाके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
फल त्वमसि तिग्माशोर्निमिपादिपु कर्मसु॥
त्व वै प्रभार्चि पुरुष सर्वस्य हृदि सश्रित ।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्यय ॥
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोका प्रपन्ना सश्रिताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रिया ॥
यस्त्वा ध्रुव वेदयते गुहाशय
प्रभु पुराण पुरुप च विग्रहम्।
हिरण्मय बुद्धिमता परा गति
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि पडङ्ग त्वा च मूर्तित ।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुध ॥

(महाभारत अनुशा० पर्व १४। ४०७—४२२)

इस प्रकार स्तुति करनेमे भगवान् शकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर सुगन्धित पुष्पोकी वर्षा हाने लगी और सुखद वायु बहने लगी। श्रीशिवजीने भगवान् कृष्णसे कहा कि 'मैं आपकी भक्तिस परम सतुष्ट हूँ। म आठ वर देनेक लिय तेयार हूँ, आपको जा माँगना हो माँग लीजिय।'

भगवान् श्रीकृष्णने नतमस्तक हो प्रणाम करके कहा कि 'ह महाराज। आपक दर्शनास ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। फिर भी आपकी आज्ञाका पालन करनक लिये मैं यह प्राथना करता हूँ कि मरी धर्मम दृढ बुद्धि हो रणम सब शत्रुआका विनाश हो यशकी वृद्धि हा अलौकिक बल प्राप्त हा योगसाधनकी आर प्रवृत्ति बनी रह आपम अटल भक्ति हो आपका सानिध्य प्राप्त हा आर एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हा।'

श्रीशिवजीने बडी प्रसन्नताक साथ य सब वर द दिय। तब पार्वतीजीन कृपा करक कहा कि 'ह कृष्ण।'

मुझसे भी आठ वर माँग लीजिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक उन्हे प्रदान करूँगी।'

श्रीकृष्णने हाथ जोडकर प्रार्थना की कि ह मात ! आप मुझ य वर दीजिये—'मुझ कभी ब्राह्मणके ऊपर कोप करनका अवसर प्राप्त न हो, पूज्य पिताकी प्रसन्नता हो, सौ लडके हो सासारिक सभी भोग सदा प्राप्त रह मेर कुलम कभी आपसम वेमनस्य न हो, माताएँ प्रसन्न रहे, हृदयमे सदा शान्ति रह और सब भार्याआके ऊपर मेरा समान स्नेह रहा कर।'

जगदम्बाने य सब वर बडी प्रसन्नताक साथ द दिये आर कहा कि 'आपकी १६ १०८ भार्याएँ आपसे सदा प्रम रखगी आपक कुलक लागाम सदा अटूट स्नह बना रहगा। आपके शरीरक सान्दयकी वृद्धि अक्षुण्ण बनी रहगी।'

इस प्रकार वर दकर भगवती पार्वती ओर भगवान् श्रीशिव अपन गणाक साथ अन्तर्धान हो गये तथा भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या समाप्त करके अपनी नगरीको चले गये ओर वहाँ सुखपूवक अनेक प्रकारक भाग भोगने लगे। समय आनेपर जाम्बवतीके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ओर सब प्रकार आनन्द हो गया।

भगवान् शकरकी दयासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। महाभारतम व्यासदेवने कहा हे कि शिवजीके समान ससारमे कोई देवता नहीं। व ही समस्त सासारिक जीवाको सद्गति देते है। कल्याण ओर सुख देनेमे शिवजीस बढकर कोई दयालु नही। युद्ध करनेम भी उनसे बढकर कोई पराक्रमी नहीं—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गति ।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(महाभारत अनुशा० पर्व० १५। ११)

ब्रह्माजीकी शिवोपासना

प्रजापति ब्रह्मदवन सृष्टि रचनेका परम प्रयत्न किया परतु उसकी वृद्धि होती हुई न दिखायी दी। तब वे बड ही चिन्तित हुए आर अन्तम उन्हाने विचार किया कि 'दवदव महादेवकी शरणम जानेस मरी मन कामना सिद्ध हो सकती है, क्योकि वे त्रैलोक्यका रचनामे समर्थ उस शक्तिसे सम्पन्न हैं जो सम्पूर्ण सचराचर जगत्का नियन्त्रण करता ह। सृष्टि रचनामें मेरी सहायता करनकी असीम शक्ति उनम है।' एसा निश्चय करक ब्रह्मदवने भगवान् त्रिलोचनक सम्मुख चिरकालतक तप किया। उनक कठिन तपको देखकर सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए और अर्ध-नर-नारीश्वरका रूप धारण कर प्रकट हुए।

अर्धाङ्गिनी पार्वतीसमन्वित अद्वितीय अमोघ-शक्ति अतुलनीय-पराक्रमसम्पन्न उन परम तज दवदवक दर्शन पाकर ब्रह्मदव परम प्रसन्न हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम करक हाथ जोड विनयपूवक शिव-पार्वतीकी स्तुति करन लग। श्रद्धा-विनयसम्पन्न सारगर्भित भावपूर्ण शब्दाम व कहन लग कि 'ह दवदव परम पूज्य शिव! आपकी जय हो। सर्वशक्तिमान् सर्वदवाधिपति! आपका जय हो। ह परम शक्तिमती जगत्की उत्पत्ति पालन और सहार करनम समर्थ पार्वती! आपकी जय हो। आपकी माया अपरम्पार है। ह पार्वतीश! आपकी यथार्थ स्तुति करनम सहस्रमुख शेषनाग भी असमर्थ ह दूसराकी बात ही क्या?' आपकी महिमा अपार है, उसे बड-बडे ऋषि-मुनि भी नहीं जान सकत। आप वाणी आर मनक अगोचर हे तथा श्रुतियाँ आर स्मृतियाँ चकित होकर आपकी स्तुति करती हैं, फिर भी पार नहीं पातीं। आपका एश्वर्य जगत्की उत्पत्ति रक्षा और प्रलय करनेम समर्थ ह। चारा वदाक छहा शास्त्राके और अठारहा पुराणाक प्रतिपाद्य पर-तत्त्व आप ही हैं। अभीष्ट सिद्धिक लिय सभी देवान आर सभी मुनिगान आपकी आराधना की और यथेप्सित वर पाकर जगत्पूज्य बन गय। यह समस्त ससार आपकी सत्ताम व्याप्त हे और आपहीक प्रकाशम प्रकाशमान हैं। ह परमप्रकाशस्वरूप! आप अज्ञानान्धकारम भटकते हुए जीवाका सूर्यके समान प्रकाश दकर सन्मार्ग दिखा दत हैं। ह महाशिव! जब-जब भक्ताक ऊपर कष्ट आता है तब-तब आप उनका

उद्धार करत ह और उनका कष्ट दूर करत हैं। ह महादवि! आपका शक्तिस इस ससारकी उत्पत्ति है और उसीस इसकी रक्षा हाता ह तथा सहार भी उसी शक्तिस हाता है। ह महाशक्ति! प्रजाके लिय कठिन प्रयत्न करनपर भी मुझ सफलता नहा मिन रही है। अत असहाय हाकर मुझ आपकी शरण आना पडा। ह जगन्मात! आपका दयाक विना सृष्टिक्रम सुचारुरूपस नही चल सकता।

इस प्रकार कामल-कान्त-पदावलीस स्तुति करत हुए व वारम्वार प्रणाम करन लग। इस परम मनाहर स्तुतिस प्रसन्न हाकर भगवान् शकर आर भगवती परमश्वरीन अत्यन्त प्रसन्न हाकर कहा कि इस तपस्या और आराधनाम हम वहुत प्रसन्न हैं। हम अच्छी तरह जात है कि 'प्रजा-वृद्धिक लिय यह कठिन तपस्या का गयी है'— इसलिय हम वर दत हैं कि 'तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि हा।' इतना कहत ही महादवी पार्वतीक भ्रूमध्यम उनक समान कान्तिवाली एक शक्ति उत्पन्न हुइ। उसका दखकर शिवजी वहुत प्रसन्न हुए और उस शक्तिस कहन लग कि 'तुम ब्रह्माजीकी अभीष्ट-सिद्धिम सहायता करा।' एस वचन कहकर श्रीमहादवजी अन्तर्धान हा गय और शक्ति शिवजीक आदशानुसार प्रजापति ब्रह्माक कथनस दक्षका पुत्री हुई। तदनन्तर सृष्टिका क्रम सुचारुरूपसे चलने लगा और ब्रह्माजाका परम आनन्द तथा सताप हुआ।

शिवकृपासे दानवीर राजा बलिका प्रादुर्भाव

प्राचान कालम दवताआ आर ब्राह्मणाकी निन्दा करनवाला एक वडा पातकी कितव था। वह प्रतिदिन जुआ खलता आर उससे जा कुछ धन मिलता उस वेश्याआका प्रसन्न करनम व्यय करता। ससारम जितन वुर व्यसन हैं, व सव उसम विद्यमान थे।

एक दिन उसन अपन साथियाका धाखा दकर जुएम बहुत-सा धन जीत लिया। उस धनस उसन सुन्दर गजर वहुमूल्य इत्र तथा सुगन्धित चन्दन खरादे आर इन सवको हाथाम लिय दाडता हुआ वश्याक घरकी आर चला। रास्तम उस जारकी ठाकर लगी और वह पृथ्वीपर गिर पडा। गिरत हा उस मूर्च्छा आ गया और कुछ दरतक वह उसी दशाम पडा रहा। उसक चन्दन इत्र और गजर भूमिपर गिरकर मिट्टाम मिल गय। अब व पदार्थ वश्याक कामक नहा रह गय इसलिय उसन इन सव सुगन्धित द्रव्याको शिवजाका चढा दिया।

समय आनपर जव उसका मृत्यु हुई ता यमदूत उस यमलाक ल गय। वहाँ यमराज कहन लग कि 'र दुष्ट! तून वड-वड पातक किय हैं इसलिय तुझ नरकका कठिन यातनाएँ भागनी पडगी।' उसन हाथ जाडकर कहा—'हे भगवन्! मन ता कोई भा पाप नहा किया आप चित्रगुप्तजाम अच्छी तरह जाँच कराइय।'

चित्रगुप्तन खाता खोलकर दखा और कहा कि 'तुमन पाप ता असख्य किय हैं और उन सवका फल भी तुम्ह भागना पडगा पर तुमन शिवजाको चन्दन आदि चढाये हैं इसलिय तुम्ह आरम्भम तीन घटक लिये इन्द्रपद मिलगा।'

उसा समय एरावत हाथी आया और उसे इन्द्रलाक ल गया। बृहस्पतिन इन्द्रसे कहा कि 'हे महाराज! एक कितवन विना श्रद्धाक शिवजीको गन्ध-पुष्प आदि चढाय थे, उसक पुण्यस उसे तीन घटेके लिये इन्द्रपद मिला ह। इसलिय आपको उतन समयक लिये अपना पद छाड दना चाहिये। दखिये शिवजाकी विना भक्तिका आराधनास भी एक महापातकी कितवको कितना भारी फल मिला। जा लोग श्रद्धा और भक्तिके साथ शिवजाका आराधना करत हे उन्ह सायुज्य-मुक्ति तो मिलती ही है वडे-वडे देवता भी उनक किङ्कर हो जात ह। शान्त-चित्तसे शिव-पूजा करनेवाले मनुष्याका जा सुख प्राप्त हाता है वह ब्रह्मा विष्णु आदि दवाका भी नहीं मिलता। विषयलोलुप जाव इनकी आराधनाका माहात्म्य नहीं जानत।

बृहस्पतिके वचन सुनकर इन्द्र तो कहीं दूसरी जगह चले गये और कितवको इन्द्रासन मिला। उसी समय इन्द्राणी लायी गयी पर शिवजीकी पूजाके प्रभावसे कितवके हृदयमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने उन्हें प्रणाम कर कहा कि 'आप मेरी माता हैं आप अपने मन्दिरको जाइये।' तदनन्तर उसने अगस्त्यमुनिको ऐरावत हाथी, विश्वामित्रको उच्चैःश्रवा घोड़ा वसिष्ठको कामधेनु गालवको चिन्तामणि और कौडिन्यको कल्पवृक्ष दे दिया। शिव-प्रीत्यर्थ उसने ऋषियोंको और भी अनेक दान दिये। इन सब दान-पुण्यके काममें तीन घड़ी समाप्त हो गये और उसे फिर यमलोकको पहुँचाया गया।

इन्द्रने अपने यहाँके सब रत्नोंको समाप्त जानकर यमराजसे जाकर शिकायत की। यमराजने कितवसे कहा कि 'दान करनेका अधिकार भूलोकमें ही होता है। स्वर्गमें किसीको दान नहीं करना चाहिये। इसलिये हे मूढ़! तू दण्डनीय है तुझे नरककी दारुण यातना भोगनी पड़ेगी।'

यमराजकी बात सुनकर चित्रगुप्तने कहा कि 'हे महाराज! इसने शिवजीके नामपर अगस्त्य आदि उत्तम ऋषियोंको इतने महार्घ्य दान दिये हैं फिर इसे नरककी यातना क्या भोगनी होगी? शिवके नामपर स्वर्गलोक अथवा मर्त्यलोक कहीं भी कुछ दिया जाय उसका अक्षय फल मिलता है—

> शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यन्नरैः।
> तत्सर्वं त्वक्षयं विद्यान्निश्छिद्रं कर्म चोच्यते॥

(स्कन्दपुराण माहे० ख० १८। १०९)

इस कितवके जितने पाप थे वे सब शम्भुके प्रसादसे भस्म होकर सुकृत हो गये। यमराजकी समझमें यह बात आ गयी और उन्होंने उस कितवसे क्षमा माँगी।

उसी पुण्यके प्रभावसे उस कितवका जन्म परम भागवत प्रह्लादके पुत्र महादानवीर विरोचनके घरमें पुण्यवती सुरुचिके उदरसे हुआ। विरोचन इतने बड़े दानी थे कि वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण किये हुए इन्द्रके माँगनेपर उन्होंने अपना सिरतक अपने हाथोंसे काटकर दे दिया। विरोचनका यह दान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। आजतक कवि लोग उनके इस अपूर्व दानकी प्रशंसा करते हैं।

उन्हीं महापुरुष विरोचनके गृहमें इस कितवका जन्म हुआ और नाम रखा गया बलि। पूर्वजन्मके शिव-पूजनके प्रभावसे इस जन्ममें भी बलिमें दान देनेकी प्रबल प्रवृत्ति थी। दानमें वे अपना सर्वस्व देनेके लिये भी सदा तत्पर रहते थे।

देवोंका दुःख देखकर भगवान् विष्णुने जब वामनका रूप धारणकर बलिसे भिक्षा माँगी तब उन्होंने त्रैलोक्यका राज्य और अपना आधा शरीर दानमें दे डाला। उस दानका आजतक विद्वान् लोग कीर्तन करते हैं। दानवीरोंकी जब गणना होने लगती है तो सर्वप्रथम राजा बलिका नाम लिया जाता है।

उस मिट्टीमें मिले हुए चन्दन आदिके चढ़ानेसे एक महापातकी जुआरी जगत्प्रसिद्ध राजा बलि हो गया। अतः जो लोग पूर्ण भक्ति और श्रद्धाके साथ गन्ध-पुष्प-फल आदिसे महेश्वरकी पूजा करते हैं वे तो साक्षात् शिवके समीप पहुँच जाते हैं। शिवसे बढ़कर पूजनीय देव संसारमें दूसरे हैं नहीं। लूले लँगड़े, अंधे, बहरे, जाति-हीन चाण्डाल श्वपच अन्त्यज आदिमेंसे कोई भी हो यदि शिवकी भक्ति करे तो अवश्य परमगतिको प्राप्त हो सकता है। परमार्थको जाननेवाले विद्वान् महेश्वरका सदा चिन्तन किया करते हैं। शिवकी आराधनाके बिना जितना काम किया जाता है वह सब अशुभ होता है। इसलिये सदाशिवकी सदा पूजा करनी चाहिये। मुमुक्षुजनोंको लिङ्गरूपी महादेवकी आराधना करनी चाहिये क्योंकि उनसे बढ़कर भुक्ति और मुक्ति देनेवाले अन्य कोई भी देवता नहीं हैं। स्कन्दपुराण (माहेश्वरखण्ड १९। ६८ ८२)-में लिखा है—

> तस्मात् सदाशिवः पूज्यः सर्वैरेव मनीषिभिः।
> पूजनीयो हि सम्पूज्यो ह्यर्चनीयः सदाशिवः॥
> लिङ्गरूपी महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः।
> शिवात् परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

दो सुन्दर और पवित्र आसन बिछा दिये हैं।' सर्वविघ्नेशने चन्द्रार्धभूषण शिव एव करुणामयी माता पार्वतीसे मधुर वाणीमे प्रार्थना की—'आप लोग कृपापूर्वक उसपर बैठकर मेरा मनोरथ पूर्ण करे।'

आशुतोष एव सद्य फलदायिनी जननी उक्त आसनपर विराजमान हुई। मूषकवाहन गणेशने उन लोगकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मङ्गलालय चरण-कमलामे बार-बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपन सर्वाधार एव सर्वसमर्थ माता-पिताकी भक्ति-विभोर-भावसे परिक्रमा करने लग। खण्डरद गणेश बार-बार शिव और शिवाके चरण-युगलम प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा करते जाते। इस प्रकार उन्होने सर्वेश्वर महादेव एव सर्वज्ञा माता पार्वतीकी सात प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं और हाथ जोडकर उनका स्तवन किया। फिर कहा—'अब आप लोग कृपापूर्वक मेरा मङ्गल-परिणय शीघ्र कर दीजिये।'

'गजानन!' महाबुद्धिमान् गणेशकी प्रार्थना सुनकर धर्माध्यक्ष वामदेवने उत्तर दिया—'तेरा भाई स्कन्द सरिताओ समुद्रा, पर्वता एव काननासहित पृथ्वीकी परिक्रमा करने गया है। तू भी जा और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके कार्तिकेयसे पहले लौट आ तब तेरा विवाह पहले हो जायगा।'

'पवित्रतम धर्ममूर्ति माताजी और पिताजी!' नियम-परायण लम्बोदरने कुपित होकर कहा—'मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलकी एक नहीं, सात प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं।'

'अरे!' लीलाधारी शिवा-शिवने लौकिक रीतिसे आश्चर्य व्यक्त करत हुए अपने परम बुद्धिमान् पुत्र गणेशसे कहा—'तूने सप्तद्वीपवती विशाल वसुधराकी परिक्रमा कब पूरी कर ली?'

'धर्माध्यक्ष पिता एव परम पावनी माता! मैंने आप लोगाकी सात परिक्रमा पूरी करके निश्चय ही गिरि-काननासहित सप्तद्वीपवती सम्पूर्ण वसुधराकी परिक्रमा कर ली है।' परम बुद्धिमान् एव ज्ञानमूर्ति महोदरने निवेदन किया—'धर्मके सग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंके ये वचन सत्य हैं या असत्य?—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति य ।
तस्य वै पृथिवीजन्यफल भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पाप तथा प्रोक्त हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थ तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुन ॥
इद सनिहित तीर्थं सुलभ धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थ गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपु० रुद्रस०, कु० ख० १९। ३९-४२)

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोडकर तीर्थयात्राके लिये जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है, क्योकि पुत्रके लिये माता-पिताके चरण सरोज ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं परतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमे ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) सुन्दर तीर्थ घरमे ही वर्तमान हैं।'

बुद्धिराशि विघ्ननायकने आगे कहा—'वेद-शास्त्राके द्वारा निरन्तर उद्घोषित वचन असत्य सिद्ध होनेपर आप लोगोका वेदवर्णित स्वरूप भी मिथ्या समझा जायगा, अतएव आप या तो वेद-वचन असत्य कीजिये अन्यथा शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये। आप लोग धर्म-विग्रह हैं अत सर्वोत्तम निर्णय कीजिये।'

यथार्थभाषी एव प्रतिभाशाली विलक्षण-बुद्धि पार्वतीनन्दनके वचन सुनकर शिवा-शिव अत्यन्त चकित हुए। फिर उन्होंने भालचन्द्र गणेशकी प्रशसा करते हुए कहा—

'बेटा! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है वह बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं। वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्मपालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है वह दूसरा कौन कर सकता है? हमने तेरी बात मान ली अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।'

इस प्रकारके वचन कहकर शिवा-शिवने बुद्धिसिन्धु गजवक्त्रको सान्त्वना दी और फिर वे गणेश-विवाहके निश्

विचार करने लगे।

गजवक्त्रका परिणय

जब यह सवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनकी दिव्य-रूप-योवन-सम्पन्ना, परम लावण्यवती, सुशीला एव सद्गुणवती 'सिद्धि' और 'बुद्धि' नामक दो कन्याएँ थीं। वे मर्वलोकपति शिवके भवन पहुँचे और उन्होने शिवा और शिवसे अपनी पुत्रियाका सर्वपूज्य गणेशके साथ विवाह करनेका अनुरोध किया। भगवान् शकर ओर जगद्धात्री माता पार्वतीने उनका प्रस्ताव हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शुभ मुहूर्तमे विश्वकमाने कर्पूरगौर शिव और परम सती पार्वतीकी इच्छाके अनुसार सविधि विवाह सम्पन्न

कराया। उस समय समस्त दव-समुदाय एकत्र हुआ। दवताओकी प्रसन्नताकी सीमा नहा थी। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। देववाद्य बज रह थ। नृत्य हो रहा था। मङ्गल-गीत गाये जा रह थे। भगवान् शकर और माता पार्वती—दोनो अपने परम प्रिय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन पुत्र गणेशका विवाह करके परम प्रसन्न हुए।[१]

अपने मङ्गल-परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बडे आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एव मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बडा सुखद था। समयपर गणेश-पत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष सानन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन-भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होने दु खी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणामे प्रणामकर शिव-सदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा तथा शिवने उन्हे बहुत समझाया किंतु व अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए और क्रौञ्च-पर्वतपर चले गये।

'उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।[२] उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमे विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

(शिवपुराण रुद्रसहिता, कुमारखण्ड)

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर अद्भुत, अलौकिक एव तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन करके देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणामे उनकी अगाध श्रद्धा हुई। उन्होने सुधासिंचित एक दिव्य मोदक माता पार्वतीके हाथमे दिया। उक्त दिव्य मोदकको माताके हाथमे देखकर दोनो बालक उसे माँगने लगे।

'पहले इस मोदक (लड्डू)-का गुण सुनो।' माताने दोनो पुत्रोसे कहा—'इस मोदककी गन्धसे ही अमरत्वकी प्राप्ति होती है। निस्सदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण

१-ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार भगवान् शकरने सुर-समुदायकी सनिधिमे 'पुष्टि' नामक परम गुणवती अनिन्द्यसुन्दरी कन्याके साथ गणेशका विवाह किया था।

२-ब्रह्मवैवर्तपुराणमे आया है कि प्रजापतिने अपनी रत्नाभरणभूषिता परम सुन्दरी एव शीलवती कन्या देवसेना (जिसे विद्वान् शिशुओकी रक्षा करनेवाली महाषष्ठी कहते हैं)-का वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयको समर्पित किया था।

शास्त्रोका मर्मज्ञ, सब तन्त्रामे प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान-विशारद और सर्वज्ञ हा जाता ह।'

माता पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी भी सहमति है कि तुम दानामस जो धर्माचरणके द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दगा वही इस मादकका अधिकारी हागा।'

माताकी आज्ञा प्राप्त हाते ही चतुर कार्तिकय अपने तीव्रगामी वाहन मयूरपर आरूढ हा त्रैलाक्यके तार्थोकी यात्राक लिये चल पडे और मुहूर्तभरम ही उन्हाने समस्त तीर्थोम स्नान कर लिया। इधर मूपकवाहन लम्बादरने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और हाथ जोडकर वे उनके सम्मुख खड हा गये।

'मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही दर बाद स्कन्दन पिताक सम्मुख उपस्थित हाकर निवेदन किया।

'समस्त तीर्थोम किया हुआ स्नान सम्पूर्ण दवताआको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञाका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत मन्त्र याग और सयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सालहव अशके बराबर भी नहीं हा सकत।' माता पावतीने दाना पुत्राकी आर दखकर कहा—'अतएव यह गजानन सैकडा पुत्रा और सैकडा गणासे भी बढकर हे। इस कारण यह देवनिर्मित अमृतमय मादक म गणशको ही दती हूँ। माता-पिताकी भक्तिक कारण यह यज्ञादिम सर्वत्र अग्रपूज्य हागा।'

'इस गणशकी अग्रपूजासे ही समस्त दवगण पसन्न हा।' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

माता पार्वतीन सर्वगुणदायक पवित्र मादक गणशजीका ही दिया और अत्यन्त प्रसन्नतामे उन्हाने समस्त दवताआक सम्मुख ही उन्ह गणाके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

(पद्मपुराण)

कुशाग्रबुद्धि

इसी प्रकारकी एक कथा आर मिलती ह जिसस गुणगण-निलय गणशकी पितृभक्ति एव असाम कुशाग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त हाता ह। वह कथा सक्षपम इस प्रकार ह—

एक बारका बात है। चन्द्रार्धभूपण भगवान् शकरन एक यज्ञ करनका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञम उन्ह समस्त दवताआका निमन्त्रण दना आवश्यक था। उन्हान यह भार अपन पुत्र कार्तिकयका दिया किंतु निश्चित अवधिक भीतर प्रत्यक दवताक समीप जाकर उन्ह आमन्त्रण द देना सम्भव नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिया। व अपन वाहन क्षुद्र मूपकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते? पर उन्होंने उपाय ढूँढ निकाला व विद्या-बुद्धि-वारिधि जा ठहर।

'मर परम पिता महादवक पावनतम अङ्गम समस्त दवता निवास करत हैं।'—यह साचकर उन्हान सर्वदवमय पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्यक दवताको यज्ञम पधारनका निमन्त्रण दे दिया। फलत समस्त दवताआका सर्वलाकमहेश्वर शिवक यज्ञकी सूचना प्राप्त हो गयी और सभी दवता यज्ञम सम्मिलित हानक लिये ठाक समयपर पहुँच गये।

(स्कन्दपु० काशाखण्ड)

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनु-कुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ राजा रिपुजयन अविमुक्त-क्षेत्रम कठार तप प्रारम्भ किया। उन्होंन अपने मन और इन्द्रियाका वशम कर लिया था। उन वार एव क्षत्रियधमक मूर्तिमान् विग्रह रिपुजयनरशक तपश्चरणमे सतुष्ट हा प्रजापति ब्रह्मान उनके सम्मुख प्रकट हाकर कहा—'बुद्धिमान् नरश। तुम वना पर्वता एव समुद्रोंसहित सम्पूर्ण वसुधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्यसे प्रसन्न हाकर देवगण सदा तुम्हे स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करत रहग। मे तुम्हे दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लाकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुजयसे आग कहा—'नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागकन्या अनगमाहिनी तुम्ह अर्पित करगे। तुम उसे सहधर्मिणीके रूपम स्वाकार कर लना और उसके साथ धर्मपूर्वक धराका शासन करना। 'दिवो दास्यन्ति'—इस व्युत्पत्तिक अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।'

'पितामह। इस विशाल धरणीपर अनक नरेश ह।' अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुजयनरशने विधातासे निवदन किया—'फिर प्रजा-पालनका आदेश मुझे ही क्या दिया जा रहा है?'

'तुम धर्माचरण-सम्पन्न आदर्श वीर पुरुप हो। पितामहने उन्ह पमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आधृत

होगा इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे, सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्यसे सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख-दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा-पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुर-समुदाय स्वर्गमें ही निवास करें पृथ्वीपर न आयें।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये यह आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे कृपापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा-बजाकर चतुर्दिक् घोषणा कर दी गयी। 'नागगण भी यहाँ पधारनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें सुर-समुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरातलपर सानन्द निर्वाह करें।'

भगवान् शंकर मन्दरगिरिके तपसे संतुष्ट थे। इस कारण सृष्टिकर्ताके वचनोंकी रक्षाके लिये वे गिरिराज मन्दरपर चले गये। सम्पूर्ण देवता भी करुणामूर्ति उमापतिके साथ वहीं गये। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने भूमण्डलके समस्त वैष्णव-तीर्थोंका त्याग कर दिया और वे भी अपने प्राणप्रिय महादेवजीके पास मन्दरगिरिपर जा पहुँचे।

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर परम पराक्रमी राजा दिवोदासने वहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक शासन करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिशामें देश उन्नतिशील था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं नाम भी नहीं था। असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी सेवामें उपस्थित होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सतत तत्पर रहते थे। धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी नगर एवं ग्राम ईति[१]-भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी प्रधानता थी अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। इस प्रकार राजा दिवोदासका शासन करते अस्सी सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देवता लोग भूमि छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें काशीका विछोह हो जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देवगण दुःखी थे और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि इनका शासन समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया, किंतु वे सफल न हो सके। इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका शासन विफल करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं किंतु नरेशके तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। इसके अनन्तर भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको राजाके छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ काशीमें बारह मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी पुण्यात्मा राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। राजापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'सप्ताश्ववाहन! तुम यथाशीघ्र मङ्गलमयी काशीपुरीमें जाओ जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान हैं।' भगवान् वृषभध्वजने श्रीसूर्यदेवको बुलाकर कहा—'राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय वैसा करो। किंतु उस राजाका अनादर न करना क्योंकि वह परम धर्मात्मा एवं

१ ईतियाँ ६ हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, [illegible] टिड्डी और [illegible] [illegible] [illegible] अन्य नृपतियोंका आक्रमण [illegible] कलह और प्रवास।

तपस्वी है।'

आशुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव परम पावनी काशीपुरीमे गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होने राजामे तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। भगवान् सूर्यने कभी कहीं, किसी मनुष्यमे भी कोई छिद्र नहीं देखा। इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु सूर्यदेव बारह रूपोमे व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमे स्थित हो गये। इनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं—'लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य द्रौपदादित्य, मयूखादित्य खखोल्कादित्य, अरुणादित्य वृद्धादित्य केशवादित्य, विमलादित्य गङ्गादित्य और यमादित्य।'

'कमलोद्भव। मैने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले योगिनियोको और फिर सूर्यदेवको भेजा, पर वे अभीतक नहीं लौटे।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले भगवान् कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अत अब आप जाइये। आपका मङ्गल हो।'

भगवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमे काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका दर्शनकर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे। राजाने उनके चरणोमे प्रणामकर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा की और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

'राजन्। इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ।' ब्रह्माने राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एव काशीकी महिमाका गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमे तुम्हे सहायक बनाना चाहता हूँ।'

'यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण। मैं आपका दास हूँ।' धर्ममूर्ति दिवोदासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करे।

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत उत्तरसे लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने दिवोदासकी सहायतासे यज्ञ-सामग्रियोका सग्रह करके दस अश्वमेध-महायज्ञोद्वारा भगवान्का यजन किया और तभीसे वाराणसीमे मङ्गलदायक रुद्रसरोवर' नामक तीर्थ 'दशाश्वमेध' के नामसे प्रख्यात हुआ। तदनन्तर पुण्यसलिला गङ्गाके पधारनेपर वह तीर्थ और अधिक पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर स्थित हो गये। चतुर्मुख ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमे कोई छिद्र नहीं पा सके, फिर वे भगवान् शकरके समीप जाकर क्या कहते। उन्होने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहीं ब्रह्मेश्वरलिङ्गकी स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए परम पावनी काशीपुरीमे ही रह गये।

मङ्गलमूर्ति ज्योतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मङ्गलमूर्ति गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए। श्रीगणेशजीने काशीमे प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमे अविमुक्त क्षेत्रके निवासियोके घरोमे जा-जाकर उन्हे प्रसन्न करते। वृद्ध ज्योतिषीके वेषमे श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे। इस प्रकार कुछ ही समयमे उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। ख्यातिप्राप्त वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्त पुरमे बुलाये गये। सर्वान्तर्यामी वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओका उल्लेख किया। उसने रानियोके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर दिया। इस प्रकार वे सभी स्त्रियोके विश्वास-भाजन ही नहीं, श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये।

'राजन्। एक अद्भुत विद्वान् एव वेदोकी मूर्तिमान् निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे है।' एक दिन राजा दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—'वे सद्गुणसम्पन्न अत्यन्त बुद्धिमान् सुवक्ता ब्राह्मण है। आप भी उनका दर्शन कीजिये।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया। राजाने वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया।

'मेरी दृष्टिमे आप तत्त्वज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं।' एकान्तमे राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक पदार्थो एव सभी कर्मोसे विरत हो रहा है। अतएव आप भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन कीजिये।

'धर्ममूर्ति नरेश! आजके अठारहवे दिन उत्तर दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेगे।' वृद्ध ज्योतिषीने राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे तो वे निश्चय ही तुम्हे उपदेश देगे। तुम यदि उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करोगे तो निश्चय ही तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

राजा दिवोदासने अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्योतिषीजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की। ज्योतिषी महाराज धर्मात्मा नरेशकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। इस प्रकार बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन गणेशजीने सम्पूर्ण काशीनगरीको अपने वशमे कर लिया। दिवोदासके राज-पद-ग्रहणके पूर्व काशीमे गणेशजीके जो-जो स्थान थे उन-उन स्थानोको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुन सुशोभित किया।

धर्मात्मा नरेश दिवोदाससे दूर रहकर भी गणेशजीने उनके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया फिर अठारहवे दिन क्षीरोदधिशायी श्रीविष्णुने परम तेजस्वी ब्राह्मणके वेषमे पधारकर दिवोदासको सदुपदेश दिया। श्रीविष्णुके आदेशसे राजा दिवोदासने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिवोदासेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर उसकी सविधि पूजा की। राजा दिवोदासने शूलपाणि विश्वनाथके अनुग्रहसे सशरीर शिवधामकी परम शुभ यात्रा की।

शिवा-शिवका पुन काशी-आगमन

इसके अनन्तर भगवान् शंकर अपनी धर्मपत्नी पार्वतीके साथ काशी पधारे। उस समय भगवान् शिवने गणेशजीकी बडी प्रशसा की। उन्होने हर्षातिरेकसे कहा—

> यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
> मयाप्यतीव दुष्प्राप्या स प्रसादोऽस्य वै शिशो ॥
> यद् दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रिजगतीतले।
> तत् सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि॥
> पुत्रवानहमेवास्मि यच्च मे चिरचिन्तितम्।
> स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम्॥
>
> (स्कन्द० काशी० ५७। १२-१३ १५)

'यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है वह इस बच्चेका प्रसाद है। त्रिलोकमे जो काम पिताके लिये भी दु साध्य होता है, उसे पुत्र सिद्ध कर देता है इसका दृष्टान्त मुझपर ही घटित हो रहा है। मैं ही पुत्रवान् हूँ, क्योकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी, उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया।'

महाभारत-लेखन

'इस महान् पुण्यमय ग्रन्थका अध्ययन शिष्योको किस प्रकार कराऊँ?' पञ्चम वेद महाभारतकी रचनाकर पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन विचार करने लगे—'इस ग्रन्थरत्नका प्रचार कैसे हो?'

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासका विचार जानकर उनकी प्रसन्नता एव लोककल्याणकी दृष्टिसे स्वय चतुरानन उनके आश्रमपर उपस्थित हुए।

सहसा वेदगर्भ ब्रह्माके दर्शनकर महर्षि व्यास अत्यन्त चकित हो गये। उन्होने अजलि बाँध प्रीतिपूर्वक विधाताके चरणोमे प्रणामकर उन्हे बैठनेके लिये पवित्र आसन दिया। वे लोकस्रष्टाकी ओर हाथ जोडकर उनके सम्मुख खडे हो गये। महर्षि व्यास मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

स्रष्टाकी आज्ञासे निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी उनके सम्मुख दूसरे आसनपर बैठ गये। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होने निवेदन किया—

'भगवन्! मैंने सम्पूर्ण लोकोसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी (मनमे ही) रचना की है। ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमे सम्पूर्ण वेदोका गुह्यतम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोका सार-सार सकलित करके रख दिया है। केवल वेदोका ही नहीं, उनके अङ्ग एव उपनिषदोका भी इसमे विस्तारसे निरूपण किया है। और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमे प्रतिपादन किया गया है, परतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके ऐसा कोई नहीं है।'

लोकपितामहने महर्षि व्यासविरचित महाकाव्यकी प्रशसा करते हुए कहा—'मुनिवर! अपने इस काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो—

> 'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेश स्मर्यता मुने।'
>
> (महा० आदि० १। ७४)

लोकस्रष्टा ब्रह्म-सदनके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासने सिद्धि-सदन एकदन्त गणेशजीका

स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगणेशजी महाराज व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि

व्यासने अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। फिर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने उनसे अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥

(महा० आदि० १। ७७)

'गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये, मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ।'

यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा० आदि० १। ७८)

'आप किसी भी प्रसंगको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।' व्यासजीने कहा।

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि शुभगुण-सदन अरुणवर्ण श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रहसे महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत्‌को प्राप्त हुआ।

(महाभारत आदिपर्व)

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बार चतुर्मुख ब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया। इससे उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। अन्ततः उन्होंने एकदन्तधारी गणेशकी आराधना की। विधाताके तपसे संतुष्ट होकर दौर्भाग्यनाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए। चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक परम तेजस्वी सिन्दूरारुण गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की। सुराग्रजने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वर प्रदान किया। मूषकारोही गणेशके उस वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि-रचना प्रारम्भ की।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्‌की सृष्टिमें तल्लीन थे तब क्षीरादधिशायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ नामक दो शूर-वीर असुर उत्पन्न हुए। उन प्रबल पराक्रमी असुरोंके उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की। योगमायाकी प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भंग हुई।

मधु-कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अद्भुत किरीट-कुण्डल एवं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नवघनश्यामवपु विष्णुने शंखध्वनि की। पाञ्चजन्यकी भयानक ध्वनिसे त्रैलोक्य काँप उठा। वीरवर मधु और कैटभ एक साथ ही मायापति विष्णुपर टूट पड़े। पाँच सहस्र वर्षोंतक सुरत्राता विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें पराजित न कर सके।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाका मधुर तान छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे। भगवान् लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु, पक्षी, दैत्य-गन्धर्व और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये। क्षीराब्धिशायीका वह

भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार-बार सुनायी देने लगा। उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्व-वेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया। श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए। कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया।'

पुनः जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये। आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शङ्ख-चक्र-गदा पद्मधारी नवघनसुन्दर श्रीहरिको अपने हृदयसे लगा लिया। परम संतुष्ट महादेवने कहा—'आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है। आप क्या चाहते हैं?'

'आप मधु-कैटभके वधका उपाय बताइये।' मधु-कैटभ असुरद्वयकी उत्पत्ति, उनके उपद्रव एवं उनके साथ अपने युद्धका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताते हुए विष्णुने शिवसे निवेदन किया—'मैं उन्हें पराजित नहीं कर पा रहा हूँ।'

'आपने मधु-कैटभसे युद्ध करनेके पूर्व विनायककी पूजा नहीं की, इसी कारण शक्तिहीन रहे और आपको क्लेश सहना पड़ा।' पार्वतीपतिने श्रीहरिसे कहा—'आप गणेशकी अर्चनाकर उन पराक्रमी असुरोंसे युद्ध करने जाइये। वे असुरोंको अपनी मायासे मोहितकर आपके वशमें कर देंगे फिर मेरे प्रसादसे आप निश्चय ही उन दुष्टोंका संहार करेंगे।'

श्रीहरिके पूछनेपर आशुतोषने उन्हें गणेशका सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र प्रदान किया। तब श्रीविष्णुने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवेश शिवके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रख्यात सिद्धाश्रम पहुँचे।

वहाँ क्षीरोदधिशायीने स्नानादिसे निवृत्त होकर मङ्गलमूर्ति पाशाङ्कुशधारी श्रीगणेशका ध्यानकर नाना प्रकारके मनोमय द्रव्योंद्वारा षोडशोपचारसे उनका पूजन किया। फिर संयतेन्द्रिय होकर उन्नतानन आदिदेवका ध्यान करते हुए वे उनके महामन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार लोकपालक विष्णुके सौ वर्षोतक कठोर आराधना करनेपर करि-कलभानन प्रसन्न हो गये। फिर कोटि सूर्याग्नि-तुल्य परम तेजस्वी इच्छाशक्तिधर गणेशने श्रीविष्णुके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे तपसे संतुष्ट हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो, माँग लो। मैं सब कुछ दूँगा। यदि तुमने पहले ही मेरी पूजा की होती तो निश्चय ही तुम्हारी विजय हो गयी होती।'

'मधु-कैटभसे युद्ध करते-करते थककर मैं आपकी शरण आया हूँ।' श्रीहरिने सर्वसंहारकर्ता गणेशकी स्तुति कर निज-कर्णमलोद्भूत मधु-कैटभकी दुष्टता एवं अपने युद्धका हाल बताकर उनसे प्रार्थना की—'अब जिस प्रकार उनका वध हो, वही कीजिये। मैं मधु-कैटभका वधकर यश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके साथ ही आप मुझे अपनी दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करें।'

'तुमने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ तुम्हें निश्चय ही प्राप्त होगा।' कर्माकर्मफलप्रद आदिदेवने श्रीविष्णुसे कहा—'तुम यश, बल एवं महान् कीर्ति प्राप्त करोगे और कोई विघ्न नहीं होगा।'

> यद्यत्ते प्रार्थितो विष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम्॥
> यशो बलं परा कीर्तिरविघ्नश्च भविष्यति।
>
> (गणेशपु० १। १८। १८-१९)

—इतना कहकर सिन्दूरप्रिय अन्तर्धान हो गये।

श्रीहरिने मधु-कैटभसे युद्ध किया और वे दोनों असुर मारे गये फिर श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर सिद्धक्षेत्रमें विनायकका अद्भुत मन्दिर बनवाया और वहाँ सिद्धिविनायककी प्रतिमा स्थापित की। उस क्षेत्रमें सर्वप्रथम श्रीहरिने सिद्धि प्राप्त की, इस कारण उस पवित्र स्थलका नाम 'सिद्धक्षेत्र' प्रख्यात हुआ।

गृत्समदकी गणेशोपासना

वाचक्नवि मुनिकी पत्नी मुकुन्दाने कुपित होकर अपने पुत्र गृत्समदको शाप दे दिया— तुझसे भयानक पुत्र होगा।

वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भयकर दैत्य होगा। उसके आचरणसे त्रैलोक्य काँप उठेगा।'

खिन्न-मन गृत्समद अत्यन्त रमणीय पुष्पकवनमे पहुँचे। वहाँ वीतराग वयोवृद्ध ऋषि रहते थे और जल-फल वहाँ सुविधानुसार प्राप्त थे। ऋषियोकी आज्ञा प्राप्तकर गृत्समद वही रहने लगे।

गृत्समदने ज्ञान-गुण अयन, आदार्यनिधि विनायकको प्रसन्न करनेके लिये बडी कठोर तपस्या प्रारम्भ की। स्नानादिके उपरान्त वे पैरके अँगूठेके बलपर खडे होकर दीनवत्सल गणनाथका ध्यान करने लगे। अत्यन्त सयतन्द्रिय गृत्समदने प्रथमेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके आधारपर एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। तदनन्तर उन्होने एक जीर्ण पत्ता खाकर पद्रह हजार वर्षतक कठोर तपस्या की ।

जैसे गाय अपने बछडेका रँभाना सुनकर दौडती चली आती है उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे सतुष्ट होकर अनुग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप पहुँचे। उस समय उनका तेज सहस्रो सूर्योके समान था, जिससे वे सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके समान उनके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी-सी लीला कर रहे थे और आकर्षक क्रीडामे सानन्द आसक्त थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभायमान था गलेमे विशाल कमल-माला सुशोभित था। उनके एक हाथमे सनाल कमल था और वे सिहपर आरूढ थे। उनकी दस भुजाएँ थीं। वे सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे । उनके विग्रहपर कमर अगर कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन जगत्कारण प्रभुकी दोनो पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनका स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि (गृत्समद)-के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

'सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो ! आप मुझे अपनी सुदृढ भक्ति प्रदान कीजिये और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये। गृत्समदने भयापह गणनाथके चरणोमे साष्टाङ्ग प्रणामकर करबद्ध याचना की—'सर्वकल्याणकारी मङ्गलमय प्रभो ! यह 'पुष्पकवन' गणेशपुरके नामसे प्रख्यात हो और आप यहाँ रहकर भक्तोकी वाञ्छा पूर्ण करते रहे।'

'तुम मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदान करते हुए कहा—'तुम्हे त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रकी प्राप्ति होगी। उसे केवल कालकाल शिव ही पराजित कर सकेगे। कृतयुग, त्रेता, द्वापर एव कलियुगमे इस क्षेत्रके नाम क्रमश पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होगे। यहा स्नान-दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होगी।'

यो कहकर सर्प-यज्ञोपवीतधारी गजानन अन्तर्धान हो गये।

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमे अपने आराध्य प्रथमेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका नाम 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणो एव ऋषियोसे सम्मानित गृत्समदमुनि अपने आराध्यके ही ध्यान पूजन एव भजन-स्मरणमे अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है उनके सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालकारभूषित बालक प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालकने कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत्पत्ति हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करे। मैं अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओसहित त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उसे अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देवत्राता गणेशका मन्त्र भी उन्होने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त-शान्त वनमे चला गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खडा होकर अज अनादि और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार उस निराहार रहकर कठोर तप करते हुए पद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एकदन्त

तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया।

मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणासे अलकृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खडे हैं। उनके कर-कमलोमे परशु, कमलमाला एव मोदक सुशोभित है—

चतुर्भुज महाकाय नानाभूषाविभूषितम्॥
परशु कमल माला मोदकान् बिभ्रत करै।

(गणेशपु० १। ३८। २५-२६)

'प्रभो! आपके अपरिमित तेजसे मै भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना-पूर्ति कीजिये।' चरणामे प्रणामकर मुनिपुत्रने डरते हुए सर्वव्यापी सर्वात्मा समस्त जीव-जगत्के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे सतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूराङ्गने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमे कहा।

'मैं बालक हूँ। स्तुति करना नहीं जानता।' गृत्समदके पुत्रने इच्छाशक्तिधर गणपतिसे वरकी याचनाकी—'आप प्रसन्न होकर त्रैलोक्यको आकृष्ट करनेकी विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। देव दानव गन्धर्व, मनुष्य राक्षस और सर्पादिकोको मै अपने वशमे कर लूँ। इन्द्रादि लोकपाल सदा मेरी सेवा करे और मेरी इच्छित सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त होती रहे। इस जीवनमे सम्पूर्ण सुखोका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर' के नामसे प्रसिद्ध हो।'

'तुम सतत निर्भय एव त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—'लौह, रजत एव स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हे देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हे नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनो पुरोको ध्वस्त करेगे तब तुम्हे मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होगी।'

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक [illegible] पूजा की। उसने गद्गद-कण्ठसे धन-धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुतिकर उनके चरणामे दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा-याचना कर ब्राह्मणोको दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य-विजयके लिये निकल पडा।

वरप्राप्त महान् त्रिपुरके सम्मुख पृथ्वी स्वर्ग और पातालके देव दनुज तथा नाग आदि शूर-वीर नहीं टिक सके। सभी पराजित हुए। अमरावतीपर त्रिपुरका अधिकार हो गया। देव-समुदाय प्राण-भयसे यत्र-तत्र पलायित हुआ। गृत्समदके पुत्र त्रिपुरके भयसे चतुर्मुख नाभि-कमलमे प्रविष्ट हो गये। लक्ष्मीपति क्षीराब्धिके लिये प्रस्थित हुए। अत्यन्त शक्तिशाली त्रिपुरने अपने पुत्र चण्डको वैकुण्ठका और प्रचण्डको ब्रह्मलोकका अधिकार प्रदान किया।

इसके अनन्तर अत्यन्त उद्धत त्रिपुर युद्धकी कामनासे कैलास पहुँचा। उसने कैलासको झकझोर दिया। वरदमूर्ति गणेशके वरसे त्रिपुरकी शक्तिका अनुमान करके पार्वतीवल्लभने उसके सम्मुख जाकर कहा—'मैं सतुष्ट हूँ, वर माँगो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न है तो कैलास मुझे देकर स्वय मन्दरगिरिपर चले जायँ।' यही उसने निस्सकोच माँगा।

मदमत्त असुरसे वचनके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलास छोड दिया और मन्दरगिरिके लिये प्रस्थित हुए।

अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरने परम विरक्त तपस्वी ऋषि-मुनियोको बदी बनाकर उनके शान्ति-निकेतन आश्रमोको ध्वस्त कर डाला। इतना ही नहीं उसके भजन [illegible] कर्म एव श्रुतियोका उद्घोष शान्त हो गया। [illegible] सर्वत्र असुरताका साम्राज्य व्याप्त था।

देवताओंद्वारा गणेशाराधन

स्वर्गसे निकाले [illegible] देवगण चिन्तित एव दुःखी थे। '[illegible]'—यही सोचा करते [illegible] निरुपाय थे। उनकी बुद्धि [illegible]।

[illegible] त्रिपुर देवर्षि [illegible] '[illegible] त्रिपुकी [illegible] है। [illegible] गजमुखका [illegible]

असुरका वध हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको सर्वव्यापी गणेशका मन्त्र बताया और वे अपनी वीणापर हरि-गुण-गान करते हुए प्रस्थित हुए।

देव-समुदाय आदिदेव गणेशकी तुष्टिके लिये उनकी आराधनामें प्रवृत्त हुआ। सुरोंकी निष्ठा देखकर करुणामय गजानन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। देवताओंने हर्षातिरेकसे करि-कलभाननके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

'देवताओ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुर-समुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा।'

'सर्वेश्वर!' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं। अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है। आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मा त्रिपुरसे आप लोगोंकी रक्षा करूँगा।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा। यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये। वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कलाधर मेरा नाम है।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की। उसके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण-वेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है मैं उक्त त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्राभूषण, बहुमूल्य रत्न, मृगचर्म, सुरभि तथा अश्व, गज और रथ आदि भी प्रदान किये।

त्रिपुर-दूत मन्दरगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पार्वतीवल्लभसे उक्त गणेश-मूर्ति देनेके लिये कहा। शिवजी कुपित हो गये। उनके गणोंमें देवताओंसे दैत्योंमें भयानक संग्राम छिड़ा। दैत्योंका बड़ा विनाश हुआ, किंतु उनकी अपरिसीम सैन्य शक्तिसे देवगण व्याकुल होकर भागने लगे।

शिवकी गणेशोपासना

देवताओंको युद्धक्षेत्रसे पलायन करते देखकर त्रिपुरासुर जगज्जननी पार्वतीको एकाकी जान कैलासकी ओर दौड़ा। इस संवादसे जननी काँप उठीं, पर हिमगिरिने उन्हें एक अत्यन्त सुरक्षित दुर्गम गिरिगह्वरमें पहुँचा दिया।

हिमगिरिनन्दिनीकी अनुपस्थितिमें त्रिपुरने कैलासमें ढूँढ़कर 'चिन्तामणि' की शुभमूर्ति प्राप्त कर ली। उक्त सर्ववाञ्छाकल्पतरु दुर्लभ सुन्दरतम गणेश-प्रतिमाको लेकर त्रिपुर स्वधामके लिये प्रस्थित हुआ। वन्दीजन उसका स्तवन कर रहे थे किंतु मार्गमें विनायककी वह मङ्गलमयी मूर्ति त्रिपुरके हाथसे छूटकर अदृश्य हो गयी। यह अपशकुन देखकर त्रिपुरासुर खिन्न-चित्त हो लौटा।

सदाशिव चिन्तित थे। उद्धत असुर अत्यन्त पराक्रमशाली था और धरतीपर अनीति, अनाचार एवं कुकर्मोंका ताण्डव हो रहा था। धर्मसंस्थापक मुञ्जकेश विरूपाक्ष उद्विग्न-से हो रहे थे। उसी समय देवर्षि नारद उनके समीप पहुँचे। पार्वतीकान्तने उन्हें आदरपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की।

'दैत्योंके पराक्रमसे त्रैलोक्यमें अधर्म फैल गया है।' दुःखी मनसे शूलपाणिने नारदजीको बताया—'युद्धमें देवता टिक नहीं सके, वे प्राण लेकर भाग खड़े हुए। महाबली असुरने मेरे अस्त्रोंको भी विफल कर दिया।'

'सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी महेश्वर!' साश्चर्य देवर्षिने महादेवसे कहा—'आप सर्वसमर्थ एवं सृष्टिस्थित्यन्तकारी होकर भी अद्भुत लीला कर रहे हैं।'

कुछ क्षण ध्यान करके उन्होंने भुजगेन्द्रहारको बताया—'वह्निनेत्र! युद्धके लिये प्रस्थित होते समय आपने विघ्नेश्वरकी पूजा नहीं की, इसी कारण आपकी पराजय हुई। आप अपने पुत्र गणेशकी पूजाकर उन्हें प्रसन्न कर लीजिये फिर आपकी विजय सुनिश्चित है।'

'ब्रह्मन्! आपका कथन यथार्थ है।' कर्पूरगौरने देवर्षिसे कहा—'उन्होंने पहले ही मुझे विघ्ननिवारक मन्त्र दिये हैं किंतु युद्धमें मुझे उनके जपकी विस्मृति हो गयी।'

देवर्षि चले गये। शोक-शूल-निर्मूलन वृषभध्वज

दण्डकवनम जाकर पद्मासन लगाया ओर वे विनायकका प्रसन्न करनके लिये कठार तप करन लगे।

सा वर्ष बीते। तपश्चरणनिरत व्याघ्रचमाम्बरधर शिवके मुखस एक परम तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष निकले। उनक पॉच मुख ओर दस हाथ थ ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था, उनकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाको मात कर रही थी, कण्ठम मुण्डमाला थी, सर्पोक आभूषण थे एव मुकुट आर बाजूबदकी निराली छटा थी। वे अपनी प्रभास अग्नि सूर्य और चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रह थ। उन्होन अपनी दसा भुजाआम दस आयुध धारण कर रख थ।

'क्या मेरे ही दा रूप हा गय?' नीलकण्ठ शिव आश्चर्यचकित हा साचन लग—'या यह त्रिपुरासुरकी माया ता नहीं हे? मै स्वप्न ता नहा दख रहा हूँ अथवा में जिन आदिदव विनायकका अहनिश ध्यान करता हूँ, उन्हाने ही कृपापूवक मुझे दशन दिया हे?'

'आप अपन मनम जिनका विचार करत ह म वही विघ्नविनाशक हूँ।' सवक्र्ता सुमुखन आशुतापसे कहा—'मर यथार्थ स्वरूपका दवता, ऋषि और विधाता भी नही जानत। वद ओर उपनिषद् भी नहीं जानत फिर षट्शास्त्राक ज्ञाता ता कसे जान सक्त हें? में अनन्त लाकाका स्रष्टा पालक एव सहारक हूँ। में चराचर जगत् एव ब्रह्मा तथा तीना गुणाका स्वामी हूँ। आपक तपसे सतुष्ट हाकर मैं यहॉ वर प्रदान करन आया हूँ, महादेव! आप इच्छानुसार वर मॉग लीजिय।'

वरद विनायकक वचन सुन महश्वर अपना स्वरूप भूलकर हर्ष-गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करन लग—

'ह दव! आज आपकी पूजा करनस मर दसा नत्र आर दसा भुजाएँ धन्य हें। आपको प्रणाम करनस मरे पॉचा सिर और आपका स्तवन करनेस मर पॉचा मुख भी धन्य हा गय। पृथ्वी,जल वायु, दिशाएँ, तेज कलनात्मक काल आकाश रस रूप गन्ध स्पश शब्द मन इन्द्रियॉ गन्धर्व यक्ष पितर मनुष्य दवपि दवगण ब्रह्मा रुद्र इन्द्र वसु साध्य तथा आपस उत्पन्न सभी चराचर धन्य हें। आप रजागुणस सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना आर सत्त्वगुणस पालन करत है, तथा ह गुणश्वर! आप तमागुणके द्वारा उनका सहार करते हें। आप नित्य िरपेक्ष एव समस्त कर्मोक साक्षी ह।'

'आपक स्मरण करते ही म आपक समीप आ जाऊँगा और आपका कार्य पूरा हा जायगा।' देवाधिदव महादेवक स्तवनम सतुष्ट हाकर गुणाधीशन उनस कहा—'आप मेरे बीज-मन्त्र (ग)-का उच्चारण करक पुरत्रयपर एक शर छाडग ता वह ध्वम्त हो जायगा।'

इसक अनन्तर शिवपर प्रसन्न हुए गम्भीरलोचन गजमुखने उन्ह अपने सहस्रनामका उपदेश दिया आर बाल—'तीना सध्याआम इसक पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ सिद्ध हागी। युद्धक पूर्व आप इसका पाठ कर ल ता असुराका शीघ्र नाश हा जायगा।'

द्विरदाननक वरसे प्रसन्न हाकर काम-मद-मोचन शिवन विधिपूर्वक उनकी पूजा की[१] और वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एव विशाल मन्दिर बनवाकर उसम उनकी प्रतिष्ठा की। फिर दवता, मुनि आर सिद्धाका तृप्तकर ब्राह्मणाका दान दिया। इसक अनन्तर तामरसलोचन वृपभध्वजन भुन गुरुमन्त्रफलप्रद गणशका प्रीतिपूर्वक पूजा करक उनक चरणाम प्रणाम किया। दवगण गङ्गाधरप्रिय गजमुखका स्तवन कर रह थ। उसी समय पशुपतिने कहा—'इन गणशजीका यह स्थान सम्पूर्ण लाकाम 'मणिपुर' क नामस विख्यात हा।'

गम्भीर-गुणसम्पन्न गणश अन्तधान हो गय। ज्ञानद गणशक दशनस प्रसन्न दवता मुनि सिद्ध एव ब्राह्मण भा अपन-अपन भाग्यकी प्रशसा करत हुए प्रस्थित हुए। स्वर्गापवर्गदाता गङ्गाधर भी प्रसन्नतापूवक उठ। त्रिपुरासुर मारा गया। त्रलाक्य तृप्त हुआ। सज्जन सुख-सतापकी साँस ली। सवत्र हर्षकी लहर दाड गयी।

शिवपुराणम कथा आती ह कि असुरास पूर्ण त्रिपुरका भस्म करनक लिय कामारि शम्भुन शर-सधान किया। धनुषका दृढताम धारण किय रणकर्कश शिव लक्ष्यपर दृष्टि गडाय एक लाख वपतक अडिग खड रह किंतु त्रिपुरपर[२]

१-काउ सुनि ससय कर जनि सुर अनादि जियँ जानि॥ (रा० च० मा० १। १००)

२-शिवपुराणक अनुसार तारकासुरको समान बलशाली तान महान् पुत्र थ—तारकाक्ष विद्युन्माली आर कमलाक्ष। इन तानान कठार तपस विधाताको सतुष्ट करक अपने-अपन लिय क्रमश सुवर्ण रजत एव वज्रतुल्य लाह पुराका प्राप्त किया था। व ताना पुर एक सहस्र वर्षोंक बाद मध्याह्नम अभिजित् मुहूतम एक स्थानपर स्थित हात थ।

लक्ष्य स्थिर नहीं हुआ। उस समय देवत्राता शिवने आकाशवाणी सुनी—

भो भो न यावद् भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः।
पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति॥

(शिवपु० रुद्रसं० यु० ख० १०। ६)

'हे अखिलेश! हे भगवन्! जबतक आप विनायककी पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे।'

यह सुनकर अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तत्पश्चात् लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा। उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ। देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया। उक्त परम तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्यासहित त्रिपुर भस्म हो गया।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी मिष्टान्न-भाजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी। रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गङ्गाजल-रसास्वाद-चतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए।

(गणेशपुराण)

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है। सनत्कुमारने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। स्वयं लोक-पितामहने भी वहाँ तपश्चरण किया था और सिद्ध हुए थे। महात्मा कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इसी कारण उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' प्रसिद्ध हुआ। उस पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन नित्य निवास करते हैं।

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं।

एक बारकी बात है। पवित्र वैशाखकी पूर्णिमा थी। उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके साथ कल्याणकारी जगत्पति शिव गणोंसहित षडानन और स्वयं पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे। भगवान् गणेशकी पूजा करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और नरेश भी वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकापुरीके निवासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ पधारे। सो वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका भी गोलोकवासिनी गोपकुमारी सखियोंके साथ वहाँ शुभागमन हुआ। भक्तानुग्रहमूर्ति श्रीराधारानीने वहाँ स्नान करके शुद्ध साड़ी और कंचुकी धारण की। फिर त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रियाने अपने चरणोंको अच्छी प्रकार धोया। इसके अनन्तर उन्होंने निराहार एवं संयतेन्द्रिय हो मणि-मण्डपमें प्रवेश किया।

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने अपने प्राणधन श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विधिवत् संकल्प किया। तदनन्तर उन्होंने परम पावनी सुरसरिके निर्मल जलसे भालचन्द्र गजाननको स्नान कराया। फिर सत्कान्तिसम्पन्ना भगवती राधा अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकारसे

लम्बोदरका ध्यान करने लगीं। ध्यान करनेके अनन्तर परम सती राधाने उक्त पुष्पको अपने मस्तकसे स्पर्श कराकर फिर सर्वाङ्गशुद्धिके लिये वेदोक्त न्यास किया। तदनन्तर ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने पुनः उपर्युक्त कल्याणकर ध्यानके द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके चरणोंमें अर्पित कर दिया। इसके बाद परम महिमामयी श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा श्रीराधाने सुगन्धित सुशीतल पवित्र तीर्थजल, दूर्वा, चावल, सुगन्धित श्वेत पुष्प

सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य पारिजात-पुष्पाकी माला कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, उत्तम धूप, घृतदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, फल, विविध पकारक मोदक और व्यञ्जन अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन दो सुन्दर वस्त्र मधुपर्क ताम्बूल अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरास सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पितकर अत्यन्त श्रद्धा और विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी षोडशोपचारपूर्वक पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी श्रीराधाने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र जप किया।

'ॐ ग गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृ० ज० ख० १२१। १००)

जपके अनन्तर पराम्बा भगवती राधाके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्गद-कण्ठसे गणेशजीका स्तवन करने लगीं।

सर्वेश्वरी श्रीराधाने भक्तिपूर्वक विधिवत् गणेशकी पूजा एवं वन्दना की। उनके मङ्गलमय सर्वाङ्गमें धारण करने योग्य बहुमूल्य रत्नोंके विविध आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा-भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल-कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'माते! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है उन सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा क्योंकि देवताओंको देने योग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं वह देवताओंको मिलता ही है।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मङ्गलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः समस्त देवताओंने समय-समयपर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा-अर्चा की।

(ब्रह्मवैवर्त कृष्णजन्मखण्ड)

देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना

एक बारकी बात है। पवित्र गोतमीके उत्तर तटपर देवताओंने यज्ञ प्रारम्भ किया परंतु उसमें अनेक विघ्न पड़ने लगे। यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सका। उदास होकर देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुसे इसका कारण पूछा। दयामय चतुराननने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका पता लगाया और फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'इस यज्ञमें श्रीगणेशजी विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। इसी कारण यज्ञ सविधि सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। आप लोग आदिदेव विनायकको प्रसन्न कर लें तब यज्ञ पूर्ण हो जायगा।'

विधाताके परामर्शसे देवताओंने गोतमीके निर्मल जलमें स्नान किया और फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वे अम्बिकानन्दन श्रीगणेशजीकी स्तुति करने लगे—

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसम्भवानाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता।
निश्चित्य चैतत् त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधे पुराणाम्॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोऽभिलाषाः॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जाते सुते चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन् सुरसंघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
सर्वेष्टितो देवगणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम्॥
यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमस्ति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यस्यार्चनात् प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।

स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्व भ्रातृप्रिय त्वाखुरथ तमीडे॥
यो मातर सरसैर्नृत्यगीतेस्तथाऽभिलापैरखिलैर्विनोदे ।
सतोषयामास तदातितुष्ट त श्रीगणेश शरण प्रपद्ये॥

(ब्रह्मपुराण ११४। ६—१६)

'सदा सब कार्योम सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण ग्रहण करते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवाञ्छित फल दनवाला कोई दवता नहीं हे ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियाके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणश इस महायज्ञम शीघ्र ही हमारे विघ्नोका निवारण कर। देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हा गया इससे सम्पूर्ण जगत्म महान् उत्सव छा गया है।'—यह बात उन देवताआन अपने मुखस कही थी, जा नवजात शिशुक रूपम गणशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदम बठे हुए और माताक मना करनेपर भी जिन्होन पिताक ललाटम स्थित चन्द्रमाका बलपूर्वक पकडकर उनकी जटाआम छिपा दिया यह गणशजीका बालविनाद था। यद्यपि व पूर्ण तृप्त थे तब भी अधिक देरतक माताके स्तनाका दूध इसलिय पीत रह कि कहीं बडे भैया कार्तिकेय भी आकर न पीन लग। उनकी बुद्धिम बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी था। यह देखकर भगवान् शकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो इसलिये लम्बादर हो जाआ।' या कहकर उन्हाने उनका नाम 'लम्बादर' रख दिया। दवसमुदायस घिर हुए महश्वरन कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य हाना चाहिय।' यह सुनकर उन्हाने अपन घुँघुरूकी आवाजस हा शकरजीका सतुष्ट कर दिया। इसस प्रसन्न हाकर शिवन अपन पुत्रको गणशक पदपर अभिषिक्त कर दिया। जा एक हाथम विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कधेपर कुठार लिय रहत हैं तथा पूजा न पानपर अपनी माताक कार्यम भी विघ्न डाल दत ह उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जा धर्म अथ और काम आदिम सबस पहल पूजनाय हैं तथा दवता आर असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करत हैं जिनक पूजनका फल कभा नष्ट नहीं हाता उन प्रथम पूजनाय गणशको हम पहल मस्तक नवाते हैं। जिनका पूजामे सबका प्रार्थनाक अनुरूप सब प्रकारक फलकी सिद्धि दृष्टिगाचर हाता हे, जिन्ह अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है उन बन्धुप्रिय मूषक-वाहन गणशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्हाने अपने सरस सगीत, नृत्य, समस्त मनारथाकी सिद्धि तथा विनादके द्वारा माता पार्वतीका पूर्ण सतुष्ट किया है उन अत्यन्त सतुष्ट हृदयवाले श्रीगणशकी हम शरण लेते हैं।'

'देवताओ! अब तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा।' सुर-समुदायक स्तवनसे सतुष्ट होकर भगवान् गजाननन प्रकट होकर कहा—'जा लाग इस स्तात्रस मरा स्तवन करग, व

दरिद्रता आर दु खस बचे रहगे। इस तीर्थम सातसाह सविधि स्नान-दान करनेवालाके कार्यम भी विघ्न उपस्थित नहीं हागा। आप लोग भी इसका समर्थन कर।'

भगवान् लम्बादरक वचनस प्रसन्न होकर दवताओने उक्त पावन अविघ्न तीर्थके सम्बन्धम तुरत एक स्वरसे कहा—'एसा ही हागा।'

फिर दवताआन उल्लासपूर्वक यज्ञ पूर्ण कर लिया।

अभिशप्त चन्द्र

एक समय गणशजाक द्वारा चन्द्रमाका शाप प्राप्त हुआ

था। गणशपुराणकी वह कथा सक्षेपम इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनम लाक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिवके समीप बठ थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ट अपूर्व फल था। उक्त फल दवर्षिने करुणामय उमानाथके कर-कमलाम अर्पित कर दिया।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिताके हाथम दखकर गणश और कुमार दोना बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लग। तब शिवन ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! दवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इस गणेश एव कुमार दाना चाहते हैं आप बताय, इसे किस दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभा! छाट हानक कारण इस एकमात्र फलक अधिकारी ता षडानन ही हैं।'

गङ्गाधरने फल कुमारको द दिया किंतु पार्वतानन्दन गणश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हा गय।

लोक-पितामहन अपन भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया ता गजवक्त्रन अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। व अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके उत्कट स्वरूपका दखकर विधाता भयभीत होकर काँपन लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एव ब्रह्माका भय आर कम्प देखकर चन्द्रदेव अपन गणाक साथ हँस पड।

चन्द्रमाको हँसत देख गजमुखका बडा क्राध आया। उन्हाने चन्द्रदवका तुरत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखन याग्य नहीं रह जाआग आर यदि किसीन तुम्ह दख लिया ता वह पापका भागी होगा।'

गजकर्ण वहाँस चल गये। चन्द्रमा श्राहत मलिन एव दीन हाकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन-ही-मन कहने लग—'अणिमादि गुणास युक्त जगत्-कारण-कारण परमेश्वरक साथ मैंने मूर्खकी भाँति दुराचरण कैस किया? मै सबक लिये अदर्शनीय, वर्णहीन आर अत्यन्त मलिन हा गया। अब मैं पुन कलाआसे युक्त सुन्दर वन्द्य एव दवताआके लिय सुखद कैसे हा सकूँगा?'

ऐसा विचारकर दु खी सुधाकर परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर उन सर्वसुखदायक प्रभु गजाननका ध्यान करते हुए उनक एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार चन्द्रदेवने गणशको सतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदव गजानन प्रसन्न हुए।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर रक्तचन्दनचर्चित चतुर्भुज, महाकाय, काटिसूर्याधिक दीप्तिमान् देवदेव गजानन चन्द्रमाके सम्मुख प्रकट हा गय। निशानाथने परम प्रभुके महान् स्वरूपका दखा ता वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भयसे काँपने लग, परतु फिर उन्हांने मन-ही-मन विचार किया—'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझ कृतार्थ करनेक लिय प्रकट हुए हैं।' तब वे हाथ जाडकर कहने लगे—

'दयानिधान! मैंन अज्ञान-दापके कारण आपके प्रति अपराध किया है उसके लिय आप क्षमा-प्रदान कर। महात्मन्! मैं आपकी शरणम आया हूँ। यदि आप शरणागतका त्याग कर दगे ता यह आपके लिये भी दोषकी बात हागी, अत मुझपर कृपा कीजिय।'

चन्द्रमाक गद्‌गद-कण्ठस किये गय स्तवन और दण्डवत् प्रणामसे सतुष्ट हाकर परम प्रभु गणेशने कहा—'चन्द्रदेव! पहले तुम्हारा जैसा रूप था वेसा ही हो जायगा, किंतु जा मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीका तुम्ह दख लेगा वह निश्चय ही अभिशापका भागी होगा। उसे पाप, हानि एव मूढताका सामना करना पडगा। उस तिथिको तुम अदर्शनाय रहोग।[१] कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जा लागाद्वारा व्रत किया जाता है, उसम तुम्हारा उदय हानपर यत्नपूर्वक मेरी ओर तुम्हारी पूजा हानी चाहिय। उस दिन लागाका तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिय अन्यथा व्रतका फल नहीं मिलगा। तुम एक अशस मर ललाटम स्थित रहा, इसस मुझ प्रसन्नता हागी। प्रत्यक मासका द्वितीया तिथिको लाग तुम्ह नमस्कार करग।'

परम प्रभु गजाननक वर-प्रभावसे सुधाशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एव वन्द्य हा गये। (गणशपुराण)

१-भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनजनित दोष दूर करनेक लिय श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके ५७व अध्यायम वर्णित स्यमन्तकहरणका प्रसग पढना या सुनना चाहिय।

परास्बा-लीला-चिन्तन

[सृष्टिकर्त्री भगवती आदिशक्तिका नाम ही मूल प्रकृति ह। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वय 'प्रकृति' और 'पुरुष'—इन दो रूपोमे प्रकट होकर अनेक प्रकारकी लीला करते हैं। य प्रकृतिदवी सृष्टिके पूर्वमे भी स्थित रहती हैं इसलिये मूल प्रकृति कही जाती ह। परब्रह्म परमात्माके सभी गुण इनम विद्यमान रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हींका लाला विलास है। विभिन्न प्रकारकी सृष्टिका सृजनकर अपनी लीलासे जगत्‌का आह्लादित करना इनका प्रधान उद्देश्य है। भगवती प्रकृति भक्तोके अनुरोधसे अथवा उनपर अनुग्रह करनेक लिये अनेक लीला-रूप धारण करती ह। ये एक ही शक्तिदेवी मूल रूपसे विभिन्न लीलारूपोमे प्रादुर्भूत होती हे। इनका सक्षिप्त परिचय लीला-चिन्तनके रूपम यहाँ प्रस्तुत हे।—स०]

भगवती मूल प्रकृतिके विविध लीलावतारोंका चिन्तन

भगवती सावित्री

देवी सावित्री वेद-जननी ह। ये सदा ब्रह्मतजसे देदीप्यमान रहती हैं। भक्तापर कृपा करनेके लिय इन्हान शुद्ध चिन्मय विग्रह धारण किया है। इनका विग्रह मङ्गलमय तथा मन्त्रमय हे। छन्द आर वद इन्हींस आविर्भूत हें। सध्या-वन्दनके मन्त्राकी अधिष्ठात्री दवी भगवती सावित्री ही हें। इन्हीका नाम गायत्री हे। य जपरूपा तपस्विना ब्रह्मतजसे सम्पन्न तथा सर्वसस्कारमयी हैं। प्रात -मध्याह तथा साय तीन कालामें य त्रिविध कृपामय लीला-विग्रह धारण करती हे ओर अपने उपासकाक कल्याणक लिय स्वयको भी समर्पित कर दती ह। इनकी नित्य त्रिकाल उपासनाका विधान निरूपित है। विना गायत्रीकी उपासनाक काई भी धर्म-कर्म सफल नही हा पाता। इसलिय अत्यन्त पवित्र-बुद्धिसे वाह्याभ्यन्तर शुद्ध हाकर भगवती सावित्रीकी उपासना करनी चाहिय। सवप्रथम भगवान् ब्रह्माजान इनकी उपासनाकर इन्ह अपनी शक्तिरूपम प्राप्त किया था। य अपन एक रूपस सूयमण्डलम स्थित रहकर नित्य सत्रका अपन लीला-विग्रहका दर्शन कराती रहती है। भगवता सावित्रीकी स्वच्छ कान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान है। य शुद्ध सत्त्वमय विग्रहस शाभा पाती हैं। ये परब्रह्मस्वरूपा हैं। ब्रह्मतजस सम्पन्न परम शक्ति हैं। महाराज अश्वपतिन इन्हीं दवा सावित्रीका उपासना करक इन्ह अपनी पुत्रीक रूपम प्राप्त किया जिनका पातिव्रत्य-धम त्रलाक्यक लिय आदश एव पूज्य बन गया इन्हान कालशक्तिका जात लिया। इस प्रकार अपन भक्तापर अनुग्रह करनेक लिय भगवती सावित्रा अनक लीला-रूप धारणकर उन्हे परम आनन्द प्रदान करती ह।

रासेश्वरी श्रीराधा

रासश्वरी श्रीराधा नित्यनिकुजश्वरी नित्य-किशोरी आर रासक्रीडा तथा अलाकिक प्रवर्धमान आनन्दकी अधिष्ठात्री दवी ह। सान्दर्यसारसर्वस्व हें। ये साक्षात् लीला-रूप हैं क्रीडा-रूप ह आनन्द-रूप हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके महारासमण्डलम इन नित्यकिशोरीजीका आविभाव हुआ वस य परमात्मा श्राकृष्णक हृदयमे नित्य विराजमान रहती ह। गालाक इनका लीलाधाम ह। ये परम आह्लादस्वरूपिणी ह। प्रम-मूर्ति हें। 'रासेश्वरी' तथा 'सुरसिका' इनका प्रसिद्ध नाम ह। य गापा-वेपम विराजती हे। बड-बडे ज्ञानी सन महात्मा एव ऋपि-मुनि भी इनके लीला-रहस्याको तत्त्वत समझनम भूल कर जात है। वस्तुत विना रासेश्वराकी कृपाशक्तिक उनकी लीलाका समझना असम्भव ही है। यद्यपि इनका विग्रह विशुद्ध चिन्मयरूप है तथापि आनन्दमयी महालीलाक लिय य वृपभानुपुत्रीके रूपम अवतरित हुई हैं। य नालवणक दिव्य वस्त्र धारण करती हैं तथा अनेक प्रकारके दिव्य आभूपण इन्हे सुशोभित किये रहते हैं। इनका कान्ति कराडा चन्द्रमाआक समान प्रकाशमान ह और इनका सर्वाङ्गपूण विग्रह सम्पूण ऐश्वर्योस सम्पन्न ह। समग्र सौन्दर्य एश्वय माधुर्य लावण्य तज कान्ति श्रीवभव और समग्र परमानन्द इन दवा भगवती श्रीराधाम प्रतिष्ठित हैं। इनके

चरण-कमलका स्पर्श पाकर पृथ्वी परम पवित्र और धन्य हुई है। ये परब्रह्म भगवान्‌की सनातनी लीला हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य एव परम आह्लादमयी हैं।

इस प्रकार भगवती मूल प्रकृति ही अपने पूर्णरूपमे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा—इन पाँच पृथक्-पृथक् नामासे व्यवहृत हाती हैं। य मूल प्रकृतिकी परिपूर्णतम अवतार हैं। इन्हींक अश, अशाश, कला कलाशसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। ब्रह्माण्डमे स्त्रीवाचक जो भी शक्तिरूप है अथवा पुरुषवाची शक्तिया पदार्थोम जो शक्ति अथवा विभूति निहित है, वह वस्तुत इन्हीं भगवती मूल प्रकृतिकी कृपाका ही अश है। इससे स्पष्ट है कि भगवती मूलशक्ति सर्वत्र व्याप्त हैं और समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक यह जगत् उन्हींको शक्तिका विलास है। जगत्‌की जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे सब शक्तिरूपा ही हैं—' ''' त्तव देवि भेदा स्त्रिय समस्ता सकला जगत्सु।' इन्हीं प्रकृति देवीके एक प्रधान अशसे भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ और भगवती तुलसी भी इन्हीं देवी मूल प्रकृतिकी एक समग्र लीला-रूप हैं, ऐसे ही भगवतीके षष्ठी आदि कुछ लीला-विग्रहाका सक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

भगवती षष्ठीदेवीकी लीला-कथा[१]

इन्हीं मूल प्रकृतिक छठे अशसे जिन देवीका आविर्भाव होता है, वे 'षष्ठीदेवी' कहलाती हैं। ये षष्ठीदेवी बालकोकी अधिष्ठात्री देवी हैं। नवजात शिशुके जन्मके छठ दिन इनकी विशेष पूजा होती है इसलिये भी ये षष्ठी कहलाती हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें ये देवसेनाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी हैं। बालकाको दीर्घायु बनाना और उनका भरण-पोषण तथा रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है ये परम दयारूपिणी हैं। पूर्व समयमे जब देवता दैत्यासे पराजित हो गये तो इन्होंने स्वय सेना बनकर देवताओका पक्ष लेकर दैत्यासे युद्ध किया था। इनकी कृपासे दवता विजयी हो गये अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड गया।

मूलत ये ब्रह्माजीकी मानसी कन्या हैं। इनके प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र प्रियाहीन जन मनाहारिणी प्रिया, दरिद्री अभिलषित धन तथा पुरुषार्थी उत्तम कर्मोक उत्तम फल प्राप्त करता है। देवी षष्ठी मनुष्याको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा प्रदान करती हैं, उनकी सहायता करती हैं और सब प्रकारसे अपने भक्तोका अभ्युदय करती हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त ही करुणासे भरा है, वात्सल्यकी य प्रतिमूर्ति हैं—अत्यन्त ही दयालु हैं। या तो ससारके सभी प्राणी इनक पुत्र हैं तथापि वात्सल्यकी अधिष्ठात्री हानस नवजात शिशुओको ता ये साक्षात् माता ही हैं। नवजात शिशु अकेलेम जो स्वयसे क्रीडा करते दीखता है, हँसता है, राता है हाथ-पाँव पटकता है तथा नींदम भी कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी चौंक जाता है वस्तुत यह सब माता षष्ठीदेवीका ही खेल है। वे बालकको अपना ही शिशु मानती हैं और उसके साथ अव्यक्त-रूपसे अनक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती हैं। य सिद्धयोगिनी दवा अपने योगके प्रभावसे बच्चोके पास सदा विराजमान रहती हैं। अत माताआको अपन बालकाकी रक्षा, उत्तम स्वास्थ्य दीर्घ आयु तथा अभ्युदयकी कामनास दवी षष्ठीकी विशयरूपसे आराधना करनी चाहिये।

वैसे तो देवीकी अनन्त लीलाएँ हैं जो आनन्द देनवाली हैं। फिर भी जैसे बालक स्वाभाविक बाल-लीला दिखाता ह, उसी प्रकार देवी षष्ठी भी जगत्‌को बालरूप समझकर क्रीडा करती रहती हैं। यहाँ एक ऐसी ही लीला-कथा दी जा रही है—

स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नामक पुत्र थे। व सम्पूर्ण पृथ्वीक एकमात्र शासक थ। वे बड ही धर्मात्मा न्यायप्रिय, उदार दयालु और प्रजावत्सल थे। अध्यात्मज्ञान तथा तपस्यामे विशेष रुचि होनेके कारण ये विवाह नहीं करना चाहते थे, किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञासे सृष्टिक विस्तारके लिय उन्होने विवाह कर लिया। दीर्घ कालतक उन्हे कोई सतान प्राप्त नहीं हुई तब महर्षि कश्यपने इनसे पुत्रेष्टि-याग करवाया और यज्ञके प्रसाद चरुके प्रभावस रानी मालिनीन यथासमय एक दिव्य कुमारका जन्म दिया किंतु कालकी प्ररणासे वह कुमार मरा हुआ था।

रानी मालिनी मर हुए पुत्रको देखकर शोकस मूर्च्छित

१-देवीभागवत नवम स्कन्ध तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृति-खण्डम यह कथा समान-रूपसे प्राप्त हाती है।

हो गयी। राजा प्रियव्रत दु खसे अत्यन्त व्याकुल हो गये। समस्त राजपरिवार शोकसे सतप्त हो गया। राजा अत्यन्त विचारम पड गये—'प्रथम तो कोई सतान ही नहीं और विशेष प्रयत्नसे हुई भी तो मरी हुई। हाय, में बडा हतभाग्य हूँ, न जाने मैंने कौनसे दुष्कर्म किये, जिसके परिणाम-स्वरूप यह दु ख भोगना पड रहा है। इससे तो अच्छा था सतान ही न होती', इस प्रकारसे वे विलाप करने लगे। मन्त्रियाने उन्ह अनेक प्रकारसे ढाढस दिलाया और आगेका कार्य करनेकी सलाह दी।

रानीको रोता-विलखता छोड राजा प्रियव्रत पुत्रको लेकर श्मशानमें गये और वहाँ एकान्त भूमिमे पुत्रको छातीसे चिपकाकर उच्च स्वरमे रोने लगे। उनकी आँखासे आँसुओकी धारा बह निकली। राजाकी अत्यन्त ही दयनीय स्थिति हो गयी थी, वे कर तो क्या करे, पुत्रशोकसे वे स्वय भी मरे हुए-से हो गये थे।

इतनेम ही उन्ह वहाँ एक दिव्य विमान दिखलायी पडा। शुद्ध स्फटिकके समान देदीप्यमान वह विमान अमूल्य रत्ना तथा मणियोस जटित एव पुष्पाकी मालास सुशोभित था। राजाने उस विमानपर बैठी हुई दिव्य वस्त्राभूपणासे सुशोभित कान्तिपूर्ण एव मनोरम स्वरूपवाली एक युवा देवीको दखा। उनका वर्ण श्वेत चम्पा-पुष्पके समान उज्ज्वल था। उनक मनोहर मुखमण्डलपर सौन्दर्य माधुर्य एव सौम्यताकी आभा झलक रही थी। देवीके मुखमण्डलके चारो ओर एक दिव्य तेजोमय मण्डल प्रकाशित हो रहा था। वे मधुर मुसकान विखेर रही थीं। इस रूपम उन्ह देखकर ऐसा मालूम पडता था मानो वे साक्षात् कृपाकी मूर्ति ही हा।

उनका दर्शन करत ही राजाके मनम एक विलक्षण शान्तिका अनुभव हुआ उन्ह लगा कि निश्चित ही ये कोई दैवीशक्ति-सम्पन्न मातृरूपा देवी हैं जो मरे दु खको देखकर मुझपर कृपा करन आयी हैं। सहज हो राजाक हाथ जुड गय य उन्ह प्रणाम करने लग और फिर उन्हाने अपन मृत यालकका भूमिपर रख दिया तथा कातर दृष्टिसे व दवीक किसी यिशिष्ट अनुग्रहको प्रतीक्षा करन लग। दवी पष्ठी यिमानस उतरकर राजाक समीप चली आयीं और कहन लगीं—'राजन्! मैं दयसना हूँ, मरा नाम पष्ठी है मैं यालकाकी अधिष्ठात्री दयी हूँ। आज तुम्हार पुत्रशाकस दु खी हाकर मैं यहाँ आया हूँ। राजन्! यह अपन हा कर्मोका प्रभाय हाता है कि कुछ लोग सतानहीन हाते हैं, कुछ लोगाका सतानें मर जाती हैं और कोई उत्तम सतानसे युक्त हाते हैं। सुख दु ख, हर्ष-भय और शोक सम्पत्ति तथा विपत्ति—ये सब कर्मोके अनुसार ही हाते हैं। ऐसा समझकर सबको सत्कर्मम ही प्रेरित होना चाहिये। आपक दुर्दैवसे ही आपको सतानहीनता प्राप्त है, उसका फल आपको मिल ही गया है, किंतु मेरा दर्शन अमोघ है, यह बालक जैसे आपका प्रिय है, वैसे ही मुझे भी प्रिय है। आपकी रानी मालिनीका जितना मातृस्नह इसक प्रति है, उससे अधिक मुझे इसस प्रम है, बालकाकी विशप रूपसे रक्षा करना मेरा कार्य है, अत अब आप शाकका परित्याग कर।' एसा कहकर कृपामयी देवीने उस बालकको अपनी गोदम उठा लिया और अपनी योगलीलाद्वारा खेल-खेलहामे उसे जीवित कर दिया।

अपनी वास्तविक माताक अङ्कका मधुर एव दिव्य स्पर्श पाते हा उस बालकको आभा एव छवि और भी द्विगुणित हो उठी और वह बालक माँकी गादम मुसकराते हुए किलकारी भरने लगा। राजा हाथ जोड उस अद्भुत दृश्यका दखत ही रह गय। महान् आश्चय और दवाकी कृपाशक्तिको दखकर राजा अभिभूत-से हा गये तब देवीने राजास कहा—

'राजन्! यह तुम्हारा पुत्र सभी सद्गुणास सम्पन्न है यह भगवान् नारायणका कलावतार ह, यह क्षत्रियोंमें सर्वश्रष्ठ तथा सम्पूण पृथ्वीका अधिपति हाते हुए सहस्र यज्ञाका सम्पन्न करगा। यह महान् एश्वर्यस सम्पन्न गुणी निर्मल-हृदय विद्वानाका प्रमभाजन तथा योगियों, ज्ञानिया और तपस्वियाका सिद्ध-रूप हागा। इस जन्मान्तरकी सभी बातें याद रहगा। तीना लाकाम इसक यश एव कीर्ति

गुणगान होता रहेगा।' ऐसा कहकर देवीने उस बालकको 'सुव्रत' नामसे पुकारा और तभीसे उसका यह नाम प्रसिद्ध हो गया। देवीने पुनः कहा—'राजन्! तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो सम्पूर्ण त्रिलोकीपर तुम्हारा शासन चलता है। अतः तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो।'

इस प्रकार कहकर षष्ठी देवीने बालक सुव्रतको राजाको समर्पित कर दिया और अनेक आशीर्वाद एवं वर प्रदानकर वे अन्तर्धान हो गयीं। राजाने प्रसन्न होकर अनेक माङ्गलिक उत्सव किये। देवी षष्ठीका पूजन किया और उनकी कृपाशक्तिका सभीको उपदेश दिया। तभीसे देवी षष्ठीके पूजा-महोत्सवका क्रम प्रारम्भ हो गया तथा प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, बालकके जन्मपर छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके समय यत्नपूर्वक देवी षष्ठीकी पूजा होती आ रही है।

देवी दक्षिणाके आविर्भावकी लीला

भगवती दक्षिणा महालक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रादुर्भूत हैं, इसलिये ये दक्षिणा कहलाती हैं। ये उपासकके सभी सत्कर्मोंके फल प्रदान करती हैं। इन्हें साक्षात् कमला (लक्ष्मी)-का कलावतार बताया गया है और ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। इनके आविर्भाव तथा महिमाकी एक कथा[1] देवीभागवतमें प्राप्त होती है जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

प्राचीन कालकी बात है, गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी एक गोपी थी जिसका नाम सुशीला था। सौभाग्यमें वह लक्ष्मीके समान थी और सभी सद्गुणों तथा सदाचारसे सम्पन्न थी। भगवान् श्रीकृष्णमें उसकी परम निष्ठा थी तथा स्वयं भगवान् भी उससे विशेष स्नेह रखते थे और अधिकाधिक समय उसके पास ही रहते थे। रासेश्वरी भगवती श्रीराधाको सुशीलाका यह भाव अच्छा नहीं लगा अतः भगवान्‌की लीलाको बिना समझे ही श्रीराधाजीने सुशीलाको गोलोकसे च्युत हो जानेका शाप दे डाला।

तदनन्तर महारासके मध्य एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। यह देखकर रासेश्वरी भगवान्‌को जोर-जोरसे पुकारने लगीं, पर भगवान् अन्तर्हित ही रहे। अब तो रासेश्वरी शोकसे व्यथित होकर उनकी अनेक प्रकारसे प्रार्थना करते हुए क्षमा माँगने लगीं। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी अविरल धारा प्रवाहित होने लगी तब भगवान्‌ने प्रकट होकर उन्हें आश्वस्त किया।

इधर गोलोकसे च्युत होकर वह सुशीला गोपी अनन्य-मनसे तपस्यामें निरत हो गयी। तपस्याके प्रभावसे उसने विष्णुप्रिया भगवती महालक्ष्मीके विग्रहमें प्रवेश कर लिया। उन्हीं दिनों एक विचित्र घटना यह हुई कि देवताओंको यज्ञका फल मिलना बंद हो गया। यह देखकर वे ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया, तब श्रीहरिने अपनी प्रिया महालक्ष्मीके दिव्य विग्रहसे एक अलौकिक देवीको प्रकट किया दक्षिण भागसे प्रादुर्भूत होनेके कारण भगवान्‌ने उन देवीका 'दक्षिणा' नाम रखा। श्रीहरिने दक्षिणादेवीको ब्रह्माजीको सौंप दिया तब ब्रह्माजीने यज्ञपुरुषके साथ दक्षिणादेवीका विवाह कर दिया। इसके बाद देवताओंको यज्ञका फल मिलने लगा इसीलिये दक्षिणा-विरहित यज्ञ करनेका शास्त्रीय निषेध है। तभीसे देवी दक्षिणा यज्ञपुरुषकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं। भगवती दक्षिणाको जो पुत्र हुआ वह 'फल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवी दक्षिणाकी कृपाके बिना प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिये प्राणिमात्रको यज्ञ-पत्नी भगवती दक्षिणाका अनुग्रह प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

माता स्वधाका लीला-आख्यान

माता स्वधा अत्यन्त करुणामयी एवं पितरोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। पितरोंके निमित्त श्राद्ध तथा तर्पण आदिमें प्रदत्त कव्योंको देवी स्वधा ही उनतक पहुँचाती हैं। इनकी अत्यन्त महिमा पुराणोंमें आयी है। पितामह ब्रह्माने कहा है कि स्वधादेवीके नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य सभी तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त करता है सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और

१-ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्डमें यह कथा समान-रूपसे आती है।

वाजपय यज्ञका फल प्राप्त करता है—

> स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवन्नर ।
> मुच्यते सर्वपापभ्यो वाजपयफल लभेत्॥
>
> (दवीभागवत० ९। ४४। ७)

इतना ही नहीं यदि 'स्वधा स्वधा स्वधा'—इस प्रकार तीन बार उच्चारण किया जाय ता श्राद्ध बलिवश्वदव आर तर्पणका फल प्राप्त हो जाता है—

> स्वधा स्वधा स्वधेत्येव यदि वारत्रय स्मरत्।
> श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥
>
> (दवीभागवत० ९। ४४। २८)

जबतक माता स्वधाका आविर्भाव नहीं हुआ था, तबतक पितराको भूख एव प्याससे पीडित रहना पडता था क्याकि ब्राह्मण आदि जा कुछ उनक उद्दश्यस दते थे वह उनका मिल नही पाता था। भूखस पीडित हाकर व पितर ब्रह्माक पास पहुँच आर उन्हान अपना कष्ट उनस निवदित किया। पितराक इस कष्टस ब्रह्मा चिन्तित हा गये, व सोचने लग कि मन इनक भोजनके लिय कव्यकी व्यवस्था का थी वह ब्राह्मणाक द्वारा देनेके बाद भा पितरातक क्या नहा पहुँचता। उन्हान माता स्वधाका ध्यान किया ता व उनक मनसे प्रकट हा गयीं। इसा कारण वह ब्रह्माजीकी 'मानसी कन्या' भी कहलाती है। मूलरूपम दवी स्वधा मूलप्रकृतिकी अशभृता आर शुद्धस्वरूपा है। लक्ष्मीकी भाँति समस्त शुभ लक्षणाम सम्पन्न हैं इनका लीलाविग्रह नित्य मत्य आर

पुण्यमय हैं। इनकी आभा शरद चन्द्रमाके समान आह्लादता ह। ये शतदल-कमलके आसनपर विराजमान रहती ह। ये अत्यन्त साम्य तथा शान्त ह। इनक नेत्र और मुख अत्यन्त मनोरम आर कमलक समान प्रफुल्लित हैं। नित्य युवा रहनेवाली देवी स्वधाका श्वेत चम्पाक समान उज्ज्वल वर्ण है। ये रत्नमय आभूषण तथा माला धारण करता ह आर वरदा तथा कल्याणरूपिणी हैं।

पितामहने भगवती स्वधाको पितराके हाथ सोप दिया और मनुष्याको एक गोपनीय बात भी बता दी कि पितरोंके उद्दश्यसे जो भी पदार्थ अर्पण किया जाय उसमे 'स्वधा' अवश्य लगा दिया कर और तभीसे स्वधा लगाकर पितराको कव्य दिया जान लगा तब सब पदार्थ पितराको मिलने लगे।

उस समय सम्पूर्ण देवताआ मुनियो और मानवाने माता स्वधाकी सविधि भावपूर्वक पूजा एव स्तुति की। तब माता

स्वधाने सबका मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। पितामह ब्रह्माने घोषणा की कि अन्य अवसरापर ता भगवती स्वधाका पूजन हाना ही चाहिय श्राद्धक अवसरपर पहले स्वधादवीकी पूजा करक श्राद्ध करना चाहिय। इसमे दव श्रद्धाका विशष प्रीति प्राप्त हाती है और पितर भी सन्तुष्ट हाकर उपासकका अक्षय फल प्रदान कर दते हैं।

माता स्वाहा देवीकी आविर्भाव-लीला

सृष्टिक आरम्भकालका बात है, जब अव्यक्त-स्वरूपिणी दवी व्यक्तरूपम प्रकट नहीं हुई थीं उस समय ब्रह्मा आदि यज्ञकर्ता दवताआका उद्दश्य करक विष्णुरूप यज्ञमें जा हवनीय पदार्थ अर्पित करत थ वह हव्य पदार्थ उनतक पहुँच नहीं पाता था क्याकि दवी स्वाहा हा दवताओंके हव्य पदार्थ उनक आहारक रूपम उनतक पहुँचाती हैं। उदास हाकर दवता ब्रह्माजीक पास गय आर उन्हे सन्
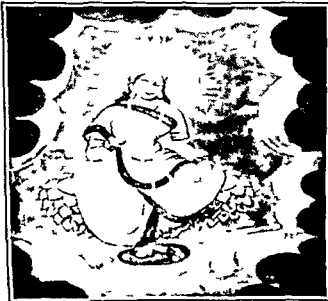
वृत्तान्त बतलाया। तब ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की ओर नारायणने उन्हें बताया कि आप मूल प्रकृतिकी आराधना करें। ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक भगवती मूलप्रकृतिका स्मरण-ध्यान किया। तब भगवतीकी कलासे प्रकट होकर सर्वशक्तिस्वरूपिणी देवी स्वाहाने ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उस समय देवी स्वाहाके लीला-विग्रहकी सुन्दर श्यामल कान्ति थी। वे प्रसन्नमुख तथा अत्यन्त सौम्यरूपमें थीं और एक विलक्षण दिव्य तेजसे व्याप्त थीं—

—भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उन भगवती स्वाहा-देवीने ब्रह्माजीसे वर माँगनेके लिये कहा।

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! आप भगवान् अग्निदेवकी दाहिकाशक्ति होनेकी कृपा करें। आपके बिना अग्नि आहुतियोंको भस्म करनेमें असमर्थ हैं इसीलिये देवताओंको अर्पित हव्य पदार्थ उन्हें प्राप्त नहीं हो पा रहा है। अम्बिके! श्रीरूपिणी आप अग्निदेवकी गृहस्वामिनी बनकर लोकपर महान् उपकार करें।

उस समय माता स्वाहा भगवान् श्रीकृष्णके अनुरागमें अनुरक्त थीं, उनके ध्यान-चिन्तनमें निमग्न थीं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्होंने स्वाहाका सम्मान किया तथा कहा कि वाराहकल्पमें नाग्नजितीके रूपमें तुम

मुझसे मिलोगी। इस समय तुम अग्निदेवकी दाहिकाशक्तिके रूपमें उनकी पत्नी बनकर देवताओंको आप्यायित करो, भक्तोंका कल्याण करो।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। देवी स्वाहाको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई, उन्होंने संसारके मङ्गलके लिये तथा देवताओंको संतृप्त करनेके लिये अग्निकी पत्नीके रूपमें स्वयंको माना। अनुकूल अवसर देखकर ब्रह्माने अग्निदेवताको भगवती स्वाहाके पास भेजा। अग्निदेवता वहाँ आये और सामवेदमें कही गयी विधिके अनुसार स्वाहाकी पूजा और स्तुति की। स्वाहा देवी अनुकूल हो गयीं। मन्त्रोच्चारणपूर्वक दोनोंका विवाह हुआ और शक्ति तथा शक्तिमान्‌के रूपमें दोनों प्रतिष्ठित होकर जगत्‌के कल्याणमें लग गये। तभीसे ऋषि-मुनि एवं द्विज मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' का उच्चारणकर अग्निमें आहुति देने लगे और वह हव्य पदार्थ देवताओंके पास पहुँचकर उनके लिये तृप्तिकारक हो गया।

इस प्रकार भगवती स्वाहादेवीका स्वरूप अत्यन्त कृपामय है। दाहिकाशक्तिके रूपमें वे अव्यक्तरूपमें रहती हैं और भक्तोंकी उपासनासे प्रसन्न होकर दिव्य मनोरम देवीके रूपमें उन्हें दर्शन देती हैं। भगवान् अग्निदेवमें जो जलानेकी तीक्ष्ण तेजोरूपा शक्ति है, वह और कोई नहीं देवी स्वाहाका ही सूक्ष्म रूप है। इनका दिव्य विग्रह मन्त्रसिद्धि-स्वरूप है इसलिये मन्त्रोंके अन्तमें स्वाहाका नाम लेकर ही यज्ञाग्निमें आहुति दी जाती है। यदि स्वाहादेवीका नाम

स्मरण न किया जाय तो मन्त्रशक्ति निष्फल ही रहती है। ये हवनीय द्रव्यका परिपाक करके देवताओंके लिये आहाररूप बना देती हैं, इसीलिये 'परिपाककरी' भी इनका एक श्रेष्ठ नाम है। देवी स्वाहाके नाम-स्मरण पूजन, ध्यान और लीला-चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय तथा परम कल्याण हो जाता है।

देवी मङ्गलचण्डीका लीला-आख्यान

सर्वमङ्गलमङ्गला देवी मङ्गलचण्डी सब प्रकारसे मङ्गल करनेवाली और अद्भुत पराक्रम, शक्ति, बल, विद्या ओज तथा परम ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हैं। ये मूलप्रकृति भगवती दुर्गाके ही लीला-रूपमे अवतरित हैं। जब त्रिपुर नामक दैत्यने तीनो लोकोमे महान् उत्पात मचा रखा था, तब भयभीत देवता भगवान् शकरकी शरणमे गये। जगत्-कल्याणार्थ भगवान् शकरका त्रिपुरासुरके साथ भयकर युद्ध हुआ। उस समय भगवान् शकरने शक्तिरूपा दुर्गाका स्मरण किया। भगवती दुर्गा मङ्गलचण्डीके रूपमे आविर्भूत हुईं और शक्तिरूपसे भगवान् शकरमे प्रविष्ट हो गयीं। विशेष शक्तिसम्पन्न हो जानेसे वे त्रिपुरको पराजित करनेमे समर्थ हो गये। भगवान् शकरने पुन भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोसे देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-आराधना की। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखामे कहे गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवतीका ध्यान किया। तभीसे सभी देवताओ, ऋषि-महर्षियो तथा मनुष्योने देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-उपासना प्रारम्भ कर दी।

देवी मङ्गलचण्डीका शुद्ध स्वरूप अत्यन्त दिव्य है। वे सुस्थिर-यौवना है। उनके ओष्ठ बिम्बफलके सदृश लाल हैं और मुखमण्डल शरत्कालीन कमलके सदृश प्रफुल्लित एव कान्तियुक्त है। इनका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल है। आँखे खिले हुए नीलकमलके समान हैं। ये देवी सबका धारण-पोषण करनेवाली हैं। ससाररूपी घोर अन्धकारमय समुद्रमे पडे हुए व्यक्तियोके लिये ये ज्योति स्वरूपा हैं। ये सम्पूर्ण विपत्तियोको ध्वस करनेवाली तथा सदा हर्ष एव मङ्गल प्रदान करनेवाली हैं। मङ्गल-ही-मङ्गल करनेके कारण और सर्वविध शक्ति प्रदान करनेके कारण इनका मङ्गलचण्डी यह नाम सार्थक हो है। इसीलिये ये मङ्गलदायिका शुभा मङ्गलदक्षा मङ्गला तथा कल्याणा कहलाती हैं। ये समस्त कल्याण-मङ्गलाकी आश्रयभूता हैं, मङ्गलाधार हैं और मङ्गलमयी हैं। भगवान् शकरने मङ्गलवारके दिन ही इनकी पूजा की थी और इनके सर्वप्रथम पूजकके रूपमें भगवान् शकर ही परिगणित हैं। इनके दूसरे उपासक भूमिपुत्र मङ्गल ग्रह हैं। मनुवशमे उत्पन्न राजा मङ्गलने भी इनकी उपासना की तथा पुन सभी स्त्रियो तथा मनुष्योके भी ये विशेष पूज्य हो गये। मङ्गलवारका दिन भगवती मङ्गलचण्डिकाकी उपासनाके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त है[१]।

देवी मनसाकी लीला-कथा

प्राचीन कालकी बात है, जब सृष्टिमे नागोका भय हो गया तो उस समय नागोसे रक्षा करनेके लिये भगवान् ब्रह्माजीने अपने मनसे एक देवीका प्राकट्य किया जो मनसे प्रकट होनेके कारण 'मनसा'के नामसे विख्यात हुईं और फिर बादमे ये महर्षि कश्यपकी कन्याके रूपमे जानी गयीं। मूलत ये प्रकृतिदेवीके ही एक अशसे समुद्भूत हैं। दिव्य योगशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण ये अपनी कुमारावस्थामें ही भगवान् शकरके धाम कैलासमे पहुँच गयीं और दिव्य हजार वर्षोंतक उन्होने महान् तप किया। भगवान् शकरने प्रसन्न होकर इन्हे उत्तम ज्ञान-योगसे सम्पन्न कर दिया सामवेदका अध्ययन कराया तथा 'मृतसजीवनी' विद्या भी प्रदान कर दी। साथ ही उन्होने वैष्णवी दीक्षा एव श्रीकृष्णके जपनीय अष्टाक्षर मन्त्र—'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नम ' का भी उपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर तपस्विनी मनसा पुष्कर क्षेत्रमे चली गयीं और वहाँ दिव्य तीन युगोतक श्रीकृष्णकी आराधनामे सलग्न रहीं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर इन्हे दर्शन दिया। उस समय सिद्धयोगिनी देवी मनसाके वस्त्र और शरीर अत्यन्त जीर्ण हो गये थे। इसी कारण कृपानिधि भगवान् श्रीकृष्णने इनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया और स्वय उनकी पूजा कर इन्हे जगत्पूज्य तथा जगद्वन्द्य होनेका वर प्रदान किया। इसके बाद शकर आदि देवताओने भी इनकी पूजा की। तभीसे ये त्रिलोकीमे सर्वत्र पूज्य बन गयीं। भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अनेको वर एव सिद्धि प्राप्तकर ये देवी मनसा (जरत्कारु) महर्षि कश्यपके पास चली आयीं।

तदनन्तर महर्षि कश्यपने अपनी कन्या जरत्कारुको

१-देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनके आख्यान तथा स्तोत्र-मन्त्रादि निरूपित हैं।

विवाह 'जरत्कारु' नामवाले ही एक महान् योगीके साथ कर दिया। ये मुनि 'जरत्कारु' भगवान् श्रीकृष्णके अंशरूप ही थे और साक्षात् कृपाके समुद्र थे। इस प्रकार मूलप्रकृति देवीकी अंशभूता भगवती मनसा (जरत्कारु) और भगवान् श्रीकृष्णके अंशभूत महर्षि जरत्कारुका दिव्य संयोग हो गया।

एक दिनकी बात है, महर्षि जरत्कारु अपनी पतिपरायणा देवी जरत्कारुके अङ्कमें सिर रखकर लेटे हुए थे। ऐसे ही उन्हें नींद आ गयी और कुछ समय बाद सायंकाल हो आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थीं, धर्मके रहस्योंको वे जानती थीं। उन्होंने मनमें विचार किया कि द्विजोंके लिये नित्य संध्या-वन्दन करनेका विधान है, यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा, क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता है, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है। यदि ऐसा हो गया तो इसमें मुझे ही निमित्त बनना पड़ेगा और यदि इन्हें जगा देती हूँ तो मुझे इनके कोपका भाजन बनना पड़ेगा, फलतः ये मेरा परित्याग कर देंगे। ऐसी शर्त विवाहसे पूर्व महर्षि जरत्कारुने रखी थी कि जिस दिन मुझे किसी कार्यसे रोका जायगा उसी दिन मैं पत्नीका परित्याग कर दूँगा। शर्तके अनुरूप ही विवाह हुआ था। आज दैवी लीलासे वह परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। पहले तो देवी जरत्कारु असमंजसमें पड़ गयीं, पर फिर उन्होंने निश्चय किया कि 'भले ही स्वामी मेरा परित्याग कर दें, लेकिन पतिके धर्मका लोप होना ठीक नहीं है।'—ऐसा निश्चय कर देवी मनसाने अपने पतिको जगा दिया। इसपर मुनि जरत्कारु क्रुद्ध हो गये, तब देवी मनसाने कहा—'प्रभो! आपका क्रोध उचित ही है, किंतु मैंने तो आपकी संध्याका लोप न हो जाय इस भयसे आपको जगाया है, यह मेरा दोष अवश्य है, इसलिये मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।' ऐसा कहकर वे बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगीं। उस समय महर्षि जरत्कारु अत्यन्त क्रोधमें थे। वे सूर्यको ही भर्त्सित करने लगे कि 'मैं संध्या न कर सकूँ और सूर्य अस्त हो जायँ, यह कैसे हो सकता है?' त्रिकाल-संध्योपासनाके प्रभावसे उन्हें असीम शक्ति एवं सामर्थ्य प्राप्त थी, वे सब कुछ करनेमें समर्थ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, अपने आराध्यमें उनकी असीम निष्ठा थी, किंतु उनके आराध्य उनकी पूजा ग्रहण किये बिना कैसे चले जायँगे, ऐसा उनका अटूट विश्वास था और इसी दृढ़ आस्थासे वे अपने आराध्यपर ही कुपित हो बैठे। अब आराध्यको अपने भक्तको मनानेके लिये प्रकट होना ही था। उसी समय संध्यादेवीको साथ ले भगवान् सूर्य उनके समीप आये और कहने लगे—

'महर्षे! आप परम शक्तिशाली हैं, आपमें तपस्याका असीम बल है, आपकी भक्ति-निष्ठा आदर्शरूप है, किंतु इस समय क्रोध करना ठीक नहीं। आपकी ये साध्वी देवी जरत्कारु महान् पतिव्रता हैं, आपमें इनकी प्राणपणसे निष्ठा है, आपकी संध्याका लोप न हो जाय इसलिये इन्होंने आपको जगा दिया, यदि ये ऐसा न करतीं तो इनके सम्बन्धमें यही कहा जाता कि इन्होंने संध्याका समय होनेपर भी अपने पतिको जगाया नहीं, अतः आप इनपर प्रसन्न रहें। आपको मुझपर क्रोध करना भी उचित नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणोंका क्रोध उनकी तपस्याको ही क्षीण कर देता है। संतोंका हृदय तो सदैव नवनीतके समान कोमल रहता है, अतः आप शान्त हो जायँ।' सूर्यके वचनोंको सुनकर महर्षि जरत्कारुको परम प्रसन्नता हुई। तदनन्तर भगवान् सूर्य यथास्थान चले गये।

इधर महर्षि जरत्कारुने विवाहके समय की हुई अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये देवी मनसाका परित्याग कर दिया। देवी मनसा शोकसे विह्वल हो गयीं। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌का स्मरण किया, उसी समय उनके विद्यादाता भगवान् शंकर, इष्ट देवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीकृष्ण तथा पिता कश्यप वहाँ उपस्थित हो गये।

अपने परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और ब्रह्मादि देवताओंका दर्शनकर जरत्कारु हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उस समय ब्रह्माजीने मुनिसे कहा—मुने! आपकी ये धर्मपत्नी

साध्वी हैं, अभी सतानसे रहित भी हैं, ऐसी अवस्थामे इनका परित्याग उचित नहीं है। अत आप इन्हे पुत्रवती होनेका सौभाग्य प्रदान करे।

तब महर्षि जरत्कारुने अपने योगबलसे देवी मनसाको सभी दिव्य लक्षणोसे सम्पन्न, महान् ज्ञानी, योगी तथा विष्णुभक्त पुत्र प्राप्त करनेका वर प्रदान किया और उन्ह भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करनेका निर्देश देकर वे तपस्या करनेके लिये चले गये।

इधर देवी मनसा अपने गुरु भगवान् शकरके धाम कैलासपर चली आयीं। वहाँ माता पार्वतीने उन्हे आश्वस्त किया और भगवान् शकरने उन्ह दिव्य उपदेश दिया। ऐस ही कुछ समय बाद एक दिन देवी मनसाने सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। उस दिन मङ्गलवार था। भगवान् शकरकी कृपासे वह बालक जन्मजात दिव्य योग-ज्ञानसे सम्पन्न था। भगवान् शकरने उस बालकके सभी सस्कार कराये और सभी विद्याओको पढाया। साथ ही 'मृत्युञ्जय' विद्याकी दीक्षा भी दे दी। चूँकि पिताके अस्त होनेके अवसरपर बालककी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये उसका 'आस्तीक' यह नाम रखा गया। इस समाचारको जानकर महर्षि जरत्कारुको भी परम प्रसन्नता हुई।

देवी मनसा अपने पुन आस्तीकको लेकर अपने पिता महर्षि कश्यपके यहाँ चली आयीं। वहाँ इस अवसरपर महान् हर्षोल्लास मनाया गया।

उन्हीं दिनोकी बात है—महाराज परीक्षित् शृगी मुनिके शापसे ग्रस्त हो गये थे कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प उन्ह काट लेगा।' शापके अनुसार तक्षकने उन्हे डँस लिया। परीक्षित्के पुत्र थे जनमेजय! पिताकी एसी मृत्यु देखकर उन्ह सर्पोपर महान् क्रोध हुआ और उन्हाने नागवशको ही समाप्त कर देनके उद्देश्यसे सर्पसत्र (नागयज्ञ)-का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मणोकी मन्त्रशक्तिक प्रभावसे प्रत्यक आहुतिपर सैकडों नाग यज्ञकुण्डमें पडकर भस्म होने लग। नागराज तक्षक जिसन राजा परीक्षित्का डँसा था डरकर इन्द्रकी शरणमें जा पहुँचा। एसी स्थितिम ब्राह्मणाने इन्द्रसहित तक्षकका यज्ञमे आहुति दनक लिय सकल्प करनेका विचार किया।

इन्द्र भयसे अधीर हो उठे। वे भगवती मनसादवीका शरणमे गये और उनकी स्तुति करते हुए अपनी रक्षाके लिय प्रार्थना करने लगे। तब देवी मनसान यागिश्रेष्ठ अपने पुत्र आस्तीकको राजा जनमेजयके पास भेजा और फिर आस्तीकक महान् प्रयत्नसे जनमेजय सर्पमत्रस विरत हा गये। ब्राह्मणान यज्ञ पूर्ण किया। इस प्रकार देवी मनसा तथा मुनिवर आस्तीकसे नागवशकी रक्षा हुई। पुन इन्द्रादि सभी देवताओंन भगवती मनसाकी अनक प्रकारसे स्तुति—प्रार्थना की।

तभीसे सभी नाग देवी मनसाकी विशेष पूजा करने लगे। नागराज शेषन इन्हे अपनी बहन बना लिया। इन्होंन नागोकी रक्षाकर उन्ह जीवनदान दिया इसलिये ये नागमाता कहलाने लगीं और नागश्वरी भी इनका नाम पड गया तथा नाग ही इनके वाहन एव शय्या भी बन गये। ये स्वय भी तपस्या करती हैं और तपस्वियोका उनकी तपस्याका फल भी देती हैं। ये सम्पूर्ण मन्त्राकी अधिष्ठात्री दवी हैं ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशित रहता है इसीलिये ये 'परब्रह्मस्वरूपा' भी कहलाती हे। 'गौरी' तथा 'जगद्गौरी' भी इनका नाम है। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनक कारण ये 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी अनन्य उपासिका हानेस ये 'वैष्णवी' नामसे अभिहित होती हैं। दारुणसे भी दारुण विषका सहार करनम परम समर्थ हानेके कारण इनका 'विषहरी' भी एक मुख्य नाम हे। इन्हे सजीवनीविद्याका ज्ञान है, अत 'मृतसजीवनी' और 'ब्रह्मज्ञानयुता' कही जाती हैं। आस्तीककी माता हैं, इसलिय 'आस्तीकमाता' कहलाती हैं, जरत्कारु नाम इन्ह भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्राप्त था और मानसी उत्पत्तिके कारण इनका 'मानसी' यह नाम ही विशेष प्रसिद्ध हो गया।

भगवती मनसाक नामाका स्मरण करनसे सर्पभयसे मुक्ति मिलती है तथा सर्पविषस रक्षा हा जाती है। वह नागाका प्रिय भाजन होकर भगवान् विष्णुका सान्निध्य भी प्राप्त कर लता है साथ ही उसक वशमे नागाका भय नहीं रहता—

'तस्य नागभय नास्ति तस्य वशोद्भवस्य च।'

(देवीभागवत ९। ४७। ८३)

अत भगवती मनसा दवीका कृपा प्राप्त करनके लिये

उनकी आराधना करनी चाहिये। सामवेदमे उनकी पूजा निरूपित है। वे महान् करुणा एव दयासे सम्पन्न हैं, भक्त उन्हे विशेष प्रिय हैं। वे सभी प्रकारके अभ्युदयोको प्राप्त करा देती हैं। उनका स्वरूप भी अत्यन्त ही दिव्य, अलौकिक एव चिन्मय है, वे विशुद्ध चिन्मय वस्त्रालकारोको धारण करती हैं। श्वेत चम्पकके समान उनकी दिव्य वर्णकान्ति है। वे अद्भुत लावण्यसे सम्पन्न हैं, सर्पोंका यज्ञोपवीत एव हार धारण करती हैं, किंतु ये सर्प भक्तोके लिये भयहेतु नहीं, अपितु प्रिय भाजन बने रहते हैं। उनका विष भक्तोके लिये अमृत बन जाता है। देवी मनसा महान् ज्ञानसम्पन्न हैं एव सिद्ध पुरुषोकी अधिष्ठात्री हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं और उन लीलाओके स्मरण-ध्यानसे परम कल्याण सध जाता है। ऐसी उन कृपामयी—लीलामयी देवी मनसाको बार-बार नमस्कार है।

देवी पृथ्वीकी लीला-कथा

भगवती वसुन्धरा या पृथ्वी प्रकृति देवीके प्रधान अशसे प्रकट हैं। ये सम्पूर्ण जगत्‌की आश्रय हैं। ये न रहे और इनकी कृपा न हो तो सारा चराचर जगत् कहीं भी ठहर नहीं सकता। 'सर्वशस्या' भी इन्हींका नाम है। सबका भरण-पोषण करनेके लिये देवी पृथ्वीका लीलारूप ही यह फैली हुई पृथ्वी है और जो पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी हैं वे भी 'पृथ्वी' नामसे ही अभिहित होती हैं। विस्तृत रूपसे भूमिके रूपमे जो फैली हुई हैं यह देवी पृथ्वीका पोषणात्मक रूप है, क्योकि पृथ्वीपर ही सब लोग टिके हुए हैं और पृथ्वीकी शस्य-सम्पदासे ही अन्नरूप प्राण उत्पन्न होता है। इतना ही नहीं, ये पृथ्वीदेवी अपने गर्भमे अनन्त ऐश्वर्योंको रखे हुए हैं, इसीलिये लोग इन्हे 'रत्नगर्भा' और 'रत्नाकरा' भी कहते हैं। ये कश्यपकी पुत्री हैं। उनका एक देवी-रूप है जो भक्तोके सामने व्यक्त होता है और उनपर अनन्त कल्याणकी वृष्टि करता है। इन पृथ्वीदेवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्ज्वल है। मुख ऐसा जान पडता है, मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोम ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलकारोसे इनकी अनुपम शोभा होती है। समस्त रत्न इनके ऊपर तथा अदर भी विद्यमान हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनका मुखमण्डल अत्यन्त सौम्य तथा मधुर मन्दस्मितहाससे सुशोभित रहता है। ये भक्तोंको वर देनेके लिये सदा उद्यत रहती हैं। इनका विग्रह पुण्यमय तथा शस्यमय है।

सृष्टिके समय ये प्रकट होकर जलके ऊपर स्थिर हो जाती हैं और प्रलयकालके उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चली जाती हैं, यह इनकी विलक्षण लीला है। कल्प-भेदसे दूसरी कथा यह है कि जलसे ढकी इन पृथ्वीदेवीका मधु-कैटभके मेदसे स्पर्श हुआ इस कारण इनका 'मेदिनी' यह नाम पड गया। पृथ्वीदेवीकी आविर्भाव और तिरोधानलीला युगो, मन्वन्तरो तथा कल्प-कल्पान्तरोसे भिन्न-भिन्न रूपामे होती ही आयी है। इस दृष्टिसे इनका अव्यक्त स्वरूप नित्य एव शाश्वत है।

वाराहकल्पकी बात है। जब हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वीका चुराकर रसातल चला गया तब भगवान् श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको ले आये और उसे जलपर इस प्रकार रख दिया, मानो तालाबमे कमलका पत्ता हो। इसके बाद ब्रह्माजीने उसी पृथ्वीपर मनोहर विश्वकी रचना की। उस समय वाराहरूपधारी श्रीहरिने परम सुन्दरी देवीके वेषमे उपस्थित पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीका सम्मान किया और वे 'विष्णुप्रिया'के नामसे जानी गयीं। भगवान्‌ने परम साध्वी पृथ्वीका वेदकी काण्वशाखाके मन्त्रोंद्वारा स्वय पूजन किया और जगत्पूज्य होनेका उन्हे वर प्रदान किया। तबसे पृथ्वीदेवीकी सभी पूजा करने लगे।

यथासमय पृथ्वीदेवीका मङ्गल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ,

जो ग्रहामे प्रतिष्ठित हुआ। इसीलिये वह भौम, भूमिपुत्र या भूमिज कहलाया। इस प्रकार पृथ्वीदवी अपने एक रूपसे ससारके रूपम सर्वत्र फैली हुई हैं और दूसरे रूपसे देवी-रूपमे स्थित रहती हैं। इन पृथ्वीदेवीके दानकी बडी महिमा है, इससे पृथ्वीदेवीकी कृपा प्राप्त होती है और पृथ्वीपर शास्त्रविपरीत अभद्र व्यवहार अथवा आचरण करने पृथ्वीदेवीको अप्रसन्नता होती है तथा घोर नरकोकी प्राप्ति होती है, इसलिये पृथ्वीदेवीका सदा सम्मान करना चाहिये '*ॐ ह्रीं श्रीं वसुधायै स्वाहा*' यह पृथ्वीदेवीका जपनीय मन्त्र है।

देवीके शताक्षी, शाकम्भरी तथा दुर्गा नामवाले लीला-विग्रहोंकी कथाका चिन्तन

प्राचीन समयकी बात है, दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति बडी ही भयकर थी। उसका जन्म हिरण्याक्षके वशमे हुआ था तथा उसके पिताका नाम रुरु था। ब्रह्माजीके वरदानस दुर्गम महाबली हो गया था। अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर उसने चारो वेदोको अपने हाथम कर लिया और भूमण्डलम अनेक उत्पात शुरू कर दिये। वेदोके अदृश्य हा जानेपर सारी धार्मिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं, सभी यज्ञ-यागादि बद हो गये तथा देवताआको यज्ञभाग मिलना बद हो गया। मन्त्र-शक्तिके अभावमे ब्राह्मण भी अपने पथसे च्युत हो गये। नियम धर्म, जप, तप सध्या पूजन तथा दवकार्य एव पितृकार्य सभी कुछ लुप्त-सा हो गया। धर्म-मर्यादाएँ विच्छृखलित हो गयी। न कहीं दान होता था न यज्ञ होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोतकके लिये वर्षा बद हो गयी। तीनो लोकोमे हाहाकार मच गया। सब लोग दु खी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, बावली, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। प्राणी भूख-प्याससे बेचैन होकर मृत्युको प्राप्त होने लगे।

देवताआ तथा भूमण्डलके प्राणियाकी ऐसी दशा देखकर दुर्गम बहुत खुश था परतु इतनेपर भी उसे चैन न था। उसन अमरावतीपर अपना अधिकार जमा लिया। देवता उसके भयस भाग खडे हुए, पर जायँ कहाँ सब ओर तो दुर्गमका उत्पात मचा हुआ था। तब उन्हें शक्तिभूता सनातनी भगवती महेश्वरीका स्मरण आया— क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति'। वे सभी हिमालय पर्वतपर स्थित महेश्वरी योगमायाकी शरणम पहुँचे। ब्राह्मण लाग भी जगत्-कल्याणार्थ दवीकी उपासना तथा प्रार्थना करनेके लिये उनकी शरणम आये।

देवता कहने लगे—'महामाये! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो! माँ! जैसे आपन शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष चण्ड-मुण्ड मधु-कैटभ तथा महिषासुरका वधकर ससारकी रक्षा की ह, देवताओका कल्याण किया है, उसी प्रकार जगदम्बिके! इस दुर्गम नामक दुष्ट दत्यसे हम सबकी रक्षा करो। माँ! घोर अकाल पड गया है, हम आपकी शरणमे हैं। हे देवि! आप कोई लीला दिखाय, नहीं तो यह सारा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायगा। महेशानि! आप शरणागतोकी रक्षा करनेवाली हैं, भक्तवत्सला हैं समस्त जगत्‌की माता हैं। माँ! आपम अपार करुणा हे, आपके एक ही कृपा कटाक्षसे प्रलय हो जाता है, आपके पुत्र महान् कष्ट पा रहे हैं। फिर हे मातेश्वरि! आज आप क्यों विलम्ब कर रही हैं हम दर्शन दे।' ऐसी हा प्रार्थना ब्राह्मणाने भी की।

अपने पुत्रोकी यह हालत माँसे दखी न गयी। भला पुत्र कष्टमे हो तो माँको कैस सहन हो सकता है, फिर देवी तो जगन्माता हैं, माताआकी भी माता हैं, उनके कारुण्यकी क्या सीमा? करुणासे उनका हृदय भर आया। वे तत्क्षण ही वहाँ प्रकट हो गयीं। उस समय त्रिलोकीकी ऐसी व्याकुलताभरी स्थिति देखकर कृपामयी माँकी आँखासे आँसू छलक आये। भला दो आँखोसे हृदयका दु ख कैसे प्रकट होता मैंने सैंकडा नेत्र बना लिये इसीलिये आप शताक्षी (शत-अक्षी) कहलायीं। नील-नील कमल-जैसी दिव्य आँखाम माका ममता आँसू बनकर उमड आयी। इसी रूपमें माताने सबको अपने दशन कराय। उनका मुखारविन्द अत्यन्त ही मनारम था वे अपन चारा हाथाम कमल-पुष्प तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिय हुई थीं। करुणार्द्रहृदया भगवती भुवनेश्वरी प्रजाका कष्ट दखकर लगातार नौ दिन और नौ रात राती रहीं। उन्होंने अपने सैंकडा नत्रासे अश्रुजलकी सहस्रा धाराएँ प्रवाहित कीं।

धन्य है माँ आपकी करुणामयी लीला! आपकी करुणाका थाह कौन पा सकता है? माँकी अनन्त करुणाका देखकर भगवान् व्यासदेवजीने तो यहाँतक कह दिया कि 'इस पृथ्वीपर महेश्वरी माता शताक्षीकी तरह कोई दयालु हो ही नहीं सकता। वे अपने बच्चाका कष्ट देखकर नौ दिनोतक लगातार रोती ही रहीं'—

न शताक्षीसमा काचिद् दयालुर्भुवि देवता।
दृष्ट्वारुदत् प्रजास्तप्ता या नवाह महेश्वरी॥
(शिवपु० उमा० ५०। ५२)

देवी शताक्षीके सैकडा नत्रोंसे जो अश्रुजलकी सहस्रा धाराएँ प्रवाहित हुईं उससे नो दिनातक त्रिलोकीम महान् वृष्टि होती रही। इस अथाह जलसे पृथ्वीकी सारी जलन मिट गयी। सभी प्राणी तृप्त हो गय। सरिताआ और समुद्रोम अगाध जल भर गया। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। उस समय भगवतीने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल देवताआ तथा अन्य सभीको अपन हाथसे बाँटे तथा खानेके लिय दिय और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियाके लिये उनके योग्य भोजन दिया।

अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाका (भोज्य-सामग्रिया)-द्वारा उस समय दवीने समस्त लाकाका भरण-पापण किया इसलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

दवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता ब्राह्मण और मनुष्यासहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गय। जीवलोक हर्षम भर गया।

उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ।' सभा देवता समवेत स्वरम बोल—'देवि! आपने सब लोगाको सतुष्ट कर दिया हे। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हम दे दीजिय।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताआ! आप लाग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदाको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बड प्रसन्न हुए और व देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानाको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि हाने लगी। तीना लोकोम महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसक विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये है, यह देखकर उस दैत्यने सना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलाकको भी घेर लिया। एक बार पुन देवता सकटमे पड गय। उन्हाने पुन मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ ता सब दख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षाम थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपन दिव्य तेजोमण्डलस तीना लोकोको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता मनुष्य आदि उस घरम सुरक्षित हो गये। स्वय देवी घरस बाहर आकर दुर्गमके सामने खडी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये सनद्ध था। क्षणभरम ही लडाइ ठन गयी। दोना ओरसे दिव्य बाणाकी वर्षा हान लगी। इसी बीच दवीके श्रीविग्रहस काली तारा छिन्नमस्ता श्रीविद्या भुवनेश्वरी भैरवी बगला धूम्रा त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं जो अस्त्र-शस्त्र लिय हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन [illegible] मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था [illegible] व दिव्य आयुधास सुसज्जित थीं। उन [illegible] भयकर युद्ध हुआ। मातृ[illegible] दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस [illegible] युद्ध [illegible]। दैत्य-सनाका विनाश [illegible] [illegible] दुर्गम सामने आ डटा। वर [illegible]

और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमे बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोंकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ हो गयीं। उन्होने भी बाणोका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयकर हुआ किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पद्रह बाण छोडे। चार बाणोसे रथके चारो घोड गिर पड। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोने दुर्गमके दोनो नेत्रोको तथा दो बाणोने उसकी भुजाओको बींध डाला।
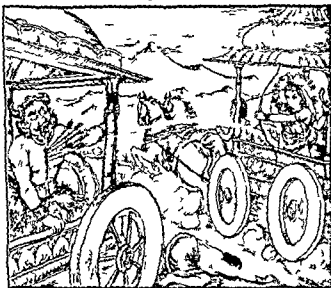
एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमे जाकर घुस गये। रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही अपने प्राणोसे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमे प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं। स्वय देवीने भी अपने इस नामकी प्रसिद्धिके विषयमे कहा है—

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्य महासुरम्॥
दुर्गा देवीति विख्यात तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४९-५०)

उन्होने वेदोको पुन देवताओ तथा ब्राह्मणोको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका सकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। माँकी कृपासे अभिभूत हो सभी अनेक प्रकारसे देवी दुर्गाकी स्तुति-प्रार्थना करने लगे। पुन देवीने अनेक आशीर्वाद दिये और सभीको निर्भय बना दिया।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत तेरह अध्यायोमे जो देवी माहात्म्य वर्णित है, वह सब भगवती दुर्गाकी ही महिमामें पर्यवसित है। वहाँ देवता भगवतीकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'माँ दुर्गे। आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हे परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दु ख-दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि। आपके सिवा दूसरी कौन है जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो'—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो
स्वस्थै स्मृता मतिमतीव शुभा ददासि।
दारिद्र्यदु खभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४। १७)

भगवतीके स्वरूपका वर्णन

ध्यानम्—

ॐ सिहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजै
शङ्ख चक्रधनु शराश्च दधती नेत्रैस्त्रिभि शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट हैं जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओमे शख चक्र धनुष और बाण धारण करती हैं तीन नेत्रोसे सुशोभित होती हैं जिनके भिन्न भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबद हार, ककण खनखनाती हुई करधनी और रुन-झुन करते हुए नूपुरोसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोमे रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हो।

एक बार सभी देवता देवीके समीप गये और बड़े ही विनयपूर्वक पूछने लगे—'हे महादेवि। आप कौन हैं? इस बात [illegible] कृपा करे।' इसपर देवीने कहा—'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृतिपुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है'—

'अह ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्त प्रकृतिपुरुषात्मक जगत्। शून्य चाशून्य च॥'

इस प्रकारसे देवीने अपने सूक्ष्म तथा स्थूल और सूक्ष्मसे भी पर अपने परात्पर स्वरूपका वर्णन करते हुए बताया कि 'जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गा

नामसे प्रसिद्ध हैं'—

यस्या परतरः नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥

(दुर्गा० देव्यथर्वशीर्ष २४)

भगवती शाकम्भरी नामवाले जिस लीलास्वरूपका पूर्वमें वर्णन हुआ है, वे ही शाकम्भरी देवी शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं—

शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता॥[१]

(दुर्गा मूर्तिरहस्य १५)

दुर्गासप्तशतीमे देवताओंकी प्रार्थनापर देवीने उन्हें बताया कि 'जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजा रूपमें प्रकट होऊँगी और सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, अत मनुष्य 'शताक्षी'-नामसे मेरा कीर्तन करेंगे'—

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभि सस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥
तत शतेन नेत्राणा निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजा शताक्षीमिति मा तत ॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४६-४७)

इसी प्रकार अपने शाकम्भरी नामवाले लीला-विग्रहके विषयमे देवीने बताया—

'देवताओ। उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त ससारका भरण-पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे। ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी'के नामसे मेरी ख्याति होगी—

ततोऽहमखिल लोकमात्मदेहसमुद्भवै ।
भरिष्यामि सुरा शाकैरावृष्टे प्राणधारकै ॥
शाकम्भरीति विख्याति तदा यास्याम्यह भुवि।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४८-४९)

देवी शाकम्भरीके शरीरकी कान्ति नीले रंगकी है। उनके नेत्र नील कमलके समान हैं। नाभि गम्भीर है तथा त्रिवलीसे विभूषित कटिभाग सूक्ष्म है। उनका वक्ष स्थल उन्नत एव सुडौल है, वे परमेश्वरी कमलमे निवास करनेवाली हैं और हाथोंमे बाणोंसे भरी मुष्टि कमल शाकसमूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं। वह शाकसमूह अनन्त मनोवाञ्छित रसोंसे युक्त, क्षुधा, तृषा (प्यास) और मृत्युके भयको नष्ट करनेवाला तथा फूल पल्लव, मूल एव फलो आदिसे सम्पन्न है। वे शोकसे रहित दुष्टोंका दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्तिको शान्त करनेवाली हैं। उमा गौरी, सती चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं। जो मनुष्य शाकम्भरीदेवीकी स्तुति, ध्यान जप पूजा और वन्दन करता है वह शीघ्र ही अन्न, पान एव अमृत-रूप अक्षय फलका भागी होता है—

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन्।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृत फलम्॥

(दुर्गा मूर्तिरहस्य १७)

देवी रक्तदन्तिका, भीमा, भ्रामरी एवं नन्दा-रूप विग्रहोके लीला-आख्यान

देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योंका वध करके ससारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्योंसे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्व
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३)

शरणागतकी पीडा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न

१-शाकम्भरी शताक्षी और दुर्गा—इन तीनों स्वरूपोंकी अभिन्नताका वर्णन शिवपुराण (उमासंहिता अ० ५०) तथा देवी-भागवत (७। २८)-में भी हुआ है।

हाओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर-जगत्की अधीश्वरी हो।

हे देवि! तुम्हीं इस जगत्का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो तुम्हें नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। १०)

हे देवि! जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं—

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। २९)

हे जगन्मातः! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोंमें विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकानां वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपोंमें आविर्भूत होकर दुष्टोंसे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमें बताया—

अत्यन्त भयंकर-रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी। उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाड़िम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे—

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४५)

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयंकर है किंतु वह केवल दुष्टोंके लिये ही है। भक्तोंके लिये तो उनका सौम्य शान्त एवं मनोरम लीला-रूप ही प्रकट होता है। वे सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं। वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र नेत्र सिरके बाल तीखे नख और दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हें रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तकेशा रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तदशना तथा रक्तदन्तिका आदि नामोंसे कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिके प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी रक्तदन्तिका अपने भक्तोंपर स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं—

'पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम्॥'

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य ६)

तथा—

तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य ११)

देवी रक्तदन्तिकाका आकार वसुधाके समान विशाल है। वे सबकी मातृरूपा हैं। सभी रक्तदन्तिका माताके पुत्र हैं। इसीलिये माता अपने पुत्रोंको अपना अमृतके समान आनन्ददायी दुग्ध पिलाकर सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करती हैं। वे अपने चार भुजाओंमें खड्ग पानपात्र मुसल और हल धारण करती हैं। रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी भी इन्हींका नाम है। इन्होंने सम्पूर्ण चराचर-जगत्को व्याप्त कर रखा है।

जो भक्तिपूर्वक देवी रक्तदन्तिकाका पूजन स्तवन ध्यान, वन्दन करता है वह भी चराचर-जगत्में व्याप्त हो जाता है—

'इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्॥'

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य १०)

देवी भीमाका आख्यान

एक बार भगवतीने हिमालयपर रहनेवाले मुनियोंकी

करनेके लिये अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसोका वध किया। उस समय मुनियाने भक्तिपूर्वक वडे ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण देवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयमे देवीने देवताआसे कहा—

पुनश्चाह यदा भीम रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षासि भक्षयिष्यामि मुनीना त्राणकारणात्।
तदा मा मुनय सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय ॥
भीमा देवीति विख्यात तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ५०—५२)

भीमादेवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढे और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बडे-बडे हैं। वे अपने हाथामे चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं, वे ही एकवीरा कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती हैं।

भगवती भ्रामरीदेवीकी लीलाएँ

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका भगवती जगदम्बाकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं, मङ्गलकारिणी हैं तथा आनन्ददायिनी हैं। उनके अनेक लीला-विग्रहाम भ्रामरी भी एक मुख्य विग्रह है। भ्रामरीदेवीकी कथा इस प्रकार है—

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताआसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमे रहता था। उसके मनम देवताओको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी अत वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमाका पालन करते हुए उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं जिससे देवलोकके देवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया। सभी दवता ब्रह्माजीके पास गये और सारा वृत्तान्त उन्हे निवेदित किया। देवताआकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्रीदेवीको साथ ले हसपर बैठे और उस स्थानपर गये जहाँ दानव अरुण तपमे स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बडी तीव्र थी। उसकी तपस्यास प्रसन्न हा ब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलमें दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा—

उसने अनेक प्रकारसे स्तुति की और अमर होनेका वर माँगा। परतु ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! ससारम जन्म लनेवाला *अवश्य* मृत्युको प्राप्त होगा अत तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बोला—'प्रभा! यदि एसी बात हे तो मुझे यह वर देनेकी कृपा कर कि—'मैं न युद्धमे मरूँ न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और दो पैर तथा चार पैरोवाला काई भी प्राणी मुझे न मार सके। साथ ही मुझे ऐसा बल दीजिये कि मे देवताआपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर *अरुण दानव विलक्षण* वर प्राप्तकर उन्मत्त हा गया। उसन पातालसे सभी दानवाको बुलाकर विशाल सेना तयार कर ली और स्वर्गलोकपर चढाई कर दी। वरके प्रभावसे देवता पराजित हो गये। देवलोकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारके रूप बना लेता था। उसन तपस्याके प्रभावसे इन्द्र सूर्य, चन्द्रमा यम अग्नि आदि देवताओका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया आर सबपर शासन करने लगा।

देवता भागकर *अशरणशरण आशुतोष भगवान्* शकरकी शरणमे गये और अपना कष्ट उन्ह निवदित किया। उस समय भगवान् शकर बडे विचारमे पड गये। वे सोचने लग *कि* ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानस यह दानव

अजेय-सा हो गया है, यह न तो युद्धमे मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है और न किसी पुरुषसे। वे बडी चिन्तामे पड गये और उसके वधका उपाय सोचने लगे।

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोका कार्य करनेमे समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सके। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओको सारा समाचार बताया। पुन सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोडो सूर्योके समान प्रकाश फैल रहा था। असख्य कामदेवोसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होने रमणीय वस्त्राभूषणोको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोसे युक्त पुष्पोकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारो ओरसे असख्य भ्रमरोसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोसे भरी हुई थी।[१]

उन देवीका दर्शनकर देवता पुन स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि स्थिति और सहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योति स्वरूपिणी एव भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी पीताम्बरा, भैरवी मातगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वाहा-स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी देवि! आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज और वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोको मारकर ससारको विनाशमे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको हमारा नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोसे वेष्टित होनेके कारण आपने 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, हे भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्रणाम करते हैं। बार-बार नमस्कार करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या तत स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्य नित्यमेव नमो नम ॥

(देवीभागवत १०। १३। ११)

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवताओने ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पीडासे छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! आप सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा करनेके लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दानवने वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोसे मरूँ और न चार पैरवालोसे मेरा यह भ्रमररूप छ पैरोवाला है इसीलिये भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि मैं न युद्धमे मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा यह भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग करेगा। साथ ही उसने मनुष्य देवता आदि किसीसे भी न मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है और न देवता हो। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा कहकर भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोको तथा अपने चारों ओर स्थित भ्रमरोको भी प्रेरित किया असख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' करते उस दिशामे चल पडे जहाँ अरुण दानव स्थित था।

१-मार्कण्डेयपुराणमें बताया गया है कि भ्रामरीदेवीकी कान्ति विचित्र (अनेक रगकी) है। वे अपने तेजोमण्डलके कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अङ्गराग भी अनेक रगका चित्र-विचित्र आभूषणोंसे विभूषित है। चित्रभ्रमरपाणि और महामारी आदि नामोंसे उनकी महिमाका गान किया जाता है—

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्। चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता॥
चित्रभ्रमरपाणि सा महामारीति गायते। (श्रीदुर्गासप्तशती मूर्तिरहस्य २०-२१)

उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। आकाश, पर्वत शृंग, वृक्ष, वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। भ्रमरोंके कारण सूर्य छिप गया। चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लीला थी। बड़े ही वेगसे उड़नेवाले उन भ्रमरोंने दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे दैत्योंके शरीरमें चिपक गये और उन्हें काटने लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लगे। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमरोंका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यने बहुत प्रयत्न किया किंतु वह भी असमर्थ ही रहा। थोड़े ही समयमें जो दैत्य जहाँ था वहीं भ्रमरोंके काटनेसे मरकर गिर पड़ा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रहे। देवीने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लीला दिखायी कि ब्रह्माजीके वरदानकी भी रक्षा हो गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवी सेनाका संहार भी हो गया।

इस प्रकारका अद्भुत कार्य करके वे सभी भ्रमर देवीके पास लौट आये और उन्हींमें प्रतिष्ठित हो गये तथा कुछ देवीके आभूषण रूपमें स्थित हो गये। देवता जय-जयकार करने लगे। ऐसी आश्चर्यजनक लीला देखकर वे कहने लगे—'भगवती महामायाके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है।' पुनः अनेक प्रकारसे स्तुतिकर तथा देवीका आशीर्वाद प्राप्तकर वे देवगण यथास्थान प्रस्थान कर गये। संसारके सभी प्राणी सुखी हो गये। और देवीने भी अपनी भ्रामरी-लीलाका संवरण कर लिया।

देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

देवी नन्दाकी महिमा और कृपा-लीला विलक्षण ही है। इनका कृपामय विग्रह भक्तोंके लिये परम आराध्य है। देवी नन्दाका ही दूसरा नाम नन्दजा है और इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है विन्ध्यवासिनी। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली होनेसे ये 'नन्दा', नन्दगोपकी कन्या होनेके कारण 'नन्दजा' और विन्ध्याचलपर निवास करनेके कारण 'विन्ध्यवासिनी' कहलाती हैं। इनके आविर्भावकी अनेक लीला-कथाएँ हैं, जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

मार्कण्डेयपुराण जो भगवती पराम्बाकी महिमा एवं आराधनामें पर्यवसित है, उसके देवी-माहात्म्यमें स्वयं भगवती अपने आविर्भावके विषयमें देवताओंको बताती हुई कहती हैं कि—

'देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उन दोनों असुरोंका नाश करूँगी'—

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४१-४२)

भगवती नन्दाके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं। उनकी चारों भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंखसे सुशोभित रहती हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है कि कंसके भयसे त्रस्त वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपके घरमें गये। वहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर देवी यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें चले आये और पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्याको जब मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें विराट्‌रूपमें स्थित हो गयी। विराट्‌रूपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालंकारोंको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नोंसे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें वे धनुष, बाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमें वे एक दिव्य तेजोमण्डलसे व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हो

रही थीं। समस्त देवता सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर एवं ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट्रूप वसुदेव-देवकीके लिये तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद था, किंतु कंसको वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड़ रही थीं।

उस योगमायाने आकाशवाणीमें कहा—'अरे मूर्ख कंस! तुम मुझे क्या मारेगा? तुम्हें मारनेवाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है, अपना भला चाहता है तो भगवान्‌की शरण ले और अब निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वतपर जाकर स्थित हो गयीं।

इस प्रकारकी लीला-कथाओंको प्रदर्शित करनेवाली भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवी भक्तोंका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली हैं, इन्हें 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुतः ये भगवान्‌की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्योंसे सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिंह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी अपने समग्र रूपसे प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोणके रूपमें पूजित होती हैं। भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करनेवालोंके अधीन तीनों लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपामयी देवी नन्दाको बार-बार नमन है।—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य १)

भगवती सरस्वतीकी लीला-कथा

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।

सम्पूर्ण जगत्‌की कारणभूत आद्या शक्ति परमेश्वरीकी अभिव्यक्ति तीन रूपोंमें होती है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इनकी मूल प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे ही विशुद्ध सत्त्वगुणके अंशसे महासरस्वतीके रूपमें प्रकट होती हैं। इनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है। इनके हाथोंमें अक्षमाला, अंकुश वीणा तथा पुस्तक शोभा पाती है। महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती आर्या ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये इनके नाम हैं। ये वाणी और विद्याकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। ऋग्वेदमें वाग्देवीका नाम सरस्वती बताया गया है। इनके तीन स्थान हैं—स्वर्ग पृथ्वी और अन्तरिक्ष। स्वर्गकी वाग्देवीका नाम भारती पृथ्वीके वाग्देवीका नाम इला और अन्तरिक्षवासिनी वाग्देवीका नाम सरस्वती है। तन्त्रशास्त्रमें प्रसिद्ध तारादेवीका नाम भी सरस्वती है। तन्त्रोक्त नीलसरस्वतीको पीठशक्तियोंमें भी सरस्वतीका नाम आया है। तारिणीदेवीका एक मूर्तिका नाम भी सरस्वती है। सरस्वतीदेवी सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करनेवाली तथा बोधस्वरूपिणी हैं। इनकी उपासनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये संगीत-शास्त्रकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। ताल स्वर, लय, राग-रागिनी आदिका प्रादुर्भाव भी इन्हींसे हुआ है। सात प्रकारके स्वरोंद्वारा इनका स्मरण किया जाता है इसलिये ये स्वरात्मिका कहलाती हैं। सप्तविध स्वरोंका ज्ञान प्रदान करनेके कारण इनका नाम सरस्वती है।

'देवीभागवत'में लिखा है सरस्वतीदेवी भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वाके अग्रभागसे प्रकट हुई हैं। श्रीकृष्णने उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित किया। श्रीकृष्णने ही संसारमें सरस्वतीकी पूजा प्रचारित की। पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वतीको भगवान्के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्तःपुरमें पधारे उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्को आया देख तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्की ओर देखा। भगवान्ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसा ही स्नेहपूर्ण दृष्टिसे हँसकर दिया फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्तःपुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गङ्गाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गङ्गाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गङ्गाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गङ्गाने भी सरस्वतीको शाप दिया 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गङ्गाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुनः अन्तःपुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी, अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारतभूमिमें अंशतः अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरमें ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी अतः ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्कर तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वती नदीका स्मरण किया। सरस्वतीदेवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'

जीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बडा भय हाथ जोडकर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके तालम रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती, किंतु नाज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है, र इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। उसी सरोवरमे आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने नयानक सर्पोको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना, जिससे सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदश दिया बडवानलको अपने प्रवाहमे ले जाकर समुद्रमे ' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्ह उस तये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! भूतलपर नदीरूपम प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोके भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निका ल तो स्वय अपने शरीरके जलनका डर ह।' ब्रह्माजीने तुम्हे जैसे सुगमता हो उसी प्रकार कर लो। यदि सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे भूतलपर प्रकट न होना साथ ही जहाँ तुम्हे का ताप असह्य हो जाय वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमे हा जाना। इससे तुम्हार शरीरपर उसके तापका हीं पडेगा।'

जीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी —गायत्री सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर पर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप हाकर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिम कच्छप और ग्राह ल-जन्तु भी प्रकट हा गय। वडवानलको लेकर व आर प्रस्थित हुईं। जात समय वे धरतीका भेदकर मार्गसे ही यात्रा करन लगीं। जब व अग्निक तापस जातीं ता कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हा जाया थीं। इस प्रकार जात-जात व प्रभासक्षेत्रम पहुँचीं। र तपस्वी मुनि कठार तपस्याम लग थ। इन्हान पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीका बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियाकी अवहेलना करनेस भी शापका भय था, अत उन्हाने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे ता वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारा ऋषियाको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नाको दूर करती हुई अन्तम समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमे कवित्वशक्ति हाकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती याग्य पात्रका खोजमे बाहर निकलीं। उन्हाने ऊपरके सत्यादि लोकोम भ्रमण करके देवताओम पता लगाया तथा नीचेके साताे पातालामे घूमकर वहाँके निवासियाम खोज की किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसधानम पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वतीदेवी भारतवर्षम भ्रमण करन लगीं। घूमत-घूमते वे तमसा नदीके तीरपर पहुँचा। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्याके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें हा उनका दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पडी जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हा पख फडफडाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पाडासे तडप रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बडे आर्तस्वरमे 'च-च' कर रही थी। पक्षीके उस जाडकी यह दयनीय दशा दखकर दयालु महर्षि अपन सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठ। उनके मुखस तुरत ही एक श्लाक निकल पडा जा इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादकमवधी काममाहितम्॥

यह श्लाक सरस्वतीकी हा कृपाका प्रसाद था। उन्हान महर्षिका दखत ही उनकी असाधारण यायता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था अत उन्हींके मुखम उन्हान सवप्रथम प्रवश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीको प्रणाम हो

उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनक हदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था—'शोक श्लोकत्वमागत '। सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' के नामसे ससारम विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाआसे जगत्‌का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्या-रूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। य मूलत भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अशत नदी और ब्राह्मी रूपम रहती हैं। य ही गारीक शरीरस प्रकट हाकर 'कौशिकी' नामस प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्हाने ससारम सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिम इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन है। यहाँ सक्षेपस ही इनके लीला-कथाका परिचय दिया गया है।

जगज्जननी लक्ष्मीकी प्राकट्य-लीला

पद्मालया पद्मकरा पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं। ये ही समस्त विकृतियाकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है। तीना गुणोकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी इनसे भिन्न नहीं है। स्थूल सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य अथवा व्यक्त, अव्यक्त सब इन्हींके स्वरूप हैं। ये ही सच्चिदानन्दमयी साक्षात् परमेश्वरी हैं। यद्यपि अव्यक्तरूपस ये सर्वत्र व्यापक हैं तथापि भक्तोपर अनुग्रह करनेक लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं। इनके उस श्रीविग्रहकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके सदृश है। ये नित्य सनातन होती हुई भी लीलाके लिये अनेक रूपोमे प्रकट होती रहती हैं। 'देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि योनियोमे जो कुछ पुरुषवाची है, वह सब भगवान् श्रीहरि हैं और जो कुछ स्त्रीवाची है, वह सब श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है'—

देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरि ।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥
(वि०पु० १। ८। ३५)

यों तो महालक्ष्मी ही जगज्जननी है, ब्रह्मा विष्णु आदि देवता भी इन्हींसे प्रकट हाते हैं तथापि ये अपने एक-एक स्वरूपसे ब्रह्मा विष्णु आदिका सवाम भी रहती हैं। लक्ष्मीकी अभिव्यक्ति दो रूपामे देखी जाती है—श्रीरूपम और लक्ष्मीरूपमे। ये दो होकर भी एक है और एक होकर भी दो। दोनां ही रूपोसे ये भगवान् विष्णुकी पत्नियाँ हैं। श्रुति भी कहती है—'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।' श्रीदवीको कहीं-कहीं 'भूदवी' भी कहते हैं। इस प्रकार लक्ष्मीके दो स्वरूप हैं—एक तो सच्चिदानन्दमया लक्ष्मी जो श्रीनारायणस अभिन्न हैं, सदा उनके वक्ष स्थलम वास करती है और कभी उनसे विलग नहीं होतीं। दूसरा रूप है भौतिक या प्राकृत सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री दवीका। यही श्रीदवी या भूदेवी हैं। ये भी अनन्यभावस भगवन्नारायणकी ही सवाम रहती हैं। उक्त भौतिक या प्राकृत सम्पत्ति स्वरूपत जड है किंतु उसे भी 'श्री' या 'लक्ष्मी' कहा जाता है। यह प्रयाग ओपचारिक है मुख्य नही। इस जड-सम्पत्तिपर भिन्न-भिन्न समयमे भिन्न-भिन्न व्यक्तियाका अधिकार होता रहता ह। यह कभी एकको हाकर नहीं रहती कहीं भी स्थिर नही रहती। इसीलिय लक्ष्मीको सर्वभोग्या नीचमेध्या, चञ्चला चपला बहुगामिनी आदि कहकर आक्षेप किया जाता ह। यहाँ यह बात ध्यानम रखनकी है यह निन्दा अथवा आक्षप जड-सम्पत्तिका लक्ष्य करक ही किया जाता ह। साक्षात् चिन्मयी देवी श्रीलक्ष्मीजीका नहीं। वे ता पतिप्राणा हैं। सनातन भगवान्‌की सनातन अनपायिनी शक्ति ह। उनका जीवन नित्य-निरन्तर भगवान्‌की सवाम ही व्यतीत होता ह। वे भगवान्‌क सिवा दूसरका न दखती हैं, न जानती हैं। यह बात अवश्य है कि वह जड-सम्पत्ति उनक अधिकारम रहती है। जिसे भगवान् देना चाहत हैं या जिसपर लक्ष्मीकी कृपा हा जाती है उस यदि आवश्यकता हा ता य जड-सम्पत्ति प्रदान करती हैं। इन्हं कमल अधिक प्रिय ह। य कमलवनम निवास करता हैं कमलपर बठती हैं आर हाथम भी कमल धारण किय रहती हैं। सत्र सम्पत्तियाकी अधिष्ठात्रा श्रादवी

शुद्ध सत्त्वमयी हैं। इनके पास लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहकार आदि दोषाका प्रवेश नहीं है। ये स्वर्गम 'स्वर्ग-लक्ष्मी,' राजाओंके यहाँ 'राज-लक्ष्मी,' मनुष्योके घरोम 'गृह-लक्ष्मी,' वणिग्-जनाके यहाँ 'वाणिज्य-लक्ष्मी' तथा युद्धमे विजेताआंके पास 'विजय-लक्ष्मी' के रूपम रहती हैं।

पतिप्राणा चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताआकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्हाने भृगुकी पुत्रीरूपमे अवतार लिया था, इसलिय इन्ह 'भार्गवी' कहते है। समुद्र-मन्थनक समय ये ही क्षीरसागरस प्रकट हुइ थीं, इसलिय इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। ये पद्मिनी विद्याकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। तन्त्राक्त नील-सरस्वतीकी पीठ-शक्तियामे भी इनका नाम आता है। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलाम योग देती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणासे सुशोभित थी, इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपम अवतीर्ण हुई थीं, इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बडी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्म अनुरक्त हो गया। वे उन्हे पतिरूपम प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करत-करते एक हजार वर्ष बीत गए। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करक लक्ष्मीदवीक समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपन विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अत लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई दवता पधारे, परतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देन और उन्ह कृतार्थ करनक लिय आये। भगवान्ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्का गौरव बढानक लिय ही कहा—'देवदेव। यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं ता अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा सदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्ने विश्वरूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्ह पत्नीरूपम ग्रहण किया। इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल तथ सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ 'मूलश्रीपति' क नामसे विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यस्वरूपिणी 'मूलश्री' के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीक प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शकरके अशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वनम गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमे पारिजात-पुष्पाकी माला लिये खडी थी, वह माला दिव्य पुष्पाकी बनी था। उसकी दिव्य गन्धस समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीने उन्ह आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली और पुन पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये जो मतवाले ऐरावतपर चढकर आ रहे थे। उनक साथ बहुत से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पडा माला उतारकर हाथमे ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुजार कर रहे थे। जब दवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोकी तरह वह माला उनके ऊपर फक दी। देवराजन उसे लेकर एरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसकी तीव्र गन्धस आकर्षित हो सूँडस माला उतार ली आर सूँघकर पृथ्वीपर फक दी। यह देख दुवासा क्रोधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमडसे तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है, तभी तो मेरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणाम तक नहीं किया। इसलिय तुम्हारे अधिकारम स्थित तीना लाकाकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गय और तुरत ही एरावतसे उतरकर मुनिके चरणाम पड गये। उन्हाने दुवासाको प्रसन्न करनकी लाख चेष्टाएँ कीं किंतु व महर्षि टस-स-मस न हुए। उलट इन्द्रको फटकारकर

पञ्च-दिव्यधामेश्वरी

रमा, राधिका, सीता, गौरी, व्रह्माणीदेवी, अनुरूप।
दिव्यधाम-स्वामिनि ये पाँचो दिव्य नारिके है शुभरूप॥

वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तबसे तीना लोकाकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एव सत्त्वरहित हो जानपर दानवाने देवताओपर चढाई कर दी। देवताओंमे अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमे गये। ब्रह्माजीने उन्ह भगवान् विष्णुकी शरणमें जानकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वय भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि दवताओने बडी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुन स्तवन किया तत्पश्चात् भगवान्ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे, किंतु यह कार्य हे बहुत दुष्कर, अत तुम्ह दैत्योको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर दवगण दैत्यासे सधि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाय और उन्ह क्षीरसागरमें छोड दिया, फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बडे वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओको और मुखकी ओर दैत्याको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी नि श्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी नि श्वासवायुसे विक्षिप्त हाकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे जिससे देवताओकी शक्ति बढती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वय कच्छपरूप धारणकर क्षीरसागरमे घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे दवताआमे और एक रूपसे दैत्यामे मिलकर नागराजको खींचनेम भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे जो दवताओ और दैत्याको दिखायी नहीं देता था उन्हाने मन्दराचलका ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिम भी बलका सचार करते थे और देवताआकी भी शक्ति बढा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरस क्रमश कामधेनु, वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकल, जिन्ह महादवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विष प्रकट हुआ जिस नागाने चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथम लिये धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ। इससे दवताआ और दानवाको भी बडा प्रसन्नता हुई। सबके अन्तम क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मादेवी प्रकट हुईं। वे
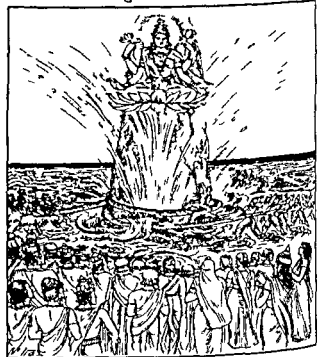
खिल हुए कमलक आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमे कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्हाने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताआने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणासे विभूषित हाकर सबके देखत-देखते अपन सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्के वक्ष स्थलमें चली गयीं। भगवान्को लक्ष्मीजीके साथ दखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्याको बडी निराशा हुई। उन्हान धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया किंतु भगवान्न मोहिनी स्त्रीके रूपस उन्ह अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताआको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बडा विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उसस प्रसन्न हाकर लक्ष्मीन दवताआको

मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमे ये साथ रहती है। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमे स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और नि श्रेयस दोनोकी सिद्धि होती है। लक्ष्मीजी सतीत्व और साधुताकी मूर्ति हैं। इसीलिये सभी सती-साध्वी स्त्रियोको घरकी 'लक्ष्मी' कहकर सम्मानित किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी महारानी रुक्मिणीजी एक बार अपनी अभिन्नरूपा लक्ष्मीजीसे भेट करने वैकुण्ठ पधारीं और वहाँ लक्ष्मीजीको भगवान् विष्णुके समीप बैठी देखकर बडी प्रसन्न हुईं, फिर लोक-कल्याणके लिये प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीजीने लक्ष्मीदेवीसे पूछा—'देवि! आप किस स्थानपर और कैसे मनुष्योके पास रहती हैं?'

लक्ष्मीने उत्तर दिया—'कल्याणि! सुनो जो मनुष्य मिष्टभाषी कार्यकुशल क्रोधहीन भक्त, कृतज्ञ जितेन्द्रिय और उदार हैं, उनके यहाँ मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बडे-बूढोकी सेवामे तत्पर, पुण्यात्मा क्षमाशील और बुद्धिमान् मनुष्योके पास मैं सदा रहती हूँ। जो स्त्रियाँ पतिकी सेवा करती हैं, जिनमे क्षमा सत्य इन्द्रियसयम सरलता आदि सद्‌गुण होते है, जो देवताओ और ब्राह्मणोमे श्रद्धा रखती हैं, जिनमे सभी प्रकारके शुभ लक्षण मौजूद है उनके समीप मैं निवास करती हूँ। सवारी, कन्या, आभूषण यज्ञ, जलसे पूर्ण मेघ, फूले हुए कमल शरद् ऋतुके नक्षत्र हाथी गायोके रहनेके स्थान, आसन फूले हुए कमलोसे सुशोभित तालाब, मतवाले हाथी, साँड, राजा, सिहासन सज्जन पुरुष विद्वान् ब्राह्मण प्रजापालक क्षत्रिय, खेती करनेवाले वैश्य तथा सेवापरायण शूद्र मेरे प्रधान निवासस्थान हैं। जिस घरमे सदा होम होता है और देवता, गौ तथा ब्राह्मणोकी पूजा होती है, उस घरको मैं कभी नही छोडती। भगवान् नारायण धर्म, ब्राह्मणत्व और ससारके एकमात्र आधार हैं इसीसे मैं इनके शरीरमे एकाग्रचित्त और अभिन्न रूपसे रहती हूँ। भगवान् नारायणके सिवा अन्यत्र कहीं भी मैं शरीर धारण करके नही रहती। जहाँ मेरा वास होता है वहाँ धर्म अर्थ और सुयशकी वृद्धि होती रहती है।

अब जिन स्थानोसे मुझे घृणा है उसका वर्णन सुनो—'जो अकर्मण्य नास्तिक कृतघ्न आचारभ्रष्ट नृशस चोर गुरुद्रोही उद्धत तथा कपटी हैं और बल बुद्धि तथा वीर्यसे हीन हैं उनके पास मैं नहीं रहती। जो हर्ष और क्रोधका अवसर नहीं जानते धन-प्राप्तिकी आशा नहीं करते और थोडेमे ही सतुष्ट हो जाते हैं ऐसे लोगोके पास भी मैं कभी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ गदी रहती हैं, घरकी वस्तुओको इधर-उधर बिखेर रखती हैं जिनमे उत्तम विचार नहीं होता, जो सदा पतिके प्रतिकूल बात करती हैं, जिन्हे दूसरोंके घरोमे रहना अधिक पसद है, जिनमे न धैर्य है न लज्जा जो स्वभावसे निर्दय ओर शरीरसे अपवित्र होती हैं, काम-काजमे जिनका मन नहीं लगता, जो सदा लडाई-झगडे किया करती और अधिक सोती हैं, उनके पास मैं कभी नहीं रहती।'

सूर्य-लीला-चिन्तन

[भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता ह। ये परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं। इन्हे परमात्म-परब्रह्मस्वरूप माना गया है। सूर्यसे ही समस्त प्राणियोकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींमे उनका विलय भी हो जाता है। इनका अवतरण ही ससारके कल्याणके लिये हुआ है। चराचर-जगत्पर सहज कृपा करना ही इनका प्रभाव है। इनकी कुछ लीलाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।—स०]

सूर्यके परब्रह्म होनेकी लीला-कथा

एक बारकी बात है, पितामह ब्रह्मा मुनियोको भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी भक्तवत्सलताकी बात बता रहे थे, उसी प्रसगमे ब्रह्माजीने बताया कि भगवान् सूर्य एक बार ध्यानमे निमग्न थे। इस बातको सुनकर मुनियोके मनमे सदेह उत्पन्न हुआ और उन्होने ब्रह्माजीसे पूछा—

'प्रभो! अभी-अभी आपने बतलाया कि सूर्य साक्षात् परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं, फिर वे स्वय किसका ध्यान करते हैं, क्या तपस्या करते हैं? उन्हे किस वस्तुकी अभिलाषा है? इसे आप बतानेकी कृपा करे।'

ब्रह्माजी बोले—'मुनियो! यह अत्यन्त गोपनीय रहस्यका विषय है। पूर्वकालमे मित्र देवता (भगवान् सूर्यका एक नाम)-ने देवर्षि नारदको जो बात बतलायी थी वही मैं आप लोगोको बताता हूँ। आप लोग ध्यानसे सुने—

एक समयकी बात है, महायोगी नारद लोकोमे भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वतके उस प्रदेशमे पहुँचे, जहाँ मित्र देवता (सूर्य) तपस्या कर रहे थे। उन्हे तपस्यामे सलग्न देखकर नारदजीके मनमे कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे—'जो अक्षय अविकारी व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं साक्षात् नारायण हैं, जिन्होने तीनो लोकोको धारण कर रखा है जो सब देवताओके पिता और परसे भी परे हैं, वे किस देवताका ध्यान कर रहे हैं।' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी उनसे बोले—

भगवन्! अङ्ग तथा उपाङ्गोसहित सम्पूर्ण वेदो एव पुराणोमे आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा सनातन धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत-भविष्य तथा वर्तमान—सब कुछ आपमे ही प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थ आदि चारो आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं, फिर आप किस देवताकी आराधना करते हैं, यह मेरी समझमें नहीं आता, इसे बतानेकी कृपा करे।

इसपर मित्र देवताने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है, परतु आप भक्त हैं, इसलिये यह रहस्य आपको बतलाता हूँ—'वह जो सूक्ष्म अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल ध्रुव, इन्द्रियरहित इन्द्रियोके विषयोसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोसे पृथक् है, वही समस्त जीवोकी अन्तरात्मा है, उसीको 'क्षेत्रज्ञ' भी कहते हैं। वह तीनों गुणोसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम 'भगवान् हिरण्यगर्भ' है वही भगवान् सूर्यका अव्यक्त रूप है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (सहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) है। वह स्वय शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोमे निवास करता है। वह सबका साक्षी है सगुण, निर्गुण विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य है। वह अव्यक्तपुरमे शयन करता है, अत 'पुरुष' कहलाता है। वह बहुत रूपोवाला है, इसलिये 'विश्वरूप' कहा जाता है। वह परमात्मा सैकड़ों रूपोमे अपनेको अभिव्यक्त करता है और भक्तोपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ करता है। ससारमे जो चराचर भूत हैं वे नित्य नहीं, परतु वह परमात्मा अक्षय अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। लोकमे देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। वह श्रद्धापूर्वक की गयी पूजाको स्वीकार करता है और अभीष्ट मनोरथ तथा सद्गति प्रदान करता है। निर्गुण-निराकार होनेपर भी वह सगुण साकार रूप धारण करता है। मैं अपने आत्मरूप उसी सूर्यका ध्यान करता हूँ। वर प्रदान करनेवाले उन दिवाकरका अर्चन-पूजन तथा वन्दन सभीको करना चाहिये।'

मित्र देवतासे भगवान् सूर्यकी परब्रह्ममयताका रहस्य जानकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और ये भगवद्गुण-

करते हुए अन्य लोकामे विचरण करने लग। मुनिगणाका भी ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यकी लीला-कथा सुनकर बडी प्रसन्नता हुई।

भगवान् श्रीरामकी आदित्योपासना

धर्मविग्रह भगवान् श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। अयोध्याम महाराज दशरथके यहाँ इनका अवतरण साधु-परित्राण, लोकरञ्जन, लाक-शिक्षण धर्ममर्यादा-स्थापन तथा रावणादि राक्षसाका उद्धार आदि सब कुछ सर्वविश्रुत है। उनक अनन्त कल्याणगुणगणामें भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। ये भगवान् सूर्यके कुलम ही प्रकट हुए थे। इसीलिय ये 'सूर्यवशी' कहलाते हैं।

भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-से मनुजी प्रकट हुए, जिन्होने 'मनुस्मृति'का निर्माण किया। इन्हीं मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए, इसी इक्ष्वाकुके वशमे आगे चलकर मान्धाता, दिलीप तथा भगीरथ आदि महान् प्रतापी और धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुए, जो भगवान् सूर्यकी कृपासे त्रैलोक्य-विजयी हुए। आग चलकर महाराज दशरथजीक यहाँ भगवान् श्रीरामका आविर्भाव हुआ। अत अपन कुलके आदिपुरुष भगवान् आदित्यकी उपासना करना इनका सहज स्वभाव रहा है। समय-समयपर इन्हे भगवान् सूर्यने उपस्थित होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। श्रीरामके जन्म तथा कर्म सभी दिव्य, अलौकिक एव चिन्मय थे, तथापि लोक-शिक्षणके लिये श्रीरामने लोकवत् सामान्य व्यवहार किया था इसी कारण व प्राकृत पुरुषोके समान हर्ष शाक, दु ख-सुख आदिस प्रभावित दिखलायी देते हैं। इस क्रममे कहीं वे सीताके वियोगम व्यथित होते हैं तो कहीं युद्धादि क्षेत्रामे दवताआकी आराधना करते हैं और रावणसे युद्ध करते समय वे अत्यन्त व्याकुल भी दिखायी दते हैं कि किस प्रकार रावणका वध किया जाय। इस प्रकार रणभूमिमें श्रीराम विचारमग्न हो जाते हैं।

उसी समय महामुनि अगस्त्यजी वहाँ आय और बोले—'श्रीराम! यह सनातन गाप्य स्तोत्र सुनो इसक जप करनेसे तुम युद्धमे अपने समस्त शत्रुआपर विजय पा सकोगे—'**येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे**' ऐसा कहकर अगस्त्यजीने भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी कृपाशक्तिका परिचय देनेवाला एक स्तोत्र उन्ह बतलाया तथा सूर्योपासनाकी विधि भी बतला दी और कहा—'ह राम! तुम एकाग्रचित्त होकर इन दवाधिदव जगदीश्वर भगवान् सूर्यका पूजा करा इस 'आदित्यहृदयस्तात्र'का तीन वार जप करनेस तुम युद्धम विजय प्राप्त कराग'—

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेव जगत्पतिम्।
एतत् त्रिगुणित जप्त्वा युद्धषु विजयिष्यस॥

(वा० रा० ६। १०५। २६)

—ऐसा कहकर अगस्त्यजी चल गये। भगवान् श्रीरामका शाक दूर हो गया। उन्होन सूर्यका ध्यान करक तीन वार 'आदित्यहृदयस्तात्र'का पाठ किया। फलत वे युद्धम विजयी हुए और युद्धस्थलमे उन्ह साक्षात् भगवान् सूर्यके दर्शन हुए।

सूर्यदेवद्वारा हनुमान्‌जीको विद्या-दान

रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌जी सभी प्रकारके अमङ्गलाका दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं। उनके हृदयम भगवान् श्रीसीताराम सदा ही निवास करते ह—

मगल-मूरति मारुत-नदन। सकल-अमगल-मूल-निकदन॥
पवनतनय सतन-हितकारी। हृदय विराजत अवध-विहारी॥

(विनय-पत्रिका ३६। १-२)

बजरगबली तथा महाबलीके रूपम वे शक्ति बल वीर्य ओज स्फूर्ति विद्या-बुद्धि नीति वाक्‌पाटव तथा ज्ञानक प्रदाता हैं और अपन भक्ताका श्रीसीतारामजीसे मिला दत हैं।

अञ्जनादेवीके अङ्कम त्रिभुवनगुरु शिव जब हनुमद्रूपसे अवतरित हुए, तब उनक शिक्षा-गुरु तथा आचार्य भगवान् सूर्यदेव ही बने। उनसे ही उन्हें सारी विद्याएँ प्राप्त हुई। श्रीआञ्जनय विद्या पढनेक लिय भगवान् सूर्यक पास ही गये—

भानुसो पढ़न हनुमान गये

(हनु० बाहु० ४)

कहा जाता है कि हनुमान्‌जीको जन्म-ग्रहण करनेक पश्चात् बारह घट व्यतीत हो जानपर अधिक भूख लगी। माताके पय पानसे वे तृप्त न हा सके। इससे चिन्तित होकर अञ्जना उनक लिये कुछ फल आदि लाने जगलम निकल गयीं तबतक इधर सूर्योदय होने लगा। सूर्यका सहसा आकाशम उठते देखकर हनुमान्‌जीने उन्ह काई लाल फल समझा और वे उछलकर सूर्यको निगलनक लिय आग बढ। इसपर इन्द्रने उनपर वज्रका प्रहार किया, जिसस उनकी हनु (ठुड्डी) टेढी हा गयी। उसी समय वायुदेव तथा ब्रह्माजान

आकर हनुमान्‌को स्वस्थ कर दिया और अमरत्व प्रदान किया। हनुक टेढी हो जानेस उनका 'हनुमान्' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उस समय सूर्यदेवने भी उन्ह शिक्षा पदान करनेका वर दिया और कहा—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्र दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।

(वा० रा० ७। ३६। १४)

कुछ समय पश्चात् अध्ययन-अध्यापनका क्रम प्रारम्भ हुआ। भगवान् सूर्यदेवकी अध्यापन-शैली विचित्र थी। आदिकवि वाल्मीकिजीने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

असौ पुनर्व्याकरण ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुख प्रष्टुमना कपीन्द्र।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थ महद्धारयन्नप्रमेय ॥

(वा० रा० ७। ३६। ४५)

आशय यह है कि सूर्यभगवान्‌के पास हनुमान्‌जा पढने गये, सूर्यदेवने प्रथम तो बालक्रीडा समझकर टालमटाल की और कहा कि मैं तो एक जगह स्थिर नहीं रहता हूँ, उदयाचलस अस्ताचलकी ओर जाता रहता हूँ, पढने-पढानेके लिये गुर-शिष्यका आसनपर आमने-सामन बैठना आवश्यक है। इसलिये मैं आपको नहीं पढा पाऊँगा किंतु श्रीहनुमान् ज्ञानपिपासु थ, वे बोल—'भगवन्। मैं आपके अतिरिक्त और किसीसे भी विद्या नहीं ग्रहण करूँगा।' उनकी दृढता देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न हा गये वे ता उनकी ज्ञानपिपासाकी परीक्षा ले रह थ। भला रामभक्त हनुमान्‌से श्रेष्ठ उन्हे कौन शिष्य मिल सकता था। वे विद्या-दान देनेको राजी हो गये तब हनुमान्‌जीने सूर्यकी ओर मुख कर लिया और आकाश-मार्गमे वे भगवान् सूर्यके आगे-आगे उन्हींकी गतिसे लेटे-लेटे ही बालकोंक समान खेल करते हुए पूर्वस पश्चिमकी ओर जाने लगे। सूर्यदेव जो भी उपदेश दते हनुमान्‌जी शीघ्र ही उसे याद कर लेते। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापनादि इन्द्रादि देवताओ त्रिदेवा तथा लोकपालोंने कभी नहीं देखा था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखे चौंधिया गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सा।

(हनु० बा० ४)

सूर्यभगवान्‌ने थोडे ही समयमे सम्पूर्ण विद्याएँ, वेद-शास्त्र, समस्त आगम-पुराण, नीति, अर्थशास्त्र दर्शन तथा व्याकरणशास्त्र आदिका शीघ्र ही उन्हे ज्ञान करा दिया। भगवान् सूर्यकी कृपासे उनके समान शास्त्र-विशारद और कोई नहीं हुआ। इसी कारण हनुमान्‌जी समस्त विद्या छन्द तथा तपोविधानमे बृहस्पतिके समान हुए—

नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽय हि गुरु सुराणाम्।

(वा० रा० ७। ३६। ४६-४७)

वाल्मीकीय रामायणमे स्वय भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे इनके वाक्पाटव और व्याकरण-ज्ञानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, उन्होने कहा—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिण।
नासामवेदविदुष शक्यमेव विभाषितुम्॥
नून व्याकरण कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४। ३। २८-२९)

अर्थात् 'जिस ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है, क्योंकि बहुत-सी बात बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

इस प्रकार हनुमान्‌जीका जो भी ज्ञान-विज्ञान है, वह भगवान् सूर्यदेवकी कृपाशक्तिका ही परिचायक है।

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी सदाचारी और धर्मके अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पडनेपर भी उन्होंने कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यूत-क्रीडामे सम्मिलित हो गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमे अपने

शत्रुओके विनाशमे लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूएमे अपना राज्य, धन-धान्य एव समस्त सम्पदा गँवानी पडी। अन्तमे उन्हे बारह वर्षोका वनवास भी जूएमे हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचों भाइयोके साथ वनवासके कठिन दु खको झेलने चल पडे। साथमे सती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोका वह दल भी चल पडा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो! जूएमे मेरा सर्वस्व हरण हो गया। हम फल-मूल तथा अन्नके आहारपर रहनेका निश्चयकर सतप्त हृदयसे वनमे जा रहे हैं। वनकी इस यात्रामे महान् कष्ट होगा, अत आप सब मेरा साथ छोडकर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोने दृढताके साथ कहा—'महाराज! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करें। अपने लिये हम स्वय ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेगे और मार्गमे सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसगासे आपके मनको प्रसन्न रखेगे साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभारत, वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे साख्ययोग एव कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अत धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड लगाकर पुन उसे धुला जाय इसकी अपेक्षा कीचड नहीं लगाना ही ठीक है श्रेयस्कर है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वर तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्॥

(महाभारत वनपर्व २। ४९)

शौनकजीने वन-यात्रामे युधिष्ठिरको आवश्यकताओकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है तो ऐसी स्थितिमे स्वागत कैसे किया जा सकेगा?

युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(महाभारत वनपर्व २। ५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओका अभाव सत्पुरुषोके घरमे कभी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथिसेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामे उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्की उपासनामे जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके 'अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र' (एक सौ आठ नामोका जप)-का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोका पालन करते हुए सूर्य अर्यमा भग त्वष्टा पूषा अर्क सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्व भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्व योनि सर्वभूताना त्वमाचार क्रियावताम्॥
त्व गति सर्वसाख्याना योगिना त्व परायणम्।
अनावृतार्गलद्वार त्व गतिस्त्व मुमुक्षताम्॥
त्वया सधार्यते लोकस्त्वया लोक प्रकाश्यते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याज पाल्यते त्वया॥

(महाभारत वनपर्व ३। ३६—३८)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्के नेत्र तथा समस्त प्राणियोकी आत्मा हैं, आप ही सब जीवोके उत्पत्तिस्थान हैं और सब जीवोके कर्मानुष्ठानमे लगे हुए जीवोके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण साख्ययोगियोके प्राप्तव्य स्थान हैं, आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे ससारको धारण करते हैं सारा ससार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस ससारका बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान्

सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत् तेऽभिलषितं किञ्चित् तत् त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥
(महाभारत वनपर्व ३।७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें 'बना भोज्य पदार्थ' 'अक्षय्य' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय्य बना रहता था जबतक सती द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थीं। पुनः जब वह पात्र माँज-धोकर पवित्र कर दिया जाता था और जब दूसरी बार भोज्य पदार्थ बनता था तो वही अक्षय्यता उसमें आ जाती थी—

गृहाण पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति॥
(महाभारत वनपर्व ३।७२-७३)

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया और युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये।

महाभारतमें उसी प्रसंगमें यह भी लिखा है कि जो कोई मानव या यक्षादि मनका संयम रखकर—चित्त वृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वारा प्रयुक्त स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वर भी माँगेगा तो भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥
(महाभारत वनपर्व ३।७५)

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्।
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्॥
(हरिवंशपुराण १।३८।१३-१४)

प्रसेन द्वारकापुरीमें विराजमान थे। उन्हें स्यमन्तक नामकी एक दिव्य मणि अपने बड़े भाई सत्राजित्से प्राप्त हुई थी। वह सत्राजित्को समुद्रके तटपर भगवान् भुवन भास्करसे उपलब्ध हुई थी। सूर्यनारायण सत्राजित्के प्राणोंके समान प्रिय मित्र थे।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वंशपरम्परामें अनमित्रके पुत्र निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। वे शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे।

एक समयकी बात है—रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रिके अन्तमें स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये थे। जिस समय सत्राजित् सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये। सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके

मध्यमे विराजमान थे, जिससे सत्राजित्को सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था। इसलिये उन्होने अपने सामने खडे हुए भगवान् सूर्यसे कहा—'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन्! मै आपको जैस प्रतिदिन आकाशम देखता हूँ, यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए अपने सामने अब भी खडा देखूँ तो फिर आप जो मित्रतावश मेरे यहाँ पधारे—इसमे विशेषता ही क्या हुई?[१]

इतना सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और अलग एकान्त स्थानमे रख दिया। तब राजा सत्राजित् स्पष्ट अवयवोवाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हाने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तभर (दो घडी—अर्थात् ४८ मिनट) वार्तालाप किया। बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजित्ने उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! आप जिस दिव्यमणिसे तीना लोकोको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये[२]।'

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी मणि राजा सत्राजित्को दे दी। वे उसे कण्ठम धारणकर द्वारकापुरीमे गये। 'ये सूर्य जा रहे हैं'—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड पडे। इस प्रकार नगरवासियाको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमे चल गये।

वह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरम रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी। उस देशमे मघ समयपर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किचिन्मात्र भय नहीं होता था। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी।[३]

जब भगवान् ससारी लोगोके साथ क्रीडा करनेके लिये अवतार धारण करते हैं, तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मबन्धनमें बँधा हुआ समझते हैं, उनक कार्योपर शका करते हैं और लाञ्छन लगनेवाली समालोचना भी कर बैठते हैं, परतु जब भगवान्को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते।

लोभका एसा घृणित प्रभाव है कि उसक कारण भाई-भाईमे विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हे तथा मित्र शत्रु बन जाते हैं। इसी भावका प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी। इस स्यमन्तकमणिके हरण एव ग्रहणकी लीलाका विस्तृतरूपसे वर्णन श्रीमद्भागवतक दशम स्कन्ध (अ० ५६-५७)-म हुआ है।

एसी प्रसिद्धि है कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिम उदित चन्द्रमाका दर्शन होनसे मनुष्यमात्रको कलक लगनेकी सम्भावना होती है। चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलकका निवारण हो जाय इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोका कथा-प्रसग पढना एव सुनना अत्यन्त लाभप्रद है।

इस 'स्यमन्तकोपाख्यान'की फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हे—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापो, अपराधा और कलकोका माजन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जा इसे पढता सुनता अथवा स्मरण करता हे, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति एव पापासे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है।[४]

१- यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वा ज्योतिषाम्पते॥
तेजोमण्डलिन देव तथैव पुरत स्थितम्। को विशेषोऽस्ति मे त्वत्त सख्येनापागतस्य वै॥
(हरिवशपुराण १। ३८। १७-१८)

२-तदेतन्मणिरत्न मे भगवन् दातुमर्हसि॥ (हरिवशपुराण १। ३८। २१)

३-चार धानकी एक गुजी या एक रत्ती होती। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक) आठ पणका एक धरण आठ धरणका एक पल (जो ढाई छटाँकके लगभग होता है) सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है।

४-यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्य वृजिनहर सुमङ्गल च। आख्यान पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ५७। ४२)

लीला—सृष्टिका एकमात्र प्रयोजन

आप्तकामकी सृष्टिकामना

(प० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

वेदने परमात्माको 'आप्तकाम'[१] कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि परमात्माको सभी कामनाएँ स्वत प्राप्त रहती हैं, अत वह कोई कामना कभी नहीं करता—

आप्तकामस्य का स्पृहा?

किंतु बहुत-सी ऐसी श्रुतियाँ मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता है कि परमात्मा सृष्टिकी कामना करता है। जैसे—

(क) **सोऽकामयत। बहु स्या प्रजायेयेति।**

(तैत्ति० उप० २। ६)

(ख) **तदैक्षत बहु स्या प्रजाययेति।**

(छा०उप० ६। २। ३)

अर्थात् परमात्माने कामना की कि 'मै अकेला रह गया हूँ बहुत हो जाऊँ।' बहुत होनेका अभिप्राय है—अनेक नामो और रूपोमे अभिव्यक्त होना—

तन्नामरूपव्याकरण बहुभवनम् (शा०भाष्य)

जैसे शान्त समुद्र जब खेलनेकी इच्छा करता है तब अपनेको अनेक तरगो बर्फो बुद्बुदो ओर फेनोके रूपमे अभिव्यक्त कर लेता है फिर इन आभासित द्वैताके साथ खेल प्रारम्भ कर देता है। उमगमे भरकर लहरोको अपनेमे लिपटा लेता है लहर जब मचलकर अलग होने लगती हैं, तब फिर कसकर अपनेमे लिपटा लेता है। बर्फोको कभी आलिगनमे छिपा लेता है और कभी उछाल देता है। एक ओर बुलबुलोके साथ आँख-मिचौनीका खेल खेलता है तो दूसरी ओर फेनोके साथ हास-परिहासका। वेदने इसी दृष्टान्तसे सृष्टिरूपी लीलाको समझाया है—

समुद्रादूर्मिर्मधुमान् उदारत्।

(तै०आ० प्रप० १० अनु० १०)

यहाँ मधुमान पदका सबके साथ सम्बन्ध है। समुद्र भी मधुमान (प्रेममय) है तरग भी मधुमान है भोग्य वस्तुएँ भी मधुमान हैं और लीला-स्थली भी मधुमान है।

इससे यह समझमे आता है कि परमात्मा सृष्टिकी कामना करता है और कामनाके अनुरूप प्रेमका खेल भी प्रारम्भ कर देता है। इस तरह एक तरफ तो श्रुति 'आप्तकाम' कहकर सूचित करती है कि 'परमात्मा कोई कामना नहीं करता और दूसरी ओर अन्य वचनोसे स्पष्ट प्रतिपादित करती है कि वह सृष्टिकी कामना करता है।' इस तरह परस्पर विरुद्ध होनेसे वेदमे वदतोव्याघात दोष आ जाता है—यह सशय होता है। इसके समाधानमे वेद कहता है—

जगन्निर्माणलीलया।
परमात्ममयी शक्तिरद्वैतैव विजृम्भते॥

(महोपनिषद् ६। ६१)

भाव यह है कि परमात्माकी सृष्टि-विषयक जो कामना है, वह केवल लीलाके लिये है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (ब्र०सू० २। १। ३३)

लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है ही नहीं। यदि लीलाके अतिरिक्त सृष्टि-रचनाका और कोई प्रयोजन होता तब वेदमे व्याहत दोष आता।

लीलासे दोष कैसे हट जाता है?

अब जिज्ञासा होती है कि 'लीलामे ऐसी कौन-सी विशेषता है कि उक्त दोष हट जाता है। भगवान् शकराचार्यने वह विशेषता बतायी है—

यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किंचित् प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किंचित् प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति।

(ब्रह्मसू० शा०भा० २। १। ३३)

---

१ [illegible]। (ब्र०सू०शा०भा० २। १। ३३)

जैसे साँसोका लेना और फेकना किसी बाह्य प्रयोजनके बिना ही स्वभावसे होते रहते हैं, वैसे ही बिना किसी अन्य प्रयोजनके स्वभावसे ही ईश्वरकी लीला-रूप प्रवृत्ति हुआ करती है।

इसी तरह स्पष्ट हो जाता है कि 'लीलाम रमे रहना' ईश्वरका स्वभाव है। इसी तथ्यको श्रुतिने स्पष्ट शब्दोमे कहा है—नित्यलीलानुरागी।

इस लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है ही नहीं। भाष्यकारने जोर देकर कहा है कि 'न तो किसी श्रुतिसे और न किसी युक्तिसे ही लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है—

न हीश्वरस्य प्रयोजनान्तर निरूप्यमाण न्यायत श्रुतितो वा सम्भवति। (ब्रह्मसूत्र शा० भा० २। १। ३३)

परमात्माका स्वभाव ऐसा क्यो ?

अब कोई यह आक्षेप कर सकता है कि 'परमात्मा' तो '**महतो महीयान्**' है, फिर वह बच्चाकी तरह खेलना क्यो पसद करता है ? भाष्यकारने स्पष्ट शब्दामें कह दिया कि यह ईश्वरका स्वभाव है और स्वभावपर ऐसा आक्षेप करना अनर्थक है—

न च स्वभाव पर्यनुयोक्तु शक्यते।

(ब्रह्मसूत्र शा०भा० २। १। ३३)

'स्वभाव' पर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। भाष्यकारका यह कथन यथार्थ है। सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है और यह स्वभावकी भिन्नता ही उसके अस्तित्वका कारण होती है। आगका स्वभाव है दाह करना और प्रकाश करना। उसका यह स्वभाव ही उसके अस्तित्वका कारण है। स्वभावका अर्थ है वस्तुकी सत्ता। यदि अग्निमे दाहकता और प्रकाशकता न रहे तो उसे कोई 'अग्नि' कैसे कह सकता है ? हम जल और मिट्टीको आग नहीं कहते। इसलिये कि इनम न दाहकता है और न प्रकाशकता। स्वभावकी भिन्नता ही वस्तुका स्वरूपाधायक होती है। हम आकाशसे अतिरिक्त 'वायु' को तत्त्व क्या मानते हैं ? केवल इसलिये कि वायुका स्वभाव जो 'स्पर्श' है, वह आकाशमे नहीं है। इसी वायुसे उत्पन्न होती ह आग। 'आग' को हम पृथक् तत्त्व इसलिये मानते हैं कि इसम विशेष स्वभाव आ गया है—'रूपका होना', 'जलाना' और 'प्रकाश करना'—ये तीनो ही विशेषताएँ इनके जनक वायु और आकाशमे नहीं हैं। अग्निसे उत्पन्न होता है जल। इसका स्वभाव है स्वाद और सयोजन। ये दोना ही न इसके पिता अग्निम हैं, न पितामह वायुमें हैं और न प्रपितामह आकाशमे ही हैं। क्या आगको जीभसे चखा जा सकता है या वायु अथवा आकाशका ही चखा जा सकता है ? जलका 'रस'-रूप स्वभाव ही जलकी सत्ताका कारण है। जलसे उत्पन्न होती है पृथ्वी। पृथ्वीका स्वभाव है गन्ध। यही 'गन्ध'-स्वभाव पृथ्वीको जल, अग्नि, वायु और आकाशस अतिरिक्त द्रव्य माननेके लिये बाध्य करता है।

ऐसी स्थितिमे किसी वस्तुका स्वभाव 'इस तरह क्या है, कैसे है ?' यह प्रश्न उठाना क्या सचमुच निरर्थक नहीं है क्या ?

प्रेमका स्वभाव है—लीला

जैसे पृथ्वीका स्वभाव 'गन्ध' है जलका स्वभाव 'स्वाद' ह, अग्निका स्वभाव 'रूप' है, वायुका स्वभाव 'स्पर्श' है, वैसे ईश्वरका स्वभाव है प्रम। स्वभाव ही स्वरूप होता है, अत ईश्वर प्रेम-रूप[1] है रस-रूप[2] है, आर आनन्द-रूप[3] है।

प्रमका स्वभाव 'लीला' है, इस तथ्यको हृदयगम करनेके लिये पहले एक लौकिक दृष्टान्त ल लिया जाय। किसी नायकका एक नायिकासे प्रेम हो जाता ह। अब उसकी दुनिया बदल जाती है। सब वस्तुएँ रगीन हा जाती हैं, सब सरस हो जाती हे। अब नायिकाके विना उससे रहा नहीं जाता है, वह उसके आस-पास मँडराता रहता है। कभी एकटक निहारता है कभी मीठी-मीठी बात करता है। इतनी बात करता है कि वे कभी समाप्त नहीं हातीं। सब बाते क्रमबद्ध हो यह आवश्यक नहीं। बस बात करनम उसे रस मिलता है, इसलिये बाते करता चला जाता हे। य

१-तस्मात् प्रेमानन्दात्। (सामरहस्योपनिषद्)

२-रसो वै स। (तैत्ति० उप० २। ६। १)

३-आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति० उप० ३। ६। १)

जितनी क्रियाएँ हो रही हैं—यही तो 'लीला' है और प्रेमम यह स्वाभाविक है। प्रेमका यह 'स्वभाव' क्या है, यह प्रश्न सचमुच निरर्थक है।

पति-पत्नीका जो प्रेम है, वह वस्तुत उसी प्रेम-रूप प्रभुका अश है। जैसे ईश्वरका 'सत्'-'अश' सर्वत्र अनुस्यूत है, वैसे ही उसका प्रेमाश भी सभी प्रेमोंम अनुस्यूत है। इसलिये कण-कणसे प्रेम करना मानवमात्रका कर्तव्य है। राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम, भ्रातृ-प्रम, पितृ-प्रेम तथा पुत्र-प्रम आदि समस्त प्रेमाम उसी प्रभुका प्रेम अशत व्याप्त है, अत पवित्र है। हाँ, प्रेमके नामपर आसक्ति नहीं होनी चाहिये, क्याकि 'आसक्ति' प्राकृतिक है और प्रम ईश्वरीय। आसक्ति पातक है और 'प्रेम' उन्नायक।

हाँ तो राष्ट्र-प्रेमम डूबकर यदि काई आत्मदान करता है, विश्व-प्रेमम मत्त होकर जो अपना सब कुछ निछावर कर देता है, इस तरहकी और जितनी सुरभित क्रियाएँ करता है, आखिर इन्हीं क्रियाआका नाम ही 'प्रेम-लीला' ह न? प्रममे इस तरहकी क्रियाआका होना स्वाभाविक है। प्रेमम अगणित अभिलाषाएँ ता उठती ही रहती हैं और वे ही अगणित लीलाओम परिणत होती रहती हैं।

यह तो सासारिक प्रेमकी बात हुई। परमात्मा तो प्रम-रूप है। वह जो प्रेम अपने प्रेमास्पदासे करता है वह सासारिक प्रेमम कैस सम्भव हे? जब सासारिक प्रेम हानेपर प्रेमी अपने प्रेमास्पदके बिना नहीं रह पाता तब प्रेमरूप परमात्माका मन प्रलयम प्रेमास्पदोके बिना केसे लगेगा? वेदने बताया है कि अकेल रहनपर परमात्माका मन न लगा—

प्रजापतिर्वा एपोऽग्रेऽतिष्ठत् स नारमतैक स आत्मानमभिध्यायद् बह्वी प्रजा असृजत्।

(मैत्र० उप० २। ६)

अर्थात् प्रलयावस्थाम जब परमात्मा एक था अद्वितीय था। तब (प्रमास्पदाके विना) उसका मन न लगता था। प्रमी तो अपन प्रियको दखना चाहता है, छूना चाहता है और गले लगाना चाहता हे फिर क्या? झट उसन अपन प्रमास्पदाका प्रकट कर लिया और स्वय चिन्मय शरीर धारणकर उन्ह गल लगा लिया—

वर्ष्मणोप स्पृशामि।।

(ऋग्वद १०। १२५। ७)

मायात्मकन मदीयन दहन उपस्पृशामि।

(सायण)

कैसा सुहावना खल चल पडा जब स्वय प्रम शरार धारण करके प्रमी बन जाता है और प्रियका अपन सुकामल अङ्कम भरकर अपनी आँखाकी स्निग्ध छाया प्रदान करता है, सहलाता है, तव मुक्ताका ब्रह्मानन्दम जा उल्लास उठत हाग, उनकी काई सीमा रह जाती हागी क्या? यह लीला महान्-स-महान् है और कितना सुभावना हे?

किंतु बिना सृष्टिके न तो लीलास्थली बन सकता है, न भाग्यजात बन सकते हैं और न लीलाम भाग लनेवालाकी भीड ही खडी हो सकती है। इसीके लिये सृष्टिका रचना हाती है।

प्रभुकी प्रेम-परवशता

साधारण प्रमम जब प्रिय अपने प्रमीक अधीन हो जाते हैं, तब प्रमरूप प्रभुक लिय ता यह भक्त-पराधीनता सीमा लाँघ जाती हे और सरकारका हृदय प्रमीके हाथम होता है। प्रेमीको छोडकर भगवान् अपन-आपको भी नहीं चाहत—

नाहमात्मानमाशासे।

(श्रीमद्भा० ९। ४। ६४)

प्रेमकी लीला ता भगवान्का पागल तक बना देती है। व स्वय कहते ह कि मैं अपने प्रेमीके पीछे-पीछे चक्कर लगाया फिरता हूँ कि इसके चरणकी धूलि मर मस्तकपर पड जाय—

निरपक्ष मुनि शान्त निर्वैर समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यह नित्य पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभि ॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

है न यह पागलपन?

सिन्धु यदि बिन्दुके पीछे-पीछे इसलिये मारा फिरे कि वह इसक चरणकी धूल पा जाय ओर पवित्र हो जाय ता क्या यह सिन्धुका पागलपन नहीं है?

किंतु प्रेमम यह पागलपन कितना प्यारा है कितना महान् हे और कितना सुहावना ह।

यह है आप्तकामकी सरस कामना।

'भगवल्लीला' शब्दका धातुगत अर्थ, परिभाषा, पर्याय और लीलाका स्वरूप

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि स्कालर)

सस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भगवल्लीला' शब्दमे दो शब्दाका योग है। ये दोना शब्द अपने-आपम विशिष्ट हैं और जब इन दोनाका योग हो जाय तो फिर पूछना ही क्या है? मणि-काञ्चन-योगकी तरह एक अपूर्व समरसता आ जाती है। इन दोन' शब्दाम षष्ठी-तत्पुरुष समास हानेके कारण इसका विग्रह होगा—'भगवत या लीला सा भगवल्लीला'। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनोंकी व्युत्पत्ति कैसी होगी और उनका धातुगत अर्थ क्या होगा ? वस्तुत 'भग' शब्दके छ अर्थ होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा॥

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, शोभा (लक्ष्मी), ज्ञान और वैराग्यको 'भग' कहते हैं। 'भग' है जहाँ और जिसम, वह भगवान् या भगवती कहलाते है। यहाँ ऐश्वर्यबोधक 'भग' (भग ऐश्वर्ये) शब्दसे 'मतुप्' प्रत्यय करनेपर 'भगवत्' शब्द व्युत्पन्न होगा और इस 'भगवत्' शब्दसे निष्पन्न होगा 'भगवान्'। भगवान्‌की स्वाभाविक या कृत्रिम लीला भगवल्लीला कहलाती है।

अब लीला शब्दपर जरा दृष्टिपात करे—'लयनमिति ली सम्पदादित्वात् क्विप्, पुन लिय लातीति-ली+ला+क+ टाप्-लीला। इस लीला शब्दके शृगार, भाव चष्टा केलि विलास और क्रीडा विशेष अर्थ होते हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके उस श्लोकसे होती है जिसम कहा गया है कि—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथा शुभा ।
लीला विदधत स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥
(१। १। १८)

अर्थात् हे विद्वन्! अब उस भगवान् श्राहरिके उन अवतार-कथाओंको कहिये जिनमे ईश्वरकी आत्ममायास स्वच्छापूवक लीला-विहार करना कहा गया है। इसस भगवल्लीलाकी यथार्थता सिद्ध हाती है।

'उज्ज्वलनीलमणि'म ता क्रीडा ओर विलासके अर्थम लीला शब्दका प्रयाग किया गया है। जिसस दास्यभक्ति प्रकट हाती है और उसम नायिकाद्वारा प्रियतमके अनुकरणका ही 'लाला' कहा गया है—

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकाया
सख्या पुराऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवशगतिहास्यविलोकनाद्यै
प्राणश्वरानुकृतिमाकलयन्ति लीला ॥

'हलायुध काश' एव 'वाचस्पत्यम्' आदि कोशाम इसा लीला शब्दकी व्याख्या प्रस्तुत करत हुए कहा गया है—

अलब्धप्रियसमागमया स्वचित्तविनादार्थं प्रियस्य या।
वेशगतिदृष्टिहसितभणितैरनुकृति क्रियत सा लीला॥

इसका आशय यह है कि जिस नायिकाके द्वारा प्रिय-समागमको अप्राप्त करके अथात् वियागावस्थाम अपन चित्तके विनोदक लिय प्रियक वश-भूषा, गति-गमन दृष्टि हँसना और कथापकथन आदिका अनुकरण किया गया हा या किया जाता हो—उसी अनुकरणका 'लाला' कहत हैं।

उपर्युक्त विवचनके आधारपर 'लाला' शब्दक अनक अर्थ हैं। इनम प्रमुख अर्थ अवताराक चरित्र तथा काय-कलापाका अभिनय ही है। यह अनुभूत विषय है कि जब परब्रह्म परमात्माक कार्य-कलाप या सृष्टिका रहस्य व्यक्ति नहीं समझ पाता तब वह कहता है कि—'परमश्वरकी यह अद्भुत लाला अपरम्पार है।' आशय यह है कि बुद्धिम पर रहस्यमय काय-कलाप 'लाला' सज्ञास अभिहित हाता ह। चाहे वह निगुण या सगुण ब्रह्मका हा अथवा मनुष्यका या अवतारक रूपम किसी अन्य प्राणीका।

सर्वव्यापी भगवान्‌क विग्रहक दा रूप हैं—प्रथम परात्पर ब्रह्म और दूसरा मनुज-अवतार। इन दाना रूपाम वह अपनी लाला करता है। लालाका उद्दश्य भगवान्‌का विनाद अथवा क्रीडा है। ब्रह्मक रूपम सृष्टि-रचना उसका क्रीडा हैं। आदिकालम भक्त लाला-दर्शनम धन्य हात रह हैं। निगुण

भक्त विश्वम उसकी प्राकृतिक शक्तिस चमत्कृत हात हैं। श्रद्धा या भक्तिका मूल कारण यह विश्व-व्याप्त लीला ही है।

अत निर्गुण मतसे लीलाका यह रूप अगम है। उमक दर्शन तथा विवेचनके लिये ज्ञानसम्पन्न मधाकी आवश्यकता पडती है। इसलिये कुछ ही सिद्ध पुरप उसक दर्शनम समर्थ होते हैं। भगवान्‌का दूसरा रूप मानव-अवतार है। इसमे वे मनुष्यकी भाँति कार्य-व्यापार करत हैं। उनकी *नरलीला हमारे कार्य-व्यापारोके तुल्य होती ह*। अत उनके प्रति सहज आकर्पण होता है। जहाँ निर्गुण स्वरूपकी लीलाके दर्शनके लिये विवेक तथा ज्ञानकी आवश्यकता पडती है, वहाँ नरलीलाके स्वरूपको ग्रहण करनेक लिये हदय स्वत उसकी आर उन्मुख हाता है।

यदि लीलाकी भावनाको भक्तिका प्रमुख आधार माना जाय तो अतिशयाक्ति नहीं होगी। किसीका भक्तिक लिय हदयम श्रद्धाकी आवश्यकता पडती है। श्रद्धाका उदय अनायास नहीं होता। श्रद्धा मद्‌गुण या सत्कर्मके प्रति होती है। अत श्रद्धाकी भावनाक लिय सर्वप्रथम भगवान्‌क दिव्य गुण तथा कर्मोंका दिग्दर्शन आवश्यक है। इस लक्ष्यकी पूर्तिक लिये लीलाका सम्यक् विवेचन तथा उसे हृदयगम करनेकी परमावश्यकता पडती है। अत निर्गुण तथा सगुण दोना प्रकारके भक्त लीलाका महत्त्व स्वीकार करते हैं।

सगुण भक्तिमे निर्गुण एव सगुण—इन दाना प्रकारकी लीलाआका समावेश है। भागवत सम्प्रदायकी कृष्णभक्ति-शाखाम भगवान्‌की दो लीलाएँ मानी गयी हैं। पहली लीला भगवान् गोलाकम नित्य करते हैं। दूसरा रूप प्रतिबिम्ब लीलाका है जो वृन्दावनमे होती है। भगवान् रामकी लीलाके भी दो स्थल मान जाते है—पहला साकत और दूसरा अयोध्या। वहाँकी स्थितिके अनुरूप लीलाके दो स्वरूप हैं। एकसे साकेतकी लीलाका तथा दूसरेसे अयोध्याकी लीलाका सचालन होता है। प्रथमम उनका अन्तरङ्ग 'आत्मस्वरूप' तथा द्वितीयम ईश्वरत्वका 'बहिरङ्ग' रूप मिलता है। लीलाक लिये अन्य व्यक्तियाकी भी आवश्यकता पडती है। अत द्वैत-भावका विशिष्ट व्यवहार लालाका मुख्य अग है। अवतार-लीलासे सम्बन्धित सभी व्यक्ति साकत लीलाम ही उपस्थित रहते हैं। इन दोना प्रकारकी लीलाआका उद्देश्य पृथक् है। दिव्य लीलाम भक्ताको स्वरूपानन्द प्रदान करन अथवा नित्य कैंकर्य-सुख प्रदान करनेकी भावना है। पार्थिव या नरलीला जावाक उद्धार तथा पथ-प्रदर्शनक लिय हाता है। लीलाका उद्दश्य माया-पीडित जीवका भगवान्‌क अन्तरङ्ग स्वरूपक दशनद्वारा उद्धार करना है। साक्षात् परमेश्वरका लालाक दर्शनस मनुष्यके 'अह' तथा 'स्वार्थ' की भावनाका परिष्कार हा जाता है उसम पूर्ण तन्मयता आ जाती है—उपास्यका आनन्द हा उसका आनन्द हो जाता है और वह उस आनन्दम आप्लावित हा जाता है। जिस प्रकार भक्तिका सम्यक् उपलब्धिक लिये भगवत्कृपाकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार लालामें प्रवश भगवान्‌की कृपाम होता है। वैष्णव मतानुसार मन्त्र शक्ति-साधना एव आचार्यके द्वारा लीला-दर्शन सम्भव है। ज्ञान तथा यागक साधक इच्छाका मारनेकी साधना करते हैं। लाला दर्शन इच्छाक विना नहीं हो सकता। अत सगुण भक्ति इच्छाके परिष्कारद्वारा लीला-दर्शन करनमे समर्थ है। भगवान्‌क समान ही लीला भी नित्य है।

भगवल्लीलाकी कोई इयत्ता नहीं है, वे कब किस प्रकारकी लाला करगे यह अज्ञात है। नानापुराण-निगम आगम सबम भगवल्लीला व्याप्त है। अनेक देवी-देवताओंकी लीलाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र उपलब्ध हाती हैं। यहाँ तक कि लीलाक प्रसगम राम-पुरुपम रामत्व, कृष्णम कृष्णत्व नृसिहम नृसिहत्व हनुमान्‌म हनुमत्त्वका पराक्रम आ ही जाता हे। वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीमद्भागवतम भगवान्‌की अनेक लीलाआका दर्शन होता हे। तभी तो रामचरितमानसमें कहा गया है—*'उमा करत रघुपति नरलीला' 'करउँ सकल रघुनायक लीला'*। रामकी लीला तो विश्वके अधिकाश भागाम भी हाती है। वन-गमन अहल्या-उद्धार, ताडका वध साता-स्वयवर-सभाम धनुर्भंग तथा रावण-वध आदि रामकी अलोकिक लीलाएँ हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी तो लीलाएँ ओर भी अपरम्पार ह। उनकी बाल-लीलाओंका श्रीमद्भागवतम अद्भुत मनाहारी वर्णन है।

श्रीकृष्णका माखन खाना ऊखलसे बाँधा जाना यमलार्जुनका उद्धार वत्सासुर-वकासुर-अघासुर और धेनुकासुरका उद्धार तथा ग्वाल-बालाको कालिय नागसे बचाना आदि अलाकिक लीलाएँ हैं।

इस प्रकार भगवल्लीलाके स्वरूपका *दिग्दर्शन* हम प्राप्त होता है।

सम्बल प्रभुद्वारा गृहीत यह अनुग्रहात्मिका पुष्टिलीला ही है।

[५] ऊतिलीला—ब्रह्मादि देवाके हृदयमे उनक गुणानुकूल कार्यको पूर्ण करनेकी सत्-कामना जाग्रत् करना भगवान्‌की ऊतिलीला है।

ऊतिका अर्थ है कर्मवासना—'ऊतय कर्मवासना' (श्रीमद्भा० २। १०। ४)। इस लीला-प्रसगमे बताया गया है कि ईश्वराश जीवके नाना यानियाम जन्म लेकर कष्ट भोगनेका कारण उसके स्वकीय कर्म है। इस कर्मपाश तथा भटकावसे मुक्ति परमेश्वरकी दयोपलब्धि ही है। ईश्वरका अनुग्रह प्राप्तकर कर्मवासनास छुटकारा पाना मानवका प्रथम कर्तव्य है।

[६] मन्वन्तरलीला—युग-युगान्तरसे सृष्टिक्रममे चली आ रही मनु-सततिके हृदयम कल्पनाशक्ति, निश्चयात्मिका मनीषाशक्ति, कार्यसाधिका सकल्प-शक्ति आदि उत्पनकर उसे सद्धर्मकी ओर प्रेरित करना प्रभुकी मन्वन्तरलीला' है।

तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोकी एक चतुर्युगी होती है। इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता हे। प्रत्येक मन्वन्तरम एक मनु होते है जो अपने कालमे सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते है। श्रीमद्भागवतम मन्वन्तरका वर्णन आश्रयत्व (अवतार)-क समर्थनमे ही उपलब्ध होता है।

अवतार होता ही है धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये। मन्वन्तरमे सद्धर्मकी स्थापनाका उद्देश्य मानवको धर्माभिमुखी बनाना है और यह कार्य जिनके सहयोगसे पूरा होता है, वे सब भगवदीय कथन—**'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव या। तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोंऽशसम्भवम्'** के परिचायक होते हैं।

[७] ईशानुकथालीला—सृष्टिका क्रम अनवरत-रूपम प्रवर्तित होता रहता है। यदि जीव भगवान्‌का आश्रय लेकर इस प्रवाह-परम्परासे ऊपर न उठ जाय तो उसे सतत भटकते ही रहना पडेगा। इसी आश्रयकी प्राप्तिके प्रसगम श्रीमद्भागवतमे ईशानुकथाका वर्णन आता है। भगवान् और भक्ताके अनेक आख्यानासे युक्त चरित्रका 'ईशानुकथा' कहते हैं। दूसरे शब्दाम निज अशभूत प्राणियाके कल्याणार्थ सृष्टि तथा स्रटाक एकत्व-दर्शनपूवक अपना प्रामाणिक ज्ञान प्रस्तुत करते हुए समय-समयपर विभिन्न अवतार धारण कर त्रिभुवनको पावन करनक लिये भगवान् जो लीलाएँ करत हैं तथा इसीक साथ उनके आश्रित भक्ताकी जा शिक्षादायिनी गाथाएँ हैं, उन्हीं सबको ईशानुकथा लीला कहा गया है।

[८] निरोधलीला—निरोधका सामान्य शास्त्रीय अर्थ है प्रलय। जब ससारम तमागुणका आधिक्य हा जाता है तब भगवान् विपरीत गतिका निरोध करनेक लिये प्रयत्न करते है। इसक सम्बन्धम श्रामद्भागवतम बताया गया है—'जब भगवान् अपनी शक्तियासहित सो जात हैं तब सारे जगत्‌का निरोध हो जाता है—

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मन सह शक्तिभि ।

(श्रीमद्भा० २। १०। ६)

[९] मुक्तिलीला—आत्यन्तिक लयको मुक्ति कहा जाता है। आत्यन्तिक लयकी उपलब्धि भगवत्तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ति तथा भगवान्‌की प्राप्तिके उपरान्त होती है। ईश्वरोपलब्धिके पश्चात् ही जीवके पुरुपार्थकी समाप्ति होती है और उसके लिये ससारका आत्यन्तिक लय हो जाता है। वेदान्तकी दृष्टिसे एकमात्र मुक्ति कैवल्य ही है और उसकी उपलब्धि अन्त करणकी शुद्धिके पश्चात् परम ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा अविद्याके नाशसे होती है। इस अविद्याका नाश अन्त करणकी शुद्धि निष्कामकर्म और ईश्वरोपासना आदिपर निर्भर है। कैवल्य मुक्तिके लिये ज्ञानोपलब्धि परमावश्यक है। श्रीमद्भागवतके अनुसार—'अपने अज्ञानकल्पित असत्य-रूपको छोडकर अपने वास्तविक रूपम स्थिति ही मुक्ति है'—

मुक्तिर्हित्वान्यथारूप स्वरूपेण व्यवस्थिति ॥

(२। १०। ६)

[१०] आश्रयलीला—श्रीमद्भागवतमे इस लीलाका वैशिष्ट्य इस रूपम प्रतिपादित है—**'दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।'** दशम आश्रयलीला-रूपसे सभाके आश्रय-स्वरूप स्वय वे प्रभु ही निरूपित हुए हैं। आश्रयलीला विद्वानाक अनुसार मुख्य रूपसे तीन प्रकारकी मानी जाती है—कृपामार्गी शरणागत भक्ताकी मर्यादामार्गी ज्ञानी पुरुषोंकी तथा प्रवाही-रूपसे अखिल विश्वकी।

कृपामार्गी शरणागत भक्त विडाल-शावकवत् प्रेमाभक्तिद्वारा कभी स्खलित न होनवाले प्रभु-चरणाका आश्रय पाकर सवात्मना निश्चिन्त हा जात हैं। सर्वात्मना समर्पित इन भक्तोंका अपना कुछ नहीं हाता य पूर्णत विश्वात्माको ही समर्पित हाते हैं और व ही विश्वात्मा इनक सर्वस्व हाते हैं।

मर्यादामार्गी ज्ञाना भक्त दशेन्द्रिया मन बुद्धि तथा

चित्तद्वारा गृहीत विषयासक्तिका त्यागकर भगवदाश्रित हो जाते हैं।

उपर्युक्त विभिन्न आश्रयणोद्वारा प्राप्य परब्रह्म ही सर्ग (सृष्टि)-से लेकर मुक्तिपर्यन्त स्वत सम्पादित होनेवाली लीलाओके आश्रय-स्वरूप हैं। उन्हींका आधार पाकर यह जगत् प्रादुर्भूत होता, स्थित रहता तथा प्रलयकालम उन्हींमे विलीन हो जाता है। इसे ही प्रवाही आश्रयलीला कहा जाता है।

लीला-आसक्तिकी महत्ता—ऊपर विवेचित दशविध लीलाआके अन्तर्गत विशेषत अनुग्रहरूपिणी पोषणलीला तथा ईशानुकथालीलाके अनुसार वे परब्रह्म सृष्टि तथा स्रष्टाके भेदको निरस्तकर ऐसी मङ्गलमयी लीलाएँ किया करते हैं, जिनके श्रवण, कीर्तन एव मनन-मात्रसे जीव कृतकृत्य हो जाता है। इन लीलाओमे आसक्ति होना अनेक जन्म-जन्मान्तरके पुण्योका प्रभाव है। जिन भावुक भक्तोके हृदयमें जिस समय भगवल्लीला-कथामे आसक्तिका उदय हो जाता है, उस समय उनके हृदयमे स्वय 'श्रीहरि' ही आ विराजते हैं। इसे दृष्टिगत कर श्रीमद्भागवत (१। २। ८)-मे कहा गया है—

> धर्म स्वनुष्ठित पुसा विष्वक्सेनकथासु य ।
> नोत्पादयेद् यदि रति श्रम एव हि केवलम्॥

अर्थात् जिनकी प्रेरणासे सूर्यादि ग्रह निज कक्षामे अवस्थित रहकर निरन्तर निज-दायित्व निर्वहनम सलग्न रहते हैं, विश्वकी सारी गतिविधियाँ जिनक कटाक्ष-मात्रस परिचालित होती रहती हैं, उन सर्वेश्वरकी लीलाकथामे जिस धर्म-कर्मद्वारा प्रीति उत्पन्न नहीं होती, वह मात्र श्रम ही है और कुछ नहीं।

भगवल्लीला-आसक्ति अनन्यभक्ति, यथार्थ ज्ञान और वैराग्यकी उत्पादिका तो है ही, इन सबकी यथार्थताको परिचायिका एव रसज्ञताकी प्रामाणिक कसौटी भी है।

भगवल्लीलाकी महिमा वर्णनातीत है। जिनक हृदयम सर्वेश्वरके कृपाप्रसादसे प्रभुकी लीलाकथाम अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, वह भले ही नराधम ही क्या न हो श्रेष्ठतम साधु पुरुष ही बन जाता है। जेसा कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वय अपने श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीता (९। ३०)-मे कहत हैं—

> अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ॥

अत प्राणिमात्रको पूर्णरूपेण भगवान्‌की ही शरण ग्रहण करनी चाहिये—

> सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
> अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥
> (गीता १८। ६६)

अन्तत यही सिद्ध होता है कि समष्टि-रूपम भगवल्लीला ईश्वरके अपने अशकी सर्वात्मना उन्नतिका आनन्दाभिधायी सोपान है।

भगवान् शेष

सहस्रफणधारी, कमल-तन्तुके समान श्वेतवर्ण, मणिमण्डितमौलि, एक-कुण्डलधर, नीलवस्त्रधारी भगवान्‌का यह सकर्षण-विग्रह जगत्‌का आधार है। सम्पूर्ण पृथ्वी भगवान् शेषके एक फणपर राईके समान स्थित है। प्रलयके समय उनके फूत्कारकी अग्निमे विश्व सूखे गोबरके समान भस्म हो जाता है।

प्रलयकालमे भगवान् विष्णु शेषजीके भोगपर शयन करते हैं। भगवती लक्ष्मी चुपचाप उनके श्रीचरणोको दबाती है। शेषजी अपने पूर्व फणसे उनके नाभिनालके लोकपद्मको, उत्तर फणसे प्रभुके मस्तकको एव दक्षिण फणसे उनके चरणोको आच्छादित किये रहते है। वे अपना पश्चिम फण फैलाकर सर्वेशको व्यजन करते है तथा अन्य फणासे भगवान्‌के शख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक-खड्ग, दोनो तूणीर, धनुष तथा गरुड आदिको धारण किये रहते है।

पातालमे नागकन्याएँ भगवान् अनन्तके महाभोगको नाना प्रकारके सुगन्धित अङ्गरागोसे उपलिप्त करती है। मुनिजन इष्टसिद्धिके लिये उनकी आराधना करते है। सनकादि उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते है। प्रभुका यह रूप प्राणतत्त्वका अधिष्ठान है। वे समस्त बलके आश्रय है और वे ही जीवोंके परमोपदेष्टा आदिगुरु है।

'करउँ सकल रघुनायक लीला'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी)

श्रीरामचरित्रके—श्रीरामलीलाके परम रसिक एव अनुभवी भक्तवर श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्मके चरित्रको श्रीगरुडजीसे अत्यन्त भावपूर्ण भाषामे अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'मुझे तिर्यक् योनिसे लेकर देवयोनिपर्यन्त अनेक योनियोमे—अनेक शरीरोमें जन्म लेना पडा'—

कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥

(रा० च० मा० ७। ९६। ८)

परतु श्रीगुरुदेवकी भास्वती अनुकम्पासे और भगवान् देवाधिदेव महादेवके अलौकिक प्रभावसे जन्म-मृत्युका कठिन क्लेश हमे रचमात्र भी व्याप्त नहीं कर सका। प्रत्येक योनियोंमें मेरी भगवद्भजनकी वृत्ति अक्षुण्ण रूपसे बनी रही—

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥

(रा० च० मा० ७। ११०। १)

परमात्मप्रभुकी करुणामयी स्मृति और भगवद्भजनकी वृत्ति जिसके मनमें नैरन्तर्येण—अविच्छिन्नरूपेण सर्वदा विद्यमान रहती है, उसे किसी भी परिस्थितिमे, किसी भी योनिमे, किसी भी कालमें किसी भी देशमें और किसी भी वेशमें क्लेश नहीं हो सकता है। सुतरा भक्तोकी याचना होती है कि—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

(रा० च० मा० २। २४। ५-६)

रामभजनकी वृत्ति जिस भाग्यवान्के पास होती है, उसके अशेष क्लेशोका शमन निश्चित ही हो जाता है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं कि काक देहके पूर्व मुझे पवित्र एव दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमे जन्म मिला—

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥

(रा० च० मा० ७। ११०। ३)

उस ब्राह्मण-शरीरके बचपनमे मैं बालकोके साथ मिलकर खेल खेलता था—*'खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला'* (७। ११०। ४)। परतु मेरे खेलनेका साधन अन्य प्राकृत बालकासे सर्वथा भिन्न था अनूठा था और अत्यन्त अनुरागमय था।

इस सदर्भमें यह ध्यातव्य है कि मात्र श्रीकाकभुशुण्डिजी ही नहीं, अपितु इस कोटिके अन्य महाभागवतोका बालपन भी लौकिक बचपनसे कुछ भिन्न प्रकारका ही होता है अलौकिक होता है, दिव्य होता है और स्नेहार्मिल होता है। उसमे भगवत्प्रेमकी मनोरम तरग समुच्छलित होती रहती हैं। महाभागवत श्रीउद्धवजीके अनोखे, रसमय उपासनामय बालपनका वर्णन और उनके भक्तिमय क्रीडा-साधनका वर्णन महामुनीन्द्र व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी महाराज भावविह्वल होकर करते हैं—

य पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचित।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया॥

(श्रीमद्भा० ३। २। २)

श्रीउद्धवजी जब मात्र पाँच ही वर्षके थे तब अपनी भावमयी बालक्रीडा सम्पन्न करनेके लिये भगवत्-अधिष्ठानकी कल्पना करके अर्थात् मृत्तिका आदिकी मूर्तिका निर्माण करके स्नेहोच्छलित भावपूर्ण हृदयसे उस भावमय श्रीविग्रहका समर्चन करते थे। यही उनका दिव्य एव अलौकिक खेल था। उस समय भाग्यशालिनी जननी प्रातराश—बालभोग करनेके लिये जब बुलाती थीं, तब उन्हे श्रीकृष्णचन्द्रकी—अपने परम प्रियतम प्रमाराध्य परम प्रेमास्पद प्राणाराध्यकी पूजा बीचमे ही छोडकर कलेवा करनेकी इच्छा नहीं होती थी और वे 'मेरी भगवत्परिचर्या अभी सर्वाङ्ग सम्पन्न नहीं हुई है'—इस प्रकारका भावपूर्ण प्रत्युत्तर दे देते थे अपनी वात्सल्यमयी जननीको। धन्य हैं श्रीउद्धवजी! धन्यातिधन्य है उनकी मङ्गलमयी-स्नेहमयी बालक्रीडा!

श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्मम अपने जन्म जन्मान्तराके श्रीरामभक्तिमय सस्काराके कारण किंवा श्रीरामभक्तिरसका उदार हृदयसे परिवेषण करनेवाले भगवान् विश्वनाथकी भास्वती अनुकम्पाके कारण अपने समवयस्क बालकाके साथ मिलकर अपने परम प्रमास्पद करुणामय रघुनन्दन श्रीरामजीकी समग्र लीलाओका अभिनय करते थे—

करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

उपर्युक्त पंक्तिमें 'सकल' शब्द अत्यन्त सारगर्भित है। 'सकल' का भाव है कि श्रीरामजन्मसे लेकर श्रीरामराज्याभिषेक-पर्यन्त वे समस्त लीलाओंका रसास्वादन करते थे। एक बात यहाँ विशेष मनन करने योग्य है कि श्रीकाकभुशुण्डिजी साधनके आरम्भकालमें स्वयं बालकोंके साथ मिल करके श्रीरामलीलाका दिव्य अनुकरण करते थे और साधनकी चरमावस्थामें भी भगवल्लीलारसका समास्वादन करके परमानन्द-सुधासागरमें अवगाहन करके परमानन्द-रससार-सर्वस्वका अनुभव करते थे—

'सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ'॥

(रा० च० मा० ७। ११४। १३)

आरम्भिक अवस्थामें स्वयं लीलाभिनय करते थे और चरमावस्थामें भगवल्लीलाका मङ्गलमय दर्शन करते थे। भाव यह है कि लीलाभिनयका प्रत्यक्ष परिणाम है—स्वयं ठाकुरजीद्वारा सम्पादित लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन। दूसरा भाव है मानव देहद्वारा भगवल्लीलाका अनुकरण और काक शरीरद्वारा भगवल्लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन तथा तीसरा भाव है—भगवल्लीलाके स्नेहमय अनुकरणस्वरूप साधनके द्वारा प्रत्यक्ष श्रीरामलीलाका सहज सम्भव दर्शन।

भगवल्लीलाका अनुकरण एवं चिन्तन वियोगी भक्तोंको भगवत्-मिलनकी तरह ही मधुर आनन्द प्रदान करता है। लीलाकी परिभाषा है—'अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीला'। अपने प्रियतमकी भाँति वेश धारण करना, उनकी ही तरह चलना, दृष्टि निक्षेप करना, हँसना, सम्भाषण करना तथा पूर्णतया प्रियतमकी अनुकृति ही लीला है—

'अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकाया
सख्या पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेषगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकथयन्ति लीला ॥'

उदाहरणके रूपमें श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णगत-प्राणा व्रजसीमन्तिनियोंका प्रसंग—उनकी अलौकिक स्नेहोर्मिल लीलानुकृतिका प्रसंग मननीय है—

श्रीकृष्णवियोगिनी, श्रीकृष्णैकपरायणा, श्रीकृष्णैकमनस्का श्रीकृष्णमयी गोप-वधूटियाँ अपने प्राणप्रियतम प्राणेश्वर जीवनधन जीवन-सार-सर्वस्व रसिकशेखर परमानन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगका अनुभव करके आकुल-व्याकुल हो गयीं। उनके मन-प्राण वियोगाग्निसे संतप्त हो गये। उनके अदर्शनके तीव्र तापसे वे संतप्त हो गयीं—'अतप्यंस्तमचक्षाणा ।' ठाकुरजीकी गति, स्नेहमयी मुसकान, मधुर चितवन, मनको प्रलुब्ध करनेवाली मनोविनोदपूर्ण बातें, उनकी मधुमयी लीलाएँ तथा रमारमण चित्तचोरकी विविध भावभंगिमाओंने गोपाङ्गनाओंके चित्तका अपहरण कर लिया था। वे तो पूर्णरूपेण कृष्णात्मिका हो गयी थीं, फिर तो वे अपने प्राणेश्वरकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं—

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। २)

अनुराग-सरोवरमें निमग्न गोपियाँ अश्वत्थ, वट, प्लक्ष, रसाल, प्रियाल, कटहल आदि वृक्षोंसे तथा मालती, माधवी, मल्लिका, चमेली, जूही आदि लताओंसे अपने प्राणेश्वरके विषयमें पूछती हुई, भावपूर्ण अन्वेषण करती-करती जब वे श्रान्त-क्लान्त-परिश्रान्त हो गयीं, तब मुरली-मनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रकी मधुर लीलाओंका अनुकरण करने लगीं—

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। १४)

कोई भावमयी गोपी पूतना बन गयी। पूतनाके अभिनयमें उस गोपीका बड़ा स्नेहिल भाव था। धन्य है पूतना! श्लाघ्य है उसका सौभाग्य।

इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंगमें भी श्रीकाकभुशुण्डिजीके नेत्रोंमें, मनमें, प्राणोंमें श्रीरामदिदृक्षा—प्राणेश्वरकी दर्शन-लालसा समुल्लसित हो रही थी, सुतरां जन्म-जन्मान्तरके वियोगी भक्त श्रीकाकभुशुण्डिजी बालकोंके साथ सम्मिलित होकर अपने परमाराध्यके असमोर्ध्व मङ्गलमय सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहकी मङ्गलमयी दर्शन-लालसासे अपने प्राणधन कौसल्यानन्द-संवर्धन दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रकी समग्र लीलाओंका अनुकरण करने लगे। इसी भावनासे भावित हो करके पूज्य-चरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

'करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

गोकुल-लीलाका आध्यात्मिक संदेश

(आचार्य डॉ० श्रीविष्णुदत्तजी राकेश पी-एच्० डी० डी० लिट्०)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ साधकोका मार्ग-दर्शन करनेवाली हैं और वे स्वय सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होने वेदोक्त धर्मका बार-बार आचरण करके साधनरत प्राणियाको यह बात दिखला दी कि घरमे रहकर भी धर्म, अर्थ और कामकी पवित्र सिद्धि प्राप्त की जा सकती है—

एव वेदोदित धर्ममनुतिष्ठन् सता गति ।
गृह धर्मार्थकामाना मुहुश्चादर्शयत् पदम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ९०। २८)

उपदेश देनेका सच्चा अधिकारी वही है, जो अपने जीवनको स्वय वैसा बना चुका है। प्रवृत्ति और निवृत्ति-प्रधान धर्मको अपने जीवनम उतारकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रन दोना मार्गोके साधकाका मार्ग-दर्शन किया। द्वारकामे भगवान्का आचरण इसी प्रकारका रहा है। वे अनासक्त भावसे कामनाओंकी पूर्ति करते रहे और निष्काम कर्मयोगका आश्रय लेकर भोगोके बीच रहते हुए भी महात्माओका जीवन जीते रहे। श्रुति तथा लोकमार्गका समन्वय उन्होने ही किया।

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुग ।
कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्त साख्यमास्थित ॥
(श्रीमद्भा० ३। ३। १९)

श्रीकृष्णकी गोकुल-लीला कर्मयोगके इसी रहस्यको बतानेके लिय हे। इसीलिये शुकदेवजी महाराजने इसका प्रारम्भ पूतना-मोक्षसे तथा समापन फल-विक्रयिणी लीलामे किया हे। ससारम साधकका स्वभाव कैसा हो? इसका सकत पूतना-मोक्ष लीलामें है। श्रीकृष्ण शय्यापर लेटे हुए हैं। पूतना सुन्दरी बनकर वहाँ जाती है तथा श्रीकृष्णको गोदम उठा लेती ह। भगवान् उस बालघातिनीको देखकर आँख मूँद लत हैं—

चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षण । (श्रीमद्भा० १०। ६। ८)

माना भगवान् बताना चाहते हैं कि अविद्यारूपी पूतनाकी गोदम रहना ता साधककी नियति है, पर अविद्याके क्रियाकलापक प्रति साधकको पूर्ण उपेक्षाभाव रखना चाहिय—उसकी ओरसे आँख मूँद लेनी चाहिये। सासारिक आकर्षणाक प्रति आँख मूँद लना हा साधना है। श्रीकृष्ण जगद्गुर हैं। साधकाको उपदेश करते हैं कि 'जहाँ साधक सासारिक आकषणाम आँख हटा लता है तथा नत्र मूँदकर ध्यानाभ्यासद्वारा चित्तकी प्रगाढ एकाग्रता बनाये रखता है, वहाँ यह पूतनारूपी अविद्या दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।' श्रीकृष्ण आँख मूँदकर निजात्मरूपका ध्यान करने लगे। उन्होने अविद्यारूपी पूतनाको पहचान लिया फिर भला उन आत्मारामका यह पूतना (अविद्या) क्या बिगाड सकती थी?

पूतनाके स्तनामे दूध और विष दाना विद्यमान थे। ससारम भी विष और अमृत दोना प्राप्त होते हे। यहाँ पाप-पुण्य हर्ष-शोक राग-विराग, जन्म-मरण-जेसे विषमभाव निरन्तर विद्यमान रहते हैं। बन्धन तथा मोक्ष भी रहते हे। अब यह साधकपर निर्भर करता हे कि वह बन्धन चाहता है या मोक्ष। पाप करता है या पुण्य। श्रीकृष्णने पूतनाका स्तनपान करते हुए दूध ग्रहण कर लिया तथा विष छोड दिया। हसकी तरह दूध-पानी अलग-अलग कर दूध पा लिया। सताका स्वभाव ही एसा होता हे—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

श्रीकृष्णने उपदश किया, जगत् गुण-दोषमय होता हैं इसमेसे मेरी तरह अच्छाई ग्रहण करो तथा बुराई छाड दो। यह कर्मयोगीका सकारात्मक गुण है।

ऐसे ही साधकको अपनी जागतिक प्रवृत्तियोके शकटको उलट देना चाहिये। श्रीकृष्णने शकट-भञ्जन-लीलाद्वारा यही उपदेश दिया। उन्हाने लात मारकर शकट उलट दिया। साधकको भी भौतिक सुखा एव अनात्म जगत्का ऐसे ही लात मार देनी चाहिये उसे ठुकरा दना चाहिये। अनात्मका त्याग श्रेयस्कर होता है। यहाँ भागवतकारने शकटको उलट दिया—एसा वर्णन किया है—

कथ स्वय वै शकट विपर्यगात्॥

इससे सिद्ध है कि भगवान् साधकाकी शिक्षाके लिय ही यह लीला कर रह हैं। मानो भगवान् कहते हैं कि 'हे जीवात्मा! तू अपनेका नहीं जानता इस नष्ट हानेवाली मिट्टीकी गाडीको सरपर रखकर लटा हुआ हैं। तू चेतन पुरुष नीच लेटा है और यह जड-प्रपञ्च तर सिरपर चढा हुआ है। तू ता गरुडक समान सुन्दर और चिदाकाशम उडनेवाला हैं। तू इम धरती या एक परिवार एक जाति

एक देश तथा एक सम्प्रदायका नहीं। तू पृथ्वीसे ऊपर उठ अपन ज्ञानालोकसे द्युलोकको प्रकाशित कर, अपन तजसे दिशाआको उन्नत कर।' यजुर्वेद (१७। ७२)-का एक श्रुति है—

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्या सीद।
भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तजसा दिश उद्दृꣳह॥

और ठीक इस लीलाक बाद इस मन्त्रके परिप्रेक्ष्यम तृणावर्त-लीलाका आयोजन होता है। सुपर्ण कृष्ण पृथ्वीपर बैठे हैं—

भूमौ निधाय त गोपी विस्मिता भारपीडिता।

अपनी दीप्तिसे अन्तरिक्षको भर देनेकी चाह उनम पदा हो रही है। वे ससारको दीप्त करनेवाले वैश्वानर हैं। प्राणियाम—'**अह वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना दहमाश्रित** 'के कथनानुसार वे अग्निरूपसे विद्यमान हैं, अपने तेजसे व ससारको व्याप्त किये हुए हैं। अत साधकको उपदेश करते हैं कि 'तू वैश्वानर बन ओर मर्त्यलोकसे ऊपर उठ। तू गरुत्मान् हैं अर्थात् महान् आत्मावाला है, अत उस महान् आत्माका साक्षात्कार कर।' तृणावर्त विक्षेप है और प्रपञ्चका व्यवहार विक्षेपशक्ति कहलाता है।

श्रीकृष्णतत्त्वको या आत्मतत्त्वको विक्षेपके समाप्त हो जानेपर ही पाया जा सकता है। अनात्मबोधके त्रिपुर या तृणावर्तको आत्मज्ञानक शिव ही मार सकते हैं। इसीलिये श्रीशुकदेवजी इस वधकी तुलना त्रिपुर-सहारसे करते है, क्योकि त्रिपुर-सहार ज्योतिरूप दिव्यज्ञानास्त्रस हुआ अत विक्षेपका निरसन भी ब्रह्मज्ञानक उदयसे ही होगा।

विक्षेपके साथ ही दूसरी शक्ति है आवरण। आवरण सत्य वस्तुके ज्ञानमे बाधक होता है। अत निर्विकार आत्मदर्शनके लिये श्रीकृष्णतत्त्वके साक्षात्कारके लिये आवरणकी निवृत्ति परमावश्यक मानी गयी है। माँ श्रीकृष्णको दूध पिलाते हुए उनके मुखम सम्पूर्ण जगत्का दर्शन करती हैं। इस रूपको देखकर माँने आश्चर्यसे आँख बद कर लीं।

साधकको विश्वतोमुख भगवान्का परिचय आवरण हट जानेके बाद ही होता है। बिना आवरण हटे उनका स्वरूप नहीं दिखायी द सकता। तभी ता भगवान् प्ररणा दते हैं, साधको। स्वचक्षुआको बद करो तथा दिव्य चक्षुआस मर विराट् रूपका दर्शन करो'—

'न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।'

यहाँ यशोदाद्वारा अपनी आँखे मूँद लेनेका यही तात्पर्य है और इसीके बाद भगवान्का अनुग्रह बरसन लगता है। उन्हे दिव्य चक्षु मिल जात है। वे विश्वरूपका दर्शन करती हैं तथा उनकी अहता-ममता नष्ट हा जाती है। व कह उठती हैं—'यह मैं हूँ, ये मेरे पति हैं यह मरा पुत्र ह म व्रजराजकी राजरानी समस्त सम्पत्तियोकी स्वामिनी हूँ। य गोप गापी और गाधन मर अधीन ह। जिनकी मायासे मुझ इस प्रकारकी कुमति घर हुए ह, व भगवान् ही मर एकमात्र आश्रय है, मैं उन्हींकी शरणम हूँ'—

अह ममासौ पतिरेष म सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती।
गोप्यश्च गोपा सहगोधनाश्च म
यन्माययथ कुमति स मे गति ॥

(श्रीमद्भा० १०। ८। ४२)

नल-कूबरक उद्धार-प्रसगम सत सानिध्यकी महत्ता बतायी गयी ह। बिना दरिद्रता या अकिचनत्वक बोधके समदर्शिता या समताका भाव पदा नही हाता। सिद्धि या असिद्धिम महत्त्व-बुद्धि हानक कारण समताका उदय नही हाता। उलूखल-बन्धन-लीला इसी आर ध्यान खींचती ह। विनाशी पदार्थोंका महत्त्व यदि अन्त करणम बना रहता हे तो समताका उदय नहीं होता। माँ यशोदा श्रीकृष्णको छोडकर दही मथने बैठती है यह विनाशी पदार्थोंके प्रति बढे हुए महत्त्वका ही सूचक ह। अनुकूलता-प्रतिकूलताका नाम आर रूपका द्वन्द्व यहाँ बना रहता है। अत यमलार्जुन-उद्धार प्रसगम देवर्षि नारदस कहलवाया गया—सताके सगसे लालसा-तृष्णा मिट जाती हे ओर साधकका अन्त -करण शुद्ध हो जाता हे अत दरिद्रता (बाह्य पदार्थोस सकोच)-का अभ्यास करा क्याकि उसक भागपदार्थ क्रियामे तो छूट हुए ह ही केवल विचारम शेष ह तृष्णा लालसारूपमे विचाररूपम रहनवाले भाग साधुआकी प्ररणास समूल नष्ट हा जाते हैं। अत विचार आर क्रिया दोनाम ही समभाव जाग्रत् हा जाता है—

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधव समदर्शिन ।
सद्भि क्षिणाति त तर्षं तत आराद् विशुद्ध्यति॥

इसके बाद कर्म समर्पण या ब्रह्मार्पणभावस क्रियासिद्धि प्राप्त होती है। यह दिखानेके लिय गोकुलका फल-विक्रयिणी-लाला समापनके रूपम घटित हाती है। इसीक बाद श्रीकृष्णका वृन्दावन-गमन हाता है, जहाँसे साधकका

भक्तियोगका सदेश मिलता है। गोकुल-लीला कर्मयोग सिद्धिकी लीला है।

कर्मयोगी जब कर्मका फल अपने लिये निर्धारित करता है, सत्कर्मके फलको धर्म, सम्पत्ति, पुत्र एव पौत्रादि सुखतक सीमित मानता है, तबतक वह बन्धनका कारण रहता हे, इसे फलका बेचना कहा गया ह, पर जब कर्म ब्रह्मार्पणभावसे होता है तो वह मुक्ति प्रदान करनवाला होता है। शुकदेवजी कहते हैं—वह फल बेचनेवाली गोकुलम भगवान्‌की अटारीके सामने आवाज लगा रही थी—'फल, लो फल'—

क्रीणीहि भो फलानि। (श्रीमद्भा० १०। ११। १०)

सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी अजलिमे अनाज लेकर दौड। उनकी अजलिसे अनाज मार्गमे बिखर गया फल बेचनेवालीने उनकी अजलि फलासे भर दी और उधर भगवान्‌ने उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोसे भर दी—

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्य करद्वयम्।
फलैरपूरयद् रत्नै फलभाण्डमपूरि च॥

जो यज्ञादि कर्म सकाम होते हैं। उनसे स्वर्गादि लोकोकी प्राप्ति हाती है। कितु जो निष्काम कर्म करत हैं, उन्हे भगवान् भक्तिरूपी रत्न प्रदान करते हैं। यह टोकरी यज्ञवेदी है। फल बेचनेवाली पूर्वमीमासा है तथा श्रीकृष्ण यज्ञेश्वर परमपुरुष। भगवान् मानो उपदेश करते हैं कि सकाम उपासक पुण्यफलाको बेचनेवाले ह, अत तुलनाम कम महत्त्वके हे, पर निष्काम उपासक तथा कर्मयागी पुण्यफलाका समर्पण करनेवाल हें, अत अपक्षाकृत व सर्वश्रेष्ठ हैं। गीतामे भगवान्‌ने कहा भी है कि मुझे सम्पूर्ण यज्ञा तथा तपाका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकाका महान् ईश्वर आर सम्पूर्ण प्राणियाका सुहृद् जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त करता है—

भोक्तार यज्ञतपसा सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृद सर्वभूताना ज्ञात्वा मा शान्तिमृच्छति॥

(गाता ५। २९)

इस प्रकार कर्मयागीकी सिद्धि इस बातम है कि वह समस्त पदार्थ समर्पित कर दे तथा पदार्थोका दान आदि क्रिया-कलाप भी समर्पित कर दे। फलच्छाका त्याग करके ही कर्म करना श्रयस्कर है। भगवदर्पण-भावस कर्म एव कर्मफल प्रदान करनेसे समस्त कर्म शुद्ध हो जाते हैं और कर्ता कर्तापनके अहकारसे विमुक्त तथा आसक्तिसे असग होकर सर्वथा मुक्त हो जाता हे। कर्म और कर्मफल उसे सलिप्त नहीं करते—'न कर्म लिप्यते नर ।'

साराश यह कि निष्कामकर्म-सम्पादन कर्मफलका ब्रह्मार्पण तथा परहित-चिन्तन मनुष्यको परमेश्वरकी प्रियता प्रदान करते हैं तथा एसा कर्मयागी दुर्लभ मुक्तिको सहजम ही प्राप्त कर लेता हे।

भगवदवतार लीलानुवर्णन

(डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री आयुर्वेदशिरोमणि काव्य पुराणदर्शन तीर्थ)

'महता चरित चारुलीलानुश्रवण हरे '

इस वचनानुसार साधकजन नित्य एव आवश्यक कर्तव्यके रूपम महज्जनाके चमत्कारिक चरित तथा मनोहारी भगवल्लीलाआका अनुश्रवण-स्मरण आदि करते रहते हैं।

अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा ।
यथाविदासिन कुल्या सरस स्यु सहस्रश ॥

(श्रीमद्भा० १। ३। २६)

जिस प्रकार अगाध सरावरस नि सृत जल अनक प्रणालियाद्वारा प्रवाहित हाता है उसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त अवतार हैं जिनके द्वारा व विविध रूपम अपना अलौकिक लीलाओद्वारा जगत्‌का आनन्दित करत रहत हैं।

भगवान्‌के अवतारोके मुख्यत छ भेद हैं—

(१) पुरुषावतार

कारणार्णवशायी महाविष्णुके अवतार रूपम यह सकर्पणके अशावतार हैं जा अपन भृकुटि-विन्यासस प्रकृतिको विक्षुब्ध-कर महतत्त्वादिद्वारा इस प्रपञ्चात्मक विश्वका सृष्टि करत हैं।

(२) गुणावतार

जा सत्त्वगुणद्वारा विश्वके पालक विष्णुस्वरूप हैं उन्हींके द्वारा रजागुणात्मक सृष्टि-कारक ब्रह्मा तथा तमागुणात्मक

सृष्टि-सहारक शिवकी उत्पत्ति है।

(३) मन्वन्तरावतार

, ये चौदह प्रकारके हैं। ब्रह्माके एक दिनम चौदह मन्वन्तर होते हैं एव प्रत्येक मन्वन्तरम एक-एक अवतार होते हैं।

(४) शक्त्यावेशावतार

इसके आवेश प्रभाव, वैभव तथा परावस्थ भेद हैं इनमें उत्तरोत्तर अधिक शक्ति एव प्रकाशकरूपमें अवतारकी श्रेष्ठता है।

(५) युगावतार

सत्य, त्रेता, द्वापर एव कलियुग—इन चार युगाम भगवान् युगावतार-रूपम अवतीर्ण होते हैं।

सत्ययुगमे—

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बर ।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू॥

(श्रीमद्भा० ११ । ५ । २१)

भगवान् शुक्लवर्ण, जटावल्कल वस्त्रधारी, मृगचर्म, यज्ञोपवीत, अक्षमाला तथा दण्ड-कमण्डलु धारणकर अवतरित होते हैं।

त्रेतायुगमे—

त्रेताया रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखल ।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षण ॥

(श्रीमद्भा० ११ । ५ । २४)

भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिगुण मखलाधारक, सुनहर केश, त्रयी वेदात्मक रूप तथा स्रुक-स्रुवादि धारणकर अवतीर्ण होते हैं।

द्वापरयुगमे—

द्वापरे भगवाञ्छ्याम पीतवासा निजायुध ।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षित ॥

(श्रीमद्भा० ११ । ५ । २७)

भगवान् श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, चक्रादि आयुधासहित कौस्तुभादि मणियोसे अलकृत होकर अवतीर्ण होते हैं।

कलियुगमे—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञै सकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस ॥

(श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३२)

भगवान् श्रीकृष्ण स्वय कृष्ण-प्रभाभासित होकर अपनी महाभाव-स्वरूपा प्रियतमा श्रीराधिकाकी भावाङ्ग गौरकान्ति धारणकर अपने श्रीनित्यानन्दादि प्रिय पार्षदाके सहित कलियुगका एकमात्र साधन हरिनाम सकीर्तनके प्रचार-प्रसारहेतु श्रीगौराग महाप्रभु रूपमे अवतरित हुए। बौद्धिकजन सकीर्तनात्मक यज्ञमे उनकी आराधना करते हैं।

(६) लीलावतार

भगवान्के श्रीवामन वाराह कूर्म, धन्वन्तरि आदि अनेक लीलावतार हैं, जो प्रतिकल्पम एक बार अवतरित होते है और इनकी अशावतार-रूपम परिगणना है।

एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा० १ । ३ । २८)

'कृष्णो वै परम दैवतम्।'

(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् १)

किंतु श्रीकृष्ण षोडश कलात्मक पूर्ण भगवदवतार हैं, एव इस श्रीकृष्णावतारम ऐश्वर्य और माधुर्यका पूर्ण प्रकाश होनेक कारण कृष्णावतार ही सर्वश्रेष्ठ अवतार हे।

मानवरूपमे श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ हैं वे सर्वोत्कृष्ट एव रसिकजनाके हृदयामे रसोत्पादक हैं। उनका वह नटवर-नागर गोपवेश चराचर जगत्को विमोहित कर देता है। जब वे कदम्ब-काननमे मधुर मादक मुरलीकी तान छेडते हैं, तब पानी-भरे बादल सहसा रुक जाते हैं, गन्धर्व अपने गायनको छोड चमत्कृत हो उठते हैं, सनकादि मुनियाके ध्यानमे बाधा उत्पन्न हो जाती है, ब्रह्मा चकित-भ्रमित हो जाते हे एव शेषनाग फणाको ऊपर उठाकर झूमने लगत हैं। इस प्रकार कन्हैयाकी बाँसुरीके स्वर ब्रह्माण्डका भेदकर चारो ओर गुजायमान हो उठत हे।

श्रीकृष्ण जब व्रजवृन्दावनमे स्वजनाके साथ रहत हैं, तब उनका प्रकाश पूर्णतम मथुराम पूर्णतर द्वारकाम पूर्ण तथा गोलोकम पूर्ण कल्पकी स्थितिमे रहता है एव इसीके अनुसार व्रजवृन्दावनमे माधुर्य विशेष तथा ऐश्वर्यम कमी रहती है। मथुरासे द्वारकाम और द्वारकासे गोलोकम माधुर्य कम तथा ऐश्वर्य विशेष रूपसे रहता है। गोलोककी लीलाएँ और वृन्दावनकी लीलाओमे भेद नहीं है, किंतु व्रजवृन्दावनम माधुर्य तथा गोलोकमे ऐश्वर्यका पूर्णतम प्रकाश है यही इन दोनोका भावान्तर भेद है।

वे रसिक भावुक व्रजवासीजन आज भी उस गौर-श्याम युगलकी लीलाओका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्तकर अपने भाग्यकी सराहना करत है। धन्य हे श्रीराधा-माधवका यह वृन्दावन और धन्य है उनकी व ललित लीलाएँ।

श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम्०ए०, एल्० टी०, साहित्यरत्न)

रासलीला एक दिव्य प्रेम-सुधा-रसका समुद्र है, उसकी दो धाराएँ हैं। दो ओरसे आती हैं, टकराती हैं और एक हो जाती हैं। पहली लहर दूसरी हो जाती है दूसरी लहर पहली हो जाती है। इस प्रकार प्रेमी-प्रियतम प्रियतम-प्रेमीके अन्यतम मिलनकी यह अनन्त धारा चलती रहती है। नया मिलन नया रूप नया रस, नयी प्यास और नयी तृप्ति—यही प्रेम-रसका अद्वैत स्वरूप है। इसीका नाम रास है।

गोपियाँ रसविशिष्ट प्रेमवृत्ति हैं। राधारानी मूर्तिमती ब्रह्मविद्या हैं, आराधना हैं, आराधिका हैं, आह्लादिनी शक्ति हैं। एक कृष्ण, एक वृत्तिकी अद्वैत-रसभावनासे ओतप्रोत हृदयके रगमचपर सधिस्थानीय श्याम-ब्रह्म और तदाकार-वृत्तियोकी धाराके रूपमे गोपियाका नृत्य ही रासलीला है।

रास—शास्त्रीय दृष्टि

शास्त्रीय दृष्टिसे देखे तो—'श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, पूर्ण परब्रह्मके अवतार हैं और सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। सद्भावका प्रकाश उनके धर्माचरणमे, चिद्भावका प्रकाश उनके निर्विकार अनुभूति एव उपदेशोमे तथा आनन्दभावका परिपूर्ण विकास उनकी रासलीलामे हुआ है। रासलीला एक आनन्द-प्रधान लीला है। वेदोमे मधु, आनन्द रस एव सुखके नामसे उन्हींका वर्णन है।

रासमे साहित्य सगीत और कला (नृत्य)-का समन्वय होता है। 'सत्य शिव सुन्दरम्' की यही पहचान है। इस रासलीलामे काम अशमात्र भी नहीं है। देव गन्धर्व, किन्नर तथा नारद आदिने भी आकाशसे एव श्रीमहादेवजीने स्वय गोपी बनकर गोपीश्वर महादेवके रूपमे वशीवटपर वृन्दावनमे रासलीलामे प्रवेशकर महारासका अपने तीनो नेत्रोसे निहारा करते हैं। आज भी श्रीगोपीश्वर महादेवके रूपमे निहार रहे हैं।

आध्यात्मिक रहस्य

रासलीलाके प्रमुखत तीन सिद्धान्त हैं—(१) रासलीलामे गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है (२) लौकिक काम नहीं है और (३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ब्रह्मका मिलन है।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शुद्ध जीवका अर्थ है—मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐसे जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है। इसीलिये गोपियोके साथ श्रीकृष्णने महारासमे पूर्व 'चीरहरण'-लीला की थी। चीरहरण-लीलामे जब वाह्यावरण उपाधि नष्ट हुई तो रासलीला हुई। जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देह ढँकता है उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्माको ढक देते हैं और परमात्माको दूर करते हैं। जबतक अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर नहीं हो जाता, तबतक शिवसे मिलन नहीं हो पाता। वस्त्रहरण-लीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उडा ले जानेकी लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु-मिलनमे बाधक हैं। इन्द्रियोके कामको हटाना सरल है किंतु बुद्धिगत कामको निकाल बाहर करना बडा कठिन है। श्रीकृष्णने गोपियोके वासनारूपी आवरणको हटा दिया। शुद्ध-बुद्ध गोपियाके साथ महारास किया।

श्रीधरस्वामीके अनुसार पञ्चाध्यायी रासलीला निवृत्तिधर्मका परम फल है। रासलीलाके पाँच अध्याय पञ्च प्राणोके सूचक प्रतीत होते हैं। पञ्च प्राणोका ईश्वरके साथ रमण ही 'रास' है।

वेणुगीतकी बाँसुरी तो केवल पशु-पक्षियोको ही नहीं सबको सुनायी देती है किंतु रासलीलाकी बाँसुरी तो ईश्वर-मिलनातुर अधिकारी जीव गोपीको ही सुनायी देती है।

निशम्य गीत तदनङ्गवर्धन
व्रजस्त्रिय कृष्णगृहीतमानसा ।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं देह-भान भूली हुई देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होनपर प्रभुकी चिन्मयी लीलामे प्रवेश मिलता है।

अन्तर्मुख-दृष्टि करके जीव जब भगवान्के पास पहुँचता है, तब वे उससे पूछते हैं—'मेरे पास क्या आया है?' गोपियोसे भी पूछा—'अर्धरात्रिमें क्या आयी हो?' पतिसेवा तथा सतानसेवा करो रात्रिमे मिलन उचित नहीं। जीवका परमात्मा सहज नहीं

मिलते हैं। जीवको भ्रान्ति होती है। ससारम रत रहो, वहीं तुमको सुख मिलेगा। मैं सुख नहीं, केवल आनन्द ही दे सकता हूँ।

ब्रह्म जीवको ससारम लौटाता है, प्रलोभन देता है, माया-जालमे फँसाता है। रासलीलाके रसिक-शिरोमणि नटवर नागर श्रीकृष्णके इतना कहनेपर गोपियाँ कहती हैं—

पादौ पद न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथ व्रजमथो करवाम कि वा॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। ३४)

'(हे गोविन्द!) हमारे पाँव आपके चरण-कमलोको छोडकर एक पग भी पीछे हटनेको तैयार नहीं हैं, हम व्रजका लौटे तो कैसे? और यदि हम लौट भी तो मनके बिना वहाँ हम क्या करे? हमारा मन आपम ही रमा हुआ है। हम भी आपके स्वरूपसे तदाकार हाना चाहती हैं।'

प्रभुने सोचा कि इन गोपियोका प्रेम सच्चा है। जीव शुद्ध भावसे मुझसे मिलने आया है ता उसे अपना लिया। श्रीकृष्णने एक साथ अनेक स्वरूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं, उतने स्वरूप बना लिये और प्रत्येक गापीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासलीला आरम्भ किया।

हजारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है, जीव आज ईश्वरमय हो गया। वे दोना एक हो गये। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनाको अति आनन्द हुआ।

गोपियाँ श्रीकृष्णमय तथा भगवन्मय हो गयीं। सभी हाथोसे हाथ मिलाकर नाचने लगीं। यह ता ब्रह्मस जीवका मिलन हुआ है। इस प्रकार अद्वैत सिद्धान्तके आचार्य श्रीशुकदेवजीने रासलीलामे अद्वैतका वर्णन किया है।

महारास देखते-देखते श्रीब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ निष्काम तो हैं, फिर भी देहभान भूलकर इस प्रकार परायी नारीसे लीला करना शास्त्र-मर्यादाका उल्लघन ही है। ब्रह्माजी सशकित हुए। ब्रह्माजी यह नही जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं धर्मका फल है। श्रीकृष्णने एक और खेल रचा—

श्रीकृष्णने सभी गोपियाको अपना स्वरूप द दिया। अब तो सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दिखायी दे रहे थ। गोपियाँ थीं ही नहीं। सभी पीताम्बरधारी कृष्ण है और एक-दूसरेसे रास खेल रहे है।

श्रीब्रह्माजीने मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं है। श्रीकृष्ण गोपीरूप हो गये हैं। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

यह विजातीय तत्त्वका—स्त्रीत्व और पुरुषत्वका मिलन नहीं अश और अशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं, प्रभुरूप बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानके बाद जीवका स्वत्व कहाँ रहा?

रासलीला करनेका कारण

जब हम 'श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहत हैं तब यह बात अपने-आप स्पष्ट हो जाती हे कि कृष्ण कामी नहीं भागी नहीं, बल्कि निष्काम-कर्मके अधिष्ठाता एव स्वय यागश्वर हैं। जिस प्रकार उन्हान ब्रह्माजीका गर्व गो-वत्स-हरण-लीला करके, अग्निका गर्व दावानल-पान-लीला करके और इन्द्रका गर्व गोवर्धन-धारण-लीला करके नष्ट किया, उसी प्रकार उन्होने रासलीला करके कामदेवका गर्व भी नष्ट किया।

रासलीला श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और गोपियोंके साथ की गयी लीला हे। उनका परस्पर अपूर्व मिलन है।

रासलीला श्रीकृष्णका श्रीकृष्णसे तथा जीवका ब्रह्मसे मिलन है। 'एकोऽह बहु स्याम्' म लीलाका आध्यात्मिक पर्यवसान है। ब्रह्म ही ऋषियोसे, गोपियासे आह्लादिनी शक्तिसे, राधा-गोपियोसे एव जीवधारियासे मिल रहा है।

उपर्युक्त लीला-प्रसगाम यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रासलीला महालीला है अद्वैतभावका व्यक्त स्वरूप है, अशका अशीमे परम मिलन है भेदबुद्धिरूप लौकिक दृष्टिका निरसनकर अभेदबुद्धिरूप आध्यात्मिक यथार्थ तत्त्वका महिमामण्डित स्वरूप ह। प्रेम प्रेमी और प्रमास्पदका अभिन्न प्रतिपादक हे। अत इस लीलाक रसाशका भी अनुभव हो जानेपर जीवको वह सायुज्य प्राप्त हा जाता है जिस जन्म-जन्मान्तरके प्रयाससे भी सिद्ध, मुनि यागी आर साधक प्राप्त नहीं कर पाते और अन्तत इस रासलीलाक आनन्दातिरेकम जीव शिव हा जाता है। यह तादात्म्य हा रासलीलाकी आध्यात्मिकता है उसका रहस्य है।

लीलाधरकी दिव्य-लीला

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली)

ब्रह्ममयी मायामयी युग विध एकहि सृष्टि।
ताको तैसी लखि परै, जाकी जैसी दृष्टि॥

यह अखिल विश्व उस सद्घन-चिद्घन-आनन्दघन, परम सत्य-स्वरूप सर्वेश्वर, सर्वनियामक सर्वाधार परमात्मा प्रभुका लीला-चिद्-विलास वैभव है। उस अपरिमेय, अपरिसीम, निरुपम, एकमेवाद्वितीय सर्वशक्तिमान् लीलाधर प्रभुने अपनी निरकुश इच्छासे—अपने सत्-सकल्पद्वारा अपनेको तथा अपनी शक्तिको अनेक रूपोमे विभाजित करके अपने मनोरजनके लिये यह अद्भुत खेल रचा रखा है। यथा—

'एकोऽह बहु स्याम्'

अर्थात् मैं हूँ तो एक, किंतु अनेक रूपोमे व्यक्त होकर एक खेल रचाऊँ ऐसी इच्छा की। प्रश्न उठता है कि उस आत्माराम, पूर्णकाम प्रभुके मनमे ऐसी इच्छा क्यो? इस 'क्यो' का सही-सही उत्तर तो वह परमात्मा ही दे सकता है, किंतु यह तो स्पष्ट है कि इच्छा करने अथवा न करनेमे वह स्वतन्त्र है, क्योकि वह स्वराट् है। उसका नाम है 'राम'। उसका नाम राम क्यो? रामका क्या तात्पर्य? इस सम्बन्धमे सूरिजन कहते है कि—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् ६)

'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' आदि वचनोसे उसका सहज ही रमण (क्रीडा)-परायण स्वभाव व्यक्त होता है। हाँ, इस रमणकी प्रक्रियाके लिये उसे अपनी अभिन्न स्वरूपभूताशक्ति अर्थात् अपनी अन्तरङ्गा प्रकृति श्रीकिशोरीजीका सहारा लेना पडता है, जिन्हे अनेक नाम एव रूपोमे जाना जाता है। यथा—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।८)

इन्हे अन्तरङ्गा प्रकृति बहिरङ्गा प्रकृति तथा तटस्था प्रकृतिके नामसे भी जाना जाता है। अन्तरङ्गा प्रकृति तो साक्षात् श्रीजी हैं जो श्रीदेवी भूदेवी एव लीलादेवी अथवा नीलादेवीके रूपसे प्रभुकी रुचिके अनुसार सेवा करती रहती हैं। अन्य दो प्रकृतियाँ अनेक नाम और भेदसे जानी जाती हैं। बहिरङ्गा और तटस्थाको श्रीमद्भगवद्गीताम अपरा एव परा प्रकृति अथवा क्षेत्र एव क्षेत्रज्ञ कहकर वर्णन किया गया है। यथा—

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृति विद्धि म पराम्। इत्यादि।

लीला-रचना एव क्रीडाके लिये उस प्रभुका अपनी प्रकृतिका सहयोग लेना इसलिये आवश्यक हुआ कि—'स एकाकी न रमते'। अत —'प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म-मायया' अथवा 'योगमायामुपाश्रित ' इत्यादि वचन इस बातके प्रमाण हैं कि अपनी प्रकृतिको अपनी सगिनीके रूपमे प्रकटकर वह क्रीडा करता है।

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च।
अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७।४)

इस श्लोकमे वर्णित अष्टधा (अपरा) प्रकृतिको तो अपने विश्वरूपी रगमचकी तैयारी-हेतु करण अर्थात् साधन रूपम प्रयुक्त किया। फिर इसकी रचना करनेके लिये कर्त्री अथवा कारिणीके रूपम अपनी योगमाया शक्तिको निर्देशित दिया, जो योगमाया प्रभुकी रुचिके अनुसार रचना करती-कराती हैं। तत्पश्चात् प्रभुने इसके सचालनार्थ—अर्थात् रचनार्थ, पालनार्थ एव उपसहारार्थ अपनेको तीन रूपाम व्यक्त किया। इसके लिये उन्हे पुन अपनी प्रकृतिके सत्त्व, रज एव तम—इन तीन गुणोको स्वीकार करना पडा।

इस प्रकार लीला-मच भी तैयार हो गया मच एव मच-लीलाकी व्यवस्था करनेवाले रचनाकार निर्देशक एव समेटनेवाले भी तैयार हो गये। अब आवश्यकता प्रतीत हुई इस मचपर पधारकर विभिन्न रूपोमे उपस्थित होकर अपनी-अपनी भूमिका निभानेवाले पात्र-परिकराकी। एतदर्थ प्रभुने अपने सकल्पसे प्रकट किये हुए अपने अशभूत जीवात्म चेतनधारियोको इस विश्वरूपी रगमचपर उतारा—

'ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन।'

(गीता १५।७)

काल, कर्म, गुण एव स्वभाव आदिके घेरेम डलवाकर प्रभुने इन सबकी नकेल—डोरी अपने हाथोमे रखी। यथा—

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
(रा० च० मा० १। १०५। ५)

इस प्रकार यह विश्वरूपी रगमच सज गया एव लीला प्रारम्भ हो गयी। इसका दर्शक कौन होगा? मानसके इन शब्दोमे प्रभु ही दर्शक होकर आनन्द लने लगे। यथा—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
(रा० च० मा० २। १२७। १)

यह लीला कबसे प्रारम्भ हुई है, कुछ पता नहीं। कबतक चलेगी, इसका भी कोई निर्णय नहीं। कभी प्रलय करके एक बार सारा खेल समेट भी लिया जाय, तो पुन सृष्टि-रचनाका वही पुराना क्रम चालू हो जाता है—'यथापूर्वमकल्पयत्'।

वह नटवर विचित्र खिलाडी है। कभी तो मात्र दर्शक रहकर देखता है, कभी स्वय भी कूद पडता है और खेलने लगता है। विश्वके सभी चेतन उसीके अश हैं। कोई किसी भावम भावित हैं, कोई किसी भावमे भावित हैं। खेल अधिकतर सख्य-भावभावित होकर ही विशेष रूपसे जँचता है, क्योकि—

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
(रा० च० मा० २। ७४। ६)

इस दिशामे एक तुकबदी प्रस्तुत की जा रही है। सम्भव हैं, उसके खेलका एक नमूना होकर भा जाय। यह नमूना उसके सख्य-भावभावित खलका है—

दुनिया के बाल सखा, आपसमें
खेल कोई भी जब खेलै।
तब एक दूसरे से आनन्द लहै-
सुख सरितामें हेलै॥
वृद्धावस्था तक खेल-खेल,
जीवात्मा उर सतोष धरै।
जीवात्मा एक जीवात्मा को
किस सीमा तक आह्लाद भरै॥
यद्यपि जीवात्मा ईश्वरांश है
सत्-चित् और आनन्द रूप।
पर ईश्वर की तुलना मे है,
सर-वापी और तड़ाग कूप॥
परमात्मा है आनन्द सिन्धु,
तो बिन्दु मात्र यह जीव अहे।
एक बिन्दु, दूसरे बिन्दु सखा से,
बिन्दु मात्र आनन्द लहे॥
आनन्द सिन्धु प्रभु सखा रूप में,
मिल जाये तो क्या कहना?
उसके आगे फिर शेष नहीं,
रह जाता है कुछ भी लहना॥
वे जीव भाग्यशाली अतिशय,
जिनको प्रभु ने अपनाय लिये।
जो अन्तर्मुख हो शरण पड़े,
औ प्रभु ने हृदय लगाय लिये॥
जब जैसा खेल उसे भावे
निज सखन सग खेला करता।
जो उसका रुचि अनुवर्त्ती है,
उसके नखड़े झेला करता॥
जग उसका खेल तमाशा है,
यह नटवर अजब खेलाड़ी है।
उसके इस खेल तमाशे को,
क्या समझे मूढ अनाड़ी है॥
कबहूँ नभ मे उड़ती पतग,
कबहूँ भौरा और चकडोरी।
कबहूँ तो आँख मिचौनी खेले
कबहूँ करै माखन चोरी॥
कबहूँ तो स्वय आँख मींचे,
औ छिपै सखा, खोजै नटवर।
कबहूँ अनजान बना भटकै,
कबहूँ तो लेइ पकड़ि सत्वर॥
कबहूँ मन में आई, अब लौ-
ये छिपे और खोजा मैने।
अब मै छिप जाऊँ ये खोजैं,
पड़ जावै लैने के दैने॥

बोला, तुम सभी नेत्र मूँदो,
इस बार छिपूँगा मै प्यारे।
छिपने की ठौर बता भी दूँ,
भव-अटवी में खोजो सारे॥
ऐसा कह कर छिप गया छली,
सबही की आँखे मुँदवाईं।
व्यापक हो बैठा कण-कण मे
ज्या मेहदी मे लाली छाई॥
सरसो और तिल मे तैल-
पुष्प मे गन्ध, ईख म मधुराई।
घृत छिपा दुग्ध मे, वृक्ष बीज म,
बर्फ माँहि शीतलताई॥
अब खोजि लहु मुझको मित्रो,
मै छिपा विश्व के कण-कण मे।
धरती पाताल गगन जल मे,
जड चेतन, कार्य अरु कारण म॥
श्रुति शास्त्र सन्त औ सद्गुरु-
युक्ति बताते मुझको पाने की।
आवश्यकता है प्रियतम की-
वह प्रीति-रीति अपनाने की॥
अपनाकर प्यारी प्रीति रीति
प्रह्लाद ने पाये खम्भे मे।
कुत्ते मे पाये नामदेव,
दुनिया रह गई अचम्भे म॥
गर्दभ मे एकनाथ पाये,
मीरा ने विपके प्याले मे।
नाहर मे रत्नावती देवि,
कुन्ती ने विपति कसाले म॥
धन्ना ने श्याम शिला के माँहि,
कीर्तन मे गौर निताई ने।
श्रीशालिग्राम शिला म पाये
प्रेमी सदन कमाई ने॥
तुलसी ने देखा चित्रकूट म
सूरदास वृन्दावन म।
श्रीरामानुज ने विन्ध्य क्षेत्र
वन बीहड़ के -सूनपन मं॥
देखा कबीर ने याचक म
कुजन म रूप सनातन ने।
जित देख उत म श्याम-श्याम,
व्रज मण्डल के विरही जन ने॥
सतयुग वालो ने ध्यान योग मे
त्रेता यज्ञ-विधाना म।
द्वापर मे परिचर्या विधि म
कलियुग म हरि-गुण-गानो मे॥
पण्डित प्रवरो ने श्वान श्वपच-
पर्यन्त मूर्ख-विद्वानो मे।
समदर्शी हो, बहुता ने देखा,
देवल और मसाना म॥
श्रीभीष्म सुधन्वा चन्द्रहास-
हसध्वज ने समरागण म।
शुक सनकादिक ज्ञानी भक्तन ने
लखा विश्व के कण-कण म॥
इस तरह बना जिनसे जैसा
जिन जिन की दृष्टि रही जैसी।
तहँ तहँ तिन तिन ने मोहन प्यारे-
की झाँकी देखा तैसी॥
इन पूर्व खोजियो मे से जिनकी
पद्धति जिसको जँच जावै।
वह वही रीति अपनाव, औ-
गुरु कृपया नश्वर को पावै॥
यद्यपि श्रुति सन्त कहै उसको
साधन से कोई पा न सके।
फिर भी साधन करिय जिमस
आलस्य प्रमाद सता न सक॥
वह साधन-साध्य नहीं प्यारे
वस कृपा-साध्य कहलाता है।
जिसको मिलना चाह छलिया
वम वही ता उसका पाता है।
पर इसका यह तात्पर्य नहा है,
साधन स मुँह माड़ै हम।

जो प्रीति रीति गुरुवर ने दी,
वह जान बूझकर छोड़े हम॥
अति वृष्टि होय या अनावृष्टि,
खेती नहिं छोड़ै कास्तकार।
ऐसे ही लागे रहो, भजन-सुमिरन
में हो के तदाकार॥
तुम उसको खोज नहीं पावो,
वह तुम्हें खोजता आयेगा।
वह दीनबन्धु असहाय-सखा,
कबहूँ न कबहूँ अपनायेगा॥
बौना ऊँची डालीका फल,
नहिं उछल कूद से पा सकता।
पर, बौना उछल रहा भरसक,
साधन नहिं छोड़ा जा सकता॥
एक लम्बे व्यक्ति, दयालु-हृदय में,
करुणा सहज उमड़ आई।
दे दिया तोड़ फल, हाथ बढ़ा,
अब तो बौने की बनि आई॥
अब करिये जरा विचार बन्धु,
फल मिला उसे किस साधन से।
लम्बे दयालु की करुणा से,
या उछल कूद आराधन से॥
दोनो है परमावश्यक, लम्बे की-
करुणा, लघु का प्रयास।
लम्बे की कृपा क्यो होती, यदि,
बौना बैठा होता निराश॥
बौना तो है यह क्षुद्र जीव,
लम्बे दयाल हरि-गुरु कृपाल।
हरि-गुरु की कृपा होय जब ही,
यह जीव होय तब ही निहाल॥
है यदपि स्वरूप साम्य इसमे,
फिर भी ये जीव है बाल सखा।
श्रुति शास्त्र सन्त बतलाते है
ईश्वर इसका प्रतिपाल सखा॥
इस बाल सखा को कृपा अपेक्षित,
अहै सदा प्रतिपालक की।
प्रतिपालक ही कर सकता है,
साँची सम्हाल इस बालक की॥
ईश्वर तो सदा व्यग्र रहता है,
कृपा-प्रेम बरसाने को।
'नारायण रह तैयार सदा,
अपने मे पात्रता लान को॥
है हृदय तुम्हारा पात्र,
रहे नहिं औधा, शीघ्र सीधा कर लो।
प्रभु-कृपा-प्रेम के अमृत से
रह सतत प्रयत्नशील भर लो॥
संशय का छिद्र न हो हिय म,
कचड़ा भी हो न वासना का।
जग-चिन्ता तज रख ध्यान सदा
सन्तत प्रभु की उपासना का॥

यह तो रही, इस विश्वकी त्रिगुणात्मिका मच-लाला। इसके अतिरिक्त वह नटवर, नट-नागर अपन नित्य सिद्ध परिकरोके साथ अपन त्रिपाद-विभूतिगत साकेत गालाक अथवा वैकुण्ठ सञ्ज्ञक त्रिगुणातीत धामम अपनी नित्यलीलाम सतत सलग्न रहता है। जिस धामका सकेत दत हुए श्रीमद्भगवद्गीता (१५। १६)-मे वह स्वय कहता ह—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावक ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम॥

जा एक बार उस त्रिगुणातीत भगवद्धामम पहुँच जाय उमक लिये उद्घोष ह—'न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते।'

यह समग्र स्थिति उन्ह सहजम प्राप्त हाती ह जा प्रभुक लीला-चरित्रका सेवन किया करत ह यथा—

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं त न परहिं भवकूपा॥
(रा० च० मा० १। १९२ छ० ४)

जो जीव उस प्रभुका विश्व-मचवाली त्रिगुणात्मिका लीलाका नहीं समझ पात हैं, या इस लीलाम उसका लीलाका दर्शन नहीं कर पात हैं उनक लिय वह नटवर किसी-न-किसी बहाने अवतार लेकर अपना दिव्य धामगत लीला-वैभव लेकर सपरिकर स्वय भूतलपर उतर आता ह—

नारायण बैकुण्ठ मँहँ बैठे करत विचार।
बनै बहानो अस कछु, लूँ भूतल अवतार॥
विविध रूप धरि के करूँ लीला को विस्तार।
जीवन के उद्धार हित होय बड़ो आधार॥
जीव हमारे अश है, भटकत जगत मँझार।
गाय-गाय लीला ललित, उतरैं भव से पार॥

इस अवतार-लीला-क्रममे साधारण-से-साधारण प्राणी भी सहज भावस अत्यन्त सरलतापूर्वक उसके श्रीचरणारविन्दाको प्राप्त कर लेता है। यह प्रभुकी लीलाका ही चमत्कार है कि साधनहीना, परम दीना, पतिता, परित्यक्ता एव प्रस्तरीभूता अहल्या अपने पूर्व रूपको प्राप्तकर भक्ति-जैसे चरम लाभसे लाभान्वित हो सकी—

प्रभु को पद पद्म पराग परत पल भर मे
पतिता परित्यक्ता पाथरी मे प्राण परि गो।

यदि उसकी लीलाम यह चमत्कार नहीं होता तो पूतना-जैसी लोक-बालघ्नी, रुधिराशना राक्षसीको—'**लेभे गति धात्र्युचिता०**' का सौभाग्य सुलभ हो पाता? और श्रीशुकदेवजी सरीखे नैर्गुण्य-परिनिष्ठित आत्माराम महानुभाव, लीलागृहीतचेता होकर श्रीमद्भागवतके अध्ययन एव गायनम प्रवृत्त हो सकते थे? यही तो विशेषता है कि भगवान् शिव भी इस लीला-रसके आस्वादनार्थ विश्वनाथत्व छोडकर हनुमद्रूप वानरत्व एव स्वामित्व छोडकर सेवकत्व स्वीकारते हैं। तथा—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तन तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचन मारुति नमत राक्षसान्तकम्॥

—इस मुग्ध झाँकीका मुग्धकारी दर्शन दिया करते हैं। श्रीदवर्षि नारद एव श्रीसनकादि कुमार भी—

दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलाक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥
जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥

(रा० च० मा० ७। २७। २ ७। ४२। ५—८ ७। ४२)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरि ॥

(श्रीमद्भा० १। ७। १०)

जो लोग ससारका नश्वरता विश्वकी व्यापकता आत्मा-परमात्माके स्वरूप, सत्त्व महत्ता एव भगवत्ता आदिका ज्ञान रखते हैं, उनके भी ज्ञान आदिका चरम परिणति इस लीलारसके समास्वादनम ही है—

सोउ जान कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥

(रा० च० मा० ७। २२। ५)

जय लीलाधर जय जय लीला।
मुनि-जन-मनन्हि विमोहन शीला॥

परब्रह्म-स्तुति

यस्माद्विश्वमुदति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वल यन्मह ।
शान्त शाश्वतमक्रिय यमपुनर्भावाय भूतेश्वर
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिन प्रस्तौमि त पूरुषम्॥

जिन परमात्मासे यह विश्व प्रकट हाता है जिनक द्वारा आनन्दपूर्वक सचालित हाता है और अन्तम जिनम विलान हा जाता है जिनक प्रकाशसे यह ससार प्रकाशित है जिनका तजामय स्वरूप स्वभावस हा विशुद्ध आनन्दमय है जा नित्य शान्त निष्क्रिय और द्वैतमयी अज्ञानान्धकारको हटाकर मुक्ति प्रदान करनवाल हैं तथा पुण्यात्मा जन जिन परम पुरुष भूतशकी शरण ग्रहण करते हैं उनकी मैं (सदा) स्तुति करता हूँ।

लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य एव माधुर्यमयी लीलाएँ

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

आनन्द-चिन्मय-सदुज्ज्वल-विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण निरतिशय ऐश्वयशाली होनेके कारण स्वय साक्षात् भगवान् हैं तथा क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमतत्त्व हैं और जगत्-लीलाके असाधारण कारण होनेसे लीलापुरुषोत्तम हैं। यह समस्त स्मृति-पुराण-साहित्यका सिद्धान्त है।

इस प्रसगम एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि 'लीला' क्या है ?

[ऋषियोने बुद्धिमान् सूतजीसे पूछा—] 'भगवान् अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओं (लीला)-का अत्र वर्णन कीजिय।'

इस 'लीला' शब्दक अर्थका प्रकारान्तरसे 'शब्दकल्पद्रुम' 'हलायुध' आदि कोशामे इस प्रकार बतलाया गया है—'अपने प्रियतमके साक्षात्कार आदिका सुख न मिलनेपर अपन चित्त-विनोदके लिय नायिकाद्वारा जो प्रियतमके वेश, हसित भणित गति दृष्टि आदिकी अनुकृति होती है, उसे 'लीला' कहते हैं।' 'लीला' का यह रूप श्रामद्भागवतके रासपञ्चाध्यायी-प्रकरणमे लीलापुरुषात्तम व्रजराज भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्हित हो जानेपर व्रजबालाआकी लीलाम स्पष्ट देखा जाता है।

यह लीला दो प्रकारकी होती है। एक नित्य-वास्तविक लीला और दूसरी उसपर आधारित व्यावहारिक लीला। पद्मपुराणके अनुसार इसे प्रकट और अप्रकटलीला कहते हैं—

'प्रकटाप्रकटा चेति लीला सय द्विधोच्यते'

अप्रकटलीलाम पुरुषोत्तम भगवान्के अपने परमधामम अनन्त प्रकाश और अनन्त लीलाओका निरन्तर विलास होता रहता है तथा प्रकटलीलामे उनके एक प्रकाश (अश)-स ससारमे यदा-कदा उनके सपरिकर जन्मादिकी लीला होती है। सासारिक प्रपञ्चम प्रत्यक्ष हानेक कारण इसे प्रकटलीला कहते हैं। इसी लीलामे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोकुल मथुरा वृन्दावन द्वारका आदि स्थानाम जाना-आना हाता है। अप्रकटलीला वास्तविक, नित्य आद्यलीला ह और प्रकटलीला व्यावहारिक तथा सामयिक लीला है।

ऐश्वर्य तथा माधुर्यके आधारपर 'लीला' का एक और भेद माना गया है—एश्वर्य-लीला एव माधुर्य-लीला। एश्वर्य-लीला साधनरूप हे तथा माधुर्य-लीला साध्यरूप जा आगेके उदाहरणासे स्पष्ट होता है।

ईश्वरीय सासारिक लीलाके सम्बन्धमे एक यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर जब पूर्णकाम और आप्तकाम ह ता उन्ह कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है अत उन्ह किमी कार्यका कोई प्रयाजन नही हे। फिर भी वे जगत्की सृष्टि करत है ता इस सृष्टिका कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य हाना चाहिय। साराश यह कि प्रयाजन-सापेक्ष सृष्टि माननपर सृष्टिस पूर्व ईश्वरम पूर्णता सिद्ध नहीं हाती और प्रयाजन-निरपक्ष सृष्टि-लीला सम्भव नहीं। इस शकाका समाधान महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने 'ब्रह्मसूत्र' के द्वितीय अध्यायम 'न प्रयोजनत्वात्' तथा 'लाकवत्तु लीलाकैवल्यम्' इन सूत्राक द्वारा किया ह। तात्पर्य यह है कि जेस लाकम प्रमत्त व्यक्ति कवल सुखाद्रेकस प्रयाजन-निरपक्ष नृत्त गान आदि लीलाएँ करता है वेसे ही परमश्वर भक्तजनानुरञ्जनार्थ सासारिक लालाएँ करत है। अतएव नारायणसहिताम कहा गया ह—

> सृष्ट्यादिक हरिर्नैव प्रयाजनमपेक्ष्य तु।
> कुरुत केवलानन्दाद् यथा मत्तस्य नर्तनम्॥
> पूर्णानन्दस्य तस्यह प्रयाजनमति कुत ।
> मुक्ता अप्याप्तकामा स्यु किमु तस्याखिलात्मन ॥

'माण्डूक्यापनिषद्' म भी एसे ही बतलाया गया ह कि आप्तकाम परमश्वर किसी इच्छापूर्तिके लिय सृष्टि नही करत यह तो उनका शुद्ध स्वभावमात्र हे—

दवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा।

इसी प्रसगम एक और शका हाती ह—इश्वर जब सभी प्राणियाके लिय समान है[1] तब इनकी सृष्टिम विषमता क्या दखी जाती है ? इसका भी समाधान महर्षिन वहा ब्रह्मसूत्रम विस्तारक साथ किया है जिसका साराश ह कि प्राणियाक

१-समो ह मर्वभूतपु न म द्वष्यो स्ति न प्रिय । (गीता ९। २९)

अनादिकालीन अपने-अपने कर्मोके अनुसार ही उनकी सृष्टि होती है अत ईश्वरमे वैषम्य, नैर्घृण्य-दाष नहीं है।[1] प्राणियाके ये अनादि कर्म भी ईश्वराधीन ही हैं, इसलिय उनके सर्व-कर्तृत्वमें कोई आपत्ति नहीं है।[2]

इस उपर्युक्त विवचनस यह सिद्ध हाता है कि परम कारुणिक भगवान् केवल भक्तानुग्रहक लिय ही ऐश्वर्य एव माधुर्यमय लीलाएँ जगत्मे किया करत है। इन द्विविध लीलाआम एश्वर्य-लीलाद्वारा भगवान् भक्ताक कष्टाको दूर करते हे। जब कभी भक्तोको उनकी भगवत्ताम सदह हा जाता ह तब लीलाद्वारा अपने ऐश्वर्यको प्रदर्शितकर उनक सदेहको मिटात है। जब कभी भक्तके मनम मिथ्याभिमान हाने लगता हैं, उस समय उसके कल्याणके लिये अपना एश्वर्य दिखाकर उसके अहकारको दूर करते हैं। कितु अपनी माधुर्य-लीलाम भगवान् अपन अनन्य भक्तापर निरतिशय आनन्दामृतकी वृष्टि करत हैं। इस लीलाम न ता किसा प्रकारका भय है न सदेह हे और न ही अभिमानका लेश है। इसी माधुर्य-लीलाम भक्ताको परम सिद्धि मिलता है। उदाहरणके लिये—

अर्जुनके मनम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रक एश्वर्यके प्रति कुछ सदेह हा गया था। भगवान्न उन्हे दिव्य दृष्टि देकर विश्वरूपका दर्शन कराया। जिस देखकर अर्जुनका मन भयसे अति व्याकुल हो गया[3], शरीर काँपन लगा[4] और सख्यभावस पूर्वम किये गये व्यवहारास उन्ह पश्चात्ताप होन लगा। कितु अनन्यशरण होकर ज्या हा उन्हाने भगवान्के मधुर सोम्य-रूपका दर्शन किया त्या ही उनको अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होन लगा।

भक्त प्रह्लादकी रक्षाक लिय भगवान्न नृसिहकी ऐश्वर्य-लीला का थी, वहाँ दुर्दान्त हिरण्यकशिपुका वध ता हुआ था कितु वातावरण क्राधमय हा गया था। फिर भी भक्त प्रह्लादक द्वारा स्तुति करनेपर भक्तवत्सल भगवान्का मधुर वात्सल्यभाव उमड पडा था। उम माधुर्य-लीलाम आह्लाद-ही-आह्लाद था।

यशादानन्दन भगवान् श्राकृष्णन अपनी बाल-लालाआम अनक बार अपने ऐश्वर्यका प्रदर्शन किया था। मृद्-भक्षणक व्याजम अपन मुखम समस्त विश्वको दिखलाकर उन्हान माताका आश्चर्यचकित कर दिया था। उलूखल-बन्धन-लीलाम रस्सियाका दा अगुल घटते ही रहना माताक लिये आश्चर्यजनक घटना थी। गाकुलस मथुरा आनक समय अक्रूरजी भगवान् श्राकृष्णका यमुना-जलम ओर स्थलपर एक ही क्षणम दखकर चकित थे। इस तरह भगवान् श्रीकृष्णका एश्वर्य-लीलाआक अनक प्रसग आत हैं जिनम भक्ताका उनका 'भगवत्ता' का ज्ञान हुआ ह, जा भक्ताकी परम सिद्धिम साधनका काम करता ह। परतु उस पुरुषात्तमकी माधुर्य-लीलाम अनन्य-शरण भक्त परमानन्दका प्राप्त करता हे। इस लीलाम भक्तक लिय कवल आनन्द-ही-आनन्द हे।

सासारिक माधुर्य-लीलाका रासलीला चूडान्त निदर्शन है। अनन्यशरण हानेक बाद अर्जुनका इस माधुर्य-लीलाका दर्शन हुआ था। अतएव कहा जाता है कि पुरुषात्तमकी दाना ही लीलाएँ अपूर्व हानपर भी एश्वर्य-लाला साधनरूप है और माधुर्य-लीला स्वय सिद्धि-रूप है।

भावग्राह्यमनीडाख्य भावाभावकर शिवम्। कलासर्गकर दव य विदुस्ते जहुस्तनुम्॥

(श्वेता० ५। १४)

श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होन याग्य आश्रयरहित कह जानवाल (तथा) जगत्का उत्पत्ति और सहार करनवाल कल्याणस्वरूप (तथा) सालह कलाआकी रचना करनवाले परमदव परमेश्वरका जा साधक जान लेते ह वे शरीरको (सदाक लिये) त्याग दन ह—जन्म-मृत्युक चक्रस छूट जात हैं।

१-वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति। (ब्रह्मसूत्र २। ३४)

२-द्रव्य कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च। यदनुग्रहत सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया॥

३-गीता (११। ४५) ४-गीता (११। ३५)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधार—परब्रह्म परमात्मा

(प्रो० श्रीसिद्धेश्वरप्रसादजी राज्यपाल—त्रिपुरा)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका सूत्रधार, परब्रह्म परमेश्वरके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? परब्रह्म परमेश्वर ही सृष्टिके निमित्त और उपादान कारण हैं (ब्रह्मसूत्र १-२ तथा २।१।११।३३)। अत विश्व-ब्रह्माण्ड परब्रह्म परमेश्वरका ही **'रूप रूप प्रतिरूपो बभूव'** (कठोपनिषद् २।२।९) है। ऐसी स्थितिम **'ईशावास्यमिदः सर्वं०** (ईश० १)-के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

सृष्टिके एकमात्र निमित्त और उपादान कारणको **'रूप रूप प्रतिरूपो बभूव'**के कारण ही लीलाके सूत्रधारकी सज्ञा दी गयी है। साधारण बुद्धि यह समझ नहीं पाती कि विश्व-ब्रह्माण्ड उसी एकका प्रतिरूप है। 'भगवल्लीला' शब्दम परब्रह्म परमेश्वरके लीलारत होनेका भाव निहित है। लीलाका सामान्य अर्थ है क्रीडा। इस अर्थमे क्रीडा मनबहलाव है। क्या इसी सामान्य अर्थमे भगवल्लीला क्रीडा है? स्पष्ट उत्तर है—नहीं। 'भगवल्लीला' शब्दम सृष्टि-प्रक्रियाका गूढार्थ एव उसका सात्त्विक स्वरूप निहित है। सृष्टि-प्रक्रियाके इस सात्त्विक स्वरूपकी अनिर्वचनीयताको 'भगवल्लीला' शब्दस व्यक्त किया जाता है क्याकि यह तत्त्व इतना गूढ है कि सामान्य गणितका नियम यहाँ अप्रासगिक हो जाता है—**'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'**— पूर्णमेस पूर्णको निकाल ले तब भी पूर्ण ही शेष रहता है। जीव-विज्ञान इसी अनिर्वचनीय नियमसे शासित हाते हैं उस निर्जीव भौतिक विज्ञानके गणितके नियमसे नहीं, जिसमे पूरेसे पूरा निकाल लेनेपर शेष रहता है शून्य।

प्रचलित धारणा है कि भगवल्लीलाका सम्बन्ध सगुण-साकार ईश्वरसे है, निगुण-निराकार ब्रह्मसे नहीं। यह न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है, बल्कि सनातन भारतीय परम्पराकी मान्यताके भी विपरीत है। हाँ, यह अवश्य है कि सगुण-साकार ईश्वरकी लीलाका स्वरूप निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी लीलाके स्वरूपसे भिन्न होता है। वेदके देवतावाचक सभी शब्द ब्रह्म, विष्णु तथा नारायणके ही वाचक हैं, जो इस धारणाको पुष्ट करते हैं कि सगुण और साकार तथा निर्गुण और निराकारका अन्तर्भाव परस्पर अभेद सम्मत है।

ऋग्वेदका नासदीय सूक्त (१०।१२९।१—७) विश्वसाहित्यम लीला-भावकी पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति हे जिसमे अव्यक्तके व्यक्त व्यक्तके अव्यक्त आर इन दोनास परे अनक अनिर्वचनीय स्वरूपाको अत्यन्त कवित्वपूर्ण रूपम ऋषिन देखा है। यह सृष्टिके आरम्भक पूर्वकी उस स्थितिकी दृष्टि है जब न असद् (अव्यक्त) था, न सद् (व्यक्त), न मृत्यु थी न अमृत था न रात्रि थी न दिन था। उस निर्वात-स्थितिम भी वह एक अकला स्वत साँस ल रहा था।

इस सूक्तके अन्तिम मन्त्रका उत्तरार्ध मनुष्यकी उस परम जिज्ञासाको व्यक्त करता हे जो सृष्टिकी इस अनिर्वचनीय लीलाम अनादि कालसे रमती आ रही है। यह उत्कट उद्दाम, उदात्त और विराट् जिज्ञासा वस्तुत दर्शनीय है जा यह प्रश्न उठाती है कि यह सृष्टि जिससे पैदा हुई जा इसे धारण करता है, परम व्योमम स्थित जा इसका अध्यक्ष है, वह भी इसका रहस्य जानता है अथवा नहीं इसे कौन जानता ह? ('वेद यदि वा न वेद') सृष्टि-रहस्यस अभिभूत हाकर आइन्स्टीनने कहा था कि 'हमारी सर्वाधिक प्रीतिकर अनुभूति रहस्यमय होती हे। यही भाव कला और विज्ञानका मूल ह।'

लीलाम आनन्दका, भगवल्लीलाम विराट्क विस्मयकारी रूप-दर्शनक आनन्दका भाव निहित होता है। भगवल्लीला आनन्दका रास-लीलाका उत्स क्यो हे? क्याकि सृष्टिका आरम्भ ही होता हे इच्छास—**'कामस्तदग्रे समवर्तताधि०** (ऋग्वेद १०।१२९।४) अर्थात् प्रजापतिक मनम काम-भावना—सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई। तैत्तिरीय उपनिषद् (२।६)-म कहा गया है—**'सोऽकामयत बहु स्या प्रजायेयेति'**। अर्थात् उस (परमात्मा)-ने कामना की कि मे बहुत हा जाऊँ। यह विस्तार कैसे सम्भव हुआ? **'स तपोऽतप्यत'** अथात् उसने तप करक यह सारा जगत् उत्पन्न किया। एतरेयोपनिषद् (१।१)-म एकके मनम बहुत हानकी कामना उत्पन्न होनकी बात कही गयी है। पर साथ ही दा और बाते भी हैं। उसने एकसे बहुत हानेकी इच्छा क्या का? क्याकि वह एक अकला था—**'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'**। दूसरा यह कि वहाँ **'अकामयत'** के स्थानपर **'ईक्षत'** शब्दका प्रयाग किया गया हे। आत्मान कामना का विचार किया। स्पष्ट ह एकम दूसरा भाव भा समाविष्ट ह।

आत्माकी इस सृजन-प्रक्रियाक सम्बन्धम मुण्डकोपनिषद् (१।१।७)-म कहा गया है—

> यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च
> यथा पृथिव्यामोषधय सम्भवन्ति।
> यथा सत पुरुषात् केशलोमानि
> तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥

अथात् जिस प्रकार मकडी जालेको बनाती है और फिर निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वीम नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुषसे केश और रोय निकलते हैं उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्मसे यह विश्व उत्पन्न होता है।

लीला-प्रसगम ब्रह्मके मूर्त एव अमूर्त-रूपको लेकर शका की जाती है। इस सम्बन्धमे बृहदारण्यकोपनिषद् (२।३।१)-म कहा गया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृत च स्थित च यच्च सच्च त्यच्च।'

अर्थात् ब्रह्मक दो रूप हैं—'मूर्त और अमूर्त मर्त्य और अमृत स्थित और यत् (चर) तथा सत् और त्यत्।' शकराचार्यने अपन भाष्यमें अन्य (मर्त्य-अमृत आदि)-को मूर्त और अमूर्तका विशेषण कहा है।

तपके बिना सृष्टि सम्भव नहीं है। इसीलिये कहा गया है—'स तपोऽतप्यत' (तैत्तिरीय० २।६)। ब्रह्मने कवल कामना ही नहीं की उस कामनाकी सिद्धिक लिये तप किया। तप क्या है? तैत्तिरीय उपनिषद् (२।६)-क अनुसार 'ज्ञानमयं तप'—तप ज्ञान-रूप है। इसीलिये आचार्यने कहा है—'तप इति ज्ञानमुच्यते। अर्थात् 'तप' शब्द यहाँ 'ज्ञान' कहा जाता है। इस ज्ञानका विस्मरण हो जानेपर लीला-भाव मोह-जाल हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद् (१।२।८) सृष्टिके क्रमको इस रूपमें स्पष्ट करता है—

> तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
> अन्नात्प्राणो मन सत्यं लोका कर्मसु चामृतम्॥

अर्थात् ब्रह्म तपसे वृद्धिको प्राप्त होता है उससे अन्न उत्पन्न होता है अन्नसे प्राण मन सत्य समस्त लोक और कर्मोंमें अमृत उत्पन्न होता है।

[illegible]

प्रक्रियाकी दार्शनिक-वैज्ञानिक स्थितिका निरूपण है—इस निर्गुण-निराकारक सगुण-साकार अवतरण-प्रक्रियाकी अभिव्यक्ति है।

निर्गुण-निराकार ब्रह्मका जब सगुण-साकार-रूपम अवतरण होता है तो उस नर-चरितको देखकर बुद्धि भ्रमम पड जाती है—

> बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥

विकल नर-रूपम रामको देखकर सतीके मनम भ्रम पैदा हुआ—

> ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
> सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

पर शिवको कोई भ्रम नहीं हुआ—

> जय सच्चिदानद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥

राम ब्रह्म है माँ कौसल्याको यह जन्मके समय ही प्रतीत हो जाता है—

> करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
> सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

तुलसीदासकी इन पक्तियोम अवतार-तत्त्व भक्ति-तत्त्व लीला-तत्त्व और वात्सल्य-भाव सबका समावेश है। राम कौसल्या-सुत तो हैं, पर हैं परब्रह्म परमेश्वर ही। कृष्णकी बाल-लीलाका वर्णन करनेवाली सूरदासकी इन पक्तियोम भी इसी भावको चित्राकित किया गया है—

> घुटुरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए॥

स्पष्ट है अवतार-भावके आधारके बिना भगवल्लीला भाव सम्भव नहीं है। इसलिये तुलसीदासजी बार बार स्मरण दिलाते हैं—

> सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
> सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

रामावतारके बारेम तुलसीदासजीने जो कुछ यहाँ कहा है कृष्णावतार या अन्य अवतारोंके बारेम भी इसी भावमे अन्यत्र भी ऐसी ही बात कही गयी है।

'भागवत-धर्म-सार' के मराठी सम्पादकको [illegible] [illegible] विषयमें मत [illegible] है— [illegible] न लिया हो [illegible] न हो [illegible] न हो और [illegible] न [illegible] हो [illegible] भक्त इस प्रकार [illegible] हुआ होगा?

भक्तके लिये सर्वस्व मुक्ति नहीं भक्ति है। नारदभक्तिसूत्रम भक्तिको 'परमप्रेमरूपा' एव 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है। कैसी होती है एसी भक्ति? नारद कहते है—'**यथा व्रज-गोपिकानाम्**'। गोपिकाआको कृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये—न मुक्ति, न युक्ति और न ज्ञान। कृष्णकी भक्तिम वे ऐसी रमीं कि स्वय 'परमप्रेमरूपा' हो गयीं।

नवधा भक्ति वस्तुत भगवल्लीलाका विभिन्न रूपाम श्रवण-कीर्तन है। नाम-रूपका भेद भक्तकी सीमाके कारण है। घट-घटमे वास करनेवाले भगवान् भक्तके बाह्याचारको नहीं, उसके अन्तर्मनके समर्पण-भावके भूख होते हैं। विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधारके सामने आत्म-वञ्चनाके लिये कोई स्थान नहीं होता, जैसे प्रकाशके सामने अन्धकारका।

भक्त अपने इष्टकी भक्ति ईश्वरके रूपम करता है, वह इष्ट ही उसकी दृष्टिम सर्वस्व-सर्वोपरि है, लीलाका सूत्रधार है। इसका मूलाधार यह वैदिक दृष्टि है—'**एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**' (ऋग्वद १। १६४। ४६)। उसके नामका कोई अन्त है क्या? विष्णुसहस्रनामकी सीमाक भी वह परे है, लक्ष या कोटिके भी परे। वह तो अनन्त है।

भक्तिमे भेदके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। रामन बालिका वध किया है इस कारण जब रावणने अगदके मनम भेद पैदा करना चाहा तो अगदने उत्तर दिया—

सुनु सठ भद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके॥

भक्तके लिये तो सारी सृष्टि प्रभुमय हा जाती है।

साराश यह कि भारतीय जीवन-दृष्टि भगवल्लीला-दृष्टि है। वेदसे लेकर आजतक यह जीवन-दृष्टि निर्बाध विविध रूपोम विकसित होती चली आ रही है। अद्वैत भक्ति-भावके बिना इस लीला-तत्त्वको हृदयगम नहीं किया जा सकता। इसके अभावक कारण ही कभी भक्तिक लिय द्वैताद्वैतका सहारा लिया जाता है, कभी द्वैतका कभी किसी औरका। वस्तुत भगवल्लीला विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका ही भाव-रूप है परमप्रम-रूप होनेक कारण ही यह अमृतस्वरूपा भी है, अत आनन्दरूपा और अखण्ड ज्योतिरूपा भी हे।

इसका सूत्रधार सृष्टिके कण-कणम व्याप्त है हम सबके हृदयम समाया हुआ है। जब हमारा चित्त निर्मल होगा तभी वह हमे दिखायी देगा फिर इसकी यह लीला भी हम रसमय प्रतीत हागी।

भगवान्‌की द्वैध-लीला

(डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल एम्० ए० डी० लिट्०)

भगवान् दो रूपोम अपनी लीलाएँ प्रकट करत है—एक निराकार और निर्गुण-रूपम तथा दूसरा सगुण और साकार-रूपम। इसलिये उनकी लीलाएँ द्वैध—दो प्रकारकी है।

तैत्तिरीयोपनिषद् (२।६)-म आया है कि '**सोऽकामयत। बहु स्या प्रजायेयेति**'। तात्पर्य यह कि उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं प्रकट हो जाऊँ (अनेक नाम-रूप-धारण करके बहुत हो जाऊँ) इस स्थितिमे एक ही परमात्मा अनेक नाम-रूपाम होनेकी भावनास प्रेरित होकर जब सृष्टिकी रचना करते हैं, क्षिति जल पावक, गगन और समीरका निर्माण करत हैं, अनन्त अन्तरिक्षम सूर्य-चन्द्रादि विभिन्न ग्रहा और नक्षत्रोको अपनी कक्षाओमे घूमनेका विधान करते हैं, पृथ्वी और अन्य लोकापर विविध प्राणियाका सजन करते हैं तथा उन्हे कर्मानुसार सुख-दु ख भागनेको विवश करते हैं, तब हम उनकी इन लीलाओको निर्गुण-लीलाके नामसे अभिहित करते हैं।

गीता (१०। ८)-म भगवान् श्रीकृष्णन स्पष्ट शब्दाम उद्घाप किया है—'**अह सर्वस्व प्रभवो मत्त सर्वं प्रवर्तते।**' अर्थात् मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मेरेसे ही सारा जगत् चष्टा करता हे। पुन उन्हाने कहा है—'**बीज मा सर्वभूताना विद्धि पार्थ सनातनम्।**' अर्थात् ह अर्जुन! तुम मुझे ही सम्पूर्ण प्राणियाका सनातन बीज समझो।

दूसरी आर कठोपनिषद् कहती है—'**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा य करोति** (२। २। १२)। अर्थात् वह ब्रह्म सर्वभूतोके अन्तरात्माक रूपम सम्पूर्ण विश्वमे एक है ओर एक रूपका अनेक रूपाम प्रकट करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् (३। १)-का कहना ह—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।**' अर्थात् जिससे ये सार भूत उत्पन्न हाते हैं, जिसस य सार उद्भूत

प्राणी जीवन धारण करते हैं और पुन अन्तम जिसम सब लीन हो जाते हैं—वही जानने योग्य है, वही ब्रह्म है। वाल्मीकिरामायणम ब्रह्माका वचन है—'**कर्ता सर्वस्व लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदा विभु** ' (युद्धकाण्ड ११७। ६)। अर्थात् हे ईश्वर! आप ही सम्पूर्ण लोकाके कर्ता हैं। श्रीमद्भागवत (४। ७। ५०)-म भगवान् कहते हे—'**अह ब्रह्मा च शर्वश्च जगत कारण परम्।**' अर्थात् मैं ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता हूँ। मैं ही उसका मूल कारण हूँ। तथा श्रीमद्भागवत (११। ३। ३५)-मे '**स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य**' कहकर इसी भावनाकी पुष्टि की गयी है कि भगवान् नारायण ही सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और यह सारा दृश्य जगत् उन्हीं अलख अगोचर-परब्रह्मका लीला-विस्तार है।

यह अनन्त ब्रह्माण्ड उसी एक अगम-अगाचर अलख निरजन परब्रह्म परमात्माका खेल ही तो है। इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति स्थिति और लयका खल ही उसकी निर्गुण-लीला है। जैसे बालक मिट्टीके घरौंदेको बनाता हे, कुछ क्षण उसमे रहनेका अभिनय करता हे आर अन्तम उसे ध्वस्त कर चल देता हे। उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्म भी इस अनन्त सृष्टिकी रचना करता उसका पालन करता और अन्तम उसका सहारकर अपने स्वरूपमे स्थित हो जाता है। यही उसकी क्रीडा हे। यही उसका अभिनय ह। यही उसका मनाविनाद है। यही उसकी निर्गुण-लीला है। जिसमे हम उसकी लीलाको ता देखत हे परतु उस लीलाकर्ताका नहीं देखते। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते है—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

यहाँ स्पष्ट है कि इस सम्पूर्ण सृष्टिका लाला-विस्तार कठपुतलीके नृत्यके समान है जिसमे हम कठपुतलियाको नाचते-गाते ता देखते हैं पर उसके सूत्रधारको नहीं देखते। हमारा यह अलख-अगाचर-ब्रह्म उसी सूत्रधारकी तरह नेपथ्यम रहकर ही सूर्य चन्द्र और ताराको नचाता है जिसे हम नहीं दख पाते। इसीलिये उसकी यह लीला निर्गुण-लीला है। भगवान्‌की इन्हीं निर्गुण-लीलाआपर विस्मय-विमुग्ध हाकर गास्वामीजीन विनय-पत्रिकामे लिखा—

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये॥

भगवान्‌की व ही निर्गुण-लीलाएँ अतर्क्य हैं, अगम्य हैं, विचित्र हैं और मन-वाणीक लिय परम अगाचर हैं।

भगवान्‌क निर्गुण-स्वरूपका समझना और उनकी निर्गुण-लीलाआका वर्णन करना आसान नहीं। जैस निराकार भगवान्‌का स्वरूप अग्राह्य है, उसा प्रकार उनकी निर्गुण-लालाएँ वर्णनातीत हैं। एसी स्थितिम स्वभावत भक्तप्रवर सूरदासकी बुद्धि इन निर्गुण-लीलाआको दखकर चकरा गयी थी, इन लीलाआक सूत्रधारका अता-पता नहीं चल रहा था, तभी उन्हान बडी विवशताक साथ भगवान्‌क सगुण-स्वरूप और उनकी सगुण-लीलाआका गान करनेका निश्चय किया था—

रूप रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालय कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥

जस निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी निर्गुण-लीलाआका वर्णन करनमे सूरदासजीक मन-बुद्धि स्तम्भित हो गय ठीक उसी प्रकार गास्वामी तुलसीदास तथा नददास प्रभृति भक्त कवियान भगवान्‌की निर्गुण-निराकार लीलाआका वर्णन करनमे अपनेको असमर्थ पाकर सगुण परमात्माका लीलाआके गानको ही अपनी प्रतिभा ओर लखनीका उपजीव्य बनाया। यह लीला-वणन अगम नहीं सुगम है—कविक लिय भी और भगवान्‌की लीलाआकी रसमाधुरीका पान करनवाल भक्ताक लिये भी।

जो प्रभु त्रिगुणातीत हैं जो मन आर वाणास अगम रहते हुए भी अपनी इच्छास ही भिन्न-भिन्न युगाम भिन्न-भिन्न रूपामे अवतार धारणकर प्राकृत नरके अनुरूप लीलाएँ किया करत हैं उन्ह ही हम सगुण-लीलाक नामसे जानत हैं।

परतु भगवान्‌की इन सगुण-लीलाआका देखकर समझना सबके वशकी बात नही। माता सतीकी बुद्धि भी भगवान् रामकी प्राकृत नर-लीलाआको देखकर भ्रमित हा गयी थी और उन्हाने भगवान् शकरजीसे प्रश्न कर दिया था—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सा कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(रा० च० मा० १। ५०)

गोस्वामी तुलसीदासजी स्पष्टत भगवान्‌का इन लीलाआका दुरूह आर अतर्क्य मानते है—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।

—तथापि यह सत्य है कि जिस हम अलख, निर्गुण-निराकार परब्रह्म कहत हैं वे प्रम-भक्तिके वशीभूत होकर विविध अवसरापर अवतार धारण करते है और अपनी सगुण-लीलाआसे भक्तोका विस्मय-विमुग्ध करत रहत हे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

व्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन बिगत बिनाद।
सो अज प्रम भगति बस कौसल्या के गोद॥

भगवान्‌की सगुण-लीलाआको दखकर समझ लना अत्यन्त दुरूह है। इसी कटु सत्यका उद्‌घाेष गोस्वामीजा करते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

भगवान्‌न जितन भी अवतार धारण किये ओर विभिन्न अवताराम जा-जो लीलाएँ कीं, वे सारी लीलाएँ दर्शकाका कौतूहलम डाल दती हैं। सगुण-रूपधारी नृसिह भगवान् जब खम्भा फाडकर प्रकट हाते हैं ता हिरण्यकशिपु आश्चर्यचकित हो जाता है। उसे विश्वास नहीं हाता कि वह जो कुछ दख रहा है, वह सच ह। माता कोसल्या यह दखकर विस्मित हो जाती हे कि मेन ता अपन लल्लाका पलनापर पौढा दिया था, फिर यहाँ इष्टदेवका भोग कौन लगा रहा है—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसषा।

माता कौसल्या उसे पकडनेक लिय दोडती हैं जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सका—

निगम नेति सिव अत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

जिस ब्रह्मकी साँसासे वदकी उत्पत्ति हुई वह विद्याध्ययनक लिये गुरुगृह जाता ह—

जाका सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी॥

भगवान् राम जब सीताकी खाजम भटकत हैं तब माता पावतीका आश्चर्य हाता है—

बिष्नु जा सुर हित नरतनु धारी।
× × ×
खोजइ सो कि अग्य इव नारी।

इसी प्रकार लागाका यह दखकर सहसा विश्वास नहीं हाता कि अल्पवयस्क बालक राम ताडका-जैसी राक्षसीका वध कर सकता हे आर एक दुधमुँहा बालक कृष्ण दूध पीनक बहान विशाल्काय पूतनाका वध कर सकता हे। इस बातपर भी सहसा विश्वास नहीं होता कि एक अल्पवय किशार कृष्ण अपनी मात्र कनिष्ठिका अँगुलीपर विशाल गावर्धन पवतका उठा सकता ह। भगवान्‌की सगुण-लालाआका समझनम यही दुरूहता ह।

सामान्य जनाके लिय ता य लीलाएँ अति विचित्र ह ही—'*अति बिचित्र रघुपति चरित*'० (रा० च० मा० १।४९)। परतु इन लीलाआको देखकर विमल विचारवाल विज्ञजन आश्चर्य नहीं मानते—

सुनि आचरजु न मानिहहि जिन्ह क बिमल बिचार॥

श्रीरामने भी शिवलीला की

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

शिव कौन? जो विश्व-ब्रह्माण्डके लिये कल्याणकारी है वही शिव। अपने सर्वविदित गुण आर लक्षणके कारण उनका नाम गुणवाचक अथवा कल्याणकारी गुणाका बोधक बन गया है। परम त्यागी और सतत तपस्वी रहते हुए सर्व कल्याणकारी—ऐसी उनकी प्रकृति, एसा उनका अलोकिक व्यक्तित्व है। वे सर्वसमर्थ परमात्मा और सृष्टिक गुरुतत्त्व है। गास्वामी तुलसीदासजीने '*वन्द बोधमय नित्य गुरु शङ्कररूपिणम्*' कहकर रामचरितिमानसम उनका प्रारम्भिक वन्दना की है। उनका वाहन वृषभ या बैल उनके मूल आधारभूत अलोकिक स्वरूपका परिचय देता है। वृषभ ता धर्मका प्रतीक माना गया है, अनेक शास्त्राम एसी चर्चा है। अथात् शिवजी धर्मपर आरूढ हैं या वे स्वय धर्मक मूर्तिमान् स्वरूप हैं।

शिवजीक इष्टदव कौन? मर्यादापुरुषात्तम श्रीराम—परात्पर परब्रह्म श्राराम। वाल्मीकिरामायणम उनका तीन शब्दाका एक परिचय 'रामा विग्रहवान् धर्म' त्रतायुगस आजतक जन-जनतक पहुँच चुका ह आर यह परिचय भी किसक मुखस कराया गया हे? उनके शत्रुपक्षक मारीच राक्षसक द्वारा उस समय जव रावण उसक पास आया—यह अनुराध करन कि वह छलस स्वर्णमृग बनकर साताजाका लुभाय आर जब श्रीराम धनुप-वाण लकर उस मारन दूरतक जायँ तब वह (रावण) साधु-वशम जाकर भिक्षा लनक बहान साताजीका हरण कर ले। तब मारीच रावणका समझाता ह कि श्राराम

'धर्मके विग्रह' हैं, अतएव उनसे मित्रता करनी चाहिये। उनसे वैर ठानना अपनी मृत्युको निमन्त्रित करना है। अन्तत वही हुआ।

धमकी मूल प्रकृति या आधार है समष्टिके लिये व्यष्टिका त्याग अर्थात् आत्म-त्याग या आत्म-बलिदान, जिसपर धर्मका प्रासाद खडा होता है। शिवजी जैसा सर्वत्यागी कौन हो सकता है? सम्पत्तिके नामपर कवल एक व्याघ्रचर्म जो उनका आसन और वसन दोनो है। औढरदानी एसे कि चाहे जो उनसे माँग ले—सुर, असुर, नाग, किन्नर मानव, अमानव कोई भी। भूत-प्रेत जिनको सब अशुभ अपावन और अकल्याणकारी मानते हैं व सब उनके गण हैं और शिव-विवाह होनेपर वे देवताओके साथ बाराती बनकर जाते हैं। सच्चे अर्थोमे उनसे बडा सर्वहितकारी कौन होगा। इतना ही नहीं, बल्कि जब समुद्र-मन्थनसे अनेक दुर्लभ वस्तुओमे लक्ष्मीसहित अमृत निकला, तब सृष्टिका सारभूत हलाहल विष भी निकला था। उस समय लक्ष्मीजी विष्णुजीके पास चली गयीं, अन्य अनेक दुर्लभ वस्तुओका वितरण उनके अधिकारियोमे हो गया और देवतागण अमृत पा गये। तब समस्या हुई कि सर्वविनाशकारी हलाहलका पान कौन करे? उस समय शिवजी सर्व-सहायक बने और रामका नाम लेकर उस हलाहलका पान कर गये। बल्कि कण्ठमे ही रोक लेनेसे 'नीलकण्ठ' बन गये।

जिनका नाम लेकर शिवजीने हलाहल पान किया व भी जब मानव बनकर ससारमे आये, तब जीवनके सभी पक्षो और आचार-विचारोमे मर्यादाओके बाँध बाँधकर उन्होने धर्मकी साक्षात् और शाश्वत परिभाषा प्रस्तुत की। इन मर्यादाओके पूर्णरूपेण पालनमे उन्हे तथा उनके परिवारको आजीवन अपार कष्टो दु खो और सघर्षोका सामना करना पडा। राजतिलक होते-होते परिस्थितियाँ अचानक एसी बदलीं कि उन्हे पत्नी और अनुजके साथ चौदह वर्षोके लिये वन जाना पडा। वियोगमे चक्रवर्ती सम्राट् पिताकी मृत्यु हुई, माताएँ विधवा हो गयीं पत्नीका हरण हुआ, वानर-भालुओको जुटाकर और सेतु बाँधकर महाप्रतापी रावणका वध किया राज्याभिषेक हुआ तथा रामराज्य स्थापित हुआ परतु इसके बाद भी श्रीरामके लिये सर्वोच्च आत्म-बलिदानकी स्थिति तब उत्पन्न हुई जब उनकी प्राणप्रियतमा सती-साध्वी सीताको वनवास देना पडा और इस प्रकार आजीवन अपने पारिवारिक सुख-चैनको तिलाञ्जलि देनी पडी।

इस अपूर्व त्याग तपस्या सघर्ष, बलिदानका फल तो अच्छा होना ही था। व भारतके त्यागमयी धर्म और सस्कृतिके जीवन्त स्वरूप बन गये। धर्मकी परिभाषा जाननी हो तो रामके महान् जीवनको प्रस्तुत किया जा सकता है। राम और भारतीय सस्कृति एक दूसरेके पर्याय बन गये। व साक्षात् आदर्शरूपी हिमालयके चमकते सर्वोच्च शिखर हैं। भारत ही नहीं विश्वकी मानव सस्कृति उनके इर्द-गिर्द घूमती है। इसमे कोई रामके पास है और कोई उनसे दूर। सम्पूर्ण विश्वके सास्कृतिक इतिहासको प्रभावित करनेवाला एसा कोई अन्य महापुरुष आजतक धरतीपर नहीं जन्मा। भारतके हिमालयका सर्वोच्च शिखर वस्तुत विश्वका सर्वोच्च है।

किंतु राम बननेकी इस सम्पूर्ण प्रक्रियामे उनको एक और शिव बनना पडा? यदि शिवको सृष्टि बचानेके लिये उसके सारभूत हलाहलका पान करना पडा तो रामको सम्पूर्ण मानव-सृष्टिमे धर्म और मर्यादाके पालन और पुन स्थापना-हेतु अपार कष्ट सघर्ष दु ख और वियोगका हलाहल पीना पडा। रामका रामत्व उनके शिवत्वमे ही है। तभी राम और शिव अन्योन्याश्रित हैं, एक हैं या एक दूसरेके पूरक हैं। शिवका शिवत्व राम बननेमे है और रामका रामत्व शिव बननेमे। भारतीय सस्कृतिकी अमर गङ्गा एकके चरणसे प्रकट होकर दूसरेके सिरपर आरोहित होकर कोटि-कोटिका कल्याण करती हुई धरतीपर प्रवाहित होती है। वस्तुत शिवके सकल्प और रामकी मर्यादामे प्रतिपादित धर्मका पूर्ण दर्शन आत्म-त्यागके प्रकाशमे ही किया जा सकता है। वस्तुत श्रीरामने सीताजीसहित जीवनपर्यन्त इतने अपार दु ख और कष्ट सहन किये कि अब उनका नाम लेने मात्रसे मनुष्यके समस्त दु ख-दर्द दूर हो जाते हैं मानो उन्होने सबके हिस्सेमे प्राप्त विपत्तियाँ स्वय झेल लीं। राम-नाम सर्व विपत्तियोके हरण या शमनमे पूर्ण समर्थ है। छोटी-सी शर्त यह है कि पहले हम उससे जुडे तो।

भगवल्लीला-शक्तिका स्वच्छन्द विलास

(श्रीश्यामलालजी हकीम)

परब्रह्म आनन्दघन स्वय भगवान् श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं—'रसो वै स '। उनकी स्वरूपगत स्वाभाविकी अनन्त शक्तियाँ हैं। स्वरूपाशक्ति परमास्वाद्या है एव भगवान् श्रीकृष्णक स्वरूपमे अविच्छिन्नरूपस वह नित्य अवस्थित है।

भगवल्लीला-क्षेत्र एक स्वतन्त्र परिमण्डल है, परम स्वच्छन्द स्वयम्प्रकाश प्रदेश है। उसकी अधिष्ठात्री ह योगमाया। वह अपने अचिन्त्य प्रभावस लीला-क्षत्रमे अनन्त वैचित्र्य एव अनन्त रसास्वादन-चमत्कारिता स्वत प्रकाशित करती है। रसिकशेखर श्रीभगवान् वहाँ आस्वादनजनित मन प्रसादकी चरम पराकाष्ठा प्राप्तकर विमुग्ध हो जाते हैं। भगवल्लीलाशक्तिक रसपरिवेषणका कोशल इतना कोतुकमय है कि वह लीलाधारी श्रीभगवान्के अनुसधानकी अपेक्षा नहीं रखता। उनको आत्मविस्मृत कर देता है फिर लीलान्त पाती तो भाव-मुग्ध रहते ही हैं। परम स्वच्छन्द विलास है योगमायाका। भगवल्लीला-क्षेत्रम श्रीब्रह्मा-शिव आदि देवगणा तथा सुर-मुनियाकी महामुग्धताका क्या कहना?

बाल-क्रीडा-रसिक श्रीनन्दनन्दनन साचा—सब सखाआक साथ सवेरेका कलेवा एक दिन वनम किया जाय फिर क्या था? लीलाशक्तिकी प्रेरणासे उस दिन सब ग्वाल-बाल अपनी भोजन-सामग्री छीका, पाटलियाम बाँधकर श्राकृष्णक साथ आनन्द मनाते हुए वनकी ओर चल दिये। आग-आग असख्य बछड कूदत-फाँदत चल रह थे।

कसका भेजा हुआ अति विकराल असुर अघासुर भयानक अजगरका रूप धारणकर मार्गम आ लटा आर पर्वत-गुफाके समान मुँह फाडे हुए श्रीकृष्णसहित सखा एव बछडाका निगल जानेकी प्रताक्षा करन लगा। यह दृश्य देखकर एक सखा कहने लगा—'दखा भइ। लगता ह यह सामने कोई अजगर मुँह फैलाए बैठा है।' दूसरने कहा—'अर। यह हमारे वृन्दावनकी शाभा है।' रमणीय लाल सडक गुफाकी आर जा रही है। 'जितन मुँह उतना बात।' अन्तम एक सखान कहा—'मित्रा। यदि अजगर भी हा ता हमे निगलकर उस मरना है क्या? हमारा कन्हैया ता हमार साथ हे।'

श्रीनन्दनन्दनने दखा—यह ता सचमुच अजगर ह परतु मेरे सखा ता मात्र अजगर-जैस हानकी बात ही कर रह ह। गिरिगुहा जानकर इसक मुँहमे प्रवश कर रहे ह। भगवान् श्रीकृष्ण उन्ह रोकनेकी बात अभी साच ही रह थ कि इतनी देरमे समस्त बछडे-बालक उस अजगररूपी गुहाम घुस गये। लीलाशक्तिने ग्वाल-बालकि सकल्पकी पूर्तिको प्राथमिकता दे दी, क्योकि वह अघासुरका नाश कराकर भगवान् श्रीनन्दनन्दनक 'हतारिगतिदायक' (मार जानवाल शत्रुआका भी मुक्ति प्रदान करनवाल) गुणका प्रकाशित करना चाह रही थी। दस हजार ग्वाल-बाल और असख्य बछड अजगरक मुँहम समा गय। परतु यागमायाने उस मुँह तबतक बद नहीं करन दिया जबतक श्रीकृष्ण उसम प्रविष्ट नहीं हुए।

श्रीभगवान्न उसक मुँहम जात ही अपना शरार इतना बढाया कि दम घुटनेस तत्क्षण अजगरक प्राण ब्रह्मरन्ध्र फाडकर बाहर निकल गये। उसके शरीरस एक ज्याति निकली और वह वैकुण्ठम चली गया। उसक पलक झपकत ही श्रानन्दनन्दनन अपनी अमृतदृष्टिस उन ग्वाल-बाला आर बछडाको जीवित कर दिया। सबका साथ लकर पूर्व-सकल्पानुसार श्रीकृष्ण अति रमणीय यमुना-पुलिनम आकर हरा-हरा घासपर बैठ गय। कलवा करनक लिय सब अपनी-अपनी भाजन-सामग्री खालन तथा परासन लग। बछडाका वनम चरनक लिय छाड दिया गया था। ग्वाल-बाल मण्डलाकार पक्तियाम सटकर बैठ गय एव उनक बीचम श्रानन्दनन्दन शाभायमान थ। लालाशक्तिन एसा कौतुक रचा कि सब ग्वाल-बालाका एसा लगा कि श्राकृष्ण उन्हींका आर मुख किय बैठ हैं। अब हास-परिहास करत हुए व सब मिलकर भाजन करन लग।

अघासुर अत्यन्त बलवान् था। उसक भयस अमृतपान करनवाल दवता भा मृत्युस डरत थ। उसक मर जानपर दवताआन इतन जार-जारस जय-जयकी हर्षध्वनि की कि ब्रह्मलाकम बैठ ब्रह्मा भा विस्मित हा उठ। व हस-वाहनम तपालाकम आय तथा फिर वहाँस जनलाकम आय। वहाँ

आकर वृन्दावनमे अघासुरके विनाशका समाचार सुना। विशेषकर उसकी सामीप्य-मुक्तिकी बात सुनी तो ब्रह्माजी आश्चर्यचकित रह गये। सोचने लगे कि आजतक मैंने भी किसी जीवात्माकी ज्योतिको श्रीभगवान्मे लीन होते या भगवल्लोकमें जाते आँखोंसे नहीं देखा, परंतु अघासुर-जैसे पापीके लिये अत्यन्त दुर्लभ सामीप्य-मुक्ति! जिसे सबने देखा?—

अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम्॥
(श्रीमद्भा० १०। १२। ३८)

ब्रह्माजीने सोचा—बड़े सौभाग्यसे वृन्दावन आया हूँ। अतः श्रीनन्दनन्दनकी कोई और भी मनोहारी लीलाका दर्शन करना चाहिये। इसपर बैठे-बैठे आकाशसे उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ भोजन कर रहे हैं। देखते ही वे स्तब्ध हो गये—'क्या ये सब वही सामग्री खा रहे हैं, जिसे लेकर अजगरके उदरमें प्रविष्ट हुए थे? अपवित्र और विषैला भोजन? छि-छि, ये तो एक दूसरेका जूठा पदार्थ भी खा रहे हैं। अरे! यह क्या—श्रीकृष्ण तो हथेलीपर ही दही-भात और अचार-मुरब्बेकी फाँके लिये बैठे हैं।' 'क्या ये वही हैं जो यज्ञोंमें केवल उद्देश्यमात्रसे मन्त्रोंद्वारा समर्पित हवि ग्रहण करते हैं?' ब्रह्माजी कुछ समझ न पाये भगवान् श्रीकृष्णके इस लीलासे वे विमोहित हो गये।

भगवल्लीला-शक्तिने भी ब्रह्माजीको श्रीकृष्णकी लीलामायाकी महिमासे छकानेका पूरा मन बना लिया। इस लीला-शक्तिकी लीला-प्रेरणाके वशीभूत होनेपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके मनमें बछड़ोंको चुरा लेनेकी सूझी, किंतु लीलाशक्तिने इसके पहले ही उन सब बछड़ोंका अन्तर्धानकर वहाँ मायिक बछड़े विचरनेके लिये छोड़ दिया। ब्रह्माने उन्हें चुराकर अपनी बड़ी चतुराई समझी। तब योगमायाने भोजनमें तन्मय ग्वाल-बालोंका ध्यान बछड़ोंकी तरफ आकृष्ट किया। जब सब चिन्तित होकर उठने लगे तब श्रीकृष्णने उन्हें वहीं बैठे रहनेको कहा और स्वयं ही उन्हें ढूँढ़ने चले गये। योगमाया उन्हें बहुत दूर वन-पर्वत आदिकी गुफाओंमें ले गयी ताकि ब्रह्मा कुछ और भी चुरा सकें। अपने मनकी कर लें। ब्रह्माने जब देखा कि सब ग्वाल-बाल अकेले हैं वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं तो उन्हें भी चुरा ले जाना चाहा। योगमायाने पहले ही उन ग्वाल-बालोंको भी अन्तर्धान कर दिया और उनके स्थानपर मायिक ग्वाल-बाल स्थापित कर दिये। ब्रह्मा उन ग्वाल-बालोंको भी ले गये। ब्रह्मलोकमें ले जाकर मायामें निद्रित कर सुला दिया। सृष्टिका ईश्वर और चोरी? यह सब स्वच्छन्द विलास है भगवल्लीला-शक्तिका।

सर्वेश भगवान् बछड़ोंको कहीं न देखकर भोजन-स्थलीपर आये। कैसा आश्चर्य कि यहाँ ग्वाल-बाल भी नदारद। कुछ क्षणोंके लिये लीलाशक्तिने अपने स्वामीको भी चक्करमें डाल दिया किंतु उन्हें यह जाननेमें अधिक देर न लगी कि यह सब करतूत सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी है, फिर भी वे यह न जान पाये कि मेरे ग्वाल-बाल बछड़े योगमायाने अपने पास सुरक्षित कर लिये हैं। कैसा अचिन्त्य प्रभाव है भगवल्लीला-शक्तिका?

भगवान् श्रीकृष्णने जान लिया कि ब्रह्माको सृष्टि-रचनाका गर्व है, वे भले ही मेरेद्वारा सृजित उपादानोंको लेकर ही सृष्टि क्यों न करते हों स्वतन्त्र-सृष्टि देखकर इनका गर्व-खण्डन होगा मेरी मंजु महिमाका भी उन्हें अनुभव हो सकेगा। मैं भी सखाओं तथा बछड़ोंके बिना तो गोष्ठमें नहीं जा सकता।

ऐसा सोचते ही भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको उतने ही ग्वाल-बालों और बछड़ोंके रूपमें प्रकटित कर लिया। जैसे उनके छोटे-बड़े शरीर थे वय वस्त्र छींके लाठी और भूषण आदि थे वैसे ही सब कुछ आप भी बन गये। वैसा ही चाल-ढाल और वैसा ही स्वभाव तथा रंग-रूप धारण कर लिया। अपराह्णके समय निजरूपी बछड़ोंको निजरूपी ग्वाल-बालोंको निजरूपसे घेरते हुए प्रतिदिनकी भाँति गोष्ठमें खेलते-कूदते प्रवेश किया। परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं प्रयोजक—कर्ता थे स्वयं ही बछड़ोंके रूपमें कार्य थे स्वयं ही सखाओंके रूपमें बछड़ोंके घेरनेवाले प्रयोज्य-कर्ता थे। स्वयं ही आत्मस्वरूपभूत सखाओंके साथ खेलनेवाले क्रिया-कारक थे। श्रीकृष्णरूपमें अपने पुत्रोंको पाकर गोपीवृन्द तथा गौएँ अतिशय वर्द्धित प्रेममें विभोर हो उठीं। किंतु इस रहस्यको गोष्ठमें कोई भी न जान सका।

एक दिन नहीं, एक मास नहीं, बल्कि एक वर्षपर्यन्त यह अद्भुत लीला-विलास चलता रहा। अब ब्रह्माजी सोचने लगे, जरा देखूँ—'क्या हुआ नरशिशुलीला नन्दलालाका?' देखा कि यहाँ तो सब सखा बछडोके साथ वनमे आ रहे हैं, गोष्ठमे लौट रहे हैं, उनकी बालक्रीडा ज्यो-की-त्यो आनन्दसे चल रही है। ब्रह्माजी झट ब्रह्मलोकमे भागकर गये। वहाँ देखा मेरे चुराये हुए सब सखा तथा बछडे निद्रित-अवस्थामे तो यहीं मोहित पडे हैं फिर वृन्दावनमे वे ग्वाल-बाल, बछडे कौन हैं? दोनो स्थलोपर एक ही समान यह दृश्य कैसे? ज्ञान-दृष्टिसे वास्तविकता देखना चाहा, किंतु ज्ञान-दृष्टि कुछ काम न आयी। अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो अपनी ही मायामे स्वय मोहित हो गये।

इतनेमे ब्रह्माजी देखते हैं कि सभी ग्वाल-बाल और बछडे सुन्दर श्यामवर्ण है। पीताम्बरधारी श्रीविष्णुरूपमे उनके सामने शोभायमान हैं। एक-एक विष्णु पृथक् एक-एक ब्रह्माण्डका ईश्वर है। प्रत्येकके सामने एक-एक ब्रह्मा उपस्थित हैं और अनेक उपकरणोसे उनकी आराधना-पूजा कर रहे हैं। समस्त सिद्धियाँ-शक्तियाँ उनकी उपासना कर रही हैं। आश्चर्यचकित ब्रह्माजीके नेत्र मुँद गये। वृन्दावनके एक भागमे ही अगणित ब्रह्माण्डोको चारो ओर देखकर ब्रह्मा अपनेको सँभाल न सके। हसवाहनसे अचेत होकर नीचे आ गिरे।

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब ब्रह्माजी मेरी लीला-महिमा-सागरमे डूब गये हैं। वृन्दावनमे विद्यमान होते हुए भी उन्हे इसका दर्शन प्राप्त नहीं हो रहा है। तब उन्हीं भगवान्की इच्छासे कल्पवृक्ष परिवेष्टित पुष्पान्वित श्रीवृन्दावनका दर्शन प्राप्त हुआ और जब योगमायाने अपना प्रभाव हटाया, तब उन्होने नराकृति परब्रह्म लीलापुरुषोत्तमको किंचित् पहचाना। मायापतिपर अपनी मायाके प्रसार करनेकी मूर्खतापर ब्रह्माजी पछताने लगे। नेत्रोसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अब वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोमे बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए दोनो हाथ जोडकर उनकी अद्भुत स्तुति करने लगे।

अब ब्रह्माका गर्व-भग हुआ देखकर भगवल्लीला-शक्तिने भी अपने स्वच्छन्द विलासका अदृश्य रूपमे उपसहार किया। उसने ब्रह्माद्वारा चुराये हुए मायिक बालक और बछडोका अन्तर्धान कर दिया, जिनको उसने आच्छादित कर अपने पास सुरक्षित रख लिया था उन वास्तविक बालको, बछडोकी श्रीकृष्णरूपी बालको तथा बछडोके साथ एकात्मता स्थापित कर दी। वे तो पहले श्रीकृष्ण-स्वरूपभूत थे किंतु इस कौतुकका अनुसधान भगवान् लीलापुरुषोत्तम भी न कर पाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसस्वरूप रसिकशेखर अपनी स्वरूपाशक्तिके स्वच्छन्द विलासमे एक ही लीलामे विभिन्न रसवैचित्र्यका अद्भुत आस्वादन प्राप्त करते है। 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' होते हुए भी लीलापुरुषोत्तम अपने प्रिय भक्तोके अनेक प्रयोजन सिद्ध करते है। वे अपने श्रीमुखसे स्वीकारते है—

मद्भक्ताना विनोदार्थं करोमि विविधा क्रिया ।

वास्तवमे प्रिय—परिकर भक्तोके विनोदार्थ सम्पन्न होनेवाली असख्य लीलाओके अति गम्भीर रससागरके अन्तस्तलमे रसिकचूडामणि श्रीभगवान्की निजी स्वरूपगत रसास्वादन-स्पृहारूपी अगणित स्फटिक-मणियाँ छिपी हुई हैं, जिन्हे देख पाते है निकाल पाते हैं लीलारस-सागरके गोताखोर रसिकजन।

आनुषगिकरूपमे जीवानुग्रह—कातर भगवान् लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सृष्टि-लीलामे जीव-जगत्के प्रति करुणा-कादम्बिनी प्रकाशित करते है और साथ ही अनेक प्रकारके दु खोके दावानलमे जलते-झुलसते सासारिक लोगोके लिये अति दुस्तर भवसागरसे पार उतरनेके लिये अपनी लीला-कथा-रस-माधुरीकी एकमात्र सुदृढ नौका स्थापित करते हैं—

ससारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्य प्लवो भगवत पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदु खदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

निरन्तर नाम-जप एवं भगवल्लीला-दर्शन

(डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल एम्० ए०, पी-एच्० डी० आयुर्वेदरत्न)

नामचिन्तामणि कृष्णश्चैतन्यरसविग्रह ।
पूर्णशुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनो ॥

अर्थात् नाम और नामीमे कुछ भी भेद नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण-नाम श्रीकृष्णकी तरह चैतन्य रसविग्रह है, सर्वशक्तिपूर्ण है तथा नित्यमुक्त एव चिन्तामणिकी तरह सर्वाभीष्ट प्रदान करनवाला है।

पूर्वजन्माके पाप-कर्मोका प्रबल प्रभाव ही जीवको नामके प्रति निष्ठा उत्पन्न नहीं होने देता। माया उसे निरन्तर अपनी ओर खींचती रहती है। ससारकी विषयासक्ति उसे भगवान्के नाम-रूप-गुण आर लीलाके प्रति लगाव उत्पन्न नहीं होने देती। जिस प्रकार पाण्डुरोगसे पीडित व्यक्तिको मिश्री कडवा लगती है, परतु उसी मिश्रीका निरन्तर सेवन करनसे रोगीके पीलिया (पाण्डु)-रागका शमन हो जाता है। उसी प्रकार मायाग्रस्त जीव भव-व्याधिस पीडित है। उसे नामका जप कडवा लगता है, परतु निरन्तर कृष्ण या रामका नाम-जप करनेस ससार-बन्धन क्षीण हो जाता ह और उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसके हृदयमे भगवान्के दिव्य रूप, गुण और लीलाकी अनुभूति हाने लगती है।

भगवान् जिस प्रकार नित्य-शुद्ध-तत्त्व हैं, उसी प्रकार उनकी लीलाएँ भी नित्य-शुद्ध हैं। व अनादि-तत्त्व हैं। उनकी लीलाएँ भी अनादि हैं। पाप-पकिल हृदयम उनकी दिव्य लीलाएँ स्फूर्त नहीं हाती हैं। अतएव उनका नाम ही कृपा करके जीवको अपनी आर आकर्षित करता है—

अत श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियै ॥
सेवोन्मुखे हि जिह्वाऽऽदौ स्वयमेव स्फुरत्यद ।

(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्वविभाग २। ६२-६३)

अर्थात् श्रीकृष्ण-नाम चिन्मय हानस प्राकृत इन्द्रियासे ग्रहण नहीं किये जा सकते परतु जब लोगाकी रसना उसे ग्रहण करनेकी इच्छा रखती है, तब कृष्ण-नाम कृपा करक स्वय रसनापर स्फुरित होने लगते हैं।

सताका ऐसा अनुभव है कि साधकका नाम, सत लीला और धाममेंसे किसी एकस अवश्य जुड जाना चाहिय फिर ता साधककी निष्ठा उसे चारोंसे जाड देगी। नामम नामीस भी अधिक शक्ति है। नाम एक क्षणम ब्रह्माण्डके समस्त जीवाको शुद्ध कर नामीसे मिलानकी शक्ति रखता है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण नित्य सनातन तथा अद्वय तत्त्व है जीव भी उसी प्रकार नित्य और सनातन तत्त्व ह। प्रत्येक जीवका भगवान्से अद्वय नित्य-सम्बन्ध है। जीवका भगवान्स यह सम्बन्ध दास मित्र माता या पिता एव प्रेमिका—किसी भी रूपम हो सकता है। मायाबद्ध हो जानेस वह अपने स्वरूपको भूल गया है, इसलिय श्रीकृष्णस उसका क्या सम्बन्ध है ? उसे यह भी ज्ञात नहीं है।

निरन्तर कृष्ण-नामका जप करनेसे उसकी चित्तवृत्ति शुद्ध होने लगती है। उसका मन एकाग्र होकर कृष्ण-नाम-जपम निष्ठावान् हो जाता ह। उस समय उसके सभी सकल्प-विकल्प शान्त हो जाते ह तथा साधकको उसक नित्य-सम्बन्धके अनुरूप लीलाआकी स्फूर्ति हाने लगती ह। जब आप दर्पणमे अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं उस समय दर्पणको निरन्तर हिलाते-डुलाते रह ता उस दर्पणम आपका प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं दगा परतु यदि उस दर्पणको स्थिर कर स्वच्छ कर लिया जाय तो अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पडने लगेगा। उसी प्रकार चचल मनको शुद्ध और स्थिर कर लेनेपर आपका अपना तथा श्रीकृष्णका स्वरूप एव उनकी लीलाआका स्पष्ट दर्शन होन लगगा। अनवरत नाम-जपम ही वह दिव्य शक्ति है जा मन तथा विचारको शुद्ध कर लीलाआकी अनुभूति करान लगती ह।

श्रीकृष्ण-नाम-जप प्रारम्भ करते समय किसी भी प्रकारक सम्बन्धकी स्थापना नहीं करनी चाहिय क्योकि इस प्रकार बनाया गया सम्बन्ध काल्पनिक तथा अल्पकालके लिये ही होगा और नाम-जपम बाधक भी हागा। अनवरत नाम-जप करते-करत नाम-प्रभुकी कृपास जीवका नित्य-शुद्ध सम्बन्ध स्वत जाग्रत् हाने लगता है तथा साधक उसी भावस साधना करन लगता है—

साधक देह भावे जई
सिद्ध देहे पावे सई

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

जीव और कृष्णक मध्य जा नित्य-सम्बन्ध (भाव) है

वह तीन प्रकारसे सिद्ध हो सकता है—(१) गुरुकृपा-साध्य (२) कृष्णकृपा-साध्य तथा (३) साधन-साध्य। परतु इस भाव-सम्बन्धमे कृत्रिमताका आवरण कभी नहीं ओढना चाहिये, अन्यथा भयकर पतनकी सम्भावना रहती है।

व्रजके गोप-गोपियाँ, नन्द बाबा, माता यशोदाजी, राधाजी तथा लीला-परिकराका श्यामसुन्दरके प्रति जो प्रेम है उसे 'राग' कहते हैं। व्रजलीला-परिकराकी इस प्रेमवृत्तिको रागात्मिका भक्ति कहते हैं। जब कोई साधक व्रजलीलाके किसी परिकरके अनुगत होकर सेवा-साधना करता है तो उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। स्वतन्त्र-रूपसे स्वयको नन्द, यशोदा, राधा, ललिता विशाखा या मनसुखा आदि मानकर नाम-जप-साधना कर लीला-स्फूर्ति करनेसे इन परिकरोके चरणोमे अपराध हो सकता है, क्याकि यशोदा-नन्द, राधा एव ललिता सखी तो एक ही हो सकती हैं, परतु उनके आनुगत्यमे, उनके मार्गदर्शनम, उनके भावाधीन होकर साधना करनेसे किसी अपराधकी सम्भावना नहीं रहती।

एव व्रत स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चै ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्य ॥
(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

अर्थात् जो साधक भक्ति-अगाका अनुष्ठान करते हैं, अपने प्रिय कृष्ण-नामका सकीर्तन (जप) करते-करते उनके हृदयम कृष्ण-प्रेम (लाला-स्फूर्ति) उदय हो जाता है, वे उन्मत्तकी तरह उच्च स्वरम कभी हँसने लगते हैं तो कभी रोने लगते हैं तथा कभी अपने प्यारेकी लीला-स्मृतिम नृत्य करने लगते हैं और *'हा कृष्ण' हा कृष्ण!!'* कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगते हैं—यह नाम-जप-स्मरण एव चिन्तनका दिव्य प्रभाव है।

वैष्णवनिष्ठ साधकोके हृदयमे दिव्य लीलाआकी स्फूर्ति निरन्तर होती रहती है, उन्हे सासारिक दायित्वो तथा सम्बन्धोमे रचमात्र भी आसक्ति नहीं रहती। प्रतिक्षण उनके हृदयमे अपने प्यारेकी अष्टकालीन लीलाआका दिव्य प्रकाश होने लगता है। व्रजभावके बिना कृष्ण-प्रेमकी उज्ज्वल रसानुभूति कदापि सम्भव नहीं है। यह कृष्ण-नाम-स्मरण हो रहा है या नहीं—इसका साधकको निरन्तर आत्मपरीक्षण करते रहना चाहिये, क्याकि—

तदश्मसार हृदय बतेद
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयै ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जल गात्ररुहेषु हर्ष ॥
(श्रीमद्भा० २। ३। २४)

अर्थात् शौनकजीने सूतजीसे कहा—'हे सूत! श्रीकृष्ण-नाम-ग्रहण करते-करते यदि नेत्राम अश्रु तथा शरीरमे रोमाचादि विकार उत्पन्न होकर हृदय द्रवीभूत नहीं होता हो ता वह हृदय वज्रके समान कठोर होता है।'

जबतक अश्रु-रोमाचादि नाम-ग्रहणके समय उत्पन्न न हा, तबतक साधकको समझना चाहिये कि उसके हृदयम कृष्ण-नामके प्रति निष्ठाका उदय नहीं हुआ तथा मन एव हृदय शुद्ध नहीं हुआ है। उसमे भौतिक विषयासक्ति बनी हुई है।

परतु जब भगवान्‌के नाम, रूप, गुणके जप-चिन्तन-मननके आनन्दोद्रेकसे साधकका रोम-रोम खिल उठता है, आसुओके मारे कण्ठ गद्गद हा जाता है और वह सकोच छोडकर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने लगता है, पागलकी तरह कभी हँसने एव रोने लगता, कभी ध्यान करने ओर भगवन्नामका जप करने लगता है। जब वह भगवान्मे एकदम तन्मय हो जाता है बार-बार 'हरे! नारायण!! जगन्नाथ!!!' पुकारने लगता है—तब नाम-जपके प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार अर्थात् भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसे भगवल्लीलाका साक्षात् दर्शन होने लगता है।

अत जिन भगवान्‌के नामाका सकीर्तन सारे पापाको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणाम आत्मसमर्पण एव प्रणति सर्वदाके लिये सभी दु खाको शान्त कर देती है, आत्यन्तिक सुख—तदाकारकारिता प्रदान करती है। उन्हीं परमात्मस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ—

नामसङ्कीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दु खशमनस्त नमामि हरिं परम्॥
(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

श्रीभगवान्‌की लीलाओंसे पग-पगपर प्रेरणा

(श्रीशिवकुमारजी गायल)

भारत ऐसी पवित्रतम एव दिव्यातिदिव्य भूमि है, जहाँ भगवान् धर्मकी पुन स्थापना करने, अधर्मिया और अन्यायियाका नाश करने तथा अपनी दिव्य लीलाआके माध्यमसे जीवाका उद्धार करने एव उन्ह प्रेरणा दनेके लिय अवतार लते है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(रा०च०मा० १। १२१। ६—८)

जब-जब धर्मपर आघात किये जाते हैं, धर्म तथा नैतिक मूल्योका ह्रास हाने लगता है और असुरा, धर्मद्रोहियाका बोलबाला होने लगता है, चे अनीति एव अधर्मम लिप्त हा जाते हैं, तब-तब भगवान् मनुष्य-शरीर धारण करके गो-ब्राह्मणा तथा सज्जनाकी पीडा हरनके लिये अवतरित होते हैं।

धर्मकी पुन स्थापना तथा अन्यायियो एव पापियाके विनाशके साथ-साथ भगवान् अपनी लीलाआके माध्यमसे न केवल मनुष्यो, अपितु जीवमात्रको भक्ति, सन्मार्गपर चलनका तथा उनके कल्याणका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। हमारे अनक आचार्योने भगवान्‌क लीलाके लिये अवतार लेनेके प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा है—

शील क एप तव हन्त दयैकसिन्धो
क्षुद्रे पृथग्जनपदे जगदण्डमध्ये।
क्षोदीयसोऽपि हि जनस्य कृते कृतीत्व-
मत्रावतीर्य ननु लोचनगोचरोऽभू ॥

हे दयाके एकमात्र सागर प्रभु, अपने विराट् ब्रह्माण्डके बीच क्षुद्र प्राणियाके कल्याणके लिये आप अवतार धारणकर हम सबको साक्षात् दर्शन दनेके लिये प्रस्तुत हो गये हैं, आपका यह शील, आपकी यह लीला अनुपमय है।

भगवान् करुणा या अनुग्रहके लिये ही लीलावतार धारण करते हैं। कहा गया है—

अनुग्रहाय भूताना मानुप देहमास्थित ।
भजते तादृशी क्रीडा या श्रुत्वा तत्परा भवेत्॥
(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३७)

भगवान्‌को गीता (११। ४३)-म सार ससारका पिता कहा गया है—'पितासि लोकस्य चराचरस्य' अथात् व साक्षात् दयामूर्ति, करुणामूर्ति एव भक्तवत्सल हैं। जहाँ व प्राणियोंपर अपनी अहैतुकी कृपाकी वौछार करक उसके अन्त -करणम वैठकर ज्ञानदीपस अज्ञानका उन्मूलन करक उस आत्मस्वरूपका साक्षात्कार करात हैं, वहीं लीलाधारी भगवान् अपने भक्ताको सकटसे उबारनेम एक पलका भी विलम्ब नहीं करते। असख्य भक्ताने शुद्ध हृदय तथा निष्कपट-मनसे जब कभी भगवान्‌की भक्ति की तो भगवान्‌ने उन्ह अवश्य शरणागति प्रदान की। कहा गया है—

व्याधस्याचरण ध्रुवस्य च वया विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतरुग्रस्य' किं पौरुषम्।
कुब्जाया कमनीयरूपमधिक किं तत्सुदाम्नो धन
भक्त्या तुष्यति केवल न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधव ॥

कैसे-कैसे लागाको लीलावतार भगवान्‌ने अपनी शरणागति देकर तार दिया। प्राणियाकी हत्या करक जीवन-यापन करनेवाला व्याध निष्कपट प्रभुभक्त बालक ध्रुव कसका पिता उग्रसन कुरूपा कुबडी तथा निर्धन सुदामा—ये सभी इस लीलाधिपति भगवान्‌की अनुकम्पाका प्रसाद पाकर जीवन्मुक्त हा गय।

भगवान् श्रीकृष्ण तो साक्षात् लीलावतार थे जिन्हाने अपनी दिव्य लीलाआक माध्यमसे विभिन्न प्रयोजना-हेतु असख्य प्राणियाका उद्धार किया, उन्ह बार-बार जन्म लेनेक झझटसे मुक्ति दिलायी। महाभारत-युद्धके पीछे निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिस सराबार दिव्य लीला ही है जो अन्यायके विरुद्ध सतत सघर्ष करनकी सदैव प्रेरणा दती रहेगी।

इसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाआके माध्यमस हम माता-पिताकी आज्ञाका पालन करने ऋषि-मुनिया तथा गोमाताका सतानवाले राक्षसाका सहार करनेको आग आन, पर-स्त्रीपर कुदृष्टि रखनेवाल साम्राज्याधिपति तकके विरुद्ध सतत सघर्षकर उसका समूल विनाश कर डालन-जैसे राष्ट्रिय कर्तव्यकी प्ररणा प्राप्त करत रहग।

श्रीरामकी पावन लीलाएँ एव श्रीकृष्णका दिव्य लीलाएँ अतिभौतिकवादकी चकाचौंधम फँस आजके मानव-जीवनका भी बदल डालनकी अद्भुत सामर्थ्य रखती हैं इसके उदाहरण

समय-समयपर मिलते रहते हैं।

श्रीरामलीला देखकर चरण-स्पर्श करना सीखा

आजकल विदेशोमे भी प्रवासी भारतीयाद्वारा भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीरामकी लीलाओका मचन कराया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप ससारके अनेक देशोमे भगवान्‌की लीलाओके प्रदर्शनकी बहुत सराहना भी होती है। कुछ दिन पूर्वकी बात है—भूतपूर्व सासद स्व० श्रीप्रकाशवीर शास्त्री लन्दन गये तो वे अपने पूर्व-परिचित प्रवासी भारतीय परिवारम ठहरे। सबेरे जब वे सोकर उठे तो उस परिवारके कई युवक तथा बच्चे उनक पास आय और चरण-स्पर्शकर आशीर्वाद प्राप्त किये। शास्त्रीजी पहले भी कई बार इस परिवारका आतिथ्य ग्रहण कर चुके थे। उस समय परिवारके युवक तथा बच्चे हाथ हिलाकर 'गुडमार्निंग' कहा करते थे। इस बार चरण-स्पर्शको देखकर वे कुतूहलम पड गये। शास्त्रीजीक कुतूहलको देखकर परिवारके मुखिया बोले—'शास्त्रीजी, जब हमारे यहाँ लन्दनम भारतीय सास्कृतिक कन्द्रकी ओरसे रामलीलाका प्रदर्शन किया गया उसी समय अनेक प्रवासी भारतीय परिवारोके बच्चाने भगवान् श्रीरामको अपने माता-पिता और गुरुके चरण-स्पर्श करते देखकर चरण-स्पर्श करनेकी प्रेरणा ली। रामलीला तथा कृष्णलीलाने तो हमारे बच्चा एव महिलाओपर अमिट प्रभाव छोडा है। ऐसे आयोजन करके ही हम भारतीयाकी नयी पीढीको भारतीयता तथा धार्मिक सस्कारासे जोडे रख सकते हैं।'

शास्त्रीजीने जब यह घटना सुनायी ता हमे लगा कि भगवान्‌की लीलाएँ ही पूरे ससारमे रहनवाले भारतीयाके अदर भारतीय सस्कारका अक्षुण्ण रखनेकी क्षमता रखती हैं।'

रूसी बालक रामलीलासे प्रभावित

सन् १९८८ की बात है। मास्को (रूस)-म रहनेवाले दसवर्षीय बालक 'दिमित्रीत्सिगत्ज' रामचरितमानसम वर्णित भगवान् श्रीरामकी लीलाआसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने भगवान् श्रीराम एव सीताजीकी लीलाओके अनेक सुन्दर चित्र बना डाले। उसने भगवान्‌की लीलाभूमि भारतके दर्शनाका सकल्प किया तथा अपने बनाये रामलीलाके चित्राके साथ वह १४ जनवरी १९८९ को भारत आनेम सफल हो गया। दिल्लीकी 'नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री'की ओरसे आयोजित चित्र-प्रतियोगिताम उसके द्वारा निर्मित श्रीरामलीलाके चित्र पुरस्कृत किय गये। उसन उस समय दूरदर्शनपर दिये गये साक्षात्कारम कहा था—'मेन श्रीरामकी लीलाओका दिग्दर्शन करक तथा रूसी भाषाम अनूदित रामचरितमानस पढकर सुरापान एव मासाहार त्याग दिया तथा अपना जीवन भगवान् श्रीरामकी भक्तिके लिये समर्पित कर दिया है।'

स्वामी भक्तिवेदान्तजीकी अनुभूति

श्रीकृष्णभावनामृत-अभियानके प्रणेता पूज्यपाद श्रीकृष्ण-कृपामूर्ति श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामा प्रभुपादजी महाराजन पूर ससारम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाआका प्रचार करक लाखा विदशियाको सनातनधर्मम दीक्षित करनम सफलता प्राप्त की थी। एक बार उन्होने नयी दिल्लीम हम पत्रकारास बातचीत करत हुए बताया था कि इग्लेंड, अमरिका जापान जर्मनी इटली आदि अनेक देशाम भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओसे प्ररणा प्राप्तकर पति-पत्नीके बीच तलाककी प्रवृत्तिपर नियन्त्रण लगता जा रहा है। प्रवासी भारतीयाम भी पाश्चात्य कुसस्कारोके कारण तलाक-जेसी प्रवृत्तियाँ बढती जा रही थीं। हमने श्रीकृष्णलीला तथा श्रीरामलीलाका प्रचार करक तथा प्रभुकी लीलाओसे प्ररित करक अनक परिवाराको आदर्श भारतीय बननेकी दिशामे सकल्पित कराया। हम श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारके साथ-साथ माता-पिताकी सवा करने बडाका आदर करने, मासाहार एव शराबका त्याग करन एव शुद्ध शाकाहार करनेका सकल्प भी दिलात हैं। भगवान्‌की लीलाआसे प्रभावित होकर न केवल भारतीय परिवार ही अपितु असख्य विदेशी भी हमारे 'हरे कृष्ण-आन्दालन'क लिय समर्पित हाते जा रह हैं।

उन्होने बताया कि कवल अँग्रज एव अमरिकन ही नहीं, लाखा रूसी और चीनीतक भगवान् श्रीकृष्णक तत्त्वको समझकर हिन्दू (सनातन)-धर्मका शरणम दीक्षित हो चुके हे। व सिर मुडवाकर लम्बी-लम्बा चाटियाँ रखत हैं। माथेपर तिलक लगाते हें तथा श्राकृष्णलालामृतक रस-पानस भाव-विभोर हाकर सडकापर सकीतन करत हुए सभीका आश्चर्यचकित कर दते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णलालाआक दर्शन चिन्तन मनन एव दिव्य प्ररणास ससारके असख्य शार्पस्थ बुद्धिजावी भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण कर चुक हैं।

भगवल्लीला-चिन्तन

(श्रीराजशजी पाठक, शास्त्री 'दीन)

भगवत्पादारविन्द-मकरन्द-रससार-सरोवरमे निमग्न जीव ही परम पुरुषार्थकी ओर अग्रसर होता है। वह परब्रह्म परमात्मा भगवान् निर्गुण-निराकार है एव अपने भगवत्-भागवत-परायण भक्तोंके लिये अकारण-करुण-करुणावरुणालय लोकमङ्गलकारी श्रीराम-कृष्णादिके रूपमे सगुण-साकार भी है। सम्पूर्ण शक्तियासे युक्त परब्रह्म परमेश्वर ही भगवान् हैं।

भगवान्की लीला-रस-माधुरीका रसास्वादन करनेहेतु बडे-बडे योगीन्द्र-मुनीन्द्र भी बलात् खिचे चले आते हैं। शेष-महेशादि भी अनन्तानन्दकी लीलाआमे सदा निमग्न रहते हैं। उस भगवान्की लीलाएँ अद्भुत एव असख्य हैं।

परब्रह्म परमात्मा भगवान्की रसमयी मधुमयी सुमधुर लीलाआका चिन्तन योगी एव भक्तजन करते रहते हैं। भगवान्की अति मधुर लीलाआका चिन्तन उनके परम प्रिय नित्य-सवकाको ही लभ्य है, वे धन्यातिधन्य हैं। भगवान्के मङ्गलमय नामका चिन्तन, सुमनोहारि त्रिभङ्गललित बाँकी-झाँकीका चिन्तन, उस प्यारे-दुलार नटवरनागर गोपीजनवल्लभकी सुमधुर लीलाआका चिन्तन तथा व्रज अवध एव वैकुण्ठ आदि धामाका चिन्तन—ये सभी भगवत्तत्त्वको प्राप्त करानवाल हैं।

भगवत्तत्त्व-विमर्श—अब 'भगवत्' शब्दके अर्थपर विचार करते हैं। भगवत् '**भग**' शब्दसे 'मतुप्' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न हाता है।

पुराणाकी दृष्टिसे 'भगवत्' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

तत्त्ववेत्ता महापुरुष इसे तत्त्व कहत हैं। निरतिशय बृहद् हानेसे वही तत्त्व ब्रह्म है। सबका अन्तरात्मा हानके कारण परमात्मा एव समस्त भजनीय गुणास युक्त होनके कारण यही तत्त्व 'भगवान्' नामसे निरूपित होता है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि ....।
.... सत्य पर धीमहि॥

(श्रीमद्भा० १। १। १)

श्रीमद्भागवतके इस प्रथम श्लोकके अनुसार भगवान् ही जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका जनक ह, वही स्वयम्प्रकाश है, सर्वज्ञ है, ब्रह्माको वदाका ज्ञान दनवाला है जिसके सम्बन्धम विद्वान् भी मोहित हा जात हैं एव जा त्रिगुणात्मिका मायासे पर है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं। इसम भी सत्यस्वरूप भगवान्का ही महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

'भगवान्' शब्दकी व्याख्या विष्णुपुराण (६। ५। ७४)-क अनुसार इस प्रकार है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रिय।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा॥

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश श्री ज्ञान एव समग्र वराग्य—इन छ भगासे युक्त तत्त्व ही भगवान् है।

उत्पत्ति प्रलय चैव भूतानामागति गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्या च स वाच्यो भगवानिति॥

(विष्णुपु० ६। ५। ७८)

इन चराचरात्मक प्राणियाकी उत्पत्ति विनाश विद्या-अविद्या एव गमनागमनको जो जानता ह वही 'भगवान्' नामसे शास्त्राम वर्णित किया गया है।

लीलातत्त्व-विमर्श—'लीला' शब्द श्लषार्थक 'लीङ् श्लेषणे' धातुसे 'क्विप्' प्रत्यय हानपर निष्पन्न हाता है, जिसका अर्थ ह—आश्लेष अथात् परब्रह्म परमात्माका—भगवान्का जिसके द्वारा मिलन हो जाय सयाग हा जाय सश्लेष प्राप्त हा जाय उसका नाम 'लीला' है। 'ली' माने हृदयस लगाना 'ला' माने ग्रहण करना (ला आदाने)। जो हमको भगवान्के हृदयसे लगा दे ग्रहण करा दे—मिला दे उसका नाम 'लीला' है। सत्य-स्वरूप भगवान्का सश्लष-सस्पर्श ही लीलाका अर्थ है। यह भगवान्की लीला-रसस्वरूप है अमृतस्वरूप है एव इस रसमय लीलाके द्वारा प्राणी आनन्दमय हो जाता है।

ब्रह्म चिन्मय अद्वितीय निष्कल एव अशरीर है। उस उपासका (भक्ता)-की कार्यसिद्धिहेतु तथा अपनी लीलाआके लिये इस धराधामपर अवतार ग्रहण करना पडता है। उसे भक्तोके विशुद्ध भावामे अवश्य ही आना हाता है। 'आनन्दा

ब्रह्मेति व्यजानात्' और वही ब्रह्मानन्द-लीलारस-ब्रह्म साँवरा-सलोना अवधराजकिशोर होकर अवधमे आया, व्रजमे आया एव अनन्त अद्भुत लीलाओका प्रदर्शन किया जिसके दर्शनार्थ मुक्त-सिद्ध-मुनि भी यहाँ आते है एव उसकी लीलाके मृग्य बनकर विचरते रहते हैं—

मुक्ताश्चापि लीलाविग्रह कृत्वा भगवन्त भजन्ति।

(नृसिहतापः उपः शाः भाष्य)

यह बडी अद्भुत लीला है भक्तिकी। भगवान् परम स्वतन्त्र हैं, व माया आदिसे मुक्त हैं, परतु वे सर्व-सार-स्वरूप अपनी आह्लादिनी शक्तिको भक्तके हृदय-देशमे स्थित करके अपनी लीलाओका विस्तार करते हैं—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वे लोकभावन ।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

इस प्रकार विश्वात्मा भगवान् मानव एव निम्न प्राणियासे पूरित समस्त लोकोका पालन करते हैं तथा लीलापूर्वक राम-कृष्ण आदि अनेक अवतारोका नाट्य स्वीकार करते हैं ताकि जीवको विशुद्ध सत्त्व-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय।

यो लीलालास्यसलग्नो गतोऽलालोऽपि लोलताम्।
त लीलावपुष बाल वन्दे लीलार्थसिद्धये॥

जो ब्रह्म स्वकार्य-सिद्धि-हेतु लीलापूर्वक लीला-लास्यमे सलग्न हैं निमग्न है, उस लीलावपुधारी बालकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। भगवान्की लीला-कथामे तन्मय रहना ही जीवका परम सौभाग्य है।

चिन्तन-शब्द-विमर्श—चिन्तन **'चिति स्मृत्याम्'** धातुसे **'ल्युट्'** प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है स्मरण करना स्मृति रखना। भगवान्की अति मधुर लीलाओका चिन्तन करते रहना ही जीवका परम धर्म है। भगवल्लीलाओका सुमधुर चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओगे अमृताधिक्य बन जाओगे एव प्रभुकी अनन्त लीलाओका चिन्तन आपको लीलामय परमात्मा भगवान्से अवश्य ही मिला देगा इसमे तनिक भी सदेह नहीं है।

व्रजागनाएँ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरागमनके बाद व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी उन अनन्त लीलाओंके चिन्तन-मनन एव ध्यानमे सदैव तल्लीन रहती हैं—श्रीकृष्ण-प्रेममें खोयी रहती हैं। 'तत्सुखसुखित्वम्'की कामना लिये गोपियाँ श्रीकृष्णरसकी सरितामें अवगाहन करती हुई निमग्न रहती हैं—

रसो वै स । रसः ह्येवाय लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

देवर्षि नारदके शब्दोमे भगवान्को प्राप्त करनेके लिये व्रजवनिताओने तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कसने भयसे शिशुपालादि राजाओने द्वेषसे यदुवशियोने पारिवारिक-सम्बन्धसे, तुम लोगो (पाण्डवो)-ने स्नेहसे एव हम लोगोने भक्तिसे अपने मनको भगवान्मे लगाया है—

गोप्य कामाद् भयात् कसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपा ।
सम्बन्धाद् वृष्णय स्नेहाद् यूय भक्त्या वय विभो॥

(श्रीमद्भा० ७। १। ३०)

वैरकी ग्रन्थि बाँधकर कस उठते-बैठते खाते-पीते, सोते-जागते एव चलते-फिरते, सदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमे लगा रहता था—

आसीन सविशस्तिष्ठन् भुञ्जान पर्यटन् महीम्।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मय जगत्॥

(श्रीमद्भा० १०। २। २४)

हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन कसकी प्रत्येक क्रिया-अक्रियामे होने लगा था—हर काल हर समय उसे श्रीकृष्ण ही दीखते थे। इस अनन्य चिन्तनके कारण ही उसे भगवत्सारूप्यकी उपलब्धि हुई।

भगवान्का चिन्तन किसी भी भावसे करो कुभावसे करो अन्तमे उनकी कृपा अवश्य होती है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा० १। २८। १)

निष्कर्ष—भगवान्की लीलाएँ अनन्त एव अद्भुत हैं वेद-शास्त्र भी जिनका वर्णन करनेमे असमर्थता प्रकट करते हैं एव नेति-नेति शब्दके द्वारा यही कहते रहते हैं कि भगवान्की लीलाओकी 'इति' नहीं है। ससारके निर्माणसे आजतक जितनी भी वर्षाकी बूँदें गिरी हैं जितने भी बालूके कण हैं एव आकाशमे जितने भी तारे हैं उन सबकी गणना सम्भव है परतु परमात्माकी लीलाओकी गणना सम्भव हो नहीं है। परब्रह्म परमात्मा लोकमे लीला-हेतु निर्गुण-निराकारसे नराकार बन जाता है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

उस प्यारे प्रभुकी लीला-माधुरीका अनुपम चिन्तन ही कल्याणकारी है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओ एव लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमे विलीन कर दो।

पञ्चदेवोंके लीला-आख्यान

[इस सृष्टिके कर्ता-धर्ता-हर्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं। ये ही परमदेव है। शास्त्राके अनुसार एक, अनन्त अखण्ड अद्वय निर्गुण-निराकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप सच्चिदानन्द ही परमतत्त्व है। इनका न कोई नाम है, न रूप। न क्रिया है, न सम्बन्ध और न कोई गुण है, न कोई जाति ही है। तथापि इनमे गुण-सम्बन्धका आरोपण करके कही इन्हे विष्णु, कहीं शिव, कहीं देवी कही गणेश और कही सूर्यनारायण कहा गया है—ये पाँचो भगवान्के ही स्वरूप हैं। प्रत्येक सगुण-साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं। इन एक-एक देवोकी विभिन्न अवतार-लीलाएँ होती ह तथा अपनी रुचिके अनुसार व्यक्ति किसी एकको अपना इष्ट मानकर उसकी उपासना तथा उसकी लीलाओका चिन्तन करता है। यहाँ हम पञ्चदेवोके विभिन्न अवतार-लीलाओका आख्यान प्रस्तुत करते हैं।—सम्पादक]

लीलावपु भगवान् श्रीगणेशका लीला-वैचित्र्य
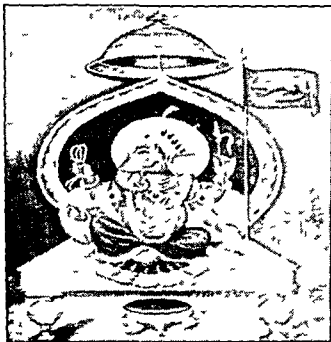
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण गणपतिखण्ड १३। ३२)

भगवान्के लीला-अवताराके चरित विभिन्न पुराणा-शास्त्राम विभिन्न रूपाम उपलब्ध हात हैं। भगवान् लीला-विहारी सर्वसमर्थ हैं एव कल्पभेदस उनक अनन्त अवतार हुए हैं, अतएव उनक चरित भी अनन्त हैं। *'हरि अनत हरिकथा अनता'* स सतशिरामणि श्रीतुलसीदासजीन इसी भावका स्पष्ट किया है। वस्तुत भगवान्के सभी चरित यथार्थ हैं एव भक्ताके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसगका अध्ययन करत समय इस तथ्यको निरन्तर स्मृतिम रखना चाहिये तभी भगवान् श्रीगणेशकी लीलाओके आस्वादनका वास्तविक आनन्द एव फल प्राप्त हा सकेगा।

सिद्धि-सदन श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवासिनी पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी परम पराक्रमी षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वय उनके अनुज माने जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले) अरुणवर्ण एकदन्त गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर अरुण-वस्त्र त्रिपुण्ड्रतिलक मूषकवाहन पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एव मङ्गलमूर्ति ह। भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता ह और साक्षात् प्रणवरूप हैं। भौतिक सिद्धि प्राप्त करनेवालाको चाहिये कि वे गणेशजीकी उपासना करे, क्योकि पार्वतीनन्दन अत्यल्प श्रमसे ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मङ्गलवपुके नाम-स्मरण ध्यान जप आराधना एव प्रार्थनास मेधाशक्ति तीव्र होती है समस्त कामनाओकी पूर्ति और विघ्नाका निवारण हो जाता है। त्रयतापका शमन हो जाता है एव धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमुखकी प्रसन्नताम निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती ही रहती है।

वेदविहित समस्त कर्मोम प्रथमपूज्य अम्बिकानन्दन गणेश नित्यदेवता हैं किंतु भिन्न-भिन्न कालो एव अवसरोपर जगत्के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्भुत और अलौकिक होते हैं। करुणामूर्ति गणेश सदा ही अधर्म अनीति अनाचार एव पाप-तापका शमन करते हुए साधु-

परित्राण एव सद्धर्मकी स्थापनाकर उसका सवर्धन करते हैं।

बुद्धि-विधाता गणपतिका प्राकट्य, उनका मङ्गलमय विग्रह एव उनकी लीलाएँ सभी अद्भुत एव अलौकिक हैं—आनन्दमयी एव मङ्गलप्रदायिनी हैं। भक्तप्राणधन वृषभध्वजके पुत्र गजमुखकी विभिन्न काल-क्रमोकी विभिन्न लीला-कथाएँ अनुपम आदर्श एव मनोहर हैं। उन कथाओमे शका उचित नहीं—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ सभु भवानि।
कोउ सुनि ससय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(रा०च०मा० १। १००)

भगवान् गणेशका प्राकट्य एव उनकी लीलाएँ

(१)

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके बाद भगवान् शकर रमणीय उद्यानो और एकान्त वनाम उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयम अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमे उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा उसे हाथमे उठाकर उन्होन एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीक समान था। क्रीडा करते हुए उन्हाने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गङ्गाजीके जलमे डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गङ्गाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहली मानती थीं। उनके पुण्यमय जलमे पडते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हा गयी। प्रथम तो शकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा, फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया तथा देव-समुदायने 'गाङ्गेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हे गणोका आधिपत्य प्रदान किया।

(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड)

(२)

एक बारकी बात है। देवताओने परस्पर विचार किया कि 'प्राय सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एव चतुर्मुखकी आराधना करके उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं और हम अनेक कष्ट उठाने पडते हैं। अत हम लोग दैत्योंके कार्यमे विघ्न उपस्थित करने उनपर विजय प्राप्त करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करे।'

सुर समुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होने देवताओसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

'करुणामूर्ति प्रभो।' देवताओकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'देव-शत्रु दानवोकी उपासनासे सतुष्ट होकर आप उन्हे वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमे अत्यन्त कष्ट पहुँचाते है। उन सुरद्रोही दनुजोके कर्मम विघ्न उपस्थित हुआ करे हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु।' परम सतुष्ट वरद आशुतोषने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

कुछ ही समय बाद सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथम त्रिशूल तथा दूसरे हाथम पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणाम बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मङ्गलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एव विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि सस्कार करवाया। तदनन्तर उन्होने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमे उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योका नाश करने तथा देवता ब्राह्मण एव ब्रह्मवादियोका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे तो तुम स्वर्गके मार्गमे स्थित हो उसके धर्मकार्यम विघ्न उत्पन्न करो अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्मे अनुचित ढगसे—अन्यायपूर्वक अध्ययन अध्यापन व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो उसके प्राणोका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषो तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोके भी प्राणोका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हो उनको तुम अपना

समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एव बूढे भक्तोकी भी सब प्रकारसे इस लाकम तथा परलोकमे भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोके स्वामी होनेके कारण तीना लोकामे पूज्य एव वन्दनीय होओगे, इसम सदह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञाद्वारा अथवा ब्राह्मणोके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोका अनुष्ठान करेगा उसका मङ्गल भी अमङ्गलम परिणत हो जायगा। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोसे पूजित होओगे। तीना लोकोम चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा जो तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करगे, वे देवता हो अथवा और कोई उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। जो लोग तुझ विनायककी पूजा करगे वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओद्वारा भी पूजित हागे परतु यदि वे फलकी कामनासे ब्रह्मा विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य दवताआकी तो पूजा कर, किंतु तुम्हारी पूजा न कर, तब तुम उन्ह विघ्नाद्वारा बाधा पहुँचाना।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोको उत्पन्न किया और उन गणाके साथ उन्हाने भगवान् शकरके मङ्गलमय चरणाम अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया, फिर वे त्रैलाक्यपति पशुपतिके सम्मुख खडे हो गये। तबसे लोकम श्रीगणपतिकी अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीन दैत्याके सुरद्रोही कर्मोम विघ्न पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(लिङ्गपुराण)

(३)

ब्रह्मवैवर्तपुराणक अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके मङ्गलमय अङ्कम श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था वह पाप-सतापहारिणी एव निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् श्रीनारायणन देवर्षि नारदका इस प्रकार सुनायी थी—वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सवसाक्षी वृषभध्वजक मङ्गल-परिणयक अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्ह साथ लेकर निर्जन वनमें चल गय। वहाँ दीघकालतक दवाधिदव महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीन भगवान् शकरस निवेदन किया—'प्रभा! मैं एक श्रेष्ठ पुत्र चाहती हूँ।'

'प्रिये! मैं तुम्ह सम्पूर्ण व्रताम एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, जा सम्पूर्ण अभीष्ट-सिद्धिका बीजरूप परम मङ्गलदायक तथा हर्ष प्रदान करनेवाला है।' सर्वभूतपति भगवान् त्रिपुरारिने त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीसे मुदित मनम कहा—'उस परम शुभद व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरणकर यह व्रत प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षम हाती है।'

'इस व्रतक फलस्वरूप श्रीहरिके चरणाम सुदृढ भक्ति हो जाती है और भुवन-विख्यात पुत्र, सौन्दर्य पति-साभाग्य ऐश्वर्य एव अपरमिति धनकी प्राप्ति हाती है। यह महान् व्रत प्रत्येक जन्ममे वाञ्छित सिद्धियाका बीज है।'

पाप-सतापहारिणी भगवती पार्वती अपन सर्वलाकमहश्वर पतिके अमृतमय वचनोस आनन्द-विभोर हा गयीं आर तपके विधाता भगवान् चन्द्रमौलि पार्वतीका सदुपदश दकर चले गये।

हिमगिरिनन्दिनी उमाने अपन पतिकी आज्ञास प्रसन्नतापूर्वक महान् 'पुण्यक-व्रत'के अनुष्ठानका सुदृढ निश्चय करक पुष्प और फल आदि व्रतापयोगी सामग्रियोको एकत्र करनेक लिये ब्राह्मणा तथा भृत्याको प्रेरित किया। सभी वस्तुआक एकत्र हो जानेपर वद-विद्या-प्रकाशिनी भगवती पार्वतीने शुभ मुहूर्तम व्रतारम्भ किया और वे 'पुण्यक-व्रत'के पालनीय प्रत्यक नियमाका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एव विश्वासके साथ साल्लास पालन करती रहीं।

अस्वाभाविक दक्षिणा

'सुव्रते! मुझे दक्षिणा चाहिय।' व्रत-समाप्तिपर पुराहितने देवी पार्वतीसे कहा।

'मैं मुँहमाँगी दक्षिणा दूँगा।' परम तपस्विनी अम्बिकाने पुरोहितस कहा—'आप कोन-सा दुर्लभ पदार्थ चाहते हैं?'

'देवि! इस व्रतमे दक्षिणास्वरूप मुझे अपन पतिका द दो।' पुराहितने अस्वाभाविक दक्षिणाकी याचना की।

सर्वथा अकल्पित अनभ्र वज्रपात-जैसा निष्ठुर वाणी सुनकर देवी उमा व्याकुल हाकर विलाप करती हुई वहीं मूर्च्छित हा गयीं।

निखिल-सृष्टि-नियामिका माहनाशिनी भगवती पराम्बाको मूर्च्छित देखकर लाकपितामह ब्रह्मा विष्णु एव मुनियाको हँसी आ गयी। तब उन्हाने पार्वतीका समझानक लिय उमापति महादवका भेजा।

'धर्मिष्ठे! उठा निश्चय ही तुम्हारा मङ्गल हागा।'

पार्वतीको होशमे लानेके लिये उन्हे समझाते हुए आशुतोषने अनक धर्ममय वचन कहे। उनकी चेतना लोट आनेपर दवदव महादेवने कहा—'दवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नेमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणास रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता ह, और उस कमस दाता निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकम गिरता है। उसके बाद वह दीन हाकर शत्रुआसे पीडित होता है। ब्राह्मणको सक्ल्प की हुई दक्षिणा उसी समय न देनसे वह बढकर कई-गुनी हा जाती है।'

क्षीरोदधिशायी विष्णु और कमलासनने भी पार्वतीसे धर्म-रभाके लिय अनुरोध किया। स्वय धर्मन कहा—'साध्वि! पुराहितकी अभीष्ट दक्षिणा दकर मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मरे सुरक्षित रहनेपर प्रत्यक रीतिस मङ्गल होगा।' देवताआने भी यही बात कही। मुनियोने भी हवन पूरा करके दक्षिणा देनेकी प्ररणा देते हुए कहा—'धर्मज्ञ! हम लागोके यहाँ रहत तुम्हारा अकल्याण सम्भव नहीं।'

'शिवे! या ती तुम मुझे दक्षिणामे अपने सर्वेश्वर पतिका प्रदान करो या अपन दीर्घकालीन कठार तपका फल भी त्याग दा।' ब्रह्माक तेजस्वी पुत्र सनत्कुमारने देवी पार्वतीसे सुस्पष्ट कहा—'साध्वि! इस प्रकार इस महान् कर्मकी दक्षिणा न मिलनेपर मैं इस दुर्लभ कठोर व्रतका फल ही नहीं, यजमानके (तुम्हार) समस्त कर्मोका फल भी प्राप्त कर लूँगा।'

'देवाधिपो! पतिसे वञ्चित हा जानेवाले कर्मसे क्या लाभ?' अत्यन्त उद्विग्न सत्यस्वरूपा परम सती पार्वतीने देवताओसे कहा—'दक्षिणा देनेसे तथा धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे मरा क्या हित होगा? पृथ्वीदेवीकी उपेक्षाकर वृक्षकी पूजामे क्या प्राप्त हो सकगा? यदि बहुमूल्य प्राण ही विसर्जित हो जायँ ता शरीरकी रक्षा कैस हागी?'

अत्यधिक दु खस शिवप्रियाने आग कहा—'देवेश्वरो! साध्वी स्त्रियाके लिये पति सौ पुत्रोके समान हाता है। ऐसी स्थितिम यदि व्रतम अपने पतिकी ही दक्षिणा द दी जाय तो पुत्रस क्या लाभ होगा? पुत्र पतिका ही वश होता हे, किंतु उसका एकमात्र मूल ता पति ही होता है। मूलधनके नष्ट होनेपर तो समस्त व्यापार हा विनष्ट हो जायगा।'

उसी समय अन्तरिक्षमे देवताआ और ऋपियोने एक बहुमूल्य रत्ननिर्मित रथ दखा, जो घननील पार्षदास घिरा था। वे सभी पार्षद वनमालाधारी और रत्नाभरणोसे विभूषित थे। उस रथस चतुर्भुज वैकुण्ठवासी श्रीनारायण उतरकर देवताआके सम्मुख उपस्थित हुए। उन परम तजस्वी भक्त-प्राणधन, शख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीनारायणका ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि दवताआने एक श्रेष्ठ रत्नसिहासनपर बैठाकर उनके पाप-तापहारी अभयद चरण-कमलामे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया आर हाथ जोडकर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।

वहाँका सारा वृत्तान्त जानकर भक्त-भयहारी श्रीनारायणने अपने स्वरूप-तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या करते हुए दवगणा और मुनियासे कहा—'शिवप्रिया पार्वतीका यह व्रत लाकशिक्षाक लिये हे, अपन लिये कदापि नहीं, क्याकि य ता स्वय समस्त व्रता एव तपस्याआका फल प्रदान करनवाली ह इनकी मायास ही चराचर जगत् मोहित है।'

फिर परम प्रभु श्रीनारायणन त्रैलाक्यवन्दिता उमास कहा—'शिवे! इस समय तुम अपन पति महादवका दक्षिणाम देकर अपना व्रत पूर्ण कर ला, पुन समुचित मूल्य देकर अपने जीवनधनको वापस ल लना। गाआकी भाँति शिव भी विष्णुके शरीर हैं, अत तुम ब्राह्मणको गामूल्य प्रदानकर अपने पतिको लोटा लना।'

इतना कहकर महामहिम त्रैलाक्यपावन श्रीनारायण वहीं अन्तर्धान हो गय। सृष्टिनायक श्रीनारायणक मुखारविन्दसे ये मङ्गलमय वचन सुनकर समस्त सुर-मुनि-समुदाय हर्षोत्फुल्ल हो गया। कलिकल्मपहन्त्री शिवा भी प्रसन्नमनस अपन प्राण-सर्वस्वको दक्षिणाम देनेक लिय उद्यत हा गया।

भगवती पार्वतीने हवनकी पूर्णाहुति की ओर अपने जीवननाथ शिवको दक्षिणा-रूपम द दिया।

'स्वस्ति!' कहत हुए सनत्कुमारने दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयवश परम कामलाङ्गी पार्वतीक कण्ठाष्ठ-तालु सूख गये।

'विप्रवर! गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर हे।' अम्बिकान दु खी हृदयसे अत्यन्त मधुर एव विनीत वाणीम ब्राह्मणस निवदन किया—'म आपका अत्यन्त सुन्दर एक लाख गाय प्रदान करूँगी, इसके बदल आप मर जीवन-सर्वस्वका लोटा द। अभी ता मे आत्मास रहित काई भी कर्म करनम सर्वथा असमर्थ हूँ, प्राणनाथक मिल जानपर म पुन ब्राह्मणाको विपुल दक्षिणाएँ प्रदान करूँगी।'

'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ।' सनत्कुमारने सतीशिरोमणि पार्वतीसे कहा—'मैं एक लाख गाएँ लेकर क्या करूँगा? अरे! इस दुर्लभ रत्नके सम्मुख इन गौओंकी क्या तुलना? मैं परमधन इन दिगम्बरको अपने साथ लेकर त्रिलोकीमें भ्रमण करूँगा। उस समय समस्त बालक इन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक ताली बजा-बजाकर अट्टहास करेंगे।'

इतना कहकर सनत्कुमारने उमानाथको अपने समीप बैठा लिया।

पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहन श्रीकृष्णके दर्शन

'आह!' सुकोमलहृदया गिरिजा जलहीन मीनकी भाँति छटपटाने लगीं। मन-ही-मन वे सोचने लगीं—'कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे न तो अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त हुआ और न व्रतका फल ही प्राप्त हो सका।' अधीर होकर परम सती हिमगिरितनया शरीर-त्यागके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

उसी समय पार्वतीसहित देवता और ऋषियोंने शून्यमें कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उस प्रभा-पुंजसे समस्त दिशाएँ एवं विस्तृत कैलास देदीप्यमान हो गया था। उसकी मण्डलाकृति असीम एवं अनन्त थी। प्रभुके उस महान् तेज पुंजको देखकर जगन्माता पार्वतीने भगवान् शिवकी प्रेरणासे व्रतके उन आराध्यदेवका गुणगान करते हुए कहा—'परमात्मन्! मैं पुत्र-दुःखसे दुःखी होकर आपकी स्तुति कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ, परंतु अङ्गोंसहित वेदके विधानानुसार इस व्रतमें अपने पतिकी दक्षिणा दी जाती है, यह अत्यन्त दारुण कार्य है। दयामय! यह सब समझकर आप मुझपर दया कीजिये।'

भगवती पार्वती श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन थीं, उस समय उस असीम एवं महान् तेजोराशिके मध्य उन्होंने अद्भुत रूप-लावण्य-सम्पन्न विश्वविमोहन श्रीकृष्ण-स्वरूपका दर्शन किया। वह हीरकजटित बहुमूल्य रत्ननिर्मित आसनपर आसीन एवं मणियोंकी मालासे सुशोभित था। नवनीरद-वपुपर अद्भुत पीताम्बरकी अवर्णनीय शोभा थी। रत्नाभरणोंसे अलंकृत उस अनुपम विग्रहके कर-कमलोंमें पीयूषवर्षिणी मुरली विद्यमान थी। उनके ललाटपर चन्दनकी खौर और मस्तकपर मनको मोहित करनेवाला सुन्दर मयूरपिच्छ था। उस अनुपम सौन्दर्यकी तुलना कहीं सम्भव नहीं थी।

ऐसे भुवनमोहन अनूप रूपको देखकर भगवती पार्वती उसीके सदृश पुत्रकी कामना करने लगीं और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इतना ही नहीं, उस समय शिवाने जो-जो कामनाएँ कीं, वे सब पूरी हुईं। देवताओंके भी अभीष्टकी पूर्ति हुई। तदनन्तर वह तेज वहीं तिरोहित हो गया।

तब सुर-समुदायने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको समझाया और उन्होंने दिगम्बर शिवको उनकी प्राणेश्वरी शिवाको लौटा दिया।

फिर तो भगवती पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जगज्जननीने ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्न प्रदान किये। वन्दियों एवं भिक्षुओंको स्वर्ण-राशि देकर ब्राह्मणों एवं देवताओंको परम सुस्वादु व्यञ्जनोंका भोजन कराया।

महिमामयी भवानीने अलौकिक उपहारोंसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अपने प्राणनाथ देवदेव महादेवकी पूजा की। देववाद्य बजने लगे। अनेक माङ्गलिक कार्योंके साथ-साथ श्रीहरिसे सम्बन्धित गाये गये माङ्गलिक गीतोंसे वह शुभ स्थान ध्वनित हो उठा। सर्वत्र आनन्द और उल्लासका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सनातनी उमाका पवित्रतम 'पुण्यक-व्रत' सम्पन्न हुआ। पराम्बाने विपुल रत्नराशिका दान करके सबको भोजन कराया। तदनन्तर उन्होंने अपने जीवनधन धर्माध्यक्ष शिवके साथ स्वयं भी भोजन किया, फिर सबको कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल देकर उन्होंने भगवान् शिवके साथ स्वयं भी उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगदम्बा प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके साथ एकान्तमें चली गयीं।

परब्रह्मका प्राकट्य

'महादेव! मैं क्षुधा और तृषाधिक्यसे व्याकुल अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे बड़ी दूरसे चलकर आपकी शरणमें आया हूँ।' एक दीन-हीन ब्राह्मण सर्वसम्पत्समन्विता पार्वतीके द्वारपर आया और क्षुधा-निवारणार्थ भोजनकी याचना करते हुए कहा—'शिवे! आप क्या कर रहीं हैं? जगन्माता पार्वती शीघ्र आओ। माताके रहते पुत्र भूखा कैसे रह सकता है?'

भगवान् शकर और पार्वती द्वारपर आये। अत्यधिक दुर्बल ब्राह्मण किसी प्रकार उनके चरणाम प्रणामकर स्तुति करने लगा। उसके मधुरातिमधुर वचन सुनकर शिव-पार्वती दानों प्रसन्न हो गये।

'विप्रवर! आप कहाँसे पधारे है?' भगवान् शकरने अशक्त वृद्ध ब्राह्मणसे पूछा—'कृपया बताइये आपका शुभ नाम क्या है?'

'वेदज्ञ ब्राह्मण! आपका आगमन कहाँसे हुआ है?'

धर्ममयी पार्वतीने भी बडे प्रेमसे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने अतिथिके रूपमे मेरे द्वारपर पधारनेका कष्ट किया। अभीष्ट अतिथिकी सेवाकी अमित महिमा है।'

'माता! आप वेदोक्त-विधिसे मेरी पूजा कीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणने काँपते हुए कहा—'उपवासव्रती रोगग्रस्त एव क्षुधार्त व्यक्ति स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है। मै तृषा-क्षुधासे आकुल हूँ।'

'द्विजसत्तम! आप क्या भोजन करना चाहते ह?'

साक्षात् अन्नपूर्णान कहा—'आपका त्रैलाक्यदुर्लभ अभीष्ट पदार्थ मैं आपकी सेवामे उपस्थित कर दूँगी। आप मुझे आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

'माता! मैं आप पुत्रहीनाका अनाथ पुत्र हूँ।' ब्राह्मणन रुक-रुककर धीर-धीरे कहा—'मैंने सुना हे, आपने महान् 'पुण्यक-व्रत' सम्पन्न किया है। उसके लिये दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र हुई होगी। उन अद्भुत पक्वान्ना एव मिष्टान्नासे आप मेरी पूजा कीजिये। इसके अनन्तर सुवासित निर्मल तथा स्वादिष्ट जल और सुवासित श्रेष्ठ ताम्बूल प्रदान कीजिये। ये दुर्लभ पदार्थ इतना खिलाइये जिसस मरी ताद सुन्दर हा जाय मैं लम्बोदर हो जाऊँ।'

'आपक आशुताप पति सृष्टिकर्ता एव सम्पूण सम्पत्तियाका प्रदान करनेवाले हैं ओर आप सम्पूण सत्कीतियाका प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं। अत आप मुझ रमणीय रत्नसिहासन बहुमूल्य रत्नाभरण अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र श्रीहरिमें सुदृढ भक्ति मृत्युञ्जय नामक ज्ञान सुखदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिय।'

'सती माता! पुत्रके लिय आपका क्या अदय है?' वृद्ध ब्राह्मण धीरे-धीरे कहत जा रहे थे—'मैं तप एव उत्तम धर्मका पालन करते हुए समस्त कर्मोका पालन करूँगा किंतु जन्म-जरा-व्याधि और मृत्युक हेतुभृत कर्माका स्पर्श भी नहीं करूँगा।'

इस प्रकार ससारकी असारता एव भगवद्भक्तिका माहात्म्य-गान करते हुए ज्ञानवृद्ध वयावृद्ध तेजस्वी कृशकाय ब्राह्मणने अन्तम कहा—'समस्त कर्मोका फल प्रदान करनेवाली माता! आप नित्यस्वरूपा सनातनी दवी हाकर भी लोकशिक्षाक लिये पूजा और तपश्चरण करती हे। प्रत्यक कल्पम गोलाकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमे आपक अङ्कम प्रकट होकर क्रीडा करते हैं।'

इतना कहत-कहते अशक्त वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित हाकर परम साध्वी परम मङ्गलमयी एव परम धन्या माता पार्वतीकी शय्यापर नवजात शिशुके रूपम लेटकर छतकी आर देखने लग—

शुद्धचम्पकवर्णाभ कोटिचन्द्रसमप्रभ।
सुखदृश्य सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धक॥
अतीव सुन्दरतनु कामदवविमोहन।
मुख निरुपम बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दर लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दक।
ओष्ठाधरपुट बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपाल च कपोल च परम सुमनाहरम्।
नासाग्र रुचिर बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपम सर्वाङ्ग बिभ्रदुत्तमम्।
शयान शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० ८। ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकक समान थी। उसका प्रकाश कराडा चन्द्रमाआकी भाँति उद्दीप्त था। सब लाग सुखपूवक उसकी आर दख सकत थ। वह नेत्राकी ज्योतिका बढानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर कामदवका विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसक सुन्दर नेत्र मनाहर कमलका तिरस्कृत करनेवाल थे। ओष्ठ और अधरपुट एस लाल थ कि उस दखकर पका हुआ

बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुडकी चोचको भी तिरस्कृत करनेवाली थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह शय्यापर सोया हुआ रमणीय शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें ढूँढनेके लिये कहा और स्वयं दु खी होकर कहने लगीं—'तृषा-क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे पीडित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका जीवन व्यर्थ चला जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेवके अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिकाने आकाशवाणी सुनी—'मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। 'पुण्यक-व्रत' के फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

> यत्तेजो योगिन शश्वद् ध्यायन्ते सतत मुदा॥
> ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादय ।
> यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
> यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
> पुण्यराशिस्वरूप च स्वसुत पश्य मन्दिरे॥
> कल्पे कल्पे ध्यायसे य ज्योतीरूप सनातनम्।
> पश्य त्व मुक्तिद पुत्र भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
> तव वाञ्छापूर्णबीज तप कल्पतरो फलम्।
> सुन्दर स्वमुत पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥
> (ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० ९ । ९—१३)

'योगी लोग जिस अविनाशी तेजको प्रसन्न-मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं वैष्णवगण तथा ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्यराशिस्वरूप है मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योतिरूपका ध्यान करती हो वही तुम्हारा पुत्र है। वह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज तपरूपी कल्पवृक्षका फल और सुन्दरतामें करोडों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है अपने उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण करते हुए कहा—'उस क्षुधार्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तुम्हारे सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम पुत्रको देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त होते ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर पद्मपत्राक्ष शिशुको अपनी शय्यापर लेटे हुए देखा। वह त्रैलोक्यसुन्दर तेजस्वी शिशु छतकी ओर निहार रहा था। उसके दिव्य अङ्गोंसे दिव्य तेज फैल रहा था। वह इधर-उधर अपने हाथ-पैर फेंक रहा था। परम पावनी माताका स्तनपान करनेके लिये वह क्रन्दन कर रहा था।

'प्राणनाथ! आप घर चलकर मन्दिरके भीतर तो देखिये।' हर्षोल्लासपूर्ण हृदयमें पुत्रवत्सला भगवती उमाने दौडकर त्रिलोकैश्वर्यदायक भक्तवाञ्छाकल्पतरु शिवसे कहा—'सद्य फलदायिनी आपकी ध्यानमूर्ति ही पुत्रके रूपमें प्रकट हुई है।'

भुजङ्गभूषण भी हर्षमग्न हो गये। वे तुरंत उठकर अपनी प्राणप्रियाके साथ घरमें गये। वहाँ उन्होंने शय्यापर तप्त स्वर्ण-तुल्य कान्तिमान् अपने पुत्रको देखा। भावोल्लसित शिव पुत्रको देखकर प्रसन्न और चकित होकर सोच रहे थे—'अरे! मैं जिसे देख

तेजस्विनी और परम मङ्गलमयी मूर्तिका ध्यान करता रहता हूँ, वह मूर्ति तो प्रत्यक्ष मेरे पुत्रके रूपम मेरे सम्मुख मुस्कराती हुई क्रीडा कर रही है।'

सर्वानन्दप्रदायिनी पार्वतीके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होने पुत्रको अङ्कमे ले लिया और हर्षके आवेगमे उसका चुम्बन करने लगीं। आनन्दमग्ना नित्यरूपा पार्वतीने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

सम्प्राप्यामूल्यरत्न त्वा पूर्णमेव सनातनम्।
यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा।
मानस परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० ९ । २७-२८)

'बेटा! जैस दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर सतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिस मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है।'

इस प्रकार कहती हुई माता पार्वती शिशुको अत्यन्त प्रेमसे अपना अमृतमय दूध पिलाने लगीं।

इसके अनन्तर चराचर प्राणियाके आश्रय भगवान् शकरने भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने पुत्रको गोदम उठा लिया। वहाँ पधारे सभी ऋषिया, मुनिया और सिद्धाने नवजात शिशुको अनेक प्रकारके मङ्गलमय आशीर्वचन दिये। ब्राह्मणोने प्रसन्न होकर अपने हृदयका सम्पूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया एव वन्दियाने समस्त मङ्गलकामनाएँ प्रकट कीं।

पार्वतीनन्दनका छिन्न मस्तक

उसी समय गौरीनन्दनके दर्शनार्थ प्रज्वलित अग्निशिखा-तुल्य दीप्तिमान्, पीताम्बरधारी श्यामल सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पधारे।

सूर्यपुत्र शनैश्चरने अलौकिक भवनमे उस समय प्रवेश किया जब वस्त्रालकारभूषिता मङ्गलमयी जननी पार्वती नवागत शुभानन शिशुको गादम लकर रत्नसिहासनपर बैठी हुई प्रसन्नतासे मुसकरा रही थीं। पाँच सखियाँ उनके समीप खडी होकर श्वेत चँवर डुला रही थीं। शनैश्चरने त्रैलोक्यदुर्लभ जननी पार्वतीके पाद-पद्मामे मस्तक झुकाय श्रद्धा एव प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्ह आशिष् दकर उनसे कुशल-समाचार पूछा—

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे है ओर आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण बाधाआ एव कलाओके अधिपतिकी जननी पार्वतीने धर्मात्मा शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रह हे! इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भागते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाय कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोसे ही सुख-दु ख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गापनीय है आर माताके सम्मुख कहन योग्य नहीं हे, तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर द रहा हूँ।'

'शकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालस ही मेर मनम श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्राय उन्हींक अत्यन्त सुखद ध्यानम तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एव तप-निरत था किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीस मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी तजस्विनी एव तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात हे, मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानक अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी जब मैं भगवच्चरणाक ध्यानम तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।'

'तुम जिसकी ओर दृष्टिपात कराग, वही नष्ट हा जायगा!' ऋतुकालके विफल हानपर उसन दु खी मनस मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानस विरत होनपर मैंने उसे सतुष्ट किया किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लोटानम समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिसाक भयस अपन नेत्रास किसीका आर नहीं दखता और सहज ही सदा सिर झुकाय रहता हूँ।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकिया और किनरियाक समुदायक साथ अनन्तानन्तसुखदायिनी जगदम्बा हँसन लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व इश्वरच्छाक अधीन ह।' सर्वकाम-फलप्रदायिनी जगदीश्वरीन एसा कहत हुए शनैश्चरदेवस कहा—'तुम मेरी आर तथा मेरे शिशुकी आर दखा।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं ?' शनैश्चरदेव मन-ही-मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा, किंतु सर्वेश्वरी जननीकी आज्ञा कैसे टाली जाय?'

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने धर्मको साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके पाप-संताप-हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो गये थे फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे केवल पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी शापग्रस्त दृष्टि पड़ते ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके प्राणप्रिय पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

अपने अङ्कमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका रक्तसे लथपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। वे बालकका धड़ वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता देवियाँ पर्वत गन्धर्व शिव तथा समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करनेके बाद श्रीहरिने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुडपर विराजमान हो तीव्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें हथिनी और बच्चोंके साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था। सर्वमङ्गलकर श्रीहरिने तुरंत अपने सुदर्शनसे उसका मस्तक उतारकर गरुडपर रख लिया।

गजके कटे अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार करने लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे जगकर व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुडासनपर विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग)-का खण्डन करनेमें समर्थ शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरिकी अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह परम प्रभुका स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने दूसरे गजका मस्तक उतार उसके शरीरसे जोड़ दिया और फिर अपने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया।

'भाग्यवान् गज! तू सकुटुम्ब कल्पपर्यन्त जीवित रह।' अपने मङ्गलमय चरणोंसे उसके सर्वाङ्गका स्पर्श करते हुए परम प्रभुने उसके परम मङ्गलके लिये वरदान प्रदान किया। तदनन्तर गरुड वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैलासपर पहुँच गये।

श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे सटा लिया और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके धड़से जोड़ दिया।

'हुं'! परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक जीवित हो गया फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको सचेत करके उनका पुत्र उनके अङ्कमें रख दिया और विविध मनोरम मधुर वचनोंसे शोकाकुल पार्वतीको समझाने लगे।

श्रीहरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी पार्वती संतुष्ट हो गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-चरणोंमें प्रणामकर अपने शिशुको गोदमें लेकर उसे दुग्धपान कराने लगीं। फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे हाथ

जोडकर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना की।

परम तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति विष्णुने, अपना कौस्तुभ उस लम्बाष्ठ बालकके गलेमे डालते हुए उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

लम्बकर्ण पार्वती-पुत्रके जीवित हो जानेपर हर्षातिरेकसे लोकस्रष्टाने उसे अपना किरीट और धर्मने रत्नाभूषण प्रदान किया। इसके अनन्तर देवियो, उपस्थित सभी देवताओ, मुनियो पर्वतो, गन्धर्वों और एकत्र समस्त स्त्रियोने प्रसन्न-मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको प्रदान किये।

अपने सुमङ्गलमङ्गल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नताम सर्वलोकमहेश्वर शिव एव निखिलसृष्टि-सचालिका पार्वतीने असख्य रत्नाका दान किया। हिमगिरिने वन्दियाको सो गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोको दान दिया और स्त्रियान भी अपने दानोसे वन्दियाको सतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त माङ्गलिक कार्योंके साथ वेदो और पुराणाका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोको अत्यन्त आदरपूर्वक दुलभ सुमिष्ट पक्वान्नाक भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अङ्गरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तम देवताओ और मुनियाके साथ भगवान् शकरके सदनम पहुँचे। वहाँ उन्हाने श्रेष्ठतम उपहारासे पद्म-प्रसन्न-नयन गजाननकी पूजा की और आशीर्वाद प्रदान की—

> सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
> सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥
>
> (ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० १३ । २)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है अत वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न-कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठम वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदानकर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओ और मुनियोके साथ उसका नामकरण किया—

> विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजानन ।
> लम्बोदरश्चैकदन्त शूर्पकर्णो विनायक ॥
>
> (ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० १३ । ५)

'विघ्नेश गणेश हेरम्ब गजानन लम्बोदर एकदन्त शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रख गये।'

तत्पश्चात् दयामय श्रीहरिने पुन मुनियोको बुलवाकर हेरम्बको आशीर्वाद दिलवाया। इसके अनन्तर सभी देव-देवियो एव मुनियो आदिने मुक्तिदाता शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने अघनाशन पुत्रको रत्नसिहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशाम स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेद-मन्त्राका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्हाने अपने दु ख-भञ्जनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने गणेशको पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य पापनाशिनी गङ्गाजीके जलसे अर्घ्य एव दूर्वा, अक्षत पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराकर रत्नपात्रम रखे हुए मधुपर्क एव शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल बहुमूल्य-रत्नाभरण विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनके प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके अन्य अनेक व्यञ्जन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यञ्जनोका पर्वत-तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार बेलके फल भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ जामुन कटहल आम केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीड और सैकडो स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नम ॥

(ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० १३ । ३२)

—इस मन्त्रसे प्रणताज्ञानमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हे भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान करके वे आनन्दमे निमग्न हो गये।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमे प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायण-तुल्य दोनो गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कैलासपुरीका दर्शन किया।

अपने गुरुदेवकी उस दिव्य पुरीके दर्शनकर रेणुकानन्दन आनन्द-विभोर हो गये।

'बन्धुवर! मैं परमानुग्रहमूर्ति, भक्तवत्सल समदर्शी अपने गुरु शूलपाणिका दर्शन करना चाहता हूँ।' वीरवर परशुरामने सम्मुख खडे मुद्गरायुध गणेशसे कहा।

'इस समय भूतेश्वर शिव एव माता पार्वती अन्त पुरमे हैं।' अमोघ-सिद्ध गणेशने उन्हे अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—'अतएव अभी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।'

'मैं तो परमपिता शिव एव दयामयी माँके दर्शनार्थ जाऊँगा ही।' बलपूर्वक रेणुकानन्दन आगे बढना ही चाहते थे कि विघ्नराजने उन्हे रोक दिया।

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोसे रहित करनेवाले भृगुनन्दन कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही नहीं मल्लयुद्ध भी होने लगा। कुमार कार्तिकेयने भी उन्हे समझानेका प्रयत्न किया किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी बुद्धिविशारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे गिर गये।

शिवपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये उनकी भर्त्सना की तो परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु उठा लिया। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड बढाकर परशुरामको उसमे लपेट लिया और उन्हे घुमाने लगे। योगाधिप गणेशकी महान् सूँडमे लिपटे परशुराम सर्वथा असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके योगबलसे परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

गजमुख एकदन्त हुए

कुछ ही देर बाद परशुराम सचेत हो गये। तब उन्होंने अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णके जगद्गुरु शिवद्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ स्तोत्र एव कवचका स्मरण किया और सम्पूर्ण शक्तिसे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्णतम अपने परशुसे प्रणतार्ति निवारक गौरीनन्दनपर प्रहार कर दिया। गणाधिराजने अपने परमपूज्य पिताके अमोघ अस्त्रका सम्मान करनेके लिये उसे अपने बाये दाँतसे पकड लिया। शिव-शक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी परशु गणेशके बाये दाँतको समूल काटकर पुन रेणुकापुत्र परशुरामके हाथमे लौट आया।

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय भयानक शब्द हुआ और सत्यसकल्प गिरिजानन्दनके मुखसे रक्तका फव्वारा छूट पडा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना दाँत भूतलपर गिर पडा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह दृश्य देखकर वीरभद्र कार्तिकेय क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा शून्यमे देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने लगे।

कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा शिवकी निद्रा भङ्ग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ?' दौडी हुई परमाद्या भगवती पार्वती आयी तो उन्होने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे दाँत तथा रक्तमे डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परम शान्त लज्जासे सिर झुकाये खडे है। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होने स्कन्दसे पूछा—'क्या बात है? यह कैसे हुआ?' स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुई और अपने प्राणाधिक प्रिय सुकुमार पुत्र गणेशको अङ्कमे लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी पार्वतीने डरते-डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममे किसका दोष है, आप ही निर्णय करे।'

अत्यन्त दुःखसे व्याकुल पुत्रवत्सला पार्वतीने गणेशकी महिमाका बखान करते हुए परशुरामसे कहा—'जितेन्द्रिय पुरुषोमे श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखो-करोडो जन्तुओको मार डालनेकी शक्ति रखता है, परतु वह मक्खीपर भी हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ यह गणेश तेजमे श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।'

इतना कहकर क्रोधाभिभूत गिरिराजकिशोरी परशुरामको मारनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। भयवश परशुरामने मन-ही-मन करुणासागर गुरुको प्रणामकर अपने इष्टदेव गोलोकनाथ श्रीकृष्णका स्मरण किया।

तत्क्षण उमाने अपने सम्मुख भानुकोटिशतप्रभ एक बौने ब्राह्मण-बालकको देखा।

उस परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकको देखकर आतुरतासे भृत्यासहित भगवान् शकरने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद माता पार्वतीने भी उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकने भृत्यासहित शिव एव पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

तत्पश्चात् फिर भगवान् शकरने उनका षोडशोपचार पूजन एव स्तवन किया। वे वामनभगवान् रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनका उत्कृष्ट तेज सर्वत्र फैल रहा था।

'आज मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारकर मुझे सेवाका अवसर प्रदान किया है।' भगवान् शकरने मधुर शब्दोमे कहा—'अतिथि-सत्कार करनेवालेके द्वारा स्वतः समस्त देवताओकी पूजा सम्पन्न हो जाती है क्योकि अतिथिके सतुष्ट होनेसे स्वय श्रीहरि सतुष्ट हो जाते हैं।'

'आप लोगोकी वर्तमान परिस्थिति जानकर मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ।' आशुतोष शिवकी मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण-बालकरूपी स्वय श्रीहरिने गम्भीर स्वरमे कहा—'मेरे भक्तोका कभी अमङ्गल नहीं होता। मेरा सहस्रार उनके रक्षार्थ प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर मै विवश हो जाता हूँ। गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे सौगुना श्रेष्ठ है। गुरुसे बढकर कोई देवता नही है और न पार्वतीपरा साध्वी न गणेशात्परो वशी।' (ब्रह्मवैवर्त गणपतिख० ४४। ७५) पार्वतीसे बढकर कोई पतिव्रता नही है तथा गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय नही है। भृगुनन्दनने गुरु-पत्नी एव गुरुपुत्रकी अवहेलना कर दी है उसीका मार्जन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'

'हिमगिरिनन्दिनि!' अब श्रीहरिने भगवती पार्वतीसे कहा—'तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे लिये गणेश और कार्तिकेयके समान ही परशुराम भी पुत्र-तुल्य हैं। इन परशुरामके स्नेहके प्रति शिव और तुम्हारे मनमे भेद नहीं है। अतएव जो उचित समझो करो। दैव बडा प्रबल होता है। बालकोका यह विवाद तो दैव-दोषसे ही घटित हुआ है। तुम्हारे इस प्रिय पुत्रका 'एकदन्त'-नाम वेदोमे प्रसिद्ध है। पुराणोमे भी तुम्हारे पुत्रके आठ नाम बताये गये है—

> गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
> लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥
> (ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० ४४। ८५)

'गणेश एकदन्त हेरम्ब विघ्ननायक लम्बोदर, शूर्पकर्ण गजवक्त्र और गुहाग्रज।' इस प्रकार श्रीहरिने माता पार्वतीको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दिया।

पुनः श्रीहरिने परशुरामसे कहा—'राम! तुमने क्रोधवश

शिवा-पुत्र गणेशका दाँत तोडकर अनुचित किया हे।' इस कारण तुम निश्चय ही अपराधी हा। य सर्वशक्तिस्वरूपा पावती प्रकृतिस परे आर निर्गुण ह। श्रीकृष्ण भी इन्हींकी शक्तिसे शक्तिशाली हुए हैं। य समस्त दवताआकी जननी ह। तुम इनकी स्तुति करके इन्हें सतुष्ट करा।'

इतना कहकर श्रीहरि वकुण्ठके लिय प्रस्थित हुए ओर परशुरामने स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण किय। फिर व हाथ जाड गुरुदेवके चरणाम प्रणामकर सिर झुकाये जगज्जननी गाराका स्तवन करने लगे—

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराध क्षमस्व मे।
शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥
(ब्रह्मवैवर्त० गणपतिख० ४५। ५७)

'जगज्जननी! रक्षा करो रक्षा करो, मेरे अपराधका क्षमा कर दो। भला कहीं बच्चके अपराध करनेसे माता कुपित हाती हे?'

स्तुति करनके बाद परशुरामन माता पार्वतीक चरणाम प्रणाम किया और अत्यन्त दु खी हाकर व रोने लगे।

'वत्स! तुम अमर हा जाआ!' परशुरामकी करुण प्रार्थनास्मे करुणामयी भक्तवत्सला जननी पार्वतीका हृदय द्रवित हो गया। उन्हान प्रीतिपूर्वक परशुरामको अभय-दान दते हुए कहा—'बेटा! अब शान्त हा जाआ। प्रभु आशुतापक अनुग्रहस तुम्हारा सवत्र विजय हा। सर्वान्तरात्मा श्रीहरि तुमपर सदा प्रसन्न रह। गुरदव शिवम तुम्हारी भक्ति सुदृढ रह।'

इस प्रकार सर्वशक्तिसमन्विता दयामयी पार्वतीन परशुरामका आशावाद दिया और फिर व अपन अन्त - पुरम चली गया।

उस समय वहाँ श्रीभगवान्क मङ्गलमय नामका उच्च घाप हान लगा। परशुरामक हर्षकी सीमा न रही।

फिर रेणुकानन्दनन एकदन्त गणशका स्तवन किया आर गन्ध पुष्प, धूप-दीप एव तुलसीरहित नैवद्य आदिस लम्बादरकी प्रीतिपूर्वक पूजा की। परशुरामन भक्तिभावस भाई गणशको सतुष्ट करक जगन्माता पावती एव कृपासिन्धु त्रिलाचनक चरणाम प्रणाम किया। तदनन्तर उन्हान गुरकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक तपश्चरणक लिय प्रस्थान किया।

गणेशका तुलसीको शाप

ब्रह्मकल्पकी बात है। नवयौवनसम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसादवी भगवान् नारायणका स्मरण करती हुई तीर्थोंम भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार व पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके पावनतम तटपर पहुँचीं।

'अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका?' वहाँ तुलसीदेवाने अत्यन्त सुन्दर आर शुद्ध पाताम्बर धारण किय नवयौवनसम्पन्न परमसुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेशका दखा। उनक सम्पूर्ण शरीरम चन्दनकी खोर लगी थी आर वे रत्नाभरणास विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एव जितन्द्रिय पार्वतीनन्दनको देखकर तुलसीदेवीका मन उनकी आर बरबस आकृष्ट हो गया। विनोदके स्वरमे उन्हाने यागाधिप खण्डेन्दुशेखरसे कहा—'गजवक्त्र! शूर्पकर्ण! एकदन्त! घटोदर! सारे आश्चर्य आपक ही शुभ विग्रहमे एकत्र हो गये हैं। किस तपस्याका फल ह यह?'

'वत्से! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हा? यहाँ किस हेतुस आयी हो?' उमानन्दन एकदन्तन शान्त स्वरम कहा—'माता! तपश्चरणम विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याणका हेतु होता हे। मङ्गलमय प्रभु तुम्हारा मङ्गल कर।'

'मैं धर्मात्मजकी नवयुवती पुत्री हूँ।' तुलसीदवीन उपहास छोडकर मधुरवाणीम परम जितन्द्रिय शम्भुकुमारस निवदन किया—'मैं मनाऽनुकूल पतिकी प्राप्तिक लिये तपस्याम सलग्न हूँ। आप मुझ पत्नीक रूपम स्वीकार कर लीजिय।'

'माता! विवाह बडा दु खदायी हाता है।' घबराते हुए लम्बादरने उत्तर दिया। तुम मेरी आरस अपना मन

हटाकर किसी अन्य पुरुषको पतिके रूपमे वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।'

'तुम्हारा विवाह अवश्य होगा।' कुपित होकर तुलसीदेवीने लम्बोदरको शाप दे दिया।

'देवि! तुम्हे भी असुर पति प्राप्त होगा।' एकदन्त गणेशने भी तुरत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर महापुरुषोके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।'

पार्वतीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्बका स्तवन करने लगीं।

'देवि! तुम पुष्पोकी सारभूता एव कलांशसे नारायण-प्रिया बनोगी।' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यो तो सभी देवता तुमसे सतुष्ट होगे किंतु श्रीहरिके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा श्रीहरिकी अर्चनाकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेगे, किंतु मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके संनिकट चले गये।[१]

(ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्ड)

(४)

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

श्वेतकल्पमे गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है। उस कल्पमे स्वय भगवान् शकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण'मे इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी अत्यन्त रूपवती गुणवती एव मधुरहासिनी जया और विजया—ये दो सखियाँ थीं।

'सखी! सभी गण रुद्रके ही है।' एक दिन उन दोनो सखियोने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे है, वे भी भगवान् शकरकी ही आज्ञामे तत्पर रहते है। असख्य प्रमथगणोमे भी हमारा कोई नहीं है। वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खडे रहते है। यद्यपि वे सभी हमारे भी है तथापि आप कृपापूर्वक हम लोगोके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये।'

माता पार्वती उन सहचरियोकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमे थीं। लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे स्नानागारमे पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खडी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमे कैसे आ जाते? निश्चय ही इन गणोपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ तथा कार्यकुशल हो एव मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमे कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय पावनतम शरीरके मलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया।

[१] कालान्तरमे तुलसीदेवी वृन्दाके नामसे दानवराज शखचूडकी पत्नी हुई। शखचूड भगवान् शकरके त्रिशूलसे मारा गया और उसके बाद नारायण-प्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयी। यह कथा पुराणोमे विस्तारसे आयी है।

वह शुभ लक्षणासे सयुक्त था। उसके सभी अङ्ग दोषरहित एव सुन्दर थे। उसका वह शरीर विशाल परम शाभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं हे।'

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस पुरुषन आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोमे अत्यन्त श्रद्धा ओर भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'माता। आपका प्रत्यक आदेश शिरोधार्य हे। आप क्या चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करे। मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य निष्ठापूर्वक करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेर हा।' महाशक्ति देवी पावतीन कहा—'तुम मर द्वारपाल हो जाआ। चाहे कोई हो कहाँसे भी आया हो मेरी आज्ञाके बिना मरे अन्त पुरम प्रवेश न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

गणेशका शिवगणोसे अद्भुत युद्ध

शिवप्रियाने अपने पुत्र गणशक हाथम एक सुदृढ छडी दे दी। फिर उन्हाने अपने यष्टि-धारी पुत्रका सान्दर्य दखा तो आनन्दमग्न हो गया। उन्हान अपने परम प्रिय एव सर्वाङ्गसुन्दर पुत्रको अङ्कम लेकर उसक मुखका चुम्बन किया। इसक अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपन प्राणप्रिय दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया आर स्वय अपनी सखियाक साथ स्नान करन चली गयीं।

'देव। आप कहाँ जाना चाहते हैं ?' कुछ ही दरम स्वय कर्पूरगौर शशाङ्कशेखर वहाँ पहुँच। व शिवाक प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अपरिचित थ। चन्द्रमौलि अन्त पुरम प्रविष्ट हाना ही चाहत थे कि उन्ह राकत हुए दण्डधारी गणराजने उनस कहा—'आप माताकी आज्ञाक विना भीतर नहा जा सकत। जननी स्नान कर रहा हैं। इस समय आप यहाँस चल जाइय।'

'मूर्ख। तू किस राक रहा है ?' दण्डधारी गणराजक द्वारा अनपक्षित व्यवधान दखकर करुणामय त्रिनयनन कहा— तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ ? मैं प्रत्यक्ष शिव हो यहाँ आया हूँ।'

'आप चाहे जो कोई हो, किंतु मेरी माताकी आज्ञाके बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' मातृभक्त वीर बालक गणेशन अपनी सुदृढ यष्टि आगे कर दी।

'यह कौन हे ओर मेरा मार्गावरोध क्या कर रहा है ?' लीलानायक सर्वान्तर्यामी, विनोदी शिवने अपने गणाको आज्ञा दी आर स्वय वहाँसे कुछ दूर हटकर द्वारक समीप ही खडे हो गये।

'तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और तुम्हे क्या अभीष्ट है ?' महेश्वरके गणान पार्वतीनन्दनक समीप जाकर उससे कहा—'यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र चले जाओ।'

'तुम लोग कौन हो आर कहाँसे आये हो ?' अत्यन्त धीर-वीर गिरिजानन्दनने निर्भय होकर शिवगणोसे कहा—'दखनम तो वडे सुन्दर हो किंतु अकारण मुझे क्या छेड रहे हो ?'

'हम मुख्य शिवगण आर द्वारपाल हैं।' 'हम सर्वान्तर्यामी एव सर्वसमर्थ श्रीपार्वतीवल्लभके आदेशसे तुम्हे यहाँसे हटाने आये हैं। तुम्हे भी गण समझकर हम लोगोंने कुछ नहीं कहा है। अब कुशल इसीमें है कि तुम यहाँसे स्वत हट जाओ अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमे चले जाओगे।'

'मै माता पार्वतीका पुत्र हूँ। मातान मुझे किसीको भी भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।' महाशक्तिके शक्तिमान् पुत्र गणेशने शिवगणोसे कहा—'यदि तुम्हे अपने स्वामी शिवकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है तो यहीं खडे रहो पर द्वारके भीतर नहीं जा सकते।'

'प्रभो। वह बालक माता पार्वतीका पुत्र है और अपने स्थानसे विचलित नहीं हो रहा है।' शिवगणोंने महेश्वरके समीप जाकर उनकी स्तुति करते हुए अत्यन्त विनीत स्वरमे निवेदन किया—'वह शक्तिसम्पन्न तेजस्वी बालक द्वारसे किसी प्रकार नहीं हटता आर युद्धके लिये प्रस्तुत है।'

'एक बालकके सम्मुख तुम लोग सर्वथा अवश हो गये। लीलाविहारी कर्पूरगौर श्रीपार्वतीवल्लभने सरोष मुद्रामें अपने गणोंसे कहा—'कुछ नहीं कर सके ? वह निरा बालक और एकाकी है। यदि तुम्हे युद्ध भी करना हो तो अवश्य

करो। शत्रुकी भाँति बकनेवाले बालकको द्वारसे शीघ्र भगा दो।'

शिवगणोंने महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने शस्त्र ले पार्वतीनन्दनकी ओर चले। शिवगणोंकी सशस्त्र-वाहिनीको अपनी ओर आती देख परमपराक्रमी षडानन-अनुज दण्डपाणिने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनसे कहा—

'शिवकी आज्ञा-पालन करनेवाले गणो! आओ! मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, तथापि देवी पार्वती अपने पुत्रका और त्रिपुरारि अपने गणोंका बल देखें।

सर्वेश्वरी-तनयने आगे कहा—'विजय और पराजय हमारी-तुम्हारी नहीं होगी। यह तो माता अम्बिका और पशुपतिकी होगी। तुम लोग अपने स्वामीकी ओर देखकर अपने शस्त्रोंका प्रयोग करो मैं अपनी माताकी आज्ञाके पालन-हेतु युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ।'

बालक गणपतिके तीक्ष्ण वाक्-शरोंसे क्रुद्ध होकर नन्दी, भृङ्गी आदि गणोंने उनपर आक्रमण कर दिया। तब कुपित होकर गणेशजीने भी उनपर कठोर प्रहार करना प्रारम्भ किया। गणेशजीके भीषण प्रत्याक्रमणसे शिवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे शक्ति-पुत्रके असह्य प्रहारसे प्राण बचाकर यत्र-तत्र भाग खड़े हुए।

कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः॥
(शिवपु० रुद्रसं० कु० ख० १५। २०)

'जैसे कल्पके अन्तमें भयंकर काल दिखायी देता है, उसी प्रकार गणेशजी उस समय सबको प्रलयंकर दिखायी देने लगे।'

उस समय जगन्माता पार्वतीके अप्रतिम शूर पुत्रके कठोर प्रहारसे कितने ही शिवगणोंका अङ्ग-भंग हो गया कुछ गण वहीं धराशायी हो गये और कुछके शरीरसे रुधिर बहने लगा।

'उस प्रबल पराक्रमीके सम्मुख हम नहीं टिक सकते। कुछ गणोंने तुरंत भगवान् भूतभावनके चरणोंमें प्रणामकर विनयपूर्वक निवेदन किया। 'उस बालकका प्रलयाग्नि-तुल्य क्रोध हमें दग्ध-सा किये देता है।'

अपने गणोंके मुखसे उनके संहार एवं पराजयका संवाद प्राप्तकर लीला-विशारद महादेव क्रुद्ध हुए। उन्होंने इन्द्रादि देवताओं, षडानन आदि श्रेष्ठ गणों एवं भूत-प्रेत-पिशाचोंको बुलाकर उनसे कहा—'उसे पराजित करो। मेरे ही द्वारपर बालकका यह उपद्रव मुझे असह्य हो रहा है।'

सुरेन्द्रादि देव वीरवर तारकारि कार्तिकेय आदि गण एवं समस्त प्रेत-पिशाचोंने अपने-अपने आयुध उठाये और निर्विकार कामारिके आदेशानुसार योगक्षेमकर्त्री माहेश्वरीके किशोर कुमार गणेशको चारों ओरसे घेर लिया।

चतुर्दिक् अप्रतिम सशस्त्र देवता गण एवं भूत-प्रेत उनके मध्य सर्वथा एकाकी दण्डपाणि पार्वती-पुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश अप्रतिम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबल पराक्रमी थे। उन्होंने शत्रुपक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष-सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे।

शर्वाणी-सुत गणेशके प्रहारसे अधीर होकर देव-गण आदि परस्पर कहने लगे—

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश।
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥
(शिवपु० रुद्रसं० कु० ख० १५। ५३)

'क्या करें? कहाँ जायँ? दिशाएँ दीखती नहीं यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

'प्रभो! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे भागे हुए देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारम्बार प्रणामकर निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं पर ऐसा समर न कभी सुना न देखा है। इस दुर्धर्ष उग्र बालकपर विजय प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है। आप कृपापूर्वक कोई यत्न कीजिये।'

शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा

'इस संवादसे परम क्रोधी रुद्र अत्यधिक कुपित हुए। वे अपने गणोंके साथ माया संहार-रूपिणी उमाके अन्यतम वीर पुत्र गणेशके सम्मुख पहुँचे। यह देख सम्पूर्ण देव-सेना क्षीराब्धिशायी विष्णुके साथ हर्षोल्लासपूर्वक शिवके समीप पहुँच गयी।'

रुद्रदेवके बालक गणेशके साथ युद्धके लिये उद्यत देखकर देवताओंने उनके त्रैलोक्यपावन चरणोंका स्पर्श किया और फिर सोत्साह रणाङ्गणमें कूद पड़े। महादिव्य आयुधधारी महाशक्तिशाली श्रीहरि भी गणेशसे युद्ध करने लगे।

महाशक्ति-पुत्र गणेशने देवताओंपर भीषण दण्ड-प्रहार किया। उनके दण्ड-प्रहारसे श्रीहरि भी घबरा गये। भगवान् त्रिलोचन भी दीर्घकालतक भीषण सग्राममें अपने सैन्यदलका निर्मम दलन होते देखकर चकित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुन ।' (शिवपु० रुद्रस०, कु० ख० १६। ८)—इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्य किसी रीतिसे इसे मारना सम्भव नहीं।'

इस निश्चयके साथ ही त्रिनेत्र विशाल वाहिनीके मध्य खड़े हो गये। सर्वाधार श्रीहरि भी वहाँ आ गये। शिवके गण हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करने लगे। उस समय धर्म-परायणा पार्वतीके पुत्रने अपने दण्डसे श्रीविष्णुकी पूजा की।

'विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ।' श्रीहरिने धीरेसे वृषभध्वजसे कहा—'उस समय आप इसे मार डालें। यह बालक छलके बिना नहीं मारा जा सकता।'

भगवान् शिवने श्रीहरिको ऐसा करनेकी अनुमति दे दी। त्रैलोक्यपति श्रीविष्णुके विचारसे अवगत होते ही धर्ममयी पार्वतीकी दोनों शक्तियोंने गणेशको अपना बल दे दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। श्रीहरिने आशुतोष शिवका स्मरण किया और गणेशको ठगनेका प्रयत्न करने लगे।

भगवान् शिवने कुपित होकर अपना तीक्ष्णतम त्रिशूल उठाया। शिवापुत्र गणराजने शिवको त्रिशूल उठाते देख सर्वशक्तिप्रदायिनी माताके चरणोंका स्मरणकर शिवके हाथमें शक्ति मारी। गणेशके भयानक प्रहारसे शिवका त्रिशूल उनके हाथसे छूट गया।

रुद्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपना पिनाक नामक धनुष उठाया। वारवर गणेशने परिघ-प्रहारसे उसे भी धरतीपर गिरा दिया। उनके पाँचों हाथ भी घायल हो गये। तब उन्होंने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लिये।

महाशक्तिका शक्तिमान् पुत्र अपने परिघके प्रहारसे देवसैन्यको व्यथित और विचलित कर रहा था। यह देखकर त्रिपुरारिने मन-ही-मन कहा—'अरे! जब इस युद्धमें मेरी यह दशा है तब मेरे गणोंको कितना कष्ट हुआ होगा?'

अद्भुत पराक्रमी पार्वतीपुत्रके परिघ-प्रहारसे देवता और गण खड़े नहीं रह सके। वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जिधर मार्ग दीखा, उधर ही भागने लगे।

गणपतिने अपनी जननीका स्मरणकर अनुपम यष्टिसे विष्णुपर आक्रमण किया। उस घातक आक्रमणसे विष्णु धरती पर गिर पड़े, किंतु फिर उठकर वे पार्वतीनन्दनसे युद्ध करने लगे।

पार्वती-पुत्र गणेशको विष्णुसे युद्धमें संलग्न देख भगवान् शिवने उत्तर दिशासे अपने तीक्ष्णतम शूलसे उनपर प्रहार किया जिससे बालक गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

देवताओं और गणोंने संतोषकी साँस ही नहीं ली हर्षोल्लासपूर्वक वे मृदङ्ग और नगाड़े भी बजाने लगे।

शिवाकी व्यथा और उनका कोप

'मेरे पुत्रका शिरश्छेद करके देव-समुदाय और शिवगण विजय-महोत्सव मना रहे हैं'—यह विदित होते ही शंकरार्धशरीरिणी रुद्राणी विकल-विह्वल हो गयीं।

फिर उमाने कुपित होकर सहसा तेजस्विनी शक्तियोंकी रचना की। वे सभी शक्तियाँ परम शक्तिसम्पन्न एवं सर्वसमर्थ थीं। उन्होंने जगदम्बाके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया

और अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'माता! हमे क्या आज्ञा है?'

'शक्तियो! मेरी आज्ञासे तुम लोग किसी प्रकारका विचार किये बिना प्रलय मचाओ।' अत्यन्त शोकाकुल जगज्जननीने क्रुद्ध होकर शक्तियोंको आज्ञा प्रदान की—'तुम लोग देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस तथा स्वजन-परिजन—जिनको जहाँ पाओ, वहीं भक्षण करो।' फिर क्या था? वे महाभयानक देवियाँ कुपित होकर देवता आदि जिन्हे जहाँ पातीं वहीं उन्हे पकडकर अपने भयानक मुँहमें डाल लेतीं। उन शक्तियोका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओको दग्ध-सा कर रहा था। सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रादि देवगण तथा ऋषियोंके मनमे असमयमे ही सहारका विश्वास होने लगा। सभी अपने जीवनसे निराश होने लगे।

'यदि भगवती गिरिजा सतुष्ट हो, तभी यह आपदा टल सकती है। सबने मन्त्रणा की। सुख-शान्तिका अन्य कोई पथ नहीं दीखता।'

'क्रुद्धा पार्वतीके समीप कौन जाय?' 'देवताओकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पुत्रका वधकर माताके सम्मुख जानेका साहस कौन करे?'

उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। विपत्तिग्रस्त देवताओंने उन्हे अपनी व्यथा-कथा सुनायी और कहा—'परमेश्वरी गिरिजाकी प्रसन्नताके बिना हमारा कल्याण सम्भव नहीं।'

माता पार्वतीकी स्तुति

नारदजीके साथ समस्त देवता और ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उन्हे प्रसन्न करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे। ऋषियोकी स्तुति एव उनका दैन्य देखकर दयामयी सर्वलोकेश्वरी जननीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होने ऋषियोसे कहा—

> मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा सहरण न हि।
> यथा हि भवता मध्ये पूज्योऽय च भविष्यति॥
> सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूय कुरुत तद्यदि।
> तदा शान्तिर्भवेल्लोके चान्यथा सुखमाप्स्यथ॥
>
> (शिवपु० रुद्रस० कु० ख० १७। ४२-४३)

'ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आप लोगोके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो सहार नहीं होगा। जब आप लोग उसे 'सर्वाध्यक्ष' का पद प्रदान कर देगे, तभी लोकमे शान्ति हो सकती है, अन्यथा आप लोगोंको सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

दण्डपाणि गजमुख हुए

'ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये।' ऋषियोने निखिल-सृष्टि-नियामिका जननीका कथन इन्द्रादि देवताओको सुनाया। वे सभी उदास और दु खी मनसे अहिभूषणके समीप पहुँचे। उन्होने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक त्रैलोक्यपति शिवके चरणोमे प्रणामकर माताकी बात कही। तब सर्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओसे कहा—'अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड देना चाहिये।'

महेश्वरकी आज्ञासे देवताओने तत्काल सर्वपापविमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित शरीर) धो-पोछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर उत्तर दिशाकी ओर चल पडे।

वहाँ मार्गमे सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसका एक ही दाँत था। देवताओने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड दिया।

'हमने अपना काम पूरा कर लिया।' देवताओने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोके चरणोमे प्रणामकर निवेदन किया ओर नीलकण्ठकी ओर अभिमुख होकर वे कहने लगे—'प्रभो! आपके जिस तेजसे हम सब प्रकट हुए है, आपका वही तेज वेद-मन्त्रोके योगसे इस शिशुमे प्रवेश करे।'

इस प्रकार समस्त देवताओने वेद-मन्त्रोसे जलको अभिमन्त्रित किया फिर सर्वात्मा शिवका स्मरणकर उस जलको उस बालकपर छिडक दिया। उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी। वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

> सुभग सुन्दरतरो गजवक्त्र सुरक्तक ।
> प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृति ॥
>
> (शिवपु० रुद्रस० कु० ख० १७। ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका

मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिस सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

उस परम तेजस्वी पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एव शिवगण आनन्द-विभोर हो

गये। सबका दु ख दूर हा गया। सबने यह सुखद सवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया। जननी दौडी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा ता जैसे सब कुछ भूल गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

समस्त दवताआ आर गणाध्यक्षाने गजाननका अभिपेक किया।

आनन्दोत्सव और गजमुखको वर-प्रदान

जननीने तो हर्पविह्वल हाकर अपने प्राणप्रिय पुत्रका दाना हाथासे उठाकर अपनी गादम लकर छातीसे सटा लिया। पुत्रके पुनर्जीवित हा जानेस उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हा रहा था। हर्पातिरकसे जगदीश्वरीक नेत्र मुँद-से गय थे। कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न हाकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूपण प्रदान किये।

सिद्धियाने उनकी विधिपूवक पूजा की तथा क्लशनाशिना करुणामूर्ति जगदम्वाने अपन सर्वदु खहारी कर-कमलास उनके अङ्गाका स्पर्श किया। अत्यधिक स्नहक कारण जनना अपने पुत्र गजाननका मुख वारम्वार चूमन लगीं।

'बेटा! इस समय तुम्हे बडा कष्ट उठाना पडा।' फिर अत्यन्त प्रमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अपने अद्वितीय पुत्रका वर प्रदान करत हुए कहा—तू धन्य ह। अवसे सम्पूण देवताआम तरी अग्रपूजा हाती रहगी आर तुझ कभी दु खका सामना नहीं करना पडगा—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेपाममराणा वै सर्वदा दु खवर्जित ॥

(शिवपु० रुद्रम० कु० ख० १८। ८)

ससारतारिणी दयामयी जननाने अपन आत्मज गजवक्त्रका अमोघ वर प्रदान करत हुए आगे कहा—

'इस समय तरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा ह इसलिय मनुष्याका सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिय। जा मनुष्य पुष्प, चन्दन सुन्दर गन्ध नवद्य रमणाय आरती ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करक विधिपूर्वक तरी पूजा करगा उस सारी सिद्धियाँ प्राप्त हा जायँगी और उसक सभी प्रकारक विघ्न नष्ट हा जायँगे—इसम लेशमात्र भा सशय नही है।'

इन्द्रादि दवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखका लेकर आशुताप शिवक पास पहुँचे और उन्ह परमपिता शिवकी गादम बैठा दिया। तब सर्व-पावन भगवान् वृपभध्वजने भी उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हुए कहा— पुत्रोऽयमिति म पर '—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।

अरुणवर्ण गणशने भी उठकर अपने पिता नीलकण्ठक अभयद पद-पङ्कजम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्हाने अपनी माक्षपदायिनी माता पार्वतासहित ब्रह्मा विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋपियाक चरणाम प्रणामकर कहा—

क्षन्तव्यश्चापराधो म मानश्चैवदृशो नृणाम्।'

(शिवपु० रुद्रस० कु० ख० १८। १९)

'या अभिमान करना मनुष्याका स्वभाव ही है, अत

आप लोग मेरा अपराध क्षमा कर।' तब ब्रह्मा विष्णु और शिव—त्रिदेवान प्रसन्न होकर शिवा-पुत्र गणेशको एक साथ वर प्रदान करते हुए कहा—

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यम हम तीना देवाकी पूजा हाती है, उसी तरह तुम सबका इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये। मनुष्याको चाहिये कि पहले इनकी पूजा कर ले, तत्पश्चात् हम लोगाका पूजन कर। एसा करनेसे हम लोगाकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। दवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवाका पूजन किया गया ता उस पूजनका फल नष्ट हा जायगा—इसम अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी

सुराने वहीं उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोपित कर दिया।

अत्यधिक हर्षोत्फुल्ल होनेके कारण भवाब्धिपोत धूर्जटिने आग कहा—'गणनाथ! तू भाद्रपद-मासक कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी-तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है गिरिजाके सुन्दर चित्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरम तेरा रूप प्रकट हुआ है इसलिये उसी तिथिम तरा उत्तम व्रत करना चाहिये।[१]

फिर सर्वसिद्धिप्रद उत्तम 'चतुर्थी-व्रत'की विधि बतात हुए करुणामय सर्वभूतपति कर्पूरगौरन कहा—

सर्वैर्वर्णै प्रकर्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेपत ।
उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेपत ॥
य य कामयते यो वै त तमाप्नोति निश्चितम्।
अत कामयमानेन तेन सेव्य सदा भवान्॥

(शिवपु० रुद्रस० कु० ख० १८। ५९-६०)

'सभी वर्णक लोगाको विशेपकर स्त्रियाका यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाल राजाआके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता ह उस निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हा जाती हे अत जिस किसी वस्तुकी अभिलापा हा उस अवश्य तुम्हारी सवा करनी चाहिये।'

'तथास्तु!' स्वर्गापवर्गदाता उमानाथक प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करनेपर सम्पूर्ण दवताआ ऋपिया आर गणान उसका अनुमोदन करत हुए अनेक विधि-विधानास गणाध्यक्षकी पूजा की। शिवगणाने विशपरूपस वक्रतुण्डकी अर्चना एव वन्दना की। अपन प्राणप्रिय पुत्र गजमुखकी श्रष्ठ प्रतिष्ठा देखकर यागेश्वरश्वरी भवानी अत्यन्त मुदित हुई।

१ चतुर्थ्यां त्व समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तया पक्षे चन्द्रस्यादयने शुभ॥
प्रथमे च तया यामे गिरिजाया सुचतस । आविर्बभूव ते रूप यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
(शिवपु० रुद्रस० कु० ख० १८। ३५-३६)

भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न अवतारोंकी लीला-कथाएँ

जब-जब आसुरी शक्तियोके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हे पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एव अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योका विनाशकर देवताओका अपहृत अधिकार उन्हे लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियाको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

प्रत्येक युगमे उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्याका सहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमे ये परमप्रभु गजानन सिहारूढ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, त्रेतामे ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुए द्वापरमे मूपकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे ख्याति हुई, तथा कलिके अन्तमे ये धर्मरक्षक गजानन अश्वाराही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध होगे।

(१)

महोत्कटका प्राकट्य एव उनकी लीलाएँ

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहात्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमे फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति अपने पति महर्षि कश्यपके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पतिके श्रीचरणामे प्रणामकर उन्हाने निवेदन किया—'स्वामिन्! इन्द्रादि देवगणाको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है किंतु पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हो—यह कामना मेरे मनमे बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेगे आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बताकर उन्हे कठोर तपस्याके लिये प्रोत्साहित किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं और पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये एकान्त शान्त अरण्यमे जा पहुँचीं तथा वहाँ देवदेव विनायकके ध्यान और जपमे तन्मय हो गयीं।

भगवती अदितिकी सुदृढ प्रीति एव कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परम तेजस्वी कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायकने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे सतुष्ट होकर तुम्हे वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और सहारकर्ता हैं। आप सर्वेश्वर, नित्य निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप निर्गुण निरहकार नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमे प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टाका विनाश एव साधु-परित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरत कहा—'साधुजनाका रक्षण दुष्टाका विनाश एव तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्हाने अपने पतिके चरणामे प्रणामकर उन्हे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

× × ×

उधर देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमे समस्त देव-समुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट

पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। तब ब्रह्माजीके निर्देशानुसार दुष्ट दैत्योंके भारसे पीडित—व्याकुल धरित्रीसहित देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोडकर आदिदेव विनायककी स्तुति करते हुए कहा—'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

—इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर पृथ्वीसहित देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि व प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।

(गणेशपु० २। ६। १७—१८)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आप लोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निःसंदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

× × ×

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिके समक्ष मङ्गलमयी वेलामें अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ। वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभायमान थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देह-कान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहारकर साधु-पुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है, जो चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहारकर प्राकृत बालककी भाँति क्रीडा करते हुए मुझे पुत्र-सुख प्रदान करें—

इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥

(गणेशपु० २। ६। ३५)

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र रुदन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। अद्भुत बालकके रुदनसे धरती काँपने लगी, वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, नीरस वृक्ष सरस हो गये, देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

ऋषिपुत्र—महोत्कटके जन्मका समाचार सुनकर असुरोंके मनमें भय व्याप्त हो गया और उन्हें बाल्यकालमें ही मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। असुरराज देवान्तकने महोत्कटको मारनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा, परंतु महोत्कटने खेल-खेलमें ही उसे परमधाम प्रदान कर

दिया। इसके बाद 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो राक्षस शुक-रूपम कश्यपके आश्रमम पहुँचकर अपने तीक्ष्ण चोंचोसे मुनिकुमार 'महात्कट'को मारनेका प्रयास करन लगे। इसपर क्रुद्ध हो उन्हान क्षणभरमे उन शुकरूप राक्षसाको धरतीपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार महोत्कटने धूम्राक्ष जृम्भा अन्धक नरान्तक तथा देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरो एव आसुरी सेनाका अनेक लालाआसे सहारकर तीना लोकाको आनन्दित किया—विश्वकी रक्षा की। भगवान्‌के हाथा मृत्यु होनेसे इन असुरोको परमपदकी प्राप्ति हुई। देवान्तक-युद्धम प्रभु द्विदन्तीसे एकदन्ती हो गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक'के नामस काशीमे प्रतिष्ठित हो गये।

(२)

भगवान् मयूरेश्वरकी लीला-कथा

त्रेतायुगकी बात है। मैथिलदेशम प्रसिद्ध गण्डकी नगरके सद्धर्मपरायण नरेश चक्रपाणिके पुत्र सिन्धुक क्रूरतम शासनसे धराधामपर धमकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा था। उसी समय भगवान् गणशन 'मयूरेश्वर'के रूपमे लीला-विग्रह धारणकर विविध लीलाएँ कीं और महाबली सिन्धुके अत्याचारासे त्रैलोक्यका रक्षण करते हुए पुन विधाताके शाश्वत नियमोकी प्रतिष्ठापना की।

अत्यन्त शक्तिशाली सिन्धुके दो सहस्र वर्षकी उग्र तपस्यास सहस्राशु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने उसे अभीष्ट वरक रूपम अमृतपात्र प्रदान करत हुए कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमे रहेगा, तबतक तुम्हे देवता, नाग मनुष्य, पशु एव पक्षी आदि काई भी दिन, रात प्रात तथा साय किसी भी समय मार न सकेगा।' अब तो वर प्राप्तकर वह अत्यन्त मदान्मत्त हा गया। अकारण ही सत्य-धमके मागपर चलनवालाका तथा निरपराध नर-नारियो एव अबाध शिशुआका हत्या करनम गर्वका अनुभव करने लगा। सम्पूण धरित्री रक्त-रजित-सी हो गयी। इसके बाद उसन पातालम भी अपना आधिपत्य जमा लिया और ससैन्य स्वर्गलोकपर चढाई करक वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओको पराभूतकर तथा विष्णुको बदी बनाकर सर्वत्र हाहाकार मचा दिया।

चिन्तित देवताओन इस विकट कष्टस मुक्ति पानेके लिये अपने गुरु बृहस्पतिसे निवदन किया। सुरगुरुने कहा—'परम प्रभु विनायक स्वल्प पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं, अत आप लोग असुरसहारक दशभुज विनायककी स्तुति-प्रार्थना कर। एसा करनेसे वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरोका वधकर धराका भार हलका करगे और आप लोगोंका अपहृत पद पुन प्रदान करगे।' प्रसन्नतापूर्वक देवताओने भक्तिपूर्वक उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया।

दवताओकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर परम प्रभु विनायक प्रकट हो गये और कहने लगे—'जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भस जन्म लिया था, उसी पकार शिवप्रिया माता पार्वतीक यहाँ अवतरित होकर महादैत्य सिन्धुका वध करूँगा और आप सबका अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारम मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा'—इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगणाके तो हर्षका ठिकाना न रहा।

एक बार माता पार्वती देवाधिदेव भगवान् शकरको तपश्चरणम निरत देख उनसे कहने लगीं—'प्रभो! आप तो स्वय सृष्टिके पालन एव सहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-कोटि-ब्रह्माण्डाके नायक ह, फिर आप किसे प्रसन्न करनेक लिय तप करते हैं'? शूलपाणिने उत्तर दिया—'निष्पाप! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताक लिय तप करता हूँ, जिनकी शक्ति गुण और कर्म सभी अनन्त है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्यक रोमम निवास करते हैं और समस्त गुणक ईश होनेके कारण वे 'गुणेश' कह जाते हैं। मैं उन्हीं 'गुणेश' का निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ।' यह सुनकर गौरीने जिज्ञासा प्रकट की—'प्रभो! वे परम प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होगे, मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' भगवान् शकरने कहा—'हे प्रिये! निष्ठापूर्वक किये गये आराधन तथा तपश्चरणसे ही उनका दर्शन सुलभ हो सकेगा। इसक लिय तुम्हे बारह वर्षोंतक गणेशक एकाक्षरी मन्त्रका

जप करना होगा।' जगन्माता पार्वती भगवान् शकरसे उपदिष्ट उस एकाक्षरी गणेशमन्त्र (ग)-का जप करने लगीं।

× × ×

कुछ ही समय बाद भाद्रपद-मासकी शुक्ल पक्षीय चतुर्थी-तिथि आयी। सभी ग्रह-नक्षत्र शुभस्थ एव मङ्गलमय योगम विराजमान थे। उसी समय विराट्‌रूपमे पार्वतीके सम्मुख भगवान् गणशका अवतरण हुआ। इस रूपसे चकित-थकित होती हुई तपस्विनी पार्वतीन कहा—'प्रभो! मुझ अपने पुत्र-रूपका दर्शन कराइये।' इतना सुनना था कि सर्वसमर्थ प्रभु तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्‌भुज दिव्य विग्रहधारी शिशुरूपम क्रीडा करने लगे। उनकी देहकी कान्ति अद्भुत लावण्ययुक्त एव प्रभासम्पन्न थी। उनका वक्ष स्थल विशाल था। सभी अग पूर्णत शुभ चिह्नोसे अलकृत थे। दिव्य शाभासम्पन्न यह विग्रह ही 'मयूरेश्वर' रूपम साक्षात् प्रकट हुआ था। मयूरेशके आविर्भावसे ही प्रकृतिमात्र आनन्दविभोर हो उठी। आकाशस्थ देवगण पुष्प-वषण करने लगे।

आविर्भावके समयसे ही सर्वविघ्नहारी शिवा-पुत्रकी दिव्य लीलाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोके अन्यतम प्रीतिभाजन हरम्ब क्रीडा-मग्न थे, सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्ह अपनी चाचमें पकड लिया और बहुत ऊँच आकाशम उड गया। जब पार्वतीने अपने प्राणप्रिय बालकको आकाशमे उस विशाल गृध्रके मुखम देखा ता सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि-प्रहार मात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ वह विशालकाय असुर पृथ्वीपर गिर पडा। बाल भगवान् मयूरश उस असुरके साथ ही नीचे आये थे, परतु वे सर्वथा सुरक्षित थे, उन्ह खरोचतक नहीं लगी थी। माता पार्वतीने दौडकर बच्चेको उठा लिया और देवताओकी मिन्नत करती हुई दुग्धपान कराने लगीं।

इसी तरह एक दिन माता पार्वती जब उन्ह पालनम लिटाकर लारी सुना रही थीं, उसी समय क्षम और कुशाल नामक दो भयानक असुर वहाँ आकर बालकको मारनेका प्रयत्न करने लगे, पार्वती अभी कुछ समझ पाती तबतक बालकने अपने पदाघातसे ही उन राक्षसाका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे राक्षस रक्त-वमन करते हुए वहीं गिर पड। भगवान्‌ने उन्हे मोक्ष प्रदान कर दिया।

× × ×

एक दिन माता पार्वती सखियाके साथ मन्दिरम पूजा करन गयीं। बालक गणेश वहीं मन्दिरके बाहर खलन लगे। उसी समय क्रूर नामक एक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रक वषम आकर उनक साथ खेलन लगा ओर खल-खलम हरम्बका मार डालनेक लिय उनके केश पकडकर धरतीपर पटकना चाहता था परतु लीलाधारी भगवान्‌ने उसका गला दबाकर तत्क्षण ही उसकी इहलीला समाप्त कर दी। सखियासहित पार्वती यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हा गयी।

इसी तरह मङ्गलमाद प्रभु गणेशने लीला करत हुए असुर सिन्धुद्वारा भेजे गय अनेक छल-छद्मधारी असुराका सदा-सर्वदाके लिये मुक्त कर दिया। इस क्रमम उन्हाने दुष्ट वकासुर तथा कुत्तेरूपधारी 'नूतन' नामक राक्षसका वध किया। अपने शरीरसे असख्य गणाको उत्पन्न कर 'कमलासुर' का बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा त्रिशूलसे कमलासुरका मस्तक काट डाला। उसका मस्तक भीमा नदीके तटपर जा गिरा। दवताओ तथा ऋषियोकी प्रार्थनापर गणश वहाँ 'मयूरेश' नामसे प्रतिष्ठित हुए।

इधर दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी दवताओका कारागारम बदी बना लिया तब भगवान्‌ने दैत्यको ललकारा। भयकर युद्ध हुआ। असुर-सैन्य पराजित हुआ। यह देख कुपित दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रासे मयूरेशपर प्रहार करने लगा, परतु सर्वशक्तिमान्‌क लिये शस्त्रास्त्राका क्या महत्त्व! सभी प्रहार निष्फल हो गय। अन्तम महादत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारस निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पडा। उस दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। दवगण मयूरेशकी स्तुति करन लग। भगवान् मयूरेशने सबका आनन्दितकर सुख-शान्ति प्रदान किया और अपने लीलावतरणके प्रयाजनकी पूर्णता बतलात हुए अन्तम अपनी लीलाका सवरण करक व परम प्रभु परमधामको पधार गय—वहीं अन्तर्धान हा गय।

(३)

श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये।

उस महाघोर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके सदृश लाल थी और उसके शरीरसे तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं, फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटा! अतिशय अरुणवर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी। तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे वहीं निवास कर।'

पितासे इतने वर प्राप्तकर मदोन्मत्त सिन्दूर सोचने लगा—'उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं कैसे पता चले? यहाँ कोई है भी नहीं जिसे मैं अपनी भुजापाशमें आबद्धकर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

अब वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना करके भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उसे शाप देते हुए कहा—'सिन्दूर! अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और निश्चय ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर भागे। दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे और श्रीहरिसे निवेदन किया—'प्रभो! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उसे समझाना चाहा लेकिन सर्वथा मूर्ख उद्दण्ड-प्रचण्ड वह असुर युद्धके लिये विष्णुकी ओर बढ़ने लगा। तब भगवान् विष्णुने उसे भगवान् शंकरसे युद्धके लिये प्रेरित किया।

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा और कैलासपर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आदि गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वटपत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला। कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई।

यह देख क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज भी असुरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत थे ही उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटि-सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्राभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी पार्वती उसीकी होंगी अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। उसके शिथिल होने ही

मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया, जिससे आहत होकर असुर वही गिर पडा।

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शकर विजयी हुए।

अब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेश अपने स्वरूपमे प्रकट हो गये और अपनी माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे तथा मातासे कहा—'मैं आपके पुत्ररूपमे शीघ्र ही प्रकट होकर असुराका विनाश करूँगा।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

इधर जब सिन्दूरके आतकसे त्रैलोक्य कम्पित हो गया तब सुरगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लग। स्तुति करके दवता और मुनि सभी तपस्यामे सलग्न हुए। देवताओ और ऋषियोके कठार तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ। 'गजानन' यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वधकर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा।' इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

देवाधिदव भगवान् शकरक अनुग्रहसे जगज्जननी पार्वतीक सम्मुख अतिशय तजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादक परम तत्त्व पकट हुआ।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय दकर आप मुझे आनन्द प्रदान करे।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—'माता! त्रेताम शुभ्रवर्ण षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमे मैंने ही आपके पुत्रके रूपम अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था आर द्वापरम पुन आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिय मैं आपके पुत्र-रूपमे प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषम आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अव मैं सिन्दूरका वधकर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्ताकी कामना-पूर्ति करूँगा। मरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध हागा।

देवदेव विनायकका पहचानकर गौरीने उनके चरणाम प्रणाम किया और फिर हाथ जोडकर वे उनका स्तवन करने लगीं।

माताकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हा गय। उनकी चार भुजाएँ थी। नासिकाक स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनक मस्तकपर चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। व गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुका तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे। कुछ क्षणक पश्चात् शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननन शिवसे कहा—'सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरण्य मरा भक्त है। उसकी सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा है। उन दोनाने मुझ सतुष्ट करनक लिय बारह वर्षोतक कठार तप किया था। मन प्रसन्न हाकर उन्ह वर प्रदान किया था—'निश्चय ही म तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकान अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसक पुत्रका एक राक्षसी उठा ल गयी है। इस समय वह मूर्च्छित है पुत्रके विना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझ तुरत उस प्रसूताके पास पहुँचा दीजिय।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शकरन नन्दीका बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी! माहिष्मती नामक श्रेष्ठ नगरीम वरण्य नामक नरेशकी पत्नी पुष्पिकान अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह कष्टस मूर्च्छित हा गया है आर उसके शिशुका एक राक्षसी उठा ल गयी है। तुम इस पार्वती-पुत्रका तुरत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर हानक पूर्व ही यह शिशु उसक समीप पहुँच जाय अन्यथा प्रसूताक प्राण-सकटकी सम्भावना है।'

नन्दा अपन स्वामीक चरणाम प्रणामकर गजाननका लेकर वायुवगस उड चल आर मूर्च्छिता पुष्पिकाक सम्मुख चुपचाप गजमुखका रखकर तुरत लाट आय।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणादय हुआ। पुष्पिकान ध्यानपूर्वक अपने शिशुका दखा—रक्तवर्ण चतुर्बाहु गजवक्त्र कस्तूरी-तिलक चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीतवण-परिधान आर मातियाका माला तथा विविध रत्नाभरण शाभित हा रह थ।

इस प्रकारका अद्भुत वालक दखकर पुष्पिका चकित और दु खी हा नहीं हुई भयस काँपती हुई वह प्रसूति-गृहस बाहर भागी। वह शाकस व्याकुल हाकर रान लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहम गयीं। अलौकिक बालकका दखकर व भी भयाक्रान्त हा काँपती हुइ बाहर आ गयीं। दूसर जिन-जिन स्त्री-पुरुषान उन

शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—'ऐसे विचित्र बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे निर्जन वनमें एक सरोवरके तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर अचानक महर्षि पराशरकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित सूर्यतुल्य तेजस्वी चतुर्भुज गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली। उनपर ध्वज अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमांच हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन—जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें प्रणामकर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र स्वर्ण और रत्नाभूषण देकर संतुष्ट किया।

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीडाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्र-संचालन आदिमें पारगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव करके महर्षि पराशर चकित हो जाते ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीति-भाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देव पूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर ! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, अतः आप और माँ दोनों मुझे आशिष् दें जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

पुलकित महर्षि और महर्षि-पत्नीके नेत्र बरस पड़े। वे लोग गजाननके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गद-कण्ठ हो बोल न सके उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता-पिता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी मङ्गल विजय ।'

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश परशु पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगा। गजानन वायुवेगसे चल पड़े। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर इसकी सूचना दी। सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया

किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। वह वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया तथा अनेक प्रकारके अनर्गल प्रलापसे गजाननको डराने-धमकाने लगा।

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे कहा—'मै दुष्टोका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोके लिये क्षमा-प्रार्थनापूर्वक सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हे छोड दूँगा, अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनन विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनो पैर पातालमे थे। कानासे दसा दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलकारासे अलकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया पर उसने धैर्य नहीं छोडा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ! तू मर अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड लिया। इसके बाद वे उसे अपन वज्र-सदृश दोना हाथास दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आय और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपन दिव्य अङ्गोपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌म उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दु ख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित पाश, अकुश परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा की।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरका समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य भी वहाँ आ पहुँचे।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की और कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकका ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैस जान पाता। मैं अपनी मूढताको क्या कहूँ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड दिया। आपकी मायास मोहित होकर मैंने बडा अनर्थ किया ह। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करत हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्ह अपनी चारा भुजाआस आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पम जब तुमन अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तापर जीवन-निर्वाह करत हुए दिव्य सहस्र वर्षोतक कठोर तप किया था तब मैंन प्रसन्न होकर तुम्ह दर्शन दिया। तुमने मुझसे माक्ष न माँगकर मुझ पुत्र-रूपम प्राप्त करनकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हार पुत्र-रूपमे सिन्दूर-वधकर भू-भार-हरण करन तथा साधु-जनाके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया, अन्यथा मैं ता निराकार-रूपस अणु-परमाणुम व्याप्त हूँ। मैंन अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम-प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभा! जगत् शाश्वत दु खालय ह।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनत ही राजा वरण्यने अत्यन्त व्याकुलतास हाथ जोडकर कहा—'आप कृपापूवक मुझ इसस मुक्त हानेका मार्ग यता दाजिय।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बठ गय। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि-आसीन राजा वरण्यक मस्तकपर उन्हान अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्हाने नरेश वरण्यको सुविस्तृत नानोपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तधान हो गये।

परम प्रभुकी सन्निधि, उनके कर-स्पर्श एव अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्हाने राज्यका दायित्व अमात्याका सौंपा आर स्वय तपश्चरणार्थ वनम चल गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननम केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त वह अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकतु'क नामस विख्यात होगा। जब कलियुगम सर्वत्र धर्मका लोप हो जायगा, अत्याचार-अनाचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा, आसुरी-तामसी वृत्तियाकी प्रबलता छा जायगी, तब कलिके अन्तमे सर्वदु खापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित हागे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम भी प्रसिद्ध होगा। क्राधके कारण उन परम तजस्वी प्रभुक शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। व नीले अश्वपर आरूढ होंग। उन प्रभुके हाथम शत्रु-सहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारक सैनिक एव बहुमूल्य अमाघ शस्त्रास्त्रोका निर्माण कर लगे।

फिर पातकध्वसी परम प्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एव सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छाका सर्वनाश कर देगे। म्लेच्छ या म्लच्छ-जावन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूमकतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-सस्थापक प्रभुके नेत्राम अग्नि-वर्षा होनी रहेगी।

व सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरिकन्दराओ एव अरण्याम छिपकर वनफलोपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणाको बुलाकर उन्ह सम्मानित करगे और करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषाको सद्धर्म एव सत्कर्मक पालनके लिये प्रेरणा एव प्रोत्साहन प्रदान करगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा। (गणशपुराण)

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

मुद्गलपुराणम कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमे भी सम्भव नहीं है। उनम कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमे भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनक नाम इस प्रकार हैं—

'वक्रतुण्डावतार' दह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका सहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है, उसका वाहन मूषक बताया गया ह। 'महोदर'-नामस विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। जा 'गजानन' नामक अवतार है, वह साङ्ख्यब्रह्म-धारक है। उसका साङ्ख्ययागियाके लिय सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका सहारक आर मूषकवाहन कहा गया है। 'लम्बादर' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका सहारक है। वह मयूर-वाहन एव सौरब्रह्मका धारक माना गया है। 'विघ्नराज' नामक जा अवतार है, उसक वाहन शेषनाग बताये जाते हैं वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण' नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवताराकी अत्यन्त सक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक हैं। इन अवताराका पौराणिक एव ऐतिहासिक महत्त्व तो है हा उससे भी बढकर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्मा श्रीगणपति सबके हृदयम नित्य विराजमान ह। सग और प्राक्तन सस्कारवश प्रत्येक मनुष्यक हृदयमे समय-समयपर मात्सर्य मद मोह लोभ काम ममता एव अहता— इन आन्तरिक दापोका उद्बोधन होता ही ह। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियासे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय।' गातामे भी भगवान्‌ने यही कहा है— मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति त॥' अत इन आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके सवर्धनक लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना सबक लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत सदेश है।

भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ

नम सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥
(आदित्य-हृदय०)

'जो जगत्के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं, ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, उन वदत्रयीस्वरूप सत्त्वादि तीनो गुणोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करनेवाले भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

भगवान् सूर्यकी महिमा और ब्रह्ममयता

भुवनभास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। वे सम्पूर्ण चराचरकी अन्तरात्मा हैं (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ऋ० १।११५।१) सर्वत्र व्याप्त हैं और सभीको नित्य प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रतिदिन वे पूर्व दिशाम उदित होते हैं और सायकाल पश्चिम दिशाम अस्त होते हैं। उनकी यह दैनन्दिन लीला है। अपनी इस दैनन्दिन लीलाका वे सबका साक्षात्कार कराते हैं। वे प्रतिदिन उदय होने उन्नतिके शिखरपर आरूढ होने तथा अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान् सूर्यकी इस त्रिविध लीलाके साथ त्रिकाल गायत्री-उपासनाका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं इसलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। सूर्य साक्षात् परमात्म-परब्रह्म-स्वरूप हैं। सूर्यसे ही समस्त प्राणियाकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींम विलय हा जाता है। सूर्योपनिषद्मे कहा गया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लय प्राप्नुवन्ति य सूर्य सोऽहमेव च॥

सूर्यनारायण ओर ब्रह्मे कोई भेद नहीं है। तत्त्वत भगवान् सूर्य परब्रह्म हैं। ब्रह्मके भर्ग—तजका रूप ही सूर्यनारायण हैं। श्रुतियो तथा उपनिषदाम भगवान् सूर्य तथा ब्रह्मको एक ही निरूपित किया गया हे। छान्दोग्य श्रुतिका कथन है—

'सूर्याद्धि खल्विमानि भूतानि जायन्त।' 'असावादित्यो ब्रह्म।'

प्राणिमात्रके हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होनक कारण सूर्य ब्रह्मरूप हे, इसलिये सबके उपास्य है। य सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी दवताकी स्थितिम सदेह भी हो सकता है, किंतु भगवान् सूर्यकी सत्ताम किसीको भी सदेहके लिये किंचिन्मात्र कोई अवसर नहीं है। भगवान् भुवनभास्कर आकाशमण्डलम स्पष्ट दिखलायी पडते हैं। अशेष जगत्पर जो उनका नित्य चैतन्यमय अनुग्रह प्रसारित होता आया है, उसकी काई इयत्ता नहीं है। उनकी अनन्त महिमा ह। वे साक्षात् लीला-विग्रहके रूपमे सबका अपना प्रत्यक्ष दर्शन द रहे हैं। उनका सबपर समान अनुग्रह ह। उनकी अनुग्रह-लीलाओसे सभी प्राणी अभिभूत हे। एक दिन भी उनकी आविर्भाव एव तिराधान-लाला न हो ता जगत्की सम्पूर्ण मर्यादाएँ विच्छृखलित हो जायँगी। ससारक समस्त प्राणी, जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ भगवान् सूर्यकी चैतन्यशक्तिसे ही अनुप्राणित हैं। सूर्यक अभावम न ता ससारमे कोई गति हो सकती है और न काई क्रिया ही हाना सम्भव हे।

उपनिषदाम भगवान् सूर्यक तीन रूप मान गय हे—(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार तथा (३) सगुण-साकार। यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण-निराकार हैं तथापि अपनी माया-शक्तिके सम्बन्धसे सगुण-साकार भी ह। उपनिषदोम इनके स्वरूपका मार्मिक वर्णन इस प्रकार प्राप्त हाता है—

'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत।'

(छान्दोग्य० १।३।१)

'जो ये भगवान् सूर्य आकाशमे तपते हैं, उनकी उद्गीथरूपसे उपासना करनी चाहिये।' 'आदित्यो ब्रह्मेति (छान्दोग्य० ३।१९।१)। 'आदित्य ब्रह्म है'—इस रूपमे आदित्यकी उपासना करनी चाहिये।

'आदित्य ओमित्येव ध्यायस्तथात्मान युञ्जीतेति॥'

(मैत्रा० ५।३)

'आदित्य ही ओम् है'—इस रूपमे आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करना चाहिये।

चाक्षुपोपनिषद्मे यह वर्णन आया है कि साकृति मुनिने आदित्यलोकमे जाकर भगवान् सूर्यको नमस्कार किया और चाक्षुष्मती-विद्या-प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की। महामुनि-याज्ञवल्क्यने भी आदित्यलोकमे जाकर और उन्हे प्रणामकर कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये।' सूर्यदेवने दोना मुनियोको अभीष्ट विद्याएँ प्रदान कीं।

भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्व (अध्याय ४८।२१—२८)-मे भगवान् वासुदेवने साम्बको उनकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए कहा—'सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं वे इस समस्त जगत्के नेत्र हैं इन्हींसे दिनका सर्जन होता है। निरन्तर रहनेवाला इनसे अधिक कोई देवता नहीं है। इन्हीसे यह जगत् उत्पन्न होता है और अन्तसमयमे इन्हींमे लयको प्राप्त होता है। कृत आदि लक्षणोवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ करण, आदित्यगण वसुगण, रुद्र अश्विनीकुमार वायु, अग्नि, शक्र प्रजापति, समस्त भूर्भुव स्व आदि लोक सम्पूर्ण नग (पर्वत) नाग नदियाँ, समुद्र तथा समस्त भूताका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता अपने अर्थमे प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पडता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्त हो जाते है। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पडता। तात्पर्य यह कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है न हुआ है और न भविष्यमे होगा ही। इसीलिये ये समस्त वेदोमे 'परमात्मा' नामसे पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोमे इन्हे 'अन्तरात्मा' नामसे अभिहित किया जाता है। ये बाह्यात्मा सुपुम्णास्थ स्वप्नस्थ और जाग्रत्-स्थितिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्य देवता हैं।'

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक सूर्यमण्डल है। प्राय लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं, सूर्यसे ही दिन-रात्रि घटी, पल, मास, पक्ष अयन तथा सवत् आदिका विभाग होता है। सूर्य सम्पूर्ण ससारके प्रकाशक हैं, इनके बिना सब अन्धकार है। सूर्य ही तेज ओज, बल, यश चक्षु, श्रोत्र आत्मा और मन हैं—

'आदित्यो वै तेज ओजो बल यशश्चक्षु श्रोत्रे आत्मा मन '

(नारायणोपनिषद् १५)

'मह इत्यादित्य । आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।'

(तै० उ० १।५।१)

भू भुव एव स्व —इन तीन लोकोकी अपेक्षा 'मह ' जो चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्यमे ही समस्त लोक वृद्धिको प्राप्त करते हैं। आदित्यलोक महान् है। 'भू भुव और स्व '—ये तीनो लोक इसके अवयव—अङ्ग हैं और यह अङ्गी है। आदित्यके योगसे ही अन्य लोकादि महत्ता प्राप्त करते है, अत आदित्यकी महिमा अद्वितीय है।

आदित्यलोकमे भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है। वे रक्तकमलपर विराजमान है, उनका वर्ण हिरण्मय है उनकी चार भुजाएँ हैं। वे दो भुजाओमे पद्म धारण किये है और उनके दो हाथ अभय तथा वर-मुद्रासे सुशोभित है, वे सप्ताश्वयुक्त रथमे स्थित हैं। जो उपासक ऐसे स्वरूपवाले उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं—'उन्हे मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते है और उनकी कृपासे मनुष्यके मानसिक वाचिक तथा शारीरिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।' ब्रह्मपुराणमे कहा गया है—

मानस वाचिक वापि कायज यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेष व्यपोहति॥

भगवान् सूर्य अजन्मा है फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको प्रेरित करती रहती है—'उनका जन्म कैसे हुआ कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ?' यह बात ठीक है कि वे परमात्मा है तो उनका जन्म कैसा? परतु परमात्माका अवतार होता ही है तो उनका क्या अवतार

हुआ? उन्होने क्या जन्म ग्रहण किया? इस सम्बन्धम पुराणोमे एक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार एक बार देवासुर-सग्राममे दैत्य-दानवोने मिलकर देवताओको हरा दिया, तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाम सतत प्रयत्नशील थे। देवताओकी माता अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं, उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दु खी होकर वे सूर्यकी उपासना-प्रार्थना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हो। गोप (किरणोके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा कर, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हा सके। भक्तोपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करे। प्रभो! मेरे पुत्राका राज्य एव यज्ञभाग दैत्या एव दानवोने छीन लिया है। आप अपने अशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोकी रक्षा कर।' भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवे अशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर तरे पुत्रोकी रक्षा करूँगा।' इतना कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो यम-नियमसे रहने लगीं। महर्षि कश्यपजी इस समाचारसे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको 'मार्तण्ड'के नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमे पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमे चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये महर्षि कश्यप ही सूर्यके पिता हैं।

नित्य-निरन्तर सबको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले तो भगवान् भुवनभास्कर सूर्य ही हैं। सौर सम्प्रदायके अनुसार वेदोक्त सहस्रबाहु, सहस्रशीर्षा, प्रजापति, परमपुरुष, पुराणात्मा, सभी भुवनोके गोप्ता, आदित्य-वर्णसे निर्दिष्ट ये प्रत्यक्ष सूर्यदेव ही हैं—

सहस्रशीर्षा सुमना सहस्राक्ष सहस्रपात्॥
सहस्रबाहु प्रथम प्रजापतिस्त्रयीपथे य पुरुषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एक पुरुष पुराण ॥

(भविष्यपुराण १। ७७। १९ २०)

परम दिव्य तेज पुञ्ज ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चोदहा लोक दीप्तिमान् हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजामण्डल दो भागाम विभक्त है, उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त चतुर्दश लोकोमे निवास करनेवाले प्राणियाके भीतर ज्ञान एव क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्यमण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी आर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तजकी शक्ति 'सज्ञा' है। दूसरा तेज अधागामी—पृथ्वीसे पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' हे। पुराणकी कथाके अनुसार सज्ञा तथा छाया—ये दोनो सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं। भगवान् सूर्यकी य पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर कार्यरत रहती हे।

कहते है कि देवता, मुनि ओर महर्षियोने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। सज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति ह, यह मुनि एव महर्षियाक हृदयमे सवित्-चेतनाका उदय कराती है, जिसक कारण भगवान् सूर्यके द्युलोक-व्याप्त तेजसे अनन्य सयोग हानेपर 'विद्या' नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। '**विद्ययामृतमश्नुते**'—इस श्रुतिक अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्ह अमृतपानका अवसर मिला।

अविद्या प्रेयमार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे सयुक्त होनेपर अर्थात् छाया और तेजके परस्पर मिलनेसे अविद्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्याको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पडता है। वेद-शास्त्रके ज्ञाता विद्वान् भी प्रेय-ऐहिक विषयसुख या आमुष्मिक स्वर्गम प्राप्त भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं।

सभी प्राणियोको जन्मसे ही भगवान् सूर्यकी विविध लीलाओके दर्शन होते हे। व इस ब्रह्माण्डके केन्द्र स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकर विश्वके पोषक प्राणदाता, समस्त चराचर प्राणियाक आधार तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले और समस्त देवामे श्रष्ठ हैं। त्रिकाल-सध्याम सूर्यरूपसे भगवान् नारायणकी ही उपासना हाती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल आयु, बुद्धि तथा नत्र-ज्यातिकी वृद्धि होती है और मृत्युक अनन्तर व अपनी रश्मियाके द्वारा भगवान्क परमधामम ले जात हैं। भारतीय चिन्तन-पद्धतिके अनुसार सूर्योपासना किये बिना कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्मका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवान् श्रीकृष्णन

विभूतिस्वरूपके वर्णनमे 'ज्योतिषा रविरशुमान्'-से स्वयको इगित किया है। पातञ्जलयोगसूत्र (३। २६)-मे वर्णित है कि सूर्यका ध्यान करनसे निखिल भुवनमण्डलका ज्ञान हो जाता है—'भुवनज्ञान सूर्ये सयमात्'।

महाभारतमे युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति करते हुए कहा है—

त्वामिन्द्रमाहुस्त्व रुद्रस्त्व विष्णुस्त्व प्रजापति ।
त्वमग्निस्त्व मन सूक्ष्म प्रभुस्त्व ब्रह्म शाश्वतम्॥

अथात् ह सूर्य! आप इन्द्र रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि सूक्ष्म मन, प्रभु और शाश्वत ब्रह्म हैं।

सूर्यतापिनी-उपनिषद्म कहा गया है कि य सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और भास्कर हैं। ये ही त्रिमूर्तिरूप और वदत्रया हैं। ये सूर्य सर्वदेवमय हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्कर ।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रवि ॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनो कालोम क्रमश त्रिदेव बनते हैं। यथा—

उदये ब्रह्मणो रूप मध्याह्ने तु महश्वर ।
अस्तमाने स्वय विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकर ॥

ये कभी क्षीण नहीं होते, इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोके भी पिता और देवताओके भी देवता हैं। असख्य यागिजन अपने कलेवरका त्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यम ही प्रवश करते हैं। ये सम्पूर्ण जगत्क माता-पिता और गुरु हैं।

भगवान् सूर्यकी रश्मियोमे विलक्षण जीवनीशक्ति है तथा सभी प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक रागाका सर्वथा अपहत करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है। 'आरोग्य भास्करादिच्छत्'—इस पुराण-वचनस सिद्ध है कि आरोग्यकी प्राप्तिक लिये भगवान् भास्करकी आराधना विशेप फलवती होती है। नित्य अरुणोदय-वेलाम भगवान् सूर्यक अरुण बिम्बके दर्शन तथा पुन प्रत्यक्ष सूर्यके दर्शनस न केवल नेत्र-ज्योतिका विकास होता है, अपितु अन्त करण भी निर्मल होता है, बुद्धि शुद्ध हा जाती है, सात्त्विकताका सचार होता है और मानव सत्कर्म करनक लिये प्ररित हाता है। अक्षि-उपनिषद् तथा चाक्षुष्मती विद्याके पाठस नत्र-ज्योति दिव्य हो उठती है तथा कुष्ठादि रोग दूर हा जाते हैं। श्रद्धापूर्वक सूर्यार्घ्यदान सूर्य-नमस्कार सूर्य-सम्बन्धी स्तोत्रोका पाठ तथा यथाधिकार सध्या-वन्दन करनेसे भगवान् सूर्यकी अनुकम्पा सहज ही प्राप्त हो जाती है। ऋषियाके दीर्घ आयुष्य, विशदप्रज्ञा यश कार्ति तथा ब्रह्मवर्चस्का एकमात्र मूल कारण दीर्घकालीन सध्याम सौरी गायत्रीका जप एव सूर्योपस्थान आदि क्रियाएँ ही थीं। ऋषिगण तीना सध्याओम प्राणायाम और समाधिद्वारा भगवान् सविताके वरेण्य तेजका ध्यान करत हुए गायत्री-मन्त्रका जप करते थे। गायत्री-मन्त्रमे मूलत परब्रह्मस्वरूप सूर्यदेवताकी आराधना ही ध्येय है, इसीलिये नित्य त्रिकाल सध्या-वन्दनका विधान शास्त्राम प्रतिपादित है। यहाँतक कि अशौच आदिमे भी सध्या-कर्मका लोप नही होता। यह सब भगवान् सूर्यकी हा महिमाका परिचायक है।

सूर्यके विविध लीला-विग्रह

सूर्यनारायणके अनेक ध्यानरूप-लीला-विग्रह बताये गये हैं। कुछका निर्देश इस प्रकार है—

एक ध्यानस्वरूपमे बताया गया है कि—'उत्तम रत्नोसे जटित मुकुट जिनक मस्तकको शाभा बढा रह हैं जो चमकते हुए अधरोष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जा भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं जिनके हाथाम कमल हैं जा प्रभाक द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एव ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशम उदयगिरि-उदयाचल पर्वतपर शाभा पाते हैं जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा कर।' ध्यानका मूल श्लोक इस प्रकार है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलि स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजा करकमलयुत स्वर्णवर्ण प्रभाभि ।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमित पातु मा विश्वचक्षु ॥

भगवान् भास्करदवका एक अन्य प्रसिद्ध लीला-विग्रह इस प्रकार निर्दिष्ट है—

ध्येय सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायण सरसिजासनसंनिविष्ट ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्र ॥

(तन्त्रसार)

भगवान् सूर्य ग्रहाधिपति हैं। नवग्रह-मण्डलमे उनका प्रथम आवाहन एव पूजन होता है। उनके आवाहनमे इस प्रकारसे ध्यानस्वरूप प्रतिपादित है—

जपाकुसुमसकाश काश्यपेय महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्न प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

वेदामे तो भगवान् सूर्यके शतश मन्त्र निर्दिष्ट हैं, उनका प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(ऋ० १। ३५। २)

भगवान् सूर्यके द्वादश लीला-विग्रहोके आख्यान

एक ही परमात्मा सूर्य ससारचक्रके प्रवर्तनके लिये तथा कालकी मर्यादा प्रतिष्ठित करनेके लिये बारह रूपोमे प्रविभक्त होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थोमें भगवान् सूर्यके 'आदित्य' तथा 'सविता'—ये दो नाम विशेषरूपसे निरूपित हैं। सृष्टिके भी आदिमे प्रतिष्ठित रहने तथा माता अदितिके पुत्र होनेके कारण सूर्य ही 'आदित्य' कहलाते हैं। वेदोमे जिन तैंतीस देवताआका परिगणन किया गया है, उनमें द्वादश आदित्य ही प्रधान हैं। वहाँ इन्हे सब प्रकारसे उपकारी, अनन्त शक्तिसम्पन्न और सगुण एव निर्गुण दोनो रूपोंमे निरूपित किया गया है तथा इनकी महिमाका गान अनेक सूक्त-मन्त्रोमे किया गया है। पुराणोमे भी सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमे बारह महीनोमे बारह आदित्य ही बारह नामोसे अभिहित किये गये हैं। इन द्वादश आदित्योके नाम इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र (२) धाता, (३) पर्जन्य (४) त्वष्टा (५) पूषा, (६) अर्यमा, (७) भग, (८) विवस्वान्, (९) विष्णु, (१०) अशुमान्, (११) वरुण तथा (१२) मित्र।

—इन बारह मूर्तियोद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। इनका अति सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इन्द्र—भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम 'इन्द्र' है, वह देवराज-पदपर प्रतिष्ठित है, वह देवशत्रुओका नाश करनेवाली लीला-मूर्ति है तथा आश्विन मासकी अधिष्ठाता है। इस आश्विनमासके आदित्यक लीला-विग्रहका नाम 'इन्द्र' है। वेदा तथा पुराणोम भगवान् आदित्यके इन्द्र नामवाल लीला-विग्रहके अनक प्रसिद्ध आख्यान आये हैं। वे वृष्टिके भी स्वामी हैं।

धाता—भगवान् सूर्यके दूसरे विग्रहका नाम 'धाता' है जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं, इन्हींका दूसरा नाम 'ब्रह्मा' भी है। कार्तिक-मासके सूर्यका नाम 'धाता' है।

पर्जन्य—सूर्यदेवकी तीसरी लीलामूर्ति 'पर्जन्य' के नामस विख्यात है। यह बादलोम स्थित हो अपनी किरणोद्वारा वर्षा करती है। श्रावणमासके सूर्य 'पर्जन्य' नामस कहे जात हैं।

त्वष्टा—भगवान् सूर्यके चौथे विग्रहका नाम 'त्वष्टा' है। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियो और ओषधियामे स्थित रहते हैं। फाल्गुनमासम 'त्वष्टा' नामक सूर्य तपते हैं।

पूषा—भगवान् सूर्यके पाँचवे विग्रहका नाम 'पूषा' है। ये अन्नमे स्थित होकर सर्वदा प्रजाजनाकी पुष्टि करत है। पौषमासके सूर्यका नाम 'पूषा' है।

अर्यमा—सूर्यकी जो छठी मूर्ति है उसका नाम 'अर्यमा' है। यह वायुके आश्रयसे समस्त देवताआम स्थित रहती है। वैशाखमासके सूर्य 'अर्यमा' कहलात है।

भग—भगवान् भास्करका सातवाँ विग्रह 'भग' नामस विख्यात है। यह ऐश्वर्य-रूपमें तथा देहधारियाके शरीरम प्रतिष्ठित रहता है। माघमासके सूर्यदेव 'भग' नामसे प्रसिद्ध हैं।

विवस्वान्—सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति 'विवस्वान्' कहलाती है, यह अग्निमे स्थित होकर जीवाके खाये हुए अन्नका पचाती है। ज्येष्ठमासके सूर्य 'विवस्वान्' नामसे जान जाते हैं।

विष्णु—सूर्यकी नवीं मूर्ति 'विष्णु'के रूपम प्रतिष्ठित है, जो देवशत्रुआका विनाश करनेके लिये अवतार धारण करती है। राम, कृष्ण आदि इसी वैष्णवी विग्रहके अवतार हैं। चैत्रमासके सूर्य 'विष्णु' नामसे प्रसिद्ध हैं। महाभारतम कहा गया है कि द्वादश आदित्योमे विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ ह और गुणोमे सबसे बढकर हैं—

' ~ सर्वेषामादित्याना गुणाधिक ॥'

(महा० आदिपर्व)

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी लीला-कथाएँ अति प्रसिद्ध तथा महान् कल्याणकारिणी हैं।

अशुमान्—सूयकी दसवीं मूतिका नाम 'अशुमान्' है, जो वायुम प्रतिष्ठित हाकर समम्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। आपाढमासक मूर्य 'अशुमान्' कहलाते हं।

वरुण—सूयका ग्यारहवाँ रूप 'वरुण' क नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमे प्रतिष्ठित हाकर प्रजाका पाषण करता है। इस प्रकार सूर्यदेव ही जल-रूप होकर अन्न उत्पन्न करत हैं और जीवोकी पिपासा शान्त करते है। जीवन-धारणक लिये जलकी कितनी आवश्यकता है, यह सबके अनुभवका विषय है। भगवान् मूर्यका जलरूप होना हमारे लिये कितने बडे उपकारकी बात है। भाद्रपदमासके सूर्य ही 'वरुण' कहलाते हैं, इसीलिये भाद्रपदमासम वृष्टि अधिक हाती है।

मित्र—सूर्यदेवकी जा बारहवीं लीला-मूर्ति ह, उसका नाम है 'मित्र'। अपने नामके अनुरूप भगवान् सूर्य सबके सच्चे मित्र तथा हितैषीके रूपमे स्थित रहते हैं और सम्पूर्ण जगत्के कल्याणमे निरत रहते है। मार्गशीर्षमासके सूर्यदेव ही 'मित्र' देवताके नामसे विख्यात हैं।

इस प्रकार द्वादश आदित्य सब प्रकारसे ससारका भला ही करते हैं। ये व्यक्त तथा अव्यक्त दोना रूपामे प्रतिष्ठित हैं। इनकी पूजा-उपासनासे अपना जीवन मफल बनाना चाहिये।

सूर्यार्घ्य-दानकी महत्ता

भगवान् सूर्यके अर्घ्यदानकी विशेष महत्ता है। प्रतिदिन प्रात काल रक्तचन्दनादिस मण्डल बनाकर, पीठशक्तियाका स्थापना-पूजाकर ताम्रमय पात्रमे जल लालचन्दन, तण्डुल श्यामाक, रक्तकमल (अथवा रक्तपुष्प) और कुश आदि रखकर घुटन टककर प्रसन्न-मनसे सूर्यमन्त्रका जप करते हुए अथवा निम्नलिखित श्लोकका पाठ करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य दकर पुष्पाञ्जलि दनी चाहिय तत्पश्चात् प्रदक्षिणा एव नमम्कार अर्पित करना चाहिये—

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सुपङ्कजाय ब्रह्मन्द्रनारायणकारणाय॥
सरक्तचूर्णंससुवर्णतोय स्रक्कुकुमाढ्य सकुश सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहमपात्र प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसाद॥

(शिवपु० कै० स० ६। ३९-४०)

'सिन्दूरवर्णके-स सुन्दर मण्डलवाले, हीरक-रत्नादि आभरणासे अलकृत, कमलनेत्र हाथम कमत लिय ब्रह्मा विष्णु और इन्द्रादि (सम्पूर्ण सृष्टि)-के मूल कारण (ह प्रभा! हे आदित्य!) आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सुवर्णपात्रम रक्तवर्णके चूर्ण-कुकुम, कुश पुष्पमालादिस युक्त, रक्त-स्वर्णिम जलद्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्घ्यका ग्रहणकर प्रसन्न हा।'

इस अर्घ्यदानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न हाकर आयु, आराग्य धन-धान्य क्षेत्र, पुत्र मित्र कलत्र तज वार्य यश, कान्ति, विद्या आर वैभव एव साभाग्य आदि प्रदान करते हैं तथा सूर्यलाककी प्राप्ति होती ह। भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक ओर दयालु हैं वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान करत है। उसक लिय मुक्ति भी सुलभ हा जाती ह, इसम सदह नहा।

भगवान् सूयकी दशाङ्ग-उपासनाम उनक मन्त्र ध्यान कवच हृदय पटल सूक्त, स्तात्र स्तवराज, शतनाम सहस्रनाम उनके चरित्रका पठन तथा यजन-पूजन आदि भी सनिविष्ट रहते हैं।

सूर्योपासकाको निम्नलिखित नियमाका पालन करना चाहिये—

१-प्रतिदिन सूर्योदयम पूर्व ही शय्या त्यागकर शौच-स्नान करना चाहिये।

२-स्नानोपरान्त श्रीसूर्यनारायणको तीन बार अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

३-नित्य सध्याक समय भा अर्घ्य दकर प्रणाम करना चाहिये।

४-प्रतिदिन उनक स्तात्र तथा शतनाम अथवा सहस्रनामका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये तथा उनके मन्त्रका जप करना चाहिये।

५-'आदित्यहृदय'का नियमित पाठ करना चाहिये।

६-स्वास्थ्य-लाभका कामना एव नत्ररागस बचन एव अधपनसे रक्षाक लिय नत्रापनिषद्-(अक्षि-उपनिषद्)-का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।

७-रविवारका तल, नमक नहा खाना चाहिय तथा एक

समय हविष्यान्नका भाजन करना चाहिये और ब्रह्मचयव्रतका पालन करना चाहिये।

वेदो, शास्त्रो और विशेषकर पुराणोमे भगवान् सविताकी सर्वज्ञता, सर्वाधिपता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोम वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अत प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

उपासकको उनकी लीलाओके चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय प्राप्त हो जाता है।

सूर्यकी आराधनासे महाराज राज्यवर्धनको दीर्घ आयुकी प्राप्ति

भगवान् श्रीरामके पूर्वज सूर्यवशी राजा दमके पुत्र महाराज राज्यवर्धन बडे विख्यात नरेश हुए हैं। वे अत्यन्त सजगतासे धर्मपूर्वक अपन राज्यका शासन करते थे। उनक राज्यम सभी लोग सुखी एव प्रसन्न थे। प्रजा धर्मके अनुकूल रहकर ही विषयाका उपभोग करती थी। दीनाको दान दिया जाता एव यज्ञाका आयोजन हाता रहता था।

राजा राज्यवर्धनका सुखपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए बहुत समय बीत गया। एक दिन महाराज राज्यवर्धनकी महारानी उनके सिरम तल लगा रही थीं। उसी समय उन्ह अपने पतिक सिरम एक सफेद बाल दिखायी दिया। उस देखकर उनकी आँखोमे आँसू आ गये। आँसू देखकर महाराजने साग्रह पूछा—'प्रिये! तुम्हार इस प्रकार दु खी होनेका कारण क्या है?' रानीने उत्तर दिया—'नाथ! आपके मस्तकका यह पका हुआ श्वेत केश ही मरे दु खका कारण है।' राजाने कहा—'कल्याणि! मैंन सभी तरहस अपना कर्तव्य-पालन कर लिया है, अत अब जीवनकी क्या चिन्ता है? जन्म लेनवालेकी तो मृत्यु निश्चित है ही, अत अब मुझे वनमें जाकर तपस्या करनी चाहिय।'

महाराजके वनगमनकी बात सुनकर सभी प्रजाजन व्याकुल हो उठे। प्रजापालक राज्यवर्धनके अनुरागके सामन प्रजावर्ग नतमस्तक था कृतज्ञ था। सभी लागान महाराजस आग्रहपूर्वक कहा—'नाथ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर कुछ दिन और प्रजा-पालन कर।' तत्पश्चात् सभा प्रजाजन महाराज राज्यवर्धनकी दीर्घ आयुक लिय भगवान् भास्करकी आराधनामे लग गय। कुछ लोगान विधिपूर्वक भगवान् भास्करको अर्घ्य दना आरम्भ किया, कुछ लोगोन 'सूर्यसूक्त'का पाठ प्रारम्भ किया, कुछ लोगोंने वेद-मन्त्राक जप, स्वाध्याय एव कुछ लोगाने व्रत-उपवासद्वारा भगवान् सूर्यदवको प्रसन्न करना चाहा। सभी लागाकी एक ही अभिलाषा थी कि महाराज राज्यवर्धन दीर्घायु हो जायँ।

अन्तमे कृपालु भगवान् सूर्यदेव प्रजाजनकी आराधनासे प्रसन्न होकर उनक समक्ष प्रकट हा गये आर उन्हाने उनका अभीष्ट वर (राज्यवर्धनकी यावनयुक्त लबी आयु) प्रदान किया। सभी प्रजाजन भगवान् भास्करकी कृपा प्राप्तकर परम प्रसन्न हो गय।

महाराज राज्यवर्धनको जब यह बात ज्ञात हुई ता व प्रसन्न नहीं हुए। उन्होने सोचा—'मै ता लबी आयुका उपभोग करूँगा परतु मेरे परिवार एव प्रजाके लोग तो समयपर मृत्युको प्राप्त हागे।' अत वे भी अपनी रानीके साथ कामरूप (आसाम) पर्वतपर जाकर भगवान् दिवाकरकी आराधनाम लग गय। भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये महाराज राज्यवर्धन एव रानी व्रत-उपवासादि करत हुए उनकी पूजा-स्तुति करने लगे। अन्तम भगवान् सूर्य कृपा करक उनके सामने प्रकट हो गये और उनके इच्छानुसार उन्हाने राजपरिवार एव प्रजाजनकी आयु भी राजाक समान ही लबी होनेका वर प्रदान किया। भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्तकर महाराज राज्यवर्धन एव सभी प्रजाजन सुखपूर्वक रहने लग।

भगवान् सूर्यका परिवार

अधिकाश पुराणाम सूर्यलोकम सूर्यके परिवारकी स्थिति समानरूपसे निर्दिष्ट हुई है। वहाँ व अपने समस्त परिवार, परिकर एव परिच्छदाक साथ सुशाभित रहते हैं। इस सदर्भम भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वम उपलब्ध सामग्री विशिष्ट काटिकी ह। तदनुसार सूर्यलाकम भगवान् सूर्यक समक्ष इन्द्रादि सभी दवता ऋषिगण स्थित रहते हैं तथा विश्वावसु आदि गन्धव नाग यक्ष तथा रम्भादि अप्सराएँ—य सभी नृत्य-गीत करत हुए उनकी स्तुति करत रहत ह। तीना सध्याएँ मूर्तिमान् रूपम उपस्थित होकर वज्र एव नाराच धारण किय भगवान् सूर्यकी स्तुति करती हैं। व सात

छन्दोमय अश्वोंसे युक्त हैं। घटी, पल, ऋतु, सवत्सरादिकालके अवयवोद्वारा निर्मित दिव्य रथपर आरूढ हाकर सुशोभित होते रहते हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण अपने ललाटपर अर्धचन्द्राकार कमल धारण किये हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यके सारथिका कार्य करते हैं। उनके दोना पार्श्वोमे दाहिनी ओर राज्ञी (सज्ञा[१]) और बायीं ओर निक्षुभा (छाया) नामकी दो पत्नियाँ स्थित रहती हैं। उनके साथमे पिङ्गल नामके लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी द्वारपर खडे रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खडे रहते हैं।

इनके साथ ही भगवान् सूर्यकी दस सताने हैं। सज्ञा (अश्विनी)-से वैवस्वत मनु, यम यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। इनमसे रेवन्त नामक पुत्र सभी प्रतिमा तथा चित्रादिमे नित्य उनके साथ विशेष रूपसे प्रविष्ट रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवता तथा सौरमण्डलके ग्रह-नक्षत्रादि भी मूर्तिमान् रूपमें उनकी उपासना करते हैं। इनके परिवारकी मुख्य कथा जो भविष्य, मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, मार्कण्डेय तथा साम्ब आदि पुराणोमे वर्णित हैं, उसका साराश सक्षेपमे इस प्रकार है—

विश्वकर्मा (त्वष्टा)-की पुत्री सज्ञा (त्वाष्ट्री)-से जब इनका विवाह हुआ, तब वह अपनी प्रथम तीन सताना—वैवस्वत मनु, यम तथा यमी (यमुना)-की उत्पत्तिके बाद उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपने ही रूप-आकृति तथा वर्णवाली अपनी 'छाया'को वहाँ स्थापितकर अपने पिताक घर होती हुई 'उत्तरकुरु' मे जाकर वडवा (अश्वा)-का रूप धारणकर अपनी शक्तिवृद्धिके लिय कठोर तप करने लगी। इधर सूर्यने छायाको ही पत्नी समझा तथा उससे उन्हे सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टि (भद्रा)—ये चार सताने हुईं जिन्ह वह अधिक प्यार करती किंतु वैवस्वत मनु तथा यम, यमीका निरन्तर तिरस्कार करती रहती।

एक दिन दु खी होकर धर्मराज (यमराज)-ने छायापर पैर उठाया, जिसपर उसने उनक पैरको गिर जानका शाप दे दिया। इसपर उन्हाने अपने पिता सूर्यसे कहा कि 'यह हम लोगाकी माता नहीं हो सकती, क्याकि एक तो यह निरन्तर हम तिरस्कृत करती है, यमीकी ताडना भी करती है, वहीं दूसरी ओर सावर्णि मनु आदिको अधिक प्यार करती है। मेरे द्वारा दु खी होकर पैर उठानपर उसने उस गिर जानका शाप दे दिया, जो अपनी माताके लिये कभी सम्भव नहीं है। सतान माताका कितना ही अनिष्ट करे, किंतु वह अपनी सतानको कभी शाप नहीं द सकती।' यह सुनकर सूर्यने कहा—'तुम दु खी न हाओ तुम्हारा पैर नहीं गिरगा कवल इसका एक लघु कण कृमि लेकर पृथ्वीपर चल जायँग।' ऐसा कहकर सूर्य कुपित होकर छायाक पास गये और उसके केश पकडकर पूछा—'सच-सच बता तू कौन है? कोई भी माता अपने पुत्रक साथ ऐसा निम्न कोटिका व्यवहार नहीं कर सकती।' यह सुनकर छाया भयभीत हो गयी और सारा रहस्य प्रकट कर दिया।

सूर्य तत्काल सज्ञाको खोजते हुए विश्वकर्माक घर पहुँचे। विश्वकर्माने तेज न सहन करनेके कारण उसके उत्तरकुरुमे तप करनेकी बात बतायी। विश्वकर्माने सूर्यकी इच्छापर उनके तेजको खरादकर कम कर दिया। अब भगवान् सूर्य अश्वरूपम वडवा (सज्ञा—अश्विनी)-के पास उससे मिले। वडवान परपुरुषक स्पर्शके भयसे सूर्यका तेज नाकासे फक दिया उसीसे दोनो अश्विनीकुमाराकी उत्पत्ति हुई, जो देवताओके वैद्य हुए। तजके अन्तिम अशसे रेवन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जा गुह्यको एव अश्वाके अधिपतिरूपम प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विशाल परिवार प्रतिष्ठित हो गया जिसकी पूजा-उपासना सदासे हाती रही है।

भगवान् भुवनभास्करकी कृपामयी लीलाएँ

भगवान् सूर्यका अवतरण ही ससारके कल्याणके लिये हुआ है। वे नित्य सभीका चेतनता तथा गति प्रदान करते हैं। चराचर जगत्पर कृपा करना ही उनका सहज स्वभाव है। अपने भक्तो तथा उपासकोपर तो उनकी विशेष प्रीति रहती है। भगवान् सूर्य नित्य त्रिकाल उपास्यदेव हैं। पञ्चदेवोपासनामें उनका विशिष्ट स्थान है। भगवान् भास्कर समस्त बुराइयोंका दूरकर भद्र, कल्याण श्रेय तथा मङ्गलको देनेवाले हैं इसीलिये उनसे प्रार्थना की जाती है—

१-पुराण आगम एव शिल्पग्रन्थोमें इनके सुरेणु, त्वाष्ट्री द्यौ वडवा तथा प्रभा—य नाम भी आते हैं।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्र तन्न आ सुव॥

(ऋ० ५। ८२। ५, यजु० ३०। ३)

भगवान् किरणमालीकी कृपासे व्यक्ति अतिमृत्युको भी लाँघ जाता है। बल्कि यहाँतक कहा गया है कि उनकी कृपाके बिना मोक्ष भी दुर्लभ है—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(यजु० ३१। १८)

सहस्रा किरणवाले भुवनभास्कर असत्से सत्की आर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले जानेवाले हैं—

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृत गमय॥

(शतपथब्राह्मण १४। ४। १३०)

उनका अनुग्रह प्राप्त होनेपर व्यक्ति शतायु ही नहीं दीर्घायु हो जाता है—'**जीवेम शरद शत**''''**भूयश्च शरद शतात्॥** (यजु० ३६। २४) भगवान् सविताकी उपासनासे बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है, अन्त करण पवित्र हो जाता है और साधक भगवत्प्राप्तिके योग्य हो जाता है। बुद्धिके प्रेरक भगवान् सविता ही हैं, इसीलिये गायत्री-मन्त्रमे सद्बुद्धि-प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है—'**धियो यो न प्रचोदयात्।**'

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि-महर्षि सभी आदित्योपासनाके द्वारा ही अध्यात्म-ज्ञान तथा आर्ष-मेधासे सम्पन्न हुए। भगवान् सूर्य स्वल्प भी उपासना-आराधनासे प्रसन्न होकर भक्तको अपनी महनीय कृपाका अवलम्बन प्रदान कर देते हैं। उनकी कृपासे न जाने कितनोका उद्धार हुआ इसकी कोई गणना नहीं। औपनिषदिक ऋषियाको भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। उपनिषदोमे वर्णित ब्रह्मविद्या दहरविद्या, मधुविद्या उपकोसलविद्या पञ्चाग्निविद्या आदिके मूलम भगवान् सूर्यकी उपासना ही प्रतिपादित है।

अव्यक्त एव अजन्मा परतत्त्वरूप भगवान् सूर्यके अवतारकी लीलाकथा पुराणोमे विस्तारसे प्राप्त होती है उसीका सार-रूप यहाँ प्रस्तुत है—

पूर्व समयमे यह सम्पूर्ण लोक प्रभा एव प्रकाशसे रहित था। चारो ओर घनघोर अन्धकार व्याप्त था। उस समय परम कारणस्वरूप एक अविनाशी एव बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह लाकस्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उस अण्डका भेदन करते समय उनके मुखसे महान् 'ॐ' शब्द प्रकट हुआ। उसम ॐकारसे भू, भुव तथा स्व —य तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं जो भगवान् सूर्यके स्वरूप हे। 'ॐ' इस स्वरूपस सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्मरूप प्रकट हुआ। उससे क्रमश मह, जन, तप और सत्यम्—ये स्थूलरूप प्रकट हुए। इस प्रकार ये सात सूर्यके सूक्ष्म ओर स्थूल रूप ह। ब्रह्माजीके मुखसे चारो वेदाका आविर्भाव हुआ। उस ॐकारम चारो वेद प्रतिष्ठित हुए। सबके आदिमे प्रकट होनेके कारण वह प्रणव ही 'आदित्य' कहलाया। वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। इसीलिये भगवान् सूर्य वेदात्मा वेदम स्थित वेद-विद्यारूप तथा परम पुरुप कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही गुणाका आश्रय लेकर सृष्टि पालन ओर सहारके हेतु बनते हैं। वे आदित्य महान् तेजोरूप हे। उनके असह्य तेजसे जब सभी लोक सतप्त होने लगे और ब्रह्माजीकी रची हुई सृष्टि दग्ध होने लगी तब ब्रह्माजी आदित्यकी शरणम गये। उन्होने उनकी प्रार्थना की ओर कहा—'प्रभा। में सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ, कितु आपका यह तज पुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है अत आप अपन इस तेजको समेट लीजिये।'

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् सूर्यने अपने तजका स्वल्प एव सुखदायक बना लिया। तदनन्तर ब्रह्माजीन पूर्वकल्पोक अनुसार जगत्की सृष्टि की। समुद्र, पर्वत आर द्वीपाका विभाजन किया देवताआ मनुष्या पशु-पक्षिया, वृक्ष-लताआ तथा अन्य सभीका सृजन किया।

सूर्यका गुरु भी कहा गया है। श्रीमारुतिने इन्हीस शिक्षा ग्रहण की थी। इन्हींकी कृपासे भगवान् साकृति तथा महायोगी याज्ञवल्क्यका ब्रह्मविद्या तथा चाक्षुष्मती विद्याका ज्ञान प्राप्त हुआ।

महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्योपासनाद्वारा ही शुक्लयजुर्वेदका प्रकाशित किया। भगवान् श्रीरामने 'आदित्यहृदयस्तात्र'का पाठ करके रावणपर विजय पायी थी। धर्मराज युधिष्ठिरन भगवान् सूर्यकी कृपास ही अक्षय-पात्र प्राप्त किया था।

कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकविने 'सूर्यशतक'की रचना करके उनके अनुग्रहसे कुष्ठरोगसे छुटकारा प्राप्त किया। कृष्णपुत्र साम्बकी सूर्योपासनाका चमत्कार तो प्रसिद्ध ही है। महाराज अश्वपतिने सूर्यकी कृपासे सावित्रीदेवीका अपनी कन्याके रूपमे प्राप्त किया था। सूर्यवशी सभी राजाओंको उनका अनुग्रह प्राप्त था। महाराज सत्राजित् सूर्यके महान् भक्त थे, उन्हींकी कृपासे उन्हे स्यमन्तक मणि प्राप्त हुई थी। अपनी एक कृपालीलाके द्वारा भगवान् सूर्यने महाराज राज्यवर्धनके साथ-ही-साथ उनकी प्रजाको भी दीर्घ आयु तथा अपना लोक प्रदान किया था। समर्थ रामदासजी सूर्यको नित्य एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे, इसलिये व समर्थ कहलाये गुरुपदभाक् बन। सत श्रीतुलसीदासजीको भी सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। ऐसे ही सहस्रो आख्यान हैं, जिनमें भगवान् सूर्यकी कृपामयी लीलाका वर्णन हुआ है। यहाँ सक्षेपम कुछ लीला-कथाओंको दिया जा रहा है—

(१)

महर्षि याज्ञवल्क्यपर भगवान् सूर्यकी कृपा

महान् योगी, अध्यात्मज्ञानी, श्रीरामकथाके प्रवक्ता तथा निरन्तर सूर्योपासनामें निरत महर्षि याज्ञवल्क्यजी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। त्रिकाल सध्योपासना तथा सूर्योपस्थान आदि दीर्घकालीन साधनाओंसे भगवान् आदित्यके लोकम आया-जाया करते थे। एक बार वे आदित्यलोकमे गये और वहाँ भगवान् सूर्यको प्रणामकर उन्होने कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये'—

याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोक जगाम। तमादित्य नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति।'

(मण्डलब्राह्मणोपनिषत् १। १)

—इसपर सूर्यदेवने कृपाकर उन्हे अपने आत्मतत्त्वका उपदेश दिया।

याज्ञवल्क्यजीने अपने गुरु वैशम्पायनजीसे वेदोका ज्ञान प्राप्त किया था किंतु एक बार उनसे कुछ विवाद हो जानेके कारण गुरुजी रुष्ट हो गये और कहने लगे—'तुम मेरे द्वारा पढी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो।' गुरुजीकी आज्ञा अनुल्लघनीय थी अत याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपसे वे ऋचाएँ उगल दीं जिन्हे वैशम्पायनजीके दूसरे शिष्योने तीतर (एक पक्षी-विशेष) बनकर ग्रहण कर लिया। यजुर्वेदकी वही शाखा जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी थी 'तैत्तिरीयशाखा'के नामसे विख्यात हुई।

पुन याज्ञवल्क्यजीने वेदज्ञान और वेदविद्या प्राप्त करनेका निश्चय किया, किंतु अब उन्हे ज्ञान कौन प्राप्त कराता? गुरुजी तो रुष्ट हो चुके थे। महर्षि याज्ञवल्क्य भगवान् सूर्यकी कृपाशक्तिसे परिचित थे अत उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करनेका निश्चय किया। फिर क्या था व अपने उद्देश्यकी पूर्तिमे लग गये। उन्होने प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो जो अभीतक किसीको न मिला हो—

अहमयातयामयजु काम उपसरामीति॥

(श्रीमद्भा० १२। ६। ७२)

महर्षि याज्ञवल्क्यकी स्तुति-उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् उनके सामने अश्वरूपसे प्रकट हुए और उन्हे यजुर्वेदके उन मन्त्रोका उपदेश दिया जो अभीतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुए थे—

एव स्तुत स भगवान् वाजिरूपधरो हरि।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादित॥

(श्रीमद्भा० १२। ६। ७३)

अश्वरूप सूर्यसे मध्याह्नकालम प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेदकी यह शाखा 'वाजसनेय' या 'माध्यन्दिन' नामसे प्रसिद्ध हुई।

भगवान् सूर्यकी कृपासे ही महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषदके द्रष्टा बने। जनक-जैसे महान् ज्ञानीका गुरु होनेका सौभाग्य इन्हे प्राप्त था। सौरी दीक्षासे सम्पन्न होनेके कारण ही ये महाराज जनकके दरबारमे ब्रह्मनिष्ठ ऋषियो तथा ऋषिका गार्गी आदिको शास्त्रार्थमे सतुष्ट कर सके और इसी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण इन्हे भगवान् श्रीरामकी भी कृपा प्राप्त थी। प्रयागमे इन्होने ऋषियोंके समाजम महर्षि भरद्वाजजीको दिव्य रामचरित सुनाया। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में जो दिव्य ज्ञान तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है वह भगवान् सूर्यकी कृपाका ही परिणाम है। भगवान् सवितादेवकी आराधनाके मुख्य मन्त्र ब्रह्मगायत्रीका इन्होने ही सर्वप्रथम भाष्य किया है, जो

उनकी सूर्योपासना तथा सूर्यकी कृपामयी लीलाका ही परिचायक है। इस प्रकार भगवान् सूर्यने अपने महान् भक्त महर्षि याज्ञवल्क्यजीको समय-समयपर सम्पूर्ण विद्या-बुद्धि और ज्ञान प्राप्त कराकर लोकका महान् उपकार किया।

(२)

सूर्योपासक महर्षि विश्वामित्रपर सवितादेवका अनुग्रह

तपस्याके धनी महर्षि विश्वामित्रजीका नाम सर्वविश्रुत ही है। इन्होने अपने पुरुषार्थसे क्षत्रियत्वसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया और ये राजर्षिसे ब्रह्मर्षि बन गये। तपस्याके प्रभाव तथा भगवती गायत्रीकी उपासनासे ये जगत्पूज्य हुए तथा सप्तर्षियामे इन्हे स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण ये भगवान् श्रीरामके भी गुरु बने। मूलत आज जो ब्रह्मगायत्री[१] है, उसके मुख्य द्रष्टा विश्वामित्रजी हैं। यह गायत्री-मन्त्रमे निर्दिष्ट भगवान् सवितादेवके अनुग्रहशक्ति प्राप्त होनेका ही परिणाम है। इन्हे ही सर्वप्रथम वेदमाता भगवती गायत्रीके दर्शन हुए। महर्षि विश्वामित्र वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदके तृतीय मण्डलके मन्त्रोका इन्हे ही सर्वप्रथम दर्शन हुआ। इसलिये यह मण्डल 'वैश्वामित्र मण्डल' कहलाता है। इस प्रकार गायत्री-मन्त्र जो सूर्यकी कृपा प्राप्त करनेका अन्यतम साधन है, महर्षि विश्वामित्रद्वारा ही हमे प्राप्त है। महर्षि विश्वामित्रजीने 'विश्वामित्रकल्प', 'विश्वामित्रसहिता' तथा 'विश्वामित्रस्मृति' आदि अनेक ग्रन्थ रचे। ये सभी ग्रन्थ गायत्री-उपासना, सध्योपासन-विधान तथा सूर्यकी उपासना एव उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये ही निर्मित हैं। इस दृष्टिसे सूर्योपासक महामुनि विश्वामित्रजीका हमपर बडा उपकार है।

(३)

भक्तके अधीन रहनेकी एक लीला

महाभारतके आदिपर्वमे जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बडे भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होने सर्पराज वासुकिकी बहन अपने ही नामवाली जरत्कारु नामक नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि 'यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा।'

एक बारकी बात है, ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रखे लेट हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया, किंतु ऋषि जागे नही, व निद्राम थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी साय-सध्याका समय हो गया, यदि इन्हे जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर दगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सध्या करनेकी वेला बीत जायगी, जिससे ऋषिके धर्मका लोप हो जायगा। ऋषिपत्नी धर्मसकटमे पड गयी। अन्तमे उसने यही निर्णय लिया कि पतिदेव मेरा परित्याग भले ही कर दे, परतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा—'देवि! इतने दिन मेरे साथ रहकर भी तुमने मेरे प्रभावका नहीं जाना। मैंने आजतक कभी सध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। मैं नित्य त्रिकाल-सध्या करता हूँ। भगवान् सवितादेव मेरे इष्ट हैं, वे मेरी आस्था एव विश्वासके सम्बल हैं, आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ, फिर क्या आज सूर्यभगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे, कभी नहीं—

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसो ।
अस्त गन्तु यथाकालमिति मे हृदि वर्तते॥

(महा० आदि० ४७। २६)

अर्थात् हे वामोरु! मेरे हृदयम यह विश्वास है कि मेरे सोते रहनेपर भगवान् सूर्यकी यह शक्ति नहीं है कि व अस्ताचलकी ओर जानेमे समर्थ हो सके।

सच है, जिस भक्तकी उपासनाम इतनी दृढ निष्ठा होती है कि उसके इष्टदेव उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते तो ऐसे हठीले भक्तोके लिये भगवान्को अपने नियम भी तोडने पडते हैं। उन्हे तो जैसे भी हो अपने भक्त अपने उपासकका ख्याल रखना ही पडता है। भगवान् अपने विरदको कभी नहीं भूलते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा की थी कि मैं कुरुक्षेत्रके मैदानम शस्त्र नहीं उठाऊँगा किंतु अपने प्यारे भक्त अर्जुनकी रक्षा तथा महाभागवत पितामह भीष्मकी प्रीतिके लिये उन्हे शस्त्र उठाना पडा। वास्तवमे भगवान् अपने भक्तके अधीन रहते हैं 'अह

१-'तत् सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात्॥' (ऋग्वेद ३। ६२। १०)

भक्तपराधीन ' इसीमे उनकी भक्तवत्सलता है और इसीमे है उनकी भगवत्ता।

(४)
साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमे इन्होने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमे इनके सम्बन्धमे विस्तृत वर्णन मिलता है। ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोमे एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञम भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरम आये थे। इन्होने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होने शल्यके सेनापतित्वम क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ हानेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् भी थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानम वे किसीका कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुम रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीना लोकोमे विचरते हुए द्वारकापुरीमे आये। उन्ह तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इससे दुर्वासा मुनिन क्रोधमे आकर अपने अपमानके बदलेमे साम्बको शाप दे दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढी हो जाआ।' उपहास बुरा होता है, वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर सतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये परतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तम वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज। मै कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है स्वर दबा जा रहा है पीडासे प्राण निकले जा रहे हैं अत्र क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दु खकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति द।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बाले—'पुत्र। धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो। तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करा। पुरुप यदि विशिष्ट दवताकी आराधना विशिष्ट ढगसे करे, ता अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन विफल नहीं होता।

साम्बके सदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुन बोल—शास्त्र और अनुमानसे हजारा दवताआका होना सिद्ध होता है, किंतु प्रत्यक्षमे सूर्यनारायणसे बढकर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और इन्हींम लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार ब्रह्मा, दिशा भू भुव , स्व आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता नाग-नग एव समस्त भूतग्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वद पुराण इतिहास—सभीम इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दासे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोमे भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुष्ठ मिटाकर ससारम सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-भुक्तिकी इच्छा रखते हा तो विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दु ख तुमको कभी नहीं हागे।'

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिराधार्यकर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रम गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापना करके उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्हाने मूर्तिकी स्थापना की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्बपुर' नामक एक नगर भी बसाया जिसे आजकल (पजाबका) 'मुलताननगर' कहते हैं। (साम्बरी नामकी एक जादूगरी विद्या भी है जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था।) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करन लगे। उन्हाने एसा घोर तप किया कि शरीरम अस्थिमात्र शेष रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे गद्गद हाकर— 'यदेतन्मण्डल शुक्ल दिव्य चाजरमव्ययम्'—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायणकी स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करते

समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे[१]।

इस आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने स्वप्नमे दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुह्य और पवित्र इक्कीस नाम तुम्हे बताते हैं[२] जिनका पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमे प्रसिद्ध है। जो दोनो सध्याओम इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे सभी पापोसे छूट जाते हैं और धन, आरोग्य, सतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं। साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष इस स्तोत्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ करेगा तो वह निश्चय ही समस्त रोगासे मुक्त हो जायगा।

साम्ब भगवान् सूर्यक आदेशानुसार इक्कीस नामोका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अटल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'वत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर माँगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब भक्तिभावमे अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोमे मेरी दृढ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब लज्जित-से होकर साम्बने दूसरा वर माँगा—'भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलक निवृत्त हा जाय।' कुष्ठको जीवनके सबसे बडे पापका फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये, जैसे—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमे दर्शन देते रहेगे, अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमे हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमे एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमे विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमे साम्बन वीरगति प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपासे ये विश्वेदेवोमें प्रविष्ट हो गये।

(५)

आरोग्य-दानकी एक अन्य लीला-कथा

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अ० ८२)-म एक कथा आयी है कि मध्यदेशमे भद्रेश्वर नामके एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। वे महान् तपस्वी, धर्मात्मा, न्यायशील तथा प्रजावत्सल राजा थे। प्रतिदिन देवता अतिथि एव ब्राह्मणोका पूजन तथा गौआकी सेवा करते थे। किंतु एक समयकी बात है कि उनके बाये हाथमे श्वेत कुष्ठ हा गया। वैद्यान बहुत कुछ उपचार किया, परतु वह कोढ बढता ही गया। राजा अति चिन्तित हो गये। यह उनके लिये महान् लज्जा एव कष्टका विषय हा गया। उनका मन अत्यन्त ग्लानिसे भर गया। 'राजा कोढी हो गये' यह प्रवाद सर्वत्र फैल गया। राजाने ब्राह्मणाको आदरपूर्वक बुलाकर अपना दु ख उन्ह निवेदित किया आर राज्यका परित्याग कर देनेकी बात बतलायी।

ब्राह्मणाने क्षणभर विचार किया और फिर कहा—'राजन्! आप एसा खयाल छोड दे, राजाके अभावमे प्रजा नष्ट हा जायगी। आप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना कर वे आरोग्यके देवता हैं।' यह कहकर ब्राह्मणाने उन्हे सूर्योपासनाकी विधि बतला दी। तदनुसार राजा बडी ही निष्ठासे सूर्यकी पूजामे जुट गये। सूर्य-मन्त्राका जप करने लगे, सूर्यको अर्घ्य देने लगे। 'राजाका कष्ट दूर हो' इस उद्देश्यसे समस्त राजपरिवार मन्त्रिगण पुरोहित तथा प्रजाजन भी सूर्यार्घ्य देने लगे।

ऐसे ही एक वर्षका समय निकल गया। राजाकी श्रद्धा बढती ही गयी। वर्षके अन्तमे ऐसा चमत्कार हुआ कि एक दिन सूर्यार्घ्य देते समय एकाएक राजाका कुष्ठराग दूर हा

१ सूर्यसहस्रनामस्तोत्र 'गीताप्रेस'से प्रकाशित है।

२ इक्कीस नाम ये हैं—

ॐविकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रवि। लोकप्रकाशक श्रीमान् लाकचक्षुर्महेश्वर॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेश कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचि सप्ताश्ववाहन॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृत॥

(भविष्यपुराण)

गया। उस समय पूर्वदिशामे भगवान् सूर्य प्रकाशित हो रहे थे। यह चमत्कार देखकर राजा मुग्ध हो गये। क्षणभरम यह समाचार सर्वत्र फैल गया। सभी भगवान् सूर्यकी कृपासे अभिभूत हो गये।

अब तो राजाने सम्पूर्ण राज्यम घोषणा करा दी कि आजस सभी लोग नित्यप्रति भगवान् सूर्यको सूर्यार्घ्य प्रदान करे, जल चढाया करे और सयम-नियमसे रहते हुए सूर्याराधना किया कर। राजाज्ञा थी, कौन उल्लघन कर सकता। सभी लोग सूर्यपूजक बन गये और सभीमे सूर्य-भक्तिका सचार भी हो आया।

राजाकी ऐसी दृढ निष्ठा देखकर भगवान् सूर्य उन्ह प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'राजन्। तुम्हारी भक्ति अत्यन्त ही श्रेष्ठ है, तुम्हारी प्रेरणासे तुम्हारे समस्त राज्यमे सब लोग भक्त बन गये हैं। यह बडा ही उत्तम कार्य तुमसे बना है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वह वर माँग लो।'

राजाने कहा—'भगवन्। इन सासारिक सुख-भोगोंमें क्या रखा है जो इनकी कामना की जाय। मैं तथा मेरी समस्त प्रजा आपमे दृढ निष्ठा रखती है, अत आप कृपाकर ऐसा वर प्रदान कर जिससे हम सभीको आपकी सनिधि प्राप्त हो और हम सभी आपके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठे।'

राजाकी बुद्धिमत्ता उदारता तथा प्रजावत्सलताको देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर बोले—'राजन्। यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही होगा।' फिर क्या था भगवत्कृपा हो ही चुकी थी। राजा भद्रेश्वर अपन समस्त परिजनो, पुरजनो-सहित सूर्यलोकम प्रतिष्ठित हुए। उस राज्यम जो भी पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीडे-मकोडे आदि थे, व भी राजा भद्रेश्वरकी सूर्यनिष्ठाक परिणामस्वरूप आदित्यधामक निवासी बन गये। धन्य है प्रभो। आपकी लीला, अपने भक्तके लिये आप क्या-क्या नहीं कर देते हैं। भगवन्। आपको तथा आपके भक्तोको बार-बार प्रणाम है।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एव कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी प्रभृति सैकडा देव-देवियाँ काशीवासीजनोके योग-क्षेम, सरक्षण दुरित एव दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान है। इनमे द्वादश आदित्योका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एव दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योका सक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथा-रूपमे प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोलार्क—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व। तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमे जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो, किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होने काशी पहुँचकर राजाकी धर्म-परीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एव अतिथि भिक्षु आदि बनकर उन्होने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगीं किंतु राजाके कर्तव्यमे त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिला।

उन्होने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण उनकी झिडकीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्यागकर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अत उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-सगमके निकट भद्रवनी (भदैनी)-मे विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा पिपासा, दरिद्रता दद्रु (दाद) तथा फोडे-फुसी आदि विविध व्याधियोस ग्रस्त रहते हैं।

काशीमे गङ्गा-असि-सगम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमे वर्णित है—

> सर्वेषा काशितीर्थाना लोलार्क प्रथम शिर ।
> लोलार्ककरनिर्घृष्टा असिधारविखण्डिता ॥
> काश्या दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामला ॥
>
> (स्कन्दपु० काशीखण्ड ४६। ५१ ६७)

(२) उत्तरार्क—बलिष्ठ दैत्योद्वारा देवता बार-बार

युद्धमे परास्त हो जाते थे। देवताओने दैत्योके आतकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुति करनेपर सम्मुख उपस्थित हुए प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओने प्रार्थना की—'हे प्रभो! बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देत हैं और हमे परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधायक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करे।'

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्माद्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय छेनीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तरखण्ड निकलेंगे वे तुम्हारे दृढ अस्त्र-शस्त्र होगे। उनसे तुम शत्रुओपर विजय प्राप्त करोगे।

देवताओने वाराणसी जाकर विश्वकर्माद्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया। मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकडे निकले उनसे देवताओंके तेज और प्रभावी अस्त्र बने। उनसे देवताओने दैत्यापर विजय पायी। मूर्ति गढते समय जो गड्ढा बन गया था उसका नाम उत्तरमानस (उत्तरार्ककुण्ड) पड़ा। वही कालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना करनेपर कि 'बर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्।' (स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४७।५६) अर्थात् 'अर्ककुण्ड' (उत्तरार्ककुण्ड)-का नाम वर्करीकुण्ड हो जाय, वही कुण्ड 'वर्करीकुण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमानमे उसीका विकृत रूप 'बकरियाकुंड' है। यह अलईपुराके समीप है। उत्तररूपमे दी गयी शिलासे मूर्ति बननेके कारण उनका उत्तरार्क नाम पडा। उत्तरार्कका माहात्म्य बडा ही अद्भुत और विलक्षण है। पहले पौषमासके रविवारोको वहाँ बडा मेला लगता था किंतु सम्प्रति वह मूर्ति भी लुप्त है।

उत्तरार्कस्य माहात्म्य शृणुयाच्छ्रद्धयान्वित ।

लभते वाञ्छिता सिद्धिमुत्तरार्कप्रसादत ।

(आदित्यपु० रविवारव्रतकथा ३६—३८)

(३) साम्बादित्य—किसी समय देवर्षि नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पधारे। उन्हें देखकर सब यादवकुमाराने अभ्युत्थान एव प्रणामकर उनका सम्मान किया किंतु साम्बने अपने अत्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही, प्रत्युत उनकी वेष-भूषा और रूपपर हँस दिया। साम्बका यह अविनय देवर्षिको अच्छा नहीं लगा। उन्होने इसका थोडा-सा सकेत भगवान्के समक्ष कर दिया।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्त पुरमे गोपीमण्डलके मध्य बैठे थे। नारदने बाहर खेल रहे साम्बसे कहा—'वत्स! भगवान् कृष्णको मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' साम्बने सोचा—एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिन्न हुए थे। यदि आज भी इनका कहना न मानूँ तो और भी अधिक खिन्न होगे, सम्भवत शाप दे डाले। उधर पिताजी एकान्तमे मातृमण्डलके मध्य स्थित है। अनुपयुक्त स्थानपर जानेसे वे भी अप्रसन्न हो सकते है। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ? मुनिके क्रोधसे पिताजीका क्रोध कहीं अच्छा है—यह सोचकर वे अन्त पुरमे चले गये। दूरसे ही पिताजीको प्रणामकर नारदके आगमनकी सूचना उन्हे दी। साम्बके पीछे-ही-पीछे नारदजी भी वहाँ चले गये। उन्हे देखकर सबने अपने वस्त्र सँभाले।

नारदजीने गोपीजनामे कुछ विकृति ताडकर भगवान्से कहा—'भगवन्! साम्बके अतुल सौन्दर्यसे ही इनमे कुछ चाञ्चल्यका आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है।' यद्यपि साम्ब सभी गोपीजनाको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे तथापि दुर्भाग्यवश भगवान्ने साम्बको बुलाकर यह कहते हुए तो शाप दे दिया कि एक तो तुम अनवसरमे मेरे निकट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुई हैं, इसलिये तुम कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो जाओ।'

घृणित रोगके भयसे साम्ब काँप गये और भगवान्के समक्ष मुक्तिके लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगे। तब श्रीकृष्ण भगवान्ने भी पुत्रको निर्दोष जानकर दुर्दैववश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हे काशी जानेका आदेश दिया। तदनुसार साम्बने भी काशी जाकर विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एव भक्तिभावसहित सूर्याराधनासे रोग-विमुक्त हुए।

तभीसे सब व्याधियोको हरनेवाले साम्बादित्य सकल सम्पत्तियाँ भी प्रदान करते है। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड मुहल्लेमे कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी बडा चमत्कारी है—

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रवि ।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामया सर्वसम्पद ॥

(स्कन्दपुराण काशीखण्ड ४८। ४७)

(४) द्रौपदादित्य—प्राचीन कालमे जगत्-कल्याणकारी

भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच पाण्डवोंके रूपमे प्रादुर्भूत हुए एव जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमे यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमे अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बडी विपत्तिमें पड गये। उन्हे राज्य त्यागकर वनोकी धूलि फाँकनी पडी। अपने पतियोके इस दारुण क्लेशसे दु खी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयँगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोकी निधान है एव इच्छानुसारी खाद्योकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमे सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमे तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हे क्षुधा-पीडा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-वटके नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमे पुराणोमे बहुत माहात्म्य वर्णित है—

आदित्यकथामेता द्रौपद्याराधितस्य वै।
य श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैन क्षयमेष्यति॥

(स्कन्दपुराण काशीखण्ड ४९। २४)

(५) मयूखादित्य—प्राचीन कालमे पञ्चगङ्गाके निकट 'गभस्तीश्वर' शिवलिङ्ग एव भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापनाकर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारो वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपत त्रैलोक्यको तप्त करनेमे समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमे समर्थ सूर्य-किरणोसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोने तीव्रतम सूर्य-तेजमे फतिगा बननेके भयसे आकाशमे गमनागमन त्याग दिया। सूर्यके ऊपर, नीचे तिरछे—सब ओर किरणे ही दिखायी देती थीं। उनके प्रखरतम तेजसे सारा ससार काँप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा है ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा हैं, जगच्चक्षु हैं। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रात - कालमे प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्यापारोके सचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्यभगवान् अत्यन्त निश्चल एव समाधिमे इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हे अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होने सूर्यको पुकारा पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान्ने अपने अमृत-वर्षी हाथोसे सूर्यका स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी आँख खोलीं और उन्हे दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो सब भक्तोके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनो स्तवनोका पाठ करनेवालोको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एव प्रिय-वियोगजनित दु ख कदापि नहीं होगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूख (किरण) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम 'मयूखादित्य' होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योको कोई व्याधि नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्नृणा कश्चिन्न व्याधि प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्य रविवारे त्वदीक्षणात्॥

(स्कन्दपुराण काशीखण्ड ४९। ९४)

मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमे है।

(६) खखोल्कादित्य—दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ कद्रू और विनता मुनिवर कश्यपकी पत्नियाँ थीं। एक समय खेल-खेलमे कद्रूने आग्रहपूर्वक विनतासे कहा—'बहन! आकाशमे तुम्हारी अकुण्ठ गति है, इसलिये पराजित होनेपर एक-दूसरेकी दासी बननेकी शर्त लगाकर यह बतलाओ कि सूर्यके रथका उच्चै श्रवा नामक अश्वका रंग सफेद है या चितकबरा? शर्त लगाकर तुम्हे जो रुचे उसे कहो?' विनताने उत्तर दिया—'सफेद है।'

कद्रूने अपने पुत्रोसे कहा—'बच्चो! तुम सब बालकके समान महीन रूप बनाकर उच्चै श्रवाकी पूँछमे लिपट जाओ जिससे उसके रोएँ तुम्हारी विषैली साँसोसे श्याम

रंगके हो जायँ।' माता शाप न दे—इस भयसे बचनेके लिये कुछने उसकी यह खोटी बात मान ली। शुक्ल उच्चै श्रवाको कर्बुरित (चितकबरा) कर दिया।

विनताकी पीठपर बैठकर कद्रूने आकाशमार्गको लाँघकर सूर्य-मण्डलको देखा। तेज किरणोंके तापके कारण वह व्याकुल हो गयी। आकाशमार्गमें आगे उड रही विनतासे कद्रूने कहा—'बहन विनते! मेरी रक्षा करो। सखि! यह अग्निपिण्ड गिरता है'—'सखि उल्का पतेदेषा' कहनेकी जगह घबराहटमें उसने 'खखोल्का निपतेदेषा' कह डाला। विनताने खखोल्क नामके अर्ककी स्तुति की। उससे सूर्यताप कुछ कम होनेपर आकाशमार्गसे सूर्यके गुजरनेपर उन्होंने उच्चै श्रवाको कुछ चितकबरा देखा। कद्रूकी सूर्यतापके प्रभावसे नेत्रज्योति बेकार हो गयी थी। सत्यवादिनी विनताने क्रूरा कद्रूसे कहा—'बहन! तुम्हारी जीत हुई। चन्द्र-किरणोंके तुल्य प्रभावाला यह कर्बुरित (चितकबरा)-सा मालूम पडता है।' यथार्थ बात कहती हुई विनता कद्रूके घर गयी। शर्तके अनुसार उसने कद्रूकी दासता स्वीकार कर ली। कद्रू दुष्ट स्वभावकी थी। वह विनताको बहुत परेशान करती थी। स्वय उसपर सवार होकर इधर-उधर सैर करती और अपने बच्चोंको भी उसपर सवार कराकर दूर-दूरतक सैर कराती थी।

एक दिन गरुडने दीर्घ नि श्वास छोडती हुई मलिनमुख और अत्यन्त उदास विनताकी आँखोंमें आँसू देखे। गरुडने कहा—'माँ! तुम प्रतिदिन सबेरे सबेरे कहाँ जाती हो और शामको थकी-माँदी कहाँसे आती हो? आँखोंमें आँसू भरकर क्यो सिसकती हो? माँ! जल्दी कहो। कालको भी भयभीत करनेवाले मुझ-जैसे अपने बच्चेके जीवित रहते तुम क्यों दु खी हो?'

पुत्रकी ऐसी मार्मिक वाणी सुनकर विनताने कद्रूद्वारा की जाती हुई परेशानी और उसकी दासी होनेका अपना सारा वृत्तान्त गरुडको सुना दिया। उक्त वृत्तान्तको सुनकर गरुडने कहा—'माँ! तुम उन दुष्टोंके पास जाकर कहो—जो अत्यन्त दुर्लभ हो और जिसमे तुम्हें अत्यन्त अभिरुचि हो वह वस्तु दासीत्वसे छुटकारेके लिये माँगो, वह मैं तुम्हें देती हूँ।' विनताने जाकर सर्पोंसे उक्त बात कही। सर्प उसे सुनकर बडे खुश हुए। उन्होंने आपसमे विचारकर विनतासे कहा—'माताके शापसे विमुक्तिके लिये यदि हमे अमृत दोगी तो तुम्हारी इच्छा पूरी होगी, अन्यथा तुम दासी हो ही।' विनताने सर्पोंकी माँग स्वीकार कर ली और कद्रूके पास गयी, उससे विदा लेकर वह शीघ्र गरुडके निकट आयी। गरुडको प्रसन्नचित्त देखकर उससे सारा हाल कहा। गरुडने कहा—'माँ! चिन्ता मत करो अमृतको लाया हुआ ही जानो।'

अमृत स्वर्गमें बडे कडे पहरेमें रखा हुआ था। गरुडने पहरेदारोंको अपने परोंकी वायुसे सूखे पत्तोंकी तरह अत्यन्त दूर फेंक दिया। फिर शिवजीकी स्तुतिसे प्राप्त हुई अपनी सूझ-बूझसे कठिनाईके साथ अमृत प्राप्त कर लिया। अमृतकलश लेकर वे वहाँसे निकले। शोर मचाते हुए देवताओंने भगवान् विष्णुसे निवेदन किया। भगवान्ने त्वराके साथ गरुडका पीछा किया। दोनोंमें खूब युद्ध हुआ। गरुडकी बलवत्तासे भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'वीर! सर्पोंको अमृत दिखाकर माताको दासतासे छुडा लो। सर्पोंके साथ ऐसा कौशल करो जिससे वे शीघ्र सुधा-पान न कर सके एव अमृत देवताओंको मिल जाय।' 'तथास्तु' कहकर गरुड वहाँसे निकले। उन्होंने माँको दासतासे मुक्तकर सर्पोंके सामने अमृत महान् कमण्डलुमें रख दिया। वे जब अमृत-पानके लिये प्रस्तुत हुए तब गरुडने कहा—'सर्पवृन्द! इस पवित्र सुधाका पान पवित्र होकर करना चाहिये। यदि स्नान किये विना इसका स्पर्श करोगे तो देवताओंद्वारा सुरक्षित यह सुधा गायब हो जायगी।'

वे सब सर्प अपनी माताके साथ स्नान करनेके लिये गये और इधर भगवान् विष्णुने अमृत-कलश देवताओंको दे दिया।

दासतासे मुक्त हुई विनताने गरुडसे कहा—'वत्स! मैं दासतारूपी पापकी निवृत्तिके लिये पापराशि-विनाशिनी काशी जाऊँगी, इसलिये कि प्राणियोंमें तभीतक नाना जन्मोंके अर्जित पाप बलिष्ठ रहते हैं, जबतक काशीका स्मरण और दर्शन नहीं किया जाता।' माँका कथन सुनकर गरुडने भी नमस्कारपूर्वक माँसे कहा—'माँ! मैं भी शिवार्चित काशीके दर्शनार्थ तुम्हारे साथ चलूँगा।'

दोनो क्षणभरमें मोक्षदायिनी काशी पहुँचे। दोनोंने कठोर तपस्या की। विनताने 'खखोल्क' नामक *आदित्यकी* स्थापना की और गरुडने शाम्भवलिङ्गकी स्थापना की। उन दोनोंकी उग्र तथा श्रद्धाभक्तियुक्त तपस्यासे शकर और भास्कर दोनो प्रसन्न हो गये।

शिवजीकी ही अन्य मूर्ति-रूप खखोल्क नामक भास्करकी तपस्या करती हुई विनताको देखकर शिवने ज्ञानपूर्ण पापसहारी वर प्रदान किया। काशीवासीजनोंके अनेक

जन्मोके पापोका क्षय करनेवाले 'विनतादित्य', 'खखोल्क' नामसे काशीम विराजमान हैं। वे काशीवासीजनोंके विघ्नान्धकारको दूर करनेवाले हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सकल पापासे मुक्त हो जाता है। खखोल्कादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लमें कामेश्वर मन्दिरके द्वारपर है। खखोल्कादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्याके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं एव रोगी नीरोग हो जाता है—

काश्या पैशिङ्गिले तीर्थे खखोल्कस्य विलोकनात्।
नरश्चिन्तितमाप्नोति नीरोगो जायते क्षणात्॥

(७) अरुणादित्य—विनता अपनी सपत्नी (सौत)-को गोदम बच्चे खेलाते देख स्वय भी बच्चेको गोदमे खेलानेकी अभिलाषा न त्याग सकी, अत जो अडा अभी सेवा जा रहा था—जिसकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, उसे उसने फाड दिया। विकलाङ्ग शिशु ऊरु (जघा)-रहित होनेसे 'अनूरु' एव अवधिसे पूर्व ही अडा फोड देनेसे माँके प्रति क्रोधवश अरुण (लाल) होनेस 'अरुण' कहलाया। अरुणने काशीमे तपस्या करते हुए सूर्यकी आराधना की। सूर्यने उसपर प्रसन्न हो उसे अनेक वर दिये एव उसक नामसे स्वय सूर्य 'अरुणादित्य' हुए।

सूर्यने कहा—'हे अनूरो! तुम त्रैलोक्यक हितार्थ मेरे रथपर सदा स्थित रहो एव मुझसे पहले अन्धकारका विनाश करो। जो मनुष्य वाराणसीमें विश्वेश्वरके उत्तर तुम्हारे द्वारा स्थापित अरुणादित्य नामक मेरी मूर्तिका अर्चन-पूजन करगे, उन्ह न तो दु ख होगा, न दरिद्रता होगी और न पातक लगेगा। वे न विविध प्रकारकी व्याधियासे आक्रान्त होगे और न नाना प्रकारके उपद्रवासे पीडित हाग। अरुणादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लमे त्रिलोचन-मन्दिरमे स्थित हैं। अरुणादित्यके सेवकाको शाकाग्निजनित दाह भी कदापि नहीं होगा'—

येऽर्चयिष्यन्ति सततमरुणादित्यसञ्ज्ञकम्।
मामत्र तेषा नो दु ख न दारिद्र्य न पातकम्॥

(८) वृद्धादित्य—काशीम प्राचीन कालम वृद्धहारीत नामक एक महातपस्वी रहते थे। उन्हाने विशालाक्षीदेवीके दक्षिण ओर मीरघाटपर महातपका समृद्धिके लिये सूर्यनारायणकी एक सुन्दर मूर्ति स्थापित की और उनकी आराधना की। उन्हाने अपनी अतुल भक्तिपूर्ण आराधनासे प्रसन्न हुए सूर्यसे वर माँगा—'भगवन्! वृद्ध पुरुषमे तप करनेकी शक्ति नहीं रहती। यदि मुझे आपक अनुग्रहस फिर तारुण्य प्राप्त हो जाय तो मै उत्तम तप कर सकूँगा।' मनुष्यकी सर्वविध अभ्युन्नतिके लिये तप ही परम साधन है। वृद्धहारीतक तपसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यन वृद्ध तपस्वीको वृद्धावस्था तत्क्षण मिटाकर उन्ह यौवन प्रदान कर दिया। यौवन प्राप्तकर हारीतने महान् उग्र तप किया। वृद्धादित्यके भक्तिभावपूर्ण अर्चन-पूजनस वार्धक्य, दरिद्रता एव विविध रागासे मुक्ति पाकर बहुतोने सिद्धि पायी है—

वृद्धादित्य समाराध्य वाराणस्या घटोद्भव।
जरादुर्गतिरोगघ्न बहव सिद्धिमागता ॥

(९) केशवादित्य—किसी समय आकाशमे सचरण कर रहे सूर्यनारायणन भगवान् आदिकेशवको बड श्रद्धाभावस शिवलिङ्गका पूजन करते देखा। व महान् आश्चर्यसे चकित हो आकाशसे उतरकर भगवान् केशवके निकट अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप बठ गय। भगवान् केशवद्वारा की जा रही शिवपूजा समाप्त होनेपर सूर्यने उन्ह सभक्ति प्रणाम किया। भगवान्ने भी उनका उचित स्वागत-सत्कार कर पासम बैठा लिया। अवसर पाकर सूर्यने पूछा—'भगवन्! आपसे ही यह जगत् उत्पन्न होता है और आपम ही लीन हो जाता हैं। आपका भी कोई पूज्य है—यह जानकर मुझे बडा आश्चर्य हो रहा है।'

भगवान् केशवने कहा—'भास्कर! सब कारणोंके भी कारण देवाधिदव महादेव उमापति ही एकमात्र पूज्य हैं। जो त्रिलोचनके सिवा अन्यकी पूजा करता है, वह आँखवाला होनेपर भी अन्धा है। जिन लोगोन एक बार भी पार्वतीपतिके लिङ्गकी पूजा की, उन्हे विविध दु खास भरे ससारमे भी दु ख नहीं होगा।'

न लिङ्गाराधनात् पुण्य त्रिषु लोकेषु चापरम्।
सर्वतीर्थाभिषेक स्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात्॥

अर्थात् 'शिवलिङ्गकी आराधनासे बढकर तीनो लोकोंमे दूसरा पुण्य नहीं है एव शिवलिङ्गके स्नानके जलके सेवनसे सब तीर्थोंमे स्नानका पुण्य प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णुके मुखसे शिवजीका ऐसा अद्भुत माहात्म्य सुनकर कि हे सूर्य! तुम भी विपुल तेजको बढानेवाली परम लक्ष्मीका प्राप्त करनेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करो— भगवान् सूर्य स्फटिकका लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा करने लगे। तभीसे सूर्य आदिकेशवको अपना गुरु मानकर

आदिकेशवके उत्तरमे आज भी स्थित हैं।

काशीमे भक्तजनाके अज्ञानान्धकारका विनाश करनवाले वे 'केशवादित्य' पूजा-अर्चा करनेवालाको सदा मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं—

केशवादित्यमाराध्य वाराणस्या नरोत्तम ।
परम ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत्॥

मतिमान् श्रेष्ठ पुरुष वाराणसीमे 'केशवादित्य' की आराधनापूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिससे उन्हे निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त होता है तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनके माहात्म्यके श्रवणसे मनुष्यको पाप स्पर्श नहीं करते और शिवभक्ति प्राप्त होती है।

(१०) विमलादित्य—विमल नामका एक क्षत्रिय था। वह बडा सत्कार्यकारी होनेपर भी प्राक्तन कर्मवश कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो गया। वह घर-द्वार पुत्र-कलत्र धन-दौलत सबका परित्याग कर काशी आया। उसने हरिकेशवन (जङ्गमवाडी)-म हरिकेशेश्वरके निकट सूर्यमूर्ति स्थापितकर परम भक्ति-श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना की। वह कनैर, अडहुल सुन्दर किशुक, लाल कमल, सुगन्धपूर्ण गुलाब और चम्पाके पुष्पा, चित्र-विचित्र मालाओ, कुकुम, अगुरु और कर्पूरमिश्रित लाल चन्दन सुगन्धित धूपा कपूर और बत्तियोकी आरार्ति विविध प्रकारक सुमिष्ट नैवद्या भाँति-भाँतिके फलो अर्घ्यप्रदान एव सूर्य-स्तोत्राद्वारा सूर्यकी पूजा करता था। इस प्रकार निरन्तर आराधना करनेसे उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए। उन्हाने वर माँगनको कहा एव यह भी कहा कि तुम्हारा कुष्ठरोग तो मिटेगा ही उसक अतिरिक्त और भी वर माँगो। दण्डवत्-प्रणाम करते हुए विमलने कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो जो लोग आपके भक्तिनिष्ठ हा, उनके कुलमे कुष्ठ तथा अन्यान्य रोग भी न हो, उन्ह दरिद्रता भी न सतावे, आपके भक्ताको किसी प्रकारका दु ख न हो यही वर दे।'

विमलके उक्त वरोको सुनते हुए सूर्यने 'तथास्तु' कहकर आगे कहा—'विमल! तुमने काशीमे जो यह मेरी मूर्ति स्थापित की है इसकी सनिधिका मे कभी त्याग नहीं करूँगा एव यह मूर्ति तुम्हार नामस प्रख्यात हागी। सत्र व्याधियाको दूर करनेवाली तथा सकल पापोका विध्वस करनेवाली 'विमलादित्य' नामक यह प्रतिमा भक्तोको सदा वर प्रदान करेगी।'

इत्थ स विमलादित्यो वाराणस्या शुभप्रद ।
तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोग प्रणश्यति॥

इस प्रकार शुभप्रद (मङ्गलकारी) विमलादित्य काशीम विराजमान हे। उनके दर्शनमात्रस कुष्ठरोग मिट जाता है।

(११) गङ्गादित्य—गङ्गादित्य वाराणसीम ललिताघाटपर विराजते हैं। केवल उनके दर्शनासे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। भगीरथके रथका अनुसरण करती हुई भागीरथी जब यहाँ (काशीम) पधारीं, ता रविन वहींपर स्थित हाकर गङ्गाको स्तुति की। आज भी वह गङ्गाको सम्मुखकर रात-दिन उनकी स्तुति करते हैं। 'गङ्गादित्य'की आराधना करनेवाले नरश्रेष्ठाको न दुर्गति होती है ओर न व रोगाक्रान्त ही हाते हैं। इनका दर्शन पुण्यप्रद है।

(१२) यमादित्य—यमेश्वरसे पश्चिम और आत्मवीरेश्वरसे पूर्व सकटाघाटपर स्थित यमादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्याको यमलोक नहीं देखना पडता। भौमवारी चतुर्दशीको यमतीर्थमे स्नानकर यमेश्वर ओर यमादित्यके दर्शनकर मानव सब पापोसे छुटकारा पा जात हे। प्राचीन कालम यमराजन यमतीर्थमे कठार तपस्या करके भक्तोका सिद्धि प्रदान करनेवाले यमेश्वर आर यमादित्यकी स्थापना की थी। यमराजद्वारा स्थापित यमेश्वर ओर यमादित्यको प्रणाम करनेवाले एव यमतीर्थमे स्नान करनेवाले पुरुषाको यामी (नारकीय) यातनाआका भोगना ता दूर यमलाकका दखना तक नहीं पडता। इसके अतिरिक्त यमतीर्थमे श्राद्ध करके यमेश्वरका पूजनकर एव यमादित्यका प्रणामकर मनुष्य पितृऋणसे भी उऋण हो जाता हे—

श्राद्ध कृत्वा यम तीर्थे पूजयित्वा यमेश्वरम्।
यमादित्य नमस्कृत्य पितृणामनृणा भवत्॥

ये बारह आदित्य पाप-राशि-विनाशी है। इनके दर्शन-पूजन आदिसे मनुष्याक यामी यातनाएँ नहीं हाती ह। इनक अतिरिक्त काशीम गुह्यकार्क आदि और भी अनक आदित्य है। सबकी पूजा-अर्चा लाभप्रद हे। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक नर-नारीको करनी चाहिय।

बारह आदित्याके आविर्भावका ससूचक कथाका सुनने अथवा दूसराका सुनानेवाले मनुष्याक पास दुर्गति कदापि नहीं आ सकती।

—राधेश्याम खेमका

भक्त-वत्सल भगवान् विष्णुकी दिव्य लीलाएँ

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामाके वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निगुण-निराकाररूपमे है उसी प्रकार सगुण-साकाररूपम भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मप्रभुकी ही शक्तिसे व्याप्त है। उन्हींके उन्मेष और निमेषमात्रसे ससारकी उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण-सगुण दोनासे विलक्षण भी हैं। वे चराचर जगत्के सर्जक पालक-पापक सहारक पडैश्वर्य-सम्पन्न कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ होते हुए भी भक्ताकी पुकार सुनते आय हैं। व्यापक होनेपर भी वे एकदेशम अवतरित हाते हैं। इस प्रकार विचार-दृष्टिमे जो निर्गुण है भावदृष्टिसे वही सगुण बन जाता है जा अव्यक्त है वही साधका-भक्ताके लिय व्यक्त भी हा जाता है। 'सर्वत पाणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्' उनके सगुण-साकार सौम्य चतुर्भुज-स्वरूपका भक्तजनाका प्रत्यक्ष दर्शन हाता है। धर्म अर्थ काम माक्ष चतुर्विध पुरुपार्थ प्रदान करनके लिये वे अपने चारा हाथाम शख चक्र गदा एव पद्म धारण किये रहते हैं। राम-कृष्णादि उन्हींके अवतार हैं।

भगवान् नारायण श्रीविष्णु अत्यन्त दयालु हैं। वे अकारण ही जीवोंपर करुणा-दृष्टि करते रहते हैं। उनकी शरणमे जानेपर तो परम कल्याण हो ही जाता है। जा भक्त भगवान्के नामाका कीर्तन स्मरण, उनका दर्शन वन्दन, गुणाका श्रवण और उनका पूजन करता है, वे भगवान् उस भक्तके सभी पाप-तापोको विनष्ट कर देते हैं।

भगवान् विष्णु अपरिमित गुणाके आकर हैं तथा मूर्तिमान् सद्गुण हैं तथापि उनके अनन्त गुणोमे भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। चतुर्विध भक्त जिस भावनासे उनकी शरण ग्रहण करते हैं जिस कामनासे उनका भजन करते हैं वे उनकी उस-उस कामना-भावनाको अवश्य पूर्ण करते हैं। ध्रुव गजराज, द्रौपदी आदि अनेक भक्ताकी रक्षा उन्होंने की।

भक्तवत्सल भगवान्को भक्ताका कल्याण करनेमें यदि विलम्ब हो जाय तो भगवान् उसे अपनी भूल मानते हैं और उसके लिये उससे क्षमा-याचना करते हैं। उसकी रक्षा करते हैं, क्योंकि उनका नाम लेनेपर भी भक्तको यातनाएँ सहनी पडी थीं। धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता।

भक्त प्रह्लादका चरित्र भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलताका अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके मत्स्य कूर्म वराह, वामन श्रीराम, कृष्णादि अवताराम अनेक आख्यान आये हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि भगवान् जीवाके कल्याणके लिये ही अनेक रूप धारण करते हैं।

वेदामे अनेक प्रकारसे इन्हीं भगवान् विष्णुकी अनन्त महिमाका गान किया गया है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्न परमन्तमाप।'

(ऋक्० ७। ९९। २)

'हे विष्णुदेव! कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न हुआ है और न होनेवाला है जिसने आपकी महिमाका अन्त पाया हो।'

वैदिक पुरुष-सूक्तमे जिस परमात्मतत्त्वका निरूपण किया गया है वह विष्णुतत्त्व ही है। श्रुतिसार-सर्वस्व भक्तवाञ्छाकल्पद्रुम भगवान् श्रीहरिकी महिमाका सभी शास्त्राम गान हुआ है—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते॥

(हरिवंशपु० ३। १३२। ९५)

इसीलिये भगवान् नारायण ही परम ध्येय हैं परम

उपास्य हैं और ये ही समस्त शास्त्राके सारतत्त्व भी हैं।

भगवान् विष्णुके स्वरूप-ध्यानकी विलक्षणता

जा शख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित, पीताम्बरसे सुशोभित, सुन्दर कमलाके समान नेत्रोवाले, वनमाला तथा कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले, श्री एव भूदेवियाके साथ नित्य रहनेवाले शेषशायी नारायणका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।

यस्त विश्वमनाद्यन्तमाद्य स्वात्मनि सस्थितम्।
सर्वज्ञममल विष्णु सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

(नरसिहपु० १६। १७)

'जो सदा उन विश्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण स्वरूपनिष्ठ, अमल एव सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता हे।'

यद्यपि भगवान्‌की रूप-माधुरी और उनका वैभव अपार है—वर्णनातीत है, तथापि वाल्मीकि, व्यासादि महर्षियोने जो उनकी रूप-माधुरीका आस्वाद कराया है, वह अत्यन्त विलक्षण है। श्रीमद्भागवतमे देवर्षि नारदद्वारा ध्रुवके लिये निरूपित भगवत्स्वरूप बडा ही सुन्दर है—

विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दपर प्रसन्नता झलक रही है। उनके वदन और नयनोसे आनन्द छलक रहा है। उनकी नासिका मनोरम है, भ्रू-युगल कमनीय हैं, कपोलयुगल रुचिर हैं। वे तो कामदेवादिसे भी अधिक सुन्दर हैं। वयमे वे तरुण हैं, नित्यकिशोर जा ठहरे। उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग रमणीय हैं। हाठ उनके गुलाबी हैं और अपाङ्गो (नेत्रोके काना)-मे किचित् अरुण आभा दृष्टिगत हो रही है। प्रपन्नजनके लिये परम आश्रय हैं। वे 'नृम्ण' अर्थात् स्वजनाके परमोत्तम धन हैं चिन्तामणिके समान समस्त अभिलाषाआके पूरक हैं। शरणागताके रक्षक एव करुणा-वरुणालय हैं। उनके वक्ष स्थलके दक्षिण भागम श्रीवत्स अर्थात् भृगु-पदका चिह्न सुशोभित है। व घनश्याम हैं तथा समस्त प्रपञ्चमें अपनी अतर्क्य-शक्तिके प्रभावसे व्याप्त हैं। गलेम वे आजानुलम्बिनी वनमाला धारण किय हुए हैं, जिसम समस्त ऋतुआके सुन्दर सुगन्धित पुष्प ग्रथित हैं और मध्यमे कदम्ब-कुसुम भी लगा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ हैं और वे अपने चारा कर-कमलामे क्रमश पाञ्चजन्य शख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा और एक लीला-पद्म धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकके ऊपर किरीट-मुकुटके रत्नोकी किरणावली छिटक रही है ओर कानामे मकराकृत कुण्डल चमक रहे हैं। बाहुओम केयूर और मणिबन्धा (कलाइया)-में रत्न-खचित कङ्कण विराज रह है। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ नामक रत्नकी भी शोभाको वढा रही है। कोमल-मञ्जुल पीताम्बर धारण किये हुए ह उत्तरीय भी पीताम्बरका ही है। कटितटपर कलित काञ्चीकी छटा अतिशय कमनीय है। चरण-कमलाम सुवर्णमय मणिजटित नूपुर मुखरित हो रहे हैं। कहाँतक कह त्रिलोकीम जितने भी दर्शनीय हैं उन सबसे अधिक आकर्षक हैं वे। इतने आकर्षक हानेपर भी उनम वडी शान्ति है। अतएव उन्हे एक बार देख लेनेपर दर्शकक मन और नयनोमे पुन -पुन उनका दर्शन करते रहनेकी प्यास-सी बनी रहती है। जो उनका आराधन करते हैं, उनके हृदयकमलकी कर्णिकापर वे (विष्णुभगवान्) अपनी नखमणियासे सुशोभित चरण-कमलोकी स्थापना करके स्वय भी उनके अन्त करणमे निवास करने लगते है। व जब कृपा करक भक्तकी ओर निहारते हैं, तब उनक अधरपर स्मित और नयनाम अनुराग भरा रहता है।

इसी प्रकार भगवान्‌की एक मनारम झाँकीके दिव्य दर्शन उस समय अर्जुनको होत हैं, जब श्रीकृष्ण उन्ह एक मृत ब्राह्मणके उद्धार करनेके लिये ले चलत है—

ददर्श तद्भोगसुखासन विभु
महानुभाव पुरुषोत्तमोत्तमम्।
सान्द्राम्बुदाभ सुपिशङ्गवासस
प्रसन्नवक्त्र रुचिरायतक्षणम्॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्त्रकुन्तलम् ।
प्रलम्वचार्वष्टभुज सकौस्तुभ
श्रीवत्सलक्ष्म वनमालया वृतम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८९। ५५-५६)

'उन्होने सजल जलदकी-सी नील-कान्ति, सुन्दर पीत-वसन, प्रसन्न-वदन, मनमोहक विशाल नेत्र विशिष्ट मणियोसे जटित किरीट-कुण्डलाकी प्रभासे सुशोभित सहस्रो घुँघराली अलक सुदीर्घ सुन्दर आठ भुजाएँ, शुभ कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्सकी शोभासे युक्त, वनमाला-विभूषित महाप्रभावशाली, विभुस्वरूप पुरुषोत्तमोत्तम श्रीमन्नारायणको शेषनागकी शय्यापर सुखपूर्वक आसीन देखा।'

ऐसे करुणावरुणालय श्रीहरिकी अपने भक्तो-आराधकोपर परम अनुकम्पा रहती है। भगवान्का नाम-स्मरणमात्र ही सब प्रकारके पापोका नाश कर देता है। इतिहास-पुराणोमे इस विषयमे अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। यहाँपर दो-एक आख्यान उदाहरणके लिये सक्षेपमे दिये जा रहे हैं—

भगवान्द्वारा हरि-रूपमे गजेन्द्रका उद्धार

क्षीरोदधिके मध्यमे विशाल द्वीप है। उसपर भगवान् वरुणका 'ऋतुमत्' नामक क्रीडाकानन है। काननमे यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनियो कलभो तथा दूसरे गजोके साथ स्वेच्छापूर्वक घूमते रहते थे। महर्षि अगस्त्यको अभ्युत्थान न देनसे राजा इन्द्रद्युम्न शप्त होकर इस कुञ्जर-योनिमे आये थे। उनके अमित पराक्रमके सम्मुख सिंहादि तुच्छ थे। वे उनके गण्डमण्डलकी मदधाराकी गन्धसे ही दूर भागते।

ग्रीष्म ऋतु, मध्याह्नकाल गजेन्द्रको प्यास लगी। सूँड उठाकर सूँघा। जलकी गन्ध मिली। मार्गके कदली-काननको कुचलते अपने यूथके साथ वे सरोवरतक पहुँचे। कमल-पुष्पोसे भरा स्वच्छ सरोवर गजोकी क्रीडासे क्षुब्ध हो गया। कलभ सूँडोसे जल उछाल रहे थे। गजेन्द्र उन्हे स्नान कराते, अपनी सूँडसे जल पिलाते और स्वय उनके द्वारा स्नात होते। सारा परिवार स्नेहसे उनका सत्कार कर रहा था।

पता नहीं कहाँसे एक मगरने गजेन्द्रका चरण पकड लिया। उन्होने सूँड उठाकर चीत्कार की। बल लगाया। दूसरे हाथियोने उन्हे अपनी सूँडसे सहायता दी हथिनियाँ कभी जलमे कभी बाहर दौडने लगी। कोई सफल न हुआ। गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। उनका भी पराक्रम कम नहीं था। गजेन्द्र बाहर खींचना चाहते और ग्राह भीतर। जल कीचड होने लगा। कमल दल-कीचडसे मलिन हो गये। जलजीव व्याकुल हो गये। सहस्र वर्षोतक यह सघर्ष चलता रहा।

गजेन्द्रका बल थकित हो गया। जलमे जलजीवमे कबतक वे युद्ध करे। अब डूब जायँगे—अब और नहीं टिका जा सकता। शिथिल शरीर खिंचा जा रहा था। सूँडसे एक कमल तोडकर ऊपर उठाया और पुकारकी 'विश्वम्भर! जनार्दन!! नारायण!!!'

भगवान्ने हरिमेधस ऋषिकी पत्नी हरिणीमे अवतार धारण किया था। वे गरुडारूढ प्रभु दौडे। गजेन्द्र उन्हे पुकार रहे थे, ब्रह्मादि देव गजेन्द्रके साथ उनका स्तवन कर रहे थे। चक्र चमका और ग्राह अपने शरीरसे छूटकर पुनः गन्धर्वपद पा गया। गजेन्द्रको प्रभुने अपने हाथो उठाया। वे प्रभुका स्पर्श पाकर उनके दिव्य नित्य पार्षद हो गये।

भक्तश्रेष्ठ ध्रुवके लिये भगवान्का अवतार

वह ध्रुव जो समस्त मार्ग-निर्देशकोका मार्गदर्शक है वह ध्रुव जो चल-नक्षत्रोमे स्थिर है, वह ध्रुव जो शुभ कार्योमे स्मरण किया जाता है, वह ध्रुव जिसकी समस्त नक्षत्रमण्डल परिक्रमा करता है भगवान्के उसी अविचल धामके अधिष्ठाताकी बात है—

मनुके पुत्र महाराज उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचिपर अधिक आकृष्ट थे। बडी रानी सुनीतिके पुत्र ध्रुव पिताकी गोदमे बैठे गये थे। पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने बालकको गोदसे बलात् उतार दिया। 'तुझे पिताकी गोद या पिताका सिंहासन चाहिये तो भगवान्की आराधना करके मेरे उदरसे उत्पन्न हो। इनपर मेरे पुत्र उत्तमका अधिकार है।'

'तुम्हारी विमाताने ठीक ही कहा है। भगवान् ही तुम्हे पिताका सिंहासन या उससे भी श्रेष्ठ पद देनेमे समर्थ हैं।' सुनीतिके नेत्र स्वय क्षोभमे भर आये थे। उनका प्राणप्रिय पुत्र तिरस्कारके कारण हिचकियाँ ले रहा था। वे उसे और कैसे आश्वस्त करे।

'मैं वह पद चाहता हूँ, जिसे मेरे पिता पितामह या और किसीने भी न पाया हो।' पाँच वर्षका बालक ध्रुव घरसे माताके वचनोपर विश्वास करके वनको चल पडा था। मार्गमे देवर्षि नारदने उसे समझाया। लौटानेका प्रयत्न किया। सतोषकी शिक्षा दी। जब कोई बात ध्रुवके हृदयपर न बैठ

सकी, तब वे द्रवित हुए। द्वादशाक्षरकी दीक्षा देकर मधुवन (मथुरा)-म यमुनातटपर जानेका आदेश दे दिया।

ध्रुव बालक सही, पर वह आदियुगकी निष्ठा और विश्वास था। पहले महीने कपित्थ (कैथ) और बेर, दूसर महीने सूखे पत्ते तीसरे महीने जल, चौथे महीन केवल वायु—ये सब भी नित्य नहीं, इनको ग्रहण करनेकी अवधि भी बडी होती गयी। पाँचव महीने तो वह बालक एक चरणसे खडा हो गया। श्वास लेना बद कर दिया। मन्त्रके अधिष्ठाता भगवान् वासुदेवमे उसका चित्त एकाग्र हो गया।

देवता विघ्न पहुँचाते हैं उसे, जो बाहर देखता है। वर्षा, ग्रीष्म, वायु, शीत, सर्प, व्याघ्र या वसन्त और काम उसका क्या करे जो श्वासतक नहीं लेता। जिसे शरीरका पता ही नहीं। देवताओंकी कठिनाई बढती जा रही थी। ध्रुव जगदाधारम एकाग्र होकर श्वासरोध किये हुए थे। देवताओका श्वासरोध स्वत हा रहा था। वे बहुत पीडा पा रहे थे। उन्हाने प्रभुसे प्रार्थना की उस बच्चको तपसे निवृत्त करनकी।

हृदयकी वह ज्योति अन्तर्हित हो गयी। व्याकुल ध्रुवने नेत्र खोले और चकित देखत रहे। वही सुनील, सुमधुर, चतुर्भुज वनमाली, कमललोचन, रत्नकिरीटी बाहर प्रत्यक्ष खडे थे। ध्रुव अज्ञान बालक—उसने हाथ जाडे। सुना था कि भगवान्की स्तुति करनी चाहिये। क्या कहे ? क्या कर ? वह तो कुछ जानता नहीं। उन सर्वज्ञने मन्दस्मितके साथ अपना हाथ बढाया। करस्थ श्रुतिरूप शखसे बालकके कपोलका स्पर्श कर दिया। बालकके मानसम हसवाहिनी जाग्रत् हो गयीं।

ध्रुवको अविचल पदका वरदान मिला था पर वे प्रसन्न नहीं थे। सर्वेश्वरको प्राप्तकर फिर याचना क्या ? उनको ही सदाके लिये प्राप्त किया जा सकता था। महाराज उत्तानपाद तो जबसे ध्रुव वन गये निरन्तर उन्हींका चिन्तन करते थे। अपनी भूल उनके हृदयका शूल बन गयी थी। उन्हाने ध्रुवका स्वागत किया। विमाता इस प्रकार मिलीं, जैसे ध्रुव उनके ही पुत्र हों। जिसपर विश्वेश प्रसन्न हो उसपर सभी प्रसन्न रहते हैं। पिताने ध्रुवको सिहासनपर अभिषिक्त किया और स्वय वानप्रस्थ स्वीकार करके तप करने चल गये।

ध्रुव नरश हुए। उनके छोट भाई उत्तम आखेट-हतु वनम गये थे। कुबरके किसी अनुचरने उनको मार डाला। उत्तमकी माता पुत्रशोकसे वनम गयी और दावाग्निमे जल गयीं। ध्रुवने कुबेरपर भ्रातृवधसे क्रुद्ध होकर चढाई की। बहुत-से यक्ष मारे गये। पितामह मनुने ध्रुवको शान्त किया। क्राध शान्त होनेपर कुबेरन दर्शन दकर आश्वस्त किया वरदान दिया।

ससारमे प्रारब्ध शेष हो गया। दिव्य विमान आया ध्रुवका लेने। विप्राक मङ्गलपाठके मध्य ध्रुव विमानाराहण करन जा रहे थे। 'मर्त्यलोकके प्रत्येक प्राणीका म स्पर्श करता हूँ।' मृत्युने प्रार्थना की। प्रार्थनासे अधिककी शक्ति थी नहीं। ध्रुव हँसे, 'तुम्हे मेरा स्पर्श प्राप्त हा।' मृत्युके मस्तकपर पैर रखकर विमानमे बैठ गये वे। मार्गमे अपनी माताका उन्ह स्मरण हुआ। भला, कहीं एसे पुत्रकी माता मर्त्यलोकम रहेगी। व ध्रुवसे आग जा रही थीं।

वह अविचल धाम ध्रुवको प्राप्त हुआ। ध्रुव वहाँ अब भी भगवान्की उपासना करते हैं। उत्तर दिशाम एक ही स्थानपर स्थित वही ज्योतिर्मय ध्रुव-धाम है, जा रात्रिम निर्मल गगनम दीख पडता है।

अजामिलपर कृपा

अजामिल एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलम उत्पन्न हुआ था। वह अनेक अलोकिक गुणास सम्पन्न था। शील, सदाचार विनम्रता, सत्यता, पवित्रता—य सभी गुण उसम सहज ही विद्यमान थे। उसन शास्त्राका साङ्गापाङ्ग अध्ययन किया था। गुरुजन एव अतिथियाकी सवाम वह कभी त्रुटि नहीं करता था। उसकी वाणीम सयम था। गुणज्ञ हाकर भी अहकाररहित होना बहुत कठिन है परतु उस ता अहकार छू भी नहीं पाया था।

उसके पिता नित्य यज्ञ किया करत थ। उनक लिय वनस फल-फूल समिधा कुश आदि हवन-पूजनकी समग्र सामग्री वही लाता था। एक दिन वह यज्ञ-सामग्री लकर वनसे लौट रहा था। सयागवश उसकी दृष्टि एक युवकपर पडी जा शृङ्गारचष्टाआक द्वारा एक वश्याके साथ आनन्दित हो रहा था। उन दोनाको इस उन्मत्तावस्थाम दखकर अजामिलने अपन मनका बहुत राकना चाहा परतु कुसग उसपर अपना प्रबल प्रभाव डाल चुका था। वह बार-बार उस दृश्यका दख-दखकर आनन्दित हान लगा। सच है

कुसगने किसका विनाश नहीं किया।

अजामिल मोहाच्छन्न हो चुका था, उसका विवेक कुण्ठित हो गया। वह उस वेश्याके पास जा पहुँचा। अब तो वेश्याकी प्रसन्नता ही अजामिलकी प्रसन्नता थी। वह प्रसन्न रहे इसक लिये अजामिल अपना घर-बार लुटाने लगा। उस कुलटाकी कुचेष्टाओसे प्रभावित हो वह अपनी विवाहिता पत्नीको भी भूल गया एव उसका परित्याग करके उस वेश्याके घर ही रहने लगा। अब वेश्याके पूरे कुटुम्बके भरण-पोषणका सारा भार अजामिलपर ही था। कुसगके दुष्परिणामस्वरूप सदाचारी एव शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मपालक अजामिल आज एक कुलटाके कुटुम्ब-पालनके लिये न्यायसे-अन्यायसे जिस किसी प्रकार भी धन अर्जित करके लाता। बहुत दिनोतक अपवित्र अन्न खाने तथा उस कुलटाका ससर्ग करनेसे अजामिलकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अब वह धन सचित करनक लिये कभी यात्रियोको बाँधकर उन्हे लूट लेता, कभी लोगोको जुएमे छलसे हरा देता कभी किसीका धन चुरा लेता। दूसरे प्राणियोको सतानेमे अब उसे तनिक भी हिचक नहीं थी। इसी प्रकार पाप कमाते-कमाते अजामिल बूढा हो गया। उस वेश्यासे उसकी दस सतानें हुईं। उसके सबसे छोट पुत्रका नाम था 'नारायण'। वृद्ध अजामिल उसे बहुत प्यार करता था। अब वह अधिक समय उस बच्चेको खिलानेमे ही लगाता था। उसक प्रति उसका प्रगाढ ममत्व था।

मृत्यु किसको छोडती है? अजामिलकी मृत्युका समय भी आया। हाथाम फद लिये डरावने यमदूत उसे लेने पहुँच गये। उन भयकर यमदूताको देखकर उसने उच्च स्वरसे अपन प्रिय पुत्र नारायणको पुकारा—'नारायण! नारायण!!' उसके प्राण प्रयाण कर रह थे।

'नारायण' नामका उच्चारण सुनत हा भगवान् विष्णुके पार्षद तत्काल अजामिलके पास पहुँच गये और उन्होने यत्नपूर्वक अजामिलको उन यमदूताक पाशमे मुक्त करा दिया। यमदूताने बहुत कुछ कहा परतु कृपासिन्धुकी कृपा अजामिलपर माना बरस गया थी। विष्णुपार्षदाने कहा—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सकीर्तितमघ पुसा दहेदेधा यथानल ॥

(श्रीमद्भा० ६। २। ८ १८)

'जिस समय इसन 'ना-रा-य-ण'— इन चार अक्षराका उच्चारण किया, उसी समय (केवल उतनसे ही) इस पापीक समस्त पापाका प्रायश्चित्त हा गया। यमदूतो! जसे जान या अनजानमे ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानम भगवान्के नामोका सकीर्तन करनेमे मनुष्यके सार पाप भस्म हो जाते हैं।'

भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम एक अमोघ साधन है। पापी दुरात्मा अजामिलने 'नारायण' नामके उच्चारणमात्रस भगवत्कृपाका अनुभवकर कालान्तरम विष्णुलाक प्राप्त किया।

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

प्राचीन समयम पुरुषात्तमपुरीम एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था भद्रतनु। वह दखनम सुन्दर था आर पवित्र कुलमे उत्पन्न हुआ था। माता-पिता उस बचपनम ही अनाथ करके परलोक चल बसे थे। काई सरक्षक न हानेसे भद्रतनु युवावस्थाम कुसगम पड गया। भद्रतनु कुसगक प्रभावसे स्वाध्याय, सयम, नित्यकर्म आदिस विमुख हो गया। सत्य अतिथि-सत्कार एव उपासनादि सब उसक छूट गय। वह धर्मका निन्दक हो गया, सदा परधन तथा परस्त्रीको पानेकी घातम रहने लगा। भोगासक्त और काम क्रोध-परायण हा गया। जुआ चारी, मदिरापान प्रभृति दोष उसमे आ गये।

नगरक पास ही सुमध्या नामकी एक सुन्दरी वेश्या रहती थी। बुरे सगम पडकर उसका भी पतन हा गया था किंतु इस वृत्तिसे उसे बहुत घृणा था। वह अपनी स्थितिपर सदा दुखी रहती पछताती। उसके हृदयम धर्मका भय था परलोकपर विश्वास था ईश्वरपर आस्था था। अपने उद्धारक लिये वह भगवान्से सदा प्रार्थना करती रहती था।

भद्रतनुका सुमध्यापर वासनामय प्रम था पर सुमध्या उससे सचमुच प्रम करती थी। उसने भद्रतनुका अनेक बार समझाना चाहा। जुआ-शराब आदिके भयकर परिणाम बतलाकर उस दाषमुक्त करनेक प्रयत्नमें वह लगी रहता थी।

इस ब्राह्मण-युवकके पतनसे उसे बडा दुःख होता था।

एक दिन भद्रतनुके पिताका श्राद्ध-दिवस आया। श्रद्धा न होनेपर भी लोक-निन्दाके भयसे उसने श्राद्धकर्म किया, किंतु उसका चित्त सुमध्यामें लगा रहा। श्राद्धकर्मसे छुटकारा पाकर वह वेश्याके यहाँ पहुँच गया। सुमध्या ब्राह्मण-कुमारकी मूर्खतापर हँसने लगी। उसे भद्रतनुपर क्रोध आ गया। उसने कहा—'अरे ब्राह्मण! धिक्कार है तुझे। तेरे-जैसे

पुत्रके होनेसे अच्छा था कि तेरे पिता पुत्रहीन ही रहते। आज तेरे पिताका श्राद्ध-दिन है और तू निर्लज्ज होकर एक वेश्याके यहाँ आया है। मेरे इस शरीरमें हड्डी, मास, रक्त, मज्जा, मेद, मल, मूत्र आदिके अतिरिक्त और क्या है? ऐसे घृणित शरीरमें तूने क्या सौन्दर्य मान लिया है? मैं तो वेश्या हूँ, अधम हूँ, मुझपर आसक्त होनेमें तो तेरी अधोगति ही होनी है। यही आसक्ति यदि तेरी भगवान्में होती तो पता नहीं अबतक तू कितनी ऊँची स्थितिको पा लेता। जीवनका क्या ठिकाना है, मृत्यु तो सिरपर ही खडी है। कच्चे घडेके समान काल कभी भी जीवनको नष्ट कर देगा। तू ऐसे अल्पजीवनमें क्या पापमें लगा है? विचार कर। मनको मुझसे हटाकर भगवान्में लगा। भगवान् बडे दयालु हैं वे तुझे अवश्य अपना लेंगे।'

सुमध्याके वचनोंका भद्रतनुपर बहुत प्रभाव पडा। वह सोचने लगा—'सचमुच मैं कितना मूर्ख हूँ, एक वेश्यामें जितना ज्ञान है उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है। ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर भी मैं पाप करनेमें ही लगा रहा। जब मृत्यु निश्चित है और मृत्युके पश्चात् पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके पास जाना भी निश्चित ही है तब क्या मैं और पाप करूँ? मैंने तो जप-तप, अध्ययन, पूजन हवन-तर्पण आदि कोई सत्कर्म किये नहीं। मुझसे भगवान्की उपासना भी नहीं हुई अब मेरी क्या गति होगी? कैसे मेरा पापोंसे छुटकारा होगा।' इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ वह सुमध्याको पूज्यभावसे प्रणाम करके लौट आया। सुमध्याने भी उसी समयसे वेश्यावृत्ति छोड दी और वह भगवान्के भजनमें लग गयी।

भद्रतनु पश्चात्ताप करता हुआ मार्कण्डेय मुनिके समीप गया। वह उनके चरणोंपर गिर पडा और फूट-फूटकर रोने लगा। मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर उससे बडे स्नेहसे कहा—'तुम्हारी बुद्धि पापसे अलग हुई यह तुमपर भगवान्की कृपा है। जो पहले पापी रहा हो पर पापप्रवृत्ति छोडकर भगवान्के भजनका निश्चय कर ले तो वह भगवान्का प्रिय पात्र है, भगवान् ही उसे पापसे दूर होनेकी सद्बुद्धि देते हैं। तुमने अनेक जन्मोंमें भगवान्की पूजा की है अतः तुम्हारा कल्याण शीघ्र होगा। मैं इस समय एक अनुष्ठानमें लगा हूँ, अतः तुम दान्तमुनिके पास जाओ। वे सर्वज्ञ महात्मा तुम्हें उपदेश करेंगे।'

भद्रतनु वहाँसे दान्तमुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी महापापी हूँ। मैंने सदा पाप ही किये हैं। आप सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं। कृपया मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका उपदेश कीजिये।'

दान्तमुनिने कृपापूर्ण स्वरमें कहा—'भाई! भगवान्की कृपासे ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। मैं तुम्हें वह उपाय बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य सहज ही भव-बन्धनसे छूट जाता है।' तुम पाखण्ड तथा काम क्रोध लोभादिका पूर्णतः परित्यागकर निरन्तर स्थिरचित्त हो 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र ही भगवद्दर्शन होंगे।

दान्तमुनिसे उपदिष्ट होकर भद्रतनु एकान्तमें जाकर मन लगाकर श्रद्धापूर्वक निष्ठासे भगवान्का भजन तथा मन्त्र-जप करने लगा। भगवान्की अनन्य भक्तिसे भद्रतनुका हृदय शुद्ध

हो गया। अत उसपर कृपा करनेके लिये उसके सम्मुख दयामय प्रभु श्रीविष्णु प्रकट हो गये।

भगवान्का दर्शन करके भद्रतनुको बडा आनन्द हुआ, वह गद्गदस्वरसे विविध भावापन्नरूपमें स्तुति करने लगा तथा भगवान्की महिमाका बहुत देरतक गुणानुवाद करता रहा और अन्ततक भगवान्की कृपाका अनुभव करके भद्रतनु विह्वल होकर उनके चरणोंमें पडा रहा। भगवान्ने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्का दर्शन करते ही भद्रतनुकी मुक्तिकी इच्छा दूर हो गयी थी। वह तो भक्तिका भूखा हो उठा था। उसने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया फिर भी मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ। आपके चरणोंमें जन्म-जन्म मेरा अनुराग अविचल रहे।'

जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो।

(पद्मपुराण क्रियायोग० १७।११)

भगवान्ने उसे 'सख्य-भक्ति' प्रदान की। उसके अनुरोधपर उसके गुरु दान्तमुनिको भी भगवान्ने दर्शन दिये। दान्तमुनिने भी भगवान्से भक्तिका ही वरदान माँगा। गुरु-शिष्य दोनोंको कृतार्थ करके भगवान् अन्तर्धान हो गये। भक्तिमय जीवन बिताकर अन्तमें गुरु दान्तमुनि और शिष्य भद्रतनु दोनों ही भगवान्के परमधामको प्राप्त हुए।

भगवान्के सगुण स्वरूप और अवतार-लीलाएँ

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एव प्रलयका अहेतु-हेतु वह परमात्मा विश्व-ब्रह्माण्डके कल्याणार्थ लीलापूर्वक अनेक भावमय नित्य आनन्दघन रूपोंको धारणकर नित्य लीला करता है। उसके इन सगुण, साकार, चिन्मय रूपोंके ध्यान-स्मरण, नाम-जप लीला-चिन्तनसे मानव-हृदय शुद्ध हो जाता है। मनुष्य इन रूपोंमेंसे किसीको नैष्ठिकरूपसे हृदयमें विराजमान करके ससार-सागरसे पार हो जाता है।

सगुण-साकार प्रभुके ये रूप नित्य सर्वेश्वर तथा अवताररूप दोनों प्रकारके हैं। सृष्टि, स्थिति प्रलयके लिये ब्रह्मा विष्णु, महेशरूपसे वे उपासित होते हैं। उनके साथ उनकी अभिन्न शक्तियाँ होती ही हैं। वे ही सूर्य और गणेश-रूपसे भक्तोंद्वारा सेवित होते हैं। पञ्चदेवोपासनामें गणेश, शिव शक्ति, सूर्य और विष्णु उन्हींके रूप हैं।

जगत्में धर्मकी स्थापना ज्ञानके सरक्षण भक्तोंके परित्राण तथा आततायी असुरोंके दलनके लिये एव प्रेमी भक्तोंकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये वे प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। उनके ये अवताररूप दिव्य सच्चिदानन्दघन हैं और उनकी ये अवतार-लीलाएँ परम मङ्गलमयी हैं।

अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा।

सत्त्वमूर्ति भगवान्के अवतारोंकी कोई सख्या नहीं। १-मत्स्य २-कच्छप ३-वराह ४-नृसिंह ५-वामन ६-परशुराम ७-श्रीराम ८-बलराम ९-बुद्ध और १०-कल्कि—इन दशावतारोंको शास्त्रोंने युगावतारोंके रूप माना है। इनके अतिरिक्त ११-श्रीकृष्णको अवतार पूर्णावतार कहा जाता है। उसका कोई निश्चित समय नहीं। पिछले अट्ठाईसवें द्वापरमें यह अवतार हुआ था। १२-नर-नारायण १३-सनकादि १४-कपिल, १५-दत्तात्रेय १६-यज्ञ, १७-ऋषभ, १८-हस १९-धन्वन्तरि, २०-हयग्रीव २१-व्यास—भगवान्के ये अवतार विशेष ज्ञान-परम्पराकी रक्षा, प्रसार तथा उसके आदर्श-स्थापनके लिये हुए। २२-पृथुरूपमें भगवान् लोक-व्यवस्थाके सञ्चालनके लिये पधारे। २३-ध्रुवके लिये और २४-गजेन्द्रके लिये भगवान्का अवतार हुआ। इनके अतिरिक्त असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्ने मोहिनीरूप धारण किया था।

हिंदू-शास्त्रोंने ही इस सगुण तत्त्वके रहस्यको समझा और स्वीकार किया। मूर्तिपूजा विश्वके प्रत्येक भागमें प्रत्येक प्राचीन जातिमें प्रचलित थी और मानव-स्वभाव मूर्तिपूजक होनेसे किसी-न-किसी रूपमें मनुष्यमात्रमें उसकी मान्यता रहेगी ही। परतु मनुष्यको यह स्वभाव उस दयामयने क्यों प्रदान किया? इसका उत्तर श्रुति एव महर्षि ही दे सके। वह स्वय सगुण-साकार है। उसके दिव्यरूपमें हमारी अनुरक्ति हो तो हम समस्त कष्टोंसे परित्राण पा जायँ। अवतार-रहस्य तो पुराणोंमें भरे पडे हैं। यहाँ केवल भगवान्के नित्य दिव्य रूपों एव चरितोंका अत्यन्त सक्षिप्त

स्मरण मात्र करना है।

[१]

श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमे लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाल 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोके रूपम अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमे तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एव नित्य-विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानस-पुत्र सनकादिके मनमे कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्राय आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममे पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुजरूपम रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढीके आगे बढ ही रहे थे कि भगवान्‌के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोकी हँसी उडाते हुए उन्हे आगे बढनेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमे व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हे दैत्यकुलम जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एव अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका सवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्‌की अद्भुत अलौकिक एव दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शनकर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमे आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिद पुरुहूत रूप
तेनेश निर्वृतिमवापुरल दृशो न ।
तस्मा इद भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मना दुरुदयो भगवान् प्रतीत ॥

(श्रीमद्भा० ३। १५। ५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नत्रोको बडा ही सुख मिला है, विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषाके लिय इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हे और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणाकी पवित्र चरण-रजको में अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्‌ने अत्यन्त मधुर वाणीम कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आप लागाका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हे दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले सरलता एव करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोने श्रीभगवान्‌की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरम कहा—

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालोको आप जैसा उचित समझ वैसा दण्ड द, अथवा पुरस्काररूपम इनका वृत्ति बढा द—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत है। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचराको शाप दिया है इसके लिये हमे ही उचित दण्ड द। हम वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ ह।' श्रीभगवान्‌ने उन्हे सतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा करके उनका गुणगान करत हुए वे चारा कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोतक क्रमश हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परम तेजस्वी सनकादि आकाश-मार्गसे भगवान्‌के अशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे तब उन्हाने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिडका और उन्हे सुवर्णके सिहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरित कि मे मङ्गल मङ्गलायना ।
यस्य वो दर्शन ह्यासीद्दुर्दर्शाना च योगिभि ॥
नैव लक्षयते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृश सर्व आत्मान येऽस्य हेतव ॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ७९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियाको भी

दुर्लभ हैं, मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वत आपका दर्शन प्राप्त हुआ। इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं दख सकते, इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोमे विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदह कृतविश्रम्भ सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेम केनाञ्जसा भवेत्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। १५)

'आप ससारानलसे सतप्त जीवोके परम सुहृद् हैं इसलिय आपम विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस ससारमे मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यान सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्ग तमस्तीव्र तितीरिषु ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशा
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत् त्व हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रि
कृत्वोडुप व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ३३-३४ ४०)

'धन और इन्द्रियोंके विषयोका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है, क्योकि इनकी चिन्तासे यह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिस अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह धर्म अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमे बड़ी बाधक है।'

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे सकुल इस ससार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोसे पार करना चाहते हैं उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है क्योकि उन्हे कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अत तुम तो भगवान्के आराधनीय चरणकमलोको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दु ख-समुद्रको पार कर लो।'

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुन उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्ने अपने इस अवतारमे उन्हे यथोचित उपदेश दिया जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमे उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा 'हरि शरणम्' मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, साख्यज्ञान-विशारद धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमे सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासम चक्षुर्नास्ति सत्यसम तप ।
नास्ति रागसम दु ख नास्ति त्यागसम सुखम्॥
निवृत्ति कर्मण पापात् सतत पुण्यशीलता।
सद्वृत्ति समुदाचार श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महाभारत शान्ति० ३२९। ६ ७)

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दु ख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना श्रेष्ठ पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण)-का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाक्षी लीला-वपुधारी इन कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोमे अनन्त प्रणाम।

[२]

भगवान् वाराह

'भगवन्! हमारे लिये स्थान निर्देश करें।' स्वायम्भुव मनुने स्रष्टासे प्रार्थना की। चारो ओर महाप्रलयका समुद्र

तरंगे ले रहा था। लोकमूल कमलपर ब्रह्माजीने मानसिक सृष्टि व्यक्त कर ली। मनुको सृष्टिकी आज्ञा हुई। मानव-सृष्टिके लिये स्थूल स्थान चाहिये। पृथ्वी तो जलमें डूब गयी थी।

'वे सर्वेश्वर ही इसका उद्धार करें।' भगवान् ब्रह्माने देखा कि रसा (पृथ्वी) तो रसातलमें है। वे ध्यानस्थ हो गये। सहसा छींक आयी। अङ्गुष्ठके बराबर एक उज्ज्वल वाराह शिशु नासिकासे निकलकर आकाशमें स्थित हो गया।

'यह क्या है?' ऋषियोंके साथ ब्रह्माजी साश्चर्य देख रहे थे। वाराह क्षणभरमें हाथीके बराबर हो गया। वह बढ़ता जा रहा था। एक घनगर्जन-सी घुरघुराहट हुई। वाराहने सटाएँ हिलायीं और समुद्रमें प्रविष्ट हो गये।

× × ×

'आपको विष्णुका कुछ पता है?' जैसे काला पर्वत हो। सोनेकी भारी गदा लिये वह दितिका पीली आँखोंवाला छोटा पुत्र हिरण्याक्ष देवर्षि नारदसे पूछ रहा था। उसने वरुणदेवको युद्धके लिये ललकारा था। देवता उसकी हुँकार सुनकर स्वर्गसे भाग गये थे। समुद्र उसकी क्रीडासे चीत्कार कर उठा था। उसे कोई चाहिये जिससे वह लडे। उसका बल किसी योद्धाको चाहता था। युद्ध किये बिना उसे शान्ति नहीं थी। वरुणने भी कह दिया था कि वे वृद्ध हो गये हैं। उन्होंने ही उसे विष्णुभगवान्के पास भेजा था।

'वे अभी श्वेत वाराहरूप धारण करके इसी समुद्रमें सीधे नीचे जा रहे हैं। तुम शीघ्रता करो तो पकड़ लोगे।' देवर्षिने दैत्यको देखा। भगवान्के पार्षद जय और विजयने सनकादिकुमारोंको वैकुण्ठ-प्रवेशके समय रोक दिया था। ऋषियोंने शाप दे दिया उन्हें असुर होनेका। अब वे दितिके गर्भसे प्रकट हुए हैं। उनमें एक तो यही है। देवर्षिको दया आयी। भगवान्के हाथसे मरकर यह दूसरा जन्म ले। तीन ही जन्ममें तो फिर अपने रूपको पा लेगा। इन जन्मोंसे जितनी जल्दी छूटे, उतना अच्छा।

'अरे! इसे कहाँ ले जाता है? यह तो स्रष्टाने हम रसातलवासियोंके लिये भेजी है।' दैत्य पाताल पहुँचा। भगवान् वाराहने पृथ्वीको अपने दाँतोंपर उठा लिया था। दैत्यको तो विवाद करना था, पर भगवान्ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वे पृथ्वीको लेकर चले। दैत्य पीछे-पीछे दौड़ा। 'तू इसे छोड दे, नहीं तो मारा जायगा।'

'अच्छा, अब तू अपने मनकी कर ले!' दैत्य पीछे दौड़ आया। भगवान्ने पृथ्वीको ऊपर स्थापित करके उसे ललकारा। दोनोंमें घोर संग्राम हुआ। अन्तमें दैत्य मारा गया। यह श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि पृथ्वीकी उसी पुनः प्रतिष्ठाके समयसे प्रारम्भ हुई है।

[३]

देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजी श्रीभगवान्के मनके अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

श्रीमद्भागवत (१। ३। ८)-में कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

'ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारद-पञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया, उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है इसका वर्णन है।'

परम तपस्वी और ब्राह्मतेजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी देवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन दिव्य शुभ्र और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदोंके ज्ञाता देवताओंद्वारा पूजित पूर्वकल्पोंकी बातोंके जानकार, महाबुद्धिमान् और असंख्य सद्गुणोंसे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झंकृतिके साथ दयामय भगवान्के मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमय नाम और गुणोंका गान करते हुए लोक लोकान्तरोंमें विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषोंके हितके लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

एव तपकी सस्कृति है। भगवान् स्वय उसका आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। जहाँ पृथ्वीमे देश-भेदसे आराध्यरूपके भेदका विधान शास्त्रोने किया है, वहाँ तपोभूमि भारतके आराध्य भगवान् नर-नारायण ही कहे गये है।

[५]

भगवान् कपिल

'पुत्र! सृष्टिका अभिवर्द्धन करो। यही मेरी और श्रीहरिकी सेवा है।' भगवान् ब्रह्माको एक ही धुन है। वे स्रष्टा हैं। अपने सभी पुत्रोको उनका एक ही आदेश है। कुमाराकी भाँति महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा अस्वीकार नहीं की। वे उसे स्वीकार करके बिन्दुसर तीर्थके समीप तप करने लगे। उस समय तप ही समस्त उद्देश्योका दाता था। आजकी भाँति कीटप्राय प्राणी उत्पन्न करना किसीको अभीष्ट नहीं था। भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होने वरदान दिया। आदिराज मनु स्वय आश्रममे पधारे और अपनी पुत्री दवहूतिका महर्षिस परिणय कर गय।

'कल्याणि! तुमने मेरी सेवाम अपनेको सुखा दिया। अब तुम्ह जो अभीष्ट हो माँग लो।' महर्षि कर्दमने भोग-बुद्धिसे विवाह किया ही न था। विवाहके पश्चात् वे अपने तपमे लग गये। राजकुमारी देवहूति उनकी परिचर्यामे लगीं। समिधाएँ, कुश, फल तथा जल वनसे सग्रह करना आश्रम स्वच्छ रखना—ये सब उनके कार्य हो गये। एक दिन महर्षिका ध्यान पत्नीकी सेवापर गया। श्रम और कष्टसे वे दुर्बल हो गयी थीं। मस्तकके सुगन्ध-सिंचित केश कहाँ थे, वे तो अब जटा बन चुके थे। केवल वल्कलधारिणी तापसी थीं वे। महर्षि प्रसन हुए।

देवहूतिको सततिकी कामना थी। महर्षि कर्दमका याग-प्रभाव प्रकट हुआ। दिव्य विमान सहस्रो दास-दासियाँ रत्नोपकरण—सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य थे विमानम। महर्षिने दवहूतिक साथ विमानाराहण किया। गार्हस्थ्यम यर्षों व्यतीत हा गये। नौ पुत्रियाँ हुईं। उनम कलाका मरीचि ऋषिसे अनसूयाका अत्रिसे श्रद्धाका अङ्गिरास हविर्भूका पुलस्त्यसे गतिका पुलहसे युक्तिका क्रतुसे ख्यातिका भृगुसे अरुन्धतीका वसिष्ठस और शान्तिका अथर्वास महर्षि कदमन विवाह कर दिया।

'देव! मैं इन्द्रियोके विषयम मूढ बनी रही। मैंन आपके परम प्रभावको नहीं जाना, फिर भी आप-जैसे महापुरुषका सग कल्याणकारी होना चाहिये।' देवहूति अत्यन्त व्याकुल हो रही थीं। उनके पति पुन विरक्त होकर वनम जा रह थ। इस बार व अकल जायँगे। विषयोंमें लगकर ता यह जीवन व्यर्थ चला गया। उनम वैराग्यका पूर्णोदय हुआ। उस देवदुर्लभ विमान तथा उसके एश्वर्यम उनका कोई आकर्पण नहीं था।

'भद्रे! व्याकुल मत हो। तुम्हारे गर्भसे परम पुरुप प्रकट होनेवाले हैं। वे तुम्ह तत्त्वज्ञानका उपदेश करेगे। मैं उनके दर्शन करके ही यहाँसे जाऊँगा।' महर्षिको उन सर्वेशके दर्शन हुए। वे आदेश लेकर तप करने गये। भगवान् कपिलने माताको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उनकी जिज्ञासाका समाधान करके वे उनकी आज्ञासे समुद्र-तटपर गये। समुद्रने उन्ह अपने भीतर स्थान दिया। माता देवहूति उन परात्पर प्रभुका पुत्ररूपम प्राप्तकर धन्य हो गयीं। उन्होने उस उपदिष्ट ज्ञानम चित्तको एकाग्र कर दिया। कुछ दिन दूसराके द्वारा उनका शरीर सेवित रक्षित होता रहा और कब वह वेणीकुसुमके समान गिर गया—इसका पता देवहूतिजीको लगा ही नहीं।

साठ सहस्र सगर-पुत्र अश्वान्वेषणके लिये पृथ्वी खोदत समय कपिलाश्रम पहुँचे और महर्षि कपिलकी नत्राग्निम भस्म हो गये। गङ्गासागर-सगमपर पर्वोत्सवाम कपिलाश्रमक दर्शन ता हो जाते हैं, किंतु महर्षि कपिलका दर्शन तो उस ही हो सकता है, जिस अधिकारीपर वे कृपा कर। वे साख्य-दशनक प्रवर्तक ज्ञान-मार्गके परमाचार्य प्रभु जगत्के कल्याणके लिये वहाँ तपम स्थित हैं।

[६]

भगवान् दत्तात्रेय

'जगत्क अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हा! मुझ व अपन समान सतति प्रदान कर।' महर्षि अत्रि तप कर रह थे। उनक मनम कवल पितामहकी सृष्टि वर्द्धित करनेका आदश था।

'मैंने एक ही जगदाधारकी आराधना की है।' महर्षिका आश्चय हुआ। उनक सम्मुख वृपभारूढ कपूर-गौर भगवान् शशाङ्कशेखर, हसपर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् चतुरानन

और गरुडकी पीठपर शख, चक्र, गदा, पद्मधारी मेघसुन्दर श्रीरमानाथ एक साथ प्रकट हुए थे। जगत्‌के तो तीनो ही अधिष्ठाता हैं। प्रभु त्रिमूर्तिमे ही जगत्‌का विनाश, सृष्टि और पालन करते हैं। महर्षिने तीनोकी पूजा की। तीनोंकी स्तुति की। तीनोके अशसे सतान-प्राप्तिका उन्हे वरदान मिला।

महासती अनसूयाकी गोद तीन कुमारोसे भूषित हुई। भगवान् शकरके अशसे तपोमूर्ति महर्षि दुर्वासा, भगवान् ब्रह्माके अशसे सचराचरपोषक चन्द्रमा और भगवान् विष्णुके अशसे त्रिमुख, गौरवर्ण, ज्ञानमूर्ति श्रीदत्तात्रेय प्रभु।

भगवान् दत्तात्रेय आदियुगम प्रह्लादके उपदेष्टा हैं। अजगर मुनिके वेशमे प्रह्लादजीको उन्होने अवधूतकी स्थितिका उपदेश किया है। महाराज अलर्कको उन्होने तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। कुत्तासे घिरे, उन्मत्त-सा वेश बनाये, उन सिद्धोंके परमाचार्यको पहचानना बहुत उच्च कोटिके अधिकारीका ही काम है।

गिरिनार प्रभुका सिद्धपीठ है। दक्षिणमे दत्तात्रेयकी उपासनाका व्यापक प्रचार है। सिद्धोकी एक परम्परा ही भगवान् दत्तात्रेयको उपास्य मानती आयी है। इनमे 'रस-सिद्धि'का बहुत प्रचार था। ये सिद्धियाँ भले लोगोको प्रलुब्ध करे और कुतूहल या कामनावश सामान्य साधक इन्हींको लक्ष्य बनाते हा परतु भगवान् दत्तात्रेयके उपदेश मनुष्यको इन प्रलोभनोसे सावधान करते हैं। साधनके द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति ही मनुष्यका सच्चा लक्ष्य है। योग-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ भगवान् दत्तात्रेयके कहे जाते हैं। दक्षिणमे भगवान् दत्तकी उपासनाका बहुत प्रचार है।

[७]

भगवान् यज्ञ

स्वायम्भुव मन्वन्तर—इस कल्पके प्रथम मन्वन्तरमें देवता अनाहारसे क्षीण हो रहे थे। देवताओंके दुर्बल हानेसे व्यक्त जगत् नष्ट होता जा रहा था। वर्षा, अन्न अग्नि, वायु और पृथ्वी—सब नि सत्त्वप्राय हो चले। यमराज क्या कर ? उनके यहाँ प्राणियोका एक ही अपराध था कि वे अशक्त थे। उनम प्रमाद था। उनके सम्मुख कोई व्यवस्थित कृत्य भी तो नहीं था। तीनो लोक इस अवस्थासे त्रस्त हो रहे थे।

प्रभु तो सदासे आर्त-पुकार सुननेवाले हैं। उन्होने प्राणियाकी पुकार सुनी। महर्षि रुचिकी पत्नी आकूतिसे वे प्रकट हुए। उन्होने अग्निहोत्रकी स्थापना की। उन्हींके नामस अग्निहोत्र यज्ञ कहा जाने लगा। हवनसे देवता पुष्ट हुए। देवताओकी शक्तिसे जगत् शक्तिसम्पन्न हुआ। देव-पूजा छोडकर अपनी और पदार्थोंकी शक्तिका नाश करनवाले वर्तमान युगके प्राणी इसे कैसे समझगे। पदार्थ आज चाहिये और देव-जगत्‌को छोड दिया गया। इस आसुर-वृत्तिम सघर्ष, उत्पीडन और क्लेश ही तो मिलता है। व यज्ञ-पुरुष प्रभु दया करे।

[८]

भगवान् ऋषभदेव

महाराज नाभिने सतान-प्राप्तिके लिये यज्ञ किया। तप -पूत ऋत्विजाने श्रुतिके मन्त्रास यज्ञ-पुरुषकी स्तुति की। श्रीनारायण प्रकट हुए। विप्राने उन सौन्दर्य ऐश्वर्य, शक्तिघनके समान ही नरेशको पुत्र हो, यह प्रार्थना की। उस अद्वयक समान दूसरा कहाँसे आये ? महाराज नाभिकी महारानीकी गोदमे स्वय वही परम तत्त्व प्रकट हुआ।

महाराज नाभि कुमार ऋषभदेवको राज्य देकर वनक लिये विदा हो गये। देवराज इन्द्रको धराका वह सौभाग्य ईर्ष्याकी वस्तु जान पडा। अखिलेशकी उपस्थितिसे पृथ्वीने स्वर्गको अपनी सम्पदासे लज्जित कर दिया था। महेन्द्र वृष्टिके अधिष्ठाता हैं। वर्षा ही न हो तो पृथ्वीका सौन्दर्य रह कहाँ ? शस्य ही तो यहाँकी सम्पत्ति है। देवराजको लज्जित होना पडा। वर्षा बद न हो सकी। भगवान् ऋषभने अपनी शक्तिसे वृष्टि की। अन्तत देवराजने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह कर दिया उन धरानाथसे। पृथ्वी और स्वर्गमे सम्बन्ध स्थापित हुआ।

पूरे सौ पुत्र हुए ऋषभदेवजीका। इनम सबसे ज्येष्ठ चक्रवर्ती भरत हुए। इन्हीं आर्षभ भरतके नामपर यह देश 'भारतवर्ष' कहा जाता है। शेष पुत्रामे नौ ब्रह्मर्षि, नौ पुत्र नौ द्वीपोंके अधिपति हो गये और इक्यासी महातपस्वी हुए। भरतका राज्याभिषेक करके भगवान्‌ने वानप्रस्थ स्वीकार किया।

काक गौ, मृग कपि आदिके समान आचरण आहार-ग्रहण निवासादि जडयोग हैं। ये सिद्धिदायक हैं और सयमक साधक भी। भगवान् ऋषभने इनको क्रमश अपनाया पूर्ण

किया, किंतु इनकी सिद्धियोंको स्वीकार नहीं किया। उनकी तपश्चर्याका अनुकरण जो सिद्धियोंके लिये करते हैं वे उन प्रभुके परमादर्शको छोड़कर पृथक् होते हैं।

आत्मानन्दकी वह उन्मद अवधूत-अवस्था—बिखरे केश, मलावच्छन्न शरीर, न भोजनकी सुध और न प्यासकी चिन्ता। किसीने मुखमें अन्न दे दिया तो स्वीकार हो गया। जहाँ शरीरको आवश्यकता हुई, मलोत्सर्ग हो गया। उस दिव्य-देहका मल अपने सौरभसे योजनातक देशको सुरभित कर देता। जहाँ शरीरका ध्यान नहीं, वहाँ शौचाचारका पालन कौन करे? यह आचरणीय नहीं—यह तो अवस्था है। शरीरकी स्मृति न रहनेपर कौन किसे सचेत करेगा, शास्त्रसे परे है यह दशा।

मुखमें ककड़ी रखे, निराहार मौन, उन्मत्तकी भाँति भारतके पश्चिमीय प्रदेश—कोंक वेंक, कुटकादिके वनोंमें भगवान् ऋषभदेव भ्रमण कर रहे थे। उनका शरीर तेजोमय किंतु अनाहारसे कृश हो गया था। वनमें दावाग्नि लगी। देह आहुति बन गया।

जैनधर्म भगवान् ऋषभको प्रथम तीर्थङ्कर मानता है। उन्हींके आचारकी व्याख्या पीछेके जैनाचार्योंने की है।

[९]

भगवान् आदिराज पृथुके रूपमें

'कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना ही भला था।' महाराज अङ्गने देवताओंका यजन करके पुत्र प्राप्त किया और वह पुत्र घोरकर्मा हो गया। प्रजा उसके उपद्रवोंसे त्राहि-त्राहि करने लगी। ताड़नादिसे भी उसका शासन हो नहीं पाता। महाराजको वैराग्य हो गया। रात्रिमें ही वे चुपचाप अज्ञात वनमें चले गये।

'कोई यज्ञ न करे। कोई किसी देवताका पूजन न करे। एकमात्र राजा ही प्रजाके आराध्य हैं। आज्ञा भङ्ग करनेवाला कठोर दण्ड पायेगा।' भेरीनादके साथ ग्राम-ग्राममें घोषणा हो रही थी। महाराज अङ्गका कोई पता न लगा। ऋषियोंने उनके पुत्र वेनको सिंहासनपर बैठाया। राज्य पाते ही उसने यह घोषणा करायी।

'राजन्! यज्ञसे यज्ञपति भगवान् विष्णु तुष्ट होंगे। उनके प्रसन्न होनेपर आपका और प्रजाका भी कल्याण होगा।' ऋषिगण वेनको समझाने एकत्र होकर आये थे। उस दर्पमत्तने उनकी अवज्ञा की। ऋषियोंका रोष हुंकारके साथ कुशोंमें ही ब्रह्मास्त्रकी शक्ति बन गया। वेन मारा गया। वेनकी माता सुनीथाने पुत्रका शरीर स्नेहवश सुरक्षित रखा।

'ये साक्षात् जगदीश्वरके अवतार हैं।' उन दूर्वादलश्याम प्रलम्बबाहु कमलाक्ष पुरुषको देखकर ऋषिगण प्रसन्न हुए। अराजकता होनेपर प्रजामें दस्यु बढ़ गये थे। चोरी, बलप्रयोग मर्यादानाश परस्वहरणादि बढ़ रहे थे। शासक आवश्यक था। ऋषियोंने एकत्र होकर वेनके शरीरका मन्थन प्रारम्भ किया। उसके ऊरुसे प्रथम ह्रस्वकाय, कृष्ण-वर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ। उसकी संतान निषाद कही गयीं। मन्थन चलता रहा। दक्षिण हस्तसे पृथु और वाम बाहुसे उनकी नित्य-सहचरी लक्ष्मीस्वरूपा आदि-सती अर्चि प्रकट हुईं।

'महाराज हम सब क्षुधासे मरणासन्न हैं। हमारी रक्षा करें।' विश्वमें प्रथम राजाके सम्मुख प्रजा पुकार कर रही थी। धरामें पहला अकाल पड़ा था। न फल थे न अन्न। वन सूखते जा रहे थे। वेनके अत्याचारसे देवशक्ति क्षुभित हो गयी थी। देवताओंका रोष मानवके अभ्युदयका घातक होगा ही। समाज आचारहीन, कुकर्म-रत हो गया। त्रेताके आदिम पदार्थ उपभोगके लिये नहीं थे। सम्पूर्ण पदार्थ यज्ञार्थ थे। मनुष्य केवल यज्ञावशेषभाजी था। जब मनुष्यने पदार्थोंको अपने लिये समझना प्रारम्भ किया धराने उनका उत्पादन बंद कर दिया।

'यह मेदिनी—यह मेरी अवज्ञा करती है।' पृथुने प्रजाकी पुकार सुनी। धरा अन्न देती क्यों नहीं? नेत्रोंमें वक्रिमा आयी। आजगव धनुषपर बाण चढ़ाया उन्होंने। 'मैं इसके मेदसे सबको तृप्त करूँगा। लोकको धारण मेरी योगशक्ति करेगी।' उन्हींकी योगमाया तो लोक-धारण करती है।

'देव मुझे क्षमा करें। काँपती भीता गोरूपधारिणी पृथ्वी शरणापन्न हुई। मुझे समान (समतल) करें जिससे वर्षाका जल टिक सके। योग्य वत्स हो तो मैं कामदुहा (अभीष्ट फल देनेवाली) हूँ।'

पृथुने पृथ्वीका दोहन किया। भूमि समान की गयी। कृषिका प्रारम्भ हुआ। मनुष्यने तरु एवं गुफाओंका स्वच्छन्द निवास छोड़ दिया। समाज बना। नगर, ग्राम खेट, खर्वट आदि

बसाये गये। इस प्रकार पृथुने प्रजाकी व्यवस्था की।

पृथुने धराको पुत्री माना। तबसे यह भूमि 'पृथ्वी' कही जाती है। वे ही प्रथम नरेश थे। मनुष्यको नगर, ग्रामादिमे बसाकर वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यताको उन्होने ही जन्म दिया था। जीवन भोगके लिये नहीं, आराधनाके लिये है। उन आदि शासकका मानवके लिये यही आदेश है। जबतक मानव उनके आदेशपर चला, सुख एवं शान्ति उसे नित्य प्राप्त रही, आदेश भंग करके वह पीडा, संघर्ष एवं चिन्तामे उलझ गया।

[१०]

भगवान् मत्स्य

पूर्व कल्पकी बात है—भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके कार्यसे श्रान्त होकर योगनिद्राका आश्रय ले रहे थे। श्रुतियाँ सहज अलस-भावसे उनके मुखसे निकलीं। उन श्रुतिस्वरूपके मुखसे निद्रामे और प्रकट भी क्या होता। दितिपुत्र हयग्रीवने उन्हे स्मरण कर लिया। एक असुर श्रुतिका न शुद्धोच्चारण कर सकता और न उसका अर्थ-दर्शन। वह अपनी मलिन बुद्धिसे श्रुतियोका अनर्थ करेगा। श्रुतियोके उद्धारके लिये, उनकी परम्परा विशुद्ध बनाये रखनेके लिये भगवान् विष्णुने मत्स्यरूप धारण किया।

भुवन-भास्कर विवस्वान्‌के पुत्र राजर्षि सत्यव्रत जल पीकर घोर तपमे लीन थे। प्रातः स्नान करके कृतमाला नदीमे तर्पणके लिये उन्होने अंजलि उठायी। हिलसा जातिकी स्वर्ण-वर्ण एक शफरी (छोटी मछली) उसमे आ गयी थी। राजर्षिने अंजलि विसर्जित कर दी।

'यहाँ हम छोटी मछलियोको आहार बना लेनेवाले बहुत जन्तु हैं। उनसे डरकर मैं आपकी शरण आयी हूँ।' शफरी भागी नहीं। वह बोल रही थी। राजर्षिने उसे उठाकर कमण्डलुके जलमे रख लिया।

'मैं आपकी शरण हूँ। मेरी सुविधाका आपको प्रबन्ध करना चाहिये। यहाँ तो मैं हिल भी नहीं सकती।' आश्रममे पहुँचते ही मछलीने पुनः प्रार्थना की। वह इतनी बढ गयी थी कि कमण्डलुमे उसका हिलना कठिन था। क्रमशः उसे बडे पात्र, कुण्ड, सरोवर और सरितामें रखना पडा। सब कहीं कुछ मुहूर्तोंमे वह स्थान उसकी वृद्धिसे पूर्ण हो जाता था। अन्तमे समुद्रमे छोडना पडा उसे।

'निश्चय ही आप सर्वेश हैं। जब आपने मुझपर कृपा की है, तब अपने इस शरीर-धारणका प्रयोजन बताये।' राजर्षिने तब प्रार्थना की, जब समुद्रमे मत्स्यने अपने लिये मगर आदिका भय बताया। भला, कोई जलजीव इतनी शीघ्र यह आकार-वृद्धि कहाँ पा सकता था। भगवान् मत्स्यने बताया कि प्रलय सातवे दिन ही होनी है। भगवान्‌के आदेशानुसार राजर्षिने बहुत बडी नौका बनवायी। उसमे सम्पूर्ण वनस्पतियोके बीज और प्राणियोके जोडे सुरक्षित किये। सातवे दिन चारो ओरसे बढकर समुद्रने पृथ्वीको प्लावित कर दिया। नौकामे इसी समय सप्तर्षि भी आकर बैठ गये। प्रबल पवनसे नौका चंचल हो उठी। उसी समय एक-शृंगधारी अयुत योजन विशाल स्वर्णोज्ज्वल भगवान् मत्स्य प्रलय-सागरमे प्रकट हुए। नागराज वासुकी पहलेसे नौकामे विराजमान थे। नौका उन महासर्पकी रज्जुसे मत्स्यके सींगमे बाँध दी गयी।

भूः-भुवः आदि सम्पूर्ण लोक जलमग्न हो गये थे। अन्धकारमे सागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गोके बीच महामत्स्य प्रभु विचरण कर रहे थे। नौकामे ऋषियोका तेज प्रकाश किये था। राजर्षिने प्रश्न किया और भगवान्‌ने उत्तर दिया। भगवान् मत्स्यका वही दिव्य उपदेश भगवान् व्यासने मत्स्य-पुराणमे संकलित किया है। प्रलयकाल व्यतीत हुआ। समुद्र उतरा। भगवान्‌के आदेशसे हिमालयके एक शृंगमे राजर्षि सत्यव्रतने अपनी नौका बाँध दी। वह शृंग अब भी 'नौका-बन्धन शृंग' कहा जाता है। राजर्षि सत्यव्रत इस मन्वन्तरके वैवस्वत मनु हैं। भगवान् मत्स्यने हयग्रीवका वध किया, क्योंकि सृष्टिकालमे असुरके समीप श्रुतिका रहना अभीष्ट नहीं था।

यहूदियोके धर्मग्रन्थमे, बाइबिलमें और कुरानमे भी मनुकी इस जल-प्रलय और नौकारोहणका प्रकारान्तरसे वर्णन है। चीनमे तथा प्राचीन आस्ट्रेलिया एवं अमरिका-निवासियोमे भी यह चरित प्रसिद्ध है। कथामे बहुत थोडा अन्तर इन स्थानोमे हुआ है। कथाका सब कहीं मिलना यह स्पष्ट करता है कि सब जातियाँ भारतसे गयी हैं और मनुकी संतति हैं। देश कालके प्रभावसे कथामे परिवर्तन स्वाभाविक है। इस प्रकार भगवान् मत्स्य पूरे विश्व-संस्कृतिके ही रक्षक

एव प्रतिष्ठापक हैं।

> प्रलयपयसि धातु सुप्तशक्तेर्मुखेभ्य
> श्रुतिगणमपनीत प्रत्युपादत्त हत्वा।
> दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रताना
> तमहमखिलहेतु जिह्मीन नतोऽस्मि॥
> (श्रीमद्भा० ८। २४। ६१)

[११]

भगवान् कच्छप

अहकार और महज्जनाकी उपेक्षा अनर्थोके कारण होते ही हैं। महर्षि दुर्वासा प्रसन्न थे। उन्होने ऐरावतपर जाते हुए इन्द्रको अपने कण्ठकी पुष्पमाला दी। महेन्द्रने उसे गजराजके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने सूँडसे उठाकर नीचे डाला और पैरसे कुचल दिया। 'तेरी श्री नष्ट हो जाय।' अपने प्रसादका अपमान देख महर्षिने शाप दिया और चले गये।

कहाँ ऋषिके अपमानसे श्रीहीन देवता और कहाँ आचार्य शुक्रके श्रद्धालु सेवक दैत्यराज बलि। दोनोके युद्धमे देवता हार गये। स्वर्ग असुरोका क्रीडोद्यान हो गया। बलिने तीनो लोकोपर अधिकार कर लिया। देवता और क्या करते, वे ब्रह्माजीकी शरण गये। सबने मिलकर शेषशायी प्रभुसे प्रार्थना की।

'आप सब दैत्योसे सन्धि कर ले। समस्त ओषधियाँ क्षीरसागरमे डालकर उसका मन्थन कर। मन्दराचलको मथानी बनावे और वासुकी नागको रस्सी। यह काम अकेल देवताओसे न होगा। पहले महाविष निकलेगा उससे भय मत करना। वस्तुआमे लोभ करके लडना मत। अन्तमे जरा-मृत्यु-हारिणी सुधा प्रकट होगी।' भगवान्ने प्रकट होकर युक्ति बतायी।

इन्द्र गये दैत्यराजके समीप। कुशलतापूर्वक उन्होने बन्धुत्वका स्मरण कराया। अमृतके लोभसे सन्धि हो गयी। देव-दैत्य दोनोने मिलकर मन्दराचलको उखाडा। पर्वत अधिक दूर न जा सका। यह गिरा बहुतस लोग पिस उठे। अन्तमे वही भक्त-भयहारी स्मरण करनेपर पधारे। एक हाथसे उठाकर उन्होन गरुडपर मन्दराचलको रख लिया।

पर्वत क्षीराब्धि-तटपर आया। समुद्रमें डालनेपर वह डूबने लगा। समस्त देवता और दैत्य मिलकर उसे सँभालनेम असमर्थ थे। अन्तत भगवान्ने नियुत योजन विशाल कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलको पीठपर धारण किया। उनकी पीठपर स्थित पर्वतसे मन्थन सम्पन्न हुआ।

एक कथा और—प्रलयमे भगवान् शेषशय्यापर योग-निद्राका आश्रय किये हुए थे। उनके शरीरसे आद्याशक्ति प्रकट हुई। उसीसे इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हुए। शक्ति शवरूपम ब्रह्माके पास गयी। उसे उन्होने चारा ओरसे देखा, फलत वे चतुर्मुख हो गय। विष्णुने उसे दूरसे लौटा दिया। सौ बार शरीर बदलनेपर शिवने उसे स्वीकार कर लिया।

शक्ति स्थिर हो गयी, किंतु ब्रह्मा सृष्टि न कर सके—पृथ्वी जा नहीं थी। भगवान् विष्णुने कर्णमलसे दो दैत्य उत्पन्न किये। वे दोना रुष्ट होकर ब्रह्माजीको मारने दौडे। भगवान् विष्णुने उन्ह मार डाला। उन दैत्योके मेदसे मेदिनी—पृथ्वी बनी। उनकी अस्थियाँ पर्वत बना। पृथ्वीको स्थिर करनेके लिये भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया।

भगवान्के अवतार नित्य हैं। वही प्रभु पृथ्वीको धारण करते है वही मन्दर धारण करके अमृत-मन्थनके हेतु बनते हैं। वही मनुष्यकी धृति बनते हैं और तभी मानव अक्षयधामके पथम स्थिर होता है। सबके वही आधार हैं।

> पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
> न्निद्रालो कमठाकृतेर्भगवत श्वासानिला पान्तु व ।
> यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिलेनाम्भसा
> यातायातमतन्द्रित जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥
> (श्रीमद्भा० १२। १३। २)

[१२]

भगवान् धन्वन्तरि

बात समझम आय या न आये पर सत्य यही है कि सम्पूर्ण जड-चतन जगत् दैवी जगत्स प्रकट हुआ है। यह परस्पर विकसित नहीं है। दवता एव दैत्याक सम्मिलित प्रयासके श्रान्त हा जानपर क्षीरोदधिका मन्थन स्वय क्षीरसागरशायी कर रह थ। हलाहल गौ एरावत उच्चै -श्रवा अश्व अप्सराएँ, कौस्तुभमणि वारुणी महाराज

कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी और कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अन्तमे हाथमे अमृतपूर्ण स्वर्णकलश लिये श्यामवर्ण, चतुर्भुज भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।

अमृत-वितरणके पश्चात् देवराज इन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान् धन्वन्तरिने देव-वैद्यका पद स्वीकार कर लिया। अमरावती उनका निवास बनी। कालक्रमसे पृथ्वीपर मनुष्य रोगासे अत्यन्त पीडित हो गये। प्रजापति इन्द्रने धन्वन्तरिजीसे प्रार्थना की। भगवान्ने काशिराज दिवोदासके रूपमे पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इनकी 'धन्वन्तरि-सहिता' आयुर्वेदका मूल ग्रन्थ है। आयुर्वेदके आदि आचार्य सुश्रुत मुनिने धन्वन्तरिजीसे ही इस शास्त्रका उपदश प्राप्त किया।

[१३]

भगवान् मोहिनीरूपमे

क्षीरोदधिका मन्थन हुआ, जैसे ही धन्वन्तरि प्रकट हुए, प्रत्येक वस्तुके लिये झगडनेवाले दैत्य उनके हाथसे अमृत-कलश छीनकर भागे। उनमेंसे प्रत्येक प्रथम अमृतपान करना चाहता था। किसीको किसीपर विश्वास नहीं था। 'यदि एक ही सब पी जाय तो?' कलशपर छीना-झपटी चल रही थी। देवता निराश खडे थे। असुर भी समझ रहे थे कि यदि यह द्वन्द्व न मिटा तो अमृत व्यर्थ गिरकर नष्ट हो जायगा। कोई समाधान ज्ञात नहीं होता था।

'सुन्दरि! हम सब महर्षि कश्यपके पुत्र हैं। हमम इस कलशस्थ द्रवके लिये विवाद हा रहा है। तुम्हारी बडी कृपा होगी—हमम इसका उचित विभाजन कर दो। हमने इसके लिये समान श्रम किया है।' एक अद्वितीय लावण्यवती नारी वहाँ प्रत्यक्ष हुई। सब उसके रूपसे मुग्ध थे। सब उसे आकृष्ट करना चाहते थे। असुराने उसीको मध्यस्थ बनाना चाहा। सब परस्पर इस निर्णयसे सहमत थे।

'तुम्हे मेरे कुल शील आदिका पता नहीं, तुम मुझपर कैसे विश्वास कर रह हो?' नारीने अपने कोकिल-कण्ठकी मधुरिमा भ्रूविलास, मन्दहास्यादिसे पूर्ण कर दी। असुर इस प्रत्याख्यानमे अधिक विश्वस्त हुए।

'मैं उचित विभाजन करूँ या अनुचित—तुम लोग बीचम बाधा न दो तभी इस कार्यको करूँगी।' बात ठीक ही है। मध्यस्थके निर्णयम अपनी सम्मति बाधा द ता निर्णय कैसे होगा।

देव-दैत्य दोना वर्गोने स्नान किया, नूतन अनाहत वस्त्र धारण किये, अग्निको आहुतियाँ दीं, विप्रासे स्वस्तिपाठ कराया और तब पूर्वाग्र कुशाके आसनापर पक्तिमे बठ गय। उस नारीके आदेशसे देवता पृथक् और दैत्य पृथक् पक्तिमे बेठे।

'यह असुर है।' सूर्य एव चन्द्रने नेत्रासे सकत किया। नारी असुराके समीपसे चल रही थी ओर दूरस्थ सुराको अमृत-पान करा रही थी। असुराको उससे प्रेम पानेकी सम्भावना थी। वे उसकी भाव-भगीसे मुग्ध थे। एक स्त्रीस विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा करके फिर झगडना उचित नहीं था। वे मौन बैठे थे। छायापुत्र स्वर्भानु (राहु) धैर्य न रख सका। वह देवताआका रूप धारण करक चन्द्रमा और सूर्यके समीप जा बैठा। जैसे ही उसे अमृत-घूँट मिला दोना देवताआने सकत कर दिया।

'यह तो विष्णु हैं।' असुर चौंके। नारी सहसा चतुर्भुज घनश्याम, पीताम्बरधारी पुरुष हो गयी। उन परम प्रभुक चक्रसे राहुका मस्तक कटा पडा था। असुरान शस्त्र उठाय। देवासुर-सग्राम हाने लगा।

भगवान्की यह नित्य लीला है। जगत् भी उसीका एक रूप है। 'कामिना बहु मन्तव्य सकल्पप्रभवादयम्' कामनाके वश पुरुषक लिय अभीष्ट-सिद्धि ही सब कुछ हैं। यह दृश्य जगत्, इसके पदार्थ, यह आकपण—सब उसा मायापतिकी मोहिनी है। सब कामक वश उस भूलकर इस मायारूपम मुग्ध हैं। यह आसुर भाव अमृतस वचित कर रहा है। वे प्रभु दया कर तभी उनका वास्तविक रूप बुद्धिम प्रतिष्ठित हा।

असदविषयमघ्रि भावगम्य प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् य सुरारी-
स्तमहमुपसृताना कामपूर नताऽस्मि॥

(श्रीमद्भा० ८। १२। ४७)

[१४]

भगवान् नृसिह

धराके उद्धारक समय भगवान्न वाराहरूप धारण करक हिरण्याक्षका वध किया। उसका बडा भाइ हिरण्यकशिपु

बडा रुष्ट हुआ। उसने अजेय होनेका सकल्प किया। सहस्रा वर्ष बिना जलके वह सर्वथा स्थिर तप करता रहा। ब्रह्माजी सतुष्ट हुए। दैत्यको वरदान मिला। उसने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। लोकपालोको मार भगा दिया। स्वत सम्पूर्ण लोकोका अधिपति हो गया। देवता निरुपाय थे। असुरको किसी पकार वे पराजित नहीं कर सकते थे।

'बेटा तुझे क्या अच्छा लगता है ?' दैत्यराजने एक दिन सहज ही अपने चारा पुत्रामे सबसे छोटे प्रह्लादसे पूछा।

'इन मिथ्या भोगाको छोडकर वनम श्रीहरिका भजन करना।' बालक प्रह्लादका उत्तर स्पष्ट था। दैत्यराज जब तप कर रहे थे, देवताआने असुरोपर आक्रमण किया। असुर उस समय भाग गय थे। यदि देवर्षि न छुडाते तो दैत्यराजकी पत्नी कयाधूको इन्द्र पकडे ही लिये जाते थे। देवर्षिने कयाधूको अपने आश्रमम शरण दी। उस समय प्रह्लाद गर्भमे थे। वहींसे देवर्षिके उपदेशोका उनपर प्रभाव पड चुका था।

'इसे आप लोग ठीक-ठीक शिक्षा द।' दैत्यराजन पुत्रको आचार्य शुक्रके पुत्र शण्ड तथा अमर्कके पास भेज दिया। दोना गुरुआने प्रयत्न किया। प्रतिभाशाली बालकने अर्थ, धर्म ओर कामकी शिक्षा सम्यक् रूपस प्राप्त की, परतु जब पुन पिताने उससे पूछा तो उसने श्रवण कीर्तन स्मरण पाद-सेवन, अर्चन वन्दन, दास्य सख्य आर आत्मनिवेदन—इन नौ भक्तियाको ही श्रेष्ठ बताया।

'इसे मार डालो। यह मेरे शत्रुका पक्षपाती है।' रुष्ट दैत्यराजने आज्ञा दी। असुराने आघात किया। भल्ल-फलक मुड गय खड्ग टूट गया निशूल टढ हा गये पर वह कामल शिशु अक्षत रहा। देत्य चोका। प्रह्लादका विष दिया गया पर वह जेसे अमृत हो। सर्प छोडे गय उनके पास और वे फण उठाकर झूमन लग। मत्त गजराजन उठाकर उन्ह मस्तकपर रख लिया। पर्वतसे नीचे फकनेपर वे ऐसे उठ खडे हुए, जैसे शय्यास उठे हो। समुद्रम पापाण बाँधकर डुबानपर दा क्षण पश्चात् ऊपर आ गये। घार चिताम उनके लिय अग्निकी लपट शीतल प्रतीत हुई। गुरुपुत्रान उन्ह मारनेके लिय मन्त्र-बलसे कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की ता वह गुरपुत्राका ही प्राणहान कर गयी। प्रह्लादने ही प्रभुकी प्रार्थना करके उन्ह जावित किया। अन्तम वरुणपाशसे बाँधकर गुरुपुत्र पुन उन्ह पढाने ल गय। वहाँ प्रह्लाद समस्त बालकाको भगवद्भक्तिकी शिक्षा देने लगे। भयभीत गुरुपुत्रान दैत्यन्द्रसे प्रार्थना की—'यह बालक सब बच्चाको अपना ही पाठ पढा रहा है।'

'तू किसक बलस मर अनादरपर तुला है ?' हिरण्यकशिपुन प्रह्लादको बाँध दिया और स्वय खड्ग उठाया।

'जिसका बल आपमें तथा समस्त चराचरम ह।' प्रह्लाद निर्भय थे।

'कहाँ है वह ?'

'मुझम आपम खड्गम, सर्वत्र।'

'सर्वत्र ? इस स्तम्भम भी ?'

'निश्चय।' प्रह्लादके वाक्यक साथ दैत्यन खम्भेपर घूसा मारा, फिर तो केवल वही नहीं, अपितु समस्त लाक चौंक गये। स्तम्भसे बडी भयकर गर्जनाका शब्द हुआ। एक ही क्षण पश्चात् दैत्यने देखा—समस्त शरीर मनुष्यका और मुख सिहका बडे-बडे नख एव दाँत, प्रज्वलित नत्र स्वर्णिम सटाएँ, बडी भीषण आकृति खम्भेसे प्रकट हुई। जब दत्यक अनुचर झपटे ता वे मारे गय अथवा भाग गय। हिरण्यकशिपुका भगवान्ने पकड लिया।

'मुझे ब्रह्माजीने वरदान दिया है।' छटपटाते हुए दैत्य चिल्लाया। 'दिनम या रातम न मरूँगा काई देव दैत्य मानव पशु मुझे न मार सकेगा। भवनम या बाहर मेरी मृत्यु न होगी। समस्त शस्त्र मुझपर व्यर्थ सिद्ध हागे। भूमि जल गगन—सर्वत्र मे अवध्य हूँ।'

'यह सन्ध्याकाल है। मुझे देख कि मैं कौन हूँ। यह द्वारकी दहली य मर नख और यह मेरी जघापर पडा तू।' अट्टहास करके भगवान्ने नखास उसके वक्षको विदीर्ण कर डाला।

वह उग्ररूप—देवता डर गये, ब्रह्माजी अवसन्न हो गय महालक्ष्मी दूरस लोट आयीं, पर प्रह्लाद—वे ता प्रभुक वरप्राप्त पुत्र थे। उन्हाने स्तुति की। भगवान् नृसिहन गोदम उठाकर उन्ह बैठा लिया। स्नेहस चाटने लगे। प्रह्लाद दत्यपति हुए।

[१५]

भगवान् वामन

श्रीहरि जिसपर कृपा करे, वही सबल है। उन्हींकी कृपासे देवताओने अमृत-पान किया। उन्हींकी कृपासे असुरोपर युद्धमे वे विजयी हुए। पराजित असुर मृत एव आहताको लेकर अस्ताचल चल गये। असुरेश बलि इन्द्रके वज्रसे मृत हो चुके थे। आचार्य शुक्रने अपनी सजीवनी विद्यासे बलि तथा दूसरे असुराको भी जीवित एव स्वस्थ कर दिया। बलिने आचार्यकी कृपासे जीवन प्राप्त किया था। वे सच्चे हृदयसे आचार्यकी सेवामे लग गये। शुक्राचार्य प्रसन हुए। उन्हाने यज्ञ कराया। अग्रिसे दिव्य रथ, अक्षय त्राण तथा अभेद्य कवच आदि प्रकट हुए।

आसुरी सेना अमरावतीपर चढ दौडी। इन्द्रने दखत ही समझ लिया कि इस बार देवता इस सेनाका सामना नहीं कर सकेगे। बलि ब्रह्मतेजसे पोषित थे। देवगुरुके आदशसे देवता स्वर्ग छोडकर भाग गय। अमर-धाम असुर-राजधानी बना। शुक्राचार्यने बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेके लिये अश्वमेध-यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। सौ अश्वमेध करके बलि नियमसम्मत इन्द्र बन जायँग, फिर उन्ह कौन हटा सकता है ?

'स्वामी मेरे पुत्र मारे-मार फिरते हैं।' देवमाता अदिति अत्यन्त दु खी थीं। अपने पति महर्पि कश्यपसे उन्होने प्रार्थना की। महर्षि तो एक ही उपाय जानते हैं—भगवान्‌की शरण उन सर्वात्माकी आराधना। अदितिने फाल्गुनके शुक्ल पक्षम बारह दिन पयोव्रत करके भगवान्‌की आराधना की। प्रभु प्रकट हुए। अदितिको वरदान मिला। उन्हींके गर्भसे भगवान् प्रकट हुए। शख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज पुरुष अदितिके गर्भसे जब प्रकट हुए, तत्काल वामन ब्रह्मचारी बन गये। महर्पि कश्यपन ऋपियाके साथ उनका उपनयन-सस्कार सम्पन्न किया। भगवान् वामन पितासे आज्ञा लेकर बलिके यहाँ चले।

नर्मदाके उत्तर-तटपर असुरेन्द्र बलि अश्वमेध-यज्ञमे दीक्षित थे। यह उनका अन्तिम अश्वमध था। छत्र, पलाश दण्ड तथा कमण्डलु लिये जटाधारी, अग्निके समान तेजस्वी वामन ब्रह्मचारी वहाँ पधारे। बलि शुक्राचार्य ऋपिगण—सभी उस तेजसे अभिभूत अपनी अग्नियाके साथ उठ खडे हुए। बलिने उनके चरण धोये, पूजन किया और प्रार्थना की कि जो भी इच्छा हो, वे माँग ले।

'मुझे अपने पैरासे तीन पद भूमि चाहिये।' बलिके कुलकी शूरता उदारतादिकी प्रशसा करके वामनने माँगा। बलिने बहुत आग्रह किया कि और कुछ माँगा जाय पर जो माँगना था, वामनने वही माँगा था।

'ये साक्षात् विष्णु हे।' आचार्य शुक्रने सावधान किया। समझाया कि इनके छलमे आनेमे सर्वस्व चला जायगा।

'ये कोई हो प्रह्लादका पौत्र देनेको कहकर अस्वीकार नहीं करेगा।' बलि स्थिर रहे। आचार्यने ऐश्वर्य-नाशका शाप दे दिया। बलिने भूमिदानका सकल्प किया और वामन विराट् हो गये। एक पदमे पृथ्वी, एकमे स्वर्गादि लोक तथा शरीरसे समस्त नभ व्याप्त कर लिया उन्होने। उनका वाम पद ब्रह्मलोकसे ऊपरतक गया। उसके अङ्गुष्ठ-नखसे ब्रह्माण्डका आवरण तनिक टूट गया। ब्रह्मद्रव वहाँसे ब्रह्माण्डमे प्रविष्ट हुआ। ब्रह्माजीने भगवान्‌का चरण धोया और चरणोदकके साथ उस ब्रह्मद्रवको अपने कमण्डलुमे ले लिया। वही ब्रह्मद्रव गङ्गाजी बना।

'तीसरा पद रखनेका स्थान कहाँ हे ?' भगवान्‌ने बलिको नरकका भय दिखाया। सकल्प करके दान न करनेपर तो नरक होगा ही।

'इसे मेरे मस्तकपर रख ले।' बलिने मस्तक झुकाया। प्रभुने वहाँ चरण रखा। बलि गरुडद्वारा बाँध लिये गये।

'तुम अगले मन्वन्तरमे इन्द्र बनोगे। तबतक सुतलमे निवास करो। मैं नित्य तुम्हारे द्वारपर गदापाणि-समन्वित उपस्थित रहूँगा।' दयामय द्रवित हुए। प्रह्लादके साथ बलि सब असुराको लेकर स्वर्गाधिक-ऐश्वर्यसम्पन्न सुतल लोकमे पधारे। शुक्राचार्यने भगवान्‌के आदेशसे यज्ञ पूरा किया।

महेन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। ब्रह्माजीने भगवान् वामनको उपेन्द्र-पद प्रदान किया। वे इन्द्रके रक्षक होकर अमरावतीमे अधिष्ठित हुए। बलिके द्वारपर गदापाणि प्रभु द्वारपाल तो बन ही चुके थे। त्रेतामे दिग्विजयके लिये रावणने सुतल-प्रवेशकी

धृष्टता की। बेचारा असुरेश्वरके दर्शनतक न कर सका। बलिके द्वारपालने पैरके अँगूठेसे उसे फेक दिया। पृथ्वीपर सौ योजन दूर लङ्कामे आकर गिरा था वह।

[१६]

भगवान् परशुराम

'यह गौ आप मुझे दे दे।' हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन ससैन्य महर्षि जमदग्निके आश्रमके पाससे निकले थे। महर्षिने उनको आतिथ्यके लिये निमन्त्रित किया। आश्रमको कामधेनुकी कृपासे सबका सत्कार हुआ। राजाके मनमे लोभ आया। जब महर्षिने गौ माँगनेपर भी न दी तो बलपूर्वक उसने छीन ली। वह अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो रहा था।

'राम तुमने अधर्म किया। हम ब्राह्मण हैं। हम क्षमा करना चाहिये।' परशुराम वनसे लौटकर राजाका अन्याय सह न सके थे। अकेले ही परशु लेकर ससैन्य सहस्रार्जुनका युद्धमे वध करके वे कामधेनु लौटा लाये थे। महर्षि जमदग्नि सतुष्ट नहीं हुए। उन्होने पुत्रको वर्षभर समस्त तीर्थोंम प्रायश्चित्त-हेतु घूमनेका आदेश दिया।

'राम हा राम।' भगवान् परशुराम यात्रासे लौटे। दूरसे माता रेणुकाका करुणस्वर उन्होने सुना। अग्निशालामे ध्यानस्थ महर्षि जमदग्निको सहस्रार्जुनके पुत्राने मार दिया था और उनका मस्तक लेकर भाग गये थे। भगवान् परशुरामके नेत्राने अग्विवर्ण धारण किया। उन्होने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियासे हीन कर दिया। स्यमन्त पञ्चक स्थानम राजाओके रक्तसे नौ सरोवर बन गये। परशुरामजीने यज्ञ किया। पिताके मस्तकको लाकर शरीरपर स्थापित करके मन्त्रपाठ किया। महर्षि जमदग्नि जीवित हुए। उन्हे सप्तर्षियोम पञ्चम स्थान प्राप्त हुआ।

'राम। तुम अब मेरी भूमिसे चले जाओ।' ऋषिगण बार-बार क्षत्रियोके गर्भस्थ बालकोकी रक्षा करते। उनको राजा बनाते। परशुरामजी उनका वध कर डालते। अन्तिम बार जब कश्यपजीको उन्होने समस्त पृथ्वी दान कर दी तब महर्षि कश्यपन उन्हे आदेश दिया कि 'अब मेरी भूमिपर कभी रात्रिवास न करना।' तबसे परशुरामजी महेन्द्र-पर्वतपर निवास करते हैं। वे कल्पान्त अमर हैं। अनेक बार योग्य अधिकारी उनक दर्शन पाते हैं।

[१७]

भगवान् व्यास

महर्षि पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास हैं। उत्पन्न होते ही वे मातासे आज्ञा लेकर तपस्या करन चल गय। द्वीपमे जन्म होनेसे व्यासजी 'द्वैपायन' कहे गये। उनका वर्ण घननील है अत उन्हे 'कृष्णद्वैपायन' कहा जाता है।

आदियुगम वेद एक ही था। महर्षि अङ्गिराने उसमस सरल तथा भौतिक उपयोगक छन्दाको पीछे सगृहीत किया। यह सग्रह छान्दस, आङ्गिरस या अथर्ववेद कहलाया। शेष भाग एक ही रूपमे था। भगवान् व्यासने उसमसे ऋचाओ गायनयोग्य मन्त्रा और गद्यभागको पृथक्-पृथक् सकलित किया। इस प्रकार ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेदका वर्तमान स्वरूप निश्चित हुआ। इस कार्यसे वे वेदव्यास कहलाये।

स्त्री, शूद्र तथा पतित द्विज (द्विजबन्धु) वदपाठके अधिकारी नहीं थे। उत्तरोत्तर द्विजबन्धुओकी सख्या बढती जा रही थी। उनका उद्धार भी होना ही चाहिये। वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराण भी लुप्त हो रहे थ। भगवान् व्यासने पुराणाका सकलन किया। निष्ठाके अनुकूल उनम आराध्यके रूपकी प्रतिष्ठा हुई। वेदार्थ सबके लिये सहज-सुलभ हो गया। अष्टादश पुराणाके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी उन्हींके हैं।

पुराण बहुत विस्तृत हे। उनम कल्पभेदसे चरिताम भेद आया है। समस्त चरित इस कल्पके अनुरूप और समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्षसम्बन्धी सिद्धान्त एकत्र करनेके विचारसे उन्हाने महाभारतकी रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वद' कहा गया। श्रुतिमे जो कुछ है महाभारतमें भगवान् व्यासने उसको एकत्र कर दिया हे। भगवान् व्यास बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिख रहे थे। इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ।

उपासना तथा साधनकी प्रतिष्ठा दर्शनशास्त्रके द्वारा होती है। श्रुतियोमे भगवान्के जिस निर्विशेष रूपका प्रतिपादन हुआ है कोई दर्शन उसे व्यक्त नहीं करता था। भगवान् व्यासने उन सिद्धान्ताको सूत्ररूपमे ग्रथित किया। वही सूत्रग्रन्थ वेदान्त-दर्शन या उत्तरपूर्वमीमासा कहा जाता है।

भारतके सम्प्रदायोमे उसीको मानकर चलनेकी प्राचीन प्रणाली है।

भगवान् व्यास कल्पान्ततक रहेगे। श्रीआद्यशकराचार्यने उनके दर्शन पाये थे और भी अनेक महापुरुषोको उनका साक्षात् लाभ हुआ, यह वर्णन मिलता है। उनका आश्रम बदरीनाथ धाम है, पर वे लोकमे पर्यटन करते रहते हैं। उच्च कोटिके अधिकारी उन्हे देख पाते हैं।

हिन्दू-सस्कृतिका वर्तमान स्वरूप भगवान् व्यासद्वारा सँवारा एव सजाया गया है। यह अनादि सनातन सस्कृति आज भगवान् व्यासके पुराणो, महाभारत तथा दूसरे ग्रन्थोपर अवलम्बित है। भगवान्‌ने स्वय इस रूपमे अवतार धारण करके कलिके मानवाके लिये श्रुतिका तात्पर्य सरल कर दिया है।

[१८]

भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्या मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्या प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतु खलदवदहन कोसलेन्द्रोऽवतान्न ॥
(श्रीमद्भा० ९। १०। ४)

अयोध्याका सिहासन शून्य हाने जा रहा था। रघुकी सतति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकता है। महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था अधिक हो गयी किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकारी किसी रानीकी गोदमे न आया। रघुवशके परम रक्षक तो महर्षि वसिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण ली। गुरुदेवके आदेशसे शृगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट होकर चरु प्रदान किया। उस दिव्य चरुको ग्रहणकर रानियाँ गर्भवती हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज रावणसे सत्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमे मत्त वह कुबेरका छोटा भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका उससे विवाह कर दिया। श्वशुरकुलसे ही उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियो, ब्राह्मणो देवताओ तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रोक दिये गये, पूजन-स्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसाने जला दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोके भक्ष्य हो गये। देवराज इन्द्र पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा माननेपर विवश थे। अन्तत धरा यह अधर्म-भार कहाँतक सहे? पृथ्वीकी आर्त पुकार, देवताओंकी प्रार्थना, स्रष्टाकी चिन्ता—सबने उन परात्पर प्रभुको आकृष्ट किया। अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथकी बडी रानी कौसल्याकी गोदमे चैत्रकी रामनवमीके मध्याह्नमे वे साकेताधीश शिशु बनकर आ गये। उनके अश भी आये—माता सुमित्राकी गोद दो स्वर्ण-गौर कुमारोसे भूषित हुई और कैकेयीजीने भावमूर्ति नवजलधर वर्ण रूपराशि भरतको प्राप्त किया।

चारो कुमार बडे हुए। कुलगुरुसे शास्त्र एव शस्त्रकी शिक्षा मिली। सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे। उनके आश्रममे प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते थे। महर्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी। केवल दो कुमार—अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमे ले जाना इष्ट नहीं था। चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा हो सृष्टि-समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले? श्रीरामने भाईके साथ प्रस्थान किया। राक्षसी ताडका मार्गमे ही एक बाणकी भेट हो गयी। मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ। सदल सुबाहु मारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा गिरा था।

महर्षिको तपोवनमे ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण मिला। उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयवर हो रहा था। महर्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य करने पधारे। गौतमाश्रममे पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी चरण-रजका स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी और अपने पति-धामको चली गयी। 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण करेंगी जो शकरके महाधनुष पिनाकको तोडेगा।' मिथिलानरेशकी यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की। श्रीपरशुरामजी अपने आराध्यके धनुर्भंगसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए, परतु श्रीरामके शील शक्ति एव तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये। अयोध्यानरेशको आमन्त्रण मिला। उनके चारो कुमार जनकपुरमे विवाहित हुए।

महाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है युवराज -

कि श्रीरामका राज्याभिषेक हो, परतु राम राज्य कर तो धराका भार कौन दूर करे? देवताआने प्रेरणा की। माता कैकेयीको मोह हुआ। 'भरत-शत्रुघ्न ननिहाल हैं और चुपचाप रामको राज्य दिया जा रहा है!' सदेह स्वय पापका मूल है। 'भरतको राज्य और रामको चतुर्दश वर्ष वनवास!' छोटी रानीने महाराजको वचनबद्ध करके वरदान माँगा। पिताके सत्यके रक्षार्थ रघुवशविभूषण वल्कलधारी होकर प्रात वनको विदा हुए। लक्ष्मण और श्रीजानकी उनसे पृथक् कैसे रह सकते हैं!

श्रीराम भाई एव पत्नीके साथ वन गये। महाराजने प्रिय पुत्रके वियोगमे शरीर छोड दिया। भरत—उनकी दशा, दु ख, वेदना कौन कैसे कहे? गुरुका आदश ननिहालम चरने सुनाया था। अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येष्टि करनी पडी। समस्त समाज लेकर श्रीरामको चित्रकूट लौटाने गये पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पडा। भरत बड़े भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे। अयोध्याका चक्रवर्ती सिहासन उन पादुकाआसे भूषित हुआ। रामहीन अयोध्याम भरत रहगे? उन्हाने नन्दिग्राममे *'महि खनि कुस साथरी सँवारी।'* और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरसे निकले जौको गोमूत्रमे पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले। अयोध्यास ही महर्षियोके दर्शनकी सुलालसा थी। प्रयागमे भरद्वाजजी आग महामुनि वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे। चित्रकूटके तो महर्षि अत्रि ही कुलपति थे। आगे शरभग, सुतीक्ष्ण अगस्त्यादिके दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्हाने। असुर विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मारा गया। पञ्चवटीमे पर्णकुटी बनी। कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे व्यतीत हुए। गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ।

उस दिन रावणकी बहन कुलटा शूर्पणखा कहींसे घूमती-घामती आ पहुँची। मर्यादापुरुषोत्तम वासना एव दुष्टोंका निग्रह तो करते ही। नाक-कान कटनेपर उसने खर-दूषणसे पुकार की। वे असुर चौदह सहस्र सेनाके साथ आये और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोके भोग हो गय। शूर्पणखा रावणके पास पहुँची। रावणने मारीचको साथ लिया। स्वर्ण-मृगके पीछ श्रीजानकीकी इच्छास श्रीराम दोडे। मारीचका छल सफल हुआ। वह शराघातस मरा किंतु रावण एकाकिनी जानकीको हरण करनम सफल हो गया। लङ्काके अशोकवनम वह विश्वधातृ बदिना बनीं।

श्रीराम लौट मृगकी वञ्चनाका दण्ड दकर। आश्रम शून्य था। अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। आहत जटायु मिल। व दशाननको रोकनक प्रयत्नम छिन्नपक्ष हुए थे। श्रीरामक चरणाम उनका शरीर छूटा। राघवने अपने कर-कमलास उनकी अन्त्यष्टि की। कबन्ध असुरका वध और शबरीक बेराका आस्वादन करते व पम्पासर पहुँच। वालीस निर्वासित सुग्रीवका शरण मिली और दूसर ही दिन जब वाली श्रीरामके बाणसे परधाम पधार, सुग्रीव किष्किन्धाधीश हो गय। ऋष्यमूकपर राघवने वर्षा-ऋतु व्यतीत की। शरदागममें वानर-भालु सीतान्वेषणक लिये निकल।

श्रीपवनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्काम विदेह नन्दिनीका दर्शन कर आये। स्वणपुरी उनकी पूँछकी लपटाम जल चुकी थी। श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया। मदान्ध रावणसे पादताडित विभीषण उन विश्व-शरणदकी शरण आ गये। सागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी वानर-भालुआसे धर्षित होने लगी। राक्षस-सेनानी मार जाने लगे। रणभूमिन रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति ले ली। अन्तम दशाननका वध करके श्रीरामने सुर-कार्य पूर्ण कर दिया।

भरत चौदह वर्षस एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करेगे। उनके प्राण इस अवधिमे आबद्ध हैं। पुष्पक सज्जित हुआ। श्रीराम भाई तथा श्रीजानकी एव सुग्रीव विभीषण हनुमान्, अङ्गदादि प्रधान नायकाके साथ उस दिव्य विमानस अयोध्या पधारे। पुरवासियाकी माताओकी भरतकी चिरप्रतीक्षा सफल हुई। श्रीराम कोसलक चक्रवर्ति-सिहासनपर वैदेहीके साथ विराजमान हुए।

'राम-राज्य'—सुशासन सुव्यवस्था धर्म, शान्ति सदाचारादिकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके पास इससे सुन्दर शब्द नहीं। ग्यारह सहस्र वर्ष वह दिव्य शासन धराको कृतार्थ करता रहा। श्रीवाल्मीकीय रामायण और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्रीरामके

मङ्गलमय चरितसे लोकमे कल्याणका प्रसार करते हैं। भगवान् व्यासके अतिरिक्त अनेक सस्कृत, हिदी तथा अन्य भाषाआके कवियो, विद्वानोने अपनी वाणी राम-गुणगानसे पवित्र की है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। हिदू-सस्कृतिकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरितमे हुई है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये उसम आदर्श हैं। हिदू-सस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित' के दर्पणम ही पूणत प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतका वह आदर्श आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव सुसस्कृत बन सकेगा।

[१९]
भगवान् बलराम

श्रीकृष्णावतार तो पिछले द्वापरम सत्ताईस कलियुगाक पश्चात् हुआ था। द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो भगवान् बलराम ही प्राय पधारते हैं। उन्हींको श्रुतियाँ द्वापरका युगावतार कहती हैं। माता देवकीके सप्तम गर्भमे वे पधारे। योगमायाने गोकुलमे नन्दबाबाके यहाँ स्थित राहिणीजीम उन्ह पहुँचा दिया। इस प्रकार व सङ्कर्षण कहलाये। इनकी गोकुल, मथुरा और द्वारकाकी कई लीलाएँ बडी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं। उनकी चरित-चर्चा एक दूसरेसे पृथक्-जैसे कुछ है ही नहीं। गोकुलमे दोनाकी सग-सग बालक्रीडा और वहाँसे वृन्दावन-प्रस्थान। बहुत थोडे चरित हैं, जब श्यामसुन्दरके साथ उनके अग्रज नहीं थे। ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक् बहुत कम रहे हैं।

वहाँ कस-प्रेरित असुर प्रलम्ब आया था। श्रीकृष्णको ता कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये। एक नवीन गोप-बालकको देखा और मिला लिया अपने दलमे। असुरने श्यामके दैत्य-दलन-चरित सुने थे। उसे उनसे भय लगा। अपने छद्मवेशमे वह दाऊको पीठपर बैठानेम सफल हुआ और भागा। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कौन ले जा सकता है। दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पडा। एक घूसा पडा तत्क्षण उसके मस्तकपर और फिर क्या सिर बच रहना था ? उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हे पक्व ताल-फलोकी सुरभि लुब्ध कर रही है। सखा कुछ चाह तो वह अप्राप्य कैसे रहे! असुर-गर्दभ धेनुक और उसका गर्दभ-परिवार—सब क्रीडामें ही नष्ट हो गये। प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है। इन दुष्ट गर्दभोने उसे पशुआ तकके लिये अगम्य बना दिया था। भगवान् बलरामने सखाओको ताल-फल प्रदान करनके बहाने सबके लिये निर्बाध कर दिया उस।

कन्हैया तो महाचचल है किंतु दाऊ भैया गम्भीर परमोदार शान्त हैं। श्याम उन्हींका सकोच भी करता है। वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे दखते रहते हैं। व्रज-लीलामे जब श्यामने शङ्खचूडको मारा, तब उसने समस्त गोप-नारियाके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजको उपहाररूपम दिया। कुवलयापीड—कसका उन्मत्त गजराज दोनो भाइयाकी थप्पडा और घूसाकी भट हुआ और मल्लशालाम चाणूरको श्यामने पछाडा तो मुष्टिक बलरामजीकी मुष्टिकाकी भेट हा गया।

दोना भाइयाने गुरुगृहम साथ-साथ निवास किया। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पडे और यदि श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजसे उसे छोड देनेकी प्रार्थना न की होती तो वह पकड लिया गया था तथा बलरामजी उसे मारने ही जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धोमे पकडकर छोड दिया, उसीके सामनेसे अठारहवीं बार भागना कोई अच्छी बात नहीं थी। किया क्या जाय ? श्रीकृष्णन प्रात से वह दिन पलायनके लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे अकेले भागे। जरासन्धके सम्मुख भागनेमे इतना आग्रह किया कि अग्रजका साथ भागना ही पडा।

'यह भी कोई बात है कि केवल हँसा जाय! जो बना-बिगाड न सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे ?' बलरामजीका विवाह हुआ। रवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावत बहुत लबी थीं। श्यामसुन्दर ता सदाक परिहासप्रिय हैं। बलरामजीने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमे पहुँचा दिया।

'श्याम अकेला गया है ?' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीके विवाहम शिशुपालके साथ जरासन्धादि ससैन्य आ रहे है यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ अकेले श्रीकृष्ण कन्या-हरण करने गय, यह तो अच्छा नहीं

हुआ। बलरामजीने यादवी सेना सज्जित की। वे इतनी शीघ्रतासे चले कि श्रीकृष्ण मार्गमे ही मिल गये। श्यामसुन्दरको केवल रुक्मिणीजीको लेकर चल देना था। शिशुपाल और उसके साथी तो बलरामके सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

'कृष्ण! सम्बन्धियोके साथ तुम्हे ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये।' बलरामजी राजाओकी सेनाको परास्त करके आगे बढे तो रुक्मीकी सेना आ गयी। उसके साथ उलझनमे कुछ विलम्ब हुआ। आगे आकर देखा तो छोटे भाईने अपने ही साले रुक्मीको पराजित करके रथमे बाँध रखा है। उसके केश, श्मश्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बडी दया आयी। छुडा दिया उसको, परतु आगे चलकर रुक्मीने अपने स्वभाववश बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथो मारा गया।

दुर्योधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया? क्षत्रियके लिये स्वयवरमे कन्या-हरण अपराध तो है नहीं। अकेले लडकेको छ महारथियोने मिलकर बदी किया, यह तो अन्याय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार पाकर। यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने छोटे भाईको शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था। सत्राजित्का वध करके शतधन्वा जब स्यमन्तकमणि लेकर भागा श्यामसुन्दरके साथ बलभद्रजीने उसका पीछा किया। वह मिथिलाके समीप पहुँचकर मारा जा सका। मणि उसके वस्त्रोमे मिली नहीं। बलरामजी इतने समीप आकर मिथिला-नरेशसे मिल बिना लौट न सके। दो मासतक वहीं दुर्योधनने उनसे गदा-युद्धकी शिक्षा ली। वही दुर्योधन यदुवशियोको अपना कृपाजीवी, क्षुद्र कहकर चला गया था और भगवान् बलरामके सम्मुख ही यादव महाराज उग्रसेनके प्रति उसने अपशब्द भी कहे। क्रुद्ध हलधरने हल उठाया। हस्तिनापुर नगर घूमने लगा। वे धराधार नगरको यमुनाजीमे फेकने जा रहे थे। 'पशूना लगुडो यथा।' 'पशु डडसे मानते हैं।' दण्डसे भीत कौरव शरणापन्न हुए। वे क्षमामय दण्डका तो केवल नाट्य करते हैं। उन्हे भी क्या रोष आता है?

महाभारतमे वे किस ओर होते? एक ओर प्रिय शिष्य दुर्योधन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण। वे तीर्थयात्रा करने चले गये। नैमिष-क्षेत्रमे इल्वल राक्षसका पुत्र बल्वल अपने उत्पातसे ऋषियोको आकुल किये था। उस विपत्तिसे उन तपस्वियोको त्राण मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे, तब महाभारत-युद्ध समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम सग्राम चल रहा था। दोनोमेसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत नहीं था।

यदुवशका उपसहार होना ही था। भगवान्की इच्छासे अभिशप्त यादव परस्पर सग्राम कर रहे थे। भगवान् बलराम उन्हे समझाने—शान्त करने गये, पर मृत्युके वश हुए उन्होने इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लीला-सवरण करना था। समुद्र-तटपर उन्होने आसन लगाया और अपने 'सहस्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमे प्रविष्ट हो गये।

[२०]

भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है, उसीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा।' आकाशवाणीसे कस चौंका। सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लडकी देवकीको विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा था। दिग्विजयी कस—मृत्युका भय शरीरासक्तको कायर बना देता है। वह अपनी बहनका वध करनेको ही उद्यत हो गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वचन दिया। इतनेपर भी कसने दम्पतिको रखा कारागारमे ही। विरोध करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बन्दी बनाया और वह स्वय मथुराका नरेश बन गया।

बच्चे होते सत्यभीरु वसुदेवजी कसके सम्मुख लाकर रख देते। वह उठाकर शिलापर पटक देता। हत्यासे शिलातल कलुषित होता गया। छ शिशु मरे। सातवें गर्भमे भगवान् शेष पधारे। योगमायाने उन्हे आकर्षित करके गोकुलमे रोहिणीजीके गर्भमे पहुँचा दिया। अष्टम गर्भमे वह अखिलेश आया। धरा असुर-नरेशोके अशुभ कर्मोंसे आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें पीडित हो रहे हैं, तो वह आयगा ही।

कसका कारागार भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न अर्धनिशा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी हो। चन्द्रोदयके साथ श्रीकृष्णचन्द्र-प्राकट्य हुआ। बन्दियोके

नेत्र धन्य हो गये। वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, शृंखलाएँ स्वत शिथिल हुईं, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी उस हृदय-धनको गोकुल जाकर नन्दभवन रख आये। कसको मिली यशोदाकी योगमाया-रूपी कन्या और जब कस उन्हे शिलातलपर पटक रहा था तब वे योगमाया, गगनमे सायुधाभरण अष्टभुजा हो गयीं।

गोकुलकी गलियोंमे आनन्द उमगा। आनन्दघन नन्दरानीकी गोदमे जो उतर आया था। कसके क्रूर प्रयास उस प्रवाहमे प्रवाहित हो गये। पूतना, शकटासुर, वात्याचक्र—सब विफल होकर भी कन्हैयाके करोसे सद्गति पा गये। मोहन चलने लगा, बडा हुआ और घर-घर धूम मच गयी—वह हृदयचोर नवनीत-चोर जो हो गया था। गोपियोके उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे। यह लीला समाप्त हुई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर। मैयाने ऊखलमे बाँधकर दामोदर बना दिया। यमलार्जुनका उद्धार तो हुआ किंतु उन महावृक्षोके गिरनेसे गोप शकित हो गये। वे गोकुल छोडकर वृन्दावन जा बसे।

वृन्दावन, गोवर्धन यमुना-पुलिन व्रज-युवराजकी मधुरिम क्रीडाके चलनेमे सबने और सहायता दी। श्रीकृष्ण वत्स-चारक बने। कसका प्रयत्न भी चलता रहा। बकासुर, वत्सासुर, प्रलम्ब धेनुक अघासुर, मयपुत्र व्योमासुर आदि आते रहे। श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार है। कालियके फणोपर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास कर लिया। ब्रह्माजी भी बछडे चुराकर अन्तमे उस नटखटकी स्तुति ही कर गये। इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन-पूजन किया गोपोंने और गोपालने। देव-कोपकी महावर्षासे गिरिराजको सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया। देवेन्द्र उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये। कसके प्रेषित वृषासुर केशी आदि जब गोपालके करोसे कर्मबन्धन-मुक्त हो गये तब उसने अक्रूरको भेजकर उन्हे मथुरा बुलवाया। नन्दबाबा राम-श्याम तथा गोपाके साथ मथुरापुरी पहुँचे।

राजाको सन्देश मिला धोबीकी मृत्युसे श्यामके पधारनेका। उस दिनका उनका अङ्गराग मार्गमें ही उस चिर-चचलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर कर दिया। कसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति तोड डाला गया। दूसरे दिन महोत्सव था कसकी कूटनीतिका। रगमण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवलयापीडको मारकर उसका श्रीगणेश किया। अखाडेमे उन सुकुमार-श्याम-गौर अङ्गासे चाणूर, मुष्टिक शल, तोशल-जैसे मल्ल चूर्ण हो गये। कसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उत्सव पूर्ण हुआ। महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुन राज्यसिहासनपर शुभासीन हुए।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष, तीन मास रहे थे। इस अवस्थामे उन्होने जो दिव्य लीलाएँ कीं वे भावुकोका जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं, पर आलोचककी कलुषित बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती। वह इस वयके बालकमे या तो उन लीलाओको समझ न पायेगा, या अपने अन्तरके कलुषमे डूबेगा। अस्तु, फिर तो श्याम व्रज पधारे ही नहीं। उद्धवको भेज दिया एक बार आश्वासन देने। अवश्य ही बलरामजी द्वारकासे आकर एक मास रह गये एक बार।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ शिक्षा प्राप्त की। गुरुदक्षिणामे गुरुका मृतपुत्र पुन प्रदान कर आये। मथुरा लौटते ही कसके श्वशुर जरासन्धकी चढाइयामे उलझना पडा। वह सत्रह बार ससैन्य आया और पराजित होकर लौटा। अठारहवी बार उसके आनेकी सूचनाके साथ कालयवन भी आ धमका। कहाँतक इस प्रकार युद्धमय जीवन सहा जाय? समुद्रके मध्यम दुर्गम दुर्ग द्वारका नगर बना। यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर श्रीकृष्ण पैदल यवनके सम्मुखसे भागे। पीछा करता हुआ यवन गुफामे जाकर चिर-सुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म हो गया। उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण आज 'रणछोड' हो रहे थे। बलरामजीको भी साथ भागना पडा। दोनो भाई प्रवर्षणपर चढकर भाग चले।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध है। रुक्मिणीजीका उन्होने हरण किया था। स्यमन्तकमणिकी खोजमे जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवतीजीको ले आये। 'मणि'-के कारण कलक लगानेके दोषसे लज्जित सत्राजित् अपनी पुत्री सत्यभामाको स्वय उन्हे प्रदान की। कालिन्दीजी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके स्वयवरका मत्स्यभेद करनेमे दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका और नग्नजित् नरेशके सातो साँड एक साथ नाथकर उनकी पुत्री सत्यासे दूसरा कौन विवाह कर पाता। मित्रविन्दाजीको उन्होने स्वय हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने सादर प्रदान किया। यह तो आठ पटरानियोकी बात है। पृथ्वीपुत्र

भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बन्दी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्राम अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पडा। अपनी सहस्र भुजाआके मदम वह अपने आराध्य भगवान् शकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बन्दी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धम उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। कवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मय-निर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभाम गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियाके पश्चात् चक्रकी भट हो गया वह।

पाण्डवोका परित्राण ता श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतम हारे पाण्डवोकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामे दु शासनद्वारा नग्न की जाने लगी, वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीका वनम भेजा ही था पाण्डवाके विनाशके लिय पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलाकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थ-प्रिय उपस्थित जा हा गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवाके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीक केलके छिलकोका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलान प्रमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थ-सारथि बना। सग्रामभूमिम उस गाता-गायकन अर्जुनका अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म द्राण कर्ण अश्वत्थामाक दिव्यास्त्रासे रक्षा की पाण्डवाकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवाका एकमात्र वशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उस प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णन उस पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रह ता वही बलान्मत्त हाकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णका यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियाका शाप ता निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे कट मरे और आप देखत रह। व्याधने पादतलम बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनका पुरस्कार दिया गया। इस प्रकार लीला-सवरण की द्वारकेशन।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीन श्रीमद्भागवतम उनकी दिव्य लीलाआका वर्णन किया हैं। शुकदवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिम मग्न रहा करत थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयानिधि हैं। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छ गुण—ऐश्वर्य धर्म, यश, शाभा ज्ञान और वैराग्य—सब उसम पूण हैं। त्याग प्रम, भोग और नीति—सब उन पूर्ण पुरुषम पूर्ण ही ह। हिदू-सस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णम समस्त निष्ठाआकी पूर्णता होती है।

[२१]

भगवान् बुद्ध

यह विवादास्पद विषय ह कि पुराणामे जिस बुद्धावतारका वर्णन है वह महाराज शुद्धादनके पुत्र अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणाका बुद्धावतार कीकट देशम (गयाक पास) ही हुआ था यह तो ठीक, कितु उनके पिताको वहाँ 'अजिन' कहा गया है। जा भी हो यहाँ तात्पर्य भगवान्के उस बुद्धावतारस है, जिसका वर्णन पुराणाम है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्गपर उनका अधिकार था। दैत्येन्द्रने इन्द्रका पता लगाया ओर पूछा 'हमारा राज्य स्थिर कैस रहे?' इन्द्रने शुद्धभावसे उन्ह यज्ञ एव वैदिक आचरणका उपदेश दिया। दैत्य यज्ञपरायण हो गये। वे यज्ञक प्रभावस अजेय थे। ससारम उनका उपद्रव बना था। विश्वम आसुर-भाव बढ रहा था।

'राम-राम! तुम लाग यह क्या पाप करत हो! यज्ञम कितनी हिंसा होती है। अग्निमे ही पता नहीं कितने कीट जलत है।' भगवान् विष्णुन बुद्धरूप धारण किया। व एक हाथम झाडू लिये मार्ग स्वच्छ करके पादक्षेप करत पहुँचे असुराक पास। उनक वस्त्र मलिन थे। स्नान व करत न थ।

दन्तधावनके बिना दाँत स्वच्छ न थे, सबमे हिसा जो थी। दैत्योको उनका वह तत्त्वबोध ठीक जान पडा। यज्ञ छूट गया। देवताओंने उन यज्ञहीन, मलिन, अल्पप्राण, प्रतिरोधहीन असुरोको पराजित करके स्वर्गसे मार भगाया।

[२२]

भगवान् कल्कि

कलिके अन्तम सम्भल-ग्राममे विष्णुयश ब्राह्मणके यहाँ भगवान् कल्किका प्रादुर्भाव होगा। अभी कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इस अवतारके होनेम लाखा वर्ष अभी शेष हैं। उस समय श्रुतियाका लोप हो चुकेगा। मानव सदाचारहीन, अल्पकाय, अल्पसत्त्व एव अत्यन्त अल्पायु हागे।

भगवान् परशुराम स्वय कल्कि भगवान्‌को वेदोका उपदेश करेगे। भगवान् शिव उन्हे शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देगे। शकरजीसे अश्व एव खड्ग प्राप्तकर भगवान् पृथ्वीके समस्त आसुरी वृत्तिके प्राणियोका वध कर डालगे। भगवान्‌के पृथ्वीपर होनेके कारण नूतन सतति शुद्ध भावापन्न तथा सबल होगी। इस प्रकार सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

[२३]

भगवान् हस

'चित्त स्वय त्रिगुणात्मक है और तीना गुण चित्तम ही रहते हैं। इनका सम्बन्ध स्थायी है। ऐसी दशामें निस्त्रैगुण्यकी प्रतिष्ठा कैसे होगी?' सनकादि कुमाराने लोकस्रष्टासे प्रश्न किया। यदि चित्त गुणहीन नहीं हो सकता तो माक्ष किस प्रकार सम्भव है? हिदू-धर्मका परम लक्ष्य तो मोक्ष है। यदि वही सिद्ध न हो तो सम्पूर्ण धर्म ही व्यर्थ हो जायगा। ब्रह्माजीने बहुत सोचा, परतु प्रश्नमे कहाँ सदेहका बीज है, पता न लगा। वे आदिपुरुपका ध्यान करने लगे।

'आप कौन हैं?' वहाँ एक महाहस प्रकट हो गया जैसे सहस्र-सहस्र चन्द्रज्योत्स्ना घनीभूत हो गयी हो। कुमारोके साथ लोकस्रष्टाने अर्घ्य निवेदित करके परिचय जानना चाहा।

'मैं क्या कहूँ—यह आप लोग स्वय निर्णय कर!' हसकी वाणीमे विचित्र भगी थी। 'आत्माम कोई भेद नहीं, कोई परिचय नहीं और शरीरकी दृष्टिस भी सबमे वही पञ्चतत्त्व हैं। उनम भी कोई विलक्षणता नहीं। आप सब ब्रह्मज्ञानी हैं। आप स्वय सोच कि गुणामे चित्त स्थित है और चित्तम गुण है, पर मुझम तो चित्त और गुण दाना हैं तथा दोना नहीं हैं। स्वप्नम देखनेवाला, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या भिन्न-भिन्न होते हैं?' भगवान्‌की वाणीने सदेहका निराकरण कर दिया। ब्रह्माजीके साथ कुमाराने उनकी विधिवत् पूजा की।

[२४]

भगवान् हयग्रीव

कल्पभेद हरिचरित सुहाए।

क्षीरोदधिम अनन्तशायी प्रभुकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ। पद्मकी कर्णिकासे सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोकस्रष्टा व्यक्त हुए। क्षारोदधिसे दो विन्दु कमलपर पहुँच गये। वह चेतनात्मक नाभिपद्म—दोना विन्दु सजीव हो गये। वे ही आदिदैत्य मधु-कैटभ थे। दैत्योने कमल-कर्णिकापर बैठे ब्रह्माजीको देखा। वे एकाग्र मनसे भगवान्‌के नि श्वाससे निकली श्रुतियाको ग्रहण कर रहे थे। दैत्योने श्रुतिका हरण किया और वहाँसे नीचे भाग गये। आदिमे ही अनधिकारियोंको श्रुतिकी प्राप्ति हो जानेसे ब्रह्माजी चचल हुए। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए, उन्हाने हयग्रीवरूप धारण किया। दैत्याको मारकर उन्हाने श्रुतिका उद्धार किया।

× × ×

दूसरे कल्पकी बात—

दितिपुत्र हयग्रीव सरस्वतीके तटपर उग्रतपमे सलग्न था। महामाया प्रसन्न हुईं। उन्हाने वरदान माँगनेको कहा। दैत्यको अमरत्व अभीष्ट था किंतु कोई भी आसुरभावापन्न होकर अमर कैसे हो सकता है। 'मुझे हयग्रीवके अतिरिक्त कोई न मारे!' दैत्यने समझा कि मैं स्वय अपना वध क्यो करूँगा। देवीने 'तथास्तु' कह दिया। असुरको लगा, उसका छल सफल हो गया। वह अमर ही तो हो गया।

सात्त्विकता न हो ता अमरत्व जगत्‌के लिये अभिशाप बनगा। दैत्य हयग्रीव नि सकोच अपनी असुरता चरितार्थ कर रहा था। देवता उससे विजय नहीं पा सकते थे। धर्म एव मर्यादाका विनाश हो रहा था। सर्वेश्वर कबतक यह अधर्म चलने देते। हयग्रीवने देखा कि अङ्गारतप्त सटाओ-जैसा मुखसे ज्वाला निकालता हयग्रीव पुरुप प्रकट हो गया है। दैत्य-समुदाय उस ज्वालामे पतिगकी भाँति नष्ट हो गया।

भगवान् शिवकी अवतार-लीलाएँ

भगवान् शिव तथा भगवान् शिवके नाम और उनकी लीलाएँ समस्त ससारके मङ्गलाके मूल हे। वे कल्याणमय हैं, मङ्गलमय हैं और परम शान्तमय हैं। समस्त विद्याओके मूलस्थान भगवान् शिव ही हैं। वे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, सबके मूलकारण मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एव ईश्वरके भी ईश्वर होनेके कारण महामहेश्वर कहे जाते हैं। वे सभी देवताआके भी परम दैवत या आराध्यदेव सभी स्वामियाके भी स्वामी, नित्य, अनादि, अजन्मा और परब्रह्म पूर्णप्रकाशयुक्त परमात्मा हैं। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्ताका अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनवाल, अनन्त राशियोके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूपित श्मशानवासी कहे जानेपर भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्तास आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूपम आविर्भूत गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यभ अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबक कारण हाते हुए भी अकारण हैं। यह उनकी लीला-विभूतिका ही वैशिष्ट्य है।

आशुतोप एव औढरदानी हानेक कारण व शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्ताको सर्वस्व—यहाँ तक कि स्वयको भी प्रदान कर दत हैं। केवल दवता ही नहीं अपितु ऋपि-मुनि ज्ञानी-ध्यानी योगी-सिद्ध-महात्मा विद्याधर, असुर नाग किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिवके लीला-चरित्रोका ध्यान, सस्तवन, स्मरण चिन्तन करके आनन्दित होते रहते हैं और उनकी कृपा-लीलाकी अनुभूति करते हुए सदाके लिये उन्हींके हो जाते हैं।

भगवान् शकरकी समस्त जीवोपर परम अनुकम्पा है। अशेप ब्रह्माण्ड उन्हींका स्वरूप ह शिवमय ही है। अन्तर्यामी-रूपसे सर्वत्र वे ही व्याप्त हैं। यह सम्पूर्ण ससार भगवान् शिव ओर उनकी शक्ति शिवाका ही लीला-विलास ह। उनकी व्यक्त एव अव्यक्त सभी लीलाआम अनन्त कल्याण एव अनन्त मङ्गल परिव्याप्त है। उनकी सहारलीला भी जीवाक हितके लिय ही होती है। यद्यपि उनका न काई नाम हे न कोई रूप हे, तथापि जितन नाम हैं आर जितने भा रूप हैं वे सब भगवान् शिवके ही हैं। जितनी भी क्रियाएँ हे वे सब शिवलीलापरक ही हैं। इसीलिये उनके अनन्त नाम हैं अनन्त रूप हैं अनन्त गुण हैं, अनन्त कल्याणकारिणी चेष्टाएँ ओर अनन्त आनन्ददायिनी लीलाएँ हैं। इसीलिये वे लीलानट भी कहलाते हैं। प्रकृति-नटीक सूत्रधार, सर्वाधार, लीलावपुधारी भगवान् शकर ही हैं। उनका लीलाएँ बडी हा विलक्षण और मनोरम हे। उनका स्वरूप ही लालामय है।

परिवार, पार्षद, निवास, आयुध एव वाहन

भगवान् शिवका परिवार बहुत बडा है। वहाँ सभी द्वैताका अन्त दीखता है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ चौंसठ योगिनियाँ मातृकाएँ तथा भरवादि इनक सहचर और सहचरी हैं। जिनक अध्यक्ष वीरभद्र ह एस अनेक रुद्रगण इनक साथ रहते हैं। माता पार्वतीकी सखियाम विजया आदि प्रसिद्ध हैं। गणपति-परिवारम उनकी पत्नी सिद्धि बुद्धि तथा क्षेम और लाभ दो पुत्र हैं उनका वाहन मूषक है। भगवान् कार्तिकेयकी पत्नी दवसना तथा वाहन मयूर है। भगवती पार्वतीका वाहन सिंह कहा गया है तथा स्वय भगवान् शिव धर्मावतार नन्दीपर आरूढ होते हैं।

बाण रावण चण्डी रिटि तथा भृङ्गी आदि उनके मुख्य पार्षदोम परिगणित हैं। इनक द्वाररक्षकके रूपम कीतिमुख प्रसिद्ध हैं उनकी पूजाके बाद ही मन्दिर आदिम प्रवेश तथा भगवान् शिवकी पूजा करनेका विधान है इसम

भगवान् शकर अति प्रसन्न होते हैं।

यद्यपि भगवान् शिव सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि काशी एव कैलास—ये दो उनके मुख्य निवास-स्थान कहे गये हैं। भक्तोके हृदय-प्रदेशमे तो वे सर्वदा निवास करते ही हैं।

उनके अनेक आयुध हैं जैसे—त्रिशूल, टक (छेनी), कृपाण, वज्र, अग्नियुक्त कपाल, सर्प, घण्टा, अकुश, पाश तथा पिनाक धनुष। इन सबमे भी त्रिशूल और पिनाक—ये उनके दो मुख्य आयुध हैं।

स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शकरका वाहन बनूँ और तब दीर्घकालतक उन्होने इसके लिये तपस्या की। अन्तमें भगवान्ने उनपर अनुग्रह किया और उन्हे अपने वाहनके रूपमे स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमे उनके सदाके लिये वाहन बन गये—'वृषो हि भगवान् धर्म ।'

सुर और असुर दोनोके उपास्य

भगवान् शिव देवताओके उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होने अनेक असुरों—अन्धक, दुन्दुभी महिष त्रिपुर, रावण निवातकवच आदिको भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मदसे दुराचारको प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदिका सहारकर उनका भी उद्धार कर दिया। गजासुरका गजाजिन ही भगवान् शिवके अजिन-वस्त्रके रूपमे सुशोभित होता है। कुबेरादि लोकपालोका आपकी ही कृपासे उत्तर दिशाका स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षोका स्वामित्व राजाधिराज तथा राजराजका महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शिवकी विविध लीला-मूर्तियाँ एवं उनके ध्यान-स्वरूप

भगवान् शकरके चरित्र बडे ही उदात्त एव अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। समुद्र-मन्थनके समय वासुकिनागके मुखसे भयकर विषकी ज्वालाएँ उठीं और समुद्रके जलमे मिश्रित होकर वे कालकूट विषके रूपमे प्रकट हो गयीं। वे ज्वालाएँ आकाशमे व्याप्त होने लगीं, जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि और चराचर जगत् जलने लगा। सभी देवगणो तथा ऋषि-मुनियोको दुःखित देखकर भगवान् विष्णुके अनुरोधपर उन्होने तत्काल उस विषको अपनी योगशक्तिसे आकृष्टकर कण्ठमे धारणकर लिया। इसीसे वे 'नीलकण्ठ' कहलाये। उसी समय समुद्रसे अमृतकिरणोसे युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हे देवताओके अनुरोधपर भगवान् शकरने उस उद्दीप्त गरलकी शान्तिके लिये अपने ललाटपर धारण कर लिया और 'चन्द्रशेखर'-'शशिशेखर' यह नाम पड गया। अपनी जटाओमे गङ्गा धारण करनेसे वे 'गङ्गाधर' कहलाते हैं।

शास्त्रोमे उनकी उपासना भी निर्गुण, सगुण, लिङ्ग-विग्रह तथा प्रतिमा-विग्रहमे परिकरसहित अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपोमे उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति तथा योगीश्वर आदि अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शिवका एक विशिष्ट रूप लिङ्गरूपमें भी है, जिसमें ज्योतिर्लिङ्ग स्वयम्भूलिङ्ग, नर्मदेश्वर तथा अन्य रत्नादि-धात्वादि एव पार्थिवादि-लिङ्ग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपोकी भी उपासना भक्तजन बडी श्रद्धाके साथ करते हैं।

पञ्चमूर्ति

ईशान, तत्पुरुष, अघोर वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ हैं। ये ही उनके पाँच मुख भी कहे जाते हैं। शिवपुराणके अनुसार शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीडा, दूसरी तपस्या, तीसरी लोकसहार चौथी अहकारकी अधिष्ठात्री और पाँचवीं ज्ञानप्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण ससारको आच्छन्न कर रखती है।

भगवान् शिवके पञ्चकृत्य

सृष्टि, पालन, सहार, निग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्चकृत्य उपर्युक्त पञ्चमूर्तियोद्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

अष्टमूर्ति

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व भव रुद्र उग्र भीम पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमश पृथिवी, जल, तेज वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित रहती हैं। पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चलिङ्गोकी दक्षिण भारतमे विशेष उपासना होती है। क्षेत्रज्ञमूर्तिकी पशुपतिनाथके रूपमे आराधना की जाती है।

ज्योतिर्लिङ्ग

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन महाकालेश्वर, परमेश्वर (ओंकारेश्वर), केदारेश्वर भीमशकर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक

वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर तथा घुश्मेश्वर—ये प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं।

भगवान् शिवके तत्तत्स्वरूपपरक यद्यपि अनेक ध्यान-स्वरूप शास्त्रोमे निर्दिष्ट हैं, उन नाम-रूपोसे उनकी उपासना भी होती है, उनमेसे कुछ ध्यान-स्वरूपोका सक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

१-सदाशिव

भगवान्‌के सदाशिवकी मूर्तिमे ऊपरकी ओर गजमुक्ताके समान किंचित् श्वेत-पीत-वर्ण, पूर्वकी ओर सुवर्णके समान पीतवर्ण, दक्षिणकी ओर सजल मेघके समान सघन नीलवर्ण, पश्चिमकी ओर स्फटिकके समान शुभ्र उज्ज्वलवर्ण तथा उत्तरकी ओर जपापुष्प या प्रवालवर्णके समान रक्तवर्ण है। इस प्रकार उनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं, मुकुट बालचन्द्रसे सुशोभित है, शरीरकी प्रभा करोडो पूर्ण चन्द्रमाके समान है और दस हाथोमे क्रमश त्रिशूल, टक (छेनी), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अकुश, पाश तथा अभयमुद्रा विराजमान हैं।

२-महामृत्युञ्जय

भगवान्‌का यह स्वरूप मृत्युको भी जीतनेवाला है। इस स्वरूपमें वे अपने ऊपरके दो हाथाम स्थित दो कलशाके द्वारा आर्त व्यक्तिके सिरको अमृतजलसे आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोमे क्रमश मृगमुद्रा तथा वलयाकार रुद्राक्षमाला लपेटे हुए हैं, दो हाथोको गोदमे रखकर उसपर अमृत-कलश लिये हुए हैं तथा अन्य दो हाथोंस उसे ऊपरसे ढके हुए हैं। इस प्रकार आठ हाथोसे युक्त सुन्दर कैलासपर्वतपर स्थित, स्वच्छ कमलपर विराजमान और ललाटपर बालचन्द्रमाको मुकुटके रूपमे धारण किये हुए त्रिनेत्रासे सुशोभित हैं।

३-महेश

भगवान् शिवके इस स्वरूपकी कान्ति चाँदीके पर्वतके समान श्वेत है। ये सदैव सुन्दर चन्द्रमाको आभूपणरूपसे धारण करत हैं तथा रत्नमय अलकारास यह विग्रह उज्ज्वल हो गया है। ये हाथोमे परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा धारण करते हैं। प्रसन्न-मुद्रामें पद्म-आसनपर विराजमान हैं, दवतागण इनके चारो ओर खडे होकर स्तुति करते हैं, ये बाघकी खाल पहनते हैं तथा विश्वके आदि, जगत्‌की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं। इन महेश्वरका स्वरूप भी पाँच मुखो और तीन नेत्रोसे देदीप्यमान होता रहता है।

४-अर्धनारीश्वर

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लालवर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोम त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी आर भगवान् शकरके सम्मिलित स्वरूपमे अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बालचन्द्रमा तथा मुकुटकी विलक्षण समुज्ज्वल शोभा झलक रही है।

ये सभी ध्यानस्वरूप भगवान् शिवके लीलारूप ही हैं जो सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमे व्याप्त हैं। इसलिये सबको अभय दान देना सबपर अनुग्रह करना—यह विश्वरूप शिवका आराधन ही माना गया है।

भगवान् शिवके कतिपय नाम-विग्रहोंके आख्यान

भगवान् शकरके अनेक नाम-विग्रह हैं। उनमे एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाममे नामके गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उसका अर्थ साचा जाय, या उसके प्रचार होनेका मूल देखा जाय तो अधिकाश नामासे भ्रम-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्य-लाभादि हो सकते हैं। भक्तोके हित-साधनार्थ यहाँ शिवके कुछ नाम-विग्रहोका उल्लेख मात्र किया जा रहा है—

'शिव'—जो समस्त कल्याणोके निधान हैं और भक्ताके समस्त पाप और त्रितापके नाश करनेमें सदैव समर्थ हैं उनको 'शिव' कहते हैं।

'पशुपति'—ज्ञानशून्य-अवस्थामे सभी पशु माने गय हैं (ज्ञानेन हीना पशुभि समाना)। दूसर जो सबको अविशेषरूपमें देखते हो वे भी 'पशु' कहलाते हैं। अत ब्रह्मास लेकर स्थावरपर्यन्त सभी पशु मान जा सकत हैं और शिव सबका ज्ञान देनेवाले तथा उनको अज्ञानसे बचानेवाले हैं इसलिये वे 'पशुपति' कहलाते हैं।

'मृत्युञ्जय'—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्युको कोई जीत नहीं सकता। स्वय ब्रह्मा भी युगान्तम मृत्युकन्याके

द्वारा ब्रह्ममे लीन होते हैं। परतु उनके अनेक बार लीन होनेपर शिवका एक बार निर्गुणमे लय होता है, अन्यथा अनेक बार मृत्युकी ही पराजय होती है। इसीलिये वे 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

'त्रिनेत्र'—एक बार भगवान् शिव शान्तरूपसे बैठे हुए थे। उसी समय हिमाद्रितनया भगवती पार्वतीने विनोदवश पीछेसे आकर भगवान् शिवके दोनो नेत्र मूँद लिये। नेत्र क्या थे, शिवरूप त्रैलोक्यके चन्द्र और सूर्य थे। ऐसे नेत्रोके बद होते ही विश्वभरमे अन्धकार छा गया और ससार अकुलाने लगा। तब शिवजीके ललाटसे युगान्तकालीन अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र प्रकट हुआ। उसके प्रकट होते ही दसो दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं, अन्धकार हट गया और हिमालय-जैसे पर्वत भी जलने लग गये। यह देखकर पार्वती घबरा गयीं और हाथ जोडकर स्तुति करने लगीं। तब शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने ससारकी परिस्थिति यथापूर्व बना दी, तभीसे वे 'चन्द्रार्काग्निविलोचन' अर्थात् 'त्रिनेत्र' कहलाने लगे।

'कृत्तिवासा'—कृत्तिवासा वे हैं जिनके गजचर्मका वस्त्र हो। ऐसे वस्त्रवाले शिव हैं। उनको इस प्रकारका वस्त्र रखनेकी क्या आवश्यकता हुई थी, इसकी स्कन्दपुराणमे एक कथा है, उसमे लिखा है—जिस समय महादेव पार्वतीको रत्नेश्वरका माहात्म्य सुना रहे थे, उस समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर शिवके गणाको दु ख देता हुआ शिवके समीप चला गया। ब्रह्माके वरसे वह इस बातसे निडर था कि 'कन्दर्पके वश होनेवाले किसीसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' किंतु जब वह कन्दर्पके दर्पका नाश करनेवाले भगवान् शिवके सामने गया तो उन्होने उसके शरीरको त्रिशूलमे टाँगकर आकाशमे लटका दिया। तब उसने वहींसे शिवकी बडी भक्तिसे स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होने वर देना चाहा। इसपर गजासुरने अति नम्र होकर प्रार्थना की—'हे दिगम्बर। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरे चर्मको धारण कीजिये और अपना 'कृत्तिवासा' नाम रखिये, इसपर शिवजीने 'एवमस्तु' कहा और वैसा ही किया।

'पञ्चवक्त्र'—एक बार भगवान् विष्णुने किशोर-अवस्थाका अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया। उसको देखनेके लिये ब्रह्मा-जैसे चतुर्मुख तथा अनन्त-जैसे बहुमुख अनेक देवता आये और उन्होने एक मुखवालोकी अपेक्षा अधिक आनन्द प्राप्त किया। यह देखकर एक मुखवाले शिवजीको बहुत क्षोभ हुआ। वह सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और अनेक नेत्र होते तो भगवान्के इस किशोर-रूपका सबसे अधिक दर्शन करता। बस, फिर क्या था, इस वासनाके उदय होते ही वे पञ्चमुख हो गये और प्रत्येक मुखमे तीन-तीन नेत्र बन गये। तभीसे इनको 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं।

'शितिकण्ठ'—किसी समय बदरिकाश्रममे नर और नारायण तप कर रहे थे। उसी समय दक्षयज्ञको ध्वस करनेके लिये शिवने त्रिशूल छोडा था। दैवयोगसे वह त्रिशूल यज्ञ विध्वस करके नारायणकी छातीको भी भेद गया और शिवके पास आ गया। इससे शिव क्रोधित हुए और आकाश-मार्गसे नारायणके समीप गये तब उन्होने शिवका गला घोट दिया। तभीसे ये 'शिति (नील)-कण्ठ' कहलाने लगे।

'खण्डपरशु'—एक बार नरने परशुके आकारके एक तृणखण्डको ईषिकास्त्रसे अभिमन्त्रितकर शिवपर छोडा था और शिवने उसका अपने महत्-प्रभावसे खण्ड कर दिया था। तबसे यह 'खण्डपरशु' भी कहलाते हैं।

'प्रमथाधिप'—कालिकापुराणम लिखा है कि ३६ काटि प्रमथगण शिवकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमें १३ हजार तो भोगविमुख तथा योगी और ईर्ष्यादिसे रहित हैं। शेष कामुक तथा क्रीडा-विषयम शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपर भी उनकी विकटतासे लोग भयकम्पित रहते हैं।

'गङ्गाधर'—ससारके हित और सगर-पुत्रोके उपकारके लिये भगीरथने त्रिभुवनव्यापिनी गङ्गाका आवाहन किया तब यह सदेह हुआ कि आकाशसे अकस्मात् पृथिवीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते है। अत भगीरथकी प्रार्थनासे गौरीशकरने उसे अपने जटामण्डलमे धारण कर लिया। इसीसे इनको 'गङ्गाधर' कहते है।

'महेश्वर'—जो वेदोके आदिमे आकाररूपसे माने गये हैं और वेदान्तम निर्गुणरूपसे स्थित रहते हैं वे महेश्वर कहलाते

हैं। अथवा सम्पूर्ण देवताओमे प्रधान होनेसे भी 'महेश्वर' नामसे विख्यात हैं।

'रुद्र'—दु ख और उसके समस्त कारणोके नाश करनेसे तथा सहारादिमे क्रूर रूप धारण करनेसे शिवको 'रुद्र' कहते हैं।

'विष्णु'—पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच महाभूतामे तथा जड-चैतन्यादि सम्पूर्ण सृष्टिमे जो सदैव व्याप्त रहते हैं, उन्हींको विष्णु कहते हैं। यह गुण भगवान् शिवमे सर्वदा विद्यमान रहता है। अत शिवको 'विष्णु' कहते है।

'पितामह'—अर्यमा आदि पितरोके तथा इन्द्रादि देवोके पिता होने और ब्रह्माके भी पूज्य होनेसे शिवजी 'पितामह' नामसे विख्यात हैं।

'ससारवैद्य'—जिस प्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सद्वैद्य उत्तम प्रकारकी महौषधियो और अनुभूत प्रयोगासे ससारियोके समस्त शारीरिक रोगोको दूर करते हैं, उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे ससारियाको भवरोगसे छुडाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रामे यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेक प्रकारकी अद्भुत अलौकिक ओर चमत्कृत ओपधियोके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेक प्रकारकी महौपधियाँ प्राप्त हो सकती हैं और वे मनुष्याके अतिरिक्त पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादि ही नहीं, स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसको दूर करनवाले भी है। इसीलिये वे 'ससारवैद्य' सिद्ध हुए हैं।

'सर्वज्ञ'—तीनो लोक और तीनो कालकी सम्पूर्ण बाताको (जिनको अन्य लोग नहीं जान सकते) सदाशिव अनायास ही जान लेते हैं। इसीसे उनको 'सर्वज्ञ' कहते हैं।

'परमात्मा'—उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणोसे सयुक्त होने और समस्त जीवाके आत्मा होनेसे श्रीशिव 'परमात्मा' कहलाते है।

'कपाली'—ब्रह्माके मस्तकको काटकर उसके कपालको कई दिनोतक करमे धारण करनेसे आप 'कपाली' कहे जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसे नामोका तथा उनके तथ्य और कथाओंके अन्यान्य प्रयोजन सिद्ध हैं। अत ऐसे कल्याणकारक नामोवाले विश्वव्यापी, विश्वरक्षक और विश्वेश्वर महादेवका प्राणिमात्रको स्मरण करना चाहिये।

भगवान् शिवकी विविध लीला-कथाएँ

'रुद्र' भगवान् शिवका ही नाम है। वेदामे उनके अनेक नामोमे रुद्र नाम ही विशेष है। वहाँ बताया गया है कि रुद्र एक हैं और असख्य भी हैं। यथा—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीय । असख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। (निरुक्त १। ५। १५)

—यह वचन भगवान् शिवके अनन्त माङ्गलिक लीलावताराका ही परिचायक है। कभी-कभी भगवान् शिव भक्तोपर अनुग्रह करनेके लिये और उनकी इच्छापूर्तिके लिये स्वय ही उसके घरमे पुत्र आदि बनकर रहने लगने हैं। यहाँ भगवान्की इसी प्रकारकी कुछ लीलाओका दर्शन कराया जा रहा है—

भगवान् शिवके नन्दीश्वर-अवतारकी लीला

पूर्व समयकी बात है शिलाद नामके एक धर्मात्मा मुनि थे। वे भगवान् शिवके परम भक्त थे। एक बार उनके मनमे यह इच्छा उत्पन्न हुई कि एक ऐसा पुत्र मुझे प्राप्त हो जो अयोनिज हो और अमर भी हो। वे महान् तपस्वी तो थे ही, ऐसा कर भी सकते थे, पर उन्हाने अपने आराध्यदेव भगवान् शकरके सामने अपना निवेदन प्रस्तुत किया और कहा—'प्रभो! मैं आपके समान ही अयोनिज पुत्र चाहता हूँ।' शिव बोले—'वत्स! ऐसा होना तो कठिन है किंतु मैं स्वय ही आपके पुत्रके रूपमे अवतार धारण करूँगा।' ऐसा कहकर शकरजी अन्तर्धान हो गये।

शिलादमुनिकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे अपने आश्रममे आकर पूर्ववत् यज्ञ-यागादि तथा तपोऽनुष्ठानमे लग गये। एक दिन यज्ञवेत्ताओमे श्रेष्ठ महामुनि शिलाद यज्ञ करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे उसी समय उनके शरीरसे भगवान् शिव प्रकट हो गये। उस समय सारी दिशाओमे प्रसन्नता छा गयी। ब्रह्मादि देवता ऋषि-मुनि सभी साक्षात् शकरके ही अवतार शिलाद-पुत्रके दर्शनके लिये वहाँ आ पहुँचे। उस समय वे सूर्यके समान प्रभाशाली

दीख रहे थे। उनके तीन नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं। जटा-मुकुट धारण किये थे। त्रिशूल आदि आयुधोंको धारण किये हुए थे। ऐसे बालकको देखकर शिलाद आनन्दमे निमग्न हो गये और उससे कहने लगे—'सुरेश्वर! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ'—

त्वयाऽहं नन्दितो यस्मान्नन्दीनाम्ना सुरेश्वर।
तस्मात् त्वां देवमानन्द नमामि जगदीश्वरम्॥
(शिवपु०, शतरुद्रस० ६। ४५)

सबको आनन्दित करनेके कारण उस बालकका नाम नन्दी पड गया। शिलादमुनि अपने दिव्य बालक नन्दीको लेकर अपनी पर्णशालामे आये, वहाँ पहुँचते ही लीलाधारी शिव (नन्दी)-ने अपना चतुर्भुज एव त्रिनेत्रवाला लीला-रूप छोड दिया और वे एक सामान्य मनुष्यके बालकके समान हो गये। तब महामुनिने बालकके जातकर्म आदि सभी सस्कार किये और फिर बादमें साङ्गोपाङ्ग सभी वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन कराया। जब नन्दी सात वर्षके हो गये तो एक दिन मित्र और वरुण देवता महामुनि शिलादके पास आये और मुनिको आश्वस्त करते हुए बोले—'महामुने! यह बालक सर्वगुणसम्पन्न है, किंतु इसकी आयु अत्यन्त ही अल्प है।' यह सुनकर शिलाद अपने पुत्रका आलिङ्गन कर रोने लगे। पिताकी ऐसी पुत्रवत्सलता देखकर नन्दी (जो स्वय शिवरूप ही थे, लीलासे पुत्र बने थे) बोले—'पिताजी! किस कारणसे आप रो रहे हैं?' तब पिताने उसके अल्पायु होनेकी बात उसे बतायी। नन्दीने कहा—'पिताजी, आप चिन्तित न होइये। देवता-दानव तथा काल आदि कोई मुझे मार नहीं सकता, अत आप दु खी न हो।' पिताको आश्चर्य हुआ बोले—'मेरे प्यारे लाल! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है अथवा तुम्हे कौन-सा ऐसा ज्ञान, योग या ऐश्वर्य प्राप्त है, जिसके बलपर तुम ऐसा कह रहे हो।'

इसपर नन्दीने कहा—'तात! मैं न तो तपसे मृत्युको हटाऊँगा और न विद्यासे। मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है—

महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा॥
(शिवपु० शतरुद्रस० ६। ६१)

—ऐसा कहकर पिताको प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा करके नन्दी तपस्याके लिये वनम चले गये और एकान्त स्थानमे समाधियोगके द्वारा भगवान् शकरका ध्यान करन लगे। भगवान् शकरने दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया। अनेक वर प्रदान किये और उन्हे अपने गणोका अधिपति बना दिया। भगवान् शकरकी कृपासे नन्दीश्वरके दस हाथ और तीन नेत्र हो गये, वह दूसरे शिवके समान ही प्रतीत होने लगा। अब नन्दी नन्दीश्वर हो गये। मरुताकी कन्या सुयशासे नन्दीश्वरका विवाह हुआ।

भगवान् शकर तथा माता पार्वतीने नन्दीश्वरको अजेय, अमर तथा सदा पूज्य होनेका वर प्रदान किया और अपनी सन्निधि भी प्रदान की। उन्हींके वरदानसे नन्दीके पिता शिलाद आदिको भी भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त हुआ। तभीसे नन्दीश्वर शिवके पुत्ररूपम जाने गये। यह भगवान् शकरकी लीला ही थी।

कालभैरव नामक अवतारकी लीला

परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ करनेवाले हैं। उन्हींकी मायासे मोहित ब्रह्मा एव विष्णुमे एक बार विवाद उत्पन्न हो गया, उसी विवादको शान्त करनेके लिये भगवान् शिवने क्रोध-रूपमें कालभैरव नामसे अवतार धारण किया। भगवान्का यह अवतार विश्वका भरण-पोषण करनेवाला है। भीषण होनेक कारण 'भैरव' कहलाता है। इन्हींसे कालका आविर्भाव हुआ है। ये साक्षात् काल-रूप हैं, इसलिये 'आमर्दक' भी इनका एक नाम है। ये भक्तोंके समस्त पापोंका तत्क्षण ही भक्षण कर देते हैं। इसलिये 'पापभक्षण' इनका यह नाम पडा। इन्हे काशीपुरीका आधिपत्य प्राप्त है। भगवान् शिवने मार्गशीर्षमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'कालभैरव' नामसे अवतार लिया था—

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वर ।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रिय ॥
(शिवपु० शतरुद्रस० ९। ६३)

इसलिय इस दिन कालभैरवके सनिकट उपवासपूर्वक रात्रि-जागरण करनेसे भगवान् भैरवकी कृपासे समस्त पाप दूर हो जाते हैं और समस्त विघ्नोसे मुक्ति मिलती है तथा सद्गति प्राप्त होती है। काशीमे प्रत्येक भौमवारकी अष्टमीको इनके दर्शन करनेका विशेष माहात्म्य है।

यक्षावतार-लीला

भगवान्‌ने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्‌का यह यक्षावतार अभिमानियाके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोके लिये भक्तिको बढानेवाला है। एक बारकी बात हे, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताआने असुरोपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीम वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हे यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्‌को भला कैसे सहन हो! यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अत उन्होने देवताओके मिथ्या गर्वका दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताआके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्‌ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके सदर्भमे अपना-अपना पराक्रम बढ-चढकर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओके उन अभिमान-भरे वचनाको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं, कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हो तो यह एक 'तृण' है इसे आप तोडकर दिखाय ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेका और उसे तोडनके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताआने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोका प्रयोग किया अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोडनेम वे समर्थ न हो सके। भला जब स्वय शिव ही लीला कर रहे थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई जिस सुनकर दवताआको वडा विस्मय हुआ। आकाशवाणीम कहा गया—'अर देवो! भगवान् शकर ही परम शक्तिमान् हैं वे ईश्वराके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं उनकी लीला अपरम्पार है उनकी लीलासे ही आप लाग माहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करे।' यह सुनकर देवता लोग यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताआको बडा आनन्द हुआ।

दुर्वासा-अवतार-लीला

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्नन करने, भक्तोकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शकरने ही दुर्वासा मुनिके रूपमे अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार हैं—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते है। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकाक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षमान नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पावन तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐसा प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई जिसने तीनो लोकाको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मुनि सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—य तीनो देव उस स्थानपर गये जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा दवी अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनों देवोने उन्ह अपने-अपने अशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार तीन पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अशसे चन्द्रमा विष्णुके अशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शकरके अशसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनो अत्रि और अनसूयाके पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमे अवतार लेकर भगवान् शकरने अनेक लीलाएँ की हैं, जो अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे इसीलिये उनका रूप अति रौद्र था इसी कारण वे अतिक्रोधी भी थे। किंतु वस्तुत महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति हैं, अत्यन्त करुणासम्पन्न हैं। भक्ताका दु ख दूर करना तथा रौद्ररूप धारणकर दुष्टाका दमन करना ही उनका स्वभाव रहा है। शिवपुराणम कथा आयी है कि एक बार नदीम स्नान करत समय महर्षि दुवासाका वस्त्र नदीके प्रवाहम प्रवाहित हो

गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अचलका एक टुकडा फाडकर उन्हे प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हे वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोको प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामे दु शासनके द्वारा द्रौपदीकी साडी खींची जाने लगी तो वह बढती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोकी रक्षा हुई।

[शतरुद्र० अ० १९]

भगवान् शकरकी हनुमदवतार-लीला-कथा

रामसेवक हनुमान्‌जी भगवान् शकरके ही अवतार हैं। हनुमद्रूपसे शिवजीने बडी ही उत्तम लीलाएँ की हैं। एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ, उस समय राम-कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान् शकरने अपना तेज पात किया। उस च्युततेजको सप्तर्षियोने भगवान्‌की प्रेरणासे कानके माध्यमसे गौतम-कन्या देवी अञ्जनाके उदरमें प्रविष्ट करा दिया। कालान्तरमे अञ्जनाके गर्भसे साक्षात् शिव अवतरित हुए, जो हनुमान् तथा कपीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। वे महान् बल और पराक्रमकी मूर्ति हैं। उन्होने अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। जब कपीश्वर हनुमान् शिशुरूपम थे, उसी समय उन्होने उदय होते हुए रक्तिम सूर्यबिम्बको कोई छोटा-सा फल समझकर निगल लिया जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होने सूर्यको उगल दिया। देवर्षियोने हनुमान्‌जीको शिवका अवतार जानकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति-प्रार्थना की। माताकी आज्ञासे हनुमान्‌जीने नित्य सूर्यके पास जाकर सम्पूर्ण विद्याओका ज्ञान प्राप्त किया।

गुरुदक्षिणा-स्वरूप हनुमान्‌जीने गुरु सूर्यभगवान्‌को यह वचन दिया कि वह उनके अशसे उत्पन्न सुग्रीवकी सदा रक्षा करेगा। हनुमान्‌जी रामके परम भक्त एव सेवक हैं और सर्वदा राम-कार्यमें तत्पर रहते है। वे सभी प्रकारके अमङ्गलोको दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं तथा भगवान्‌की तरह साधु-सत, देवता-भक्त एव धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं। उनके हृदयमे भगवान् सीता-राम सदा ही निवास करते हैं। रुद्रावतार हनुमान्‌जीने श्रीरामकी लीलामे पूर्ण सहयोग किया और उनके सभी कार्य पूर्ण किये तथा भूतलपर सीताराम-भक्तिकी स्थापना की।

शकरजीने वानररूप क्यो धारण किया? इसके सम्बन्धमे यह लीला-कथा भी प्रसिद्ध है कि भगवान् श्रीराम बाल्यकालसे ही सदाशिवकी आराधना करते हैं और भगवान् शिव भी श्रीरामको अपना परम उपास्य तथा इष्ट देवता मानते हैं—

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

किंतु साक्षात् नारायणने जब नर-रूप धारणकर श्रीरामके नामसे अवतार ग्रहण किया तो शकरजी शिवरूपमे नररूपकी कैसे आराधना कर सकते थे अत उन्होने नरावतार भगवान् श्रीरामकी उपासनाकी तीव्र लालसाको सफल बनानेके लिये वानर-रूप धारण किया और वे हनुमान् कहलाये। तुलसीदासजी महाराजने दोहावली (१४३)-मे इसीका वर्णन किया है—

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

शिवजीके पिप्पलादावतारकी कथा

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एव लोक-कल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयेगी, वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बडे ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवशमे उत्पन्न है। वेदोमे दध्यङ्डाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमे इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशार्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था ये सदाचार-सम्पन्न महान् साध्वी पतिव्रता तथा भगवान् शिवमे विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्‌का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्या महादेवो नानालीलाविशारद ।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामत ॥

(शिवपु० शतरुद्रस० २४। ५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बडी ही रोचक कथा पुराणामे मिलती है जिसका सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योंसे जगत्की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोंके दान तथा शिवकृपासे उनके लोककी प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यों कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोंको महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओंने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओंका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममें भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओंने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यों आये हैं, तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक हैं, वृत्र आदि दैत्योंने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है, हम लोग भी अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। इस समय आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, आपकी अस्थियोंमें शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोंकी दिव्य शक्ति समाहित है, अतः आप अपनी अस्थियोंको हमें दान कर दें, इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योंका नाश करनेमें हम सक्षम हो पायेंगे। अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योंका नाश कर सके, क्योंकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजेय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता कातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओंके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोंतक शरीर त्याग करना पड़ता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। संत तो थे ही, परहितके लिये उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओंकी याचनाको वे सहर्ष स्वीकार कर लिये।

दधीचि मुनिने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोंको खींचते हुए शिवतेजमें समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माने वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंको बनाया। देवराज इन्द्रद्वारा वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हुए। संसारमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओंके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षिपत्नी सुवर्चा आश्रममें वापस आयीं तो देवताओंकी नीति उन्हें समझमें आ गयी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके परोक्षमें देवताओंने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोंकी याचना की और महामतिने अपनी अस्थियोंका दानकर अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्होंने देवताओंको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी समय अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होंने पतिलोकमें जानेका निश्चय किया। फिर उन्होंने लकड़ियाँ एकत्रकर एक चिताका निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यों ही चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं उसी समय लीलाधारी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो क्योंकि तुम्हारे गर्भमें महर्षि दधीचका ब्रह्मतेज है जो भगवान् शंकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक है। सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ४३)

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहीं उन्होंने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो साक्षात् शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दसों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे साक्षात् रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे उसकी स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस पीपल (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता और अनेक प्रकारकी लीला करनेमें समर्थ होओ। अब इस समय पतिलोकमें जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने पुत्रको वहीं पीपलके समीप छोड़कर पतिका ध्यान करती हुई सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होंने पतिके साथ शिवलोक प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वहाँ आये

और दधीचि, एव सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओन उस दिव्य बालकके सभी सस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधी ।

(शिवपु० शतरुद्रस० २४। ६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा पीपलके मुलायम पत्ताका भक्षण भी किया इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय बाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सब अपने स्थानोको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलम स्थित रहकर तपस्याम स्थित हो गये। ऐसे ही तप करते हुए उन्हे बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलादमुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमे स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हे राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अशस प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एव गुणासे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनेकी आकाक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये और विवाहके लिय कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरको देखकर चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझत हुए अपनी कन्या उन्ह सौंप दी।

वृद्ध होते हुए भी अपने पति महात्मा पिप्पलादकी पद्मा अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमे स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत-धर्मकी परीक्षा करनेके लिये साक्षात् धर्म देवता दिव्य रूप एव रमणीय दिव्याभरणोको धारणकर पद्माके पास आये और वृद्ध पिप्पलादकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनेको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे, परतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिम अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदवकी बडी भर्त्सना की और उस क्षीण हो जानेका शाप द दिया। धर्मदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपम प्रकट हो हाथ जोडकर खडे हो गय और बाले—'देवि! मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, किंतु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बाली—'धर्मदेव! मैने अज्ञानमे ही यह सब किया है, किंतु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनो युगाम चतुष्पाद धर्मक एक-एक पाद क्षीण रहगे। सत्ययुगम तुम चारो पादासे स्थित रहोग, त्रेतामे तीन पादोस रहोगे द्वापरमे दा पादासे तथा कलियुगमे केवल एक पादसे स्थित रहोग। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमे ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुन पतिसवाम जानका उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्-गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयोवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य होनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इम प्रकार महाप्रभु शकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एव लीलावतारो हि शकरस्य महाप्रभो ।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकर प्रभु ॥

(शिवपु० शतरुद्रस० २५। १४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्हाने देवताआसे प्रश्न किया था कि 'ह देवगणा! क्या कारण है कि मेरे जन्मस पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझ छोडकर चले गये और जन्म हात ही माता भी सती हा गयीं? तब देवताआन बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हा पिप्पलादन शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशस गिर पडे। पुन देवताआकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्ह पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा द दी। इसीलिय महर्षि

पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शकरका ही रूप है)-क पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनि ।
शनैश्चरकृता पीडा नाशयन्ति स्मृतास्त्रय ॥
पिप्पलादस्य चरित पद्माचरितसयुतम्।
य पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानव ॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् ।

(शिवपु०, शतरुद्रस० २५। २०—२२)

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा

प्राचीन कालमे भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपन स्वामीक समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमे परम श्रद्धा एव निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमे राजा-रानी दोनो वन-विहारके लिये वनमे गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पति-रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की और वे स्वय द्विज-रूपमे हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पति उस वनम उसी स्थानपर आय जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शकरने अपनी लीलास वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढता परीक्षन् परमेश्वर ।
लीला चकार तत्रैव शिवया सह शकर ॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्र मायामय कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु० शतरुद्रस० २७। ८-९)

अब भगवान् शकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतिके रूपमे व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दानो 'अरे कोई है, बचाओ बचाओ—' इस प्रकार चिल्लात-चिल्लाते रात-रात वहाँ पहुँच जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। व दाना राजास अपन प्राणोकी रक्षा की प्रार्थना करन लग। उनक आर्त स्वरको सुनकर तथा भयकर व्याघ्रको उनके पीछ आते दखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढाते उतने ही समयम उस तीक्ष्ण दाँतोवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-का दबाच लिया। ब्राह्मणी राती-चिल्लाती रह गयी।'राजाने अनक अस्त्रोसे व्याघ्रपर प्रहार किया किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे उसे तो लीलाधारी भगवान् शकरने अपनी मायासे लीलाके लिये हा बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सभी अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारस धिक्कारन लगा कि उनक रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ल गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सक उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमे अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्ह अपना जीवन व्यर्थ लगन लगा। अत उन्हाने प्राणाके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणामे गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अज मेरा जीवन बकार ही है। मरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं देवी ब्राह्मणीको छुडा नहीं सका, अत अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिस कोई प्रयाजन नहीं है, इसलिय उस आप स्वीकारकर मुझे क्षमा कर।

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिय मेरे लिय सारा सुखोपभोग व्यर्थ ही ह, यह तो वेसा ही है जैसे अधेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता हे। यदि आपका देना ही है तो मेरी स्त्री नहीं रही इसलिये आप अपनी स्त्री मुझे पदान कर। अन्यथा मरे प्राण शरीरम नहीं रह सकते।

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु बड हा सकटम पड गय। उन्ह महान् आश्चर्य हुआ। व कुछ निर्णय करनेमे समर्थ नहीं हुए किंतु दूसरे हा क्षण उन्हाने निश्चय किया कि ब्राह्मणक प्राणाकी रक्षा न करनेस महान् पाप होगा। अत उन्होंने पत्नीका दान करक अग्निम प्रवश कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके उन्हाने

लकडी एकत्र की तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हे दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यो ही राजा भद्रायु अग्निमे प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यो ही लीलाधारी भगवान् शकर जो द्विजरूपमे थे, वे साक्षात् शिवरूपमे सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। हाथामे त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार, पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशकी आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढभक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा—'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेक लिये द्विजरूपमे अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मरी प्रिया दवी ये पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, कोई वर माँगो।' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिव-सायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता तथा कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एव कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

यतिनाथ एव हसावतारकी लीला

अर्बुदाचल नामक पर्वतपर एक भील निवास करता था, जिसका नाम था आहुक। उसकी पत्नीका नाम आहुकी था। वे दोनो पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे तथा शिवकी आराधना-पूजामे लगे रहते थे। एक दिन वह भील आहारकी खोज करनेके निमित्त वनमे बहुत दूरतक चला गया। सध्याकाल होनेको आया। इसी समय भीलकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवने एक यति (सन्यासी)-का रूप धारण किया और वे लीला करनेके लिय भीलक घरपर चले आये। उस समय घरपर केवल भीलनी ही थी। शकरकी प्रेरणासे उसी समय वह भील भी जगलसे घर लौट आया। तब अतिथिको घर आया जानकर भील-भीलनीने उनका स्वागत-सत्कार तथा पूजन किया।

उसके मनोभावकी परीक्षा करनेके लिये महान् लीला करनेवाले यतिरूप भगवान् शकरने दीन वाणीम भीलसे कहा—'भील! रात होनेवाली है। यह भयकर जगल है, यहाँ अनेक प्रकारके हिसक प्राणी रहते हैं, इस समय रातम अन्यत्र जाना मेरे लिये सम्भव नहीं है, अत आज यहीं रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही मैं चला जाऊँगा।'

भीलने कहा—'स्वामीजी! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरे घरम स्थान तो बहुत थाडा है। यह एक कुटिया है इसीमे हम दोनों पति-पत्नी रहत हैं फिर आपका रहना कैसे सम्भव हो सकता है? यहाँ कोई दूसरा कमरा भी नहीं है।'

भीलकी बात सुनकर लीला-वपुधारी यति (शिव) जानेको उद्यत हुए, किंतु उसी समय भीलनीने भीलस कहा—'प्राणनाथ! घरमे आय अतिथिका इस प्रकार अनादर करना ठीक नहीं। अतिथिके घरसे निराश चल जानेसे गृहस्थधर्मकी महान् हानि होती है, अत स्वामीजीके साथ आप घरम भीतर रहिये मैं अस्त्र-शस्त्राको लेकर बाहर द्वारकी रक्षा करूँगी।'

पत्नीकी बात सुनकर भीलने सोचा—स्त्रीको रात्रिम घरसे बाहर पहरेम खडा करके मैं घरके अदर कैसे रह सकता हूँ, यह ता अनीति होगी और सन्यासीका अन्यत्र चला जाना भी मेरे लिये अधमकारक ही होगा। य दाना ही काय गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। अत मुझे ही घरके बाहर रहना चाहिये। 'जो होनहार होगी वह हाकर ही रहेगी।' ऐसा निर्णयकर भीलने सन्यासी तथा अपनी स्त्रीको घरमें रहनेके लिये कहा और स्वय शस्त्राका लकर द्वारपर हिसक पशुआसे रक्षा करनक लिये खडा हा गया।

रातमे जगली क्रूर एव हिसक पशु उसे पीडा देने लगे। उसने यथाशक्ति उनपर शस्त्राका प्रहार किया, किंतु जब स्वय भगवान् शकर ही लीला कर रहे थे तो भीलकी क्या चलती। भील हिसक जानवरोका आहार बन गया। प्रात -काल हुआ। यतिने देखा कि भीलको हिसक पशुओने खा डाला है तो उन्हाने अनेक प्रकारसे दु ख प्रकट करनकी लीला की। भीलनी इस लीलाको समझ न सकी, वह दु खसे व्याकुल थी अवश्य, पर सदाचारसम्पन्न थी। अतिथिसेवा-धर्मको समझती थी, शिवभक्त थी अत वह बोली—'स्वामीजी। आप दु खी न हो, मेरे स्वामी तो अतिथि-धर्मका पालन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए है, अब मैं भी चिताकी आगम जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर द, क्योकि स्वामीका अनुसरण करना स्त्रियोके लिये सनातन धर्म हे।'

उसकी धर्ममय बात सुनकर सन्यासीको बडी प्रसन्नता हुई। उन्हाने अपने हाथासे चिता तैयार की और भीलनीने अपने धर्मके अनुसार उसम प्रवश किया। उसी समय भगवान् शकर अपने साक्षात् स्वरूपसे उसके सामने प्रकट हो गये। अब उनका वह सन्यासीका लीलारूप विलुप्त हो गया। वे उसकी प्रशसा करते हुए बोले—

'दवि। तुम धन्य हो धन्य हो मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम यथेच्छ वर माँगो।'

साक्षात् भगवान् शकरका दर्शन पाकर भीलनी परम आनन्दित हो गयी। हाथ जोडे-जोड वह मुग्ध हा गयी। वह कुछ भी न माँग सकी। इसपर भक्तवत्सल लीलाधारी भगवान् शकरने कहा—'देवि! मैंने ही सन्यासीका रूप धारण करके तुम दोनोकी परीक्षा ली थी। तुम दोनो परीक्षाम सफल हुए हो, अत अगले जन्ममे मैं ही 'हस'-रूपसे अवतार धारणकर लीला करूँगा और तुम दोनाका सयोग कराऊँगा। तुम्हारा पति भील आहुक निषधदेशकी राजधानीम राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय 'नल' नामसे इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ-नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती होओगी। तुम दोना मिलकर राज-भाग करके अन्तम मोक्ष प्राप्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्गरूपम प्रतिष्ठित हो गये और 'अचलेश्वर' नामसे विख्यात हुए।

दूसरे जन्ममे वरदानके प्रभावसे आहुक तथा आहुकी राजा नल-दमयन्ती हुए। वहाँ हसरूपसे प्रकट होकर भगवान् शिवने उन दोनाका विवाह कराया। वे सबके लिये परम आनन्ददायक हुए।

भगवान् शिवकी अर्धनारीश्वर-लीला

सृष्टिके आदिमे जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुई तब ब्रह्मा उस दु खसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो इससे सृष्टिका विस्तार होता जायगा।' इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्मा विचारम पड गय क्याकि मैथुनी सृष्टि बिना स्त्री-पुरुषके सम्भव है नहीं आर तबतक स्त्राकी सृष्टि हुई ही नहीं थी, केवल पुरुष-तत्त्व ही था। बिना स्त्री-पुरुषके मैथुनी सृष्टि कैसे हो सकती है? ब्रह्माजी आद्याशक्ति शिवा तथा भगवान् शकरकी शरणम गये और उन्हें आकाशवाणीको बात बतलायी। यह सुनकर भगवान् शिव हँस पडे और प्रसन्न हाकर क्षणभरम ही लीलाधारी भगवान् शिव आधे शरीरसे नारी और आधे शरीरस पुरुषरूप होकर ब्रह्माजीक ममक्ष प्रकट हा गय। उनका वाम-भाग स्त्रीका था और दक्षिण-भाग पुरुषका। वह अद्भुत लीलारूप देखकर ब्रह्माजीको बडा हो आनन्द हुआ और व हाथ जोडकर महादेव तथा महादवाकी स्तुति करने लगे।

स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने अपने अर्धनारीश्वररूपसे अपने वाम-भागमे प्रतिष्ठित शिवारूप (नारीरूप)-को अपनेसे पृथक् कर लिया, वे ही देवी परमात्मा शिवकी पराशक्ति हैं भवानी हैं रुद्राणी हैं, मृडानी हैं, जगदम्बा हैं, जगज्जननी हैं। उन सर्वलोक-महेश्वरी परमेश्वरीका पृथक् दर्शनकर ब्रह्माजीको महान् विस्मय हुआ और वे उनकी प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—'देवि! महादेवजीने सबस पहले मुझ उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमे लगाया। इनकी आज्ञासे मैं समस्त जगत्की सृष्टि करता हूँ, किंतु देवि! मर मानसिक सकल्पसे रचे गये दवता, प्रजापति आदि समस्त प्राणी बारम्बार सृष्टि करनेपर भी बढ नहीं रहे हैं, अत अव मैं मैथुनी सृष्टिसे अपनी सारी प्रजाको बढाना चाहता हूँ। माँ! आपके पहले नारी-कुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था इसलिये आप ही सृष्टिकी प्रथम नारी-रूप हैं। प्रथम मातृरूप हैं, प्रथम शक्तिरूप हैं, अत हे दवि! आप अपन एक दूसरे रूपमे इस चराचर जगत्की वृद्धिक लिये मर पुत्र दक्षप्रजापतिकी पुत्रीके रूपम प्रतिष्ठित हो जायँ। ऐसा वर देनेकी कृपा कर।'

तब प्रसन्न हाकर देवी रुद्राणीने अपने भौंहाके मध्य-भागसे अपने ही समान प्रभावाली एक दिव्य नारी-शक्तिको प्रादुर्भूत किया, जो प्रजापति दक्षकी 'सती' नामकी पुत्रीक रूपमे प्रतिष्ठित हुई। तब ब्रह्माजीने भी अपन ही शरीरसे मनु-शतरूपाको प्रकट किया और फिर सृष्टिका विस्तार होता गया।

इस प्रकार ब्रह्माजीका मनोरथ पूर्ण करक आदिशक्ति भवानी भगवान् शिवम प्रविष्ट हो गयी और भगवान् शिवन उस शक्तिरूपका अपनेमे अन्तर्हित कर लिया। उनका वह अर्धनारीश्वर-रूप सदाके लिये भक्तोके हेतु आराध्य बन गया। लीलाविहारीका लीला-वैचित्र्य सचमुच विलक्षण ही है। द्रोणाचार्यकी शिवभक्तिसे प्रसन्न होकर व अश्वत्थामाक रूपम उनके पुत्र बने। ऐसे ही व्याघ्रपादक पुत्र उपमन्युकी तपस्याको सिद्ध करनेके लिये वे सुरश्वरावतारके रूपम अवतरित हुए। लिङ्ग-रूपम ता वे सर्वत्र व्याप्त ही ह। द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गाके रूपमे वे ही प्रतिष्ठित हैं। एकादश रुद्र भगवान् शिवके ही विविध लीलारूप हे। विभिन्न युगाम प्रादुर्भूत होकर योगका उपदेश देनेवाले योगाचार्योके रूपम भगवान् शिव ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करके शिव-मार्गको प्रशस्त करत हैं।

पराम्बा भगवतीके लीला-चरित

पराशक्ति भगवती श्रीदुर्गा

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चकी अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती श्रीदुर्गा ही सम्पूर्ण विश्वको सत्ता स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्व-प्रपञ्च उन्हींसे उत्पन्न होता है और अन्तमे उन्हींमे लीन हा जाता है। जैसे दर्पणम आकाशमण्डल, भूधर, सागरादि-प्रपञ्च प्रतीत होता है कितु दर्पणको स्पर्श कर देखा जाय तो वहाँ वास्तवमे कुछ भी उपलब्ध नहीं होता वैसे ही सच्चिदानन्दरूपा महाचिति भगवतीमें सम्पूर्ण विश्व भासित हाता है। जैसे दर्पणके बिना प्रतिबिम्बका भान नहीं होता, दर्पणके उपलम्भम ही प्रतिबिम्बका उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड नित्य निर्विकार महाचितिम ही—उसके अस्तित्वम ही प्रमाता प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होनेपर भास्यके उपलम्भकी आशा नहीं की जा सकती।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुसकमसे कुछ नहीं है, तथापि वह चिति, भगवती दुर्गा आदि स्त्री-वाचक शब्दासे आत्मा पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दोंसे और ब्रह्म ज्ञान आदि नपुसक—शब्दोसे भी व्यवहृत होता है। वस्तुत स्त्री पुमान्, नपुसक—इन सबसे पृथक् होनेपर भी उस-उस शरीरके सम्बन्धसे या वस्तुके सम्बन्धसे वही अचिन्त्य अव्यक्त स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा महाचिति भगवती दुर्गा आत्मा पुरुष ब्रह्म आदि शब्दासे व्यवहृत होती है। मायाशक्तिका आश्रयणकर वे ही अनेक रूपोमे व्यक्त होती हैं।

काई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण। य दाना बात भी ठाक हैं, क्याकि उन एकक ही ता य दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशील रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाता है और जब वह महाशक्तिम मिली रहती है तब वह महाशक्ति निर्गुण कहलाती है। इन अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिम परस्पर विराधी गुणाका नित्य सामञ्जस्य है। व जिस समय निर्गुण हैं उस समय भी उनम गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई वर्तमान ह और जब व सगुण कहलाती हैं, उस समय भी व गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेसे वस्तुत निर्गुण ही हैं। उनम निर्गुण और सगुण दोना लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्ह दखता है, उसे उनके वैसे ही रूपका भान होता है। वास्तवम वे कैसी हैं, क्या हैं—इस बातका व ही जानती हैं। इन्हींकी शक्तिस ब्रह्मादि दवता बनते हैं जिनस विश्वकी उत्पत्ति हाती ह। इन्हींकी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट हाकर विश्वका पालन आर सहार करते हैं। दया, क्षमा निद्रा स्मृति क्षुधा, तृष्णा तृप्ति श्रद्धा, भक्ति धृति मति तुष्टि, पुष्टि, शान्ति कान्ति एव लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तियाँ हैं। ये ही गालोकम श्रीराधा साकेतम श्रीसीता क्षीरोदसागरमे लक्ष्मी दक्षकन्या सती तथा दुर्गतिनाशिनी मेनाकी पुत्री दुर्गा हैं। य ही वाणी विद्या सरस्वती सावित्री और गायत्री हैं।

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूपा प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं ये ही मायाधीश्वरी हैं, य ही सर्जन-पालन-सहारकारिणी आद्या नारायणी शक्ति हैं तथा ये ही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता भोक्ता और महेश्वर होती हैं। परा एव अपरा दोना प्रकृतियाँ इन्हींकी हे अथवा ये ही दो प्रकृतियाके रूपमे प्रकाशित हाती हैं। इनम द्वैत अद्वैत दानाका समावेश है। ये ही वैष्णवोकी श्रीनारायण और महालक्ष्मी श्रीराम और सीता श्रीकृष्ण और राधा हैं शैवाकी श्रीशकर और उमा गाणपत्योकी श्रीगणश और ऋद्धि-सिद्धि सौराको श्रीसूर्य और उषा ब्रह्मवादियाकी शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या तथा शास्त्राकी महादेवी हे। ये ही पञ्चमहाशक्ति दशमहाविद्या तथा नवदुर्गा हैं। ये ही अन्नपूर्णा जगद्धात्री कात्यायनी एव ललिताम्बा हैं। य ही शक्तिमान्

और शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं। ये ही माता, धाता, पितामह हैं, सब कुछ ये ही हैं।

यद्यपि श्रीभगवती नित्य ही हैं और उन्हींसे चराचर प्रपञ्च व्याप्त है, तथापि देवताओंके कार्यके लिये वे समय-समयपर अनेक रूपोंमें जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होनेपर भी 'देवी उत्पन्न हुईं—प्रकट हो गयीं,' इस प्रकारसे कही जाती हैं—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिद ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयता मम।
देवाना कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ६४—६६)

दुर्गादेवीका आविर्भाव

भगवती दुर्गा शिवस्वरूपा हैं, गणेशजननी हैं। य नारायणी, विष्णुमाया और पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हैं। सभी देवता इनकी पूजा करते हैं। ये भगवान् शकरकी परम प्रेयसी हैं। इनका लीला-चरित्र अति पावन है।

दुर्गादेवीके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालम दुर्गम नामक एक महाबली असुर उत्पन्न हुआ था। उसने ब्रह्मासे एक अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। उसके प्रभावसे उसने चारा वेदोको विश्वसे लुप्त कर लिया था। बलके घमण्डमे आकर उसने विश्वको अपमानित और पीडित कर रखा था। उसके उत्पाताको सुनकर देवता भी भयभीत हो गये। वेदाके अदृश्य हो जानेसे सम्पूर्ण धर्म-क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और अवर्षण होनेसे घोर अकाल पड गया, नदी और नद तो सूख ही गये, समुद्र भी सूखने लगे थे। भोजन और पानीके अभावम लोग चेतनाहीन हो रहे थे। तीना लोकामे त्राहि-त्राहि मची थी। तब दवताआने भगवतीकी शरण ली। उन्हाने प्रार्थनापूर्वक कहा—'माँ। जैसे आपने शुम्भ-निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड रक्तबीज मधु-कैटभ तथा महिष आदि असुराका वधकर हमारी रक्षा की है उसी तरह दुर्गमासुरसे भी हमे बचाइय और इसके द्वारा लाये गये अकालसे प्राणियाकी रक्षा कीजिये।'

देवताआकी करुणापूर्ण वाणीसे कृपामयी देवी प्रकट हो गयीं और अपने अनन्त नेत्रासे युक्त रूपका उन्ह दर्शन कराया। अन्न और जलके लिये छटपटाते जीवाको देखकर उन्हे बडी दया आयी तथा उनके अनन्त नेत्रास अश्रुजलकी सहस्रा धाराएँ प्रवाहित हो उठीं। उन धाराआसे सब लाग तृप्त हो गये। सरिताओ और समुद्राम अगाध जल भर गया। देवीने गोआके लिये सुन्दर घास आर दूसरे प्राणियाक लिय यथायोग्य भाजन सामग्री प्रस्तुत कर दिया। उन्होन शुद्ध महात्मा पुरुषाको अपने हाथस दिव्य फल बाँटे। दवता ब्राह्मण और मनुष्यासहित सभी प्राणी सतुष्ट हो गय।

तब दवीसे देवताआने कहा—'माँ। जेसे आपन समस्त विश्वको मरनेसे बचाकर हम लोगाको तृप्त किया वैसे ही अब इस दुष्ट दुर्गमासुरसे हमारी रक्षा कीजिय। उसन वदाका अपहरण कर लिया है जिससे सारी धर्मक्रिया ही लुप्त हो गयी है।'

देवीने कहा—'दवगण। में आपकी इच्छाएँ पूर्ण करूँगी। अब आप लोग निश्चिन्त होकर यथास्थान लौट जायँ।' देवता उन्ह प्रणामकर यथास्थान लौट गये। दवीकी कृपास तीनो लोकाम आनन्द छा गया।

दुर्गमासुर यह जानकर अत्यन्त विस्मित हुआ साचन लगा—मैंने ता तीनो लोकाको रुला डाला था सब भूख-प्याससे मर रहे थे, देवता भी भयभीत थे किंतु यह क्या हो गया कैसे हो गया ? वस्तुस्थितिसे अवगत होत ही दुगमासुरने अपनी आसुरी सना लेकर दवलाकका घेर लिया। करुणामयी माँने देवताआका बचाने तथा विश्वकी रक्षा करनेक लिय देवलोकके चारा ओर अपने तेजोमण्डलकी चहारदीवारी खडी कर दी आर स्वय घेरेसे बाहर आ डटीं।

देवीको दखते ही दैत्योने उनपर आक्रमण कर दिया। इसी बीच दवीके दिव्य शरीरसे सुन्दर रूपवाली—काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी और मातङ्गी—य दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकली। साथ ही असख्य मातृकाएँ भी प्रकट हो गयी। उन सबने अपन मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और व सभी विद्युत्‌के समान दीप्तिमती दिखायी देती थी। इन शक्तियान देखते-देखत दुर्गमासुरकी सौ अक्षौहिणी सनाको काट डाला। इसक पश्चात् दवीन अपन तीखे त्रिशूलस दुर्गमासुरका वध कर डाला और वेदाका उद्धारकर उन्ह दवताआको द दिया। (शिवपु० उमास०, अ० ५०)

इस प्रकार देवीने दुर्गमासुरका वधकर विश्वकी रक्षा की। उन्हाने दुर्गम असुरका मारा था इसीलिय उनका नाम 'दुर्गा' प्रसिद्ध हुआ। शताक्षी एव शाकम्भरी भी उन्हींका नाम है। व दुर्गतिनाशिनी हैं इसलिय भा व 'दुर्गा' कहलाती हैं।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—य तीना नाम जगनियन्ता परमात्माकी चितिशक्तिके हैं। शास्त्रकाराका दृढ विश्वास है कि परमात्माको स्वरचित सृष्टिकी मर्यादा-रक्षार्थ युग-युगम अपनी अलौकिकी योगमायाका आश्रयकर पुरुष या स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होना पडता है। जव व पुरुषवपम अवतार लेते हैं, तब जगत् उनकी ब्रह्मा, विष्णु, महश आदि नामासे स्तुति करता है और जब वे स्त्रीरूपस जगत्म अवतीर्ण होते हैं, तब उन्ह महाकाली, महालक्ष्मी महासरस्वती कहते है। जिस प्रकार ब्रह्मा विष्णु, महेश—रज सत्त्व और तम प्रधान हैं उसी प्रकार चितिशक्तिक ये तीना रूप भी तम, सत्त्व, रज आदि गुणाकी अधिकताके अनुसार वप धारण करते हुए तत्तद्गुणानुरूप कार्य करत हैं। चितिशक्तिके तम प्रधान रौद्ररूपको महाकाली कहते हैं, जा प्रधानतया दुष्टाका सहार करती है। सत्त्वप्रधान वैष्णवरूपका महालक्ष्मी कहते हैं, जो जगत्का पालन करती है। रज प्रधान ब्राह्मीशक्तिका सरस्वती कहते हैं, जो प्रधानतया जगत्की उत्पत्ति और उसम ज्ञानका सचार करती है। दुर्गासप्तशतीम चितिशक्तिक इन तीना स्वरूपाकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकार है—

स्वारोचिष-मन्वन्तरम चक्रवर्ती राजा सुरथ राज्य करता था। एक समय शत्रुआद्वारा पराजित होकर वह अपने राज्यमे आकर शासन करने लगा परतु वहाँपर भी उसके शत्रुआने आक्रमण कर दिया जिससे दु खी हाकर वह शिकारक बहानेसे वनम जाकर मेधामुनिके आश्रमम रहने लगा। परतु वहाँ भी उसे रात-दिन अपने राज्य-कोष आदिकी ही चिन्ता घेरे रहती थी। एक समय राजा आश्रमके निकट घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक वैश्यपर पडी। उस उदास दखकर राजाने पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किसलिय आय हो? तुम्हारा मुख उदास और चिन्तित क्या प्रतीत होता है?' राजाके वचन सुनकर विनीतभावसे वैश्य कहने लगा—'महाराज! मरा नाम समाधि है। मैं उच्च कुलम उत्पन्न वैश्य हूँ, परतु दुर्भाग्यवश मेरे दुष्ट पुत्रान मेरा धन छीनकर मुझे निकाल दिया जिससे मैं इस वनम भटकता फिरता हूँ आर अपन उन्हीं स्वजनाक कुशल-समाचार नहीं प्राप्त हानस मैं सवदा चिन्तित रहता हूँ। यद्यपि अर्थलालुप पुत्रान मुझ निकाल दिया फिर भी मरा चित्त उनक माहका नहीं छाडता।' इस प्रकार परस्पर बात करत व दाना आश्रमम गय और राजान ऋषिस वड ही विनीतभावस कहा—'क्या कारण ह कि मरा सम्पूर्ण राज्य छिन जानपर भी अभीतक उसम मरा आसक्ति बनी हुई है और यही दशा इस वैश्यकी भी हा रही ह? आप हम उपदश दकर चिन्तास छुडाइय।'

मुनिन कहा—'राजन्! महामायाकी विचित्र लालास समस्त प्राणा ममता ओर माहक गर्तमें पड हुए हैं—

महामाया हरश्चैपा तया समोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चतासि दवी भगवती हि सा॥
वलादाकृष्य माहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यत विश्व जगदेतच्चराचरम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५५-५६)

जिसक द्वारा सम्पूर्ण जगत् माहित हा रहा ह, वह भगवान् विष्णुकी महामाया ह। वह महामाया दवा भगवती ज्ञानियाक चित्तको भी बलपूर्वक आकृष्टकर माहम डाल दती ह। उसीक द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया ह। वह जिसपर प्रसन्न होती ह उसे मुक्ति प्रदान करती है और वही ससारक बन्धनका हतु ह। मुक्तिकी हतुभूता सनातनी पराविद्या वही है।'

राजाने पूछा—महाराज! जिसका आपन वर्णन किया वह महामाया दवी कान हे और केसे उत्पन्न हुई है? उसक गुण कर्म प्रभाव और स्वरूप कसे हैं?

ऋषिन कहा—वह नित्या है समस्त जगत् उसका मूर्ति है उसक द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है। फिर भा दवकार्य करनक लिय जब वह प्रकट हाती है तब उसे उत्पन्न हुई कहत हैं।

महाकालीकी उत्पत्ति

प्रलयकालम सम्पूण ससारके जलमग्न हानेपर भगवान् विष्णु शयशय्यापर यागनिद्राम सा रह थ। उस समय

भगवान्के कर्णमलसे उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो घोर राक्षस ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हो गये। भगवान्के नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने असुरोंको देखकर भगवान्को जगानेके लिये एकाग्रहृदयसे भगवान्के नेत्रकमलस्थित योगनिद्राकी स्तुति की—

'हे देवि! तू ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली है, तू ही महाविद्या, महामाया महामेधा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा है, दारुण कालरात्रि महारात्रि और मोहरात्रि भी तू ही है। तूने जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको भी योगनिद्राके वशीभूत कर दिया है और विष्णु, शंकर एवं मैं (ब्रह्मा) तुम्हारे ही द्वारा शरीर ग्रहण करनेको बाधित किये गये हैं। ऐसी महामायाशक्तिकी स्तुति कौन कर सकता है? हे देवि! अपने प्रभावसे इन असुरोंको मोहित करके मारनेके लिये भगवान्को जगा।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर वह महामाया भगवती भगवान्के नेत्र मुख नासिका बाहु तथा हृदयसे बाहर निकलकर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयी। भगवान् भी उठे और देखा कि दो भयंकर राक्षस ब्रह्माको खानेके लिये उद्यत हो रहे हैं। ब्रह्माकी रक्षाके लिये स्वयं भगवान् उनसे युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परंतु वे राक्षस नहीं मरे। तब महामायाने उन राक्षसोंकी बुद्धि मोहित कर दी, जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णुभगवान्से कहने लगे कि 'हम तुम्हारे युद्धमें अति संतुष्ट हुए हैं, तुम ईप्सित वर माँगो।' भगवान् कहने लगे—'यदि आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ।' मधु-कैटभने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाँ पृथ्वी जलसे ढकी हुई हो वहाँ हमको नहीं मारना।' अन्तमें भगवान्ने उनके सिरोंको अपनी जंघाओंपर रखकर चक्रसे काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये उस सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्तिने महाकालीका रूप धारण किया जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

> खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
> शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
> नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
> यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

अपने हाथोंमें 'खड्ग, चक्र, गदा धनुष, बाण, परिघ, शूल, भुशुण्डी, कपाल और शंखको धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंवाली सम्पूर्ण अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे सुसज्जित नीलमणिके समान कान्तियुक्त दस मुख और दस पादवाली महाकालीका मैं ध्यान करता हूँ, जिसकी स्तुति विष्णुभगवान्की योगनिद्रास्थितिमें ब्रह्माजीने मधु और कैटभको मारनेके लिये की थी।'

महालक्ष्मीकी उत्पत्ति

एक समय देवता और दानवोंमें सौ वर्षतक घोर युद्ध हुआ। देवताओंका राजा इन्द्र था और दानवोंका महिषासुर। पराक्रमी दानवोंद्वारा देवताओंको पराजितकर महिषासुर जब स्वयं इन्द्र बन बैठा, तब सम्पूर्ण देवगण पद्मयोनि ब्रह्माजीको आगेकर भगवान् विष्णु और शंकरके पास गये और उन्हें अपनी सम्पूर्ण विपत्ति-गाथा सुनायी। देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकर कुपित हो गये उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उस समय समस्त देवताओंके शरीरसे पृथक्-पृथक् महान् तेज पुञ्ज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्वलित पर्वतकी तरह सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ नारी-शरीर बन गया। उस भगवतीको देखकर सब देवता प्रसन्न हुए और उसे अपने-अपने शस्त्र समर्पित किये। तब प्रसन्न होकर देवीने अट्टहास किया जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं समुद्र उछलने लगे पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी डगमगाने लगे तथा देवताओंने जयध्वनि की और मुनिगण स्तुति करने लगे। उस भयंकर गर्जनाको सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित दानव-सेनाको लेकर वहाँ आया और तेज पुञ्ज महालक्ष्मीको उसने देखा। तदनन्तर असुरोंका देवीके साथ अति भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकारकी माया करके थक गया और अन्तमें महालक्ष्मीके द्वारा मारा गया। देवताओंने भगवतीकी विविध प्रकारसे स्तुति की। इस प्रकार महालक्ष्मीने रूप धारण किया जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

> अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
> दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
> शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
> सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा बाण वज्र कमल धनुष कुण्डिका दण्ड शक्ति खड्ग चर्म शंख घण्टा मधुपात्र शूल, पाश और सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाली कमलस्थित महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मीका हम ध्यान करते हैं।'

महासरस्वतीकी उत्पत्ति

पूर्वकालमें जब शुम्भ और निशुम्भने इन्द्रादि देवताओंके सम्पूर्ण अधिकार छीन लिये तथा वे स्वयं ही यज्ञभोक्ता बन

बैठे, तब अपने अधिकाराको पुन प्राप्त करनक लिय देवताआने हिमालयपर जाकर दवी भगवतीकी अनक प्रकारसे स्तुति की। उस समय पतितपावनी भगवती पार्वती आयीं और उनक शरीरमस शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदवी पार्वतीके शरीरकोपसे निकली थीं, इसलिय उनका 'कौशिकी' नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीक निकरा जानेक बाद पार्वतीका शरीर काला पड गया इसलिय उन्ह 'कालिका' कहत हैं। तदनन्तर भगवती कौशिकी परम सुन्दर रूप धारणकर बैठी हुई थीं कि उन्ह चण्ड-मुण्ड नामक शुम्भ-निशुम्भके दूताने देखा। उन्हाने जाकर शुम्भ-निशुम्भस कहा कि 'ह दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परम मनाहरा रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञ रूप आजतक किसीन नहीं दखा। आपके पास एरावत हाथी, पारिजात तरु उच्चै श्रवा अश्व ब्रह्माका विमान, कुबरका खजाना वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविध रत्न विद्यमान हैं पर एसा स्त्री-रत्न नहीं है अत आप उसे ग्रहण कीजिय।' दूताकी वाणी सुनकर शुम्भ-निशुम्भन अपने सुग्रीव नामक दूतका उस दवीका प्रसन्न करके अपन पास लानको कहा। दूतन जाकर दवाको शुम्भ-निशुम्भका आदेश सुनाया और उनक ऐश्वर्यकी बहुत प्रशसा की। देवीने कहा कि तुम जा कुछ कहत हा वह सब सत्य है परतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा कर ली थी, वह यह है कि—

यो मा जयति सग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबला लोक स म भर्ता भविष्यति॥

(श्रादुर्गासप्तशती ५। १२०)

'जो मुझे सग्रामम जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करगा, वही मेरा पति हागा।' अत तुम अपन स्वामीको जाकर मेरी प्रतिज्ञा सुना दा कि मुझ युद्धमे जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर ल। दूतने दवीका बहुत समझाया परतु देवीने नहीं माना। तब कुपित होकर दूतने सम्पूर्ण वृत्तान्त शुम्भ-निशुम्भको जाकर सुनाया, जिसस कुपित हाकर उन्हाने अपने सेनापति धूम्रलाचनको देवीक साथ युद्ध करनके लिये भेजा परतु दवीने थोडे ही समयम उस सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड और मुण्डको भी दवीने मार डाला। तब क्रुद्ध होकर उन्हाने अपनी समस्त सना लकर देवीका चारा ओरसे घर लिया। भगवतीने घण्टाध्वनि की जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। इसी समय ब्रह्मा विष्णु, महश कार्तिकेय और इन्द्रादिक शरीराम शक्तियाँ निकलकर चण्डिकाक पास आयीं। व दवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्-तत् शक्तिक अनुरूप स्वरूप भूषण और वाहनस युक्त थीं। उन शक्तियोंक मध्यमें स्वय महादवना आय और दवीस बाल कि 'मुझ प्रसन्न करनक लिय सम्पूर्ण दानवाका सहार कीजिय।' उसी समय दवाक शरीरस अति भीषण चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई और शिवजास बाला—'ह भगवन्! आप हमार दूत बनकर दानवाक पास जाइय और उन्ह कह दीजिय कि यदि तुम जीना चाहत हा ता त्रैलाक्यका राज्य इन्द्रका समर्पित करक पातालला कका चल जाआ।' शिवजान शुम्भ-निशुम्भका दवाका आज्ञा सुनायी पर व बलगर्वित दानव कब माननवाल थ। आखिर भयकर युद्ध छिड गया और अस्त्र-शस्त्र-प्रहार हान लग। शक्तियाद्वारा आहत हाकर दानव-सना गिरन लगी। तब क्रुद्ध हाकर रक्तबीज युद्ध-भूमिम आया। इस दानवक रक्तस उत्पन्न दानव-समूहस सम्पूर्ण युद्ध-स्थल भर गया जिसस दवगण काँप उठ। तब चण्डिकान कालीस कहा कि 'तुम अपना मुख फैलाकर इसक शरीरस निकल हुए रक्तका पान करा, जब यह क्षीणरक्त हागा तब मारा जायगा।' फिर दवान रक्तबीजपर शूलप्रहार किया। उसस जा रक्त निकला उस काली देवा पीती गयीं। क्षीणरक्त हात हा दवीक प्रहारस वह धराशायी हा गया। तत्पश्चात् शुम्भ और निशुम्भ भी युद्ध-भूमिमे मार गय। दवगण हर्षित हाकर जयध्वनि करन लगे। महासरस्वतीन जा रूप धारण किया उसका स्वरूप आर ध्यान इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनु सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'स्वहस्तकमलमे घण्टा त्रिशूल हल शख मूसल चक्र धनुष और बाणका धारण करनवाला गौरी-दहस उत्पन्न शरद ऋतुक शाभा-सम्पन्न चन्द्रमाक समान कान्तिवाली तीना लाकाकी आधारभूता शुम्भादि दैत्यमर्दिनी महासरस्वतीको हम नमस्कार करते ह।'

दवतागण महासरस्वतीकी स्तुति करने लग—'ह दवि! आप अनन्त पराक्रमशाला वैष्णवी शक्ति है ससारकी आदिकारण महामाया आप ही हैं। आपक द्वारा समस्त ससार माहित हा रहा ह। आप ही प्रसन्न हानपर मुक्ति

प्रदान करती हैं। हे देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ आपके ही भेद हैं, सम्पूर्ण स्त्रियाँ आपका ही स्वरूप हैं। आपके द्वारा समस्त संसार व्याप्त है। कौन ऐसी विशेषता है कि जिससे हम आपकी स्तुति करें! हे देवि! आप प्रसन्न हो और शत्रुओंके भयसे सर्वदा हमारी रक्षा करें। आप समस्त संसारके पापोंका और उत्पातके परिणामस्वरूप उपसर्गोंका नाश कर दीजिये।' देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती प्रसन्न होकर कहने लगीं—'हे देवगण! तुम्हारी की हुई स्तुतिके द्वारा एकाग्रचित्त होकर जो मेरा स्तवन करेगा, उसकी समस्त बाधाएँ मैं अवश्य नष्ट कर दूँगी।' यह कहकर देवगणके देखते-देखते ही भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

मेधा ऋषिने देवीकी उत्पत्ति और देवादिकृत स्तुति सुनाकर कहा कि 'हे राजन्! तुम और यह वैश्य तथा अन्य विवेकीजन इन महामाया भगवतीकी मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः तुम इन्हीं परमेश्वरीकी शरण ग्रहण करो। आराधना करनेसे वे मनुष्योंको शीघ्र ही भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कर देती हैं।' ऋषिके वचन सुनकर वे दोनों नदीके किनारे जाकर देवीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने लगे। देवीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अनेक संयम-नियमोंका पालन करते हुए तीन वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके तपको देखकर भगवती प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष आ खड़ी हुई और बोलीं—'मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हूँ। इच्छित वर माँग लो।' तब राजाने अपने राज्य और वैश्यने ज्ञान-प्राप्तिकी याचना की। देवीने 'तथास्तु' कहा। दोनोंके मनोरथ पूर्ण हुए, वैश्य मुक्त हो गया और राजाने अपना राज्य प्राप्त किया तथा वह दूसरे जन्ममें सूर्यपुत्र होकर सावर्णि नामक मनु हुआ।

दस महाविद्याओंके लीला-आख्यान

भगवती आद्याशक्ति जगन्माता पराम्बाके अनन्त नामोंमें एक नाम 'महाविद्या' भी है। ये ही सती, शिवा, पार्वती, दुर्गा, चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोंसे अभिहित हैं। मूलतः एक ही शक्ति विविध रूपोंमें अवतरित होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती है और लीलानुरूप उनका वैसा ही नाम भी प्रख्यात हो जाता है, जैसे भगवती आद्याशक्तिने दुर्गम नामक दैत्यसे देवताओंको त्राण दिया तो वे 'दुर्गा' कहलायीं तथा शाक-मूल-फलके रूपमें त्रिलोकीको अकालसे मुक्ति दिलायी और सबका भरण-पोषण किया इसलिये 'शाकम्भरी' कहलायीं। तत्त्वतः वे एक ही हैं—'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।' आगमोंकी उपासना-पद्धतिमें विशेष रूपसे भगवतीका 'महाविद्या' यह नाम अधिक प्रतिष्ठित है—

साक्षाद् विद्यैव सा न ततो भिन्ना जगन्माता।

(वरिवस्या रहस्य २। १०७)

'अथर्वशीर्ष' में कहा गया है—'एषा श्रीमहाविद्या'। इसी प्रकार 'तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त' में कहा गया है—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

इन्हीं महादेवीसे समस्त जगत् व्याप्त है, समस्त विद्याएँ और समस्त स्त्रियाँ देवी भगवतीकी ही लीलाके रूप हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

वास्तवमें महाविद्यारूप वे देवी नित्य हैं, सनातनी हैं, यह जगत् उन्हींका रूप है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।

महाभागवतपुराण (श्रीदेवीपुराण)-में महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी एक रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार शिवसे द्वेष रखनेके कारण दक्ष प्रजापतिने सभी देवताओं तथा महर्षियोंको अपने यज्ञमें सादर आमन्त्रित किया, किंतु शिवकी उपेक्षाकर उन्हें नहीं बुलाया। सतीने पिताके उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी। शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, परंतु सती अपने निश्चयपर अटल रहीं। उन्होंने कहा—'मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी।'[1] यह कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। वे शिवको उग्र दृष्टिसे देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया।

१-ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा। प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥

(महाभागवत० ८। २)

क्रोधाग्निसे दग्ध शरीर महाभयानक एव उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। कालाग्निके समान महाभयानक रूपम देवी मुण्डमाला पहनी हुई थीं ओर उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, शीशपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा था। वे बार-बार विकट हुकार कर रही थीं। देवीका यह स्वरूप साक्षात् महादेवक लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोडो मध्याह्नके सूर्योक समान तेज सम्पन्न था और वे बारम्बार अट्टहास कर रही थीं। देवीक इस विकराल महाभयानक रूपको देखकर शिव भाग चले। भागत हुए उनको दसा दिशाआम रोकनके लिये दवीने अपनी अङ्गभूता दस देवियोको प्रकट किया। दवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ है जिनके नाम हैं—१-काली, २-तारा, ३-छिन्नमस्ता, ४-षोडशी, ५-भुवनेश्वरी, ६-त्रिपुरभैरवी, ७-धूमावती, ८-बगलामुखी, ९-मातङ्गी और १०-कमला।

इन दस महाविद्याआम मूलरूपा महाकाली ही मुख्य हैं और उन्हाके उग्र और सौम्य दो रूपासे अनेक रूप धारण करनेवाली ये दस महाविद्याएँ ही हे। महाकालीके दशधा प्रधान रूपाको ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्यापति शिवकी शक्तिरूपा ये दस महाविद्याएँ लाक ओर शास्त्रम यद्यपि अनेक रूपोम पूजित हुईं, पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। ये रूप अपनी उपासना मन्त्र और दीक्षाआके भेदसे अनेक हात हुए भी मूलत एक ही हैं। अधिकारिभेदस अलग-अलग रूप और उपासना-स्वरूप प्रचलित हे। काली, तारा, छिन्नमस्ता बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवतीके प्रकट कठार कितु अप्रकट करुण-रूप है तो भुवनेश्वरी षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी मातङ्गी और कमला विद्याआके साम्यरूप हैं। ये ही महाविद्याएँ साधकोकी परम धन हें जो सिद्ध हाकर अनन्त सिद्धियाँ और अनन्तका साक्षात्कार करानम समर्थ हैं।

यद्यपि दस महाविद्याआका स्वरूप अचिन्त्य है तथापि शाखाचन्द्रन्यायस उपासक स्मृतियाँ और पराम्बाके चरणानुगामी इस विषयम कुछ निर्वचन अवश्य कर लत है। इस दृष्टिस काली-तत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्रह्मकी पर्याय इस महाशक्तिका तान्त्रिक ग्रन्थाम विशेष प्रधानता दी गया है। वास्तवम इन्हींक दा रूपाका विस्तार ही दस महाविद्याआक स्वरूप हैं। महानिर्गुणकी अधिष्ठात्री शक्ति होनक कारण हा इनकी उपमा अन्धकारसे दी जाती हे। महासगुण हाकर व 'सुन्दरी' कहलाती हैं ता महानिर्गुण हाकर 'काली'। तत्त्वत सब एक हे भेद कवल प्रतीतिमात्रका हैं। 'कादि' और 'हादि' विद्याआक रूपम भी एक ही श्रीविद्या क्रमश कालीस प्रारम्भ हाकर उपास्या होती हैं। एकका 'सहार-क्रम' ता दूसरको 'सृष्टि-क्रम' नाम दिया जाता है। दवीभागवत आदि शक्ति-ग्रन्थाम महालक्ष्मी या शक्तिबीजको मुख्य प्राधानिक बतानका रहस्य यह है कि इसम 'हादि' विद्याकी क्रम-योजना स्वीकार की गयी हे और तन्त्रा (विशेषकर अत्यन्त गापनीय तन्त्रा)-म कालीको प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृष्टिस यहाँ भी भेदबुद्धिकी सम्भावना नहीं है। *'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा'* का तर्क दोनाका दानासे अभिन्न सिद्ध करता है।

'बृहन्नीलतन्त्र'में कहा गया है कि रक्त और कृष्णभेदसे काली ही दो रूपोमे अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरा'—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ताप्रभेदत ।
कृष्णा तु दक्षिणा प्राक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

उपासनाके भेदसे दोनाम द्वैत हे, पर तत्त्वदृष्टिसे अद्वैत है। वास्तवम काली आर भुवनेश्वरी दोना मूल-प्रकृतिक अव्यक्त और व्यक्त रूप है। कालीसे कमलातककी यात्रा दस सोपानामे अथवा दस स्तराम पूर्ण होती है। दस महाविद्याओंका स्वरूप इसी रहस्यका परिणाम है।

दस महाविद्याआकी उपासनाम सृष्टिक्रमकी उपासना लाकग्राह्य हे। इसम भुवनेश्वरीको प्रधान माना गया है। वही समस्त विकृतियाकी प्रधान प्रकृति है। देवीभागवतके अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्चके पाये हैं। इस श्रीमञ्चपर भुवनेश्वरी भुवनेश्वरक साथ विद्यमान हैं। सात कराड मन्त्र इनकी आराधनाम लग हुए हैं। विद्वानाका कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा विष्णु आदि पञ्च आख्याआको प्राप्त होकर अपनी शक्तियाक सानिध्यसे सृष्टि स्थिति लय, सग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्च-कृत्याको सम्पादित करते है। वह निर्विशेष तत्त्व 'परमपुरुष' पद-वाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति हा है भुवनेश्वरी।

महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी अन्यान्य कथाएँ

१-काली—दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। कालिकापुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओंने हिमालयपर जाकर महामायाका स्तवन किया। पुराणकारके अनुसार यह स्थान मतङ्गमुनिका आश्रम था। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवतीने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि 'तुम लोग किसकी स्तुति कर रहे हो।' तत्काल उनके श्रीविग्रहसे काले पहाड़के समान वर्णवाली एक दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़े काजलके समान कृष्णा थीं इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा 'श्रीदुर्गासप्तशती'-में भी है। शुम्भ-निशुम्भके उपद्रवसे व्यथित देवताओंने हिमालयपर देवीसूक्तसे देवीको जब बार-बार प्रणाम निवेदित किया, तब गौरी-देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया वे ही 'काली' नामसे विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। ८८)

वास्तवमें कालीको ही नीलरूपा होनेसे 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तरसे 'तारा' नामका रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देनेवाली—तारनेवाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियोंसे रक्षणकी कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे 'उग्रतारिणी' या 'उग्रतारा' हैं।

नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार—एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ, यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारदजी प्रकट हो गये। शिवजीने नारदजीसे कालीका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवकी प्रेरणापर नारदजी वहाँ गये और उन्होंने शिवजीसे विवाह करनेके लिये कालीके समक्ष प्रस्ताव रखा। देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य विग्रह—षोडशी प्रकट हुई, जिससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवीका प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी स्तुतिमें 'महाविद्या' तथा देवताओंकी स्तुतिमें 'लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये' सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकाएँ आधारपीठ हैं इनके भीतर स्थित शक्तियोंका साक्षात्कार शक्ति-उपासना है। शक्तिसे शक्तिमान्‌का अभेद-दर्शन, जीवभावका लोप और शिवभावका उदय किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध शक्ति-उपासनाकी चरम उपलब्धि है। कालीकी साधना यद्यपि दीक्षागम्य है, तथापि अनन्य-शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति यन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी आधारपर भक्तिभावसे मन्त्र जप पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे काली प्रसन्न हो जाती हैं। कालीकी प्रसन्नता सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति है।

२-तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं बृहन्नीलतन्त्रादि ग्रन्थोंमें उनके विशेष रूपकी चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये देवीका नीलविग्रह प्राप्त हुआ है। शव-रूप शिवपर प्रत्यालीढ मुद्रामें भगवती आरूढ हैं। उनकी आकृति नील रंगकी और नीलकमलोंकी भाँति तीन नेत्र हैं तथा हाथोंमें कैंची, कपाल कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्मसे विभूषिता उन देवीके कण्ठमें मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इस कारण वे महाकरुणामयी हैं।

शत्रुनाश वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है। रात्रिदेवी-स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाव और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी है।

३-छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता'के प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। वहाँ स्नान करनेपर क्षुधाग्निसे पीड़ित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः याचना करनेपर देवीने पुनः प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। बादमें उन देवियोंने विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो शिशुओंको तुरंत भूख लगनेपर भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयीने अपने कराग्रसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बाँये हाथमें आ गिरा और

कबन्धसे तीन धाराएँ निकलीं। वे दो धाराओको अपनी दोनों सहेलियोकी ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपरकी ओर प्रवाहित थी, उसे वे स्वय पान करने लगीं। तभीसे ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोधकी प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञ-शीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खडी हैं। इनकी नाभिमे योनिचक्र है। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोकी देवियाँ उनकी सहचरियाँ हैं। वे अपना शीश स्वय काटकर भी जीवित हैं, जिससे उनमे अपनेमे पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका सकेत मिलता है।

४-षोडशी—इनम षाडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित है अतएव वे 'षोडशी' कहलाती हैं। षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनाहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। सोलह अक्षराके मन्त्रवाली उन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। उनकी चार भुजाएँ एव तीन नत्र है। शान्त मुद्रामे लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर विराजिता षोडशी देवीके चारा हाथोमे पाश, अकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवताका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमे और ईश्वरमे कोइ भेद नहीं रह जाता। वस्तुत उनकी महिमा अवर्णनीय है। ससारके समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तोको वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुत उनकी कृपाका एक कण भी अभीष्टसे अधिक प्रदान करनेम समर्थ है।

५-भुवनेश्वरी—देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हृल्लेखा (ह्रीं)-मन्त्रकी स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रममे महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिवक समस्त लीला-विलासकी सहचरी और निखिल प्रपञ्चाकी आदि कारण सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकारसे पोषण प्रदान करनेवाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्ताको अभय एव समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्राम इनकी अपार महिमा बतायी गयी है।

देवीका स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्रम सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवतम देवाका 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रामे कहा गया है कि इस बीजमन्त्रक जपका पुरश्चरण करनेवाला और यथाविधि हाम ब्राह्मण-भोजन करानवाला भक्तिमान् साधक साक्षात् प्रभुक समान हा जाता है।

वृद्धिगत विश्वक अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव है, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है। सामात्मक अमृतसे विश्वका आप्यायन (पोषण) हुआ करता है, इसीलिय भगवतीन अपने किरीटम चन्द्रमा धारण कर रखा है। ये ही भगवती त्रिभुवनका भरण-पोषण करती रहती ह, जिसका सकत उनके हाथकी मुद्रा करती है। ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनत्रा एव उन्नत कुचयुगला देवी हैं। कृपादृष्टिकी सूचना उनक मृदुहास्य (स्मेर)-स मिलती है। शासनशक्तिक सूचक अकुश-पाश आदिका भी व धारण करती हैं।

६-त्रिपुरभैरवी—इन्द्रियापर विजय और सवत्र उत्कर्षकी प्राप्ति-हेतु त्रिपुरभैरवीकी उपासनाका विधान शास्त्राम कहा गया है। क्षीयमान विश्वके अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। उनक ध्यानम बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रा सूर्योके समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं। रक्तसे उनके पयोधर लिप्त हैं। वे तीन नेत्र एव हिमाशु-मुकुट, हाथम जपवटी विद्या वर एव अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करता रहती हैं।

७-धूमावती—धूमावती देवीके विषयम कथा आती है कि एक बार पार्वतीने महादवजीसे अपनी क्षुधा-निवारणक लिये निवेदन किया। महादवजी चुप रह गये। कई बार निवेदन करनेपर भी जब दवाधिदवने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया तब उन्हाने महादवजीको ही निगल लिया। उनक शरीरसे धूमराशि निकली। तब शिवजीने शिवास कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्ति वगला अब 'धूमावती' या 'धूमा' कही जायगी।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा डरावनी और भूख-प्याससे व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी ह।

८-बगलामुखी—पीताम्बरा विद्याक नामस विख्यात बगलामुखीकी साधना प्राय शत्रुभयसे मुक्त हान आर वाक्सिद्धिके लिय की जाती है। इनकी उपासनामें पातवस्त्र हरिद्रामाला पीत आसन और पीत पुष्पाका विधान है। व्यष्टिरूपम शत्रुआका नष्ट करनेकी इच्छा रखनवाली आर समष्टिरूपम परमश्वरकी सहारच्छाकी अधिष्ठात्री शक्ति वगला

या वगलामुखी हैं। ये देवी सुधा-समुद्रके मध्य स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नवेदीपर, रत्नमय सिहासनपर विराजमान हैं। स्वय पीतवर्ण हाती हुई पीतवर्णके ही वस्त्र आभूषण एव माला धारण किये हुए हें। इनक एक हाथमे शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमे मुद्गर है। इनके आविर्भावके विषयम इस प्रकारकी कथा आती है—

सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट करनेवाला तूफान आया। प्राणियोके जीवनपर मँडराते हुए सकटके घनघोर बादलको दखकर महाविष्णु चिन्तित हो गय और वे सौराष्ट्र देशमे हरिद्रा सरोवरके समीप जाकर भगवतीका प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे निकलकर पीताम्बराके रूपम उन्हे दर्शन दिया और बढत हुए जल-वेग तथा विध्वसकारी उत्पातका स्तम्भन किया। वास्तवमे दुष्ट वही है, जो जगत्के या धर्मके छन्दका अतिक्रमण करता है। वगला उसका स्तम्भन किवा नियन्त्रण करनेवाली महाशक्ति हैं। वे परमेश्वरकी सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गतिको अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होनेका यही रहस्य है। '**ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ**' आदि श्रुति वाक्यामे वगला-शक्ति ही पर्यायरूपमे सकेतित हैं। वे सर्वसिद्धि देनेम समर्थ और उपासकाकी वाञ्छाकल्पतरु हैं।

९-मातङ्गी—'मतङ्ग' शिवका नाम है, उनकी शक्ति 'मातङ्गी' है। उनके ध्यानम बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं। चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं। त्रिनेत्रा रत्नमय सिहासनपर विराजमान नीलकमलके समान कान्तिवाली और राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्मसात् करनेम दावानलके समान हैं। ये देवी चार भुजाआमे पाश खड्ग खटक और अकुश धारण किये हुए है तथा असुराको माहित करनवाली एव भक्ताको अभीष्ट फल देनवाली हे। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासम पारगत होनेके लिय मातङ्गी-साधना श्रयस्कर हे।

१०-कमला—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी कमलाकी उपासना वास्तवमें जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। इनकी कृपाके अभावम जीवम सम्पत्-शक्तिका अभाव हा जाता है। मानव, दानव ओर देव—सभी इनकी कृपाके बिना पगु हैं। विश्वभरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम दोनाम समान रूपस प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याआम एक है। जो क्रम-परम्परा मिलती है, उसमे इनका स्थान दसवाँ है। (अर्थात् इनम—इनकी महिमामे प्रवेशकर जीव पूर्ण ओर कृतार्थ हा जाता है।) सभी देवता राक्षस, मनुष्य सिद्ध गन्धर्व इनकी कृपाके प्रसादक लिय लालायित रहत हैं। य परम वैष्णवी सात्त्विक और शुद्धाचारा विचार-धर्मचतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमलपर हे। इनके ध्यानम बताया गया है कि ये सुवर्णतुल्य कान्तिमती ह। हिमालय-सदृश श्वेतवर्णके चार गजाद्वारा शुण्डाआसे गृहीत सुवर्ण-कलशास स्नापित हो रही हैं। ये देवी चार भुजाओम वर, अभय और कमलद्वय धारण की हुई हैं तथा किरीट ओर क्षाम-वस्त्रक परिधानोसे सुसज्जित हैं।

महाविद्याओका स्वरूप वास्तवमे एक ही आद्याशक्तिक विभिन्न स्वरूपाका विस्तार हे। इनकी उपासनास विजय ऐश्वर्य धन-धान्य पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती हे। पारमार्थिक स्तरपर इन विद्याआकी उपासनाका आशय अन्तत मोक्षकी साधना ह, भगवत्प्राप्तिकी साधना ह।

भगवतीके विविध नामरूपोंकी लीला

पराम्बाके जैसे अनन्त विग्रह हैं वैसे ही उनके नाम भी अनन्त हैं और वैसे ही उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं। और वे हैं सभी अचिन्त्य एव नित्य चिन्मय। भक्तोंके लिये तो विशेष कल्याणकारी और आनन्दप्रद। जिस प्रकार लीला-चिन्तन लीला-दर्शनस परम हित सध जाता है वैस ही लीला-विग्रहोंके नामोच्चारण, नाम-स्मरण आदिमे भी महान् कल्याण हो जाता है। जो कृपामय विग्रह है वही नाम भी है और उसीके अनुरूप लीला भी होता है इसलिये तत्त्वत इनम सर्वथा अभेद है, यहाँ देवीके कुछ लीलामय श्रीविग्रहाका नाम-स्मरण किया जा रहा है, जिनकी विविध लीलाआन जगत्का महान् कल्याण किया हे—

श्रीदुर्गासप्तशतीमें भगवतीक त्रिविध विग्रहाकी एश्वर्यमया एव कृपामयी लीलाआका गान हुआ है—उन त्रिविध लीला-विग्रहाके नाम हैं—

(१) महाकाली, (२) महालक्ष्मी तथा (३) महासरस्वती। भगवतीका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम दुर्गा या चण्डी हैं।

श्रीदुर्गाके नौ लीला-विग्रह विख्यात ही हैं, जिनका स्मरण इस प्रकार किया जाता है—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता।

ऐसे ही देवीके कुछ लीला-विग्रह इस प्रकार परिगणित हैं—

(१) जयन्ती, (२) मङ्गला, (३) काली, (४) भद्र-काली, (५) कपालिनी, (६) दुर्गा, (७) क्षमा, (८) शिवा, (९) धात्री, (१०) स्वाहा आर (११) स्वधा।

दवी 'जयन्ती' सबस उत्कृष्ट आर विजयशालिनी हैं। देवी 'मङ्गला' भक्ताके जन्म-मरणादि ससार-बन्धनका दूर कर मोक्ष-प्रदान करनवाली ह। प्रलयकालम सृष्टिको अपना ग्रास बना लनवाली देवी 'काली' हैं। जा भद्र सुख अथवा मङ्गल-ही-मङ्गल करनेवाली हैं, वे 'भद्रकाली' हैं। हाथम कपाल तथा मुण्डमाला रूप अशिव वेष धारणकर भी जा शिवरूपा हैं वे 'कपालिनी' हैं। जा दुर्गति दूर करनेवाली हैं, दुर्गम दैत्यस मुक्ति दिलानवाली हैं और जो दु साध्य साधनसे प्राप्त हाती हैं वे 'दुर्गा' हैं। सम्पूण जगत्की जननी होनसे देवीम करुणाकी पराकाष्ठा है। इसी कारण वे भक्ताक अथवा दूसराक भी सभी अपराध क्षमा कर देती हैं इसीलिय 'क्षमा' कहलाती हैं। सबका शिव—कल्याण करनेवाली हैं इसलिय वे 'शिवा' हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्चका धारण करनक कारण व 'धात्री' कही गयी हैं। 'स्वाहा'-भागसे वे दवी हवि ग्रहणकर देवताआका हव्य तथा 'स्वधा'कारस पितराको कव्य पहुँचाती हैं। एसी इन दवी रूपाको नमस्कार ह।

श्रीविद्याके लीला-विग्रह—एक कथानक

या तो श्रीविद्याके लीला-विग्रह अनन्त हैं फिर भी त्रिपुरारहस्य माहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्ड-पुराणात्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासाम कुछ मुख्य विग्रहाका ही परिगणन किया गया है। उन्हीं दस विग्रहाकी सेतिहास झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) कुमारी—सर्वप्रथम इन्द्रादि दवाक गर्व-परिहारके लिय माता श्रीविद्या कुमारीरूपसे 'बालाम्बा'क रूपम प्रकट हुई।

(२) त्रिरूपा—कारणपुरुष ब्रह्मा विष्णु और शिवका उनक अधिकृत सृष्टि स्थिति और सहारात्मक कार्योमे सहायता करनके लिये श्रीविद्या माताने वाणी, रमा तथा रुद्राणी शक्तियाका अपने शरीरसे उत्पन्न किया और तीना दवियाका तीना दवास विवाह करा दिया।

(३) गौरी और (४) रमा—मर्त्यलाकम मानवाद्वारा यज्ञ-यागादि कर्मोक न हानस इन्द्रादि दव चिन्तित हुए। फिर ब्रह्मदेवक आदेशानुसार उन लागान श्रीमहालक्ष्मीकी आराधना की। श्रीमहालक्ष्मीन अपन पुत्र कामदवका दवकार्यम सहायता करनेक लिय भजा। कामदवका भूलोकाधिपति राजा वीरव्रतक सैनिकासे घार युद्ध हुआ जिमम कामदेवन सबका भगा दिया। राजा वारव्रतन इस आपत्तिक निवारणार्थ भगवान् शकरकी आराधना की। शकरसे विजय-प्राप्तिका वरदान पाकर राजाने कामदवसे पुन युद्ध छड दिया। उसने शकरप्रेपित त्रिशूलात्मक बाण कामदेवपर चलाकर उसे धराशायी कर दिया।

लक्ष्मीजीके दूताने जब कामदवका निश्चष्ट शरीर लक्ष्मीजीके पास पहुँचाया तब उन्हान त्रिपुराम्बा-प्रसादसे अमृतद्वारा उस पुनरुज्जीवित कर दिया। शकरके प्रभावस अपनी पराजय तथा मृत्युका वृत्तान्त सुननेके साथ ही कामदेवके मनम शकरके प्रति घार द्वपकी गाँठ पड गयी। उसने त्रिपुराम्बाकी आराधनाद्वारा बल-सचयकर शकरका हरानकी अपन मनम प्रतिज्ञा की।

इतनम ही श्रीमहालक्ष्मीने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना की। तदनुसार त्रिपुराम्बाद्वारा प्रेपिता गोरी वहाँ प्रकट हुईं। श्रीमहालक्ष्मीने कामदवकी पराजय तथा उसका प्रतिज्ञा आदिका वृत्तान्त गौरीको सुनाकर इस आपत्तिक निवारणका उपाय पूछा।

गोरीन लक्ष्मी तथा कामदव दानाका समझात हुए कहा कि 'शकरजी सर्वश्रेष्ठ हैं उनसे स्पर्धा करना उचित नहीं। उन्हींकी आराधना करक अपना अभीष्ट प्राप्त करना उचित हागा।' गौराका उक्ति सुनकर कामदव रुष्ट हा गया आर

उसने शंकरको जीतनेकी अपनी प्रतिज्ञासे टस-से-मस न होनेकी बात कही। यह सुनकर गौरी भी क्रुद्ध हो उठीं और उन्होंने कामदेवका शाप दे डाला—'तुम शिवजीके द्वारा दग्ध हो जाओगे।'

प्रिय पुत्रको गौरीद्वारा शापित सुनकर महालक्ष्मीने भी गौरीको शाप दे डाला कि 'तुम भी पतिनिन्दा सुनकर दग्ध हो जाओगी।' महालक्ष्मीका यह शाप सुनकर गौरीने भी लक्ष्मीको शाप दिया—'तुम पति-विरहका दुःख तथा सपत्नियासे क्लेश पाओगी।' परिणामस्वरूप लक्ष्मी और गौरीमे युद्ध आरम्भ हो गया। परस्परके प्रहारसे दोनों मूर्च्छित होने लगीं। किसी तरह ब्रह्मा और सरस्वतीके बीच-बचावसे वह युद्ध शान्त हुआ।

शिवजीको जीतनेकी अभिलाषासे कामदेवने अपनी माता महालक्ष्मीसे त्रिपुराम्बाके 'सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्र'का उपदेश ग्रहणकर मन्दराचलकी गुफामें बैठ आराधना आरम्भ कर दी। कुछ दिन बाद त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर स्वप्नमें कामदेवको अत्यन्त गुप्त 'पञ्चदशी विद्या' का उपदेश दिया। दिव्य वर्षत्रयतक कामदेवने एकाग्रभावसे श्रीमाताकी आराधना की। भगवतीने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और 'काम! आजसे तुम अजय हुए'—यह कहते हुए अपने धनुष और शरसे धनुष तथा शर उत्पन्नकर उन्होंने कामदेवको सौंप दिये।

दक्षयज्ञमें पतिनिन्दा सुनकर भस्मीभूत सतीरूपा गौरी नभोरूपमें स्थित हो गयीं और कुछ समय बाद हिमाचलकी कठोर आराधनासे प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी कन्या बनना स्वीकार कर लिया। कालान्तरमें वे पर्वतराजपुत्री उमारूपमें प्रकट हुईं।

इधर तारकासुर-वधमें शिवपुत्रको सेनापति बनाना आवश्यक समझकर इन्द्रने शिवका तपोभंग करनेके लिये कामको आज्ञा दी, किंतु गौरीके समक्ष ही शिवजीने अपने तृतीय नेत्रसे कामको दग्ध कर डाला।

(५) भारती—एक बार ब्रह्मदेवकी सभामें दर्वर्षिद्वारा सावित्रीकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेवने उसका उपहास किया। सावित्रीने इसे अपना अपमान समझकर ब्रह्मदेवको खूब फटकार सुनायी, तब ब्रह्माजी बिगड़कर बोले—'पतिका अपमान करनेवाली तुम पत्नीत्वके योग्य नहीं रही। आजसे यज्ञोंमें मेरे साथ न बैठ सकोगी।' सावित्रीने भी बिगड़कर कहा—'यदि मैं तुम्हारी पत्नी होने योग्य नहीं तो शूद्रकन्या तुम्हारी पत्नी होगी।'

दोनोंके क्रोधसे जगत्में व्याकुलता देखकर हरि और हरने दोनोंको आश्वस्त करते हुए कहा कि 'देहान्तरमें सावित्री ही शूद्रकन्या होगी।' फिर भी ब्रह्मा और सावित्री पूर्णतः शान्त नहीं हुए। ब्रह्माने सावित्रीको 'शूद्रकन्या-जन्ममें पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण न रहनेका शाप दिया तो प्रत्युत्तरमें सावित्रीने भी ब्रह्माजीको निन्द्य-स्त्रीमें कामुक होनेका शाप दिया।'

एक बार ब्रह्माजीने यज्ञ करनेका विचार किया और सावित्रीको बुलाया, किंतु वह न आयीं। मुहूर्तका अतिक्रमण होनेके भयसे विष्णुने भूतलसे एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्माका विवाह कर दिया और यज्ञ यथाविधि पूरा हो गया। इससे सावित्री अत्यन्त क्रुद्ध हुईं, उनके क्रोधसे त्रैलोक्य जलने लगा। तब पार्वतीकी प्रार्थनापर त्रिपुराम्बाने आविर्भूत होकर सावित्रीको शान्त किया। यही 'भारती' हुईं।

(६) काली—एक बार आदिदित्य मधु और कैटभके कुलमें उत्पन्न शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्योंने उग्र तपस्या करके ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजय होनेका वर प्राप्त कर लिया। फिर क्या था? तीनों लोकोंपर उन दोनों असुर-बन्धुओंने आक्रमण किया। सारे देवता स्वर्गसे निर्वासित कर दिये गये। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसहित इन्द्रादि देवोंने जाह्नवी-तटपर 'नमो देव्यै' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बाकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीका रूप धारण किया और शुम्भ-निशुम्भद्वारा प्रेषित असुर-सेनापति चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंका वध किया।

(७) चण्डिका और (८) कात्यायनी—भगवती श्रीविद्याके छठे, सातवें, आठवें अवतारोंकी कथाएँ 'श्रीदुर्गा-सप्तशतीस्तोत्र' में प्रसिद्ध तथा सर्वविदित हैं। अतएव यहाँ स्थानाभावके कारण उसका विशेष उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

(९) दुर्गा—महिषासुरको मारनेके लिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें माँ श्रीविद्याने अवतार ग्रहण किया। यह कथा भी 'श्रीदुर्गासप्तशती' के मध्यमचरित्रमें प्रसिद्ध है।

(१०) ललिता—पूर्वकालमें भण्ड नामक एक असुरने श्रीशिवजीकी आराधना की और उनसे अभयरूप वर प्राप्तकर वह त्रिलोकीका अधिपति बन बैठा। उसने देवताओंके हविर्भागको भी स्वयं ही भोग आरम्भ कर दिया। इन्द्राणीको भी वह हरनेकी बात सोचने लगा तो वे भयसे गौरीके

निकट आश्रयार्थ पहुँचीं। इधर भण्डने 'विशुक्र' को पृथिवीका और 'विषङ्ग'का पातालका आधिपत्य सौंप दिया और स्वय इन्द्रासनपर आरूढ होकर इन्द्रादि देवताओंको अपनी पालकी ढोनेमें नियुक्त किया। दयावश शुक्राचार्यजीने इन्द्रादिकोंको इस दुर्गतिसे मुक्त किया। भण्ड दैत्यने असुरोंकी मूल राजधानी 'शोणितपुर'को मयासुरद्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवाकर उसका नया नाम 'शून्यकपुर' रखा और वहीं वह राज्य करने लगा।

स्वर्गको तो दैत्यराज भण्डने नष्ट कर ही डाला दिक्पालोंके स्थानोंपर भी अपने दैत्योंको बैठा दिया। इस प्रकार एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंपर भण्डने आक्रमण किये और उन सबको अपने अधिकारमें कर लिया।

इसके पश्चात् पुन भण्ड दैत्यने घोर तपस्या करके शिवजीसे अमरत्वका वरदान प्राप्त कर लिया। 'इन्द्राणीने गौरीका आश्रय लिया है', यह जानकर वह कैलास पहुँचा और गणेशजीकी भर्त्सनाकर उनसे इन्द्राणीको अपने लिये माँगने लगा।

गणेशजी बिगडकर प्रमथादि गणोंको साथ लेकर उससे युद्ध करने लगे। पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त देखकर उसकी सहायताके लिये गौरी अपनी कोटि-कोटि शक्तियोंके साथ युद्धस्थलमें उतरीं और दैत्योंसे युद्ध करने लगीं। इधर गणेशजीकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित होकर पुन प्रकृतिस्थ होते ही भण्डासुरने उन्हें अकुशके आघातसे मार गिराया। गौरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हुईं और हुकारसे भण्डको बाँधकर ज्यों ही मारनेके लिये उद्यत हुईं त्यों ही ब्रह्माजीने गौरीको शकरजीके अमरत्व-वरका स्मरण दिलाया। विवश होकर गौरीने उसे छोड दिया।

इस प्रकार भण्ड दैत्यसे त्रस्त हो उठनेपर इन्द्रादि देवोंने गुरुके आज्ञानुसार हिमालयमें त्रिपुरादेवीके उद्देश्यसे 'तान्त्रिक महायाग' आरम्भ कर दिया। अन्तिम दिन याग समाप्तकर जब देवगण माता श्रीविद्याकी स्तुति कर रहे थे तब उसी [illegible] महानादपूर्वक [illegible] तर्जमान त्रिपुराम्बा प्रादुर्भूत हुईं। उस महानादको सुनकर तथा [illegible] प्रकाशपुञ्जको देखकर गुरु बृहस्पतिको [illegible] मूर्च्छित [illegible]।

गुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माने हर्षपूर्वक गद्गद-स्वरसे श्रीविद्यामाताकी स्तुति की। श्रीमाताने प्रसन्न होकर उनको अभीष्ट पूछा। उन्होंने भी भण्डासुरकी कथा सुनाकर उसके नाशकी प्रार्थना की। माताने उसे मारना स्वीकार किया और मूर्च्छित इन्द्रादि देवोंको अपनी अमृतमय कृपा-दृष्टिसे चैतन्य प्रदान किया तथा अपने दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन्हें विशेषरूपसे तपस्या करनेकी आवश्यकता बतलायी। देवता लोग भी माताके आज्ञानुसार तपस्यामें जुट गये।

इधर भण्डासुरने देवोंपर धावा बोल दिया। कोटि-कोटि सैनिकोंके साथ आते हुए भण्ड दैत्यको देखकर देवोंने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना करते हुए अग्नि-कुण्डमें अपने शरीरोंका होम देना शुरू कर दिया। त्रिपुराम्बाके आज्ञानुसार 'ज्वालामालिनी' शक्तिने देवगणोंके चारों ओर ज्वालामण्डल प्रकट कर दिया। देवोंको ज्वालामें भस्मीभूत समझकर भण्ड दैत्य सैन्यके साथ वापस चला गया।

दैत्यके जानेके बाद देवतागण अपने अवशिष्टाङ्गोंकी पूर्णाहुति करनेके लिये ज्यों ही उद्यत हुए, त्यों ही ज्वालाके मध्यसे तडित्पुञ्जनिभा 'त्रिपुराम्बा' आविर्भूत हुईं। देवोंने जयघोषपूर्वक पूजनादिद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। देवोंको अपना दर्शन सुलभ हो इसलिये श्रीमाताने विश्वकर्माके द्वारा सुमेरु-शृंगपर निर्मित श्रीनगरमें सर्वदा निवास करना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीचक्रात्मक रथपर आरूढ होकर भण्ड दैत्यको मारनेके लिये प्रस्थान किया। दोनोंके बीच महाभयानक युद्ध हुआ। श्रीमाताके कुमार श्रीमहागणपति तथा कुमारी बालाम्बाने भी युद्धमें अत्यधिक पराक्रम दिखाया। श्रीमाताकी मुख्य दो शक्तियों—१-मन्त्रिणी 'राजमातङ्गीश्वरी' और २—दण्डिनी 'वाराही'-सहित अन्य अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमद्वारा दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी।

अन्तमें बड़ी कठिनाईसे जब श्रीमाताने महाकामेश्वरास्त्र चलाया तब सपरिवार भण्ड दैत्य भस्मीभूत हो गया। देवोंका भय दूर हो गया और वे स्वर्गमें अपने-अपने पदोंपर पूर्ववत् अधिष्ठित हो गये। दैत्यद्वारा आक्रान्त एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंमें भी [illegible]।

विविध देवों तथा अवतारोंकी लीलाएँ

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाकी एक झाँकी

(मानसमर्मज्ञ आचार्यप्रवर पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी महाराज)

हिन्दी विश्वकोशके अनुसार 'लीला' शब्दके कई पर्यायवाची शब्द हैं—केलि, क्रीडा, खेल, रहस्यमय व्यापार और मनुष्योंके हितके लिये ईश्वरावतारोंका अभिनय, चरित्र तथा लीलादि।

श्रीरामभक्ति-साहित्यमें परमात्मा श्रीरामकी लीलाओंके प्रमुखतः तीन प्रकार बताये गये हैं—(१) नित्य, (२) अवतरित एवं (३) अनुकरणात्मक। इन्हीं तीनों लीलाओंको कहीं-कहीं 'अक्षर', 'वास्तविक' तथा 'व्यावहारिक' लीला भी कहा गया है।

[१] परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जो लीलाएँ दिव्यधाम साकेतमें अनवरत चलती रहती हैं, उन दिव्य लीलाओंको 'नित्य-लीला' कहा गया है।

[२] जीवोंके उद्धारकी इच्छासे जो लीलाएँ धराधामपर होती रहती हैं, उन्हें 'अवतरित-लीला'के नामसे जाना जाता है।

[३] जिन परम दिव्य लीलाओंको प्रेमी भक्तोंद्वारा यत्र-तत्र लीलाभिनय (श्रीरामलीला)-के रूपमें किया जाता है, उन्हें 'अनुकरणात्मक-लीला' कहा गया है।

प्रकट और अप्रकटके भेदसे भूमण्डलपर 'अवतरित' अवतारकालीन लीलाओंके भी दो प्रकार हैं—'सा लीला प्रकटाप्रकटभेदेन द्विविधा।' पद्मपुराणमें भी कहा गया है—'प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते।' जब प्रभु श्रीरामकी इच्छासे उनकी लीलाएँ विविध ब्रह्माण्डोंमें गोचरीभूत होती हैं, तब उन्हीं लीलाओंको 'प्रकटलीला' कहते हैं और जो लीलाएँ गोचरीभूत नहीं हो पातीं, उन्हें 'अप्रकटलीला' कहते हैं। जैसे भास्कर प्रभामय, वारि द्रवमय तथा वायु प्रवाहमय है, उसी प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भी लीलामय हैं।

भूतलपर भी मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामकी प्रकट लीलाएँ अनन्त हैं। उन्हीं अवतरित-प्रकट लीलाओंसे मानवोंके लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद एक आदर्श-लीलाकी झाँकी प्रस्तुत है—

एकपत्नीव्रती रामो मर्यादापुरुषोत्तमः।' यह शास्त्रवाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वयं भगवान् श्रीरामने भी मिथिलाकी फुलवारी-लीलामें अत्यन्त विश्वासपूर्वक अपनी मानसिक प्रवृत्तिका उद्घोष किया है। यथा—

> अत्यन्तमस्ति विश्वासो मह्यं तु मम चेतसः।
> कदाप्यनेन स्वप्नेऽपि परस्त्री नावलोकिता॥

तात्पर्य मुझे अपने मनपर पूरा-पूरा विश्वास है कि वह स्वप्नकालमें भी परायी नारीकी ओर नहीं देख सकता।

और-तो-और महर्षि प्राचेतसने भी श्रीरामायणके एक प्रसंगमें वर्णन किया है—

> कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
> कस्मात् स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः॥
>
> (वा०रा० २। ७२। ४५)

ननिहालसे लौटनेके पश्चात् धर्मज्ञ राजकुमार भरतने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके निर्वासित होनेका कारण पूछते हुए कहते हैं—'राजकुमार श्रीरामका मन किसी परायी स्त्रीकी ओर तो नहीं चला गया था? किस अपराधके कारण भैया श्रीरामको दण्डकारण्यमें जानेके लिये निर्वासित कर दिया गया है?'

तब श्रीभरतसे वनवासदायिनी कैकेयीने भी इस प्रकार उत्तर दिया था—'वे तो परायी स्त्रीको आँखसे भी नहीं देखते।' यथा—

> न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥
>
> (वा०रा० २। ७२। ४८)

गास्वामीजीन लिखा है—'*बैरिउ राम बड़ाई करहीं।*' एस थ मयादापुरुषात्तम श्रीराम। श्रीरामचरितमानसम भी प्रभु श्रीरामन स्वय अपना मन्तव्य दिया है—

माहि अतिसय प्रतीति मन करी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हरी॥

(रा०च०मा० १। २३१। ६)

श्रीभगवान्‌न अपन इस आदर्श कथनका श्रीरामावतारकी लीलाआम पूणत चरिताथ करत हुए श्रीजानकीजीक अतिरिक्त ससारकी सम्पूर्ण नारियोंक प्रति मातृभाव रखकर जगत्‌म एक उच्चतम आदर्शकी स्थापना की है।

आनन्दरामायणम भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका 'एकपत्नीव्रती' और 'पवित्र राजर्षि' कहा गया है—

एकपत्नीव्रता रामा राजर्षि सर्वदा शुचि ॥

(आनन्द०रा०सार० १३। २०५)

आग चलकर स्वय भगवान् श्रीराघवन्द्रने अपने इस श्रेष्ठतम व्रतपर जार दत हुए श्रीसीताजीस कहा—'मैं एकपत्नीव्रती हूँ, मर लिय तुम्हें छोडकर अन्य सारी नारियाँ माता कौसल्याजीके समान हैं। तुम मुझस इस प्रकार अन्यथा बात क्या कह रही हो?' यथा—

एकपत्नीव्रत मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम।

अन्या स्याति मृषा वाक्य कत्थस त्व पुन पुन ॥

(आनन्द०रा० विलास० ८। ६३)

इसक अतिरिक्त भी यह पक्ति प्रसिद्ध है—'रामचन्द्र परान् दारान् नाभिवीक्षत। 'मातृवत् परदारपु""।' एव '*जननी सम जानहिं परनारी।*' इत्यादि पक्तियाँ निम्नलिखित लीला-झाँकीम पूर्ण चरितार्थ होती हैं।

[illegible] दशाननक मरणापरान्त महारानी मन्दादरी अन्य बहुत-सी रानियोंसहित रणाङ्गणम रदन एव विलाप कर रही थीं। श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीक समझानपर विभीषणन [illegible] होकर महारानी मन्दोदरीको जैसे-तैसे समझा-बुझाकर [illegible] भी दिया। परम विदुषी मानिनी [illegible] [illegible] आ गया [illegible] [illegible] [illegible]

भगवत्तासे परिचित थी, फिर भी पतिकी मृत्युसे वह व्याकुल हो उठी। उसने अपने-आपको समझानेका बहुत प्रयास किया—'श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं, वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डाके स्वामी हैं। जगन्नियन्ता जगन्नाथ-रघुनाथके समक्ष भला उसके स्वामी दशग्रीवकी बिसात ही क्या!

उन अतुल बलशाली विश्वविजता महाराज रावणका दो मानवकुमारा एव ऋक्ष-वानराकी सनाद्वारा इस प्रकार असहायावस्थाम मारा जाना सर्वथा अस्वाभाविक है। निश्चय ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामम कुछ ऐसे मानवोचित विशिष्ट गुण अवस्थित हे जो मर प्राणवल्लभ लकश्वरम नहीं थे।

'मैं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी मर्यादा-परीक्षण करूँगी आर परीक्षा-हेतु उनका दर्शन करने जाऊँगी।' महारानी लकेश्वरीने दृढ निर्णय करक अपनेको षोडशोचित शृगारसे सुसज्जित कर लिया ओर वे श्रीरामके दर्शनार्थ चल पडीं।

सोलहो शृगारसे सज्जित महारानीका लोकोत्तर सौन्दर्य अद्भुत दिखायी देने लगा। महारानी लकश्वरीने अपनी एक परिचारिका भेजकर विभीषणको बुलवाया। उनके आनेपर राजश्वरीन अपनी अभिलाषा व्यक्त करत हुए कहा—'सुव्रत! में मयादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करना चाहता हूँ। आप इसक लिये शीघ्र ही समुचित व्यवस्था करानेकी कृपा कर द।'

लकश्वरीक सकतमात्रस महाराज विभीषणन राजकीय साज-सज्जास सुसज्जित स्वर्णभूषिता एक सुन्दर शिविकाकी व्यवस्था कर दी।

महारानी राजकीय सवारीपर चढ गयीं और वाहक प्रसन्नतापूर्वक उठाकर ल चले। उस समय लकेश्वरीके आग-पीछ दाय-बाँय सैकडा अङ्गरक्षक सैनिक चल रह थ। महाराज विभीषणन आग बढकर वानरराज सुग्रीवजीस मिलकर सूचना दते हुए कहा—'महारानी मन्दोदरी [illegible] होकर प्रभु-दर्शनार्थ आ रही हैं।'

[illegible] सुग्रीवजीक सकेतानुसार [illegible] वानरोंकी सेना दो पक्तियोंम सुव्यवस्थित होकर खडी हो गयी। इसक पश्चात् वानरराजन श्रीरघुनाथजीस महारानी मन्दोदरीक [illegible] [illegible] दी। सुनत ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और [illegible]

दोनों बन्धुओंके नेत्र धरतीकी ओर उन्मुख हो गये। उसी समय महारानी मन्दोदरीने शिविकासे नीचे उतरकर आगे बढ़कर दोनों भाइयोंको दोनों हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमन किया। महाराज सुग्रीवने श्रीरघुनाथजीसे निवेदन करते हुए कहा—

इयमिय त्वयि दानवनंदिनी त्रिदशनाथजित प्रसवस्थली।
किमपर दशकन्धरगहिनी त्वयि करोति करद्वययोजनम्॥

(हनुमन्नाटक १४। ५८)

अर्थात् हे प्रभो! ये असुरोंके विश्वकर्मा मयदानवकी पुत्री महाराज दशग्रीव रावणकी महारानी सर्वदा तीसरी दशा (अवस्था)-से युक्त देवों और उनके स्वामी इन्द्रको भी परास्त करनेवाले वीरवर इन्द्रजित्‌को उत्पन्न करनेवाली मेघनादकी माताजी आपको करबद्ध हो प्रणाम कर रही हैं।

महाराज सुग्रीवकी बात सुनकर सूर्यकुल-भूषण श्रीरामने नीचे मुख किये हुए ही कहा—'महारानी मन्दोदरीकी क्या आज्ञा है?'

मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामकी मर्यादित व्यवहार तथा उनकी अमृतमयी विनम्र वाणी श्रवण करते ही महारानीकी समस्त जिज्ञासाओंका तत्काल समाधान हो गया। उसका हृदय शीतल होकर आनन्दसे राम-राम पुलकित हो उठा और वह भुवनमोहन श्रीराघवेन्द्रका जयघोष करती हुई बोल पड़ी—'मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी सदा जय हो सदा जय हो।'

श्रीराम! आपकी जन्मदायिनी माता कौसल्या धन्य हैं जिन्होंने आप-जैसे सदाचारी धर्मव्रती, शीलवान्, मर्यादापालक पुत्रको जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपके जन्मदाता धर्मात्मा पिताश्री धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने आप-जैसे कीर्तिमान्, गुणवान्, बलवान् पुत्रको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपका श्रेष्ठतम सूर्यवंश-कुल धन्य है जिसमें आप-जैसे मर्यादापालक पुरुषोत्तम महावीर पैदा हुए हैं जो कभी भी परायी स्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं—

धन्या राम त्वया माता धन्यो राम त्वया पिता।
धन्यो राम त्वया वंशः परदारान्न पश्यसि॥

(हनुमन्नाटक १४। ५९)

'हनुमन्नाटक'में महारानी मन्दोदरीका कथन स्पष्टतः प्रमाणित करता है कि श्रीरामजीके लिये गोस्वामीजीने सत्य ही लिखा है—*'बरनि राम बड़ाई करहीं।'*

महारानीके ज्ञान-नेत्र खुल चुके थे, वह मन-ही-मन विचारोंमें खो गयी—'मेरे परम प्रतापी प्रियतम महाराज रावणमें यह चरित्रबल नहीं था इसीके कारण वे भ्राता पुत्र तथा पौत्रोंसहित रणाङ्गणमें मारे गये। सदाचार-परायण धर्मज्ञ श्रीविभीषणजीने यही सुझाव तो भरी राजसभामें उस समय दिया था—

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

(रा०च०मा० ५। ३८। ५-६)

'पर हा हन्त! महाराज रावणने उनके कथनकी अवहेलना करके उसपर ध्यान नहीं दिया बल्कि अपने प्रिय सदाचारी भ्राताको लंकासे निकाल दिया। उसी आचारहीनता-चारित्रिक दोषके परिणाम-स्वरूप आज वे रणभूमिमें सदाके लिये सो रहे हैं।'

अन्तमें महारानी मन्दोदरीने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके परम पावन चरणारविन्दमें नमन किया और प्रभुका आशीर्वाद लेकर राजमहल लौट गयीं। महाराज सुग्रीवने उसे ससम्मान श्रीविभीषणजीके साथ लंकाम विदा कर दिया।

इस प्रकार उपर्युक्त लीला-झाँकीमें श्रीरघुनाथजीने 'मातृवत् परदारेषु' को पूर्णतः चरितार्थ किया। गोस्वामीजीके कथनानुसार भगवान् श्रीरामके भक्तोंको भी—*'जननी सम जानहिं परनारी'* के अनुसार अपनेको चरित्रवान् बनाना चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके लिये यह प्रसिद्ध श्लोक है—

एकपत्नीव्रती रामो श्रुतिमर्यादापालकः।
जनकजा तु परित्यज्य सर्वाः कौसल्यासमाः॥

सेतुबन्ध भगवान् रामकी अद्भुत लीला

(डॉ० श्रीओम्प्रकाशजी द्विवेदी)

भगवान्का सगुण-साकार अवतार भक्तोको दिव्यता प्रदान करने-हेतु तथा धर्मसस्थापनार्थ एव दुष्टोके विनाशके लिये होता है। भगवान् अपने हर अवतारमे नरलीला करते है जिसके यशको गाकर-सुनकर भक्त अनायास ससार-सागरसे पार उतर जाते है।

भगवान् अपनी सेनासहित समुद्रतटपर खडे हैं। समुद्र शरणागत हो गया है। शरणागतकी रक्षा भगवान् करते हैं। अत समुद्रकी बात ध्यानसे सुनकर उसकी पीडा हरण करते हैं। समुद्रने अपने बन्धनका उपाय नल-नीलको प्राप्त वरदान बताया और पूर्ण सहयोगका वचन देकर चला गया। जिसमे भगवान् रामकी आश्चर्यमय लीला ही प्रधानरूपसे कारण थी। जिससे ४०० कोस लबा और ४० कोस चौडा पुल बनकर तैयार हो सका। समुद्रका जल पुल बननेतक स्थिर रहा। उसमे ज्वारभाटा भी नहीं आया किसी प्रकारकी हलचल तक न हुई। जब रामने जाम्बवान्को सेतु-रचनाकी आज्ञा दी तो जाम्बवान्ने कहा—'प्रभु! आपका नाम ही सेतु है जिसपर चढकर भक्तजन अत्यन्त दुर्गम ससार-सागरको पार करनेमे सफल हो जाते हैं। इस लघु समुद्रकी बात ही क्या है?'—

सुनहु भानुकुल केतु जामवत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढि भव सागर तरहिं॥
(रा०च०मा० ६। सो० २)

यहाँ ससार एव समुद्रपर विचार करना आवश्यक है। विनय-पत्रिकामे कहा गया है कि ससारमे देहाभिमान अत्यन्त भयकर अथाह अपार दुस्तर समुद्र है जिसमे राग-द्वेष और कामनारूपी अनेक घडियाल हैं। आसक्ति एव सकल्पोकी लहरे उठ रही है। परम वैराग्यवान् हनुमान्जीकी सहायता एव मोक्षके साधन-स्वरूप बदर-भालुओके महयोगसे ससार-सागरका वीर धीर एव गम्भीर जन ही पार करते हैं।

सेतु-बन्धन-लीला भगवान्के अतुलित बल पराक्रम एव सौन्दर्यकी ही द्योतक है। आनन्दरामायण (१। १०। ६५)-मे आया है कि नल-नील अपने चचल-स्वभावके कारण ऋषियोके शालग्रामको जलमे फेक देते थे। एक बार ऋषियोने शाप दिया कि तुम्हारे द्वारा फेके गये पत्थर जलमे नहीं डूबेगे वरन् तैरेगे। आज वही शाप भगवान्के पुल बाँधते समय वरदान बन गया। यही बात समुद्रने भी बतायी था। आज्ञा पाते ही बदर-भालु अपने पुल बनानेके कार्यमे जुट गये—

अति उतग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥
(रा०च०मा०६। १)

अर्थात् बदर-भालु बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतो और वृक्षोको खेलकी तरह आसानीसे उठा लेते है और ला-लाकर नल-नीलको देते है। वे उन वृक्षो एव पर्वतखण्डोको सुव्यवस्थित करके सुन्दर सेतुका निर्माण करते हैं।

सतोके मुखसे सुना है कि नल-नीलके स्पर्शसे पर्वत जलमे तैरते हुए दूर-दूरतक फैलने लगे। इस अवस्थामे हनुमान्जीने एक पर्वत-खण्डपर 'रा' और दूसरेपर 'म' लिख दिया जिससे *'ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती'* के रूपमे पत्थर एक दूसरेसे जुडने लगे, व जलपर स्थिर हो गये और सेतुका कार्य आगे बढने लगा। विनय-पत्रिकामे कहा भी गया है—

जयति पाथोधि-पाषाण-जलयानकर।
(वि०-प०२६। ५)

अर्थात् (हे हनुमान्जी!) आप समुद्रपर पत्थरका पुल बाँधनेवाले है। आपकी जय हो।

—इस प्रसगमे एक और सुन्दर लीला-कथा सुननेको मिलती है। भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीसे कहा कि इस महायज्ञमे मैं भी एक-दो पत्थर आहुति-स्वरूप डालना चाहता हूँ। भगवान्ने एक पत्थर डाला वह डूब गया। आश्चर्यचकित होकर हनुमान्जीसे श्रीरामने डूबनेका कारण पूछा। हनुमान्जीने कहा—'भगवन्! आप जिसे छोड देगे वह तो डूब ही जायगा।'

इस सेतु-बन्धन-लीलाको देखनेके लिये समुद्रके जलचर अपना स्वाभाविक वैर त्यागकर जलके ऊपर आ गये और मन्त्र-मुग्ध हो अपने अपलक नेत्रोसे भगवान्की छवि निहारने लगे। अपनी कुटिलता भूल गये और एक

समानान्तर पुलके रूपमे बंदर-भालुओंकी सहायता-हेतु तैयार हो गये—

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

(रा०च०मा० ६। ४)

अर्थात् सेतुबन्धपर बड़ी भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर आकाश-मार्गसे उड़ने लगे और दूसरे कितने ही जलचर-जीवोंपर चढ़-चढ़कर पार जाने लगे। सच है, जब कुटिल जीव अपनी कुटिलता छोड़कर भगवान्के सम्मुख होता है तो वह पवित्र एवं परोपकारी बन जाता है। स्वयं तरता है और दूसरोंको भी संसार-सागर पार करानेमें समर्थ हो जाता है।

पुल बन जानेपर वह स्थल भगवान्को अत्यन्त रमणीय लगा। उस उत्तम धरणीपर भगवान्ने शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना की। भगवान्ने रामेश्वर-दर्शनकी महिमाका सप्रेम वर्णन किया, जिसे भक्त स्मरणकर आज भी हर्षित, पुलकित एवं आनन्दित होते हैं।

रावणने जल, थल, नभ सर्वत्र ऐसी व्यवस्था की थी कि लंकामें कोई प्रवेश न कर सके। लंकामें प्रवेश करनेवाली परछाईं तक भी पकड़मे आ जाय—ऐसी सशक्त सुरक्षा-व्यवस्था थी। सिंहिका जो जलमें परछाईंको पकड़कर जीवोंको खाती थी, वह भी रुद्रावतार हनुमान्जीके हाथों सद्गतिको प्राप्त हुई। लंकिनी लंकाके द्वारपर रक्षिका थी। रोकनेपर हनुमान्जीने उसपर भी मुष्टिका-प्रहार किया, जिससे मुखसे रक्त वमन करती हुई वह भूमिपर गिरी और उसे ब्रह्माके वचनकी स्मृति हो आयी तथा हनुमान्जीसे सत्संगकी महिमाका वर्णन करने लगी—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५। ४)

अर्थात् हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेपर रखा जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लवमात्रके सत्संगसे होता है।

भगवान्के न्याय-मार्गपर चलनेमें जड़-चेतन सभीने पूर्ण सहायता की। जड़ समुद्रने भी चेतन-स्वरूप होकर व्यवहार किया। राक्षसियाँ हनुमान्जीके लिये अनुकूल हो गयीं। इस प्रकार भगवान्की लीला-कृपाके फलस्वरूप लंका जानेका मार्ग प्रशस्त हो गया। सेतुसे सारी सेना पार उतर गयी। सेतुबन्धकी आश्चर्यमयी घटना सुनकर रावणका चित्त भ्रमित हो गया। व्याकुलतामें अपने दसों मुखसे बोल उठा—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

(रा०च०मा० ६। ५)

अर्थात् वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोनिधि, नदीशको क्या सचमुच ही बाँध लिया है?

मन्दोदरीने सेतु बननेपर रावणको समझाया कि वे दोनों तापस-बन्धु अवतारी हैं, भूभार-हरण-हेतु अवतरित हुए हैं। इनसे वैर न कीजिये। सीताजीको लौटा दीजिये। पुत्र प्रहस्तने भी जब श्रीरामके विषयमें ऐसा सुना, तब उसने भी रावणको समझाया—

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

(रा०च०मा० ६। ९। ५-६)

'हे तात! जिन्होंने खेलमें समुद्र बाँध लिया। सेनासहित इस पार लंकामें आ गये, वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकते हैं। इनके इस अद्भुत प्रभावको समझते हुए शीघ्र ही सीताजीको लौटाकर मैत्री कीजिये, परंतु हठी रावणने किसीकी बात नहीं मानी, जिसका कुफल उसे आगे भोगना पड़ा।

आज इसी रावणवृत्तिपरक हठवादिताके कारण कुण्ठा, संत्रास और तनावके युगमें हमारी सामाजिक व्यवस्था बिखर रही है। मानव-सम्बन्ध टूट-से रहे हैं। इस विखण्डनको रोकनेकी शक्ति भारतीय संस्कृतिमें है। राम-कृष्णके लीला-चरित्र टूटे एवं बिखरे समाजको जोड़नेके लिये सेतु हैं। भगवान्की लीला-कथाएँ उत्ससे युक्त हैं। ऐसे उनकी लीला-चरित्रकी श्रेष्ठताका प्रभाव जब हमारे जीवनपर पड़ता है तब हमारे कर्म, भाव तथा आचरण दिव्य बन जाते हैं।

काकभुशुण्डिजीने मानसके उत्तरकाण्डमें कथाकी पूर्णाहुतिके

अवसरपर गरुडजीको मधुर अमृतमय वाणीमे समझाते हुए कहते हैं कि भगवान् लीलावपुधारी हैं, लीला-विहारी है नटवरनागर हैं—

जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
(रा०च०मा० ७। ७२(ख))

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहनि जन सुखकारी॥
(रा०च०मा० ७। ३१। १)

अर्थात् जैसे नट अनेक प्रकारकी नृत्यभाव-लीलाएँ करता है जिसका असर भिन्न-भिन्न लोगोपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है, पर नट स्वय अप्रभावित रहता है। उसी प्रकार भगवान् नर-तन धारण करके लीलाएँ करते हैं। दनुज उन लीलाओसे विमोहित हो जाते है, पर भक्तजन— जिनकी स्वार्थबुद्धि कामनाएँ एव अहभाव नष्ट हो गये हैं, उन्हे ये लीलाएँ अत्यन्त सुखद प्रतीत होती हैं।

इस प्रकार भगवान्की सेतुबन्ध-लीला अद्भुत एव प्रेरणाप्रद है। इसके स्मरण-मननसे भगवत्कृपाकी सात्त्विक अनुभूति होती है। हमारा जीवन दिव्य एव धन्य बन जाता है।

कुमार कार्तिकेयकी लीला-कथा

प्रातःस्मरणीया भगवती सती अपने प्राणाधार महादेवजीका अपमान नहीं सह सकी। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होने अपने पिता दक्षके यज्ञमे ही योगाग्निके द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया। फिर वे हिमगिरि-पत्नी मेनाकी पुत्रीके रूपमे प्रकट हुईं। उन्होने अपने जीवन सर्वस्व शिवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त कठोर तप किया। फलत समयपर जगद्वन्द्य शिवके साथ उनका मङ्गल-परिणय हुआ। विवाहोपरान्त भगवान् शंकर पार्वतीके साथ कैलास पर्वतपर लौट आये और वहाँ वे पार्वतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बारकी बात है माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयी। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसमे स्वर्ण-वर्णके कमल खिले थे। भगवती उमाने पहले तो जल विहार किया फिर उसके रमणीय तटपर उन्होने स्वच्छ एव सुमिष्ट जल पीनेकी इच्छा की। उसी समय उन्होने देखा कि पद्मपत्रमे जल लेकर छ कृत्तिकाएँ अपने घर जानेवाली हो रही हैं।

'देवियो! पद्मपत्रमे रखा हुआ जल मैं भी पीना चाहती हूँ।' गिरिजाने कृत्तिकाओसे अत्यन्त मधुर वाणीमे कहा।

'भुवनपावनी देवि! हम तुम्हे एक शर्तपर यह जल दे सकती है।'

कृत्तिकाओने स्नेहसिक्त स्वरमे माता पार्वतीसे निवेदन किया— तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र हमसे भी सम्भूत रहे और हमारा भी पुत्र माना जाय। वह त्रैलोक्यविख्यात पुत्र हमारा रक्षक हो।'

'अच्छा ऐसा ही हो।' शिवाने तत्क्षण वचन दे दिया।

कृत्तिकाएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होने कमल-पत्रमे रखा हुआ स्वच्छ सलिल थोडा उमाको भी दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओके साथ उस मधुर जलका पान किया।

त्रिनेत्रकी प्राणवल्लभा पार्वतीके जल पीते ही तत्क्षण उनकी दाहिनी कोखसे एक रोग-शोक-निवारक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। तिमिरारिके तुल्य उसके शरीरसे प्रभापुञ्जका प्रसार हो रहा था। वह अग्नितुल्य तेजस्वी बालक स्वर्णके समान गौरवर्णका था। उसके मनोहर कर-कमलोमे तीक्ष्ण शक्ति शूल और अकुश सुशोभित थे।

वह बालक कुत्सित दैत्योके सहारके लिये प्रकट हुआ था इस कारण 'कुमार' उसकी सज्ञा हुई। वह कृत्तिका-प्रदत्त जलसे शाखाओसहित प्रकट हुआ था, वे कल्याणमयी शाखाएँ छहो मुखोके रूपमे विस्तृत थीं इन्हीं कारणोसे वह विशाख षण्मुख स्कन्द षडानन और कार्तिकेय आदि नामोसे प्रख्यात हुआ।

स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभ।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शन॥
ददृशु कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाश्च सौहार्दात् पुपुषु स्तन्यविस्रवै॥

अभवत् कार्तिकेय स त्रैलोक्ये सचराचर।
स्कन्नत्वात् स्कन्दता प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥
(महा० अनु० ८६। १२—१४)

'वह कान्तिमान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीरकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें बहुत ही प्रिय जान पडता था। वह दिव्य सरकंडेके वनमें जन्म ग्रहण करके दिनादिन बढने लगा। कृत्तिकाओंने देखा कि वह बालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है। इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड आया और वे सौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पोषण करने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें वह 'कार्तिकेय'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन (स्खलन)-के कारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास करनेसे 'गुह' नामसे विख्यात हुआ।'

लोकपितामह ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति इन्द्र और भगवान् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके आयुध प्रदान किये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने उन्हें क्रमशः दस लाख यक्षोंकी सेना और वाहन अर्पित किये। सुर-समुदायने कुमार कार्तिकेयको अनन्त पदार्थ समर्पित किये। तदनन्तर देवताओंने घुटने टेककर स्कन्दकी स्तुति-प्रार्थना की।[१]

'देवताओ! आप लोग शान्त होकर बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?' देवताओंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर कुमारने उनसे कहा—'यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य भी करनेकी इच्छा हो तो कहिये।'

'कुमार! तारक नामक प्रख्यात असुरराज सुर-समुदायका सर्वनाश कर रहा है।' देवताओंने अत्यन्त मधुर वाणीमें निवेदन किया—'वह अत्यन्त बलवान्, अजेय, क्रूर, दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हम लोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उस दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पडे।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे वन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पडा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपनी दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बडा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें समर्थ होता है, बालसूर्यकी ओर भी दृष्टिपात करना कठिन होता है, अत्यन्त छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है, इसी प्रकार मैं भी दुर्जय हूँ। तुम मुझे पराजित नहीं कर सकोगे।'

कार्तिकेयका कथन पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि धर्मविध्वंसी असुरने उनके ऊपर वज्रतुल्य मुद्गरका प्रहार किया, किंतु कुमारने उसे अपने अमोघ तेजवाले चक्रसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। असुरने अपने जिन-जिन भयंकर

१ कुमार कार्तिकेयके प्राकट्यकी पावन कथा महाभारत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं। यह अत्यन्त संक्षिप्त कथा पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।

अस्त्रोंका प्रहार किया वे सभी कुमारके द्वारा नष्ट हो गये। फिर पार्वतीकुमारने दैत्यपर अपनी भयानक गदा फेंकी। उसकी चोटसे पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा।

'निश्चय ही यह बालक असाधारण एवं दुर्जय शूरवीर है।' गदाघातसे व्याकुल तारकने मन-ही-मन सोचा—'अब निस्संदेह मेरी मृत्यु समीप आ गयी है।'

मृत्यु-भयसे भीत अजेय तारक काँप उठा। उसके ललाटपर स्वेद-कण झलकने लगे। उसकी यह दशा देखकर कालनेमि आदि दैत्यपतियोंने अत्यन्त वेगसे कुमारपर आक्रमण कर दिया, किंतु अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी कार्तिकेय तनिक भी विचलित नहीं हुए। दैत्योंके भयानक प्रहार और विभीषिकाएँ उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सकीं। उन्होंने दैत्यपतियोंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण कर दिया, किंतु दैत्य उनके भयानक प्रहारका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ थे। कार्तिकेयके अस्त्रोंकी निरन्तर वर्षासे दैत्य-सेना क्षत-विक्षत हो गयी, धरतीपर जैसे रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी और सर्वत्र दैत्य-वीरोंके रुण्ड-मुण्ड दीखने लगे। बड़ा भयानक दृश्य था।

रुद्रपुत्र कार्तिकेयके अस्त्रोंकी अनवरत वर्षासे दैत्य-दल विचलित ही नहीं, व्याकुल हो गया। अधीर होकर कालनेमि आदि भयानक देवशत्रु युद्ध छोड़कर पलायित हुए।

दैत्य-वाहिनी चतुर्दिक् भागी जा रही थी और किंनरगण परम पराक्रमी कुमारके विजय-गीत गाने लगे। यह देखकर महाशूर तारक क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसने स्वर्णकान्तिसे सुशोभित अद्भुत गदासे कुमारपर भीषण प्रहार किया और इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि कार्तिकेयवाहन मयूर रक्तसे लथपथ हो भाग खड़ा हुआ।

'दुष्ट दैत्य! खड़ा रह' कुमारने अत्यन्त कुपित होकर तारकसे कहा। 'अब मैं तेरी जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। तू कुछ देर और अपने नेत्रोंसे इस संसारको देख ले।'

कुमारने क्रुद्ध होकर महान् तारकासुरपर अपनी शक्तिका प्रहार किया। शक्तिमूर्ति पार्वतीपुत्र कार्तिकेयकी वह अमोघ शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और सुर-शत्रु तारकके वज्र-तुल्य वक्षमें बड़े वेगसे प्रविष्ट हो गयी। तारकका हृदय विदीर्ण हो गया। उस अमित बलशाली अजेय दैत्यका विशाल निर्जीव शरीर धरतीपर गिर पड़ा।

तारक-वधसे धरतीका पातक कट गया। सभी सुखी हुए। देवगण विपत्तिनिवारक परमोपकारी महेश्वर-पुत्र कार्तिकेयका स्तवन करने लगे। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे आनन्द-मग्न होकर हँसते हुए उछलने-कूदने तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने अमित तेजस्वी कुमारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें अनेक वर प्रदान किये।

इस प्रकार हर्षित और पुलकित देवगण सर्वथा निश्चिन्त होकर अपने-अपने लोकोंके लिये प्रस्थित हुए।

लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय'

(प०पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

दत्तात्रेयो महायोगी भगवान् भूतभावनः।
चतुर्भुजो महाविष्णुर्योगसाम्राज्यदीक्षितः॥

(जाबालदर्शन-उपनिषद् १। १)

दत्तपुराणमें स्पष्ट उल्लेख है कि 'दत्तस्तु भगवान् स्वयम्'। अभिप्राय यह है कि श्रीविष्णुका चौथा अवतार (मत्स्यपुराणके अनुसार) होनेसे दत्तात्रेयकी 'भगवान्' संज्ञा है। जाबालदर्शनोपनिषद्में दत्तात्रेयको महाविष्णु और भगवान्की संज्ञासे अभिहित किया गया है। अथर्ववेदके दत्तात्रेय-उपनिषद्में श्रीविष्णु ब्रह्माजीको तारक-मन्त्रका उपदेश करते समय अपनेको 'दत्तात्रेयस्वरूप' बतलाकर कहते हैं कि 'आप मेरे सत्यानन्द-चिदात्मक सात्त्विक दत्तस्वरूपकी उपासना कीजिये, दत्त-मन्त्र ही तारक-मन्त्र है।' इससे स्पष्ट होता है कि विष्णु एवं दत्तात्रेय अभिन्न हैं। शाण्डिल्य-उपनिषद्में तो दत्तात्रेयको निर्गुण ब्रह्मका साकारस्वरूप कहा गया है। वहाँपर भी उनको भगवान्, प्रभु, देव इत्यादि कहा गया है।

'श्रीदत्तकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थके विद्वान् कवि दत्तात्रेयके विषयमें लिखते हैं कि—

अखण्ड सच्चिदानन्द पर ब्रह्मैव केवलम्।
श्रीदत्तात्रेयरूपेण ब्रह्माण्डेषु विराजते॥

अर्थात् अखण्ड सच्चिदानन्दरूप केवल परब्रह्म ही श्रीदत्तात्रेय भगवान्के रूपमे इस ब्रह्माण्डमे विराजते हैं।

संत-महात्मा कहते हैं कि अज्ञानी बालक जो खेल करते हैं, उसे क्रीडा कहते हैं, किंतु भगवान् अवतीर्ण होकर जो अद्भुत अलौकिक खेल करते हैं उन्हे 'लीला' कहते हैं। विश्ववन्द्य जगद्गुरु श्रीमद् आद्यशंकराचार्य महाराजने 'ब्रह्मसूत्र'के अपने भाष्यमे 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' में भगवान्के अवतार और लीलाके विषयमे ऐसा ही लिखा है कि जैसे लोकमे बालक स्वभावसे क्रीडा किया करते हैं, वैसे ही ईश्वर अवतीर्ण होकर अनेक अद्भुत लीला रचा करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४। ६)-मे स्वयं भगवान्ने अपने अवतारके विषयमे स्पष्ट कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अर्थात् मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सभी प्राणियोका ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिको अधीन—वश करके योगमायाद्वारा प्रकट होता हूँ।

तात्पर्य यह है कि भगवान् वस्तुतः अज (अजन्मा) होनेपर भी जन्म लेता-सा प्रतीत होता है, अव्यय (अविनाशी) होनेपर भी 'मरता-सा' प्रतीत होता है, 'आत्मा' होनेपर भी किसी एक विशेष स्थानमे प्रादुर्भूत होता-सा दिखायी पडता है तथा सभी प्राणियोके ईश्वर होनेपर भी किसी योग्य माता-पिताका छोटा बच्चा-सा मालूम पडता है। यही तो ईश्वरकी लीला है। उनकी कृपावर्षाके बिना उनकी इस लीलाको कौन समझ सकता है? भगवान्के इन अलौकिक जन्म एवं कर्मका अर्थात् भगवान्की इन लीलाओको जो पुरुष तत्त्वतः जानता है वह अपना देह छूट जानेके बाद पुनः जन्मको प्राप्त नहीं होता अपितु भगवान्को ही प्राप्त होता है।

महाविष्णुस्वरूप भगवान् दत्तात्रेयके प्राकट्य (अवतार)-के विषयमे 'श्रीदत्तकल्पद्रुम'मे कहा गया है कि—

अज्ञानतिमिराद् घोराज्जीवानुद्धर्तुमेव य ।
अवतीर्णः कृपासिन्धुर्दययास्मिन् महीतले॥

अर्थात् अज्ञानरूपी घोर अन्धकारसे जीवोका उद्धार करने-हेतु कृपासागर भगवान् श्रीदत्तात्रेय दयासे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए है।

बादमे कहते हैं कि—

त्रिगुणात्मा त्रिमूर्तिश्च दत्त एवंविधोऽपि सन्।
त्रिगुणातीततां तद्वदैकरूप्यं प्रयच्छति॥

अर्थात् भगवान् श्रीदत्तात्रेय स्वतः त्रिगुणात्मक एवं त्रिमूर्तिस्वरूप होनेसे अपने भक्तजनोको गुणत्रयके उस पार करते हैं, अपनी असीम अनुकम्पासे भक्तोको 'निस्त्रैगुण्य' बनाते हैं। वे अपने भक्तजनोको एकरूपता (समरसमग्रता) या परब्रह्मस्वरूपता भी प्राप्त करवा देते हैं।

श्रीदत्तकल्पद्रुम, दत्तात्रय-सर्वस्व इत्यादि ग्रन्थोमे वर्णित है कि *भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव स्वयम्भू मन्वन्तरके पूर्व* सत्ययुगमे हुआ। जगत्के जीवोके दुःख एवं ताप नष्ट करने-हेतु वे स्वेच्छासे जगत्में प्रकट हुए, अतः जबतक जगत्में दुःख और ताप विद्यमान रहेगे, तबतक वे (दत्तात्रेय) अपने देहका विसर्जन नहीं करेंगे, उसी 'देह' और उसी 'महाभाव' से (सिद्ध-अवस्थामें) सदाके लिये रहेगे। *उनका अस्तित्व महाप्रलयपर्यन्त माना गया* है। इसीलिये तो धर्मग्रन्थोने उन्हें सिद्धावतार कहा है। कविकुलगुरु कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' (२।४)-मे त्रिमूर्तिस्वरूप लीलाविश्वम्भर दत्तात्रेयको नमस्कार करते हुए परमात्माकी लीलाका रहस्योद्घाटन किया है—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

सारांश यह है कि परमात्मा एक है, फिर भी कार्यभेदसे त्रिविधरूपमे प्रकट हुआ है। यह तो त्रिगुणी (दत्तात्रेयकी) सगुण-लीला-विग्रह है।

'लीला-विग्रह' अर्थात् लीलासे भक्तोके सकल मनोरथ पूर्ण करनेके लिये धारण किया हुआ दिव्य मानव-देह। ऐसे लीला-विग्रह 'दत्तात्रेय'को गुरु-अवतार भी कहा गया है। शिवपुराणके नकुलीश्वर-माहात्म्यमे उनको त्रेतायुगका सद्गुरु माना गया है—

कृते ज्ञानप्रदः सत्यं त्रेतायां दत्त एव च।
द्वापरे व्यासनामा तु कलौ शंकर उच्यते॥

अर्थात् सत्ययुगमे सद्गुरु सत्य था (सत्यं पर धीमहि), त्रेतायुगमे दत्तात्रय थे, द्वापरयुगमे वेदव्यास थे और कलियुगमे आद्यशंकराचार्य हैं।

जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यने लिखा है कि— त्रेतायां

विश्वगुरू ऋषिसत्तम ' अर्थात् त्रेतायुगके विश्वगुरु दत्तात्रय माने गये हैं।

महर्षि अत्रि—लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयके पिता महर्षि अत्रि थ आर माता महासती अनसूया थीं। महर्षि अत्रि विश्वस्रष्टा ब्रह्माके सात मानस-पुत्राम एक थे।

एक बार उनके पिता ब्रह्माजीने उनका गङ्गा-यमुना पदशका प्रजापति नियुक्त करना चाहा किंतु अत्रिन तपामय जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। जब पिताने इसका कारण पूछा तब उन्हान कहा कि 'मैं तो तपद्वारा ही विश्वके एक ईश्वरको प्रसन्न करके उनको अपन पुत्ररूपम अवतीर्ण करवाना चाहता हूँ।' पुत्र अत्रिकी विचारधारा जानकर पिता ब्रह्मा उनपर प्रसन्न हुए और अभीष्ट सिद्धिहेतु आशीर्वाद प्रदान किये।

इस प्रसगसे स्पष्ट होता हे कि अत्रिने स्वपती अनसूयाके देहके माध्यमसे पुत्र पैदा करना नहीं चाहा था। व तो 'ईश्वर'को अयानिज पुत्रक रूपम ही देखना चाहते थ। धमग्रन्थाम भगवान् दत्तात्रयको अयानिज (माताक उदरस नहीं जन्मा है वसा) कहा गया है।

अयोनिजा भविष्यन्ति तव पुत्रा वरानने॥

(श्रीदत्तकल्पद्रुम)

एसे महान् माता-पिताक वहाँ लीला-विश्वम्भर भगवान् दत्तात्रय केसे आविर्भूत हुए इस विषयमे अब हम विश्वसनीय धर्मग्रन्थाके प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करते हे।

श्रीमद्भागवत (४। १)-म एसा कथा वर्णित है कि पिता ब्रह्माकी आज्ञा एव आशीवाद प्राप्त करके अत्रि ओर अनसूया पुत्र-कामनार्थ तपस्या करनके लिय 'त्र्यक्षकुल-पवत' पर गय। वहाँपर निर्विन्ध्या नदीक तटपर अत्रिने तपस्या प्रारम्भ की। अनसूया पतिकी सवा करन लगीं।

कुछ वप बाद अत्रिक उत्कट तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा विष्णु, और महश (त्रिदव) अत्रिक सम्मुख प्रकट हुए। त्रिदवन अवतार ग्रहण करनस पूव हा इस प्रकारकी लीला का। यह दखकर अत्रिन अपना शका व्यक्त का कि मैंन ता एक अविकारा निराकार ईश्वरके लिये हा तपस्या की थी किंतु आप तीन साकार दव किसलिय आय हैं?' अपनी लीलाका रहस्योद्घाटन करत हुए त्रिदवान अत्रिम कहा कि 'जगत्की सृष्टि, स्थिति और लयके कारण हम तीना दव वस्तुत एक ही निर्गुण ब्रह्मक स्वरूप हैं।' इसी प्रकार त्रेतामें एक्यका बोध स्वय त्रिदेवोसे प्राप्त करके अत्रि प्रसन्न हुए—'**एको देवस्त्रिधा स्मृत ॥**'

श्रीमद्भागवत (२। ७। ४)-म कहा है कि—

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्त ।

साराश यह है कि अत्रि एव अनसूयाके तप और भक्तिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोने अपनेको उनके पुत्ररूपम दान कर दिया—'अह तुभ्य मया दत्त ।' दानवाचक शब्द 'दत्त' तथा 'अत्रि'के पुत्र होनेसे आत्रेय—ये दोना शब्द मिलकर दत्त+आत्रेय ='दत्तात्रेय' नाम 'लीलावतार'का रखा गया। इस विषयम 'श्रीदत्तकल्पद्रुम' ग्रन्थमे लिखा गया है—

अथ ब्रह्मा हरि शम्भुरवतेरु स्त्रिया तत ।
पुत्ररूपै प्रसन्नास्त नानालीलाप्रकाशका ॥

अर्थात् इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और महेशने प्रसन्न हाकर [अत्रि-अनसूयाके] पुत्ररूपमे अवतीर्ण हुए, उनका चरित्र प्रसिद्ध ही हे उनमेस दत्तात्रेयका लीला-चरित्र तो अगाध एव लोकोत्तर है।

'श्रीदत्तात्रेय-पूजाविधि' ग्रन्थमे कहा गया है—

लीलाविग्रहरूपायानसूयानन्दनाय च।
ससारश्रमनाशाय कर्मणार्घ्यं ददाम्यहम्॥

अर्थात् 'हे दत्तात्रय। आपन भक्तजनाके कल्याण-हेतु लीलासे मूर्तस्वरूप धारण किया है। ह अनसूयादेवीके सुपुत्र दत्तात्रेय! आप भक्तजनाके सासारिक कष्टाका नाश कर दते हैं। ह दयालु परमेश्वर! मैं इस पूजा-प्रसगम अर्घ्य समर्पण करता हूँ।'

शैवग्रन्थाम दत्तात्रयको 'दिव्यसम्भूति' एव 'महेश्वरावतार' कहा गया है। उन ग्रन्थाम कथित पूर्णावतार विभवावतार कलावतार अशाशावतार आवेशावतार अर्चावतार, हार्दावतार इत्यादिम दत्तात्रयका पूर्णावतार या षोडशकलावतार भी कहा गया है।

ब्रह्मपुराण (२१३। १०६—११२)-म उत्तम कथन है कि सर्वभूताक अन्तरात्मा विश्वव्यापक भगवान् श्रीविष्णु विश्वकल्याण-हेतु पुन अवतीर्ण हुए और दत्तात्रय नामस विख्यात हुए। श्रीमद्भागवतम उनका ज्ञान-वैराग्यका अवतार

कहा गया है। 'दत्तात्रेय-उपनिषद्‌मे उनको पिशाच-ज्ञान-सागर बताते हुए लीलावतार होनेका सकेत किया गया है। मत्स्यपुराणमे वर्णित भगवान् विष्णुकी बारह विभूतियोमे लीला-विग्रह दत्तात्रेय समाविष्ट हैं।

दत्तात्रेयका लीलावतार रेवा-सागर-सगमके समीप सुवर्णशिला-तीर्थ (गुजरात प्रदेशमे भडौचके पास)-मे होनेका स्कन्दपुराण (अवन्तीखण्ड, अध्याय १०)-मे वर्णन है। इस स्थानको लोग 'अनसूया-क्षेत्र' कहते है। रेवा (नर्मदा) तटपर इस तीर्थ-क्षेत्रमे सत्ययुगके प्रारम्भमे स्वयम्भू मन्वन्तरके मार्गशीर्ष पूर्णिमा, सोमवारको सध्याकाल, शुभ मुहूर्तमे लीलावतार भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव हुआ था। वे अयोनिज सतान थे। [क्रमश]

श्रीजगन्नाथदेवका प्राकट्य-रहस्य

(व्रजके एक महात्मा)

श्रीमन्माध्वगोडेश्वराचार्यवर्य श्रीजीवगोस्वामिचरणके मतमे एक अद्वय ज्ञान-तत्त्व ही ब्रह्म, परमात्मा एव भगवान्-सज्ञामे सज्ञित हुआ है और भगवत्-तत्त्वने ही ब्रह्म एव परमात्मा—इन दोनो तत्त्वोको क्रोडीकृत कर रखा है। इस अति विशाल भगवत्ताको समझनेके लिये सम्पूर्ण अपारगता प्रयुक्त अल्पबुद्धि जीव विशेष चेष्टा करते हुए भी कुछ भी धारण नहीं कर सकता। इसीलिये महाकरुणापारावार श्रीभगवान् स्वकरुणावश होकर स्वय जीव-समुदायके समक्ष लीलामनुज-विग्रह-धारणपूर्वक अवतीर्ण होते हैं। श्रीभगवान् जब-जब जैसी-जैसी लीला प्रकट करनेकी इच्छा करते है तब-तब तदनुयायी देश-काल-पात्रावलेपनपूर्वक सागोपागास्त्र-पार्षद स्वय अवतीर्ण होते हैं। सर्वशास्त्र-प्रसिद्ध है कि यद्यपि श्रीभगवान्‌के असख्य अवतार हैं तथा प्रत्येक अवतार असमोर्ध्व रूप-गुण-माधुर्यसम्पन्न हैं तथापि भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रस्वरूपमें ही यह रूपगुणलीलामाधुरी महाप्रेमरसमाधुरी महाभावसारसम्पुट-सम्पुटित महामहारसराजत्व चरम अवधिको प्राप्त हुआ है। इसीसे तो श्रीमद्भागवत (१। ३। २८)-मे 'एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है। श्रीभगवदवतारके सम्बन्धमे कहा गया है कि यद्यपि श्रीभगवान् असख्य-रूपमे अपनेको प्रकाशित करते हैं, तथापि उन रूपोमे श्रीनामी, नाम एव अर्चाविग्रहरूप ही प्रधान हैं। श्रीभगवान्‌की मङ्गलविहारभूमि भारतवर्षमे अनेक मङ्गल-स्थान श्रीअर्चाविग्रह-रूपा प्रभुके मङ्गलमय प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे हैं। उन सबमे श्रीलीलापुरुषोत्तम-स्वरूप श्रीजगन्नाथदेव विशेष प्रसिद्ध हैं। निविड निगूढता एव सुमहान् भावगाम्भीर्यप्रयुक्त अति चमत्कार रहस्यातिरहस्य श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्यकी कथा जनसाधारणको सुविदित नहीं है। अतएव सेवाकामी यह महापतित आज उसी सुमहान्, अति गोपनीय रहस्यको कल्याणकल्पद्रुमाश्रित 'कल्याण' पाठकोकी सेवामे उपस्थित करता है।

एक समय श्रीधाम—द्वारकामे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी रात्रिकालमे श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा-प्रभृति प्रधान षोडश राजमहिषियोके मध्यवर्ती शयन कर रहे थे। स्वप्नावस्थामे आप अकस्मात् 'हा राधे! हा राधे!' उच्चारण करते हुए क्रन्दन करने लगे। जब अन्य किसी प्रकार प्रभुका क्रन्दन नहीं रुका तो बाध्य होकर महारानी श्रीरुक्मिणीदेवीने अपने प्राणवल्लभको चरणसवाहनपूर्वक जागृत किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निद्राभग होनेपर किचित् लज्जित हुए और उन्होने अति सतर्पणपूर्वक अपना भाव-गोपन कर लिया। महारानियोके द्वारा इस प्रकारके विषादका कारण पूछे जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र यह कहते हुए कि 'मुझे तो कुछ स्मरण नहीं' पुन निद्रित हो गये। परतु इसका रहस्य जाननेके लिये महारानियोके हृदयमे अत्यन्त व्यग्रता उत्पन्न हुई। सब परस्पर कहने लगीं—'देखो हम सब सोलह सहस्र महिषी हैं और कुल शील, रूप एव गुणमे कोई भी अन्य किसी रमणीसे न्यून नहीं हैं, तथापि हमारे प्राणवल्लभ किसी अन्य रमणीके लिये इतने व्याकुल हैं यह तो बडे ही विस्मयकी बात है। रात्रिमे स्वप्नावस्थामे भी जिस रमणीके लिये प्रभु इतने व्याकुल होते हैं वह रमणी भी न मालूम कितनी रूप-गुणवती होगी।' इसपर श्रीरुक्मिणीदेवी

कहने लगीं—'हमने सुना है कि वृन्दावनमे राधानाम्नी एक गोपकुमारी है उसके प्रति हमारे प्राणेश्वर अत्यन्त आकृष्ट है इसीलिये रूपलावण्यवैदग्धपुज नयनाभिराम श्रीप्राणनाथ हम सबके द्वारा परिसेवित होकर भी उस सर्वचित्ताकर्षक-चित्ताकर्षिणीके अलौकिक गुण-ग्राम भूल नहीं सके हैं।' श्रीसत्यभामादेवी कहने लगीं—'सब ठीक ही है, तो भी वह एक गोपकन्याके सिवा और कुछ तो नहीं, फिर उसके प्रति हमारे प्राणकान्त इतने आसक्त क्यो है ? अस्तु। जो कुछ भी हो हमारी सम्मतिमे तो इस सम्बन्धमे श्रीरोहिणीमातासे पूछनेपर ही इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा, क्योकि उन्होने स्वय वृन्दावनमे वास किया है और उस समयकी सम्पूर्ण घटनाओको वे भलीभाँति जानती हैं।' यह प्रस्ताव सबको रुचा। रात्रि बीती, प्रात काल हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र प्रात कृत्य समापन करके राज-सभाको पधारे और यथासमय पुन अन्त पुर पधारकर स्नानादि-समाधानपूर्वक भोजन करने बैठे। राजभोग सम्मुख आकर उपस्थित हुए, उद्धवादि सखावृन्दसहित प्रभुने भोजन किया और आचमन करके किंचित् विश्रामपूर्वक पुन राजसभाकी ओर प्रस्थान किया।

इस अवसरको पाकर महारानियोने श्रीरोहिणीदेवीको पूर्वरात्रिकी घटना सुनाकर उनसे व्रज-वृत्तान्त पूछा। माताजी कहने लगीं—'प्यारी पुत्रियो! यद्यपि मैं व्रजलीलाकी सम्पूर्ण घटनाएँ जानती हूँ, किंतु माता होकर पुत्रकी गुप्त लीलाओका रहस्य किस प्रकार कह सकती हूँ ? यदि राम-कृष्ण यह कथा सुन ले तो फिर लज्जाकी सीमा न रहेगी।' इसपर महिषीगण कहने लगीं—'माताजी! जिस-किसी प्रकारसे भी हो सके, हमे व्रजलीलाकी कथा तो आपको अवश्य ही सुनानी होगी।' माताजीने कहा—'तब एक उपाय करो सुभद्राको द्वारपर पहरेके लिये बैठा दो कह दो किसीको अदर न आने दे फिर मैं नि सकोच तुम्हारे निकट व्रजलीलाका वर्णन करूँगी। माताजीने यह कहकर सुभद्राकी ओर देखा और कहा—'सुभद्रे! यदि राम-कृष्ण आवे तो उन्हे भी कदापि भीतर मत आने देना।' माताजीका आदेश पालन किया गया। सुभद्रा 'जो आज्ञा' कहकर द्वार-रक्षा करने लगीं। महिषी-वृन्द माताजीको चारो ओरसे घेरकर बैठ गयीं और माताजीने सुमधुर व्रजलीलाका वर्णन करना आरम्भ किया।

इधर राजसभामे राम-कृष्ण दोनो भाई चचल हो उठे। जब किसी प्रकार भी राजसभामे नहीं ठहर सके तो उत्कण्ठित-चित्त होकर अन्त पुरकी ओर चल पडे। आकर देखते हैं कि सुभद्रादेवी द्वारपर खडी हैं। उन्होने सुभद्रादेवीसे पूछा—'तुम आज यहाँ क्यो खडी हो ? द्वार छोड दो हम लोग भीतर जायँ।' श्रीमती सुभद्रादेवीने कहा—'रोहिणी माँने इस समय तुम्हारा अन्त पुरमे प्रवेश करना निषेध कर रखा है, अत तुम लोग भी भीतर नहीं जा सकोगे।'

यह सुनकर जब दोनो भाई आश्चर्यान्वित होकर इस निषेधका कारण ढूँढने लगे तो माताजीकी वह रहस्यपूर्ण व्रजलीलात्मक वार्ता उन्हे सुनायी दी। वह वार्ता श्रीवृन्दावनचन्द्रकी परम कल्याणमय परम पावन, अद्भुत, मङ्गलरासविहारात्मक थी। सुनते-सुनते दोनो भाइयोके मङ्गल श्रीअङ्गमे अद्भुत प्रेमविकारके लक्षण दिखायी देने लगे। क्रमश दोनो ही प्रेमानन्दमे विह्वल हो गये। अविश्रान्त प्रेमाश्रुकी मन्दाकिनी-धारा प्रवाहित होकर दोनोके गण्डस्थल एव वक्ष स्थलको प्लावित करने लगी। यह देखकर श्रीमती सुभद्रादेवी भी एक अनिर्वचनीय महाभावावस्थाको प्राप्त हो गयीं। जिस समय माताजी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीकी अद्भुत प्रेम-वैचित्त्यावस्थाका वर्णन करने लगीं उस समय श्रीबलरामजी किसी प्रकार भी धैर्य धारण न कर सके। उनके धैर्यका बाँध टूट गया श्रीअङ्गमे इस प्रकार महाभावका प्रकाश हुआ कि उनके श्रीहस्त-पद सकुचित होने लगे और जब माताजी निभृत निगूढ-विलासका वर्णन करने लगीं तब तो श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भी यही अवस्था हुई। दोनो भाइयोकी यह अद्भुत अवस्था देखकर श्रीमती सुभद्रादेवीकी भी यही दशा हो गयी। तीनो मङ्गलस्वरूप ही महाभावस्वरूपिणी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीके अवारपार महाभावसिन्धुमे निमज्जित होकर ऐसी स्वसवेद्यावस्थाको प्राप्त हो गये कि वे लोगोके देखनेमे निश्चल-स्थावर प्रतिमूर्ति-स्वरूप परिलक्षित होने लगे। निश्चल निर्वाक्, स्पन्दरहित महाभावावस्था। अतिशय मनोऽभिनिवेशपूर्वक दर्शन करनेपर भी श्रीहस्तपदावयव किंचित् भी परिलक्षित नही हो सकते थे। आयुधराज श्रीसुदर्शनजीने भी विगलित होकर लम्बिताकार धारण कर लिया।

इसी समय स्वच्छन्दगति देवर्षि नारदजी भगवद्दर्शनके अभिप्रायसे श्रीधाम-द्वारकामे आ उपस्थित हुए। उन्होने

राजसभामें जाकर सुना कि राम-कृष्ण दोनों भाई अन्तःपुर पधारे हैं। देवर्षिजीकी सर्वत्र अबाधगति तो है ही। अन्तःपुरके द्वारपर जाकर उन्हें जो अद्भुत दर्शन हुए, उससे देवर्षिजी स्तम्भित हो गये। इस प्रकारका दर्शन उन्होंने पूर्वमें कभी नहीं किया था। निज प्राणनाथकी ऐसी अद्भुत अवस्थाके कारणका विचार करते हुए प्रेमविवश स्तम्भ-भावको प्राप्त होकर देवर्षिजी भी वहीं चुपचाप खड़े रह गये। कुछ ही क्षण पश्चात् जब माताजीने पुनः कोई एक रसान्तरका प्रसंग उठाया तब उन सबको पूर्ववत् स्वास्थ्य-लाभ हुआ। सिद्धान्ततः रसान्तरद्वारा रसापत्तिका विदूरित होना संगत ही है। इसी अवसरपर महाभावविस्मित देवर्षि नारदजीने बहुविध स्तुति करना आरम्भ कर दिया। करुणावरुणालय श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने देवर्षिद्वारा स्तुत होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवर्षे! आज बड़े ही आनन्दका अवसर है, कहिये मैं आपका क्या प्रीति-सम्पादन करूँ?' देवर्षिजीने कर जोड़कर प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस समय यहाँ उपस्थित होकर आप सबका जो एक अदृष्टाश्रुतपूर्व महाभावावेश परिलक्षित हुआ है, स्वरूपतः वह क्या पदार्थ है और किस प्रकार उस महावस्थाका प्राकट्य हुआ? कृपया सविशेष उल्लेख करके दासको कृतार्थ कीजिये। सर्वप्रथम तो सेवामें यही एकान्त निवेदन है।'

भक्तवत्सल सर्वात्मा श्रीभगवान् अमन्दहास्यचन्द्रिका-परिशोभित सुन्दर श्रीवदनचन्द्रमासे देवर्षि नारदजीको आप्यायित करते हुए इस प्रकार वचनामृत-अर्पण करने लगे—'देवर्षे! प्रातः तथा मध्याह्न-कृत्यसमापनपूर्वक जिस समय हम दोनों भाई राजसभामें समासीन थे, उसी समय महिषीगणद्वारा पूछे जानेपर माता श्रीरोहिणीदेवीने मनोचित्ताकर्षिणी अपारमाधुर्यमयी व्रजलीला-कथाकी अवतारणा की। महामाधुर्यशिखरिणी व्रजलीला-वार्ताका ऐसा प्रभाव है कि हम जहाँ और जिस अवस्थामें भी हों, हमें वहींसे और उसी अवस्थामें ही आकर्षण करके वह कथा-स्थलपर खींच लाता है। हम दोनों भाई ऐसे ही आकर्षित होकर यहाँ उपस्थित हुए और देखा कि सुभद्राजी द्वारपालिकारूपमें द्वारपर खड़ी हैं। उत्कण्ठावश अन्तःप्रवेशकाम हम दोनों श्रीसुभद्राद्वारा रोके जानेपर प्रवेश-निषेधका कारण ढूँढ़ते रहे, उसी समय श्रीमाताजीके मुखारविन्दविगलित अत्यद्भुत व्रजलीलामाधुरीने कर्णपथगत होकर हमारे हृदय विगलित कर दिये। तत्पश्चात् जो अवस्था हुई उसको तो आपने प्रत्यक्ष दर्शन किया ही है। मेरी प्राणेश्वरी महाभावरूपिणी श्रीस्वामिनीजीके महाभावकर्तृक सम्पूर्ण भावसे ग्रसित होनेके कारण हम आपका पधारना भी नहीं जान सके।' इतना कहकर भगवान्‌ने जब देवर्षिजीसे पुनः वर-ग्रहणका अनुरोध किया तो देवर्षिजी प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! मैं और किसी वरका प्रार्थी नहीं हूँ, निजजनोंके सर्वाभीष्टप्रदाता चरणयुगलमें केवल यही प्रार्थना है कि आप चारोंकी जो एक अत्यद्भुत महाभावावेश-मूर्तिको मैंने प्रत्यक्ष दर्शन किया है, वही भुवनमङ्गल चारों स्वरूप जनसाधारणके नयनगोचरीभूत होकर सर्वदा इस पृथिवीतलपर विराजमान रहें। मायासन्निपातमें ग्रस्त जीवसमूह एवं तद्दर्शन-विरहकातर भक्तजनके लिये यह महासंजीवनी-रसायन-स्वरूप चतुष्टय सर्वोत्कर्षतासहित जययुक्त होवे।' करुणायतन भक्तवाञ्छा-पूरणकारी श्रीभगवान्‌ने कहा—'देवर्षे! इस विषयमें मैं पूर्वसे ही अपने दो और परम भक्तोंके प्रति भी आपके प्रार्थनानुरूप ही वचनबद्ध हूँ—एक भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्न और द्वितीय परमभक्तिस्वरूपिणी श्रीविमलादेवी। निखिलप्राणि-कल्याणहित भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्नकी घोरतर तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं नीलाचलक्षेत्रमें दारुब्रह्मस्वरूपमें अवतीर्ण होकर जन-साधारणको दर्शन देनेका वर प्रदान कर चुका हूँ तथा महाविद्यास्वरूपिणी श्रीविमलादेवीद्वारा अनुष्ठित महातपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी प्राणिमात्रको महाप्रसाद वितरण करनेकी प्रतिज्ञाको उक्त स्वरूपसे ही पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे चुका हूँ। अतएव इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये हम चारों इसी स्वरूपमें आगामी कलियुगमें लवणसमुद्रतटवर्ती नीलाचलक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर प्रकाशमान रहेंगे।' सर्वजीव-कल्याणव्रत देवर्षि श्रीनारदजीने मनोवाञ्छित वर प्राप्त करके प्रभुचरणारविन्दमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मधुर वीणासे करुणावारिधि श्रीप्रभुके अमृतमय नामगुणमाधुरीका गान करते-करते यदृच्छा गमन किया। श्रीराम-कृष्णने भी माताजीके कथंचित् संकोचकी आशंका करके उस स्थानसे प्रस्थान किया। ये ही श्रीजगन्नाथ, मूर्तिचतुष्टय—श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शनरूपमें श्रीनीलाचलक्षेत्रको विभूषित करके अद्यापि विराजमान हैं।

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्

[पुरुषोत्तम प्रभु जगन्नाथकी लीला]

(श्रीगगाधरजी गुरु बी०ए०, एल् एल्० बी०)

सनातन-धर्मक नित्य-लीलामय उत्कल प्रदेश अपनी विश्ववन्द्य पुरुषोत्तम-सस्कृतिके लिये प्रख्यात है। पार्वतीवल्लभ श्रीशकर, गगनविलासी श्रीसूर्यनारायण ओर वैकुण्ठनिवासी श्रीविष्णु आदि भगवत्स्वरूप जगत्‌की रक्षाके लिये भुवनेश्वर कोणार्क (अर्कक्षेत्र) तथा श्रीजगन्नाथपुरी (नीलाचल) इत्यादि स्थानाम आविर्भूत हुए हैं। उत्कलके परमाराध्य प्रभु श्रीजगन्नाथदेव है। जगन्नाथ अजन्मा ओर सर्वव्यापक हानपर भी दारुब्रह्मके रूपमे अपनी अद्भुत लीला दर्शाते आ रहे हैं। सक्षेपम भगवान् दारुब्रह्मकी दिव्यलीला ब्रह्मपुराणम निम प्रकारसे वर्णित है—

सत्ययुगकी वात ह। इन्द्रद्युम्न नामके इन्द्रसदृश पराक्रमा अर्थशास्त्रनिपुण ब्राह्मण-भक्त सत्यवादी सवसद्‌गुणसम्पन्न एक राजा थे। मालवा दशकी अवन्तीनगरी उनकी राजधानी थी। वे प्रजाआका पुत्रवत् पालन करते थे। एक बार उनके मनम यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किस प्रकार भाग-मोक्षदाता यागेश्वर श्राहरिकी आराधना करूँ?

राजा सन्य-सामन्त-पुरोहितादिक सहित दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे। उस अनन्त तरङ्गाकुलरमणीय समुद्रका दर्शनकर राजा विस्मयाभिभूत हा गय और वहीं समुद्र-तटपर एक मनाहर दिव्य पवित्र स्थानम उन्हान निवास किया। त्रिभुवन-विख्यात पुरुषात्तम-क्षेत्रम महाराज इन्द्रद्युम्नने विविध रमणीय स्थानाक दशन किय। भगवान्‌क उस मानसतीर्थ पुरुषात्तम-क्षेत्रम इन्द्रनीलमणिस निमित प्रतिमा विराजित ह जिसे स्वय भगवान्‌न छिपा दिया ह। राजान दृढ सकल्प किया कि मैं एसा प्रयत्न करूँगा जिसस सत्यपराक्रमी जगदाश्वर विष्णु मुझ साक्षात् दर्शन दग। अनन्यभावस भगवत्पादारविन्दाम सर्वस्व-समर्पणपूर्वक यज्ञ दान तपस्या पूजा आर उपवासादि करनक लिय एव दिव्य भगवन्मन्दिर-निमाण करनक लिय दृढसकल्प हाकर राजा अपन कर्तव्यम लग गय। मन्दिर-निर्माण-काय समारम्भ हुआ। अश्वमधयज्ञ तथा दान-पुण्य आदि कर्म कर लिय गय। पुरुषात्तम-प्रासाद-निमाण-काय विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। राजाका अब अहर्निश भगवत्प्रतिमाके लिय चिन्ता सतान लगी। व सोचन लग—'सृष्टि-स्थिति-लयकारी लोकपावन भगवान् पुरुषोत्तमका मैं कैसे दर्शन कर सकूँगा? कैसे विष्णुप्रतिमाका निर्माण किया जा सकेगा?' पाञ्चरात्रकी विधिसे राजाने पुरुषोत्तम-पूजन करके भावमयी प्रार्थनाएँ कीं (ब्रह्मपु० ४९। १—५५)।

स्तुति-प्रार्थनाके बाद राजाने सर्वकामप्रद सनातन पुरुष भगवान् जगन्नाथ वासुदेवको प्रणाम किया एव चिन्तानिमग्न हो धरतीपर कुश और वस्त्र बिछाकर सो गये। देवाधिदेव भगवान्‌ने राजाको स्वप्नमे अपने शख-चक्र-गदा-पद्मस्वरूपका दर्शन कराया एव कहा—'राजन्! तुम धन्य हो तुम्हारे दिव्य यज्ञ भक्ति आर श्रद्धास मैं सतुष्ट हूँ। तुम चिन्ता मत करो। यहाँ जा जगत्पूज्य सनातनी प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय म बतलाता हूँ। आजकी रात बीतनेपर सूर्योदयक समय समुद्रतटपर जाना। वहाँ समुद्र-प्रान्तमे एक विशाल वृक्ष सुशाभित है, जिसका कुछ अश तो जलमे और कुछ अश स्थलपर हे। समुद्रकी लहरास आहत होनेपर भी वह वृक्ष कम्पित नहीं हाता। तुम हाथमे तीक्ष्ण अस्त्र लेकर अकले ही वहाँ जाना आर उस वृक्षको काट डालना। वहास अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उससे विचार-विमर्शकर दिव्य प्रतिमाका निर्माण करना। अब मोहप्रद *चिन्ता त्याग* दो। तत्पश्चात् श्रीहरि अदृश्य हा गय। राजा विस्मित हुए। प्रात उठकर वे समुद्रतटपर पहुँचे एव स्वप्नानुसार तजस्वी वृक्षराजका दखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हाने उस वृक्षको काट गिराया और दो टुकड करनेका विचार किया। सहसा दो ब्राह्मणान आकर पूछा—'आपने किसलिये वनस्पतिको काट गिराया है?' राजान कहा—'आद्यन्तहीन विष्णुकी आराधनाक लिय मैं प्रतिमा-निमाण करना चाहता हूँ। एतदर्थ भगवान्‌न मुझ स्वप्नम प्ररित किया हे।' यह सुनकर विप्ररूपधारी भगवान् जगन्नाथने हर्षपूर्वक कहा—'राजन्! आपका विचार अत्युत्तम है। मेरे य साथी श्रेष्ठ शिल्पी हैं। य मेरे निर्देशानुसार प्रतिमा-निमाण करेंगे।' तब विप्र विश्वकर्माने भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रतिमाओंका निर्माण कर दिया। जिनमे पहली मूर्ति श्रीबलभद्रजीकी दूसरी श्रीजगन्नाथजीकी एव तीसरी श्रीसुभद्राजीकी थी। यह

देखकर इन्द्रद्युमन साश्चय पूछा—'गुप्तरूपस आप कौन हे ?' तब भगवान्‌न कहा—'म दवता यक्ष दत्य, इन्द्र, रुद्र ब्रह्मा आदि काई भा नहीं हूँ। मुझे पुरुपात्तम समझा। सवपीडाहारी, अनन्त बलशाली में सभीका आराध्य हूँ। वेदादि धमशास्त्राम जिसका उल्लेख हुआ है, वही म हूँ। ससारम जा कुछ वाणीद्वारा वर्णनीय है, वह मरा ही स्वरूप है। इस चराचर विश्वम मेरे सिवा कुछ भी नहीं ह।' भगवान्‌की वाणी सुनकर राजाक शरीरम रोमाच हा आया। व स्तुतिपूर्वक प्रणाम करत हुए बाल—'जा निर्गुण-निर्मल एव शान्त परमपद ध्यय है उमे मैं आपके प्रसादस पाना चाहता हूँ।' तब भगवान् राजाका वर देते हुए अन्तर्धान हा गय। भगवद्दशनस कृतकृत्य हा बुद्धिमान् नरेशन श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजा एव वरदात्री श्रीसुभद्राजाका मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथम विठाकर मन्त्रियासहित बडा धूमधामस पुण्यस्थानम प्रवश कराया। यथासमय शुभमुहूतम प्रतिष्ठा करायी। राजान सर्वोत्तम प्रासादम वदाक्त-विधिस प्रतिष्ठितकर सव विग्रहाको स्थापित किया एव नियमित प्रभु-पूजनद्वारा सवस्वत्यागी हाकर अन्तम परमपदका प्राप्त किया।

स्कन्दपुराणम भी जगन्नाथजीकी लीला प्रकारान्तरस वर्णित है। इसक अनुसार राजा इन्द्रद्युम्नने एक दिन अपने पुराहितस कहा—'आप उस उत्तम क्षत्रका अनुसधान कर जहाँ हम साक्षात् भगवान् जगन्नाथके दर्शन मिल।' तब पुराहितक भाइ विद्यापतिको एक तीर्थयात्रीक मुखस पुरुपात्तम क्षेत्रका-माहात्म्य सुनकर जगन्नाथ-दर्शनपूर्वक निवासस्थलका निर्णय करके लौट आनक लिये भेजा गया। गोविन्द-चिन्तनपूर्वक विद्यापति एक आम्रकाननम पहुँचे। आकाशचुम्वी नीलाचलशिखर दखकर साक्षात् विग्रहवान् भगवान् विष्णुक वासस्थान खाजते हुए व नीलाचलकी उपत्यकामे जा पहुँच। वहाँसे आगे बढनेका मार्ग नहा मिला। तब भूमिपर कुशा बिछाकर व मान-भावस भगवत्-शरणाश्रित हुए। फिर भक्ताकी लोकात्तर वाणा सुनकर उसीका अनुसरण करत अग्रसर हुए एव शबरदीपक नामक आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ विश्वावसु नामक एक शबर विष्णुका पूजन करनेके बाद आया। विद्यापति सोचन लग— इन श्रेष्ठ वैष्णवसे दुर्लभ समाचार प्राप्त हागा।' तब विश्वावसुन पूछा—'ब्रह्मन्! आप कहाँस पधार ह ? यह वनका मार्ग दुस्तर है। आप बहुत क्लान्त-श्रान्त हा गय हागे। यहाँ विश्राम कीजिय।' ऐसा कहते हुए शबरने पाद्य, आसनार्घ्य देकर फिर पूछा—'आप फलाहार करगे या तेयार की हुई भाजन-सामग्री ? आज मेरा जीवन सफल हुआ क्याकि दूसर विष्णुकी भाँति आप मर घर पधार हें।' विद्यापतिन कहा—'म जिस उद्दश्यसे आया हूँ, उसे सफल करा। भाजनकी चिन्ता न करा। अवन्तिराज इन्द्रद्युम्नक आज्ञानुसार म भगवद्दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ। नीलमाधव श्रीहरिका दर्शनकर उक्त समाचार जबतक राजाको नहा दिया जायगा, तबतक व निराहार रहगे। अत मुझे शीघ्र हा प्रभुस मिला दा।' इसके बाद दोना गहन वनम पहुँचे। वहाँ पहुँचकर विद्यापति भगवद्दर्शनसे कृतार्थ हुए। पुन शबर उन्ह आश्रमम वापस लाया आर उनका सविधि सत्कार किया। उसन जा अलौकिक वस्तुएँ अर्पित कीं उन्ह दखकर विद्यापतिन विस्मित हाकर कहा—'तुम्हार घरम एसी दिव्य वस्तुआका सग्रह आश्चर्यका विषय है।' शबरने कहा—'इन्द्रादि दव नित्य ही जगन्नाथजीकी पूजा करनक लिय आते ह। य सब पदार्थ भगवान्‌के प्रसादरूप ह।' तत्पश्चात् ब्राह्मण विद्यापतिन कहा—'यदि मुझपर तुम्हारी कृपा हा ता मुझ हमशा-हमेशाक लिय अपना बन्धु बना ला। तुम्हारे साथ मत्री-स्थापन करनेका मेरा दृढ निश्चय ह। मर लाट जानपर राजा इन्द्रद्युम्न यहाँ आयग एव विशाल मन्दिरका निर्माण करक सहस्रोपचारासे जगन्नाथजीकी पूजा करगे।' यह सुनकर शबरन कहा—'य सब बात तो ठीक ही ह किंतु राजा यहाँ नालमाधवका दर्शन नहा कर सकग, क्याकि भगवान् स्वणमयी बालुकाम अदृश्य हा जायँग। आप सोभाग्यशाली हानम भगवान्‌का दर्शन पा सक ह। हाँ जब राजा यहाँ आकर भगवान्‌का न दख सकनेक कारण प्राण-त्याग तकका तयार हा जायँग तब भगवान् गदाधर स्वप्नम उन्ह अवश्य दशन दग। उस समय राजा उन्हाके आदशानुसार भगवान्‌की काष्ठमया चतुर्मूर्तियाका ब्रह्माजीक द्वारा स्थापित कराकर पूजा करगे।' शबरस इतना सब जाननेके बाद पुरुपात्तम-क्षेत्रका परिक्रमाकर विद्यापति अवन्ती चल आय ओर उन सभा बाताका राजास निवदित कर दिय।

सब बात जानकर यथासमय राजा श्रीक्षेत्र पहुँच तथा वहाँ उन्हान सहस्र अश्वमध-यज्ञानुष्ठान किया। दवपि नारद

भी राजाक साथ आये हुए थे। वे बोले—'राजन्! पूर्णाहुतिके बाद यज्ञ सफल होगा। तुम्हारे भाग्यादयका समय निकट आ गया ह—भगवान्क शरीरका राम गिरते ही वह वृक्षभावको प्राप्त हा जायगा। इस पृथ्वीपर स्थावररूपम वह भगवान्का अशावतार होगा। भक्तवत्सल प्रभु अभी उसी रूपम अवतीर्ण हाग। यज्ञान्त-स्नान समाप्त करके वृक्षरूपम प्रकटित यज्ञेश विष्णुका तुम इस महावेदीपर स्थापित करा।' इसके बाद दोनो ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गय। वृक्षको देखकर राजान अपने परिश्रमको सफल माना और नीलमणि माधवके विरहजन्य सतापका परिहार करक बार-बार उस वृक्षका प्रणाम किया एव आनन्दाश्रु-पूर्ण लोचनासे राजाने ब्राह्मणाक द्वारा उस वृक्षको मँगवाया। ब्राह्मण लोग माला और चन्दनसे विभूपित विष्णुके दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आय। नारदजीक कथनानुसार उक्त वृक्षका पूजन करक राजान प्रश्न किया—'मुनिवर! भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ कैस बनगी और उनका निर्माण कौन करेगा? नारदजीने कहा—'भगवान्का लोला अलौकिक है उस कौन जान सकता है? इसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—'अत्यन्त गुप्त रखी हुइ महावदीपर भगवान् विष्णु स्वय अवतीण हाग। पद्रह दिनातक उक्त स्थानका आवृत रखा जाय। हाथम हथियार लकर जा वृद्ध शिल्पी उपस्थित हे उसका भातर प्रवश कराकर यत्नस दरवाजा बद करना चाहिय। मूति-रचनातक बाहर वाद्य बजते रह, अदर जानेकी चेष्टा काई भी न करे कारण कि शिल्पकारक अतिरिक्त अन्य काई देखगा ता वह दाना नत्रास अन्धा हा जायगा। तत्पश्चात् आकाशवाणीक अनुसार राजान समस्त व्यवस्था का। पद्रहवाँ दिन आत ही भगवान् चार विग्रहा—बलभद्र सुभद्रा और सुदर्शनचक्रक साथ स्वय प्रकट हुए। तबसे विधिपूवक उनका पूजा चला आ रही है। उत्कलम दारुब्रह्मका पूजा वैदिक युगस अबतक हाता आ रही है।

चतुर्धामम अन्तिम श्रीजगदीशपुरीधाम ही है। सत्ययुगका धाम बदरीनाथ त्रेताका रामेश्वर एव द्वापरका धाम द्वारका है और कलियुगका पवित्र धाम श्रीजगन्नाथपुरी है। सबप्रथम नीलाचल मन्दिर पर्वत इस स्थानपर था तथा सनदवारायनाय भगवान् नारायणाका विग्रह उक्त पवतपर था [illegible]

वह पर्वत पातालम चला गया। देवतागण भगवद्विग्रहका स्वर्गलोकम ले गये। इस क्षत्रका उन्हाकी पावन स्मृतिम आज भी सश्रद्ध नीलाचल कहा जाता ह। श्रीमन्दिर-शिखरपर लग चक्र 'नीलच्छत्र'क दशन जहाँतक हाते रहते ह वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रीजगदीशपुरी है। 'सिद्धान्तदपण'-म उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

याऽसा सर्वत्र पूर्णोऽप्यसितगिरिदरीकशरी याऽप्यरूप
पद्मप्रद्युम्नरूपोऽप्यणुरतनुतनूसम्भृताशेपलाक ।
निस्त्रैगुण्योऽप्यगण्यामलगुणनिलयो वाङ्मनोऽतीतधामा
मादृक्चर्माक्षिलक्ष्य स्फुरतु मनसि न चित्रसिन्धुर्मुकुन्द ॥

(सि०द० २३। ४३)

'जो सर्वत्र परिपूण हाते हुए भी नीलगिरि-दरी-कशरीरूपमे स्थित हैं, अरूप होते हुए भी जा पद्मप्रद्युम्नस्वरूप है अणु हानपर भी विशाल विश्वरूपम नि शप लोकाका धारणकर उनका पापण करत हैं, गुणातीत होनपर भी अगणनाय सद्गुणाकर हैं तथा जा अवाङ्मनसगाचर हैं व आश्चर्यसिन्धु मुकुन्द मादृक्चमचक्षुका भी लक्ष्य हाकर हमारे मनम स्फुरित हा।'

अत्यन्त प्राचान कालसे अबतक दार्शनिक कवि और भक्त लखक-वृन्द जगन्नाथकी अवर्ण्य-लीलाएँ अपन दृष्टिकाणस वणन कर चुक ह किंतु उनकी लीलाआका अन्त प्राप्त न कर सके। वे अवाङ्मनसगाचर अनन्यसाधारण रहस्यशाली है और उनकी माया भी दुरत्यया ह। नि सदह तदाय जगत्पावन परमादार साम्य-मैत्री-धर्म महनाय तथा पूज्य है।

जगन्नाथ-क्षत्रम जगन्मैत्राकी श्रेष्ठ भावना सनिहित है। उसका प्रमाण श्रीजगदीश-रथयात्रा है। जगन्नाथका लाला विश्वब्रह्माण्डका सच्चा मङ्गल-विस्तार कर यह प्रार्थना पूवक में श्रीजगन्नाथ-दशन करता हुआ कल्याणकारी 'कल्याण'की शुभाशसा कर रहा हूँ—

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमज विभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथ किं मे मृत्यु करिष्यति॥
मैत्रीशतदलानन्द साम्यधर्मांक ईश्वर।
सनातना जगन्नाथा धर्मो रक्षतु सान्तनम्॥
कल्याणस्य जया भूयाच्छिवदस्य जगद्गुरा।
भगवन्नामलीलाढ्या भूयात् सद्धर्मवर्धक॥

[अनुवादक—श्रीसदानन्दधन गुरु]

• • ——— •

पुष्टि-पुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी एवं उनके विविध लीला-आख्यान

(श्रीप्रभुदासजी वैरागी एम० ए० बी० एड्० साहित्यालंकार)

प्रभु श्रीगोवर्धनधरण श्रीनाथजीका गिरि-गोवर्धनपर प्राकट्य ही जीवोद्धार-हेतु हुआ है। जीवके कल्याणार्थ आप गिरिराज गोवर्धनपर प्रकट होते ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। सारा व्रजमण्डल यह मानने लगा कि स्वयं गिरिराज गोवर्धन ही कन्हैयाजीके रूपमें हम व्रजभक्तोंकी रक्षा-हेतु इस गिरि-कन्दरासे प्रकट हुए हैं और भाँति-भाँतिकी लीलाएँ कर रहे हैं।

इधर भारतवर्षके पूर्वाञ्चलपर दक्षिण-यात्राके लिये निकले आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको इन प्रभुने आज्ञा दी कि तुम अपनी यात्रा यहीं रोककर सर्वप्रथम गिरि-गोवर्धनपर आकर मुझसे मिलो। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी इस भगवदाज्ञाको सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और अपनी यात्रा स्थगित करके तत्काल उन्होंने अपने भक्तों तथा अन्य व्रजवासियोंके साथ गिरि-गोवर्धनकी ओर प्रस्थान किया। महाप्रभु कुछ ही ऊपर चढ़े होंगे कि तत्क्षण सबके देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजी अपनी गिरि-कन्दरासे बाहर आ गये और श्रीमद्वल्लभाचार्यजीसे गले मिलकर भेंटने लगे। उस समय समग्र व्रजवासी प्रभु और महाप्रभुके इस अद्भुत मिलनकी प्रशंसा करते हुए जय-जयकार करने लगे। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने व्रजभक्तोंको बतलाया कि गर्गसंहितान्तर्गत ऋषि गर्गाचार्यकी भविष्यवाणीके अनुसार स्वयं सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णका ही यह प्राकट्य हुआ है और कलियुगमें आप श्रीनाथजीके नामसे पुकारे जाते हुए सदा वन्दनीय रहेंगे—

श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः ।
गोवर्धनगिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः ॥

(गर्गसंहिता ७। २०-२१)

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी गिरिराज गोवर्धनपर रहकर प्रभु श्रीनाथजीकी सेवाएँ करने लगे। एक दिन प्रभु श्रीनाथजीने श्रीमहाप्रभुजीको दुग्ध-पान-हेतु एक गाय खरीदनेकी आज्ञा दी। भगवदाज्ञा शिरोधार्यकर श्रीमहाप्रभुजीने एक गाय खरीदी। इसके बाद आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजीने गिरि-गोवर्धनपर अपने एक भक्तसे कहकर प्रभु श्रीनाथजीके लिये एक मन्दिर भी बनवा दिया। धूमधामसे प्रभु श्रीनाथजी उसमें विराजे, अब तो श्रीनाथजीकी लीलाएँ और बढ़ गयीं। अनेक प्रकारके शृंगार, विविध व्यंजन तथा सुमधुर गान आदि होने लगा। आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टि-सम्प्रदायके प्रधान आचार्य थे, अतः अपने समयके चार गायक भक्त कवियोंको 'ब्रह्मसम्बन्ध' की दीक्षा देकर प्रभुकी कीर्तनमयी सेवाओंमें नियुक्त किया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ इन गायक भक्त कवियोंके संग भी होने लगीं।

प्रभु श्रीनाथजीकी सब सेवा-व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हो जानेके बाद श्रीमद्वल्लभाचार्यजी भारत-परिक्रमापर निकले। उस समय प्रभु श्रीनाथजीके मुखियाको बुलाकर उन्होंने कहा कि 'भक्त सूरदास वैसे तो जन्मान्ध हैं, परंतु यहाँ प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें कीर्तन करते समय इन्हें प्रभुजीके साक्षात् दर्शन होते हैं, अतः तुम कभी इनकी परीक्षा मत लेना।' इतना निर्देश देनेके बाद वे तो यात्रार्थ प्रस्थान कर गये, परंतु मुखियाके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। उसने मनमें सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है? कैसे सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके शृंगारके साङ्गोपाङ्ग दर्शन हो सकते हैं? अतः एक दिन सूरदासकी परीक्षाके लिये उष्णकालमें मोतीका आड़बंद, श्रीमस्तकपर कुल्हे, हल्की-फुल्की मोतियोंकी माला प्रभु श्रीनाथजीको पहनायीं तथा सूरदासजीको सेवामें आनेपर झूठ-मूठ ही भारी शृंगार होनेकी बात कही। भक्त सूरदासजीने अपना तानपूरा उठाया और उस दिन जो शृंगार नन्दनन्दन प्रभु श्रीनाथजीने अङ्गीकार किया, उसका वर्णन अपने एक पदमें गा सुनाया—

देखे री हरि नंगमनंगा।
जल सुत भूषन अंग बिराजत, बसनहीन छबि उठत तरंगा॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधि-सुत मुख लै मन भरि, सूर हँसत ब्रज जुवतिन संगा॥

मुखिया इस पदको सुनकर दंग रह गये। भक्त सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके नख-शिख-शृंगारके साक्षात् दर्शन होते हैं, यह पूर्ण विश्वास हो गया। अब वे आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी भारत-यात्रा करके जब गिरि गोवर्धन पधारे, तब उनसे अपने कियेकी क्षमा माँगी। आज

भी उष्णकालमें गायक भक्त कवि सूरदासजीके इस प्रसंगके सस्मरणार्थ प्रभु श्रीनाथजीको उक्त शृंगार धारण कराते हैं। अधिकांश साहित्याभिरुचि रखनेवाले यह भलीभाँति जानते हैं कि सूरसागरमें अनेक पद जो सूरदासजीने पारम्भ किये थे बादमें श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीने उन्हें पूरे किये। उनपर 'सूरस्याम' की छाप लगी हुई है। यह भक्त-भक्ति एवं भगवान्‌का अनुपम लीलाका श्रेष्ठ निदर्शन है।

एक थे भक्त श्रीकुंभनदास। उन्हें अपने प्रथम दर्शनमें ही प्रभु श्रीनाथजीने विमोहित कर लिया था। श्रीकुंभनदासने ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा लेकर श्रीमहाप्रभुजीकी शिष्यता स्वीकार कर ली। आचार्यचरणने इनके संगीतपर रीझकर इन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें नियुक्त किया। अब तो श्रीकुंभनदास प्रभु श्रीनाथजीकी युगल-लीलामें छके रहने लगे। तत्पश्चात् श्रीमहाप्रभुजीने इन्हें आशीर्वाद दिया— 'कुंभनदासको निकुंज-लीला-सम्बन्धी रसका अनुभव हुआ है। वे बडभागी हैं आगे अब वे सदा ही हरिरसमें ही मगन रहेंगे'—

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन धर अंग अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहति तहाँ तहाँ॥
कहा कहाँ कछु कहत न आवै चोर्‌यौ मन मागि वे देहा।
कुंभनदास प्रभु के मिलिवे की सुन्दर बात सकल सखानु सौं कहा॥

इसी प्रकार प्रयागमें त्रिवेणी-संगमके पावन तटपर भजन करते हुए गायक भक्त कवि श्रीपरमानन्ददासजीने देखा कि श्रीमहाप्रभुजीके अनन्य सेवक कपूरजलघरियाकी गोदमें नन्दराजकुमार प्रभु श्रीनाथजी बालक बनकर बैठे हुए हैं और तल्लीनतासे प्रभु उसका भजन सुन रहे हैं—इस अनोखी लीलाको देखकर वे आनन्दविभोर हो गये। प्रभु श्रीनाथजीकी इस एक ही लीलाने श्रीपरमानन्ददासको श्रीमहाप्रभुजीका शिष्य बनाकर प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसेवामें प्रवेश दिला दिया। इस ब्रजभक्त गायक कविने ब्रजराज प्रभु श्रीनाथजीके ब्रजमण्डलकी ऐसी महिमा गायी है—

कहा करौं बैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद जसोदा गोपी जहाँ नहिं बछरा ग्वाल और गाइ॥
जहाँ नहिं निर्मल जल जमुना को जहाँ नहिं वृक्ष कदम्ब की छाँइ।
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाइ बलाइ॥

इसी भाँति आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके चौरासी शिष्योंको भी प्रभु श्रीनाथजीकी अनेक लीलाओंके दर्शन हुए।

प्रातःस्मरणीय आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके यशस्वी सुवन स्वनामधन्य गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीके समय प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाओंमें और भी वृद्धि हुई। इन्होंने अपने समयके चार और गायक भक्त कवियोंको प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें रखकर 'अष्टछाप'की स्थापना की। श्रीगोविन्दस्वामी उस समयके अच्छे भक्त-कवि-संगीतज्ञ थे। उनकी संगीतप्रियतापर पसीजकर गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीने उन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसेवामें स्थान दिया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीसे उनका तादात्म्य-सम्बन्ध हो गया। श्रीगुसाँईजी महाराजकी भी श्रीगोविन्दस्वामीपर असीम कृपा थी। प्रभु श्रीनाथजीके साथ श्रीगोविन्दस्वामीका हास्य-विनोद चलता रहता था। कभी किसी कारणवश यदि श्रीगोविन्दस्वामी सेवामें नहीं आते तो प्रभु श्रीनाथजी अवकाश पाकर उनकी कुट्यापर पहुँच जाते थे। प्रभु श्रीनाथजीकी सख्यभावकी क्रीडाएँ उनके साथ चलती रहती थीं। एक बार श्रीगुसाँईजी प्रभु श्रीनाथजीका शृंगार कर रहे थे बाहरकी ओर श्रीगोविन्दस्वामी कीर्तन करने बैठ गये। जब श्रीगुसाँईजी शृंगारकी सामग्री लाने-हेतु इधर-उधर होते तब प्रभु श्रीनाथजी एक कंकड श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंक देते परंतु श्रीगोविन्दस्वामी प्रभु श्रीनाथजीके इस करतूतको अनदेखी कर देते। देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजीने सात कंकड श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंके। तब थोडेसे आक्रोशमें आकर श्रीगोविन्दस्वामीने एक बडा कंकड प्रभु श्रीनाथजीपर दे मारा। कंकडकी तीव्र चोटसे प्रभु श्रीनाथजी विचलित हो उठे और श्रीगुसाँईजीका अङ्गीकार कराया सारा का सारा बहुमूल्य शृंगार धडामसे नीचे आ गिरा। श्रीगुसाँईजी महाराजको श्रीगोविन्दस्वामीकी धृष्टतापर बडा क्रोध आया परंतु प्रभु श्रीनाथजीने अपनी ही उच्छृंखलता बतलाकर श्रीगुसाँईजीके क्रोधको ठंडा कर दिया। अपने प्रिय सखा श्रीगोविन्दस्वामीकी इस स्नेह-लीलाकी जानकी रखनेके लिये आज भी प्रभु श्रीनाथजी नित्य स्नानके समय सिंगारी सात कंकरियाँ आरोगते हैं।

एक बार प्रभु श्रीनाथजी श्रीगोविन्दस्वामीके घर पर्दा

गये और वहाँ वृक्षकी टहनीपर बैठकर वंशी बजाने लगे। इसी बीच मन्दिरमें उत्थापन-दर्शनका समय समीप आ गया तो प्रभु वृक्षके ऊपरसे ही कूदे। ऊटपटाँग कूदनेपर प्रभुका वस्त्र वृक्षकी टहनीमें उलझकर फट गया। उत्थापनमें श्रीगुसाँईजीने प्रभुका फटा वस्त्र देखकर श्रीगोविन्दस्वामीसे इसका कारण पूछा। इसपर श्रीगोविन्दस्वामीने श्रीगुसाँइजीको उस वृक्षकी टहनीमें फँसे वस्त्रके अंशको बतलाया जो प्रभुके कूदते समय फटकर वहाँ फँस गया था। श्रीगुसाँईजीको ठाकुरजीकी इस लीलापर बड़ा आश्चर्य हुआ तथा सखा श्रीगोविन्दस्वामी और नन्दनन्दन गोविन्दके मैत्री-भावपर बड़ी प्रसन्नता भी हुई।

गायक भक्त कवि श्रीचत्रभुजदास गिरि-गोवर्धन छोडकर कहीं नहीं जाते थे। एक बार श्रीगुसाँईजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीने प्रभु श्रीनाथजीको मथुरा ले जाकर सतघरामें पधराये। उधर गिरि-गोवर्धनपर प्रभु श्रीनाथजीको नहीं देखकर श्रीचत्रभुजदास प्रभुके विरहमें व्याकुल हो गये और गाने लगे—

श्रीगोवर्धनवासी साँवरेलाल तुम बिन रह्यो न जाय हो।

उधर मथुरा सतघरामें प्रभु श्रीनाथजी भक्तकी मनोव्यथा समझकर आकुल हो उठे और उन्होंने उन्हें तुरंत गोवर्धन पधरानेकी आज्ञा दी। प्रभु-आज्ञानुसार श्रीनाथजीको पुनः गिरि-गोवर्धन पधराया गया। इस कारण राजभोगमें विलम्ब हो गया अतः गिरि-गोवर्धन आकर राजभोग और शयन-भोग दोनों साथ ही आरोगे। प्रभुकी लीला बड़ी विचित्र है आज भी प्रभु श्रीनाथजी नृसिंह-चतुर्दशीको शयनभोगके साथ राजभोग आरोगकर उस भक्तगाथाको अमर किये हुए हैं। इन अष्ट-सखाओंने लीलाविहारी प्रभु श्रीनाथजीकी गोवर्धनलीला, दानलीला, मानलीला, श्यामसगाई और प्रभासरास आदि कई लीलाओंपर अपने काव्य-ग्रन्थोंका सृजन किया है।

एक दिन लालापुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी वि० सं० १७२८ में व्रजभूमि और गिरि-गोवर्धन छोड़कर मेवाड़ पधारे। मेवाड़में जिस निरापद स्थानपर आप विराजे वहाँ एक सुन्दर नगर बन गया। श्रीनाथजीके नामपर उसका भी नाम श्रीनाथद्वारा पड़ा। ऋद्धि-सिद्धि यहाँ अठखेलियाँ करने लगीं और जंगलमें मङ्गलके बाजे बज उठे। प्रभु श्रीनाथजीके मेवाड़ पधारते ही यहाँ भी उनकी अद्भुत-अद्भुत लीलाएँ प्रारम्भ हो गयीं।

एक बार घस्यार-ग्राममें प्रवास करते हुए जलवायु अनुकूल नहीं होनेके कारण तिलकायत महाराजके एकके बाद एक करके तीन बालक स्वर्ग सिधार गये। चौथे बालकके प्रकट होते ही उसे शुद्ध स्नान कराकर तत्कालीन तिलकायत श्रीगिरिधरजी महाराजने उसे प्रभु श्रीनाथजीके चरणारविन्दमें डाल दिया और उस बालकको चिरायु प्रदान करने-हेतु प्रभुसे करबद्ध प्रार्थना की। तत्क्षण प्रभु श्रीनाथजीने अपने दायें कर-कमलसे उस बालकके सिरका स्पर्श कर दिया, उसे दीर्घायु होनेका वरदान मिल गया। वही बालक पुष्टि-सम्प्रदायमें तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके नामसे विभूषित हुआ। उसी बालकने युवावस्था प्राप्त होते ही पुनः प्रभु श्रीनाथजीको नाथद्वारा पधराया तथा सम्प्रदायका महामनोरथ द्वितीय सप्तस्वरूपोत्सव किया।

इन्हीं तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके समयमें वि० सं० १८६० ज्येष्ठ कृष्ण २ बुधवारको प्रभु श्रीवल्लभलालजी महाराज प्रभु श्रीनाथजीके सेवा-दर्शन करने नाथद्वारा पधारे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि वे प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजीको छोड़कर अन्य किसी भी भगवद्-विग्रहकी सेवा नहीं करते। नाथद्वारा आये और प्रातः प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें भी गये, परंतु प्रभुके समक्ष रोते रहे, लेकिन श्रीविग्रहको स्पर्श तक नहीं किया। महाराजश्रीकी यह भक्ति-विह्वलता देखकर प्रभु श्रीनाथजी हँस पड़े और उनसे कहा कि मैं ही श्रीगोकुलचन्द्रमा हूँ। इसपर महाराजने देखा कि प्रभु श्रीनाथजीके स्थानपर प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजी खड़े हैं। गोस्वामी श्रीवल्लभलालजी महाराजने गद्गदकण्ठ हो प्रेमाश्रु भरकर अत्यन्त भक्तिभावसे प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा-शृंगार किया तथा अपनी हठधर्मिताके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना की। प्रभु श्रीनाथजीकी यह भक्तानुग्रह-लीला अत्यन्त रोमांचकारी थी।

वि० सं० १८६७ में एक विधर्मी सेनापति प्रभु श्रीनाथजीके प्रति अमङ्गलभावना लिये हुए अपनी शक्तिसे मन्दिरमें प्रवेश कर गया। प्रभुके समक्ष जाते ही उसकी आँखोंकी रोशनी गायब हो गयी। उसने प्रभुका प्रत्यक्ष चमत्कार जानकर हाथ जोड़ते हुए कई मिन्नतें कीं। प्रभु श्रीनाथजीने उसकी फरियाद सुनकर उसको उसकी नेत्रज्योति पुनः प्रदान की। इसके बाद उसने अपनी दाढ़ीसे प्रभु-मन्दिरकी सीढ़ियोंको बुहारा तथा लालदरवाजेपर हिन्दू और मुसलमान कोई भी प्रभु श्रीनाथजीके प्रति बुरी भावना नहीं

रखे—ऐसी शपथ दिलाते हुए गाय तथा सूअरके चिह्नाङ्कित दो शिलालेख लगवाये वे आज भी लगे हुए है।

लीलाप्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ अनन्त हैं। प्रभु श्रीनाथजीकी की गयी प्रार्थनाएँ कभी निष्फल नहीं जाती है। भक्तगण दौड-दौडकर प्रभु श्रीनाथजीके दर्शनार्थ यहाँ वर्षभर आते रहत हें। सारे विश्वमे जहाँ-जहाँ वैष्णवाके घर इन प्रभुकी सवा है, वहाँ-वहाँ नाना प्रकारका लीलाएँ करते हुए उनके प्राङ्गणमे प्रभु श्रीनाथजी प्रेमरूपी पयोदसे प्रमोदरूपी पीयूष बरसाते रहते हैं। वैष्णवगण इन भगवल्लीलाआपर मुग्ध होकर नाथद्वारा आते हैं तथा प्रभुम छप्पन भोग, राजभोग, मङ्गलभोग, शयनभोग वस्त्रालकार रत्नाभरण तथा चाँदी और सोनेको भेटकर मन-ही-मन आनन्दित होते रहते हैं। यहाँकी गौमाता तथा गापालजीकी लीलाएँ भी सर्वदा सुदर्शनीय एव बारम्बार वन्दनीय हैं।

हरिहरेश्वरका मिलन—एक लीला-रहस्य

(डॉ० श्रीकेशवरघुनाथजी कान्हेरे,एम्० ए० पी-एच्० डी०)

प्रभुकी लीला अपरम्पार ह। उसकी लीलाका आदि, मध्य ओर अन्त खोजना मानव-शक्तिके लिये असम्भव है। प्रभु जब भी काई लीला रचते हे, तब वह केवल लीलामात्र नहीं होती, अपितु उसके पीछे बडा भारी रहस्य महान् तत्त्व कोई शिक्षा तथा काई आदर्श विद्यमान रहता हे। शेव, वण्णव शाक्त आदि देव एक ही है उनमे कोई भेद नहीं हे। शिव ही विष्णु हें और विष्णु ही शिव। इस भावको जनमानसम प्रतिष्ठापित करनेक लिये प्रभुने एक लीला रची।

प्रदोपकाल था। कैलासपर्वतपर विराजमान दवाधिदेव महादव अपने हाथपर चिताभस्म लेकर सर्वाङ्गपर लेपन करना चाहते थे कि भस्मम एक छोटा-सा ककड आ गया। महारुद्रन जब उस ककडको भस्मस निकालकर नीचे फका तब एक अद्भुत चमत्कार हुआ—उस ककडमस एक असुरका जन्म हुआ। जन्म हाते ही वह असुर हाथ जाडकर खडा हा गया आर कैलासपतिकी स्तुति करन लगा। साम्ब सदाशिवसे भूतगणाने पूछा—'हे प्रभु! यह कौन है? इसका नाम क्या है?'

भालनाथ मन-ही-मन मुसकराय और उन्हाने कहा—'यह हमारा पुत्र है और इसका नाम भस्मासुर है।' भस्मासुर बडी नम्रतास हाथ जाडकर बाला—'हे परमपिता! मुझ काई सवा बताइय ताकि मैं अपन-आपको धन्य समझ सकूँ मरा जावन सफल हो सक।

सदाशिवन कहा—'ह भस्मासुर! तुम प्रतिदिन सन्-शीलवान् सदाचारा एव ईश्वरभक्त व्यक्तिकी चिताभस्म लाकर मुझ दिया करा।

ऐसी सेवा सुनकर भस्मासुरको सतोष हुआ। वह प्रतिदिन कर्मभूमिसे चिताभस्म प्राप्तकर शिवशकरको समर्पित करता ओर शिव-महिमा श्रवणकर स्वयको धन्य समझता।

भूलोकपर आनेवाला भस्मासुर गौ-ब्राह्मण, ऋषि-मुनि, तपस्वी मनुष्याको देखकर आश्चर्य करता—'पृथ्वीपर रहनेवाला यह मानव एश्वर्य-सम्पन्न होकर बडे सुखसे इस लोकम निवास करते हैं ओर उधर स्वर्गमे निवास करनेवाले इन्द्रादि देवगण गन्धर्व आदि भी सुखोपभोगम मस्त रहते हैं। फिर भला मैं ही क्या इस अवस्थाम रहकर केवल चिताभस्म एकत्रित करके सदाशिवको समर्पित करता रहूँ? यह क्रम कवतक चलेगा? क्यों न इन सबका सहार करके इन्द्रादि दवापर विजय पाकर, असुराका राज्य प्रस्थापित करके सर्वाङ्ग-सुन्दर पार्वतीको अपनी पत्नी बनाकर स्वय इन्द्र बन जाऊँ?

एसा मनम सकल्प लिये वह कपटी हाथ जाडकर भगवान् शिवक सम्मुख आकर खडा हा गया और कहने लगा—'ह प्रभा! सम्पूर्ण सृष्टिम खोजकर आपके लिये चिताभस्म लाना बडा ही कष्टप्रद होता है। आज ताना लाक देखा परतु कहीं चिताभस्म नहीं मिली। इस कारण आपका सवाम व्यवधान आया है। अत ह देवाधिदव महादेव परमपिता प्रभा! इस बालकको ऐसा वर दीजिय, जिसस आपकी सेवा निरन्तर कर सकूँ, इस प्रकार कहकर वह भालनाथक चरणाको पकडकर रान लगा।

उसकी प्रार्थनासे प्रसन्न हाकर भोलनाथ उसे वरदान दन-हतु सिद्ध हा गय और कहने लग—'अर भस्मासुर! हम प्रसन्न हैं। वर माँगा।'

यह देखकर माता पार्वतीने कहा—'हे परमेश्वर! इसे वरदान मत दीजिये। यह असुर धरणीपर कोलाहल मचा देगा। एक तो यह पहलेसे ही मर्कट है फिर उसमें मद्यपान और वृश्चिकदंश ऐसी दशामें यह क्या नहीं करेगा? अत इसे वरदान देना उचित नहीं है।'

लीलावतारी देवाधिदेवकी लीलाका रहस्य माता पार्वती भी समझ नहीं सकीं, फिर क्षुद्र मानव इस रहस्यको कैसे समझे? भोलेनाथने कहा—'उमा यह हमारा बालक परम भक्त है। यह अनाचार नहीं करेगा।' इतना कहकर वृषभनाथ भस्मासुरसे बोले—'कहो भक्त! क्या चाहते हो?'

—यह सुनकर भस्मासुर मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ प्रकट-रूपमें बोला—'हे प्रभो! जिस व्यक्तिके मस्तकपर मैं अपना हाथ रखूँ वह उसी क्षण भस्म हो जाय। फलस्वरूप आपके लिये चिताभस्म लानेमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी।'

आशुतोष नन्दिकेश्वरने कहा—'तथास्तु।' वरदान मिलते ही वह असुर आनन्दसे नाचने लगा।

वह प्रतिदिन भूलोकपर विहार करता और ऋषि-मुनि, तपस्वी भक्त गौ-ब्राह्मण आदिको खोजकर उन्हें भस्म कर देता तथा कैलासपतिको बड़ी नम्रतासे चिताभस्म अर्पण करता।

भस्मासुरके अत्याचारसे सारी सृष्टि प्रभावित होने लगी। ऋषि-मुनि देवी-देवता भयाक्रान्त हो गये।

अनेक दिनोंतक भस्मासुरका कार्य निर्बाध-गतिसे चलते-चलते वह मदान्ध हो गया। उसे अपनी शक्तिपर गर्व होने लगा। धीरे-धीरे उसके विचारोंमें परिवर्तन आने लगा। वह सोचने लगा—पहले इन्द्रादि देवोंको भस्म करूँगा, फिर शेषशायी विष्णुको और भोलेनाथ वृद्ध हो चुके हैं तथा पार्वती अभी यौवनावस्थामें हैं एवं त्रिभुवन-सुन्दरी भी। अत अन्तमें भोलेनाथको ही भस्म करके पार्वतीका हरण करके सारे विश्वका सम्राट् बन पार्वतीको सम्राज्ञी बनाऊँगा।

इधर पृथ्वीमाता काँप उठीं। सारी प्रजा—ऋषि-मुनि-तपस्वी देव आदि भयभीत होकर ब्रह्माजीसे मिले और उन्हें सारी व्यथा कह सुनायी। ब्रह्माजी सभीको साथ लिये शेषशायी विष्णुभगवान्‌से मिले। नारायण स्वयं शिवशंकरके पास गये और कहने लगे—'हे देव! आपने यह क्या किया? आपके वरदानसे भस्मासुरने अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है। भोलेनाथ! इसे सँभालिये, अन्यथा मुझे तो आपका भविष्य भी अन्धकारमय दिखायी दे रहा है। अत स्वयकी रक्षा कीजिये।' नारायणका वचन सुनकर त्रिलोचन शिवने हँसते हुए कहा—'आप स्वय अन्तर्यामी हैं, फिर भी चिन्ताका विषय नहीं है। भस्मासुरका अन्त समीप समझ।'

इतनमे भस्मासुर चिताभस्म लेकर कैलासपर आया। भस्मासुरको देख, कर्पूरगौर क्रोधित होकर बोले—'अरे दुष्ट, मैंने तुझे चिताभस्म-प्राप्ति-हेतु वरदान दिया था, लेकिन तूने उसका दुरुपयोग करते हुए पृथ्वीपर अराजकता फैला दी।'

भोलेनाथके वचन सुनकर मदहोश भस्मासुर कहने लगा—'हे वृषभनाथ तुम अब वृद्ध हो चुके हो। पार्वती अभी तरुण है, सुन्दर है। तुम उसके लायक नहीं रहे। अत पार्वतीको मुझे दे दो, अन्यथा मैं तुम्हें ही भस्म कर दूँगा।' इतना कहनेके साथ ही वह भस्मासुर शिवशंकरकी ओर दौड़ पड़ा। यह दृश्य देखकर माता पार्वती अपने सदनमें भाग गयीं। भूतगण इधर-उधर दौड़ने लगे और लीला-नाटकी शिवशंकर जंगलकी ओर भागे। उनके पीछे भस्मासुर भागने लगा।

वेदशास्त्रोंने जिसे 'नेति-नेति' कहा—वे देवाधिदेव महारुद्र भस्मासुरके हाथ भला कैसे आ सकते थे! क्षणमें वे उसे समीप दिखायी देते और दूसरे ही क्षण वे कोसों दूर दिखायी पड़ते।

उधर माता पार्वती शेषशायी विष्णुनारायणकी प्रार्थना करने लगीं—'हे प्रभु! इस संकटसे रक्षा करो।' क्षीरसागरमें निवास करनेवाले लक्ष्मीपति शिवशंकरकी लीला देखनेमें तल्लीन थे। माता पार्वतीकी पुकार सुनते ही उनकी समाधि टूट गयी और तुरत मोहिनी रूप धारणकर भोलेनाथ और भस्मासुरके मध्य आकर खड़े हो गये।

लावण्यमयी मोहिनीको देखकर दौड़नेवाला भस्मासुर वहीं रुक गया। उसके पाँव वहीं थम गये और एकटक उसकी ओर देखने लगा। भस्मासुरकी आँखोंको मोहिनीने आकृष्ट कर लिया। मोहिनीको देखते ही भस्मासुर अपने कार्यको भूल गया। उसकी स्मरण-शक्ति मोहिनीने हरण कर ली।

उधर महारुद्र भगवान् नटवरधारी श्रीविष्णुका वह

अलाकिक रूप देखकर एक वटवृक्षके रूपमे खडे होकर उनकी लीला देखनम मस्त हो गये। अद्वितीय रूप-सम्पन्ना माहिनीको नृत्य करते देख भस्मासुरके कदम माहिनीकी आर वढने लगे।

वह माहिनीके समीप आकर बडी भावुकतासे कहने लगा—'हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी रूपयावना! तुम इतनी सुन्दर हो कि विश्वकी सारी सोन्दर्यसम्पन्न युवतियाँ, इन्द्रकी अप्सराएँ और लक्ष्मी तथा पार्वती-जैसी त्रिभुवन-सुन्दरी भी तुम्हार समक्ष नगण्य हे। हे विश्व-माहिनी मैं त्रलोक्यम शक्तिशाली हूँ। यदि तुम मुझसे विवाह करोगी तो जीवनभर तुम्हारा दास बनकर तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। त्रेलोक्यका अधिपति बनकर तुम्ह महाराज्ञी बनाऊँगा।

भस्मासुरको अपन जालम फँसा हुआ दखकर मोहिनीन कहा—'मैं आपम विवाह करनको तैयार हूँ, परतु मरा एक शत है। जा व्यक्ति मुझस विवाह करना चाहता हा उम मर साथ नृत्य करना हागा मरी नृत्यकलाके अनुसार उस भी नृत्य करना पडगा।' भस्मासुरन स्वाकृति द दा आर माहिनीक साथ भस्मासुरन भी नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। माहिना जो हाव-भाव प्रकट करती, जो मुद्राएँ धारण करती, ठीक उसी प्रकार भस्मासुर भी हाव-भाव-मुद्राएँ धारणकर नृत्य करता। सारे देवता—इन्द्र गन्धर्व किन्नर, अप्सराएँ तटस्थ होकर प्रभुका नृत्य-गायन देखनम तल्लीन हो गये।

मोहिनीन लीलाएँ करनी प्रारम्भ कर दीं। कभी अपने हाथ परापर, कभी कमरपर पेटपर, कधापर रख नृत्य करती। भस्मासुर भी उसी प्रकार बडी तन्मयतासे नृत्य करता। भस्मासुर पूर्णरूपसे नृत्याधीन है। उसे वरदानका भी स्मरण नहीं है। मोहिनीने यह देखा और नृत्यभाव-मुद्रामे अपना हाथ मस्तकपर रखा। उधर भस्मासुरने भी जैसे ही अपना हाथ अपने मस्तकपर रखा क्षणभरम ही वह वहीं भस्म हा गया।

भस्मासुरका अन्त होते ही वटवृक्षरूपधारी शिवशकर वहीं प्रकट हो गये आर मोहिनी-रूपधारी नारायणने वह रूप त्यागकर जैसे ही चतुर्भुज-रूप धारण किया उसी क्षण हरेश्वरने हरिको गले लगा लिया। उसी दिनसे लाला-नाटकी भगवान् 'हरिहरश्वर'के नामसे विख्यात हुए। उन्हाने जगत्को दिखाया—'हरि-हर'म कोइ भेद नहीं हे। वहीं अम्बिका तथा महालक्ष्मी प्रकट हुइ आर उन दोनाने उन्ह वन्दनकर पूजा-अर्चा ओर आरती की। सारा ब्रह्माण्ड आनन्दसे नाच उठा।

ब्रह्माजीन कहा—

> वदानुवर्तिना रुद्र दव नारायण तथा।
> एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥
> यो विष्णु स स्वय रुद्रो यो रुद्र स जनार्दन ।
> इति मत्वा यजेद् दव स याति परमा गतिम्॥
>
> (कूर्मपुराण पू० वि० अ० १४। ८८-८९)

'ह ईश्वरभक्तो। जो विष्णु हे, वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं व ही जनार्दन विष्णु ह। शकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छाड दा। दाना एक ही हैं। जा लाग साक्षात् विष्णुभगवान्का शिवशकरस पृथक् मानत हैं व मनुष्य नरकक भागीदार हात हें। जा रुद्रदव तथा नारायणको एकीभावस दखत हैं व मुक्तिपदक भागी हात हैं।'

ह भगवन्! श्रीविष्णुरुद्र आपकी लीला अपरम्पार है आपका जय हा! दासका प्रणाम आप स्वीकार करं।

आशुतोष शिवकी निग्रहानुग्रह-लीला

(डा० श्रीरमाकान्तजी झा)

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृतिमे भगवान् शिव देवाधिदेवरूपमे पूज्य हैं। वे महादेव हैं, क्योंकि उनके अन्त और बाह्य दोनों पक्ष शुद्ध-सत्त्व-प्रधान हैं। वे शंकर हैं—'शम्=कल्याण करोति इति शंकरः।' वे आशुतोष हैं, भक्तजनोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव अनायास ही आराधककी शुद्ध भावनाको जानकर उसे अभिलषित वर दे देते हैं। 'भावमिच्छन्ति देवता'—इस वचनके अनुसार भक्तके शुद्ध भावका आभास पाते ही बिना परीक्षा लिये ही वे प्रकट होकर उसकी मनःकामना पूरी करते हैं। इसीलिये वे ओढरदानी भी कहे जाते हैं। विष्णु आदि अन्य देवोंकी अपेक्षा शिव सुर-असुर, दानव-मानव सबके निर्विवाद आराध्य हैं। शिवके आशुतोषत्व, महादेवत्व और सर्वकल्याणकारकत्व ही उनकी सर्वप्रियताके हेतु हैं। ऐसे सर्वप्रिय, भक्तवत्सल, सर्वसुलभ शिवकी मङ्गलमयी मूर्ति सर्वथा नमस्य है।

समस्त विश्वको रुद्ररूप कहा गया है। शिवका अर्धनारीश्वर-रूप तो अत्यन्त विलक्षण है। उनका यह यामल विग्रह सृष्टितत्त्वके सम्पूर्ण आयामको समेटे है। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत्का रहस्य इस विग्रहमें अनुस्यूत है। स्त्री-पुंभावकी एकरूपताका यह प्रतीक है। परम शुभंकर शिव तथा शक्तिके अभिन्न युग्मरूपके द्योतक परम शिवकी निग्रह-अनुग्रह-लीलाका दिग्दर्शन प्रस्तुत निबन्धका प्रतिपाद्य विषय है।

'लीला' शब्दका अर्थ है—खेल, क्रीडा, विनोद, मनोरंजन, आनन्द। लीलाका एक अर्थ प्रातिविषयक विनोद—केलिक्रीडा भी होता है। प्रकृत प्रसंगमें लीलाका अर्थ हम आनन्द लेते हैं। भगवान् शिव आनन्दरूप हैं। वे स्वतः आनन्दानुभूतिके लिये तथा विश्वको आनन्दित करनेके लिये क्रीडा करना चाहते हैं, किंतु 'एकाकी न रमते', अकेले कैसे खेलें, किसके साथ खेलें?

अतः स्वाभिन्ना शिवाशक्तिको लीला-विग्रह देकर उसी आद्याशक्तिके साथ क्रीडा करते हैं। उसी अर्धनारीश्वर शिवाऽभिन्न शिवका यह समस्त प्रपञ्च खेल है। यह विश्व उसी शिव-शक्तिकी लीलामयी परिणति है। विश्व-कल्याण तथा लोकसंग्रहके लिये परम शिवकी निग्रह-अनुग्रहरूपा लीला होती है। परम शिवकी वह लीला निग्रहदृष्टिसे नियन्त्रणपरक है और अनुग्रह-दृष्टिसे मोक्षपरक। संसार-भावमें व्यवस्था एवं मर्यादारक्षणके लिये संयमन तथा प्राणियोंके परम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रसाद—कृपाकी अपेक्षा होती है। सृष्टिकर्ता शिव नियन्त्रण और प्रसाद दोनों भावोंसे अपनी संवित्-शक्तिके साथ निग्रह और अनुग्रह-लीला करते हैं।

लीलाका आध्यात्मिक पक्ष

काश्मीरी शैवोंकी आध्यात्मिक दृष्टिके अनुसार केवल परम शिव-उपनिषदोंका परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। वह सर्वशक्तिमान् है और उसमें उसकी शक्तिके रूपमें समस्त अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं। वह परम शिव अनन्त और पूर्ण चित् है। उस पारमेश्वरी चित्का स्वभाव आनन्द है। उस आनन्दसे प्रभावित वह चित्-शक्ति जब झूमने लगती है तो आनन्द लीलाके रूपको धारण करता है। उस लीलारूप स्वभावकी अभिव्यक्ति ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें होनेवाले सर्जन-संहार आदि सब-के-सब परम शिवकी शक्तियोंके बहिर्मुखी आभास हैं, जो प्रतिबिम्ब-न्यायसे आभासित होते रहते हैं। उन पारमेश्वरी शक्तियोंके इस अद्भुत आभासके होते रहनेपर भी परम शिवमें कोई विकार नहीं आता, जैसे दर्पणमें मुख प्रतिबिम्बित होते रहनेपर भी मुख और दर्पण विकारशून्य ही बने रहते हैं।

पूर्ण शुद्ध तथा असीम चिद्रूप परम शिवका स्वभाव आनन्द है। वह सदैव स्पन्दमान होता हुआ स्व-स्वभावसे ही क्रीडनशील होता है। अतः प्रतिबिम्बात्मक सर्जन-संहार आदिकी ऐसी लीलाएँ परम शिवके असीम चिदानन्दमें चलती रहती हैं। इन लीलाओंका इस प्रकार चलते रहना ही परमेश्वरकी परमेश्वरता या परमशिवकी परशिवता है। आत्मस्वरूप संसारको अपनेसे भिन्नरूपमें और अभेदको भी भेदरूपमें परिवर्तित करनेवाली माया भी उस परमेश्वरकी ही एक शक्ति है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में परमेश्वर शिवकी शक्तिको माया कहा गया है।

बन्धन और मोक्ष भी उसीकी लीलाएँ हैं। सब कुछ वही परम शिव है। शैव साधक विश्वकी प्रत्येक वस्तुको शिवरूपम अनुभव करते ह। परमेश्वर शिव ही स्वयको नटक समान बद्ध जीवाक रूपम प्रकट करता हुआ बन्धन-लीलाका स्वय अभिनय मात्र करता हे। वह योग, ज्ञान और भक्तिक समन्वित साधना-पथपर अग्रसर होता हुआ मुक्ति-लीलाका अनुभव करता है। बन्धनका आभास परम शिवकी निग्रह-लीला है और मोक्षकी प्राप्ति उसकी अनुग्रह-लीलाका परिणाम है।

पूर्ण चेतन परम शिव तथा परा शिवताकी लीलाका जो अभिनय सतत चलता रहता है, उसके भीतर ही विज्ञजन उसका दर्शन और विमर्शन दो रूपामे किया करते हैं। उसक अनुसार वे साधक एक मात्र पूर्ण और असीम तथा विश्वातीत चिदानन्दघन-रूपम उसका साक्षात्कार करते हे, उस रूपम उसे शिव कहत हैं, साथ ही वे समग्र विश्वके रूपम तथा इम विश्वमयी लीलाके रूपम भी उसीका साक्षात्कार करते हैं इस रूपम उस शक्ति कहत हैं। इस प्रकार एक ही परम शिव एक आरसे शिवतत्त्व है और दूसरी आरसे शक्तितत्त्व है। परमेश्वर शिवकी यही स्वाभाविक पराशक्ति प्रयोजनवश दस महाविद्याआक रूपम प्रकट हाकर भक्ताद्वारा आराधित—पूजित होती है।

परमशिवकी वह अनादि-स्वातन्त्र्य शक्ति दो रूपाम अभिव्यक्त हाता है—जड-शक्ति और सवित्-शक्ति। परम शिव जडशक्तिसे बन्धनकी लीला और सवित्-शक्तिसे माक्षकी लीला करत हैं। शिवकी यह स्वातन्त्र्य-शक्तिकी लीला ही भवबन्धन और भवमुक्तिका हेतु है—

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥
समारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५७ ५८)

शक्तिविशिष्ट शिवसे ही समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि होती है अत प्रपञ्चकी वस्तु यत्किञ्चित् शक्ति-विशिष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। यथा पृथिवीमें धारण जलमें आप्यायन अग्निमें ज्वलन वायुमें स्पन्दन आकाशमें व्यापन आदि शक्तियाँ निहित रहती हैं। ये सभी शक्तियाँ शिवकी स्वातन्त्र्य-शक्तिकी मूर्तियाँ हैं, जा यथासमय यथास्थान अपनी लीलाएँ दिखाती हैं।

शिव और शक्तिका कभी वियोग नही होता। शिव इसी अवियुक्त शक्तिसे विश्वकी सृष्टि करता है। यह सृष्टि शिवशक्तिकी यामल-लीला ही है। शक्तितत्त्वके उपासक भगवती शिव-शक्तिकी सकल शब्दमयी मूर्तिकी उपासनामे ही अपने जीवनके पत्येक क्षणको सार्थक मानते हैं—

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके।
सकलशब्दमयी किल ते तनु।

परम शिव अपने प्रसादसे प्राणियाके कल्याणके लिय नाना लीलाएँ करत हैं। उनकी आदिशक्ति लीलामयी है। उसी लीलात्मिका शक्तिके सहयोगसे परम शिव विश्व-रगमचपर नर्तनलीला करते हैं, अतएव वे 'नटराज' भी कहे जाते हैं।

व्यावहारिक पक्ष

परम शिवकी लीलाक आध्यात्मिक पक्षकी भाँति ही व्यावहारिक पक्ष भी स्पृहणीय है। यजुर्वेद पुराणो और काव्याम वर्णित शिवचरितके आधारपर शिवकी लीलाके व्यावहारिक पक्षके अन्तगत उनका दाम्पत्य-जीवन भगवत्प्रेम सती-सशय, दक्षयज्ञ-विध्वस मदन-दहन पार्वती-परीक्षा विवाह-लीला गरलपान और त्रिपुरसहार प्रमुख हैं। इन प्रसगास सम्बद्ध लीलाआम दाम्पत्य-प्रेम भगवत्प्रेम पार्वती-परीक्षा और विवाह-कौतुक तो परम शिवकी अनुग्रह-लीला है और सती-सशय दक्षयज्ञ-ध्वस मदन-दाह गरलपान और त्रिपुरसहार निग्रह-लीला है। शिवचरितसे सम्बन्धित व्यावहारिक लीलाका उद्देश्य लोकसग्रह है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनका क्या कहना! दक्षसुता सती जो शिवकी आद्याशक्ति हैं वे अवतरित होकर पिता दक्षके विरोध करनेपर भी शिवको पतिके रूपमे वरण करती हैं। शिवके प्रति सतीका नैसर्गिक निर्व्याज प्रेम दाम्पत्य-जीवनकी मधुरिमामे चार चाँद लगा देता है। परतु शिव और शक्तिको लीला अभीष्ट है। अत दोनो मिलकर ही लीला करते हैं। यह लीला दोनो विभूतियोकी मिला-भगत है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनके पूर्वचरितमे सती और उत्तर-चरितम पार्वतीकी अह भूमिका है। सतीके साथ दाम्पत्य-प्रेममे शिवकी निग्रह-लीलाकी प्रमुखता है और पार्वतीके साथ अनुग्रह-लीला की। शिवकी पत्नीक रूपमे जहाँ सतीने अपने शरीरकी आहुति देकर परमाराध्य शिवजीके प्रति अपनी अनन्य पतिपरायणताका उदाहरण प्रस्तुत किया है, वहीं पार्वतीने अपनी फूल-सी सुकुमार कायाको तपस्यामें लगाकर शिवके प्रति अपनी प्रेमा भक्तिका परिचय दिया है। सती और पार्वती दोनाने ही परम शिवकी परमाशक्तिके रूपम उनकी उभयविध लीलाआको लोकमङ्गलकारी बनाया है। ससार-भावके व्यावहारिक पक्षम सती-प्रसगकी लीला विश्व-मानवको यह सदेश दती है कि दाम्पत्य-जीवनमे स्वजन—पति-पत्नीके बीच सदेह अविश्वास झूठ और कपटका कोई स्थान नहीं है। अतएव दाम्पत्य-प्रमम उपर्युक्त सशय आदि नहीं करने चाहिये। आत्मीय जनमे परस्पर स्नेह, विश्वास और निष्कण्टक भावम ही मङ्गल है। पार्वतीके साथ शिवजीका दाम्पत्य-प्रेम तो सफलतम गार्हस्थ्य जीवनका प्रशस्त उदाहरण हे। इसीलिये प्रत्येक विवाहादि माङ्गलिक कार्योके आरम्भमे गौरी-गणेशकी पूजा की जाती है। भगवान् शिवकी दक्षयज्ञ-ध्वस-लीला भी सतीस जुडी है। वे अपने ही पिताद्वारा अपने आराध्य पति शिवजीका अपमान सहन न कर योगाग्निमें अपना शरीर उत्सर्ग कर देती हैं।

दक्ष-प्रसगम शिवजीकी निग्रह-लीला दक्षको प्राण-दण्ड देकर समाप्त हाती है। परतु वहींपर देवताओके हितका ध्यानमे रखकर शिवजीने दक्षको पुनर्जीवन और वरदान देकर अपनी अनुग्रह-लीला भी दिखायी है।

परम शिवकी मदन-दहन-लीला उनके निग्रह और पर्यवसानमें अनुग्रह-लीलाका उदाहरण हे। मदन-दहनका यह प्रसग परम शिवकी निग्रह-लीलाका निदर्शन है। परतु इस प्रसगकी परिणति तो शिवजीकी अनुग्रह-लीलामे हुई है और वह अनुग्रह-लीला है कामदेवकी पत्नी रतिपर कृपा। आशुतोष शिवकी यह लीला अद्भुत है। कामक देहको जलाकर भी—निग्रह-लीला करके भी उसके अस्तित्वकी अनगरूपम रक्षा तथा कृष्णपुत्र प्रद्युम्नके रूपम अवतरण शैवी अनुग्रह-लीला ही तो है।

पार्वती-प्रेम-परीक्षा और उनके साथ विवाहोल्लासका सदर्भ तो प्रकारान्तरस सतीके प्रति शिवजीकी अनुग्रह-लीलाका प्रतीक हे। पार्वतीके साथ सफल और सुखी दाम्पत्य-जीवनका प्रसग सतीके प्रति पुरातन प्रीतिका निर्वाह है। वस्तुत सता ही तो पार्वतीके रूपम पर्वतराज हिमालयके घर अवतरित हुईं, अत सती और पार्वती दानो ही शिवजीकी परमा शक्ति हैं। ऋग्वेद (१०। १२५। ६)-मे देवीने स्वय कहा है—

अह रुद्राय धनुरा तनोमि।

गरलपानका प्रसग शिवजीकी अनुग्रह-लीलाकी चरम परिणति है। देवासुरके सम्मिलित समुद्रमन्थनसे जो चौदह रत्न निकले उनमे एक हलाहल भी था। अच्छे-अच्छे रत्नाको ता दवताआने आपसम बॉट लिया परतु विपको कौन ल? अगर कोई विप न ले तो उसके कुप्रभावसे विश्व ही विपद्‌ग्रस्त हो जायगा। विप फैलकर ससारको नष्ट कर देगा। देवताआमे सबसे वृद्ध और समर्थ शिव ही थे, इसीलिये वे देवताओके मुखिया भी थे। महादेवने विश्व-कल्याणके लिये उस हलाहलको पी लिया किंतु उसे कण्ठगत ही रखा। शिव तो परम भक्त थे। उन्होने साचा कि गरल यदि उदरतक पहुँचगा तो हृदयम विराजमान परमात्माको कष्ट होगा अत उन्हाने गरलको कण्ठसे नीचे जान ही नहीं दिया। तभीसे उनका एक नाम 'नीलकण्ठ' भी हो गया। यही है शिवजीकी विश्वमङ्गल-भावना और भगवद्भक्तिकी पराकाष्ठा। शिवजीक गरलपानसे व्यावहारिक जीवनम यह तथ्य सामने आता है कि परिवारके मुखियाको परिवारक कलह अशान्ति और स्वार्थ-भावनाके जहरको पीना पडता है। इतना उदार और समर्थ मुखिया ही परिवार चला सकता है।

य उपर्युक्त प्रसग शिवजीका निग्रहानुग्रह-लीलाक वाधक तत्त्व हैं। इस शैवा लीलाका नमन है।

विश्व-नाटकका चतुर खिलाड़ी—शिव

(राष्ट्रपति सम्मानित पण्डित श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल)

काश्मीर शैव-दर्शनके अनुसार अनुत्तर प्रकाशस्वरूप परमशिवसे अभिन्न महाशक्तिके विकासका उल्लेख करते हुए श्रीआद्यनाथ 'अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका' के आरम्भमे भगवान् शिवके लीला-लावण्यकी क्रीडाका साकेतिक विवरण देत हुए कहते हैं—

अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघन शिव ।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया॥
शिवादिक्षितिपर्यन्त विश्व वपुरुदञ्चयन्।
पञ्चकृत्यमहानाट्यरसिक क्रीडति प्रभु ॥

(युगलकम्)

अर्थात् केवल प्रकाश ही स्वरूप हे जिसका ऐसा वह महान् तेज परप्रमाता विश्वोत्तीर्ण शिव[1] स्वाभाविक पूर्णाहन्तारूप अपनी अभिन्न विमर्शशक्तिद्वारा सदाशिवके रूपमे प्रकट होकर ईश्वर-रूपसे प्रसरोन्मुख होता है।

इस प्रकार पञ्चकृत्यरूप[2] महानाटकका रसिक प्रभु[3] शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वी-तत्त्वतक[4] विश्वमयताको ग्रहणकर स्वतन्त्र लीला अर्थात् लावण्यमय क्रीडा करता है।

भगवान् शिवकी यह विश्व-लीला अलौकिक है। केवल चिच्चमत्कारका चर्वणानन्द साधारण जनके लिये सहज बात नहीं हे। शास्त्राने उस लीलामय शिवकी विचित्र और लावण्यमयी क्रीडाको सत्त्वगुण-सम्पन्न साधकके लिये समझानेका प्रयास किया है।

जगत् त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्रिवर्गात्मक विकास है। य तीन वर्ग हैं—जाग्रत्-जगत्, स्वप्न-जगत् और सुषुप्ति-जगत्। यही त्रिवर्गात्मक विश्व भगवान् शिवकी नृत्य-क्रीडाका स्थल बना ह। इस नाटककी व्यवस्था भी कितनी विचित्र है, देखिये—

जगत्त्रय शाम्भवनर्तनस्थली
नटाधिराजोऽत्र पर शिव स्वयम्।
सभानटो रङ्ग इति व्यवस्थिति
स्वरूपत शक्तियुतात् प्रपञ्चित ॥

(सोमस्तवराज ४०)

अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप यह जगत् भगवान् शिवका नर्तन-स्थल है। स्वय परम शिव इस नाटकके प्रधान नट हे। दर्शकाकी सभा, नट तथा नाटक करनेके लिये रगमच—यह सब वास्तवमे शक्तिसम्पन्न शिवसे ही प्रपञ्चित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विश्व-सर्जनकी इस अलौकिक लीलाम कर्ता-कर्म-क्रिया द्रष्टा-दृश्य-दर्शन भोक्ता-भोग्य-भोग आदि सब प्रकारकी त्रिपुटी शिव-शक्तिकी ही विकास-मुद्रा है। इसम भगवान्के सृष्टि-क्रम तथा स्थिति-क्रम—इन दोनाका अन्तर्भाव है। इसी प्रकार विसर्ग-लीला भी शक्तियुक्त शिवकी ही सकोच-मुद्रा है।

भगवान् शिवस अभिन्न भगवती शक्तिकी सकोच-मुद्रा तथा विकास-मुद्रा-रूप लीलाकी स्तुति भक्ताने इस प्रकार की है—

सकोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणना सुकरीकरोषि॥

(धर्माचार्यविरचिता पञ्चस्तवी ४। १२)

१-काश्मीर शैव-दर्शनमे जो विश्वोत्तीर्ण परमशिव हैं वही वेदान्तदर्शनमे कारण-ब्रह्म परब्रह्म हैं।

२-सृष्टि स्थिति सहार निग्रह और अनुग्रह—ये शिवके पञ्चकृत्य हैं।

३-विश्वमय शिव। कार्यब्रह्म। परमात्मा।

४-शैव तथा शाक्त-प्रक्रियाके अनुसार जगत्का वर्णन छत्तीस तत्त्वोमे होता है। वे हैं—(१) शिव (२) शक्ति (३) सदाशिव (४) ईश्वर (५) शुद्धविद्या (६) माया (७) कला (८) विद्या (९) राग (१०) काल (११) नियति (१२) पुरुष (१३) प्रकृति (१४) बुद्धि (१५) अहकार, (१६) मन (१७—२१) श्रोत्रादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय (२२—२६) वागादि पञ्चकर्मेन्द्रिय (२७—३१) शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ और (३२—३६) पृथ्वीपर्यन्त पञ्चमहाभूत (श्रीक्षेमराजरचित पराप्रवेशिका पृष्ठ ६)। उपर्युक्त गणनामें साख्यदर्शनके चौबीस तत्त्वाका भी अन्तर्भूत कर लिया गया है।

अर्थात् हे गिरिजे! जब आप उस भूमा-अवस्था (विश्वोत्तीर्ण-भाव)-मे प्रवेशकर स्वरूप-सकोचकी इच्छा करती हैं, तब आप शब्द-ससार तथा विकल्प-ससारसे परे अर्थात् वाणी और मनसे अगोचर भासती हैं और जब आप विश्वरूपतामे प्रसार करती हैं अर्थात् अपने स्वरूपके विकासकी क्रीडा रचाती हैं, तब आप स्वय ही जगत्‌की नाना-रूपता—विश्वमय भावमे प्रकट होती हैं।

भगवत् शक्तिकी इस विकासमय अनुपम लीलासे भक्तजनोका उत्तम अभिप्राय सिद्ध होता है। भगवती शक्तिके नानारूपामे प्रकट होनेकी लीलामे भक्तजन भगवन्नाम-कीर्तन-जप और ध्यानके सरल उपाय पाते हैं। इससे वे साधना-पथपर अडिग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपको पहचान लेते हैं। इससे जीव-ईश्वरका अद्वैत-स्वरूप सिद्ध होता है। अत भगवान् शिवके विश्वमय होनेकी यह लीला भक्तजनके लिये बडा वरदान है। यतिवर भालबाबाजीने ठीक ही कहा है—'**विश्वेशका यह विश्व होता भक्तपर उपकार है।**'

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(मानसरत्न सत श्रीसीतारामदासजी)

'राम-राज्य'-जैसी आदर्श शासन-व्यवस्थाके अधिष्ठाता मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी, मानव-जीवनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेवाली आदर्श लीलाओका स्मरणकर मन पुलकित हो उठता है। वे आदर्श लीलाएँ चिरप्रासगिक हैं और हमारे लिये विशेष महत्त्व रखती हैं, क्योकि उनके साथ ही हमारा धर्म, सस्कृति, साहित्य और लोक-व्यवहार भी जुडा हुआ है। उनमे भारतीय सस्कृतिके अनुरूप ही पारिवारिक और सामाजिक जीवनके उच्चतम आदर्श पाये जाते हैं। आज भी हम उनसे प्रेरणा तथा शक्ति लेकर अपने अशान्त एव अस्थिर जीवनमे '**सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्**'की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकते हैं।

श्रीरामकी मानवताके पावन पुनीत एव उज्ज्वल धरातलपर प्रतिष्ठित आदर्श लीलाओसे प्राप्त भावनाएँ, चिन्तन-धाराएँ और विचार एक ऐसे स्तरपर पहुँचे हैं, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं तथा सारी दुनियाको जाग्रत् करनेमे पूर्ण समर्थ हैं। इन दिव्यातिदिव्य लीलाओसे सारा मानव-समाज अपने दिन-प्रति-दिनके जीवनमे मार्ग-दर्शन प्राप्तकर कृतकृत्य हो सकता है।

जीवनके उच्च मूल्योके लिये हाथमे आती हुई सत्ताका तृणवत् त्याग करनेवाले पुरुषपुङ्गव श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ मानवीय सम्बन्धोको मर्यादाका शिखर प्रदान करनेवाली एव मानव-जीवनकी मूल प्रेरणा-स्रोत हैं। वर्तमान समाजकी अनेक अवाञ्छित प्रवृत्तियोके निराकरणकी आवश्यकताओके सदर्भमे उनकी प्रासगिकता और भी बढ जाती है। आज जब हमारे मन अपने आधार और दिग्ज्ञान खो बैठे हैं तब हमे विश्वको मार्गदर्शन करानेकी क्षमता रखनेवाली भारतीय सस्कृतिके मूर्तिमान् प्रतीक श्रीरामकी त्याग उदारता परोपकार, परदु खकातरता एव उच्च सदाशयतासे आपूरित आदर्श लीलाओसे अपने जीवनके लिये प्रेरणा लेनी चाहिये। वे लीलाएँ सर्वथा दिग्भ्रमित जन-मनको दिशा-बोध कराती हैं और कर्तव्य-पालनका सदेश देती हैं।

अपने आदर्शोंसे मानवताको प्रेरित तथा अनुप्राणित करनेवाले मानवीय मूल्योंके प्रतिष्ठापक श्रीरामकी, जनप्रेम तथा सामाजिक समता लोकमतनिष्ठा अन्याय-प्रतिकार अत्याचार-दमन, ऊँच-नीच-भेद-भावरहित वन्य-जाति-प्रेमसे ओत-प्रोत आदर्श लीलाएँ हमारा भौतिक मानसिक और आध्यात्मिक हर प्रकारसे सम्मार्जन प्रसादन प्रोन्नयन करनेवाली हैं। उनके आचरणसे ही मानवताका मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

लोकधर्मकी मर्यादाओको बाँधकर उनका पालन करने और करानेवाले लोकादर्श श्रीरामकी शौर्य आदिसे समुज्ज्वल एव मण्डित आदर्श लीलाएँ उत्तम चरित्रके लिये वाञ्छित सभी सद्‌गुणोसे परिपूर्ण हैं। वे मानवके चरित्रको ऊँचा उठानेमें पारिवारिक आदर्शोंकी स्थापना करनेमे [illegible] लिये मानविक विधानकी सृष्टि करनेमे [illegible]

चरित्रके मालिन्यको दूर करके उसे आलोकित करनेम पूर्णत सक्षम हैं। वे भारतवर्षकी यावत् सास्कृतिक धाराओको मिलानेवाली, समस्त जनता, समस्त वर्णों और वर्गोंके सम्पूर्ण जीवन-यात्राके लिये प्रेरणाप्रद तथा आदर्श उपस्थित करनेवाली हैं। अत मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह अपना जीवन मानवता और मर्यादाके पथका अनुगमन करनेवाले समस्त मानवीय गुणाके आदर्श श्रीराम-जैसा बनाकर स्वय सुख-शान्ति प्राप्त करे तथा परिवार समाज और राष्ट्रको समृद्धि विकास एव उन्नतिके मार्गपर ल चलनेमे सक्षम बने।

उनके शास्त्रानुकूल आचरणाको देश-काल-परिस्थितिके अनुसार मर्यादित ढगसे सम्पादित करनेवाली आदर्श लीलाओसे भारतके ही नहीं अपितु विदेशाके भी मैक्समूलर, कामिल बुल्के प्रो० वरानिकोव, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, नेशनल, ओमन, रेम्से मेकडानल्ड आदि विद्वान् आकृष्ट हुए हैं। उनसे मानवता गौरवान्वित हुई हे। इडानेशिया-जेसे मुस्लिम-देश और थाईलड-जैसे बोद्ध देशमे श्रीराम, रामायण और रामलीला—ये उनकी अपनी श्रेष्ठतम सास्कृतिक धरोहर हैं। फिर भारतम—अपने देशम जाति-पथ-निरपक्ष श्रीराम सर्वमान्य आदर्श क्यो नहीं बन सकते? क्या भारतमे उनको राष्ट्रिय एकताका प्रतीक माननक लिय हम इडानशियाक उदाहरणको आर दखना पडेगा?

स्मरण रहे। सम्पूर्ण विश्वम भारत जिस सस्कृतिक कारण पूजनीय रहा है उस सस्कृतिका स्वरूप राम-सस्कृतिस ही निर्मित हुआ है। यह सस्कृति सुरक्षित रहगी तो भारत राष्ट्र भी सुरक्षित रहेगा। यदि यह सस्कृति न वचा तो भारत राष्ट्र भी नहीं बचगा और यह सस्कृति तभी बचेगी जब यह दश आर्यावर्तके प्रतिनिधि-पुरुष श्रीरामसे निर्विवाद-रूपसे जुडगा। यहाँकी राष्ट्रियता सस्कृति और राष्ट्रके प्रतीक श्रीराम राष्ट्रिय अखण्डताक प्रमाण-पत्र ह। यदि यह देश उनकी सस्कृति और उनकी प्रेरणाआसे जुडा रहेगा तो उसकी अखण्डता अक्षुण्ण रहेगी और सास्कृतिक एकता भी अभग रहेगी।

अत प्राणिमात्रको चाहिय कि वह लीलावतारी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको आदर्श लीलाआसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए उसे अपने जीवनम कार्यान्वित करे तो उसके स्वयके देशके, विश्वक सनातन भारतीय सस्कृतिके और प्राणिमात्रक लोकिक-पारलौकिक साधनाकी अभिवृद्धि हागी। इसीमे आदर्श लीलाआकी पूर्णता है।

हनुमान्‌के माध्यमसे सेवकोंके गर्वका दमन

(श्रीशिवनाथजी दुवे एम्० कॉम्० एम्० ए० साहित्यरत्न धर्मरत्न)

वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसव द्वापरम भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण एव भगवान् श्रीराम—दोना आन्तरिक दृष्टिसे एक ही हैं। भगवान् अपने प्रिय भक्त एव सेवक श्रीहनुमान्‌के बिना रह ही नहीं सकते।

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि अपने कहलानेवाल भक्तो एव सेवकाम जा अभिमान आर दुर्गुण प्रवश कर गय हैं उन्हें अवश्य दूर करना चाहिये अत प्रिय भक्त हनुमान्‌को अपनी लालाके माध्यममे अपने पास बुलानेका निश्चय किया। भगवान् श्रीकृष्णके निश्चय करनेमात्रसे ही प्रिय भक्त हनुमान् द्वारकाक सनिकट ही एक उपवनमें विराजमान हो गये और भगवन्नामका सकीतन करत हुए वृक्षाकी डालियाँ तोडन पेड हिलाने और फलाका खान लग।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामाके लिय पारिजात-हरण किया था अत सत्यभामाजीके मनमे यह गर्व रहता था कि भगवान्‌का सर्वाधिक स्नह कवल मुझपर ही है क्योंकि मे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हूँ। अपने सौन्दर्यक गर्वम उन्हाने एक बार भगवान्‌से कह भी दिया कि क्या जानकीजी मुझसे अधिक सुन्दर थीं जो उनके लिय आप घने वनामे भटकते-फिरत और विलाप करते रहे। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मोन रह।

सत्यभामाकी तरह चक्र भी यह गर्व किया करत थे कि मैंने ही देवराज इन्द्रक वज्रको पराजित किया था और गरुड भा इसी प्रकार मनम यह साचा करत थ कि मेरे ही सहयोगस भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपर विजय प्राप्त कर सक थ। श्रीकृष्णन विचार किया कि य सब अपने हाकर गर्व

कर—यह मुझे सह्य नहीं है। इन सवकाके गर्वका दमन किया जाना नितान्त अपक्षित है।

भगवान् श्रीकृष्णने गरुडजीको आदेश दिया कि 'गरुड। द्वारकाक उपवनम एक बदर है, उसे पकडकर मेरे पास शीघ्र ल आओ। उस बदरको पकडकर लानेका साहस यदि तुमम हो ता अकले ही जाओ, नहीं तो अपने साथ सैनिकोका भी लेते जाओ।' गरुड अपने मनमे यह सोचने लगे कि 'भगवान् मुझे एक साधारण बदर पकडकर लानके लिये भेज रहे हैं दूसरी ओर यह भी कह रहे हैं कि यदि उस बदरको अकेले न पकड सका तो साथमे सैनिकोको भी लेत जाओ। यह मेरे लिये बडी ही लज्जाकी बात है।' गरुडने उस उपवनम अकेले ही जाकर दखा कि श्रीहनुमान्‌जी उनकी ओर पीठ करके फल खाते जा रहे हैं और राम-नामका कीर्तन भी करते जा रहे है। पहले तो गरुडजीने हनुमान्‌जीको डरा-धमकाकर ल जानका प्रयास किया, परतु जब हनुमान्‌जीपर इसका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पडा, तब गरुडने उनपर आक्रमण कर दिया। पहले तो वे छोटे-छोटे पक्षियाकी तरह उनक साथ खेलते और मुस्कराते रहे, परतु गरुड जब न माने तब हनुमान्‌जीन उन्हे अपनी पूँछमे लपेटकर जरा-सा कस दिया। गरुड छटपटाने लगे, फिर उन्होने अपने आनका कारण बताते हुए कहा कि भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैं यहाँ आपको बुलाने आया हूँ। तब हनुमान्‌जीने गरुडको छोड दिया और कहा—'यद्यपि राम एव कृष्णमे कोई भेद नहीं है दोना एक ही है, फिर भी मैं तो सीतानाथ भगवान् श्रीरामका ही पक्षधर होनेके कारण श्रीकृष्णके पास जाना उचित नहीं समझता हूँ।' हनुमान्‌ने यह उत्तर देकर भगवान्‌की कल्याणकारी लीलामें सहयोग प्रदान किया।

अभी गरुडका गर्व समाप्त नहीं हुआ था, वे सोच रहे थे कि यदि मैं पकड न लिया गया होता तो हनुमान्‌को बलपूर्वक ले जा सकता था। गरुडन दूसरी बार हनुमान्‌पर आक्रमण किया। भगवान् श्रीकृष्णका दूत जानकर हनुमान्‌ने उनपर जोरसे प्रहार नहीं किया बल्कि हलके हाथसे पकडकर उनको समुद्रकी ओर फक दिया। समुद्रमे गिरनेपर गरुड बहुत दरतक कष्टसे विलखते-छटपटात रह। कोई और उपाय न देखकर अब वे भगवान् श्रीकृष्णका हृदयमे ध्यान करने लगे। कुछ ही क्षणमे उन्हे द्वारकाका प्रकाश दीख पडा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णक पास गये। श्रीकृष्णने उनकी सभी बाते सुनीं और मुसकराये। अभीतक गरुडके मनमें तीव्र गतिसे उडनेका गर्व शेष था। गरुडजी सदैव यह सोचा करते थे कि बलम हनुमान् भले ही मुझसे अधिक हैं, परतु उडनेमे मेरी तुलना पवन भी नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'गरुड। इस बार फिर जाकर तुम हनुमान्‌से कहो कि भगवान् श्रीरामने तुम्हे बुलाया है। अतिशीघ्र चलो। हनुमान्‌को अपने साथ ही ले आना। वे तुम्हारा आदर करगे और तुम्हे कुछ भी नहीं कहेगे।' यद्यपि गरुड जानेमे मन-ही-मन भयभीत हो रहे थे फिर भी अपनी तीव्र गतिसे उडनेकी शक्तिका प्रदर्शन करनेके लिये वे चले गये।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामासे कहा—'सीताजीका रूप धारण करके आओ, हनुमान्‌जी आ रहे है।' चक्रसे कहा—'सावधानीपूर्वक पहरा दो कोई भी द्वारकामे प्रवेश न करने पाये।' सत्यभामाजी पूर्ण शृगारके साथ अपने सौन्दर्यके गर्वमे मत्त होकर भगवान् श्रीकृष्णके वाम-भागमें आकर बैठ गयीं तथा सुदर्शनचक्र पूर्ण सतर्कताके साथ द्वारकाके फाटकपर पहरा देने लगे। अब भगवान् श्रीकृष्ण स्वय धनुष-बाणधारी रामभद्र बनकर बैठ गये।

गरुडकी हनुमान्‌के पास जानेकी हिम्मत नहीं पडी। उन्हाने साहस बटोरकर दूरसे ही कहा— 'भगवान् श्रीराम आपको बहुत ही जल्द बुला रहे हैं। आप मेरे ही साथ चल सक तो चले, अन्यथा मरे कधेपर बैठ जायँ, मैं लेता चलूँ, क्योकि आपको चलनेमे देर हो सकती है।'

हनुमान्‌ने अत्यन्त प्रसन्नतासे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो भगवान् श्रीरामने मुझे बुलाया है। तुम चला मैं आता हूँ।' गरुडने सोचा कि ये क्या कह रहे हैं। मुझसे पीछ चलकर ये देरमे ही तो पहुँचेंगे। परतु गरुड भयभीत थे हनुमान्‌से फिर कुछ भी कहनेका उन्हे साहस नहीं हुआ। अत वे चुप्पी साधे वहाँसे चल पडे। जाते हुए मार्गमे साच रहे थे कि भगवान्‌के पास चलकर अपनी तीव्र गतिसे उडनेका प्रदर्शन अवश्य करूँगा।

हनुमान्‌जी गरुडसे पूर्व ही द्वारकामें पहुँच चुके थे। हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें यह द्वारका नहीं थी, बल्कि अयोध्या थी। फाटकपर सुदर्शनचक्रने जोरदार शब्दोंमें हनुमान्‌से कहा—'तुम्हें प्रवेश नहीं करने दूँगा।' हनुमान्‌जीने कहा—'तुम भगवान्‌के दर्शनमें अवरोध पैदा कर रहे हो?' इतना कहकर हनुमान्‌ने चक्रको पकड़कर अपने मुँहमें रख लिया। भगवान्‌के महलमें जाकर हनुमान्‌ने देखा कि सिंहासनपर भगवान् श्रीराम विराजमान हैं, परंतु उन्हें माता सीताके दर्शन नहीं हो सके। हनुमान्‌जीने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके पश्चात् कहा—'महाराज! आज माता सीताजी कहाँ हैं? उनके स्थानपर यह कौन बैठी है? आपने किस दासीको इतना सम्मान दे दिया है?' सत्यभामाजी लज्जित-सी हो गयीं। उनके सौन्दर्यका गर्व नष्ट हो गया। भगवान्‌ने कहा—'हनुमान्! तुम्हें किसीने यहाँ आनेसे रोका नहीं? तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे?' हनुमान्‌जीने अपने मुँहमेंसे चक्रको निकालकर भगवान्‌के समक्ष रख दिया। चक्र लज्जित हो गया और अब उसका गर्व नष्ट हो चुका था। इसके बाद जब वेगपूर्वक दौड़ते हुए गरुड आये, तब उन्होंने देखा कि पवनकुमार तो पहलेसे ही यहाँ उपस्थित हैं। अब गरुडका एकमात्र अवशिष्ट तीव्र गतिसे उड़नेका गर्व भी समाप्त हो गया। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीके माध्यमसे भगवान्‌ने अपने तीनों सेवकोंके गर्वको नष्ट किया। भगवान्‌के प्रत्येक कार्यमें कोई-न-कोई कल्याणकारी लीला छिपी रहती है।

श्रीहनुमान्‌जीमें अभिमानका लेशमात्र भी अंश नहीं है। हनुमान्‌जीका जीवन अभिमानसे सर्वथा मुक्त रहा है। यही कारण है कि भगवान्‌ने अपने भक्तों एवं सेवकोंके गर्वको नष्ट करनेका कार्य हनुमान्-जैसे निरभिमान भक्तको निमित्त बनाकर किया और ऐसे ही अन्य अनेक भक्तोंके माध्यमसे लीला-लीलामें ही अपने शरणागत भक्तों, सेवकों एवं अभिमानी सहचरोंका गर्व भंगकर उनकी मुक्तिका मार्ग प्रशस्त करते हैं—परमार्थ-सत्ताके यथार्थ शक्तिका ज्ञान प्रदानकर उन्हें निर्मल बनाते हैं।

भगवान् विष्णुकी कल्याणकारी लीला

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

भगवान् श्रीविष्णुकी महिमा अपरम्पार है। वे अपने भक्तोंकी रक्षा, सहायता तथा मोक्षके लिये समय-समयपर विभिन्न लीलाएँ किया करते हैं। इन लीलाओंसे जहाँ भक्तोंका कल्याण होता है, वहीं जगत्‌को भी भौतिक तापोंसे मुक्ति मिलती है। जब कभी उनका कोई परम भक्त सिद्ध योगी और तपस्वी होते हुए भी सांसारिक प्रभावके कारण अपने भक्तिमार्गसे भटक जाता है, उस समय भगवान् संसारके समस्त कष्टोंको स्वयं सहन करके भी उसको मोह-मायाके जालसे मुक्त कर देते हैं। आइये, भगवान् विष्णुकी ऐसी ही एक दिव्य और निराली लीलाका दर्शन करें—

एक समयकी बात है, ऋषिवर नारद हिमालयपर भ्रमण कर रहे थे। वहाँसे कुछ ही दूरीपर उन्हें एक रमणीक स्थलपर परम पवित्र आश्रम दिखायी पड़ा। उसके समीप एक गुफा भी थी। भगवती भागीरथीकी कल-कल करती जलधारा, पर्वतोंके बीच बहते झरनोंका सुमधुर संगीत, विशाल और घने वनोंसे आच्छादित तथा बर्फमें ढकी ऊँची-ऊँची पर्वत-मालाओंके सौन्दर्यने मुनिका मन मोह लिया। नारदजीने विचार किया कि भगवान्‌के भजनके लिये इससे उपयुक्त स्थान और कहाँ मिलेगा? इसी उद्देश्यसे नारदजीने गुफामें प्रवेश किया और एक पवित्र स्थान देखकर वहीं भजनाविष्ट हो गये। निर्मल-मन और प्रभु-चरणोंमें दृढ़ अनुरागके कारण ऋषिकी समाधि लग गयी। उधर देवराज इन्द्रको जब पता चला कि नारदजी हिमालयकी कन्दरामें घोर तपस्या कर रहे हैं तो अमरावतीका राज्य जानेके भयसे वे विचलित हो गये। शंकालु-स्वभावके इन्द्रने ऋषिकी तपस्याको यही मूल कारण समझा और तुरंत ही कामदेवको ऋषिके तपको भंग करनेका आदेश दे दिया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कामदेव उसी कन्दरामें पहुँच

गया, जहाँ ऋषिवर नारद भजनके आनन्दमें निमग्न थे। सत तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड (१२६।१—४)-म लिखते हैं—

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥

इस प्रकार कामदेवने अपनी समस्त उद्दीपक शक्तिया और मदोन्मादक कलाओके माध्यमसे ऋषिके तपको भग करनेका असफल प्रयास किया, परतु नारदजी पूर्ववत् निश्चल अपने भजनमे लीन रहे। अन्तत कामदेवकी हार हुई। अपने इस कुकृत्यसे लज्जित और कुपित कामदेवने ऋषिके चरणोम पडकर क्षमा-याचना की। उसके स्पर्शसे जब मुनिका ध्यान टूटा, तब उन्होंने वस्तुस्थितिको समझकर सत-स्वभावक कारण उसका क्षमा कर दिया।

कामदेव तो चला गया परतु इसपर विजयका मद अहकारके रूपमे मुनिपर सवार हो गया। इस कन्दर्प-दलनके अभिमानसे प्रभावित होकर महर्षि नारद तत्क्षण ही भजन छोडकर शीघ्र गुफासे बाहर आ गये और कैलास पवतपर पहुँचकर भगवान् शकरका अपनी विजयका वर्णन सुनान लगे। मुनिके विजयोन्मादका अहकार स्पष्ट झलक रहा था—यह दख भोलेनाथको ऋषिपर तरस आ गया उन्हाने नारदको सम्मति दी कि अपनी इस उपलब्धिका प्रदर्शन विष्णुभगवान्के समक्ष न कर। शकरजी इसक परिणामको जानते थे परतु अहकारके प्रभावसे नारद तुरत ही ब्रह्मलाकम विष्णुभगवान्के समीप पहुँचकर अपनी गर्वोक्तिपूर्ण विजयश्रीकी सम्पूर्ण लीला उन्ह सुनान लगे।

यह सुनकर भगवान् अनेक प्रकारसे नारदकी प्रशसा करते हुए उनको अहकार-मुक्त करनेक लिय अपना मायाका स्मरण किये। अब ता ऋषि भगवान्के श्रीमुखसे अपनी प्रशसा सुनकर और अधिक अहकारी हो गय। इसी अवस्थाम नारद हाथाम वीणा लिये श्रीहरिका गुणगान करते हुए वहाँसे प्रस्थान कर गय।

नारदजीके मार्गम भगवान्ने अपनी मायाक माध्यमस एक अत्यन्त रमणीक मनोरम और शोभायमान नगरीका निर्माण कर दिया। इसकी सुन्दरता अनायास ही सबका मन मोहनेमे सक्षम थी। उस माया-नगरीके राजाका नाम था शीलनिधि। इस तेजस्वी राजाकी विवाह-याग्य एक रूपवती कन्या थी जिसका नाम था विश्वमोहिनी। इसका रूप-लावण्य साक्षात् लक्ष्मीजीको भी मोहित करने योग्य था। राजाने अपनी कन्याके विवाहके लिये स्वयवरकी घोषणा कर दी थी, इसी कारण अनेक राजा-महाराजा, वीर और पराक्रमी अपने वैभवपूर्ण प्रदर्शनके साथ नगरमे डेरा डाले हुए थे। इस स्वयवरके दर्शन-हेतु नारदजी अपना मोह सवरण न कर सके और राजाके महलमे पहुँच गये। राजा शीलनिधिने ऋषिका समुचित आदर-सत्कार करके आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। राजाने उपयुक्त अवसर जानकर नारदजीसे अपनी कन्याका भविष्य जाननेकी उत्सुकता प्रकट की। कन्या विश्वमोहिनी मुनिको प्रणामकर उनके समीप बैठ गयी। राजकन्याके रूप-लावण्यस मोहित हो वे वैरागी नारद आज रागी हो गये। उस कन्याके गुण देखकर उनके मनमे स्वय ही उसे वरण करनेका विचार बन गया। राजा शीलनिधिका सभी प्रकारसे सतुष्ट करके एक पख-कटे पक्षीकी भाँति आहत होकर वे विष्णुलोककी आर चल पडे और रास्तेभर यही विचार करते रहे कि केवल भगवान् विष्णुका रूप ही इस कन्याका वरण करनेमे सहायक हो सकता है।

विश्वमोहिनीक रूप-लावण्यके आकर्षणम बेसुध हुए मुनि विष्णुलाकम पहुँच गये। भगवान् विष्णु क्षीरसागरम लक्ष्मीजीके सग विश्राम कर रह थे। नारदने विधिवत् दानाका प्रणामकर अपने मनकी वेदनास अवगत कराते हुए भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करन लगे— प्रभा! आप अपना रूप मुझे प्रदान कर, तभी मेरी मन कामना पूर्ण होगी। 'भगवान्' मन-ही-मन अपनी माया-लीलाका प्रभाव देख मुसकरात हुए नारदस बोले—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(रा०च०मा० १। १३२)

नारदजी उनके वचनसे आश्वस्त हो पुन राजमहलके स्वयवर-कक्षमे पहुँच राजाआके मध्यमे स्थान ग्रहण कर लिये हैं। नारदजीको पूर्ण विश्वास था कि विष्णुभगवान्‌की रूप-माधुरीसे युक्त मेरे मुखडेपर आकर्षित होकर विश्वमोहिनी मेरा ही वरण करेगी। भगवान्‌की मायाके प्रभावसे उनका प्रदान किया हुआ स्वरूप केवल राजकुमारीको ही दिखायी देता था। सभा-मण्डपम विराजमान अन्य लोगाको नारदके मूल स्वरूपके ही दर्शन हो रहे थे।
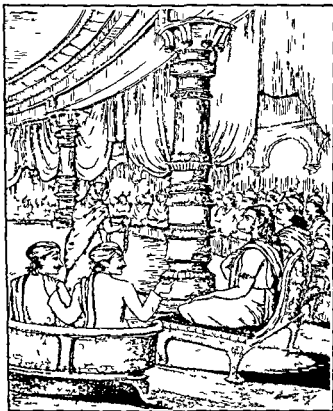
स्वयवर प्रारम्भ हुआ। विश्वमोहिनी अपने हाथाम जयमाल लिये स्वयवर-कक्षम घूमने लगी। राजकुमारीने जब वानरका मुख धारण किये भयकर स्वरूपधारी व्यक्तिकी ओर निहारा तो डरके मारे पुन उस ओर देखनेका साहस नहीं किया। इधर नारद अपना मुख आगे कर-करके राजकन्याको आकर्षित करनेका असफल प्रयास करते रहे। इसी कक्षम राजाके वेशम भगवान् विष्णु भी बैठे थे। राजकुमारी उनके रूपपर मोहित हो गयी और उनके गलेम जयमाला पहना दी। इस प्रकारसे भगवान्‌ने विश्वमोहिनीका वरण किया और अपनी दुलहनको सग ले अपने लोकको प्रस्थान कर गये।

इधर उसी स्वयवर-प्राङ्गणम शिवके गण भी उपस्थित थे। उन्हाने एक दर्पण लाकर नारदजीको दे दिया तथा उसम अपना मुखडा देखनेकी प्रार्थना की। अपनी असफलतासे कुपित हो ऋषिने दर्पण फेक दिया और राजमहलके मध्यमे बने सरोवरके किनारे जाकर बैठ गये। नारदने जलम जब अपनी मुखाकृतिका प्रतिबिम्ब देखा तो बदरका स्वरूप देखकर क्रोधित हो गये। अपने मनम नारदने निश्चय किया कि आज भगवान्‌को उनके इस कृत्यके लिये या तो शाप दे दूँगा अथवा अपने प्राणोकी आहुति दे दूँगा। ऐसा विचारकर नारद विष्णुलोककी ओर चल पडे। मार्गमें ही भगवान् विष्णु विश्वमोहिनीके सग दिखायी दिये। भयकर मर्मान्तिक पीडा और भारी अपमानसे पीडित नारदने उनके समीप पहुँचकर भगवान्‌को अनेक प्रकारसे भला-बुरा कहा और अन्तत अपने मनकी शान्तिके लिये शाप दे दिया। गोस्वामीजी लिखते हैं—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥
(रा०च०मा० १। १३७। ७-८)

भगवान् श्रीहरि अपने भक्तके हितमे ऋषिका शाप शिरोधार्य कर लिये और ऋषि-शापकी सत्य-प्रतिष्ठा-हेतु पृथ्वीपर रामके रूपमे अवतार ग्रहण किये। वनवासके समय जब जानकीजीका हरण हुआ तब वानर-रूपधारी सुग्रीव और हनुमान्‌जीकी सहायतासे वे सीताजीको रावणके बन्धनसे मुक्त कराकर पुन उन्हे प्राप्त किये। भगवान्‌ने जहाँ अपने भक्तके शापको सार्थक किया वहीं अपनी विभिन्न लीलाओके द्वारा जगत्‌का कल्याण भी किया। इस प्रकार लीला-वपुधारी भगवान् विष्णु अपने विभिन्न माया-लीलाओसे जगत्‌का सदैव कल्याण करते रहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें दिव्य लीला-तत्त्व

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

श्रीमद्भागवत भगवत्-लीलाका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसे श्रीवल्लभाचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् विग्रह कहा है, इसका अभिप्राय यह है कि भागवत पढते या सुनते ही एक ऐसे रसका प्रवाह उमड पडता है कि उसमे सब डूब जाते हैं—देह-गेह, इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषय, मन-बुद्धि, चित्त-अहकार, देश-काल, यहाँ तक कि अनुभव और अनुभव करनेवाला भी नहीं बचता। भागवतकी भूमिकाम कहा गया—

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते कि वा परैरीश्वर
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभि शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

एक शर्त जरूर है, भागवत या मानस पढना हो ता केवल चोच मारनेका भाव न हो, बल्कि डूबनेका मन हो। डूबनेका मन तभी बनता है, जब त्रिताप प्रबल हो जाते है, अन्धकार निगल जाता हे, दिक्कालका बोध नहीं होता, कर्ता और ज्ञाताका मद झर जाता है, मनुष्य अपनेको तृणसे भी तुच्छ तथा तरुसे भी अधिक सहिष्णु बना लेता है, मान लेनेके लिये नहीं, अपितु मान देनेके लिय प्रस्तुत हो जाता है और जब अपनी क्षुद्रता विशाल भगवत्कृपासुधा-वारिधिम बहनेके लिये अकुला जाती है।

श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ऐसे ही भावसे हाता है। व्यास महाभारत रचकर, पुराण रचकर, वदको सहिताबद्ध करके भी मनम खालीपनका अनुभव करने लगे, साचने लगे—कुछ तो नहीं किया जिससे मन भरे, ज्ञानदीप दिखलाया, पर मेरा स्वयका मन तो दीपित ही नहीं हुआ। नारद आये और बोले—'इतना सब कुछ किया तब भी इतना पछतावा क्या?' 'अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो?' व्यासने कहा—'हाँ, ऐसा ही कुछ है आप ही मेरी इस खिन्नताका निदान कर।' नारदने कहा—'आपने भगवान् वासुदवकी लीला नहीं गायी नैष्कर्म्यकी बात की पर अच्युत-भावक बिना नैष्कर्म्यका क्या अर्थ, और आँखोके अजन बने श्रीकृष्णके भावके बिना निरजन ज्ञान भी मल ही है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जित
न शोभते ज्ञानमल निरञ्जनम्।

आप समाहित-मनसे उस अच्युत-भावकी बात करे, जो एक बार मिल जाय तो च्युत ही नहीं होता। नारदने यह भी कहा कि मुझे भी जो इस लीलाका रस मिला, उसका इतिहास यह है कि मैं दासीका पुत्र था, मेरी माँने साधुओंकी सेवा की, मैं बचपनसे ही सत्सगमें—लीलानुवादमें रस पाने लगा, माँ चल बसी, साधु-मण्डलीके साथ विचरने लगा, मेरी प्रीति कथा-रसमे बढती गयी और वह भगवान्के लिये आकुलतामे परिवर्तित हो गयी। इसी कारण मुझे कल्पान्तरमे नारद-देह मिली। भगवान् बडे विचित्र हैं, ये निष्किचन तो स्वय हैं, जिसपर प्रीति करते हैं, उसे भी पहले निष्किचन बना देते हैं। आज आप निष्किचनताका अनुभव कर रहे हैं, आप उनकी प्रीतिके पात्र हो गये।'

ऐसे व्यासने ध्यान-योगसे भागवत-कथा रची, उसे शुकदेवको बतलाया और शुकदेवने मृत्युके शापसे पीडित राजा परीक्षित्को सुनाया। कथा सुनाते समय पहले यह सकेत किया कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने महाप्रयाणके पहले उद्धवको भागवत-तत्त्वकी दीक्षा दी, उन्हे बदरिकाश्रम भेजा। विदुरकी भेट उद्धवसे हुई, उद्धवने कौरवो-पाण्डवोके महाविनाशकारी युद्धकी यादवाके कलह और विनाशकी, श्रीकृष्णके महाप्रयाणकी कहानी सुनायी और सक्षेपमे अपनी आँखोके सामने घटती हुई-सी लीलाका स्मरण किया। उद्धव और विदुर दोनो भाव-विह्वल हो गये विदुर कुछ और जानना चाहते थे, उद्धवने कहा—'भगवान्ने मैत्रेय ऋषिको आदेश दिया है कि आपको भागवत-तत्त्वका उपदेश करे।' इस प्रकार सूत-शौनक-सवाद, शुक-परीक्षित्-

सवाद, मैत्रय-विदुर-सवाद ओर श्रीकृष्ण-उद्धव-सवाद—इन चार सवादोम भगवत्कथा पूरी होती है। परतु कथाके लिये पात्रता आती ह श्रीकृष्णके उस अनुग्रहसे जिसम सब कुछ (जिसे कुछ कहा जा सकता है) छिन जाता हे, बस रिक्तता भर जाती ह, उस रिक्तताम पर्युत्कण्ठा जगती है—कब मिलगे वे चरण जिनके न्याससे धरती रोमाचित हुई।

इस उत्कण्ठाक तीन स्तर हैं, जैसा कि मृत्युके समय वृत्रासुरने कहा—एक उत्कण्ठा है असहाय चिरौटेकी उसके पख नहीं उगे हें दिनभर घोसलेमे कुलबुलाता रहता है घासलेके मुँहसे झाँकना रहता हे, शाम होते ही भय और अकुलाहटसे माँकी बाट जोहने लगता हे—कब आयेगी माँ और चाच खोलकर स्वय चारा डालेगी। इस अवस्थामें निस्सहायता नरम है ओर केवल एक ही सहारा मालूम है दूसरा सहारा भी नहीं मालूम। दूसरी अवस्था है बछडेकी जिसम अपनी भी कुछ उछल-कूदकी शक्ति है पर वह शक्ति माँके स्तन्यसे मिलती है। दिन ढलते ही जेसे बछडेको भूख सताती ह और उसकी माँ भी अकुलाती-रँभाती हुई आती हे तथा बछडकी भूखसे पिन्हा जाती है—उत्कण्ठा दाना ओर उग्रतर हो जाती हे। तीसरी अवस्था है प्रियतम और प्रियतमाकी जिसम प्रयत्न और ज्ञान—इन दोना शक्तियाका विकास तो रहता है, परतु आकुलताका चरम उत्कर्ष आ जाता है। इस आकुलताम कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती। बस जैसे परदेश गय प्रिय प्रियाको आनेकी अवधि दे गये अवधि बीतने लगी प्रिया साचने लगी—आ क्या नहीं रहे हैं। शायद आ रहे हैं। नहीं अव नहीं आयग। क्यो नहीं आय। ऐसे कितन सकल्प-विकल्प होते हैं और उसकी प्रतीक्षा दु सह हो जाती है एक-एक पल छटपटाहटका एक शिखर बनता जाता हे साँसम अकुलाहट समा जाती है कमलनयनका देखनेके लिये आँख बदनवार बन जाती हैं—

> अजातपक्षा इव मातर खगा
> स्तन्य यथा वत्सतरा क्षुधार्ता ।
> प्रिय प्रियव व्युषित विषण्णा
> मनाऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

भागवतका आरम्भ हा श्रीकृष्णकी उपस्थिति और अनुपस्थितिके दो चित्रासे होता है। उपस्थितिका चित्र पहले ल। श्रीकृष्ण महाभारत-विजयके बाद युधिष्ठिरको भीष्मके पास ले जाते हैं, कहते हैं—'इनसे जो सीखना हो सीख लो।' युधिष्ठिर भीष्मके पैताने खडे हो जाते हैं। भीष्म उपदश देकर गणना करते हैं कि अब सूर्य उत्तरायण होनेको हैं, शरीर छाडना है। शरीर छोडनेके पहले श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हैं—'सामने आ जाओ, मैं बस तुम्हे देखना चाहता हूँ, तुम्हारी उसी अकुलाई—परेशान-मुख-छबिको अपने भीतर पाना चाहता हूँ। जब युद्धम घोडोकी टापोसे रौंदी जाती धरतीके धूलिकणासे सने हुए तुम्हारे लहरात केश बार-बार तुम्हारे पसीने-पसीने होते चेहरेपर आ जायँ और पसीना पाछने लग, तुम्हारा कवच मेरे बाणासे छिद गया हो तुम मेरी बात रखनेके लिये कि 'युद्धमे हथियार धारण करनेको विवश कर दूँगा', अपनी प्रतिज्ञा भूल गये और रथका चक्का लेकर मुझे मारने दौड पडे मैं उस अकुलाहटका ध्यान करना चाहता हूँ, मेरे वेध्य। आओ, मुझे वेध्य बनाओ'—

> युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
> कचलुलितश्रमवार्यलकृतास्ये ।
> मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
> त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥

श्रीकृष्णकी यह धूलिधूसर थकान और परेशानी बडी मोहक है। बचपनमे भी जब वे गउओकी धूलिसे सने वनसे गायोको आगे करके लौटते थे तो प्रतीक्षातुर गापियाकी आँखाके उत्सव बन जाते थे विरह-व्रतकी उपासी आँखोके पारण बन जात थे। वह उपस्थिति एक महापर्व है जीवनका महान् उत्सव हे। ऐसे उत्सवपर हजार-हजार विपदाएँ न्योछावर हैं, जिन विपदाआके कारण वे झाँकन आ जाते हैं जैसे कुन्तीन श्रीकृष्णके विदा हाते समय कहा था—

> विपद सन्तु न शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
> भवतो दर्शन यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

'तुम जा रह हा तुम एक पल निहार दत थे ये वन पवत नदियाँ उल्लसित रहत थे इसकी सब शाभा छीन जा रहे हा तुम।' श्रीकृष्ण द्वारका चले गये, इन्द्रप्रस्थपुरा उदास हा गयी द्वारका विहँस उठा उनसे मिलनेका आतुर उनकी बाट जाहती पत्नियाँ उमगम शिथिल उठ नहीं पायीं

बच्चाको भेजा इन्ह गोदम ले ले, अपनी दृष्टि वहीं लिपटा दी और अन्तम मिलनकी अभिलाषा तो पूरी न होनी थी पूरी नहीं हुई, अपनी अन्तरात्मासे कहा—'तुम मत चूको भर लो उन्ह' और अन्तरात्मा तो भरी ही, उमगी भी, आँखे छलक आयीं, बहुत रोका कि प्रिय भीतर ही रह, प्रियके मिलनका सुख भीतर ही रहे पर वह सुख कहाँ समाता है, आँसू बनकर बह चला—

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावा परिरभिरे पतिम्।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रया-
विलज्जतीना भृगुवर्य वैक्लवात्॥

अब अनुपस्थितिकी प्रतीति कराये—

श्रीकृष्णका समाचार नहा मिला। अर्जुन द्वारका गय लोटे तो हर प्रकारसे लुटकर। उनका साग तेज चला गया, युधिष्ठिर उन्हे देखते ही घबरा उठे प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगे कोन पाप तुमसे हुआ कि तुम्हारा चेहरा श्रीहीन हो गया अन्तम अनुमान लगाया—'हो न हा इसका यह कारण है कि श्रीकृष्ण चले गये और तुम्ह लगता है कि प्रेष्ठतम आत्मबन्धु और हृदयरूप श्रीकृष्णके बिना सब सूना है नहीं तो ऐसी मलिनता क्यों तुम्हार चेहरेपर होती'—

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयनात्मबन्धुना।
शून्योऽस्मि रहितो नित्य मन्यसे तेऽन्यथा न रुक्॥

और अर्जुन कुछ देरतक चुप रहकर फूट-फूट कर रा पडे बोले—'महाराज बन्धु बनकर हरिने मुझे धोखा दिया एसे चले गये। मरा वह सारा तेज लेत गये जिसस देवता भी विस्मयम पड़ जाते थे। उनक वियागमें सब अशुचि हो गया है। जसे प्राण चले जायँ ता शरीर शव हो जाता हे वैसे ही यह पृथ्वी शव हा गयी है इसे देखा नहीं जाता।'

उस विराट्की अनुपस्थितिका विराट् अनुभव ही भागवतका घनाच्छन्न आकाश है और एस अनुभवकी छायाम मृत्युक बोधसे जगी हुई प्यास ही उस आकाशका पिघलाती हे और ऐसा रस बरसता है कि माक्ष भी अपार्थ (निष्प्रयाजन या अर्थहीन) हा जाता है, बडा-स-बडा सुख तुच्छ और हय हो जाता है। मरण-पीडा ही द्वार है—दीक्षा है भागवतक रहस्यकी।

परीक्षित्की इस मरण-दीक्षासे प्रेरित होकर—जितनी देर गाय दूही जाय उसमे अधिक कहीं न टिकनवाले शुकदेव सात दिनोतक गङ्गाके किनारे टिक गये एक प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कि मृत्युक इस क्षणमे क्या करना चाहिये। इस रिक्तको कौन भरेगा? उत्तर है भागवत। जो व्यक्तिके रूपमे मर जाते है, विदेह हो जाते हैं, उन्हे कौन भरता है। यह भागवत। जो श्रीकृष्णके विरहम ऐसे तडपने लगते हैं, जैसे अपने प्राण हर रहे हो प्रत्येक दिशामे उन्ह कहीं धरोहर रखा था वह धरोहरी कहाँ गया, उन्हींकी तडपनका, आत्माराम मुनियोके मनकी अविराम लालसाका आलम्बन ही भागवतका आलम्बन है, ऐसा आलम्वन है जो साथ-ही-साथ उद्दीपन भी हे वही भाव भी है और अनुभाव भी है। श्रीकृष्ण प्यारक आलम्बन हैं, श्रीकृष्ण ही उद्दीपन भी है, क्याकि जगत्की समस्त उद्दीपन-सामग्रीके वे आलम्बन हैं। मेघ उनके लिये आँसू बहाता हे चन्द्रमा उनके विरहमे पीला पडता है समुद्र उनके लिये विलखता हैं। श्रीकृष्ण ही रोमाच ह अश्रुपात हैं मूर्च्छा ह। श्रीकृष्ण ही तरह-तरहके सचारी हैं। ईर्ष्या-असूयाम भी श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हे और श्रीकृष्ण ही प्यार हैं, शायद प्यार ही उनका सबसे अधिक साकार विग्रह हे। श्रीकृष्णको देखना हो तो झुरमुटो-झाडियोको देखो, जिनपर पर्त-की-पर्त श्रीकृष्णके विरहमे विह्वल गापियोंकी चरण-रज पडी हुई है, उस रजने उन वनस्पतियाका अर्धोन्मीलित चेतन्य उन्मीलित कर दिया हे।

भागवतकार एसी चैतन्यलीलाके लिये पहले ज्ञानभूमि आर कर्मभूमि तैयार करत हैं। तीसर स्कन्धसे सातवतकमे एक तत्त्व-दर्शन देते हे कि निर्गुण भी स्वेच्छासे कैसे ओर क्या गुणवान् होता है। व निखिल सृष्टिका विस्तार बतलाते हैं, अवताराके सापानाका वणन करते हैं, भगवद्भक्ताकी लबी परम्पराका परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं—ध्रुव-जैसा बाल-हठी वृत्र-जैसा पराक्रमी इन्द्रशत्रु, प्रह्लाद-जेसा असुर-पुत्र बलि-जेमा दानाभिमानी, अजामिल-जैसा पापी कैसे नारायणकी आर अभिमुख हात हैं, इसका वर्णन करते हैं।

इसके अनन्तर वे भागवतके हृदय श्रीकृष्ण-लीला-आख्यानक पास पहुँचत हैं। श्रीकृष्ण-लीलाका रस ज्ञान-

कर्म तथा भक्ति—इन तीनो सोपानोंको पार करके मिलता है, कच्चे घडेमे यह रस नहीं रखा जा सकता, बडी आँचमे पके घडेमे ही यह रस टिकता है। श्रीकृष्ण-लीलाका माधुर्य-आस्वादन करनेवाली इन्द्रियाँ पहले वन-चारणके लिये जाती हुई गौओकी तरह श्रीकृष्णके चरणोका अनुसरण करती हैं और जब श्रीकृष्णका रस उनमे भर जाता है तो वे आगे हो जाती हैं और श्रीकृष्ण उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। जो आँखें श्रीकृष्णको निरखती हैं, श्रीकृष्णमय हो जाती हैं। फिर उनमे कुछ और देखना नहीं होता, श्रीकृष्ण ऐसी आँखाको देखनेके लिये अकुला जाते हैं, श्रीकृष्ण स्वय बछडा बन जाते हैं, गोप-बाल बन जाते हैं, गो-गोपियोका वात्सल्य पानेके अभिलाषी। वृन्दावनसे श्रीकृष्ण प्रस्थान करते हे तो अक्रूरको यमुना-जलम और यमुना-तीरपर एक साथ दो-दो रूपोमे श्रीकृष्ण दिखलायी पडते हैं—यमुना-तीरपर अर्थात् वृन्दावन मोरमुकुटधारी गोपबालरूप और यमुनामे चतुर्भुज विष्णुरूप। अक्रूरके रथपर वह विष्णुरूप ही जाता है, गोपाल वृन्दावनमे ही रह जाते हैं। इसलिये उद्धव वृन्दावन जाते हैं, बलराम जाते हैं, श्रीकृष्ण वृन्दावन नहीं लौटते, क्यो लौटे, वे तो वहाँ अभिव्याप्त हैं भूताकाशमे, चिदाकाशम, बस कुरुक्षेत्रमे जहाँ उन्हे गीताका उपदेश देना है। सूर्य-ग्रहणके अवसरपर मथुरा-वृन्दावनसे आये बन्धुओसे, सुहृदोसे, सखियासे मिलते है, मानो अपनी ही बिछुडी हुइ प्रकृतिसे मिलते हैं। गोपियाँ जब श्रीकृष्णसे मिलीं तो ऐसा लगा कि अब इतने दिनो बाद दीखे हैं इन्हे अपलक देख ले केवल देखे ही न अपितु आँखोके द्वारसे इन्हे हृदयमे रख ले और इन्हे भर ले अब ये जाने न पाय। भागवतकार कहते हैं कि इन गोपियोको वह भाव प्राप्त हुआ जो उनसे नित्य जुडे लोगाको भी कठिनतासे कभी-कभी मिलता है। गोपियाको वह भाव सहज मिल गया, देखना ही होना हो गया।

> **गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्ट**
> **यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृत शपन्ति।**
> **दृग्भिर्हृदीकृतमल परिरभ्य सर्वा-**
> **स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजा दुरापम्॥**

श्रीकृष्णन उन्हे देखा और फिर उनके होकर उनसे मिले कुशल-समाचार पूछा। कैसी विडम्बना है, श्रीकृष्ण क्षमायाची-स्वरमें पूछ रहे हैं—'सखियो। इस निठुर विस्मृतिशाल सहचरकी याद तुम्हे आती है। कितने दिन हुए तुमसे मिला नहीं, दुष्टाके सहारम लगा रहा। तथा अन्य अनक कार्योमे मन अटका रहा। मुझे अकृतज्ञ न मानना, मैं तुम्हारा चिर ऋणी हूँ। यह ससार ही सयोग-वियोगका वितान है, दुरन्त विरह है।' इतनेम ही श्रीकृष्णने सब कुछ कह दिया और गोपियाँ ऐसी निहाल हुईं कि उनका जीवकोश ध्वस्त हो गया, उनका देह-बन्धन नहीं रहा, वे भाव-रूप हो गयीं और उन्होने कहा—'इस रस-बने देह-गेहम बस तुम्हारे चरण-कमल खिलते रहे।'

जो योगेश्वरोके अगाध हृदयमे कमल खिलता है, वह इस देह-गेहमे रहते हुए ससारी मनमे सदा-सदा खिलता रहे। भागवतकारने नारी-देहको और नारी-चित्तको जो प्रतिष्ठा दी विशेष-रूपसे सहज-जीवन बितानेवाले देह और चित्तको, वह प्रतिष्ठा ब्रह्मा, नारद शुक उद्धव तककी स्पृहाका विषय है।

भागवतमे इसीसे कृष्ण जब इस धरा-धामपर लीलाका सवरण करते हैं, तब वे सबको बिदा कर देते हैं। उद्धवको ज्ञान देकर और अपनी चरणपादुका देकर कहते हैं—'जाओ बदरिकाश्रम, वहाँ जाकर भागवत-भाव जगाओ, नर-नारायणके साहचर्यका अनुभव कराओ।' उद्धव विज्ञानमय होकर भी सानिध्य छोडकर जाना नहीं चाहते, बार-बार जाते हैं बार-बार लौटते है—

> सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो
> न शक्नुवस्त परिहातुमातुर।
> कृच्छ्र ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके
> बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुन पुन॥

इसके बाद द्वारकासे अलग प्रभास तीर्थ चले जाते हैं। उनके पहले बलराम योगक्रियासे शरीर त्याग करते हैं। श्रीकृष्ण अपने अधिष्ठान-रूप अनन्त मानुषभावके बिदा होनेपर निपट अकेले नदीपर एक पीपलकी जडपर सिर टेक लेट जाते हैं और अपना दायाँ चरण मोडकर छातीपर रख देते हैं जैस जाखा कर रहे हो। इस चरणम मेरे हृदयमें बसे प्रियजनाकी कितनी प्रीति है मरा हृदय भी अनुभव कर ले। लोहेके मुसलका एक टुकडा समुद्रमे छिटक गया था उस मछलीक पटसे जरा नामक व्याधने निकाला और उसका तीर बनाया छातीपर मुडे पैरको दूरसे देखा उसे मृगकी आकृतिका भ्रम हुआ उसन तीर चलाया पास

आया तो उसे चतुर्भुज-रूप दीखा, चरणोम गिरा अज्ञानम पाप हुआ, कैसे निष्कृति हो, मुझे मार डालो। श्रीकृष्णने कहा—'तुम तनिक भी डरो मत, तुमने मेरी निष्कृति की है, मैंने यदुवशमे जन्म लिया ऋषिके शापका एक टुकडा मुझे भी लगना-ही-लगना था, उसके पूर्व यह देह नहीं छूटती, तुम अब दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग जाओ। 'जरा' भी चला गया।'

प्रभुको खोजते-खोजते उनके पदचिह्नको देखते-देखन दारुक वहाँ पहुँच गये, पदचिह्नसे अधिक बलवान् प्रभावी थी तुलसीकी मालाकी गन्ध जो श्रीकृष्णकी छातीपर विराजमान रहती हे, दारुक रथ लेकर विह्वल होकर बोले—'प्रभु, आप मुझे छोडकर क्या आ गय, मैं कहाँ जाऊँ, मैं सारथि हूँ, आपको रथपर पाकर।' इतना कहते-कहते गरुडध्वज-रथ घाडा-समेत देवलोक चला गया उसीके साथ पाञ्चजन्य शख सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा शार्ङ्गधनुष—वे सभी वैष्णव आयुध चले गय। श्रीकृष्ण निपट मनुष्य होकर रह गये, दारुकको उन्हाने बिदा किया—'द्वारका जाओ, यदुकुलके विनाशका समाचार दो अन्त्यष्टिकी व्यवस्था करो बचे लोगासे कहो—'द्वारका छाड द, इन्द्रप्रस्थ चल जायँ', अजुन आते हागे। समुद्र द्वारकाको मेर जात ही निगल जायगा।' क्या करता दारुक भी चला गया। श्रीकृष्णके पास कोई नर नहीं रहा, नारायणका कोई साज नहीं रहा, जिस धरतीपर व नगे पैर बचपनमें चल जिसे अपने स्पर्शसे पुलकित किया जिसका रजमे स्वय शोभित हुए, उसी धरतीपर उसीकी धूलिम सने श्रीकृष्ण जाने कब चल गय। किसी मनुष्यने नहा दखा केवल दवताआने पितरोने सृष्टिके विधाताने, उमा-महेश्वरन देखा कि धरतीका सर्वस्व छिना जा रहा है, जिसक सौभाग्यके लिय स्वर्ग तरसता है और तरसता रहेगा देवताआका मन ललचता रहेगा कि हाय हमे नरलीलाके रसमे हिस्सा क्यो न मिला, कल्प-कल्प जीनेमे क्या लाभ। अल्पायु मनुष्यने जो यह सम्भावना पायी कि अपनी ही सजातीय देहम अधिष्ठित नारायणका स्पर्श करके स्वर्ग-अपवगक लाभका तिरस्कार कर दिया उसे एक क्षणमे ही सृष्टिका सर्वस्व प्रयाजन प्राप्त हो गया।

भागवतकारने श्रीकृष्ण-लीला-रससे सिक्त भारतभूमिके लिय देवताआकी तरसका जो वणन किया हे वह सबसे उत्तम राष्ट्रगीत ही नहीं मानव-गीत भी है।

क्या होगा स्वर्ग लेकर? जिसम योगके अतिशयमे नारायणकी स्मृति चली जाय, क्षणभरकी मानव-देह पाकर यह सम्भावना तो है कि नारायणका अभय-पद मिल सकता है, केवल एक क्षणमे झटकेसे लिये गये सकल्पसे सब अर्पित कर दा नारायणको, अपना कुछ न रखो।

भागवत भारतभूमिका हृदय हे। जो पूरा अर्थ नही समझता, पर किसी एक क्षणमे कहा किसी प्रसगपर विचलित हा जाता है, अश्रु बहने लगता हे ओर रामाच हो जाता है तो भागवत उसका हो जाता ह।

भागवत अपनी एक ही साँसकी फूँकसे जडका चतन कर देता हे वृक्षामे पुलक भर देता है, नदियाम लहररूपी अजलियाम कमलोपहार रख देता है कि चढाओ उन चरणकमलापर जो तुम्हारे पुलिनापर महक रहा है—

> नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
> मावर्तलक्षितमनाभवभग्नवगा ।
> आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरार-
> गृह्णन्ति पादयुगल कमलोपहारा ॥

भागवतका काव्य शरत्-काव्य है मघ बरसकर उजला हा जाय नदीका जल घटकर निखर जाय सतृस पृथिवी काँस—वनराजियास विहँस उठ आकाश स्वच्छ हा जाय शुद्ध ब्रह्मकी तरह और उसमे अमृत-कलश चन्द्ररूपी अमृतम भर जाय भर क्या जाय, अमृत समाये न समाय सारा रग केवल श्यामलताम समा जाय सारा राग विराट् विरागम समा जाय और वह विराग ही एकमात्र राग रह जाय तब भागवतक रसका समष्टिम रासशील-नर्तनशील रसका सही मानेम प्रादुर्भाव होता है। कसे समझ और कैस समझाय इसके मर्मका भागवतकारकी दृष्टिका कैसे निरख, जो दृष्टि शरद्-ऋतुके सरोवरम खिल सरोजक भीतरी पटलोकी शाभा चुराकर निहार रही हे निहार क्या रही है, समस्त रागाकी रगत हर रही है।

अब भागवत-कथाक किन-किन चुने प्रसगापर विशद चर्चा कर समझम नहीं आता काई प्रसग ता ऐसा नहीं है जिसे छाडा जा सके—'दुस्त्यजस्तत्प्रसग ।'

उस बाल-लीलाकी बात कर जिसके बारेम कुन्तीने कहा था कि—'तुम्हारा अपराधी-भावसे बाँधा जाना मुझ बडा अच्छा लगता ह' या गापियाक हाथकी कठपुतली बने

तुलसी-काव्यमे श्रीराम-लीला

(डॉ० श्राशुकदवरायजी एम्० ए० पा-एच्० डी० साहित्यरत्न)

सम्पूण चराचर विश्व उम अव्यक्त ब्रह्मका व्यक्त रूप है। यह उसकी सृष्टि भी ह ओर लीलाभूमि भी। या ता उनकी लीला शाश्वत आर निरन्तर ह, फिर भी भगवल्लीलाक दो स्वरूप बताये गय हैं—(१) अन्तरङ्ग-लीला ओर (२) बहिरङ्ग-लीला। अन्तरङ्ग-लीला परम रहस्यमय ह—परम गापनीय है। यह या ता सिद्धा आर साधकाक लिये प्राप्य ह या उनक लिय जो भगवत्कृपाके विशेष पात्र हैं। यह चर्म-चक्षुगाचर नहीं ह—'*यह समुझि परै जब ध्यान धरै।*

लीलाका दूसरा स्वरूप बहिरङ्ग ह—जा उस निर्गुण-निराकारके सगुण-साकाररूपम प्रकट होनेपर यथासमय हुआ करता हे। प्रभुकी लाला विभिन्न अवतारा एव रूपाम विविध प्रकारस सम्पन्न होती हे, जिसे वतमान देखता हे भूत उसे सँजाकर रखता हे और भविष्य उससे प्ररणा ग्रहण करता ह। भक्त अपन आराध्यके इसी लीला-रूपको विशष पसद करता ह। भक्तप्रवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपन इष्ट पुरुषात्तम श्रीरामक इसी लीलारूपकी आराधना की हे आर अपने काव्यम वर्णन किया ह। सम्भवत इमीलिय इन्हाने अपन महाकाव्य 'मानस' का नाम 'श्रीरामचरितमानस' रखा। न केवल मानसम, बल्कि अपना ममस्त छाटी-ब्डी रचनाआम व इसी राम-लीलाका उद्घाटित करते रह।

तुलसीक इष्ट श्रीराम ह, जिन्हान त्रेतायुगम परब्रह्म परमेश्वर होत हुए भी श्रीदशरथजीके घर अवतार धारण किया था। सर्वप्रथम व श्रीकोसल्याजीके सामने चतुर्भुज-रूपम प्रकट हुए। माँ प्रसन्न ता हुई पर उन्हाने इस रूपका पसद नही किया और आग्रह किया कि '*तजहु तात यह रूपा*' और '*कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।*' भगवान्‌ने अनुराध स्वाकार किया और परिणामत —'*सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।*'—यह है लीलाका महत्त्व आर उसका रहस्य।

अरण्यकाण्डम शूपणखा-प्रसगक पूर्व ही श्रीरामने अपने श्रीमुखसे लीला करनकी चर्चा श्रीसीताजीक साथ की ह, जिसस यह सिद्ध हाता ह कि उनक मानव-शरीर धारण करनका उद्दश्य लीला करना हे, श्रीराम कहत ह—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मै कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
(रा० च० मा० ३। २४। १-२)

तुलसीदासजीके काव्याम वर्णित भगवल्लीलाआको निम्नलिखित खण्डाम बाँटा जा सकता है—(१) बाल-लीला (२) किशार-लीला या माधुर्य-लीला (३) रण-लीला आर (४) ऐश्वर्य-लीला। प्रथम तीन लीलाआम प्रकारान्तरस ऐश्वर्य-लीलाका पुट हो जाता हे आर इसीलिये लीलाएँ मधुर-मनारम हाते हुए भी महिमा-मण्डित हो जाती ह—

दखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोर॥
(रा० च० मा० १। १०८)

श्रीरामचरितमानसक अतिरिक्त तुलसीक दूसर काव्याम भी बाल-लीलाआका वणन ह। श्रीरामकी बाललीला पालनसे प्रारम्भ होती ह—

पौढ़िये लालन पालने हो झुलावो।
(गीता० १८)

एक दिन पलनकी बाल-क्रीडाम ऐश्वर्य-लीला अनजाने समा जाती है। इष्ट-पूजनका दिन हे। माताने बच्चको स्नान कराया ओर शृगार करके पलनम सुला दिया तथा स्वय पकवान बनाने गयी पूजा की और नेवद्य चढायी। फिर थोडा देरम जब पुन पूजा-घरम गयी ता देखीं—बच्चा खा रहा हे। उन्ह बडा विस्मय हुआ। वे दाडी पलनके निकट आयीं ता देखीं बच्चा सो रहा हे फिर पूजा-घरम गयी ता बच्चा खा रहा था। व विस्मय-विभोर हो गयीं। उनकी व्याकुलता देखकर बच्चने अपना मुख खाल दिया ता मातान देखा—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मड॥
(रा० च० मा० १। २०१)

कालक्रमस श्रीरामकी पलना-लीला दशरथ-अजिरम उतरती ह आर दशरथ-अजिर-विहारी राम आँगनम घुटनाक बल सरकन लगते ह—फिर चलनेका प्रयास करते हैं—

ठुमुकि चलत रामचद्र बाजै पैजनिया।
अति आतुर पग धरत धाय गिरत परत लड़खराय

धाय मातु गोद लेत दसरथ को रनियाँ।

मणिमय भूमिपर श्रीराम खेल रहे है—

कबहू ससि मागत आरि करै कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।

कबहूँ रिसिआइ कहै हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै॥

(कवि० १। ४)

इसी बाल-क्रीडाके बीच कागके रूपमे काकभुशुण्डिजी आ जाते हैं और बालक राम उसे पकडनेके लिये हाथ फैलाते हैं। कौआ उडता है। आकाशमे दूरतक जहाँ-जहाँ वह जाता है, उसे लगता है कि बालक उसे पकडनेके लिये दौडा आ ही रहा है। अन्तमे बालक मुसकरा देता है—कैसी विचित्र स्थिति है तभी तो मानसकारको कहना पडता है—

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।

सो सब अद्भुत देखउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥

(रा० च० मा० ७। ८० (क))

यह है प्रभुकी बाल-लीलामे ऐश्वर्य-लीला।

प्रभुकी बाल-लीला कितना मनोरम है। श्रीराम खेलनमे इतने मस्त है कि भोजनकी भी सुधि नहीं—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

(रा० च० मा० १। २०३। ६)

माताके बुलानेपर—

ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

(रा० च० मा० १। २०३। ७)

और भोजन भी क्या?

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।

भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

अनुज सखा सँग भोजन करहीं।

(रा० च० मा० १। २०३ १। २०५। ४)

नदी-किनारेका खेल कितना सुहावना है—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरै रघुबीर सखा अरु बीर सबै।

धनुहीं कर तीर निषंग कसे कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥

(कवि० १। ७)

श्रीराम कुछ बडे होते हैं, जनऊ लेते हैं और फिर गुरुके घर पढने जाते है जहाँ—'*अलप काल बिद्या सब आई॥*' (रा० च० मा० १। २०४। ४)

श्रीरामकी अब किशोर-लीला प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम ये ऋषि विश्वामित्रके साथ यज्ञ-रक्षामे जाते हैं, जहाँ ताडकाका वध होता है—'*एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।*' इसके बाद ये मुनिके साथ जनकपुरमे धनुष-यज्ञ देखने चल पडते हैं। मार्गमे गोतम-आश्रममे शापित अहल्याका उद्धार होता है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

(रा० च० मा० १। २११(छं० १))

जनकपुर पहुँचनेपर माधुर्य-लीलाका प्रारम्भ बडे संयत ढंगसे होता है। परंतु भ्रमणके समय इनके रूपपर मुग्ध होकर सखियाँ झरोखेसे फूल बरसा रही हैं, जो पुष्प-वाटिकामे मिलनेका संकेत है। श्रीरामकी पुष्प-वाटिका-लीला माधुर्यका प्रारम्भ है, जहाँ श्रीसीताको वे देख पाते हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥

भए बिलोचन चारु अचंचल।

(रा० च० मा० १। २३०। १—४)

दोनो माधुर्य-रूपमे डूब जाते है। चलते समय एकने—'*लोचन मग रामहि उर आनी।*' और दूसरेने '*सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु ।*'

आगे चलकर यही माधुर्य परिणयमे प्रकट हुआ। सम्पूर्ण विवाह-प्रसंगकी लीला माधुर्यपरक है। जिसने संयम आदर्श और प्रेमका उत्तरोत्तर विकास है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥

सीतहि पहिराए प्रभु सादर।

(रा० च० मा० ३। १। ३-४)

इस माधुर्यमे फिरसे ऐश्वर्य-लीला आ जाती है। जयन्तने उत्पात किया और प्रभुने सीके-धनुपका संधान किया। वह व्याकुल हो उठा। शरण कहीं नही मिली। तब प्रभुकी शरणमे आ गिरा। यहाँसे लीला उस ओर चलती है जहाँ प्रेमकी पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है जहाँ श्रीराम लता-पत्रादिकोसे सीताका पता पूछते है—'*पूछत चले लता तरु पाँती।*' इसी विरही अवस्थामे ऐश्वर्य-लीला हो जाती है। कुम्भज ऋषिके आश्रमसे लौटते हुए शिव-सतीको विरही राम दूरसे ही दिखायी पडते है। 'सच्चिदानन्द'

कहकर शिवके प्रणाम करनेपर सती शकाकुल हो जाती हैं और शिवके परामर्शपर वह परीक्षाके लिये सीताके वेशमें चल पडती हैं। मार्गमें सम्मुख सतीको देखकर रामचन्द्रजी कहते हैं—

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥
(रा० च० मा० १। ५३। ८)

सतीने जहाँ दृष्टि डाली, उन्हें सीताराम और लक्ष्मण ही दिखायी पडे। प्रेमकी पूर्णताकी उद्भावना हनुमान्-राम-सवादमें स्पष्ट है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(रा० च० मा० ५। १५। ६-७)

प्रभुकी रणलीला जितनी रहस्यमयी है, उतनी ही कौतूहलपूर्ण है। ये लीलाएँ खर-दूषण-वधसे ही प्रारम्भ होती हैं और इस रण-लीलाकी पूर्णाहुति होती है लकाके राम-रावण-युद्धमें। बालि-सुग्रीव-युद्ध भी इसी प्रसगमें उल्लेखनीय है और परशुरामजीका वाक्-युद्ध भी। इन युद्ध-लीलाओंकी यह विशेषता है कि रामके वीर-वेशमें सौन्दर्य झलक मारता है, जिसे देखकर शत्रु भी विमुग्ध हो जाता है और सधि-प्रस्ताव भेजने लगता है। खर-दूषणने स्पष्ट ही कहा—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
(रा० च० मा० ३। १९। ५)

श्रीराममें वीरताके साथ धीरता है और शक्तिके साथ सौन्दर्य। इनका शर-सधान-लाघव एव दृढता आदि देखने योग्य है। रणभूमिमें शोणितसे लथपथ श्रीराम कितने सुन्दर लग रहे हैं—

श्रोनित-छींट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसालमें फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥
(कवि० ६। ५१)

लडाईमें कभी अपने पक्षकी हानि और शत्रु-पक्षकी जय-जयकारसे श्रीराम विचलित नहीं होते। इनकी रणलीला भी तो विचित्र है—

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
(रा० च० मा० ६। ६६। १)

बालि-युद्धमें तो इन्होंने—*'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।'* कहाँतक कहा जाय—*'हरि अनत हरि कथा अनता।'*

तुलसी-काव्यकी समस्त रामकथा लीलासे भरी है। इस लीलाका पार पाना सम्भव नहीं। इसका वर्णन कोई क्या करे? रचनाकारके ही शब्दोंमें—

सागर सीप कि जाहि उलाचे'॥

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ

(मानस-मराल डॉ० श्रीजगेशनारायणजी भोजपुरी)

अनन्त-ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् श्रीरामकी समग्र लीलाओंको मुख्यत दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) अन्तरङ्ग-लीला और (२) बहिरङ्ग-लीला। श्रीरामचरितमानसमें दोनों प्रकारकी लीलाओंका वर्णन पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने किया है। यहाँ हम भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाओंकी चर्चा सक्षेपमें करेंगे।

भगवान्की अन्तरङ्ग-लीलाका प्रथम दर्शन उनके अयोध्यामें अवतरित होते ही होता है। जब अयोध्यामें भगवान्का अवतार हुआ तो महाराज दशरथजीने अभूतपूर्व उत्सवका आयोजन किया, उस समय अयोध्याकी अनुपम शोभा देखने ही योग्य थी। श्रीअवधके सद्य प्रस्फुटित निसर्ग-सौन्दर्यके समक्ष देवलोक, नागलोक, शिवलोक और वैकुण्ठलोक तक भी फीके लगने लगे। भगवान् भास्कर जब अयोध्याके प्राङ्गणसे गुजरने लगे तो नगरके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर ठगे-से रह गये। उनकी आगेकी यात्रा अनजाने स्थगित हो गयी और एक माहतक वे विमुग्धभावसे अयोध्याके सौन्दर्यका अवलोकन करते रह गये। गोस्वामीजी इस लीलाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

कौतुक देखि पतग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
(रा० च० मा० १। १९५। ८ दोहा १९५ १९६। १)

पूरे एक महीने अयोध्यामें रात्रि नहीं हुई किंतु प्रभुके

इस चरित्रको कोई जान नहीं पाया, क्योकि यह भगवान्‌की गुप्त लीला थी। सूर्यनारायण अपने कुलमे पूर्ण ब्रह्मके अवतारके मनोहारी छवि-दर्शन-हेतु अयोध्यामे रुक गये। यह तो स्वाभाविक है परतु उनके रुक जानेसे अयोध्यामे अहर्निश प्रकाश और ससारमे अन्यत्र एक माहतक रात्रि या अन्धकारकी स्थिति बनी रही, यह अस्वाभाविक थी। फिर भी भगवान्‌ने अपनी विश्वविमोहिनी मायासे सभीको ऐसा अभिभूत कर दिया कि इस रहस्यको कोई जान नहीं पाया।

अपने बाल्यकालमे भगवान्‌ने एक और विचित्र लीला की। एक बार जब वे दूध पीकर पलनेमें सोये थे, तब माता कौसल्या अपने इष्टदेवके भोगके लिये प्रसाद बनाने लगीं। भगवान्‌का पूजनकर जब वे नैवेद्य लेने पाकशालामे गयीं तो यह विचित्र दृश्य देखकर चकित रह गयीं। उन्होंने देखा कि बालक राम वहाँ बैठकर प्रसाद-भक्षण कर रहे हैं। माँको जैसे अपनी आँखोपर विश्वास नहीं हुआ और दौडकर वे शयन-कक्षमे गयीं, जहाँ कुछ देर पहले रामको पालनेमे सुलाकर आयी थीं। वहाँ जानेपर उनका कौतूहल और अधिक बढ गया। देखा बालक राम गहरी निद्रामे सोये हैं। पुन पाकशालामे गयी तो देखा राम मुसकराते हुए भोजन कर रहे हैं—

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैबेद्य चढावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥
(रा० च० मा० १। २०१। १—७)

द्विधा-विभक्त अपने बालक रामकी इस अलौकिक लीलाको देखकर माँ समझ नहीं पा रही है कि एक ही बालक एक ही कालमे दो स्थलोपर कैसे विराजमान है। माता कौसल्याके सुत-विषयक भ्रमका निवारण करनेके लिये भगवान्‌ने एक और लीलाकी रचना कर दी—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(रा० च० मा० १। २०१)

श्रीरामने अपने मुखारविन्दमें माता कौसल्याको अखिल ब्रह्माण्डका दर्शन कराया। अगणित रवि, शशि शिव, चतुरानन, सरिता-सिंधु और जगलोको देखकर माँ चकित-सी रह गयीं। किंतु माँको भयभीत देखकर भगवान्‌ने विराट्‌रूपका सवरण कर लिया तथा पुन शिशुरूपमे यथावत् हो गये। विस्मयवत माता कौसल्याकी बुद्धिमे अब यह दृढ निश्चय हो गया कि जिसे मै अज्ञानवश अपना पुत्र मान बैठी थी, वस्तुत वह तो जगत्‌का पिता है—

बिसमयवत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
(रा० च० मा० १। २०२। ६-७)

इस लीलाकी गोपनीयता कहीं प्रकट न हो जाय, इसलिये भगवान्‌ने अन्तमे माताजीसे आग्रह किया कि इस लीलाको आप कहीं भी किसीसे कहें नहीं—

हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥
(रा० च० मा० १। २०२। ८)

भगवान्‌की गुप्त लीलाका एक हल्का-सा सकेत धनुषभग-प्रकरणमे भी देखनेको मिलता है। धनुषभगके पश्चात् परशुरामजी अत्यन्त रोषावेशपूर्ण हो वहाँ पधारते हैं। लक्ष्मणसे सवादके पश्चात् उन्होने श्रीरामके पराक्रमकी परीक्षा लेने-हेतु कहा कि 'अगर आप मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चा चढा देगे तो आपका मैं वीर मान लूँगा।' किंतु उस समय परशुरामको अत्यन्त विस्मय हुआ जब परशुरामका धनुष उनके हाथसे छूटकर स्वय श्रीरामके हाथमे चला गया। अब उनको निश्चय हो गया कि पूर्ण ब्रह्मका अवतार हो गया—

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥
(रा० च० मा० १। २८४। ८ दोहा १। २८४)

वनवासकालमे भगवान्‌ने अनेक लीलाएँ कीं उनमे एक अन्तरङ्ग (गुप्त)-लीला भी है। एक दिन जब लक्ष्मणजी फल-मूल लेने जगलमे गये तो एकान्त पाकर भगवान्‌ने सीताजीसे कहा कि तुम अपनी प्रतिमूर्ति स्थापितकर अग्निमे प्रवेश कर जाओ, क्योकि अब मैं कुछ नरलीला करने जा रहा हूँ। रावण आकर तुम्हारी प्रतिकृतिका अपहरण कर ले जायगा तथा मैं नारदजीके शापको फलीभूत करनेके लिये विरह-लीला करूँगा। इस गोपनीय लीलाका वर्णन महाकवि

अत्यन्त भावमयरूपम किया है—

लछिमन गए, बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोल बिहसि कृपा सुख बृंद॥
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥
(रा० च० मा० ३। २३ ३। २४। १—५)

इस गुप्त-लीलाको भगवान्ने इतनी बारीकीके साथ किया कि रात-दिन साथ रहनेवाले प्रिय लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान पाये। लंका-विजयके पश्चात् भगवान् लक्ष्मणके द्वारा ही सीताकी अग्नि-परीक्षा कराते हैं तथा इसी व्याजसे नकली प्रतिबिम्बको जलाकर असली सीताको प्राप्त कर लेते हैं। अरण्यकाण्डसे लेकर लंकाकाण्डतक इस गुप्त-लीलाका सूत्र फैला हुआ है, लेकिन आश्चर्य है कि सभी लीलाओंमें साथ देनेवाले श्रीलक्ष्मणजी भी इस गुप्त-लीलाको नहीं जान पाये।

वहीं भगवान्ने एक और गुप्त-लीला की। शूर्पणखाद्वारा प्रेरित होकर खर-दूषणके चौदह हजार सैनिकोंने श्रीरामपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। शत्रुओंके मध्य घिरे हुए अकेले भगवान्को देखकर देवता भयभीत हो गये। उनके भय-निवारण-हेतु भगवान्ने एक अद्भुत लीला रच दी। उनकी बुद्धिपर मायाका ऐसा आवरण डाला कि सभी सैनिक परस्पर एक-दूसरेको राम समझने लगे, फिर क्या था! आपसमें लड़कर उन्होंने अपना विनाश कर लिया—

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥
(रा० च० मा० ३। २० (छं० ४))

भगवान्की अन्तरङ्ग-लीलापर पटाक्षेप करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं कि जब लंका-विजय करके भगवान् अयोध्याम आये तो चौदह वर्षसे प्रतीक्षारत नर-नारीके हृदयमें यह उत्कट अभिलाषा रही कि भगवान् सर्वप्रथम मुझसे मिलें। भगवान् भक्तवत्सल हैं, अतः अमित रूप धारण करके उन्होंने सबका मनोरथ पूर्ण किया—

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥
(रा० च० मा० ७। ६। ४-५)

यद्यपि इस प्रकार उनकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ तो उनके प्रत्येक कार्योंमें प्रतिभासित होती हैं, तथापि उसे हम जान नहीं पाते, परंतु जब हमें इसका ज्ञान होता है तो उस परब्रह्म परमात्मप्रभुकी इयत्ताका स्मरण हो आता है, तन-मन पुलकित हो जाता है और अन्ततः हृदयके आनन्द-विभोर होनेकी पराकाष्ठामें सर्वत्र उन्हीं लीलाधारीके दर्शन होने लगते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीला

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, साहित्याचार्य, एम्० ए० (संस्कृत-हिन्दी-दर्शनशास्त्र), एम्० एड्०, पी-एच्० डी०)

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है। इसमें उनका पद-पदपर दर्शन होता है। गीतामें सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका सार निहित है। गीताका सम्पूर्ण रहस्य या तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण जानते हैं या भगवान् श्रीवेदव्यास। यही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अनुग्रहपूर्वक अपने परम भक्त अर्जुनको अपने विराट्‌रूपका दर्शन कराकर यह अनुभव कराया कि समस्त ब्रह्माण्ड उनके अंदर ही विद्यमान है।

यह समस्त जगत् भगवान्की ऐसी अनादि-अनन्त लीला है, जिसका पार पाना भगवत्-कृपाके बिना असम्भव है। शास्त्रोंमें परमपिता परमेश्वरकी आनन्दमयी क्रीडाको ही लीला कहा गया है। धर्मकी रक्षा, अधर्मके विनाश, सत्पुरुषोंके संरक्षण तथा दुष्टोंके निग्रहके लिये परमात्मा युग-युगमें अपनी अवतार-लीला करते रहते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें महारानी कुन्तीका यह कथन और भी सारगर्भित है कि भगवान्का अवतार भक्तियोगका विधान करने तथा उनकी लीलाएँ भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिये होती हैं। भक्तोंका आर्तनाद सुनकर उनकी रक्षा करनेके लिये वही परमात्मा कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, परशुराम, वामन, राम, कृष्ण, गणेश, शंकर, दुर्गा तथा सूर्य आदि अनेक रूपोंमें प्रकट

होकर अपनी लीलाके दर्शनद्वारा उनके कष्टोका निवारण करते है। उनकी यह लीला नित्य है।

श्रीमद्भगवद्गीताका ग्यारहवाँ अध्याय विश्व-दर्शनयोगके नामसे विख्यात है। दसवे अध्यायमे भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे उनकी विभूतियोको सुनकर अर्जुनने उनसे उनके ईश्वरीय रूपको देखनेकी इच्छा प्रकट की। अर्जुनकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपना विश्वरूप-दर्शन कराया। उनका यह विश्वरूप-दर्शन उनकी दिव्य लीला है। श्रीकृष्णने अर्जुनको जब यह बताया कि मैं सभी प्राणियोका आत्मा हूँ—'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित ' तथा मैं ही समस्त प्राणियोका आदि मध्य और अन्त हूँ—'अहमादिश्च मध्य च भूतानामन्त एव च' एव आदित्योमे मैं विष्णु, ज्योतियोमे सूर्य नक्षत्रोमे चन्द्रमा, देवताओमे इन्द्र हूँ और प्राणियोमे चेतना रुद्रोमे शकर, पर्वतोमे सुमेरु पर्वत, सेनापतियोमे स्कन्द देवर्षियोमें नारद, घोडोमे उच्चै श्रवा नामक घोडा, हाथियोमे श्रेष्ठ ऐरावत नामक हाथी हूँ एव मनुष्योमे मैं राजा दैत्योमे प्रह्लाद, पक्षियोमे गरुड, सर्पोमे वासुकि, शस्त्रधारियोमे राम, नदियोमे भागीरथी गङ्गा, विद्याओमे अध्यात्मविद्या तथा सृष्टिका आदि-अन्त और मध्य मैं ही हूँ और अविनाशी काल भी मैं ही हूँ। तब अर्जुनका यह दृढ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमपिता परमेश्वर हैं और यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं इनका मानवरूपमे दर्शन कर रहा हूँ, किंतु उसे उनके ईश्वरीय रूपको देखे बिना पूर्ण सतुष्टि नहीं हो रही है। उचित भी यही है जब साक्षात् नारायण सम्मुख हो और उनका अनुग्रह भी भक्तपर हो तो फिर उनके परम ऐश्वर्यपूर्ण रूपका दर्शन भक्तोको अवश्य मिलना चाहिये। अत अर्जुनकी प्रार्थनापर परम अनुग्रहपूर्वक श्रीकृष्णने अपनी ऐश्वर्य-लीलाका दर्शन कराते हुए उससे कहा—'हे अर्जुन! तुम मेरे नाना प्रकारके एव नाना वर्ण और आकारवाले सैकडो तथा हजारो रूपोको मुझमे देखो। आदित्यो, वसुओं, रुद्रो अश्विनीकुमारो मरुद्गणो तथा बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय मेरे रूपोको देखो। मेरे शरीरमे एक ही जगह स्थित समस्त चराचर जगत्को और अन्य जो कुछ भी देखना चाहते हो, उसे देखो किंतु मेरा यह विराट् रूप तुम अपने इन प्राकृत नेत्रोसे नहीं देख सकते इसलिये तुम्हे दिव्य चक्षु प्रदान कर रहा हूँ, उनसे समस्त विभूतियो और ब्रह्माण्डको मुझमे देखो—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥
इहैकस्थ जगत्कृत्स्न पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥
न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्॥

(गीता ११। ५—८)

वेदान्तदर्शनके अनुसार जो (आत्मा) मनुष्यके शरीरमे विद्यमान है, वही (आत्मा) ब्रह्माण्डमे व्याप्त है। इसी परम सत्यको साकार करनेके लिये श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना वह विराट् रूप दिखाया जो अनेक मुख-नेत्रोवाला, अनेक अद्भुत दर्शनवाला, अनेक दिव्य आभूषणोवाला, अनेक दिव्य शस्त्रोको उठाये हुए, दिव्य मालाएँ धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप किये हुए सब प्रकारसे आश्चर्यमय, प्रकाशमय अनन्तरूप और सब ओर मुखवाला था। हजारो सूर्योके प्रकाश-जैसा प्रकाश भी शायद ही उस विराट्रूपके प्रकाश-जैसा हो। ब्रह्मा, विष्णु, शकर तथा अन्य सभी देवी-देवता पितर यक्ष, राक्षस सिद्ध आदि सभी उस विराट्-रूपमे अर्जुनको दिखायी दिये। जिस प्रकार वेदवर्णित पुरुषसूक्तमे परमात्माके दिव्य स्वरूपके दर्शन होते है उसी प्रकार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके विराट्रूपमे सब कुछ देखा और उस दिव्य स्वरूपको देखकर उसने भगवान्की स्तुति करते हुए उनसे प्रसन्न होनेकी प्रार्थना की। भगवान्ने उसे आशीर्वाद दिया और युद्धमे विजयी होनेका वरदान दिया, फिर अर्जुनको अपना मानव-रूप दिखाकर विराट्-रूपसे भयभीत हुए अर्जुनको उन्होने भयमुक्त किया। वास्तवमे यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-लीला है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुत परम सत्ता एकमात्र परब्रह्म परमात्माकी ही है अन्य सब भ्रममात्र है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन हमे सदा स्मरण रखना चाहिये—

मत्त परतर नान्यत्किंचिदस्ति धनजय।
मयि सर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७। ७)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे उत्कृष्ट अन्य कुछ नहीं है। मालाके सूत्रमे पिरोये हुए मणियोके समान यह समस्त ब्रह्माण्ड मुझमे पिरोया हुआ है।

वेदान्तदर्शनमे 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'—जगत्को मिथ्या और ब्रह्मको सत्य मानकर यह कहा गया है कि **'सर्वं खल्विद ब्रह्म'**। अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वदर्शन कराकर अर्जुनको यह शिक्षा दी कि मैं ही सब कुछ हूँ। सब मेरा ही स्वरूप है। मेरेसे अतिरिक्त जो भी प्रतीति हो रही है, वस्तुत वह भ्रम ही है। इस दिव्य ज्ञानका प्रदान करनेके लिये उन्होने अर्जुनको यह दिव्य रूप दिखाया और कहा कि अनन्य भक्तिद्वारा ही मैं प्राप्य हू। इसलिये जो मेरे लिये कर्म करनेवाला, मेरे परायण, मेरा भक्त अनासक्त तथा सब प्राणियोमे वैररहित होता है, वही मुझे प्राप्त होता है। यहासे भक्तियोगका प्रारम्भ होता है। जब व्यक्ति ईश्वरका ही सब कुछ समझने लगता है तब वह एकमात्र उन्हीका भक्त हो जाता है। यही मानव-जातिके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीलाका दिव्य सदेश है।

'कुमारसम्भव'में वर्णित शिवलीला

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरजन सूरिदेवजी)

भारतीय चिन्तनमे 'लीला' शब्दकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कोई भी विस्मयकारी कार्य 'लीला' हो जाता है। इस शब्दका अर्थ भी व्यापक है, किंतु 'लीला' शब्द प्राय रामलीला और कृष्णलीलाके अर्थमे रूढ हो गया है। 'लीला' को सगुणोपासनाकी दृष्टिसे मानवकी भाँति व्यक्त शरीर परब्रह्मकी केलि-क्रीडाओका वाचक शब्द माना जाता है। परतु परब्रह्मका यह क्रीडा निष्काम और निष्प्रयोजन होती है, अतएव अनेकान्तवादी दृष्टिसे भगवान्‌की लीला निर्गुण भी है। सगुण-रूपमे भोक्ता होकर भी निर्गुण-रूपमे अभोक्ता बना रहना भगवान्‌का लीलाविलास ही तो है।

प्रकृति और पुरुष अथवा शक्ति और शक्तिमान् लीला-निरत एक ही ब्रह्मके द्विधा-विभक्त रूप हैं और दोनोका परस्पर नित्य सम्बन्ध है। नित्य-सम्बन्धसे उनकी लीला भी नित्य-निरन्तर चलती रहती है और उनकी लीलाकी यह निरन्तरता ही जागतिक जीवन-चक्रका मूलाधार है। लोकजीवनमे भी किसीका सामान्यसे कुछ विशिष्ट आचरण 'लीला' ही कहलाता है।

शक्ति और शक्तिमान् जिस समय परस्पर लीला करते हैं उस समय वे दोनो आपसमे एक दूसरके लीलाकार्योसे पूर्वावगत रहते है, फिर भी लोकरञ्जनके लिये मनुष्य जैसी अनभिज्ञताकी स्थितिका प्रदर्शन करते हैं। वस्तुत लीलाके समय शक्ति और शक्तिमान् असली रूपमे न होकर छायामूर्ति बन जाते है। इसलिये 'छद्मवेश' और 'अनुकृति' शब्द भी लीलाके ही पर्याय है।

महाकवि कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' महाकाव्यमे महाशक्ति पार्वती और महाशक्तिमान् परमेश्वर शिवकी अतिशय मोहक लीलाका अनभिज्ञतामूलक ललित भाव-संदर्भमे ही उपन्यस्त किया है। स्वरूप-शक्तिके साथ भगवान् शिवकी क्रीडा केवल लीला ही तो थी। चूँकि लीलामे लालित्य सहज-भावसे संनिहित रहता है, इसलिये लीला किसी प्रकारकी हो, अच्छी ही लगती है।

महादेव शिवको वरके रूपमे प्राप्त करनेके लिये महादेवी पार्वती कठोर तप कर रही थीं। उन्होने अपने उग्र तपसे तपस्वियोके भीषण तपको भी मात कर दिया था। परमेश्वर शिवको परमेश्वरी पार्वतीकी शिवभक्तिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। वह ब्रह्मचर्यके तेजसे दीप्त तरुण तपस्वीका लीलारूप धारणकर पार्वतीके समक्ष उपस्थित हुए। जटाधारी ब्रह्मचारी शिव साक्षात् ब्रह्मचर्यके अवतारकी तरह दिखायी पडते थे। वह मृगचर्म एव पलाशका दण्ड धारण किये हुए थे उनकी वाणीमे प्रगल्भता थी।

अतिथि-सत्कारमे कुशल पार्वतीजीने आगे बढकर उस तरुण ब्रह्मचारीकी अगवानी की और विधिपूर्वक उसका आतिथ्य किया। कुछ क्षण-पश्चात् बिना किसी भूमिकाके

लीला-ब्रह्मचारी शिवजीने 'सुन्दरि!' 'कमलनयने!' 'सौम्यदर्शने!' 'कृशोदरि!' आदि विभिन्न प्रकारके मधुर सम्बोधनोंके साथ पार्वतीजीके उदात्त रूप, अलौकिक गुण, उच्च कुल और कठिन तपश्चर्याकी खूब प्रशसा की। उसके बाद उनके तपोजनित कष्टपर दु ख और सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होने उनसे पूछा—

कियच्चिर श्राम्यसि गौरि विद्यते
ममापि पूर्वाश्रमसचित तप ।
तदर्धभागेन लभस्व काक्षित
वर तमिच्छामि च साधु वेदितुम्॥

(कुमारसम्भव ५। ५०)

'हे पार्वति! तुम अब कितन कालतक तपस्याका कष्ट उठाती रहोगी? मेरे पास भी पूर्व-सचित बहुत सारा तप है। उसका आधा भाग लेकर तुम अपने अभीष्ट वरको प्राप्त करा। अथात् तुम अपने अनुकूल पति प्राप्त करो। लेकिन मैं इतना अवश्य जानना चाहूँगा कि तुम्हारा अभीष्ट वर कौन है?'

तब पार्वतीजीने अपनी सखीकी ओर दखा। उनकी सखीने उस लीलावपु ब्रह्मचारीको बताया कि मेरी सखी पार्वतीके वर भगवान् शिव हैं। उन्ह प्राप्त करनेके लिये जब कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा, तब यह अपन पिता पर्वतराज हिमालयकी आज्ञासे तपस्या करने हिमगिरिके गौरीशकर शिखरपर स्थित मयूरासे मण्डित इस तपोवनम चली आयी—

'जगाम गौरीशिखर शिखण्डिमत्'॥

(कुमारसम्भव ५। ७)

उस सखीने लीला-ब्रह्मचारी शिवको आगे बताया कि मेरी सखी पार्वतीने इस तपोवनम जिन वृक्षाको स्वय लगाया था व इसक कठार तपके साक्षी बनकर अब फलासे लद गये हैं किंतु महादेव शिवको पतिके रूपमे प्राप्त करनेका इसका मनोरथ अभीतक फलीभूत होनेकी बात तो दूर अकुरित भी नहीं हो पाया है। (कु० स० ५। ६०)

पार्वतीजीकी कठिन तपस्याके विषयम उनकी सखीकी बात सुनकर लीला-शिवने किसी प्रकारकी प्रसनता नहीं व्यक्त की। उन्हाने पार्वतीजीसे पूछा—'तुम्हारी सखीने जा कुछ कहा हैं क्या वह सत्य है या परिहासमात्र है?'

ब्रह्मचारीकी बात सुनकर जप करती हुई पार्वतीजीने अपनी स्फटिकमालाको अँगुलियासे समेटकर मुट्ठीमे ले लिया और सोच-विचारकर थाडेसे नपे-तुले शब्दामे कहा—

यथा श्रुत वेदविदा वर त्वया
जनोऽयमुच्चै पदलघनोत्सुक ।
तप किलेद तदवाप्तिसाधन
मनोरथानामगतिर्न विद्यते॥

(कुमारसम्भव ५। ६४)

'हे वेदज्ञानियोमे श्रेष्ठ! आपने मेरी सखीसे जो कुछ सुना है, वह सच है। [अपनी ओर सकेत करते हुए] यह तपस्विनी महादेवजी-जैसे उच्च पदस्थ महापुरुषको ही पतिके रूपमे प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी है। अवश्य ही मेरी यह तपस्या उन्हींको प्राप्त करनेके लिये है। यही मेरी आकाक्षा है।'

पार्वतीजीके अभीष्ट वरको प्राप्त करनेके दृढ निश्चयको जानकर लीलामय शिव तनिक भी विचलित नहीं हुए, वरन् अपने लीला-विलासका और भी अधिक विस्तार करते हुए उन्हाने पार्वतीजीके समक्ष शिवकी तीव्र निन्दा शुरू कर दी। उन्हान कहा—'ह पार्वति! भगवान् शिव तो चिता-भस्मसे धूसर अपने शरीरमे सर्प लपेटे रहते हैं। शवसकुल श्मशानमे वास करते हैं और वह बूढे बैलपर सवारी करते हैं। विवाहके बाद जब तुम बूढे बैलपर अमङ्गल देवता शिवके साथ घूमने निकलोगी, तब सारे नगरवासी हँसेंगे। तीन-तीन आँखोवाले उस पुरुषके न तो कुल-वशका कोई पता है, न ही घर-परिवारका। उनकी धन-सम्पदाका अनुमान तो तुम इसीसे लगा सकती हो कि वे दिगम्बर हैं, नगे घूमते हैं। कभी-कभी वस्त्रके नामपर व्याघ्रचर्म या हस्तिचर्म लपेट लेते हे। उस अशुभ व्यक्तिमे तुम्हारा पति बननेकी एक भी योग्यता नहीं है, फिर तुम व्यर्थ ही उनम क्या आसक्त हो रही हो?'

अपने अभीष्ट पतिक विषयम लीला-ब्रह्मचारीकी विपरीत बाते सुनकर पार्वतीजी क्रोधसे काँपने लगीं। फिर भी उन्होंने अत्यन्त धीरतापूर्वक शिवके बारम ब्रह्मचारीद्वारा कही गयी एक-एक बातका तर्कपूर्ण ढगसे जोरदार खण्डन किया और ब्रह्मचारीको दृष्टिम शिवक गुणोंके सम्बन्धम जितनी भी असम्मति और प्रतिकूलता थी उन सबको

सम्मत और अनुकूल सिद्ध किया।

पार्वतीजीने भर्त्सनाके स्वरमे ब्रह्मचारीसे कहा कि तुम्हारे-जैसे मूर्ख लोग ही महापुरुषोके चरित्रसे अकारण द्वेष करते है, क्योकि उन्हे उनके वास्तविक रूपका ज्ञान नहीं रहता है।

पार्वतीजीने अपने लीलामय शिवकी 'अलोकसामान्यता' और 'अचिन्त्यहेतुकता' को लक्ष्य किया था, इसलिये स्वय उन लीलामयीने सर्वथा अविचलित-भावसे लीला-ब्रह्मचारीको अपने मनोभावके अन्तिम निष्कर्षसे अवगत कराते हुए कहा—

अल विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु स ।
ममात्र भावैकरस मन स्थित
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

(कुमारसम्भव ५। ८२)

'अरे ब्रह्मचारी! मैं इस प्रकारके विवादकी कोई आवश्यकता नहीं समझती। शिवजीके विषयमें तुमने जैसा कहा है, वह यदि बिलकुल ठीक भी हो तो भी मेरा मन एकमात्र उनमे ही रमा हुआ है। प्रेम करनेवाला कभी निन्दासे नहीं डरता।'

पार्वतीजीने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा कि जो महापुरुषो या बडाकी निन्दा करते हैं, केवल वे ही पापके भागी नहीं होते, अपितु निन्दा सुननेवाले भी पापके सहभागी हाते हैं। पार्वतीजीके इस कथनपर ब्रह्मचारी भगवान् शिवके बारेमे और कुछ विरुद्ध वचन बोलता इसके पूर्व ही पार्वतीजी वहाँसे चल पडीं।

पार्वतीजी ज्यो ही वहाँसे चलीं, त्यो ही लीलाधारी शकरजीने अपना वास्तविक रूप धारण किया और मुसकराते हुए उन्हे यह कहकर जानेसे रोक दिया—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दास
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलो।
अह्राय सा नियमज क्लममुत्ससर्ज
क्लेश फलेन हि पुनर्नवता विधत्ते॥

(कुमारसम्भव ५। ८६)

'हे नताङ्गि! मैं आजसे तुम्हारे तपद्वारा खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ।' अपने चिराकाक्षित पतिको प्रत्यक्ष देखकर और उनके आश्वस्तपूर्ण वचनाको सुनकर पार्वतीजी अपना सारा तप क्लेश तत्क्षण ही भूल गयीं, क्योकि अभीष्ट फलकी प्राप्तिसे पूर्वप्राप्त क्लेश मुरझाये मनको फिरसे हरा कर देता है।'

इस कथा-प्रसगसे लीलातत्त्वके सन्दर्भमे महाकवि कालिदासकी यह केन्द्रिय भावचेतना उद्भावित होती है कि लीलोत्सुक शक्ति और शक्तिमान्की लीला 'अलोकसामान्य' तथा 'अचिन्त्यहेतुक' होती है और लीला-कालमे दोनोकी मन स्थिति भावैकरस रहती है। वस्तुत शक्तिसे ही शक्तिमान्को अपने स्वरूपकी यथार्थ उपलब्धि होती है।

कुमारसम्भवमे महाकवि कालिदासद्वारा उपन्यस्त भगवान् शिव और भगवती पार्वतीकी यह लीला-कथा परमार्थत जागतिक सृष्टिकी उत्पत्ति विकास और लयकी ही अकथ कथा-गाथा है।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टा ।
सपदि गृहकुटुम्ब दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। १८)

श्रीकृष्णकी लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दु ख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दु खमय—दु खसे सनी हुई घर-गृहस्थी छोडकर अकिचन हो जाते हैं अपने पास कुछ भी सग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोकी तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते है दीन-दुनियासे जाते रहते है, फिर भी श्रीकृष्णकी लीला-कथा छोड नहीं पाते। वास्तवमे उसका रस उसका चसका ऐसा ही है—यही दशा हमारी हो रही है।

निर्गुणोपासनापरक रामस्नेहि संत-साहित्यमें भगवल्लीला-दर्शन

(खेड़ापा रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री)

शास्त्रोंमें अनन्त नाम-धाम-रूप एवं लीलावाले परमात्माके निर्गुण तथा सगुण दो रूपोंका विशेष रूपमें उल्लेख प्राप्त होता है। रामस्नेहि-पद्धतिमें इनमेंसे निर्गुण-नामोपासना-पद्धतिके माध्यमसे निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका विशेष प्रतिपादन है। कारण कि इस सम्प्रदायके मूलप्रवर्तक श्रीजैमलदासजी महाराज (दुलचासर)-को वि० सं० १७६० के चातुर्मास्य-कालमें स्वयं भगवान्‌ने गूदड बाबाके रूपमें प्रकट होकर निर्गुण-नामोपासनाका उपदेश दिया था। गूदड बाबाके उपदेशको हृदयंगमकर पूर्वमें जैतराम नामवाले वे वैरागी साधु अपना सगुणोपासनापरक पूर्व-वेष छोडकर जैमलदासजी 'रामस्नेही' बन गये।

इसके बाद उनके उपदेश-आदेशोंका प्रचार करनेवाले रामस्नेहिसम्प्रदायमें श्रीहरिरामदासजी महाराज (सिंहस्थल), श्रीरामदासजी महाराज (खेडापा[1]), श्रीद्यालदासजी महाराज (खेडापा[2]) आदि अनेक आचार्य हुए। सभी आचार्योंने अपनी वाणीमें स्पष्टरूपेण निर्गुण ब्रह्मका[3] प्रतिपादन किया है।

निर्गुण ब्रह्मपरक होते हुए भी रामस्नेहि-पद्धतिमें परमात्माके सगुणरूपका पूर्ण समादर किया गया है। आचार्योंके अनुभव-वाणीमें निर्गुण तथा सगुणकी भ्रान्ति-निवारणार्थ आचार्योंका स्पष्ट कथन है कि—

हरिया निर्गुण मूल है सुरगुण शाखा पान।
भगति बीज फल मुगति है, और सकल धम आन॥
सुरगुण निरगुण रामदास तू एकोकर जाण।
एक ब्रह्म सब बीचमें सम्रथ पद निर्वाण॥
किस कूं निन्दिए वन्दिए, एक पिता अरु पूत।
निरगुण सुरगुण यूं भया (ज्यूं) ताणै पेटे सूत॥

आचार्य-वाणीके अनेक स्थलोंमें इस तथ्यकी सत्यताके दर्शन होते है। समय-समयपर हुए परमात्माके विभिन्न अवतारोंमेंसे त्रेतायुगीन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामावतार तथा द्वापरयुगीन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णावतारकी भगवल्लीलाएँ रामस्नेहि-जनोंको बहुत ही अनुकरणीय लगीं।

मरजादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र गुरु जम।
लीला पुरुषोत्तम महीं जदुपति कृष्ण सुप्रेम॥

इस कारण उन्होंने रामायण, श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि सद्ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके इन दोनों अवतारोंकी भगवल्लीलाओंका सार-तत्त्व ग्रहण कर लिया।[4]

रामस्नेहि-जन रामनामरूपी परमधन देनेवाले गुरु महाराजको परमात्माका साक्षात् अवतार मानते हैं। इस कारण उन्होंने अपनी वाणीमें बडे ही स्पष्ट शब्दोंमें गुरु भगवान्‌की आध्यात्मिक भगवल्लीलाओंको तथा हृदयंगम किये गये राम-कृष्णकी भगवल्लीलाओंको समान-रूपसे दर्शाया है।

१-खेडापाके तृतीय आचार्य श्रीपूरणदासजी महाराजकी वाणीके ग्रन्थ 'गुरुमहिमा'में रामावतारकी भगवल्लीलाका दर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—

अवतार कला षोडष कहाय सजुक्त गुणा रेखा सु भाय।
इत सन्त नित्त अवतार धार घट अनत कला गुण रेख सार॥ १॥
वैहे[5] प्रगट अजोध्यापुरी नाम यहा भइ नग्री काया स ताम।
ता पिता निमो दशरथ कवार, यहा ब्रह्म तात जुग जुग मुरार॥ २॥
हित मात कुशल्या कहूं सोय यहाँ भइ भक्ती जननी स काय।
माई समात[6] कैकई प्रवान अप्रीति यहा प्रगटी निधान॥ ३॥
वैहे सीता भइ सतवन्त सुद्ध यहा भई प्रियै पतिव्रता बुद्ध।
दिल साच वाच लछमण सु वीर विज्ञान यहा कारण स धीर॥ ४॥
भये भर्थ चत्रघण[7], दोय भ्रात, वैराग्य त्याग ऐसे विख्यात।
सुत दोय भये बल बुध विशाल इह ग्यान एक दूजे दयाल॥ ५॥
वड भीर धीर भृत कपीराज इहा अग्याकारि निजमन अग्राज।
येह भयो समो आनन्द सुभाय कोउ काल प्रगट असुरान धाय॥ ६॥

१-राम राम निर्गुण कर भक्ती सगुण छाँड देवो आशकी। (श्रीद्याल-कृत ग्रन्थ परचीजी)

२-भेष पन्थका सग तजि दीया होय निरन्तर हरि पद लीया॥ (श्रीद्याल-कृत परचाजी)

३-नमो निर्गुण नमो नाथू, नमो देव निरंजनम्। नमो सम्रथ नमो स्वामी नमो सकल सिरजनम्॥
(ब्रह्मस्तुति—श्रीहरिरामदासजी म०)

४-रस रामायण सिरमौर सार भागोत वचन भागवत उचार। भारत भगवद्गीता विशेष सो सार सार सब लिया देख॥
(जन्मलीला—श्रीपूरणदासजी म० खेडापा ३)

५-उधर, ६-विमाता ७-शत्रुघ्न।

ताको ज नाम रांवण कहाय ले गयो सीत पुर लक माय।
गढ त्रिकूट दुरग[१] खाई कहाय चौफेर घेर सूभर[२] भराय॥ ७ ॥
इक बाग जाग तहाँ सीत ब्राज, जल सजल श्रोज कलिया पुलाज।
यहा प्रगट भयो रावण मनाज, सो बुध सीता ले गयो भाज॥ ८ ॥
पुर लक अविद्या सिद्ध भूप, रग सार द्वार कीनी अनूप।
वन किला दुरग भ्रम रूप नाम खाई स कुमत ता लगी ताम॥ ९ ॥
जल मोह द्रोह ता विच रहाय, चौफेर घेर सूभर भराय।
इक रमन भवन है बाग सिद्ध, ता कुसग नाम कहिये प्रसिद्ध॥१०॥
विष लहर जहर कलियां नवीन, ता बीच जाय पधरायदीन।
भल भ्रात जास कुभकरण नाम अहकार यहा ऐसो गुलाम॥११॥
पुनि और विभीषण भ्रात धाय, सुधर्म यहा प्रगट्य सुभाय।
ताके ज वडो सुत मेघनाद, अपजस्स यहां जेठो असाद॥१२॥
लख अवर भये ताके सुतान, बीतर्क तर्क इनके कितान।
वेहे भई मन्दोदरि प्रिये प्यार माया स नार कीनो व्योहार॥१३॥
येह भयो समो ऐसे अशेष ततकाल रामचन्द्र चढ़ वशेष।
गज बाज साज सिक्का तुरग सेन्या स चत्रगुन[३] लीध सग॥१४॥
वड सूरवीर जोधार सार गिन कहा कहू आवै न पार।
अरि मार सार अरू सीत लीध, अवतार धार येह काज कीध॥१५॥

(२) खेडापाके द्वितीय आचार्य श्रीद्यालदासजी महाराजके ग्रन्थ 'श्रीगुरुप्रकरण' मे 'भागवतसार'-प्रकरणके अन्तर्गत कृष्ण-चरित्र-वर्णनके रूपमे भगवल्लीला-दर्शन इस प्रकार वर्णित है—

जादम्म वश तातें प्रतष्ट श्रीकृष्ण रूप तारन्न सृष्ट।
अवतार धरण भगता सिहाय अरू ब्रह्मरिषी अवनी उछाय॥१॥
वसुदेव भवन कृष्णा जनम्म गोकल विचरत्त आनन्द परम्म।
सब बाल चिरत वय वृन्द ताम, अप्पार चरित असुरा विराम[४]॥२॥
पूतना प्राण पय पान कीन, शकटासुर मस्तक सजादीन।
पुनि तिणावृत्त तोडे किवाड़, बक्कासुर बच्छासुर पछाड़॥३॥
जहै धनक भ्रात परलब्ध अन्त डावानल राख्या गोप जन्त[५]।
किस भग नाग दवन विचार सब गोप ग्वाल रक्षक मुरार॥४॥
पुनि नन्द वचाए उरग अत व्रिजकन्या वर्त पूरण वरत।
जँहै जिगपतनी हुय प्रश्न ताम दुज ताइ खाय वेमुख विराम॥५॥
धर गोरधन्न उद्धार कीन, पुनि कामधेनु ले शक्र दीन।
जिह्वा विक्षेप कृष्ण वनाव कर राम चिरत[६] गोपी उछाव॥६॥
दुरबुद्ध शखचूड़स्स मार, अरिष्ट नाम केशी सघार।
अक्रूर दरश गवनं स्तूथ[७], प्रस्थान राम-कृष्ण ग जूथ॥७॥
व्रजनार व्रेहनी भई ताम कटाक्ष मुक्ख आराम साम।
सपलक्क-सुत्त[८] सासो निवार, वैराट मुक्ख जमना विचार॥८॥
परवेश करत वस्तर छिनाय, सिद्धाम जास मुगत मिलाय।
रग फूल पैर माली किलान, दिवरूप कुबज्या गध मान॥ ९ ॥
कवलियापीर गज मुष्ट मार, एहगत्तमत्त चाणूर छार।
भयकप कस हुय अन्तकाल, पुनि गुरु सदीपनि भेट बाल॥१०॥
मथुरा सुथान जादू प्रतष्ट, हित उग्रसेन जान्यो सिसष्ट।
बलदेव आद उद्धव मुरार, सब जुरासिद्ध सेन्या सघार॥११॥
पुनि जमनइन्द कू मौंच दीध तैह कुशस्थली अस्थान कीध।
जँहै वृच्छ कलप आदान राज, प्रापत सुधर्मा सभा काज॥१२॥
जुध जीत रुकमनी हरिहै ताम शिशपाल जात खोयन[९] छिनाम।
वहै अप्रमान मद मेट सोइ, सब दुष्ट रए आपै स कोइ॥१३॥
पणशक्र जुद्ध कीनो बलष्ट, बाणासुर छेदे भुजा अष्ट।
जदुनाथ जीत जहां तहा सदाय, पुनि प्राग्य[१०] जीत पर मार ताय॥१४॥
पुनि अग्नि नीर सस्तर पहार सब पवन अनड़ मिट पच वाड़।
फिर पच सुग काटे दयाल षोड़स्स सहसशत हरिहै बाल॥१५॥
पुनि नृपत चनेरी सजा दीध, हत मध्यावाद देवस्स कीध।
नरपत्तशाल दतवक्र[११] मार पुनि दइत समर कपि दुमन छार॥१६॥
हत पच सुरा दइतान आद कर दगद पुरी-काशी विख्याद।
भारस उतार भूमीक सोय पाण्डवा प्रीत आनन्द जोय॥१७॥
कर राजसी जिग्ग[१२] सन्ताप नृप्प, मनवछ कर्म सिध काज अर्प।
पुनि विप्र श्राप जदुकुल सहार, सुर अन्ज इन्द वन्दन मुरार॥१८॥
उलकासपात हुय पुरी माय परवास[१३] छैत्र सब कू ले जाय।
उद्ध सवाद दे तत्त बोध आतमाराम आनन्द शोध॥१९॥
इम लीला पुरुषोत्तम जदुपति कृष्ण कहाय।
रिषि मुनिजन अवतार सत सतगुरु सबही माय॥२०॥

१-दुर्गम २-गहरा समुद्र ३-चतुरगिणी ४-सफाया ५-जन्तु=गौ आदि प्राणी ६-रासलीला ७-स्तुति ८-श्वफल्क-पुत्र=अक्रूर ९-अक्षौहिणी सेना १०-प्राग्ज्योतिषपुर, ११-दन्तवक्त्र १२-राजसूय यज्ञ १३-प्रभास (पाटण)-क्षेत्र।

श्रीकृष्णकी लीलाओंसे पगे बुंदेली लोक-गीत

(डॉ० श्रीहरीमोहनजी पुरवार)

बुंदेलखण्डके जन-जीवनमें श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप जहाँ निरन्तर पूज्य है, वहीं भक्त गोपियोंके साथ उनकी तात्त्विक क्रीडा-लीला भी मननीय है। बुंदेलखण्डके गोपीभावपूर्ण लोकगीतोंमें जहाँ मन आनन्दविभोर हो जाता है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णका यह सत्य संदेश प्राप्त होता है कि यह शरीर तो केवल वस्त्र है इसलिये इस शरीरकी आत्माको परमात्माके साथ मिलने दो। लीला-क्रममें एक बार भगवान् श्रीकृष्ण एक गोपीके घर उसकी गाय दुहने गये, परंतु गोपीने गाय दुहनेसे मना करते हुए उलाहना दी—

> कान्ह तोसें अब न दुहाऊँ गैयाँ।
> भोर होत खिरकनमें ठाड़े हेरत चोरकी नैयाँ।
> कछु कारे कछु ओढ़ें कमरिया बिचकत है मोरी गैयाँ॥

—परंतु श्रीकृष्ण वहाँसे हटे नहीं और अपनी तिरछी नजरोंसे गोपीको देखते रहे, जिससे गोपी अपना सब कुछ भूल गयी और श्रीकृष्णके आत्मिक सम्मोहनसे मोहित हो गयी। इस गीतमें इसीका वर्णन किया गया है—

> यक विलोकन तिरछी चितवन मन बस गे वो सेन दृगन की।
> जयसे कछू न सुहात सखी री मृदु मुसक्यान वो प्रेम लगन की॥
> लोक लाज कुल कान न भावत सुध न रही तब असन बसन की॥

यशोबालकके नेत्रोंसे मोहित गोपी जब अपने अन्तःस्तलको देखती है तो अनायास ही भगवत्प्रेमके वशीभूत हो वह कहने लगती है—

> कब मेरे मंदिर आय हो प्यारे घनश्यामा प्रभू।
> जैसे कितनी विदुर घर कीन्हों जैसे गउअन की सुध लीन्हों
> जैसे रखी द्रोपदी दीनों जैसे कुबरी अपनी कीन्हों
> एसे हमको कभी अपनाय हो प्यारे घनश्यामा प्रभू॥

जब गोपिकाने अपना यह वृत्तान्त ब्रजभूमिसे बाहर रहनेवाली अपनी अन्य सखियोंको बतलाया तब वे सखियाँ भी श्रीकृष्णके प्रेममें दीवानी होकर कहने लगीं—

> चलो सखी बसिये तहँ जाइ जहाँ यदुराई॥
> नार बहै यमुना सुखदायी पाप हटै एक बार नहायी।
> बाजत नाम पुण्य महाई मन की सलिलादिक आयी॥
> रूप छटा आनन्द बढ़ायी अपनी आनँद मग्न जनायी।
> ध्यान धरें उनकी ठकुराई सुर नर मुनि सब आनँद पायी॥

एक दिन सभी गोपियाँ इकट्ठी होकर श्रीकृष्णको घेर लेती हैं और हास-परिहास करती हुई उनसे उनके श्यामवर्णके विषयमें प्रश्न करती हुई कहती हैं—

> तुम हम नीके लाला कैसे दैये गारी॥
> तुमरे भ्रात सभी है गोरे, गोरे पितु महतारी।
> साची कहौ न काची अब तुम भये कहाँसे कारे॥
> हास-रास सुनके अरु गुन के, लजीं सभी सुकुमारी।
> चतुर बधु सुखसिंधु मुखनको इक टक रहीं निहारी॥

नटखट नन्दलाला एक दिन दुपहरीमें एक गोपीके घरमें मक्खन खाने घुस गये। छींकेपर मक्खनकी मटकी थी। उसी छींकेसे लटके हुए श्रीकृष्ण मक्खन खा रहे थे। इस समूची लीलाको देख वह गोपी मैया यशोदासे कृष्णकी शिकायत करने गयी। मैया उन्हें डाँटने लगी परंतु कन्हाईको तो अब मक्खनका चसका लग गया था। इसलिये अब वे गोपियोंको रास्तेमें रोककर उनसे मक्खन छीननेकी लीला प्रारम्भ कर देते हैं। मक्खन छीननेमें कुछ-न-कुछ तो बरजोरी होती ही है, उसी बरजोरीका चित्रण निम्न गीतमें है—

> हटो छाड़ो तुम गैल मोरी गागर ढुड़काई बड़ ढीट हो कन्हाई॥
> फटी रेसम की सारी जर तार की किनारी टूटी मोतिन लड़ न्यारी।
> दूधके झकोरन में बहिंयाँ मुरकायी बड़ ढीट हो कन्हाई॥

इसी बरजोरीमें गोपी अनमन-मनसे उलाहना देती हुई कहती है कि उसे न तो नन्दबाबासे डर है न ही यशोदासे। यही उलाहना इस गीतमें वर्णित है—

> छाड़ो न डगर हमारी कन्हैया नाईं डरत नन्द बाबासे।
> छाड़ो आँचल जान दओ मोहन फेर जे सारी जातीं कन्हैया।
> आड़े फिरत बटवारी कन्हैया।

एक बार श्यामकी मुरलीकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। वे सभी गोपियाँ अपने शरीरकी सुध-बुध भूल गयीं और श्यामकी मुरलीकी सुरीली तानसे मन्त्रमुग्ध हो गयीं। इसका चित्रण इस गीतमें इस प्रकार है—

> कैसी मुरलिया बजाई कन्हैया प्यारे कैसी मुरलिया बजाई।
> ग्वालिनें सभी चलीं जैसी ठाड़ी धीं तैसीं सभी उठ धाईं॥
> हाथ के भूषन पाँव में पहिरे सो पाँवके हाथन मेलीं।

बसगुपाल सदा देओ दरसन धन्न धन्न श्रीयदुराई॥

इन लीलाओके बाद गोपियाँ यह महसूस करती हैं कि श्याम तो लीलाधारी हैं। यह सब उनकी लीलाओका ही एक भाग हे, क्योकि श्यामसुन्दरका भेद तो वेदा, पुराणोको भी नहीं मिल पाया है। इसी कारण वे स्वय कहती हैं—

तुमरी लीला विचित्र मुरारि हो श्याम छलिया हो बड़े।
घर घर मिसरी माखन खाये प्यार सखन आनद दिवाये॥
गोपिन भकर जैव जो पाये उनके पति के रूप बनाये।
तुमरा बेदहु न पावे पार हो श्याम छलिया हो बड़े।

गोपियाँ साधारण गोपियाँ नहीं हैं। इनके विषयम स्वय श्रीकृष्णभगवान्ने ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड (२७। २३८—४०)-म कहा है—

यथाह च तथा यूय न हि भेद श्रुतौ श्रुत ।
प्राणा अह च युष्माक यूय प्राणा मम प्रभो॥
व्रत वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिद प्रिया ।
सहागताश्च गोलोकाद् गमन च मया सह॥
गच्छत स्वालय शीघ्र वोऽह जन्मनि जन्मनि।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूय म नात्र सशय ॥

अर्थात् 'जेसा मै हूँ, वैसी ही तुम हो। हमम-तुममे भेद नहीं है। में तुम्हारा प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूप हो। प्यारी गोपियो! तुम लोगाका यह व्रत लोक-रक्षाके लिय है, स्वार्थ-सिद्धिके लिये नहीं। क्योकि तुम लोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हे वहाँ चलना है। अब शीघ्र घर जाआ। में जन्म-जन्मम तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोसे भी बढकर हा, इसम सशय नहीं हे।'

बुदेली जन-मानसके मानस-पटलपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाआकी गहरी छाप हे, जो हम सबकी लोकगीताकी वाणीम प्रस्फुरित होती स्पष्ट दिखलायी पडती हे।

पुरातत्त्वमें श्रीकृष्ण-लीला-चरित्रके शिलापट्टकी प्राप्ति

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशकुमारजी उपाध्याय नार्मदेय एम्० ए०, पी-एच्० डी० आचार्य)

प्राचीन वस्तुआका सभ्यता-सस्कृतिजन्य निदर्शन पुरातत्त्व कहलाता है। इतिहास सभ्यता शिक्षा, समाज, मान्यताएँ, कला आदि सबका वर्णन पुरातत्त्वमे होता है। विभिन्न प्रकारकी प्राचीन कालकी वस्तुएँ और उनका सास्कृतिक दिग्दर्शन पुरातत्त्वका प्रधान विषय है।

जहाँतक शहडोल जिलेके पुरातत्त्वका प्रश्न है—वहाँकी सर्वप्रथम पुरातात्त्विक खाज प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पी० डी० बेगलर महोदयने १८७३-७४ म की, जो कि अग्रेज सरकारके एक प्रमुख पुरातत्त्व-अधिकारी थे। इसके बाद मेजर जनरल कनिघम महोदयने १८८४-८५ मे इस स्थानकी पुरातात्त्विक खाजकर अपने ग्रन्थ 'भारतीय पुरातत्त्व'के सातव खण्डम शहडोल जिलेका वर्णन किया है। बेगलर महोदयकी रिपार्टके समय शहडोलका नाम 'सहजोरा' था। फिर वादम १८९८ की रिपार्टसे यह 'शहडोल' हुआ। शहडोलके पुरातत्त्व और इतिहासको कलचुरी-कालीन इतिहासके माध्यमस अनेक आधुनिक पुरातत्त्वविदोने इसके खोज एव प्रदर्शनम अपना बहुत बडा योगदान दिया है तथा समय-समयपर पुरातात्त्विक सर्वेक्षणाको पत्र-पत्रिकाआके माध्यमस जन-सम्मुख किया है।

सोहागपुरके इलाकेदार स्व० श्रीराजन्द्रबहादुरसिहजी एव स्व० कुँअर मृगन्द्रसिहजीक द्वारा जिलेकी दुर्लभ मूर्तियाका सग्रह करके पुरातात्त्विक निधिका सरक्षण किया गया हे जो राजाबागमे आज भी दर्शनीय है। यहॉका जिला-पुरातात्त्विक-सग्रहालय भी दर्शनीय है।

लीलाधर लीलापुरुपोत्तम श्रीकृष्णकी लीलासे सम्बन्धित कलचुरी-कालीन शिलापट्ट भी इस जिलेमे सारसडोल और हर्रा नामक गाँवसे प्राप्त हुए हैं। इन शिलापट्टाका वर्णन कनिघम और बगलरके शाधपत्राम नहीं हे। इसकी सर्वप्रथम खोज किसने की यह तो निश्चित नहीं है पर कुँअर मृगेन्द्रसिहजीक सग्रहालयम श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित तीन शिलापट्ट रखे हुए हैं। कुछ शिलापट्ट अभी भी हर्रा नामक गाँवमे हैं। श्रीकृष्ण-जन्मसे सम्बन्धित माता दवकी-द्वारा उन्ह दूध पिलाय जाने आदिका अङ्कन-शिलापट्ट स्थानीय दुर्गा-मन्दिरके शीतला-मन्दिरमे अभी भी लगा हुआ हे। श्रीमद्भागवतकी श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित यहाँ प्रमुख चार शिलापट्ट हे। इन चारा शिलापट्टाम श्रीकृष्ण-लीलाका सम्पूर्ण चरित्र दिखाया गया है—

प्रथम शिलापट्टम—भगवान्क द्वारा पृथ्वीको

भगवल्लीला-दर्शन

[भगवत्प्राप्तिके निमित्त भगवान्‌की लीला-कथाका श्रवण, लीला-चिन्तन मनन ओर निदिध्यासनक साथ-साथ भातिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओका दर्शन भी साधन-कोटिमे माना गया है। इसलिये प्राचीन कालसे ही भारतवर्षके विभिन्न क्षेत्रामे—तीर्थस्थलाम रामलीला, रासलीला, नृसिहलीला तथा दशावतार आदि लीलाआका आयोजन होता आ रहा है जिसका आज भी दर्शनकर भक्तजन स्वयको कृतकृत्य मानते हे। इस प्रकारकी परम्परागत लीलाओका यहाँ दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।—सम्पादक]

कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला

[रामलीलाआका दिग्दर्शन]

(डॉ० श्रीभानुशकरजी महता)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अयाध्या एव काशीम श्रीरामचरितमानसका प्रणयन किया। उनका यह महाकाव्य वर्तमान युगम श्रद्धा-विश्वास तथा आस्थाका सबल आधार बन गया। महाकवि गास्वामीजी बडे ही प्रगतिशील दूरदर्शी कवि थ आर अपन युगकी जनताक लिय राम-कथाका सदश प्रचारित करने-हतु उन्हाने 'रामलाला'का भी आयाजन किया। '*हरि अनत हरि कथा अनता*' कहकर उन्हाने उन सेकडा रामकथाआकी आर सकत किया हे जा इस ससारम प्रचलित ह। विगत हजारा वर्पोम राम-कथापर आधारित नाटक खल जाते रहे हैं। हरिवशपुराणम एक एसे ही रामकथापर आधारित नाटकके मचनका स्पष्ट उल्लख मिलता है। कहत हैं कि त्रतायुगम जब रामका वनवास हुआ तो विरही अयाध्यावासी उनकी बाल-लीलाआका स्मरण अभिनय करक विरहकी अवधि व्यतीत करते रह। पुन लव-कुशने राम-दरवारम राम-कथाका गायन किया था। इनक मचनकी शलाक विषयम हम कुछ भा नहीं जानत, शायद भरतक नाट्यशास्त्रस पूर्वकी 'कुडिअट्टम' शैलीम नाटक हात थे। तुलसी स्वय रघुनायक-लाला हनुमन्नाटक पुत्तलिका-नाटक आर छाया-नाटकका चर्चा करत ह। भरतमुनि लाकधर्मी आर नाट्यधर्मीकी चर्चा करत हैं। समृद्ध सस्कृत-साहित्यम राम-कथापर आधारित अनेकमार्गीय नाटक हैं। मध्य युगम 'ललित' आर 'दशावतार' लीलाआकी परम्परा थी हरिकथा चलता थी। आधुनिक युगम लाकनाट्य ओर रामलालाक साथ ही यूरापस आयातित मचपर रामकथा (पारसी थियेटराम) अवतरित हुइ आर स्वतन्त्र भारतम सिनेमा रडियो टी०वी०, वीडियो ओर आधुनिक रगमचकी विविध शलियाम राम-कथा दखी जा सकती है। कवल भारतम ही नहा, विदेशाम भी रामकथाक मचन हुए ह।

'रामलाला' का समझनेक लिय 'राम' आर 'लीला'—इन दानाको समझना आवश्यक है। काशीम तुलसाक समयस ही रामलीलाक अलावा कृष्णलाला (व्रजकी रासलीलास भिन्न) वामनलाला, नृसिहलीला, फाग-लीला दशावतार आर ध्रुवलीला [अब विलुप्त] हाती रही ह। इन्ह कभी भी नाटकी स्वाँग तमाशा या नाटक नहा कहा गया [जबकि इन सभी विधाआम राम-कथाआका मचन हाता रहा है], बल्कि कहा गया 'लाला'। अत 'लीला'क स्वरूपपर विचार करना हागा।

लीला

लाला' ता हमेशा प्रभुकी हाती ह उनका मायाका विस्तार ही लाला ह। जब धर्म आर भक्तपर सकट आता ह ता करुणामय भगवान् अवतार धारणकर 'लीला' करत

है और भक्तगण इस अवतारकी स्मृति ताजा करने-हेतु तथा प्रभुके अद्भुत चरितका गुणगान करने-हेतु एवं उनके क्रियाकलापोंकी स्मृति दुहराने-हेतु जब अनुकरण करते हैं, अनुकीर्तन करते हैं तब उसे भी 'लीला' ही कहते हैं। नायिका विरहकी अवस्थामें प्रियके वेश, चाल और बोलीके अनुकरण करनेमें जो 'हाव' करती है, उस कौतुक-क्रीडाका नाम है 'लीला'। इसमें मनोरंजन भी है साथ ही एक विशेष प्रकारसे भगवान्‌की पूजा अर्चना नाम-स्मरण तथा गुणानुवाद भी है। इसीसे तो रामनगरकी रामलीलाका संकल्प-वाक्य ही है—'**यत्कृत्वा चाथ दृष्ट्वा हि मुच्यते पातकैर्नरः**' अर्थात् इसे करने और देखनेसे मानव पापसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार लीला एक धार्मिक अनुष्ठान है, यज्ञ है, कर्मकाण्ड है, कीर्तन है श्रद्धा-ज्ञापन है, विश्वासकी शोध है और आस्थाका दर्शन है। मायाके लोकमें मायापतिके मायामय दर्शन पाकर भक्त धन्य हो जाते हैं। 'लीला' बहुत कुछ है, पर 'नाटक' नहीं है।

लीलाके मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं— (१) नित्य-लीला (२) अवतार-लीला और (३) अनुकरणात्मक लीला।

नित्य-लीला—

वैष्णव शास्त्रोंके अनुसार परम ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा साकेतधाममें अनवरत 'नित्य-लीला' में संलग्न हैं। इसी लीलाके अन्तर्गत विश्वका व्यापार चल रहा है। यह नित्य-लीला चिरन्तन, शाश्वत और अविराम परम आनन्ददायिनी है।

अवतार-लीला—

जीवोंका उद्धार करनेके उद्देश्यसे अवतीर्ण हो प्रभु जब अपनी पार्थिव लीलामें विश्वोपयोगी ऐश्वर्य-गुणोंको प्रस्तुत करते हैं तो उसे 'अवतार-लीला' कहते हैं। इस लीलाकी अति पावन भूमि रामावतारमें 'अयोध्या' है। साकेतकी नित्य-लीला अन्तरङ्ग लीला है, अयोध्याकी अवतार-लीला बहिरंग लीला है। अवतार-लीला सगुण और प्रकट-लीला है।

अनुकरणात्मक लीला—

राम (या अवतार)-द्वारा किये गये सारे क्रिया-कलापोंका उनके भक्तजन जब अनुकरण करते हैं तो उसे 'अनुकरणात्मक लीला' कहते हैं और यही इन दिनों चलित 'रामलीला' या अन्य लीलाएँ हैं।

'रामलीला' एक धार्मिक अनुष्ठान है, जिसका उद्देश्य है 'लोक-कल्याण'। रामलीलामें राम-कथाके अतिरिक्त धार्मिक कर्मकाण्ड पूरी गम्भीरता और विधि-विधानसे सम्पन्न किये जाते हैं। रामलीलाका आरम्भ ही संयोजक-द्वारा सविधि संकल्प लेनेसे आरम्भ होता है जैसा किसी भी धार्मिक कार्यारम्भके लिये जरूरी है और समापन भी विधिवत् विसर्जन करके होता है।

प्रभु रामके यशका कीर्तन—'रामलीला' अपने विशुद्ध रूपमें '**रामकथावृत्तान्तदर्शनम्**' के साथ ही '**भावानुकीर्तनम्**' भी है। हम अधम जीव अपने प्यारे प्रभुसे बिछुड़े विरही लोग हैं उनकी नरलीलाका अनुकरण करके मनको धीरज बँधाते हैं और आशा करते रहते हैं कि अनुभूतिके किसी विरल क्षणमें बड़े भाग जागे हों तो प्रभुकी एक झलक मिल जायगी, एक क्षणके लिये साक्षात्कार भी हो जायगा और यह भी अनुभूत सत्य है कि रामलीलामें कुछ विरल क्षणोंमें भक्तोंको अनेक बार प्रियके दर्शन हुए हैं हालाते हालमें इलहाम हुआ है।

रामलीला केवल खेली नहीं जाती, बल्कि व्यापक अर्थमें पढ़ी सुनी और देखी जाती है। रामलीला एक जीवन्त अनुभव है एक सांस्कृतिक पर्व है, जो '**सत्यमेव जयते नानृतम्**'-का संदेश लेकर आती है।

भारतकी प्राचीन नगरी काशीमें परम्परागत-रूपसे जो रामलीलाएँ होती आ रही हैं उन्हें यहाँ उदाहरण-रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाराणसीमें रामलीला कबसे हो रही है यह कहना सम्भव नहीं है। 'रामलीला' के प्रणेता मेघा भगत और तुलसीदास अवधमें 'रघुनायक-लीला' देखने जाते थे। तुलसी 'लीला' 'महानाटक' और नाट्य-शास्त्रके सूक्ष्म रहस्योंसे भलीभाँति परिचित थे। इसीलिये तो कहते हैं—

> जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
> सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
>
> (रा०च०मा० ७। ७२ ख)

तुलसी हनुमन्नाटकका भी उल्लेख करते हैं। किंवा उपलब्ध प्रमाणोंके अनुसार संवत् १६०० (मानसकी रचनासे

पूर्व)-के लगभग श्रीनारायणदास उर्फ मेघा भगतने रामलीलाका आयोजन किया (वाल्मीकिरामायणपर आधारित झाँकी-लीला) और यह लीला तबसे बराबर चल रही है।

प्राचीन नगरोंमें रामलीला कैसे होती थी, यह हम नहीं जानते; क्योंकि अधिकतर रामलीलाएँ (जैसे चित्रकूट (बाँदा), अयोध्या) कालान्तरमें बंद भी हो गयीं और अब कुछ कालसे नये रूपमें पुनः आरम्भ हुई हैं। आइये ४०० से अधिक वर्षोंसे अपरिवर्तित-रूपमें चल रही काशीकी रामलीलाओंका एक विहगमावलोकन करें।

वाराणसी और उसके उपनगर—रामनगरकी लीलाओंमें तीन-तीन मंचीय रूप देखे जा सकते हैं। पहला है—प्राचीन चित्रकूटकी राम-लीला अर्थात् झाँकी 'रामलीला'। दूसरा है—तुलसीकी रामलीला अर्थात् 'चारघाटकी रामलीला' और तीसरा है—रामनगर-शैलीकी घटित 'रामलीला'।

चित्रकूटकी रामलीला—

यह लीला आज भी वाराणसीमें होती है। वैष्णव भक्त नारायणदास मानसकी रचनासे पूर्व काशीमें रामलीला करते थे। बादमें वे तुलसीके शिष्य बने और मेघा भगत कहलाये। उनकी लीलामें 'रामचरितमानस' का पाठ होने लगा, पर शैली वही वैष्णव मन्दिरोंकी झाँकीके दर्शनकी ही रही। इस रामलीलासे बहुत कथाएँ जुड़ी हैं। एक तो यह कि अयोध्यामें सरयू-तटपर मेघा भगतको राम-लक्ष्मण अपना धनुष-बाण सौंपकर चले गये, भगत उन्हें पहचान न पाये। बहुत दुःखी हुए। तब स्वप्नमें निर्देश मिला—'काशी जाकर रामलीला करो, वहाँ हम दर्शन देंगे।' मेघा भगत धनुष-बाण लेकर काशी आये और रामलीला करने लगे, जिसमें आज भी एक दिन इस धनुष-बाणकी झाँकी होती है। इसी लीलाके भरत-मिलापमें अनेक आस्थावान् लोगोंको उस अरूपकी एक झलक मिली है। चित्रकूट-रामलीला-शैलीमें चित्रकूट (बाँदा) और अयोध्यामें भी लीला होती थी, पर ये लीलाएँ अब तिरोहित प्राय हो चुकी हैं। चित्रकूट-लीलासे ही सम्बद्ध एक चमत्कारी घटना है— सन् १८११ का, जिसमें पादरी मैकफर्सनके ललकारनेपर हनुमान्का चरित्र निभा रहे पं० टेकराम भट्ट प्रभुकी आज्ञा लेकर वर्षा ऋतुमें बाढ़ग्रस्त ४० हाथ चौड़ी वरुणा नदी छलाँग गये। हनुमान्जीके मुकुटकी समाधि और विग्रह आज भी वाराणसीमें विद्यमान है। बारम्बार इस लीलामें चमत्कार हुए हैं, अलौकिकताके प्रमाण मिले हैं और अभी हालमें, जब बी० बी० सी० दूरदर्शनने भरत-मिलापका वर्जित स्थलसे छायाङ्कन करना चाहा तो उनका कैमरा ही नहीं खुला।

चित्रकूटकी लीला बहुस्थलीय लीला है और २२ दिनोंमें सम्पन्न होती है। इस लीलामें सर्वाधिक ध्यान शृंगारपर होता है। राजरज, तीखा काजल, तिलक, बुलाक, नित्य नये सुनहरे मुकुट, आभूषण, अलकें और गलेमें मोटी तुलसीकी माला—सब मिलाकर एक अपूर्व दिव्य रूपकी सृष्टि करते हैं। इस लीलाके चरित्र-स्वरूप अल्पवयस्क बालक होते हैं। इसमें संवाद और अन्य कार्य-कलाप अत्यन्त सूक्ष्म और झाँकीके अंश होते हैं। प्रतिदिन कथाके एक अंशकी झाँकी प्रस्तुत की जाती है। कर्मकाण्डके अंश विस्तारसे होते हैं। रामचरितमानस और तुलसीके अन्य पदोंका नारद-वानीमें पाठ होता है। कार्यक्रममें रंचमात्र भी परिवर्तन करना सदा अनिष्टकारी सिद्ध हुआ है। चित्रकूटकी लीलामें अन्य रामलीलाओंकी तरह कोई भी जुलूस नहीं निकलता। जो यात्राएँ हैं भी, वे बिना तड़क-भड़कके अत्यन्त सादगीसे सम्पन्न होती हैं। इस लीलामें रामका गङ्गा पार करना, शबरी-मङ्गल, गिरि सुमेरुकी झाँकी (जिसके दर्शन करना काशीके रईस अपने लिये अनिवार्य मानते हैं), रावण-वध, अवध-प्रयाण (जिसमें भगवान्के विमानको काशीके सम्पन्न व्यवसायी लोग आगेसे उठाकर अवधकी ओर ले जानेका प्रयास करते हैं और लंका-स्थलके निवासी उसे पीछे खींचकर रोक रखना चाहते हैं, फलतः विमान हवामें उड़ता-सा कभी पचास कदम पीछे कभी सौ कदम आगे बढ़ता है और अयोध्याकी यह लहराती यात्रा कई घंटोंमें पूर्ण होती है।) और भरत-मिलाप (नाटी इमलीका भरत-मिलाप, विश्वके सबसे बड़े मेले, सबमें छोटा नाटक है—दर्शक चार-पाँच लाख, अवधि मात्र पाँच मिनट) तथा राजगद्दीसे लीला अनुष्ठानसहित होती है। उसके बाद धनुष-बाणकी झाँकी और अन्तमें दशावतारकी झाँकी सम्पन्न होती है। इस लीलामें अनेक भाग्यवान् रईसोंकी

'भगवान्'की पहुनाईका गारव प्राप्त हाता हे। भरत-मिलापम प्रभुका पुष्पक विमान उठानेके लिय यादव भाइयाम हाड लगती है। इस लीलाम वष्णव (सिगारिका) शव (महाराज काशानरश—शिवक प्रतिनिधि) आर रामभक्त (रामका विमान)-का अपूर्व सगम हाता ह, मथुरा-काशी-साकतका मिलाप होता है। सच पूछ ता लीलाम सभी सम्प्रदायाका अशदान हाता ह। जन-साधारणकी धार्मिक निष्ठाका ता बिना देखे अदाज करना भी मुश्किल हैं। यह 'लीला' कहीं अन्यत्र नहीं ल जाया जा सकती क्याकि यह दस-बीम कलाकाराद्वारा मचित नाटक नहीं ह, इस लीलाम तो लाखों काशीवासी भाग लत ह।

'चित्रकूट-रामलीला-समिति' भाद्रपदमासक शुक्ल पक्षकी द्वादशीको 'वामन-लाला', आश्विनम 'रामलीला' (कृष्ण पक्षकी नवमीस शुक्ल पूर्णिमातक) हालीम 'फाग-लाला' आर वैशाख शुक्ल पक्षकी चतुर्दशाको नरसिह-जन्म-लीला आयोजित करती है। ये सभी झाँकी लीलाएँ हैं। चित्रकूटका रामलीला अनुसधानकी अपेक्षा करती हैं, क्याकि काशीम एक आर रामलीला 'लाटकी रामलाला' भी इतनी ही पुरानी बतायी जाती है ओर कहते हैं कि जब गास्वामीजी हनुमान फाटकपर रहते थे तब उन्होने इस शुरू किया था। य लीलाएँ 'आदा रामतपोवनादिगमनम्०' से आरम्भ होकर 'रावणकुम्भकर्णहननम्०' तक चलती है। क्योकि 'एतद्धि रामायणम्' ऐसा कहा गया ह। बादम चित्रकूट- लालाम कापभवनस आरम्भ आर दशावतारकी झाँकीसे समापनतक लीला होन लगी। लाटकी लीलाम धनुपयज्ञ ओर पुरजनापदशकी लीलाएँ जुड गयी ह। स्वय तुलसीदासद्वारा आरम्भ की गयी अस्सी-स्थित तुलसी-घाटकी लीलाका भी यही क्रम है। इन लीलाआका आर अयोध्याके बाबा सरयूदासरचित श्रीरामकृष्ण लीलानुकरण-सिद्धान्तका क्या सम्बन्ध है, यह भी देखना हागा। क्या वैष्णव ग्रन्थाम लीला आयाजित करनके झाँकीके अथवा शृगारके कोई विधान ह?

अस्सीकी रामलीला और वाराणसी शहरकी अनेकानेक रामलीलाएँ

'अखाडा तुलसीदास'की देख-रेखम विगत ४०० वर्षोसे लाला हाती आयी ह। तुलसीदास इस अखाडेक पहल महन्त थे। लीलाकी प्राचीनता अखाडेके महन्ताक वसीयतानामास सिद्ध हाती हे।

तुलसी-घाटकी लीला १८ दिन हाती ह। दव-चरित्र अभिनयकी परम्पराम रामायणी पाठ करते हें धारक अभिनय करते हैं। सवाद खींचकर ऊँची आवाजम बाले जाते हैं, सवादकी भाषा भाजपुरी, खडी बोलो, व्रज आर अवधी होती है। यह भी बहुस्थलीय लीला ह ओर लगभग दा मीलके परिक्षेत्रम सम्पन्न हाती हे। लकाकी लीलाएँ जहाँ सम्पन्न हाती हें, उस मुहल्लेका नाम ही लका पड गया है। मानसका पाठ नारद-वानी शलीम होता है। 'गातम-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थमें गास्वामीजीद्वारा तुलसीघाटपर पूर्णिमाकी चाँदनीम राजगद्दी-लीलाका आयाजन करनेका विशद विवरण दिया गया ह कहत हें कि गास्वामीजीने ध्रुव, प्रह्लाद आर कृष्ण-लालाआका भी आयाजन किया था, जिनम अब केवल 'कृष्णलीला' हाती हे, रामलीलाक बाद ही तुलसी-घाटपर 'कृष्णलीला' होती हे जिसकी नागनथैया-लाला काशीकी अति प्रसिद्ध लीला ह आर यहाँकी लाखा-मला भी अति प्रसिद्ध ह। परम्परा बही झाँकीकी—गङ्गाम कृष्ण-कन्हेयाका कूदना ओर कालिय नागके फनपर खड होकर लाखा दर्शकाको (जिनम काशी-नरश भी हाते हैं) दशन दना। इस लीलाकी अवधि भी पाँच मिनट ही हाती ह, पर दर्शनका चमत्कार कालातीत होता हे।

अस्सीकी रामलाला आर वाराणसीकी अन्य लीलाआकी एक विशेषता रगकर्मकी दृष्टिसे अवलोकनीय ह। यह है 'तुलसी-मच' का विधान। काशीम शिवपुर बाजार-स्थित रामलीला-मदानम भी इस मचके दर्शन हो सकते हैं।

तुलसी-मच है क्या? एक आयताकार मेदान (रामलीला-मैदान—पासम एक सरोवर हो तो अति उत्तम), इसम उत्तरकी ओर एक ऊँचा मच (सात सीढियाका) आर उमपर एक भव्य सिहासन, जिसपर दिव्य स्वरूप (राम, लक्ष्मण और जानकी या राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र) विराज सकें। इस म विष्णु-मच कहना चाहूँगा। यह मच सभी राम-लालाआम हाता हे आर इसपर सभी लीलाआमे कवल स्वरूप विराजते ह। मैदानक दूसरे छोरपर एक ओर सिहासनयुक्त मच (पॉच साढिया-जितना ऊँचा) हाता हे जिसपर 'लीला' के राजपुरुष बठत हैं—दशरथ, जनक बालि, सुग्रीव आर रावण। इस में 'राज-मच' कहना चाहूँगा। इन दोना मचाका जाडता ह—करीब एक मीटर चाडा गलियारा जिस 'जीवन-पथ' कहा जा सकता ह। पूर्वकी आर एक और

मच (दो सापान ऊँचा) है, जिसपर लीलाके स्त्री-पात्र विराजते हैं—दशरथका अन्त पुर, जनकका रनिवास, कोपभवन, सुग्रीव-वालिका अन्त पुर, अशोक-वाटिका। इसे हम 'देवी-मच' कहना चाहग आर पश्चिमकी आर एक सापान ऊँचा एक मच, जिसपर रामायणी बैठकर रामायण-पाठ करते हैं—इसे 'जन-मच'की सज्ञा दी जा सकती है। आवश्यकता पडनपर दवी-मचको जीवन-पथस जाडा जा सकता है। जीवन-पथक दाना ओर विराजते हैं दशक—रामभक्त। धनुपयज्ञक दिन 'राज-मच' और 'जन-मच' के बीच 'धनुष-मच' बनता है—सार्वजनिक चुनाती-भरा राजाश्रयमे बना मच। वनवासकी लीलाआम देवी-मच ओर विष्णु-मचके बीच भक्त और भगवान्‌के बीच प्रेम-पयोधि भरतके विराजन-हेतु नन्दाग्राम बनता है। लीला-स्थलके पासके सरावरम क्षीरसागरकी झाँकी, गङ्गापार हाना तथा सेतु-बन्धन-जेसी लीलाएँ होती हैं। शष लीलाएँ जीवन-पथपर या विष्णु-देवी अथवा राज-मचपर होती हैं। तुलसीने बालकाण्डमे चार घाटकी स्पष्ट चर्चा की है। तुलसीके इस मच-विधानमे चार घाट स्पष्ट बन जाते हैं। इन मचाके अनेक सार्थक अर्थ लगाये जा सकते हैं। यथा—

विष्णु-मच	देवी-मच	राज-मच	जन-मच
१ वैराग्य	भक्ति	ज्ञान	कर्म
२ मोक्ष	काम	अर्थ	धर्म
३ योग	तप	यज्ञ	जप
४ आत्मा	हृदय	मस्तिष्क	शरीर
५ काशी	मथुरा	अवध	हरिद्वार
६ परमार्थ	मनसा	वाचा	कर्मणा
७ योगशक्ति	उपासनाशक्ति	ज्ञान-शक्ति	क्रिया-शक्ति
८ बदरी-केदारधाम	जगन्नाथधाम	रामेश्वरधाम	द्वारकाधाम
९ शिव-पार्वती-सवाद	काक-गरुड-सवाद	याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-सवाद	तुलसी-सत-सवाद

—इन मचाको जाडते गलियारे भवसागर है जिसे ज्ञान-कर्म-भक्तिक मार्गासे पार किया जा सकता है। सबका लक्ष्य हे विष्णु-पदतक पहुँचना। भारतीय धर्म-दर्शनके सभी मार्गोके दर्शन इस मच-विधानम हाते हैं। प्रभुको पानेके अनेक मार्ग हैं किसी भी मच या मार्गसे यात्रा कर—उनतक पहुँच सकते हैं। ज्ञान आर कर्म-माग भक्तिक चाराहसे सम्पूर्ण समपण (नन्दीग्राम) ओर अकाम प्रमका मजिलासे होते हुए भक्तजन माक्ष-प्राप्तितक करते हैं। इस प्रकार तुलसी-मच नाटकका ही नहीं अपितु भारतीय अध्यात्मका मच है। आप ढूँढें ता अभी इसम बहुत कुछ मिलेगा। रगमचकी दृष्टिसे तुलसी-मचन दर्शक-पात्र-विभाजन-रेखा ताडी है और उनम अद्भुत तादात्म्य स्थापित किया है।

वाराणसीकी रामलीलाआम शोभा-यात्राएँ उनका अनिवार्य अग हैं। कम-से-कम तीन यात्राएँ अवश्य हाती हैं—राम-विवाहकी बारात नक्कटया तथा भरत-मिलाप। नाक कटनेके बाद शूर्पणखा अपने भाई खर-दूषणको सनासहित लेकर जब रामपर आक्रमण-हतु चलती है तो इस 'नक्कटेयाका जुलूस' कहते हैं। बनारसम इन नक्कटैयाके जुलूसाकी बडी ख्याति ह आर इनम भी 'चतगज'का नक्कटेयाको 'लाखा मेला' की शोहरत प्राप्त है। राम-भरत-मिलनके बाद राम-पचायतनकी जो शोभायात्रा निकाली जाती हे, उसे भरत-मिलापका जुलूस कहते हैं। इनम गायघाटके भरत-मिलापका जुलूस अपन विशाल वानर-मुखौटाकी मनोरम झाँकियाके कारण दर्शनीय बन गया ह। नक्कटेयाके जुलूसम दुर्गा, कालीके विशाल मुखाटे और उनका युद्ध-नृत्य बडा आकर्षक होता है, वाराणसीकी सँकरी गलियाम विशाल मुखोटे धारण किये पात्राकी अस्त्र-चालन-कुशलता रोमाचकारी हाती है। दुर्गा तथा कालीके मुखोटे धारण करना भी धामिक कृत्य माना जाता है और पात्र-मुखौटाकी विधिवत् पूजा करके ही मुखोटे उठाते हे। इन जुलूसाम झाँकियाँ विमान, लाग (एक प्रकारका कोशलपूर्ण स्वाँग-जिसमे छुरी-कटारीका पेट तथा गर्दनमे धँसी हुई आरपार दिखाते हे) आदि अनक दर्शनीय चीज हाती ह।

रामनगरकी रामलीला—

गङ्गा-पार, विगत पान दा सो वर्षोसे कविराजके सरक्षणम चल रही यह 'घटित-रामलीला' अनक अर्थोमे अपूर्व होनके कारण विश्वविख्यात भी हा गयी है। प्रतिवर्ष भारी सख्याम देश-विदशाके विभिन्न भागासे पधार विद्वान् तथा शाध-छात्र इस रामलीलाका अध्ययन करत हैं। साहित्यिक अनुशासन-परम्परा एव पद्धतियाका निर्वाह दखना हो ता

रामनगरकी रामलीला देखनी चाहिये।

रामनगरकी रामलीला महाराज उदितनारायणसिहके समय राजाश्रयमे आयी, पर उसका वर्तमान स्वरूप स्थित हुआ रामकथा-मर्मज्ञ महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिहक राज्यकालम। महाराजक गुरु और महान् सत काष्ठजिह्वा स्वामीने लीला-स्थलाका चयन किया और व्याख्या-परिचया लिखी। सतन पूरे रामनगरको रामलीलाका मच बना दिया। महाराजने परिशिष्ट जोडा, प० हरिहरप्रसादन 'प्रकाश टीका' लिखी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने 'रामलोला चम्पू' लिखा और रीवाँ-नरेशके भ्राताने श्रीरघुराजसिहक साथ मिलकर रामलीलाके सवादाको साहित्यिक परिवेश प्रदान किया।

रामनगरकी रामलीला 'घटित-लीला' है। पात्र अपनी भूमिका निभाते है, दर्शक अपनी सुविधानुसार भौतिक आँखोंसे या मनकी दृष्टिसे लाला देख लेते ह। कहा काइ मच-विधान नहीं। रामलीलाकी घटनाआक स्थल निश्चित हैं, पात्र वहाँ अपना कार्य करते ह। दर्शक सुविधानुसार उस कार्य-कलापम शामिल हाकर स्वय पात्र बन जात ह। अवधम वे अवधके नागरिक होते हैं तो वनगमनमें ग्रामवासी, राम-बारातम वे बाराती बनत है, ता रावणक दरबारम दरबारी।

लीलाम काशी-नरशकी सतत उपस्थितिके कारण लीलाकी गरिमा ता बढती ही है, बराबर अनुशासन कायम रहता है। बीस-पचीस हजार दर्शकाकी ऐसी अनुशासित भीड स्वयम एक आश्चर्यजनक लीला ह। इस लीलाके दर्शनार्थ दशक कोन-कोनेस राम-भक्त, साधु-सत (जो काशी-नरेशक एक मासतक अतिथि रहते हैं) और नियमस रामलीलाका सवन करनेवाले प्रतिदिन पधारत हैं। लीला एकतीस दिनतक चलती ह। लीलाक साथ हा चलता ह मेला और पधारत हें असख्य मला-प्रमी। सभी अर्थोम भव्य, विशाल और मनमोहक इस लीलाम (विद्युतीय) माइक-लाइटका प्रयाग नहीं हाता। लीला शाम पाँच बजेस आरम्भ हाती है, पान छ बज विश्राम तथा सातस नौ बजतक गस-बत्ती और मशालकी रोशनीम लाला हाती है। रामलीलाक दिनाम सारा रामनगर राममय हो जाता है। सामन मचपर प्रभुक दर्शन और साथ ही भाडक पीछ हाथीपर विराजमान महाराज काशी-नरशके दर्शनका एक अनूठा समाँ बँध जाता है। रामनगरम मानस-पाठ बडा ही जोरदार हाता है। रामनगरकी रामलाला-जसा तादात्म्य कहीं अन्यत्र दखनेको नही मिलता। चतुर्दिक् नाम-कीर्तन, पोथियाँ लिय असख्य नर-नारियाद्वारा रामायणका पाठ और 'विश्व'-सा विस्तृत मच कहाँ दखनेको मिलगे? मचकी विशालताको केवल इस उदाहरणस स्पष्ट किया जा सकता है। आज अगद-विस्तारकी लीला है। प्रभु सुवेल पर्वतपर विराजमान हैं। यहाँसे अगदजी आज्ञा लकर रावणक दरबारकी ओर चलते ह जो आधा मील दूर है। उधर रावण एक ऊँचे टीलेपर स्थित अपने महलम राग-रगम मस्त है और वहाँसे एक फलाग चलकर दरबारम आता है। सीताजी दरबारसे दो फलाग दूर अशोकवाटिकाम भक्त स्त्रियास घिरी बेठी है। यहाँसे न रावण-दरबार दीखता ह न सुबेल पर्वत। आप चाह ता पात्राके साथ मीलाकी यात्रा कर या फिर लीलाको भूलकर सीता माता या प्रभुक चरणाम बेठे रह। अधिकतर लोग रावण-दरबारम बेठकर रावण-अगद-सवादका आनन्द लेते ह।

रामलीलासे अधिक महत्त्व आरतीका होता है। बहुतसे लाग तो रात नौ-दस बजक बीच केवल आरतीके दर्शन करन ही आते ह। प्रतिदिन आरतीका निराली-अलाकिक छटा हाती है। रामनगरकी रामलालाआम क्षारसागरकी झाँका फुलवारी, धनुषयज्ञ लकादहन लक्ष्मण-शक्ति, अगद-विस्तार, रावण-वध, भरत-मिलाप और राजगद्दी आदिकी लालाएँ बहुत प्रसिद्ध ह। भरत-मिलाप मध्य रात्रिम होता ह। राजगद्दीके दिन रामनगरम दीपात्सव मनाया जाता ह। दशहराके दिन महाराजकी सवारीका अतिरिक्त आकर्षण हाता ह।

काशीकी रामलीलाम कहीं भी परदे एव नाट्यपटी आदिका प्रयोग नहीं हाता, क्याकि ***'मायाकृत बहुजवनिका, नाट्यसाल जगभ्राज। आपु करै, आपुहिं लखै, वन्दो ते नटराज।'***—मायाद्वारा रचित दृश्य-चन्ध, जगत् ही लीला-मच, प्रभु स्वय लाला कर और स्वय हीं दख —एसा यह खल ह।

अरूपका रूपाकार झाँका आस्तिकको कृतकृत्य कर दती ह। हमन रामनगरम प्रभुक दावानाक दर्शन किय ह। हाँ, अगर आप भाव-भक्ति-विहीन कोर नास्तिक रगकर्मी हें ता मरी नक सलाह है कि आप 'रामलाला' न दख इसम आपका समय नष्ट हागा।

खुल मदानम जन-समुद्रक बीच उभर हुए मच-द्वापा-

पर स्वर्णमुकुटधारी स्वरूपाकी झाँकी एक अविस्मरणीय अनुभव है। रामलीलाम यद्यपि लाइट-माइक नहीं हात, पर 'सिनमास्कापिक' और 'स्टीरियोफोनिक साउण्ड' का नैसर्गिक आनन्द प्राप्त हाता है। जहाँ स्वय सूर्य भगवान् लाइट-मन बन (नाटी इमलीके भरत-मिलापम कितने ही बादल क्या न छाये हा, ठीक समयपर पश्चिम आकाशम खिडकी खोलकर सूर्यदेव अपूर्व मिलनपर अपनी स्पाट लाइट फकते हैं), उस लीलाको क्या कह। यहाँ समय आर स्थिति टेलिस्कापिक हाती हैं। समयातीत विदेहकी अनुभूति इस बहुमचीय, बहुस्तरीय विविध दृश्यावलीयुक्त रामलीलाम ही हो सकती है। नाट्यशास्त्रक सूक्ष्म सूत्राक ताने और लाक-कलाआके बानसे बुनी धर्मके सुर्ख-रगी आस्थाकी चादर यह रामलीला और उसका सुख उस आढनवाला ही जान सकता है।

अन्तम व कहते ह—*'जाको जहाँ अर्थ है जैसो, लीला ललित लखावती तैसो'*, अर्थात् जैसी भावना वैसा दर्शन। जो इस लीला-यज्ञका दर्शन करता है वह भक्तिभावकी सुरसरिम अवगाहन करता ह, डूब जाता है, सुरस परम आनन्दको उपलब्धि करता है और गूँगके गुडका आस्वादनकर मौन हो जाता है।

विदेशोंमे रामकी लीला

[विदेशोमे भी भगवान् श्रीरामकी लीलाका मचन किसी-न-किसी रूपम हाता है। विभिन्न दशाकी विभिन्न सस्कृतियोम रामकथापर आधारित प्रदर्शन—नत्य, नाटक एव नाटिकाके रूपम प्रस्तुत किये जाते हैं जिसे वहाँकी जनता बडे चावसे देखती है। ये प्रदर्शन कहीं तो श्रद्धा-भक्तिभावसे और कही मनोरजनकी दृष्टिसे भी हाते हैं। इस प्रकार दुनियाके दूसरे देशोंमे भी इसका प्रचार-प्रसार भगवान् श्रीरामकी शाश्वत लीलाका और इसकी व्यापकताका परिचायक है। पाठकोकी जानकारीके लिये कुछ विदेशाक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।—स०]

भगवान् श्रीरामकी कथा भारतस बाहर विदेशक अनेक दशाम लाकप्रिय है। सभी देशाकी अपनी-अपनी 'रामकथा' है जो वाल्मीकि या तुलसीकी रामायणसे थाडी भिन्न है। रामकी कथापर आधारित इन देशाम छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, नृत्य-नाट्य और लाक-नाट्य होते हैं जिन्ह रामकी कथा होनेके कारण 'रामलीला' कह सकत हैं। दक्षिण-पूर्व एशियाके देशाम रामकथा विशेष-रूपस प्रचलित है। इन देशाकी 'रामलीला' का एक सक्षिप्त दिग्दशन इस प्रकार है—

१—म्यॉमार (वर्मा)

आधी सदी पूर्व वर्मा हमारे अखण्ड भारतका ही एक अग था। यहाँ भारत स्याम और थाईलडकी नाट्य-परम्पराका प्रभाव दखा जा सकता है साथ ही इनकी अपनी अलग सस्कृति है।

वर्मामे अधिकतर प्रदर्शन धार्मिक उत्सवा और त्याहाराक साथ हाते हैं। यहाँके प्रदर्शनाको 'प्वे' कहत ह। ये चार प्रकारके हाते हैं-(१) योकथ प्वे, (२) नाट प्वे (३) जाटग्या तथा (४) यामा प्वे। इनका विवरण निम्न प्रकार ह—

योकथे प्वे—यह वर्माका पुत्तलिका-नाट्य है। इसम रामायणकी कथाएँ प्रस्तुत की जाती ह।

नाट प्वे—यह एक तरहका अभिचार-नृत्य है।

जाटग्यी—यह मुखाटावाला नृत्य-नाट्य है। इसम राम-कथा कही जाती है।

यामा प्वे—इस प्रदर्शनमे रामलीलाका मचन इस प्रकार किया जाता है—छ दृश्याकी एक नृत्य-नाट्य-लीलाके पहले दृश्याम—'मिथिलाम राजा जनक धनुष-यज्ञका आयाजन करत ह आर साताक चित्रक साथ निमन्त्रण भेजते हैं। अथकन पर्वतपर परशुराम तप कर रहे हैं और चित्र देखकर कुपित हात हैं चित्रका उठाकर फक देते हैं। उडता हुआ चित्र दम्भिका पर्वतपर जा गिरता है, जहाँ दसगिरि (रावण) तप कर रहा है। चित्र देखकर दसगिरि मोहित हो जाता है और मिथिलाकी आर चल पडता है।' दूसरे दृश्यामें—'बोडा तपस्वी (विश्वामित्र) राम-लखनके साथ मिथिलाकी आर चल पडते हैं।' तीसर दृश्यम—'धनुष-यन होता है जहाँ दसगिरि असफल होता है। लखन धनुष उठा सकते हैं, पर व रामको ऐसा करनका कहत ह।' चौथे दृश्यमे—'दसगिरि रामस प्रतिशाध लेनका सकल्प करता है। राम और परशुरामका युद्ध हाता है। परशुराम समर्पण करते हैं।'

पाँचव दृश्यम—'हर्मा-यान (दडकवन)-म रावण स्वर्णमृग भेजता है। राम मृगक पीछे जाते हे। सीता-हरण होता है' और छठे दृश्यम—'सीता एक शालकी आडम रावणका प्रणय निवदन ठुकराकर अपनी रक्षा करती ह।'

वर्माम 'रामा' ड्रामेटिक क्लब ह। इसम यहाँके लाग दीपात्सवके समय शृखला-नाटक करत ह। इस नाटकम सात दिनम सात काण्डोकी लीला की जाती है। पहल राजाके सरक्षणमे तीस दिनतक लीला होती थी। क्लबक पास अपनी वश-भूषा वाद्य-यन्त्र और मुखाटे होते ह। भारतस इन लीलाआका अच्छा सादृश्य ह। इस लीलाम सीता और रामकी माताआके अलावा सभी पात्र मुखोट धारण करत ह।

(२) कम्बोडिया (खमेर)

किसी युगम (८०२—१४३१) खमरके राजा दक्षिण-पूर्व एशियाके विशाल भूभागपर शासन करत थे। इनकी राजधानी अकार थी, जहाँ भव्य मन्दिर हे (अकोरवाट)। अब तो ये मन्दिर, जिनपर रामायण ओर महाभारतकी कथाएँ अङ्कित है वनवास कर रहे ह। इस दशमें भारी राजनीतिक उथल-पुथल मची हे आर इसका नाम 'कम्पूचिया' हा गया है। खमरमे अच्छा नाट्य-शालाएँ ह जहाँ रामायण-सम्बन्धी लीलाएँ होती ह। इनमसे कुछ प्रमुख प्रचलित रामलीला-नाट्यका विवरण इस प्रकार है—

लकन खाच बोरान— यह प्राचीन शास्त्रीय महिला-पात्रा द्वारा प्रस्तुत नृत्य-नाट्य ह। सस्कृत-शिलालखास अनुमान होता ह कि सातवीं सदीम यहाँ देवदासी-प्रथा थी। ये देवदासियाँ अकोरक बफूआन मन्दिरम सेवा करती थी। इस नाटिकामे रामायणपर आधारित प्रसग प्रस्तुत हाते ह। इसम पुरुष ऋषिया आर विदूषककी भूमिका निभानका काम करत ह आर लडके बदर बनते ह। मुख्य भूमिकाएँ स्त्रियाँ ही करती हें। शृगार ओर वश-भूषा 'थाई' सस्कृतिसे प्रभावित है।

नाग शेक् (शेक थाम)—यह छाया-नाट्य है। इसमे विशालकाय चर्म-पुत्तलियाद्वारा रामायणकी कथा कही जाती ह। दा कथा-वाचक काव्य-पाठ तथा सवाद बालत ह और वाद्य-वृदम ये ही धुन बजती ह। राम और सीताकी विशेष पुत्तलियाँ होती हें ओर कुछ विशाल पुत्तलियामे पूरा दृश्य-महल वृक्ष आर पात्र दखे जा सकत ह।

(३) इडोनेशिया (हिंद एशिया)

द्वीपसमूहाका यह सुन्दर दश है। यहाँ नानाविध प्रदर्शन होत ह, जेसे—छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, शास्त्रीय नृत्य आर धार्मिक नाटक (लीला)। इस देशकी राजधानी जकार्ता है। यहाँ अनक रामकथा-ग्रन्थोकी रचना हुई हे जिनम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध रामायण 'ककाविन्' (कवि योगश्वर) ह, यह ग्रन्थ सस्कृतकी महाकाव्य-शैलीम लिखा गया है। अभिनयके साथ इसका पाठ होता हे।

जावा—यह इडानेशियाका प्रमुख द्वीप हे जो मुस्लिम-धर्म प्रधान है, पर यहाँ रामायण-परम्पराको सबसे अधिक छाप है।

यहाँ शताब्दियोंस चर्म ओर चर्म-पुत्तलियाक माध्यमसे रामकथा कही जाती हे। चर्म-पुत्तलियाँ आध्रकी 'थालुबोमालाट्य'से मिलती हें और शायद रामकथाक साथ ही इस दशमे आयी थीं। रामलालासे सम्बन्धित इन पुत्तलिया आर नाटकाको वायाग या वाजाग नाम देते हैं। आइये क्रमस दख—

वायाग कुलित—चर्म-पुत्तलियाका यह छाया-नाट्य सबसे अधिक लाकप्रिय हे, इस विधाम रामायण और महाभारतकी कथा कही जाती हे। इसे 'दालाग' भी कहत ह। इसम एक धार्मिक व्यक्ति प्रदर्शनसे पूर्व व्रत उपवास और प्राणायाम-साधना करता है तथा श्वेतपटके पीछसे यह धर्म-पुत्तलियाको चलाता है साथ ही सभी पात्राके गीत ओर सवाद बोलता हे। इस प्रदर्शनम 'गेमलान' नामक मधुर वाद्य-वृन्द बजत ह।

बालीका वायाग कूलित— यह ४-५ घटातक चलन वाला प्रदशन ह। इसम राम-कथाके साथ मनारजनका मसाला भी हाता ह।

रामायन बैल—यह सबस पुराना प्रदर्शन हे। यह जाग-जकार्तकि पास पम्बनानके शिव-मन्दिर (लाड-जाग ग्राग)-म पूर्णिमाके अवसरपर चार रात प्रस्तुत किया जाता है। इसम जागजाक सुलतान ओर उनके परिवारके लोग अभिनय करत ह। इस नृत्य-नाट्यम सीता-हरणस लेकर सीताका अग्नि-परीक्षातककी कथा प्रस्तुत होती हे। इसम सीताको 'सीता', बालीका 'सुवाली' आर लकाको 'अलका' कहा जाता हे। इसी शिव-मन्दिरम सम्पूर्ण रामायण चित्रित ह।

बराग—यह भाव-समाधि (ट्राँस)-नाट्य है इस विधाम रामकथा कही जाती है। मन्त्र-मुग्ध ग्रामीण कभी-कभी भावावशम रगडा (चुडैल)-को मार डालना चाहते ह।

धार्मिक 'वरागमे' पुरोहित पात्राका पवित्र जलसे मार्जन करता है।

केत्जक—वाली द्वीपमे होनेवाला यह बंदरोंका अनूठा नृत्य है। इसमे नाच-गान नहीं होता। लोग घेरा बनाकर बैठते है और 'त्जक' 'त्जक' ध्वनि करते हैं, बीचमे नर्तक रामकथाका अभिनय करते है।

'बालीके वायांग वांगमे' सीता-हरणसे लेकर रावण-वधतककी कथा मुक्ताकाशी मंचपर अभिनीत होती है। इसमे रामनगर (वाराणसी)-की तरह दो दल रामायण (ककाविन)-का पाठ करते है। एक दल मूल पाठ करता है और दूसरा आधुनिक बाली-भाषामे उसका उत्था (अनुवाद) करता है।

(४) लाओस

थाइलैंडसे उत्तर-पश्चिममे स्थित 'लाओस' दक्षिण-पूर्व एशियाका छोटा-सा देश है। यहाँकी राजधानी 'लुआंग प्रबांग' है। यहाँका 'थानालित' नृत्य दर्शनीय है—

थानालित नृत्य—यह फालाम (प्रभु राम) और स्वर्णमृगकी कथापर आधारित है। इसमे फालक (लक्ष्मण) फालाम और सीडा (राम-सीता)-के साथ वन-विहार करते है। थासकन (दशकंधर) सीतापर मोहित होता है। वह स्वर्णमृग भेजता है और राम उसका पीछा करते है। लक्ष्मणके जानेपर थासकन सीताका हरण कर लेता है। राम रावणपर हमला करते है और विजय प्राप्त करते है।

(५) मलेशिया

मलय द्वीप प्रायः इस्लाम-प्रधान देश है। यहाँकी राजधानी क्वालालम्पुर है। मलेशियामे रामकथाका ग्रन्थ है 'हेकायत सिरीराम'। यह इस्लामी और भारतीय कथाका मिश्रण है, जैसे यहाँ दशरथको हजरत आदमका पड़पोता (परपोता) बताया है। यहाँके रामकथाका मुख्य प्रदर्शन है—

वायांग कुलित—यह छाया-पुत्तली-नाट्य हिंद एशिया-जैसा ही है। पुत्तलियाँ कर्णाटकके यक्षगानकी पुत्तलिया-जैसी है। इसमे जावा द्वीप और थाइलैंडके अभिनय-शैलियोंका समावेश हुआ है। यहाँ भी एकाकी कलाकार ही पुत्तलियाँ नचाता है। परदेपर पुत्तलियोंकी छाया दीखती है। इसमे रामकथाके विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत किये जाते है।

(६) श्रीलंका

श्रीलंका कभी भारतका ही अंग था, जो पहले सिंहल द्वीप कहलाता था। कुछ विद्वानोंका मत है कि वर्तमान लंका रामकथाकी लंका है या नहीं, वह तो दूर दक्षिणमे था। फिर भी श्रीलंकामे आज भी सीता, रावण, विभीषण आदिसे सम्बन्धित स्थान है। श्रीलंकाके विद्वान् डॉ० गोदकुंबुरा कहते है कि श्रीलंकाके द्वितीय सम्राट् 'पाण्डु वसदेव'के शासन-कालमे (५वीं सदी ईसा पूर्व) प्रथम बार 'कोहोंबा याकमा'का पूजा हुई थी। इसकी कथा इस प्रकार है—एक बार विष्णु (राम)-को शनिकी दशा लगी और वे सात वर्षके लिये वनमे चले गये। इस बीच रावण सीताको अपनी राजधानी उठा ले गया। रावणका प्रस्ताव सीता ठुकरा देती है। राम लौटते हैं और सीता-हरणका पता चलनेपर उन्हे ढूँढ़ने पुनः वनमे चले जाते हैं। जब बालिसे उनकी भेंट होती है तब उसकी सहायतासे वे लंकाको जलाकर सीताको वापस लाते है। राम अवध आये, पर सीताने जब रावणका चित्र बनाया तो उन्होंने सीताको निष्कासित कर दिया। वनमे सीताका लव-कुश पैदा हुए। यह कथा दशरथ-जातकमे मिलती है। 'हकगलाकी जाराके' (शिलाखण्ड) क्या द्रोणाचल पर्वतका खण्ड है (जो हनुमान् उखाड़ लाये थे)? सीता एलिया काविलके पासकी भूमि काली है? (क्या यह लंका-दहनका अवशेष है? क्या रावण एल्लाही सीताका बंदीगृह है?) ऐसे ही रावणसे सम्बन्धित यहाँ अनेक स्थल है।

श्रीलंकामे भारतीय (तमिल) और सिंहली लोककथाके नृत्य-नाट्य होते है। यहाँका 'कोंडयन नृत्य' लोकप्रिय है। रामकथा-नृत्योंमे मुखौटोंका प्रयोग होता है। श्रीउदयशंकरने अपने 'बल-लंका-दहन'मे लंकाके काष्ठ मुखौटोंका प्रयोग किया था और चित्र देखनेसे आश्चर्य होता है कि इन मुखौटोंका वाराणसीकी रामलीलाके मुखौटोंसे अद्भुत साम्य है।

(७) थाईलैंड—(प्राचीन नाम स्याम)

थाइलैंडकी रामायण है 'रामकीन'। यह 'रामकीर्ति' शब्दका थाइ-रूप है। यहाँ राम-कथाका आधार वाल्मीकि-रामायणको माना जाता है। राम-कथा जावा और मलाया होती हुई थाई पहुँची थी। यहाँकी रामकीन रामायण बाँग्ला 'मयिलरावन' भैरव कथा' (थाई)-से और 'कंब' रामायणसे भी प्रभावित है। रोचक कथाओंमे रावणकी कन्या 'सुवर्ण-मच्छा' द्वारा लंका जाते समय हनुमान्को रोकनेका प्रयास दिखाया जाता है। हनुमान् मच्छासे विवाह कर लेते है और उन्हे 'मच्छनु'

नामक पुत्र हाता है। अन्य लीलाआम 'मयिलरावन'का अभिचार, काकासुर तथा अग्नि-परीक्षा आदि हैं। हमने वैंकाकम एक नृत्य देखा था—'मणिमखला'। इसम भाई हनुमान् चार हाथवाले हैं। उनक मुखम सूर्य-चन्द्रके दर्शन होते हैं। थाईलैंडम 'खान' नामक मुखौटायुक्त नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी शोभायात्राम योद्धा, राक्षस और वानर युद्ध-कौशल दिखाते चलते हैं। पुराने खानम पात्र नहीं बालत थे, दो वाचक पाठवाचन करते थे। आधुनिक खोनम स्त्री-पात्राकी भूमिका स्त्रियाँ ही करती ह। इसम रामकथाक प्रसग प्रस्तुत किय जात ह। खोन-नाट्यम रामका मुखौटा हरे रगका आर लक्ष्मणका सुनहरा होता है (आजकल राम और लक्ष्मण मुखौटा नहीं लगाते बल्कि मुकुट पहनते हैं)। रावणका भी मुखोटा हरा होता है पर अनक सिरवाला हाता है, रावणको 'तोस-कठ' कहते हैं। हनुमान्का मुखोटा सफेद होता है। साता तथा मदादरी मुकुट धारण करती ह। खान कुछ-कुछ भारतकी कथकलीसे मिलता है।

थाईलडका राष्ट्रिय नाट्य 'राम-नाट्य' है, जिसम सम्पूर्ण रामकीन प्रस्तुत की जाती है।

(८) रूसमे रामलीला

सन् १९६० म भारतविद् श्रीमती नतालिया गुसेवाने राम-कथापर बच्चाक लिये नाटक तैयार किया और इसका मचन हुआ। बीस वर्षोम २०० प्रदर्शन हो चुके हैं। इस कम्पनीने भारतम—दिल्ली (१९७४)-म तथा लखनऊ पटना एव भुवनेश्वर (१९७७)-म इस नाटकका मचन किया है। सन् १९८० म इस कपनीको 'जवाहरलाल नेहरू' पुरस्कार दिया गया । इस नाटककी सशक्त अभिनय-क्षमताका एक प्रभावी दृश्यका उल्लख करना उचित हागा। जब सीता लक्ष्मण-रखा पार करनेको उद्यत हाती हे ता दर्शक बच्चे चीख उठते हे—'मत जाओ-मत जाओ'।

(९) वर्लिनमे (जर्मनी) राम-कथा नाट्य

यहाँ बच्चाके थियेटर 'थयाटर दयर फ्रि एण्ड शाफ्ट' (मैत्री थियेटर)-म सन् १९७६ म 'गमायण' खेला गया। यह प्रायागिक नाटक था। दा घटेम सम्पूर्ण नाटक प्रस्तुत किया गया था। इसकी विशपता यह थी कि राम आर रावण या सीता और शूर्पणखा जैसे (अच्छे और बुरे) पात्राका अभिनय एक ही पात्र करता है। उसम राम आर रावण बने पात्रान जा कहा, उन दोना रूपाम अनुराग-भावनाएँ ही सबसे महत्त्वपूर्ण हे, जा सचमुच मानवीय किस्मकी ह। 'रावणके अभिनय-आसनपर रामकी भूमिका अत्यन्त मुश्किल काम है।'

सीताने कहा—'सोताक रूपम मैं बिलकुल पाक-साफ आचरणके लिय मजबूर कर दी गयी थी। मने बिना प्रणय-लीलाक ही प्रेम आर स्नह दिखानेकी कोशिश की थी।' लक्ष्मण वन पात्रने कहा—'उस लडकेका कुछ भी तो नहीं मिलता। मरे लिये यह कहनेका कोई कारण खोज पाना कि 'मैं भी आपके (रामके) साथ चलता हूँ, बडा मुश्किल था।

इस रामलालाक सम्बन्धम अपने उद्गार व्यक्त करते हुए निदशिका श्रीमती एर्सेगन कहा—'जा अपने रूपम बाहरकी ओर ले जाता है कहीं शून्यम नहीं बल्कि प्रेम, मैत्री आर वचन-पालन-जेसे अत्यन्त उदात्त मूल्याकी ओर।

महासचालिका श्रीमती एर्वन कहा—'मैं इस महाकाव्यस चकित हूँ। म उसके इस रूपसे यानी बौद्धिक,धार्मिक एव दार्शनिक स्तरपर घटनाआको वर्णित करनेकी इस कलासे मुग्ध हूँ। इसम एसा रूप उभरा ह, जो किसी-न-किसी तरह भारताय है—भले ही बाहरसे भारतीय न लगे।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देशाम भी रामलीलाकी झाँकीके दर्शन होते हैं। जेस—मारीशस ओर सूरीनामम भारतकी तरह ही रामलीला होती है। यहाँ 'नीग्रो' 'क्रियोल' और 'हिन्द एशिया' क लोग भी मूल भारताय लोगाके साथ उत्साहसे भाग लेते हैं। मगोलियाम भी राम-जीवन-विषयक कथा और 'क्रिस्टल मिरर' अवलोकनीय हैं।

तुर्कीमे खोतानी 'राम-काव्य' प्रसिद्ध है ओर इसी तरह जापानम 'होबुत्शुसू रामायण' तथा फिलीपीन्सम 'महार दिया लवना' प्रसिद्ध हैं। ये सभी देश अपने-अपने ढगसे रामलीलाआका मनमोहक, प्रेरक एव शिक्षाप्रद भव्य आयोजन करते रहते ह जो निश्चित रूपसे रामलीलाके विश्वव्यापी प्रभावका द्योतक ह।

[काशिराज डॉ०श्राविभूतिनारायणसिहजीक सौजन्यसे]

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा भक्तोंके लीला-चरित्र और उनके रोचक आख्यान

(आचार्य श्रीसियारामदासजी नैयायिक न्यायवेदान्ताचार्य पी-एच्० डी०)

अनन्तानन्त ब्रह्माण्डसर्जक करुणावरुणालय प्रभुकी अनन्त लीलाओंको मुख्यतया तीन भागोंमे बाँटा जा सकता है— (१) प्रकृतिपार दिव्यधामकी लीला (२) बाह्यजगत्‌मे अनुभूयमान श्रीराम-कृष्णादि अवतारोंकी लीला और (३) भगवदुपासनारत साधकके विमल मनमे प्रकट-लीला। इनमे प्रथम लीलाके आनन्दका अनुभव प्राय मुक्त जीव ही करते हैं जो दिव्यधामवासी हैं। वे ही इसमे भगवान्‌के सहचर बनते है। द्वितीय एव तृतीय लीलाका अनुभव बद्ध जीव भी करते है और प्राय ये ही लोग लीला-सहचर भी हैं जैसे—श्रीराघवकी रणलीलाके सहचर वानरराज सुग्रीवादि। पर तृतीय कोटिकी लीलाका अनुभव साधकोंको छोडकर अन्य कोई सामान्य प्राणी नहीं कर सकता। हाँ महापुरुषोंकी अनुकम्पासे तो सब कुछ सम्भव हो जाता है।

भक्तिमती शबरी इन दोनों प्रकारकी लीलाओंमे भगवान्‌की सहचरी है इसकी पुष्टि 'भुशुण्डिरामायण'से होती है। पम्पासरोवरके पश्चिमी तटपर दुधर्ष तपस्वी महर्षि मतग अपने शिष्योंके साथ साधनारत थे। गुरु-सेवार्थ शिष्योंद्वारा वन्य-पुष्पादि लाते समय श्रमातिरेकके कारण जो उनके शरीरसे स्वेदबिन्दु गिरते थे वे ही उनके तप प्रभावसे तत्काल पुष्पवृक्ष बनकर पुष्परूपमे प्रकट हो जाते थे जो न तो कभी मुरझाते थे और न ही डालसे झरते थे। मतग-शिष्योंसे व्याप्त यह वनस्थली 'मतगवन'के नामसे प्रसिद्ध हो चुकी थी। यह ऋषिकी तपश्चर्या या भगवद्भजनका प्रभाव ही था कि यहाँ महाकाय हाथी-जैसे प्राणी भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। वहाँपर महर्षि मतग और उनके शिष्योंकी सेवा करनेवाली एक भील-महिला निवास करती थी। जिसकी प्रसिद्धि 'शबरी' नामसे ऋषियोंतक ही नहीं अपितु दुर्दान्त दैत्योंतक हो चुकी थी क्योंकि कबन्ध-जैसे क्रूर राक्षसने ही श्रीरामको 'शबरी'का परिचय दिया था।

शबरी जिन महर्षियोंकी सेवा करती थी उन्होंने अपने परमधाम-गमनके समय उससे कहा था—'तुम्हारे इस पवित्र आश्रमपर परमात्मा श्रीराम पधारकर तुम्हे अपने दर्शनसे कृतकृत्य कर देंगे'—

आगमिष्यति ते राम सुपुण्यमिममाश्रमम्॥

(वा० रा० ३। ७४। १५)

शबरी मतगवनमे दिन-रात प्रभुके पधारनेकी प्रतीक्षा करने लगी। अहा! कैसी प्रतीक्षा है—कभी तो कुटीके बाहर आकर मार्गपर बडी दूरतक सतृष्ण दृष्टिपात करती कि प्रभु आ रहे हैं या नहीं! और कभी शीघ्रतासे अदर जाती कि प्रभुके लिये बिछाया गया आसन अस्त-व्यस्त तो नहीं हो गया। उसे पुन बिछाकर व्यवस्थित करके बाहर आ जाती है।

यह भीलागना श्रीराम-प्रेममे मनवाली है। प्रतीक्षा करते-करते पल नहीं अपितु यौवन भी ढल गया, पर गुरुवचनोंसे विश्वास न डिगा। अब शबरीकी दृष्टि युवावस्थावाली नहीं है कि मात्र दृष्टिपातसे मधुर फलोंकी पहचान ले और आराध्यके सत्कार-हेतु सचित कर ले। अत वह रसनेन्द्रियकी सहायता लेने लगी अर्थात् चख-चखकर फलोंको एकत्र करने लगी। अब तो जलपात्रको ढोनेकी सामर्थ्य भी वृद्धा शबरीके हाथोंमे नहीं है कि चखनेके पश्चात् हस्त-प्रक्षालन करके फल चयन करे। इधर श्रीरामका वनमे पदार्पण हो चुका है और उधर मतगवनके आस-पासके योगी साख्यतत्त्ववेत्ता यागादि धर्मोंके अनुष्ठाता वेदपाठी तपस्वी और त्यागी ऋषियोंके लिये शबरीका अधम जाति तथा उसका उक्त आचरण असह्य हो उठा। वे कहते हैं कि ऐसी अधम नारीको श्रीरामका दर्शन नहीं हो सकता। परतु

शबरीका श्रीराम-प्रेम तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सतत श्रीराम-स्मरणने उसे प्रेमकी पराकाष्ठापर अधिष्ठित कर दिया। अब फलोंको चखनेके पश्चात् भी 'ये फल अमुक वृक्षके हैं'—ऐसा ज्ञान शबरीके हृदयमें नहीं टिक पाता है। अतः 'राम! राम! राम!' ऐसा सुमधुर नामोच्चारण करके जो फल चखनेसे सुमधुर प्रतीत होता है, उसे ही प्रभु-सेवार्थ ले लेती है।

इधर प्रभु श्रीराम ऋषियोंको कृतार्थ करते हुए विचरण कर रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'मैं प्रेमकी मूर्तिमयी देवी शबरीका दर्शन करना चाहता हूँ। वे मेरी परम भक्ता हैं।' प्रभुसे मिलनेके लिये योगी सांख्यतत्त्ववेत्ता यागादि-धर्मानुष्ठाता स्वाध्याय-परायण तपस्वी और त्यागी अर्घ्य लेकर खड़े हैं। परंतु प्रभु सर्वप्रथम शबरीकी कुटीपर ही
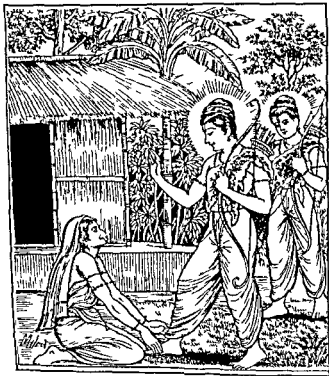
पधारते हैं। शबरीके द्वारपर पहुँचकर प्रभुने कहा—'प्रिय सौमित्रि! देखो, शबरी किस प्रकार उत्सुकतासे मेरे आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है। भैया! मेरे दर्शनकी उत्कट लालसावाले इसके नेत्रोंको देखो। आज मैं निश्चित ही इसे सुखी बना दूँगा।'—ऐसा कहकर श्रीराघवने शबरीकी कुटीमें पहुँचकर यह दिखला दिया कि मैं भक्तिसे मिलता हूँ—'भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया'।

शबरीकी चिराभिलाषा पूर्ण हुई। प्रेमोन्मत्त शबरीने आतिथ्य-सत्कार किया। अनेक प्रकारके पदार्थोंके साथ अपनी भक्ता शबरीके उच्छिष्ट फलोंका भक्षण भी श्रीरघुनन्दनने कर लिया। स्वयं पितामह ब्रह्मा कह रहे हैं—

शबरीवदनोच्छिष्टैः प्रेमपूतैः फलैः रसैः।
आत्मानं तर्पयामास सर्वाभ्यधिकसारवित्॥

(भुशुण्डिरामायण दक्षिण खण्ड १६७। २३)

शबरीके मुखसे उच्छिष्ट फल उसके श्रीरामप्रेमके कारण पवित्र हो चुके थे। उन्हींसे दशरथनन्दन श्रीरामने अपनेको तृप्त किया; क्योंकि वे सर्वापेक्षया अधिक ही सारतत्त्वके ज्ञाता हैं। प्रभुने कहा—'शबरी! आज मैं तुम्हारे घर आकर तृप्त हो गया'—

अद्याहं खलु तृप्तोऽस्मि शबरि त्वद्गृहागतः।

(भुशुण्डिरामायण द० ख० १६७। २७)

वस्तुतः अवाप्त-समस्तकाम प्रभु सर्वदा तृप्त हैं, पर भक्तोंसे सम्बद्ध वस्तुकी प्राप्तिके लिये अतृप्त-जैसे बने रहते हैं अर्थात् भक्तोंकी वस्तु प्राप्त करनेके लिये उतावले हो उठते हैं। अतः जिन्हें प्रभु-प्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें साधक या सिद्ध बननेकी अपेक्षा अधिक उचित यह है कि वे प्रभुके भक्त बन जायँ। इसीलिये प्रभुने मात्र शबरीको ही नहीं, अपितु उसके सांनिध्यमें निवास करनेवाले पशु, पक्षी एवं ओषधियों तकको वरदान दे डाला।

शबरीको महान् पश्चात्ताप हुआ कि मुझ-जैसी अधम नारीने प्रेम-प्रवाहमें बहकर जगन्नियन्ता श्रीरामको अपना उच्छिष्ट खिला दिया। हा! मैंने महान् अनर्थ कर डाला। प्रभुने शबरीको समझाते हुए कहा—'शबरी! प्रेमरूपी वनमें निवास करनेवाली अतिशय धन्या शुकीने इन फलोंका आस्वादन किया था, जिससे ये मधुर हो गये थे—

जाने प्रेमवनीवास्तु कापि धन्यतमाशुकी।
आस्वादयत् फलान्येतान्यतिमाधुर्यभाञ्जि यत्॥

(भुशुण्डिरामायण द० ख० १६८। ९)

अतः तुम पश्चात्ताप न करो। तात्पर्य यह कि इन मधुर फलोंसे मैं तृप्त हुआ हूँ। अतः माधुर्यका आधान करनेवाली

शुकीको अपन उच्छिष्ट कर्मका अनर्थकारक कर्म समझकर पश्चाताप नहीं करना चाहिये क्याकि स्वरूपत काई कर्म अच्छा या बुरा नहीं हो सकता, अपितु जिससे प्रभुकी प्रसन्नता हा वही कर्म हे अर्थात् अच्छा कर्म ह—'तत्कर्म हरितोष यत्' (श्रीमद्भा० ४। २९। ४९)। श्रीराघवेन्द्रने कहा कि म प्रेमके वशीभूत हूँ।'

शबरी चूँकि युगलोपासिका हे। अत श्रीविदहनन्दिनी-रहित श्रीरामके साक्षात्कारस लब्ध परमानन्दको अपूर्ण मानने लगी। तब प्रभुने कहा कि तुम्हे आगामी कल्पम मेरे विहारस्थल प्रमोदवन (अयोध्याका एक प्रसिद्ध वन)-म जन्म प्राप्त हागा। उस समय तुम श्रीजूके सहित मरा लीलामय साक्षात्कार करोगी। प्रमोदवन प्रभुकी विहारस्थली ह। वहाँ निवास करनवाले पशु-पक्षी तक प्रभुके लीला-सहचर हे फिर वहाँ जन्म लनेवाली प्रेमोन्मत्ता शवरी यदि लीला-सहचरी हा जाय तो क्या आश्चर्य! श्रीराघवका शबरीके यहाॅ पदार्पण देखकर ऋषियोने भक्ता शबरी और भगवान् श्रीराघवकी भरपेट निन्दा की। भगवान्की निन्दासे परलोक बिगडता है, पर भक्तकी निन्दासे तो इहलोक और परलाक दाना विगड जाते ह—

हीयेतामुत्रिक श्रेयो भगवन्मात्रनिन्दया।
ऐहिक चामुत्रिक च श्रेयस्तद्भक्तनिन्दया॥

(भुशुण्डिरामायण द० ख० १६९। १६)

फलत ऋषियाके आश्रमक समीप प्रवहमान सरिता रक्तमयी हो गयी। हवन-सामग्रीम कीडाके प्रकोपके साथ ही अग्निहात्रापयोगी अग्नि भी वुझ गयी। अब न ता इहलाकका काई कार्य कर सकते हैं ओर न ही परलाकका।

कर्मलापक भयसे चारा आर हाहाकार मच गया। इसी समय महषि अगस्त्य उन सबके बीच प्रकट हो गय। विचार-विमशक पश्चात् महर्षि कुम्भजन इन उपद्रवाका कारण महापुरुषाकी निन्दाका वतलात हुए कहा कि वडाकी निन्दा निन्दकको विद्या वार्य यश ओर सम्पत्तिको नष्ट कर देता ह—'निन्दा हि महता हन्ति विद्या वीर्यं यश श्रियम्' (भुशुण्डिरा० द० ख० १७०। १०)। अत आप लाग परम पुरुष श्रीरामको प्रसन्न कर, वे अभी दूर नहीं गये हैं। तदनन्तर ऋषिगण अगस्त्यजीको आगे करके परमात्मा श्रीरामके समीप आये ओर क्षमा-याचना करने लगे। प्रभुने कहा कि में तो आप लागाका भक्त हूँ, आप लागाक लिये वनम विचरण कर रहा हूँ। आपका अनिष्ट मरी निन्दासे नहीं, अपितु महाभागा शबरीकी निन्दास हुआ है। उन्ह भीलनी समझकर अपमानित मत कीजिये। वे तो समस्त देवताआकी भी प्रणम्या हैं। मानवाकी क्या बात है? उनके चरणाकी रजस अतीर्थ भी तीर्थ हो जायँगे। अत आप उन्ह ही प्रसन्न कर—

तस्या पादरज स्पर्शादतीर्थं तीर्थतामियात्।
अतो भूय समाराध्या भवद्भि सा किरातिनी॥

(भुशुण्डिरा० द० ख० १७१। २३)

तात्पर्य यह कि उनकी चरणरज धोकर नदीम छोड दो ता वह तीर्थ बन जायगी। ऋषियाने आकर शबरीका प्रणाम करके चरण-रजकी याचना की। शबरी बडी लज्जित हुई। उसन स्वय उठकर समस्त ऋषियोको प्रणाम करके कहा कि यदि छाटाको बड लोग प्रणाम करे तो इससे अपकृष्ट प्राणीकी आयु, सम्पत्ति ओर यश नष्ट हो जाते हैं, इसम काई सशय नहीं है—

अपकृष्टतमे जन्तौ महद्भिर्विहिता नति।
आयु श्रिय यशो हन्ति तस्य नास्तीह सशय॥

(भुशुण्डिरा० द० ख० १७२। २३)

शवरी बडे विनीत-भावसे महर्षि अगस्त्यका प्रणाम की और अन्तत उन्हीकी प्रबल प्ररणासे तत्तत् ऋषियाके आश्रमपर गयी। उसके चरण-रज-मिश्रित जलसे नदी पवित्र हा गयी। अग्निशालाम अग्नि प्रज्वलित हा उठी। सभी उपद्रव शान्त हा गये। महर्षि अगस्त्यने सभी ऋषियाक साथ उसकी वडी प्रशसा की। तदनन्तर वह अपने आश्रमम लाट आयी। प्रभुकी भक्तमहिमा-प्रदर्शनरूप लालाकी मुख्य सहचरी श्रीशबरी ह। आगामी कल्पमे प्रमादवनम लीला-सहचरी हानका सौभाग्य भा इन्ह प्राप्त है।

श्रीहनुमंत-लीला

(स्वामी श्रीविद्यानन्दजी)

रामायण श्रीरामके कारण चरितार्थ हुई—यह सत्य है परंतु उतना ही निर्विवाद सत्य यह भी है कि रामायण श्रीहनुमतके कारण भी चरितार्थ हुई। स्वतन्त्र नाट्य-विद्याके अन्तर्गत रामायणके नायक श्रीरामके स्थानपर हनुमत ही दीखते हैं कारण सीता-खोजसे रावण-वधतकका घटना-क्रम तथा श्रीरामके अयोध्या लौटनेका संदेश पहुँचनेतकका समग्र लीला-नाट्य हनुमतके ही चारों ओर घूमता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भी श्रीरामने परमधाम पधारनेके समय हनुमतको ही अयोध्याका नेतृत्व सौंपा था। अतः कहा जा सकता है कि जैसे बिना श्रीरामके रामायणकी कथा नहीं वैसे ही हनुमतके बिना भी रामायण-कथाकी पूर्णता नहीं हो सकती।

श्रीहनुमतका अग्रणीत्व—

श्रीहनुमतका अग्रणीत्व उनकी जन्म-कथासे ही प्रारम्भ हो जाता है जो तीन प्रकारसे विकसित होता है—(१) देह (२) बुद्धि और (३) प्रताप।

हनुमतकी माता अंजनी और पिता केसरी थे। अंजना पूर्वजन्ममें पुंजिकस्थला नामकी श्रेष्ठ अप्सरा थीं। ऋषिके शापवश वानरी हुईं तथापि उनका अप्रतिम लावण्य वरदानके कारण था। उनका लावण्य देखकर वायुदेव काम-मोहित हो गये और उन्होंने केसरीकी देहमें प्रवेश किया। अंजनीके पति होनेके साथ ही वे केसरी 'तेज प्रताप महा जग बंदन' थे। वायुशक्तिसे विलक्षण गतिमान्, चपल तथा शक्तिसम्पन्न केसरी पिताके रूपमें श्रीहनुमतको मिले थे। माताको अनुपम लावण्य प्राप्त हुआ था तथा महत्तेजके परिपूर्ण चरुपिण्डसे मानो ब्रह्मगोलक ही हनुमतके रूपमें उत्पन्न हुआ था।

बलाढ्य-पितृत्व, सौन्दर्यशाली मातृत्व और ब्रह्मतेजका अवतरण—इन तीन सुवर्ण-सरिताओंसे युक्त मन पिण्डयुक्त देह-प्रभा ओतप्रोत हुई थी। जहाँ समर्थ रामदासजीद्वारा 'ईश्वरी तनु' कहकर सार्थक वर्णन किया गया, वहाँ अतुलितबलधाम हेमशैलाभदेह०' उनका ऐसा यथार्थ स्वरूप कहा गया।

हनुमतके श्रेष्ठत्वका यथार्थ वर्णन करते हुए 'जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्' कहा जाता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी 'बल बुधि बिद्या देहु मोहि' यह प्रार्थना हनुमतसे की है।

अध्यात्मक्षेत्रमें बुद्धिमान् मनुष्य ही भक्तिका आदर्श उपस्थापित कर सकता है और जीवके उद्धारका मार्ग स्वतःके अनुसंधानसे प्राप्तकर दूसरोंको भी प्रेरित कर सकता है। हनुमतकी लीलाओंसे प्रकट विराट् एवं कुशल- बुद्धिका परिचय मानवीय जीवोंको स्तम्भित कर देता है। समर्थ रामदास स्वामीने हनुमतकी आरतीमें 'शक्तिबुद्धि जय ठायी। तथ श्रीमत धावती' ऐसा भाव दिया है।

निर्भीक वक्तृत्व, शुद्ध स्मरण-शक्ति वाक्-चातुर्य युद्ध-कौशल शास्त्र-पारंगतता तथा अनुभव-कौशल्य आदि राजदूत होनेमें आवश्यक गुण हनुमतमें विद्यमान थे। रावणकी राजसभामें निर्भीक वक्तृत्वका परिचय उनके भाषणमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। रावणको उन्होंने सशक्त शब्दोंमें नम्रतापूर्वक संदेश दिया, मार्मिक शब्दोंसे रावणकी त्रुटियाँ भी बतला दीं तथा अत्यन्त कुशलतासे सम्भाषणद्वारा नीति और सदाचारका पाठ भी पढ़ाया। उत्तम वक्तृत्व-शैली तथा वाक्-चातुर्य भी हनुमतके पास थे। श्रीरामको हनुमतके इन अगाध गुणोंकी पहचान ऋष्यमूक पर्वतपर प्रथम भेंटके समय ही हो गयी थी। श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका इन्होंने अध्ययन किया है ये अत्यन्त ज्ञानी हैं—ऐसा इनके बोलनेपर ही विदित हो जाता है कि इनके समान वाक्पटु संसारमें दूसरा कोई नहीं है।' हनुमतकी स्मरण-शक्तिकी भी तुलना नहीं थी, श्रीराम इस बातको अच्छी तरह जान गये थे तभी तो सीताकी खोजनेका कार्य उन्होंने हनुमतको ही सौंपा था। हनुमतने सीताकी खोज तो की ही, साथ ही लंका नगरीका अत्यन्त सूक्ष्मतासे निरीक्षण भी किया। छोटी-छोटी बातोंको भी भलीभाँति स्मरण रखकर श्रीरामसे विस्तारपूर्वक बतला दिया जिसमें सैन्य, संरक्षण-व्यवस्था, राज्यकी संरचना, संरक्षण-योजना और गुप्तमार्ग आदिका भी विषय सम्मिलित था। सीताकी खोजके अनन्तर युद्ध-कौशल भी दिखाया। लंकाकी कार्यसिद्धिमें युद्ध-कौशल शास्त्र-पारंगतता अनुभव-सम्पन्नता आदि इसीके द्योतक हैं। हनुमतका अतुलनीय बुद्धि-वैभव तथा कार्यकुशलता अनेक प्रसंगोंमें द्रष्टव्य है—

जब द्रोणगिरि लानेके लिये जाते समय कपटसे मगरीने इन्हें निगला जब अहिरावण तथा महिरावण एकसे सौ कैसे हो जाते हैं? इसका कारण ढूँढकर उन्होंने अमृतकुण्ड फोड़ा जब चन्द्रसेनासे श्रीरामको घर लानेका वचन दिया इन्द्रजित्की यज्ञाहुतिका ध्वंस किया और द्वापरयुगमें भीमका गर्व

चूरकर उसको श्रीकृष्णके व्यक्तित्वका रहस्य योगोपदेशद्वारा बतलाया इत्यादि।

जितना हनुमंतके देहका और बुद्धिका अग्रणीत्व है उतना ही प्रतापका भी है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके कथनानुसार हनुमंतका प्रताप केवल त्रेतायुगतक ही सीमित नहीं है—*'चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥'*—ऐसा कहते हुए आगे यह भी बताते हैं कि *'साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥'* इसमें प्रतापकी व्याप्ति भी बतायी और प्रतापकी सामर्थ्य किस उपयोगके लिये है, यह भी दर्शाया। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंमें दैवी शक्ति-सम्पन्न प्रभावी प्रतापी एकमेव हनुमंत ही हैं। इन्होंने अपनी सामर्थ्यका उपयोग केवल ऐसे साधु-संतोंके लिये ही किया, जिनकी अध्यात्म-सम्पदा केवल दीन-दुर्बलोंके उद्धारके लिये ही थी। हनुमंत दीनोंके तारणहार तथा अध्यात्म-प्रवणजनोंके पालनहार हैं अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके वचनों—'योगक्षेमं वहाम्यहम्'-की पूर्ति करनेवाले प्रत्यक्ष हनुमंत ही हैं।

हनुमंतके साथ घटित अद्भुत घटनाओंसे यह सिद्ध होता है कि मात्र ईश्वर ही अपने भक्तको इतना सौभाग्य देकर गौरवान्वित कर सकता है। स्वयं प्रभु श्रीराम भक्त हनुमंतसे कहते हैं—'हे पुत्र, मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता'—*'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।'*

तुलसीदासजीने इस अनुपम घटनाका कितने आर्त शब्दोंमें वर्णन किया है। हनुमंतने अपने सारे कर्तृत्व श्रीराम प्रभुको समर्पित कर दिया। श्रीराम प्रभु हनुमंतके आराध्य हैं। हनुमंतका अपने आराध्यके प्रति समर्पित-भाव इतना प्रचण्ड था कि आराध्यकी दीप्ति स्वतः में समाहितकर आराध्यको भी दीप्तिमान् करनेका प्रभाव उन्होंने स्वतः में निर्मित कर लिया था, जिसके साक्षी स्वयं जाम्बवंत हुए थे। कथा-प्रसंग अद्भुत होनेपर भी हनुमंतके प्रभावपूर्ण लीलाका यथार्थ वर्णन करनेवाला है। इन्द्रजित्‌से घनघोर युद्धमें सुग्रीव, नल, मयंद, द्विविद इत्यादि रथी-महारथी मृतवत् हो गये, केवल विभीषण तथा हनुमंत हाथमें मशाल लिये अँधेरी युद्ध-भूमिपर भ्रमण कर रहे थे। चारों ओर दुःखसे व्याप्त विह्वल करनेवाले आर्त-स्वर कानोंमें पड़ रहे थे, परंतु बोलनेकी स्थितिमें केवल जाम्बवंत ही थे। विभीषणने जाम्बवंतकी आवाज पहचानी और उनके पास जाकर पूछा—'हे आर्य! तीक्ष्ण बाणोंसे आपके प्राणोंका नाश तो नहीं हो रहा?' जाम्बवंत बोले—'मैंने तुम्हें स्वरके कारण पहचाना, परंतु तुम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हो। अस्तु, हनुमंत कहाँ हैं? जीवित तो हैं न?' विभीषण बोले—'राम, लक्ष्मण अथवा सुग्रीव, अंगदकी पूछताछ छोड़कर आप हनुमंतकी ही पूछताछ क्यों कर रहे हैं? मारुतिके अतिरिक्त आप किसीसे और से प्रेम नहीं करते क्या?' इस प्रश्नके उत्तरमें जाम्बवंतके कहे गये वचन लक्षणीय तथा चिन्तनीय हैं—'मैं मारुतिकी पूछताछ इसलिये करता हूँ कि यदि वे जीवित हैं तो बाकी सभीके प्राण बचनेकी सम्भावना है, किंतु यदि हनुमंत जीवित नहीं रहे तो हम सब मरेंगे यह निश्चित है।' इतनेमें हनुमंत आगे आ गये। जाम्बवंत बोले—'हनुमान्, तुम हिमालयपर जाओ, वहाँ सुवर्ण और कैलास—इन दो शिखरोंमें एक औषधि-शिखर है, वहाँसे ये चार महौषधियाँ—मृत-संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी तथा संधानी ले आओ। ये निरन्तर चमकती रहती हैं, यही इनकी पहचान है। उन्हें लाकर तुम सबके प्राण बचा सकोगे।' इसी कारण लक्ष्मणके भी प्राण बचे, यह सर्वविदित सत्य है। ऐसे अलौकिक प्रतापके कारण ही हनुमंतको 'चिरंजीवी' पद प्राप्त हुआ था।

लीला-लाघवी व्यक्तित्व—

पुत्रकामेष्टि-यज्ञमें अग्निदेवतासे पायस-दानके रूपमें तीन पिण्ड दशरथको प्राप्त हुए थे, जिनका तीनों रानियोंमें वितरण हुआ था। कैकेयीके क्रोधित होनेके कारण उसको दिया गया पिण्ड पड़ा रह गया, जिसे संयोगसे चीलने झपट लिया और बादमें वह अंजनीके हाथ लग गया। बाकी बचे दो पिण्ड तीनों रानियोंके हिस्सेमें आये। अतः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको अर्धपिण्डसे जन्म मिला, परंतु हनुमंत पूर्ण पिण्डसे ब्रह्मगोलकके रूपमें जन्मे थे।

हनुमंतके पास जहाँ प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता और चपलता थी वहीं वाक्-पटुता और रण-कुशलता भी थी। साथ ही उनमें अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा निष्काम कर्तव्यका योग था, परंतु सारे उत्कृष्ट गुण उनकी भक्तिके अंग मात्र ही थे। इसी कारण उनकी असामान्य शक्ति सेवा-तत्पर बन पायी। बालकपनमें ऋषि-मुनियोंके साथ चंचलता प्रकट करनेवाले हनुमंत बड़ा होकर उनका दुष्टोंसे संरक्षण करने लगा। हनुमंतकी शक्ति इतनी प्रबल थी कि भूख लगनेपर फल समझकर सूर्य-बिम्बपर ही उड़ान भर ली। जहाँ युद्धमें वे अतुलनीय योद्धा थे, वहाँ अशोक-वनमें असहाय एकाकी सीताके मनका हाल बड़ी सहृदयतासे जान पाये, कारण ऐसी मृदुता उनके मनमें भरी थी। माता-खोजके उपरान्त श्रीरामसे वृत्तान्त-कथनमें

इनके द्वारा कहे गये केवल 'दृष्टा सीता' इन काव्यमय दो शब्दोंमें ही सीताकी खोज, उनकी सुरक्षा तथा उन्हें प्रत्यक्ष देखनेकी साक्षी—इन सारी बातोंका अनुबोध श्रीरामको हो गया तथा श्रीरामके लिये अब चिन्ता करनेकी बात नहीं है, यह अभिवचन भी मिल गया। अयोध्या लौटनेके समय भरतको समाचार देनेका काम भी श्रीरामने हनुमतको ही सौंपा। हनुमत उस कसौटीपर खरे उतरे तथा उन्होंने भगवान्‌को मन-ही-मन संतुष्ट कर दिया। हनुमतने अलौकिक योगबलके आधारपर सुरसा राक्षसीको आश्चर्यचकित कर दिया। लंका नगरीमें प्रवेश करनेपर सूक्ष्म रूप धारण करके राक्षस-प्रासादोंके गवाक्षोंसे सीताकी भी खोज निकाला, परंतु उस समय अनेक स्त्रियोंके वस्त्रहीन शरीरोंको देखनेपर भी हनुमतके मनमें यत्किंचित् काम-विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने इतना मनोजय साधा था।

भक्ति, शक्ति, बुद्धि तथा युक्ति—इन चारों सम्मिलित गुणरूपी गुच्छोंको समाहित करनेका लाभ हनुमतको प्राप्त था। स्वतः अथक कर्तव्य-सम्पन्न होनेके साथ चिरंजीवी होनेके संयोगने उनकी भक्तिके लिये काल भी कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाया। कलियुगमें भक्तिका किंबहुना ज्ञान-भक्तिके एकमेव आदर्श हनुमत ही ठहरते हैं।

हनुमतकी पारलौकिकता—

जहाँ लौकिक आचरणमें ही हनुमतका व्यक्तित्व अलौकिक था, वहाँ अध्यात्मक्षेत्रमें तो वे विविधाङ्गी एवं सर्वोन्नत व्यक्तित्वके द्वारा सुवर्ण-शिखरपर पहुँच ही गये हैं। 'रामरहस्योपनिषद्'के अनुसार उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शाण्डिल्य, मुद्गल आदि ऋषियोंके समक्ष राम-तत्त्वका प्रतिपादन किया था। इस उपनिषद्‌में दैवी अंशसे परिपूर्ण उनके प्रकट दिव्य शरीरका वर्णन मिलता है। हनुमतके विविध उद्गार-लीलाओंसे उनकी पारलौकिक श्रेष्ठताके विषयमें कोई शंका बाकी नहीं रहती। उनके उद्गार हैं—

'नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेत् रामसेवकम्॥'

'राममन्त्र केवल मोक्ष-साधक है। जब आपत्ति-संकटकाल आये तो इन ऐहिक बातोंके लिये रामसेवक मानकर मेरा ही स्मरण करना।' जैसे सूर्य इतनी ऊँचाईपर होते हुए भी सामान्य घास-पत्तियोंको भी अपना प्रकाश प्रदान करता है, उसी प्रकार हनुमत स्वतः ब्रह्माण्डके समान होते हुए भी सामान्य जनोंको ऐहिक दुःखोंसे छुटकारा दिला देता है। हनुमतके कार्योंका आध्यात्मिक स्तर उच्च होते हुए भी वटवृक्षकी भाँति इतना व्यापक होता है कि उसमें लोक-जीवनके आधिभौतिक दुःख भी समाविष्ट हो जाते हैं तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शनद्वारा आत्मज्योतिकी ओर प्रवास भी निर्विघ्न हो जाता है। हनुमतने श्रीरामसे अपने तीन भावोंको प्रकट किया—(१) देह-भाव, (२) जीव-भाव तथा (३) आत्मभाव—

'देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चया मतिः॥'

'देहभावसे मैं तेरा दास हूँ, जीव-भावसे मैं तेरा अंश हूँ और आत्मभावसे तू और मैं एक ही हूँ।' ऐसा अपना निःशंक मत हनुमतने स्पष्ट किया है। युगों-युगोंसे चलनेवाला हनुमतका जीवन इन तीनों भावोंका महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। देहभावसे दीनोंका दुर्बलत्व हरण करते-करते आत्मभावसे सबका उद्धार करते जाना यही महान् देवत है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको विष्णुका अवतार माना जाता है। श्रीराम और हनुमतका जन्म एक ही ब्रह्मपिण्डसे हुआ है। ब्रह्मपिण्डके प्रभावके कारण ही बाल्यावस्थामें श्रीरामके द्वारा चमत्कारिक लीलाएँ घटित हुईं। ऐसा ही हनुमान्‌के साथ भी हुआ। अतः एक-से-एक वरदान प्राप्त हुए तथा विलक्षण सामर्थ्य तथा तेज हनुमतके पास एकत्र हो गये जैसे—इन्द्रसे वज्रदेह तथा सूर्यसे सभी शास्त्रोंका ज्ञान, आरोग्य और तेज प्राप्त हुआ। वरुणने अमरता प्रदान की, यमने अजरत्व दिया, कुबेरने अपनी विजयी गदाके साथ अजयत्वका आशीर्वाद दिया, शंकरने सर्वशस्त्रोंसे अभय प्रदान किया, विश्वकर्माने चिरंजीवी रहनेका वरदान दिया, ब्रह्मदेवने अवध्यत्व, अमरत्व, महागतिमत्त्व तथा इच्छित रूप धारण कर सकनेकी सामर्थ्य प्रदान की। शक्ति, बल, बुद्धि एवं सामर्थ्यादि दैवी शक्तियोंका उपयोग हनुमतने केवल लोक-कल्याणार्थ किया तथा कर रहे हैं। कभी उन्माद न करते हुए, नम्रताका स्थायीभाव रखते हुए सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंकी ताडना करते हुए उन्हें शिक्षा दी और आज भी हम सभीको दे रहे हैं।

सूर्यकी ओर की गयी उछाल भी साक्षात् भूलोकसे सत्यलोककी ओर की गयी उडान थी। ठोडीपर हुआ आघात सहन करनेपर उडान सफल हुई। ब्रह्मगोलके लोक-कल्याणार्थ अवतीर्ण करके आत्म-चैतन्यकी विश्व-चैतन्यके साथ गाँठ बाँध दी। मन और बुद्धिसे अतीत आत्मचैतन्य

मानवी जावका मूलत स्थायी रूप हाता ह। वह ब्रह्मचतन्य ही साक्षी भावका प्रकट रूप धारण कर लिया। सत्यलोकमे निहित ब्रह्मतेजकी अवतरण-प्रक्रिया परिपूर्ण हुई। श्रीराम हनुमंतके लिये अवतीर्ण होत गये। हनुमंत उडानक संकेतसे ब्रह्मत्वके निकट पहुँचे। श्रीराम तथा हनुमान्ने परस्पर आलिंगन किया। अवतरण तथा उद्धरण-प्रक्रिया पूर्णदशाको प्राप्त हुई। चैतन्य जीव ब्रह्मचैतन्यमे लीन हो गया। गङ्गा-यमुनाके संगमके बाद फिर दोनो सरिताएँ गङ्गाके नामसे जैसे बहती है उसी तरह जीव चैतन्य और ब्रह्मचैतन्य एकरूप होकर हनुमंतके नामसे भक्तिकी बाढको समृद्धि देते हुए निरन्तर गतिमान् है और रहेगा। हनुमंत-लीला अपार एव अगाध है। इसमे किंचित् अवगाहन होनेपर भी मानव-जीवनकी साधकता निस्संदेह सध जाती है।

[अनुवादक—श्रीप्रभाकरजी पाण्डराक]

श्रीहनुमान्जीकी विविध लीलाएँ

(मानसमणि पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल शास्त्री व्यास)

सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अवतार स्वामी-धर्मके आदर्शकी स्थापनाके लिये होता है। राजाको किस प्रकार प्रजाको धर्मकी शिक्षा देकर उसे सन्मार्गपर चलाकर उसका लोक-परलोक बना देना चाहिये—अपने धर्म-मर्यादित लोक-ललित-लीलाओमे मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामने यही किया। श्रीमारुतनन्दनजी श्रीमद्भागवत (५। १९। ५)-मे कहते है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो ।

भगवान् प्राणिमात्रको मानवताकी शिक्षा देनेके लिये ही मनुज-अवतार लेकर लीला करते है साथ ही अपने चरितसे वे धर्ममार्गका विस्तार करते हैं जैसा कि इस श्रुतिवाक्यसे स्पष्ट भी है—

धर्ममार्गं चरित्रेण
। (रामपूर्वतापनीयोपनिषद्)

—इन वचनोकी प्रामाणिकता मर्यादावतारी प्रभुके स्वयंके वचनोसे सिद्ध हो जाती हैं। वे कहते है—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥

हे भावी राजाओ! आप लोगोको बारम्बार प्रणामकर श्रीराम याचना कर रहे है—यह जो सामान्य धर्मसेतु है आप सभी लोग समय-समयसे इसका पालन—प्रचार-प्रसार करते रहेगे [जिससे प्रजा इसका अनुसरणकर जीवनका लाभ प्राप्त कर ले]।' इस प्रकार जैसे श्रीराम स्वामी-धर्मकी विजयध्वज फहराते है ठीक इसी भाँति श्रीहनुमान्जी सेवा-धर्मका आदर्श पूरे विश्वमे स्थापित करते है।

भगवान् शंकर ही हनुमान्के रूपमे अवतरित होते है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान॥
(दोहावली १४२)

अवतार-लीला

श्रीमन्नारायणके मोहिनी-रूपको देखकर शिवजीका तेज विशीर्ण हो गया था जिसे ऋषियोने पत्रपुटकमे रख दिया था। समयसे भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोमे विराजित दिव्य-विभूति वायुदेवने उस शिव-तेजको केसरी वानरकी धर्मपत्नी अञ्जनादेवीके कानोके रास्ते उनके देहमे प्रविष्ट करा दिया। अञ्जनादेवीद्वारा महान् तप करनेपर परम संतुष्ट शिवजीने उन्हे वरदान दिया था कि हमारे तेजसे तुम्हे सर्वगुणसम्पन्न दिव्य पुत्रकी प्राप्ति होगी।

अवतरण-प्रसंगमे मारुतिजीका जन्म दो बार [कल्पभेदसे] माना जाता है—

(१) कार्तिक कृष्ण चतुर्दशिवारा। शनिके दिन भा पवन कुमारा॥

अगस्त्यसंहितामे लिखा है—

ऊर्जे कृष्णचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः ।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः ॥

(२) चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।
× × ×
एवं वानररूपेण प्रकटोऽभूत् क्षुधातुरः ॥

अर्थात् चैत्र शुक्ल-पूर्णिमा दिन भौमवारको मूँजकी मेखला कौपीन (दिव्य लँगोट कसे हुए) कानोमे चमकते स्वर्णकुण्डल एवं पीला यज्ञोपवीत धारण किये हुए, महाछवियुक्त स्वर्णवर्णके तुल्य देदीप्यमान देहकी कान्तिसे युक्त सूर्यके समान रक्तिम आभायुक्त मुखवाले हनुमान्जी वानर-रूपमे भूखसे व्याकुल हुए ही प्रकट हुए—

जनमते जगी जठर की ज्वाल
गगन मे मारी एक उछाल
बाल रवि लियो जानि फल लाल
तुम्हारी जय हो जय!!

बाल-लीला

छोटी गदा वपु छोटी लगूर है शीश किरीट सुकाननवाला।
लाल लगाट कसे पटपीत सुकण्ठ हियेपर मोतिन माला॥
खेलत खात फिरे गिरि कानन आनन पै रवि कोटि उजाला।
केशरि गोद लिये पुचकारत मातु दुलारि रही कहि लाला॥

माता अञ्जना अपने दूधके साथ श्रीरामकथामृत भी वत्सको पिलाती रहती थीं—

सेज पै पौढ़ि लिये सुत गोदमे रामकथा कहि दूध पिलावै।
पान करे पय आतुर है मुख देखत और सुने सचुपावै॥
देर भये जननी गइ सोइ तो हाथन सा झकझोरि जगावै।
जागि परी तो कह हनुमान तूँ रामकथा मोहि क्यूँ न सुनावै॥

अहा! उनकी बाल-लीला भी कितनी दिव्य है, जिसमे वे रामकथामृत-रस-पानके लिये ही हठ करते है। यह हठ सर्वथा अलौकिक है, अप्राकृतिक है। इतना ही नहीं, निश्चित-रूपमे यह भक्त-हृदयकी पराकाष्ठा है, अपने आराध्यनिष्ठाकी चरम सीमा है। इस चरम और परमको लीलाके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

आञ्जनय कुछ बड़ हुए। बालसुलभ चपलताके कारण वे गुफाके समीप प्रशान्त तपस्वी मुनियोके पास जाकर कहत—'श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करो बाबा! जिससे नामध्वनि सुनकर कीट-पतग भी तर जायँ—उनका कल्याण हो जाय। समाधि लगानसे तो कवल स्वय मुक्त हो जाओगे। परोपकार करो महात्मन्!' इसी 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय'की भावनासे भावान्वित हो भक्तराज प्रह्लादजीने भगवान् नृसिहकी प्रार्थना करते हुए कहा था—

प्रायेण देव मुनय स्वविमुक्तिकामा
मौन चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठा ।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्य त्वदस्य शरण भ्रमतोऽनुपश्ये॥

(श्रीमद्भा० ७। ९। ४४)

फिर तो जा सत नाम-कीर्तन करते, उनपर प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी सुन्दर कन्द-मूल-फल भेट करते। ऊँचे-ऊँचे वृक्षासे सुन्दर सुस्वादु फल तोड़कर उन्हे फलाहार कराते। अन्य साधकाकी पोथी लँगोटी धोती अँचला पेड़पर टाँग देते, इतस्तत बिखेर देते। अत्यन्त त्रस्त महात्माओने सोच-विचारकर केसरी-किशोरको शाप दे दिया—'तुम जिस बलसे चचल होकर ऊधम मचा रहे हो उसे भूल जाओगे, जब कोई स्मरण करायेगा तभी कार्यमे प्रवृत्त हो सकोगे।' मारुतनन्दन प्रेम-विभोर हो नाचने लगे। यह देख मुनिगण आश्चर्यचकित हो गये। उन्होने पूछा—'अरे बालक, हम लोगोने तुम्हे शाप दिया है और तुम इतने प्रसन्न हो गये, क्या बात है?' अञ्जनीकुमार बोले—'मुझे शाप नहीं वरदान मिला है, जब मैं अपने बलको भूल जाऊँगा तभी तो प्रभुके बलका स्मरण रहेगा। अपने बलसे तो पस्त होनेका डर है परतु प्रभु बलसे मस्त हो जाऊँगा।' इसका एक दृष्टान्त श्रीरामचरितमानसके लकाकाण्डमे प्राप्त होता है—'हनुमान्‌जी एव लकेश रावणके मध्य घोर युद्ध चल रहा था। हनुमत शत्रुको पराजित न कर पा रहे थे। दशशीश रावण ही वहाँ शक्तिशाली पड रहा था, फिर तो प्रभुने सँभाल ही लिया'—

बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु सभार्‌यो॥
सभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।

बजरगी विजयी हो गये। अस्तु, अब बाल हनुमान् शान्त हो गये। चचलता बहुत कम हो गयी। एक दिन माता अञ्जनाने कहा—'बेटा! पढने जाओ क्या खेलमे ही दिन-रात लगे रहोगे?' मारुति बोले—माँ! तुम तो कथा सुनाती हुई मुझे बतलाती हो कि सब वेद शास्त्र पुराणका सार श्रीराम-नाम है, उसे तो मै दिन-रात जपता हूँ, देखो मेरे रोम-रोममे रमणीय राम रम (चमक) रहा है—

किमि बरनो हनुमत की कायकान्ति कमनीय।
रोम रोम म रमि रहा रामनाम रमनाय॥

माताने कहा—'हाँ ठीक है बेटा! पर ये तपस्वी सत लोग तुम्हारी जन्मपत्री देखकर कहते है कि ये हनुमान् शिवके अवतार हैं तो बेटा! वैदिक सनातनधर्म-मार्ग तो शिवका ही है, उन्होने तो स्वय पूर्व-जन्ममे गुरु-अपमानके नाते काकभुशुण्डिजीको शाप देते हुए कहा है—'*जौं नहिं दड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥*' अस्तु, तुम्हे सनातन-परम्पराकी रक्षाके लिये गुरुकुलमे वेदाध्ययन तो करना ही होगा। तुम्हारे स्वामी श्रीराम जब-जब अवतार लेते हैं सविधि गुरुकुलमे निवास करके ही *अध्ययन करते हैं*'—

गुरगृह गए पढन रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी॥

× × ×

हनुमान्‌जीने आकाशमें जाकर सूर्यदेवसे समस्त शास्त्रोंका अध्ययन किया—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमना कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयन्नप्रमेयः ॥

श्रीसूर्यनारायणने गुरुदक्षिणा-प्राप्तिके रूपमें मारुतिसे कहा—'जाओ ऋष्यमूक पर्वतपर मेरे अंशसे उत्पन्न सुग्रीवकी उसके भाई वालिसे रक्षा करना। गुरु-आज्ञा-पालनसे तुम्हें अपने इष्टदेव श्रीरामका दर्शन भी वहीं हो जायगा; क्योंकि गुरुकृपापात्र ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान साक्षात्कार कर सकता है'—'आचार्यवान् पुरुषो वेद'।

× × ×

हनुमान्‌जी ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवको सँभालते हुए अपने प्रभु श्रीरामका दर्शन पानेके लिये साधना करने लगे। भगवत्प्राप्ति नाम-जप और कथा-श्रवणसे सुलभ है। नाम-जपके विषयमें मानसमें लिखा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

× × ×

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

मारुति तो श्रीराम-नामके स्वरूप ही हैं। कथा-श्रवणसे पाप कट जाते हैं और प्रभु सुलभ हो जाते हैं—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति।
(श्रीमद्भा० २। ८। ५-६)

अर्थात् नियमित कथा-श्रवणसे भगवान् अपने भक्तोंके हृदयमें विराजते हैं एवं उसके अन्तःकरणके समस्त दोषोंको धुन-धुन करके वैसे ही स्वच्छ कर देते हैं जैसे शरद् ऋतुके आगमनसे समस्त जलाशयोंका जल स्वच्छ हो जाता है। इस प्रकार निर्मल-चित्त भक्त भगवान्‌के श्रीचरणोंको अपने हृदयमें प्रेम-रज्जुसे बाँध लेता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमान्‌जीके हृदय-मन्दिरमें प्रभुके श्रीचरणदेव विराजमान हैं—

युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालय
चिह्न कुलिशादि शोभाति भारी।
हनुमंत-हृदि विमल कृत परममंदिर
सदा दासतुलसी शरण शोकहारी॥
(विनय-पत्रिका ५१)

आञ्जनेय कथा-रसिक प्रसिद्ध ही हैं—

जयति रामायण श्रवण संजात रोमाच,
लोचन सजल शिथिल वाणी।'
(विनय-पत्रिका २९)

महान् संत परमाचार्य श्रीदेवर्षि नारदजी नित्य हनुमान्‌जीको ऋष्यमूक पर्वतपर कथा सुनाते थे—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ॥
(रामाज्ञा-प्रश्न ४। ४। १)

श्रीहनुमान्‌जी नित्य नियमसे प्रभु-चरित-श्रवणकर विह्वल हो जाते थे। एक दिन मारुतिने नारदजीसे पूछा—'आपको किस गुरुने व्यास—कथा-वाचक बनाया है। आपके श्रीमुखसे निकली हुई कथा-रसकी अमृतमयी धारा प्रवाहित होकर मुझे तो परमानन्दमें डुबो देती है।' नारदजीने कहा—'मेरे पिता ब्रह्माजीने ही मुझे भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया है'—

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
(श्रीमद्भा० १२। १३। १९)

देवर्षि कहते हैं—'मारुते! मेरे पिता विधिने कहा है कि व्यास-आसनपर बैठकर यही संकल्प करना कि 'संसारके समस्त जीव (मनुष्य) अखिल ब्रह्माण्डनायक (आधार) सर्वात्मा हरि भगवान्‌के भक्त हो जायँ।' भक्तराज महावीर वज्राङ्गने पूछा—'यह सत्य है?' नारदजी बोले—'हाँ सत्य है—परम सत्य है।'

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय॥
(श्रीमद्भा० २। ७। ५२)

मारुतनन्दन! मेरे पूज्य पिताजीने निर्मल-चित्तसे तीन बार समस्त वेदोंका अनुशीलन किया। उन्हें भगवत्प्रेम ही सार-रूपमें प्राप्त हुआ। भगवान्‌में प्रेम होना ही महापुरुषार्थ है—

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥
(श्रीमद्भा० २। २। ३४)

विश्व-ब्रह्माण्डको अपने लीला-वैचित्र्यसे सराबोर करनेवाले भगवच्चरणानुरागी लीलाधारी श्रीहनुमान्‌जी नारदजीके कथा-रसरूपी परम प्रेमके लीला-समुद्रमें निमग्न हो गये।

जनकललीजीकी रुदन-लीला

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, रत्नमालीय)

यस्या कलांशकलया किल माययेदं
सञ्चाल्यते प्रबलसंसृतिचक्रमञ्जः।
यन्नामसाररसिका भुवि भूरिभागा
गच्छन्त्यनामयपदं प्रणता वयं ताम्॥
यस्या विना करुणया करुणाब्धिमूर्ते
प्राप्तिः कथंचिदिह दाशरथेर्न हि स्यात्।
सा सर्वदाऽनुपममित्यपवित्रकेलि
सच्चिन्मयी सुखनिधिः शरणं ममास्तु॥

(जानकीचरितामृतम् ५१। २७-२८)

'जिनकी कलाकी अंशमात्र शक्तिरूपिणी माया इस संसाररूपी प्रबलचक्रको अनायास चलाया करती है तथा जिनके नामरूपी सारका रसास्वादन करनेवाले बड़भागी लोग सर्वव्याधिरहित भगवद्धामको प्राप्त होते हैं, उन सर्वेश्वरी रामवल्लभाको हम प्रणाम करते हैं। जिनकी कृपाके बिना करुणामूर्ति दाशरथिकी प्राप्ति किसी प्रकार भी नहीं होती जिनकी क्रीडाएँ उपमारहित, एकरस रहनेवाली एवं पवित्र हैं वे सत्-चित्-सुखमयी सर्वेश्वरी रामवल्लभा मेरी रक्षा करें।'

आज मिथिलेशके महलमें बड़ी बेचैनी छायी हुई है। जिसको देखो उसीका चेहरा उतरा हुआ दिखायी पड़ता है। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, दास-दासी, पशु-पक्षी—सब-के-सब उद्विग्न हैं। चारों तरफसे लोग दौड़ते-उमड़ते चले आ रहे हैं। जो जहाँ सुनता है वहाँसे व्यग्रतासे चला आ रहा है। कोई स्त्री पलनेमें अपने बच्चेको अकेला छोड़ दौड़ी चली आ रही है तो कोई अपनी गोदमें बालक उठाये दौड़ी आ रही है। कोई दही मथना छोड़कर चली आ रही है तो कोई घर-बुहारना अधूरा छोड़कर। कोई खूँटेपर बँधी गायको चारा-पानी देना भूल गया है, तो कोई कपड़ा बदलना। कोई नंगे पैर चली आ रही है, तो कोई एक ही पैरमें चप्पल लगाये। कोई ओखलमें चिउड़ा कूटना बाकी छोड़कर आ रही है तो कोई दरवाजेकी साँकड़ लगाना भूल गयी है। कोई एक आँखमें ही काजल लगाये चली आ रही है तो कोई पानी भरनेके लिये उबहन लिये ही दौड़ी चली आ रही है। सारे नगरमें खबर बिच्छूके डंककी तरह फैल गयी है कि आज मिथिलेशललीकी तबीयत खराब है। सारा रनिवास सुनयनाजी, कान्तिमतीजी, सुभद्राजी, सुदर्शनाजी, सुचित्राजी, सुखवर्धिनीजी, सहजासुन्दरिकाजी, मोहिनीजी, सुवृत्ताजी, क्षेमवर्द्धिनीजी शशिकलाजी शशिकान्ताजी, विदग्धाजी, विशालाक्षीजी अशोकाजी विनीताजी, शोभनाङ्गीजी और चन्द्रप्रभा आदि राजरानियोंकी उपस्थितिसे ठसाठस भरा है। सब-की-सब सुनयनाजीको धीरज बँधा रही हैं किंतु हृदय तो सबका बैठा जा रहा है।

आज तो जानकीजीका रोना-चीखना ही नहीं बंद हो रहा है। कभी वे आँखें बंद कर लेती हैं, कभी थोड़ा खोलती हैं, कभी निःस्पन्द-सी पड़ जाती हैं तो कभी हाथ-पैर पटकने लगती हैं। कान्तिमती और सुनयनाजी बार-बार उन्हें छातीसे सटाती हैं, दूध पिलानेका प्रयास करती हैं किंतु जनकललीकी पीड़ा तो मानो शान्त होनेका नाम ही नहीं लेती। कोई कहता है कि बिटियाको कोई असाध्य बीमारी हो गयी है, तो कोई कहता है कि क्रूर ग्रह-बाधा है। तरह-तरहकी आशंकाओंसे सभीका मन अत्यन्त व्यथित है। सेवक वैद्यराजको बुलानेके लिये दौड़ाये जाते हैं। कोलाहल मचा हुआ है। कोई कहता है कि 'दृष्टि-दोषके कारण ही यह व्याधि उत्पन्न हुई जान पड़ती है। अतः किसी सुविज्ञ तान्त्रिकको ही व्याधि-शान्तिके लिये बुलाया जाय'—

दृष्टिदोषोद्भवो व्याधिर्हेतुरत्रावगम्यते।
ततः आनीयतां कोऽपि तान्त्रिको व्याधिशान्तये॥

(जा० च० ३१। ६)

जब जनकपुरीकी यह विह्वलता पुरवासियोंके परमाराध्य, भक्तसहाय भगवान् शंकरके कानोंमें गूँजती है तब वह सत्वर चल पड़ते हैं—एक वृद्ध सिद्ध तान्त्रिकका वेश बनाये हुए। उनके मनमें जनकललीके दर्शनकी तीव्र लालसा है—

दर्शनार्थं ततो देवः सुतायां मिथिलक्षितुः।
विग्रहं वष्टित चक्रे कन्थया वार्द्धकेन च॥

(जा० च० ३१। १०)

गुदड़ी लपटे काँपता हुआ शरीर धारण किये हुए वे गलियोंमें पहुँचकर विज्ञापित करते हैं—'मिथिलापुरीके निवासियो! देश-देशका परिभ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे नगरमें आ गया हूँ। व्याधि-निवारण मेरा जीवन-व्रत है। किसी नगरमें मैं रातभरसे अधिक ठहरता नहीं और एक भी रोगी ठीक किये बिना अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करता हूँ। किसीको यदि दुस्सह कष्ट हो तो आयें और आरोग्य लाभ करें।'

जिस समय तान्त्रिकके आगमनकी खबर रनिवासमें पहुँचती है, उस समय लोगोंकी खुशीका ठिकाना नहीं रहता। सूखते धानमें जैसे पानी पड़ जाय, मरीचिकाग्रस्त म्रियमाण मृगको जैसे जल प्राप्त हो जाय, वैसे ही सब लोग उत्कण्ठित हो कह उठते हैं कि विधाताने बड़ी कृपा की।

शीघ्र ही राजमहलसे दक्षिका नामकी दासीको उस तान्त्रिकके पास भेजा जाता है। तान्त्रिकके पास पहुँचकर चरणोंमें गिरकर वह राजभवनमें चलनेकी प्रार्थना करती है—

तान्त्रिकोऽसि यदि ब्रह्मञ्छिशूनां सर्वकष्टहा।
महाराजसुतां पश्य प्रयायान्तः पुरं मया॥
समाह्वयति राजा त्वां तदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम्।
विलम्बो नात्र कर्तव्यस्त्वया लोकहितैषिणा॥

(जा० च० ३९। १७-१८)

'हे ब्रह्मन्! यदि आप शिशुओंके सभी कष्टोंको दूर करनेमें समर्थ तान्त्रिक हैं, तो मेरे साथ शीघ्र चलिये और महाराजकी पुत्रीको देखिये। महाराज जनकने आपको बुला लानेके लिये ही मुझे भेजा है। आप तो सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी ठहरे, अतः अब विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

प्रसन्न-मन तान्त्रिक कहते हैं—'भद्रे! यदि ऐसी कोई बात है तो मैं अवश्य चलूँगा। किसी प्रकार व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर वे दासीके साथ अन्तःपुरमें जा पहुँचते हैं। उन्हें देखते ही मिथिलेश आसनसे उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके सुनयनाजीके पास अन्तःप्रकोष्ठमें ले जाते हैं। वे भी आदरपूर्वक खड़ी होकर स्वागत-प्रणाम-पुरस्सर उन्हें किशोरीजीके पास ले जाती हैं। रुग्ण शिशुको देखकर वृद्ध तान्त्रिक भावविह्वलतावश मूर्च्छित हो जाते हैं। प्रेममूर्ति भगवान् शंकर जो ठहरे—

तत्क्षणं शंकरो देवः प्रेममूर्च्छामुपागमत्॥

(जा० च० ३९। २४)

सुनयनाजीकी तो 'कोढ़में खाज' वाली स्थिति हो जाती है। वे विलपती हैं—

हे विधि! यह कौन-सी विकट बीमारी प्रकट हुई है कि रोग दूर होना तो दूर चिकित्साके लिये आये हुए तान्त्रिकशिरोमणि भी मूर्च्छित हो गये। ब्राह्मण-मृत्युका दुर्दृश्य भी देखना पड़ेगा क्या?'—

को व्याधिरत्र संजातः मद्गृहे सुमहान् बली।
येन मुक्ताऽस्ति मे पुत्री प्राणैरपि गरीयसी॥
तां चिकित्सितुमायातो योऽधुना तान्त्रिको महान्।
सोऽपि नूनं तदाक्रान्तो नष्टसंज्ञ इवेक्ष्यते॥

(जा० च० ३९। २६-२७)

सुनयनाजीद्वारा इस प्रकारका व्यग्र विलाप करते देख भोलेनाथकी भाव-समाधि भंग होती है। वे 'हरि! हरि!' कहते हुए आँखें खोलते हैं। हर्षित सुनयनाजी अपने भाग्यकी सराहना करती हैं—

'विप्रशिरोमणि! बड़े सौभाग्यकी बात है जो आपको व्याधिने छोड़ दिया और आप सचेत हो गये।' उनकी व्याकुलता लक्षितकर तन्त्राचार्य सान्त्वना देते हैं—'मेरी चिन्ता मत करो मइया। गुरुदेवकी कृपासे और तन्त्र-मन्त्र-नैपुण्यवश मैं किसी भी व्याधिकी पकड़से परे हूँ। कोई भी आधि-व्याधि मेरे पास फटक नहीं सकती। हे करुणामयी! आपके कारुण्यकी बलिहारी है कि आप मेरे ध्यानयोगको भी व्याधि मान बैठीं। मैंने गुरुदेवका ध्यानकर समस्त व्याधि जान ली है और इसका निदान मेरे सिरमें है'—

दृष्ट्वा त्वत्पुत्रिकाव्याधिं गुरुदेवः स्मृतो मया।
तेन प्रदर्शितं तन्त्रं तत्तु मे शिरसि स्थितम्॥

(जा० च० ३९। ३५)

अब आप देखती रहें। कुछ ही पलोंमें मैं इसे निर्मूल किये दे रहा हूँ। वे तीन बार पालनेकी परिक्रमा करते हैं और अपना सिर जनकतनयाके तलवोंमें सटा देते हैं। उनकी इस क्रियासे चकित सुनयनाजी कह उठती हैं—

'अहो योगिराज! आप यह कैसा अनुचित कर हमलोगोंको नरकमें ढकेल रहे हैं। आप वृद्ध हैं, ब्राह्मण हैं

तन्त्रन ह आर परम योगी ह। इस कन्याको आप आशीर्वाद ही प्रदान करें। हमारे-जैसे क्षत्रियकुलोत्पन्न लोगोंका स्थान तो आपके चरणोंमें ही है। चरणसे आपका शिर-स्पर्श हमारी कुलमर्यादाके विरुद्ध है।'

सुनयनाजीकी हिचकिचाहट देख तान्त्रिकाचार्य उन्हें थोड़ा डाँटते हुए कहते हैं—

'अरी माता! यह तान्त्रिक उपचार-प्रक्रिया है। इसमें टोकाटोकी नहीं करनी चाहिये। आप चुपचाप देखती रहें। आपकी कन्या कुछ ही पलोंमें नीरोग हो जायगी और मुसकराती हुई दुग्धपानद्वारा आपको हर्षित करेगी'—

इदानीमेव सहृष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा।
कुलोद्योतकरीयं ते पयःपानं विधास्यति॥

(जा० च० ३९। ४३)

सब प्रकारसे सान्त्वना प्रदानकर तन्त्राचार्य मन-ही-मन जानकीजीकी स्तुति करने लगे—

जय जय शिशुरूपे तप्तचामीकराभे
विमलकमलनेत्रे पूर्णशीतांशुवक्त्रे।
निखिलभुवनजीवानन्दिनि श्रेयसे
श्रीजनकनृपतिगेहे क्रीडमाने प्रसीद॥

(जा० च० ३९। ४५)

'हे शिशुरूप धारण करनेवाली, तपाये हुए सोनेके समान निर्मल कान्तिवाली तथा उज्ज्वल कमलके समान नेत्रोंवाली और पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली किशोरी! आपकी जय हो! जय हो! समस्त भुवनके जीवोंको आनन्द और परम मङ्गल प्रदान करनेवाली जनकजीके महलमें खेलती हुई आप प्रसन्न होवें।'

जनकनृपतिकन्ये भावगम्ये शरण्ये
विरचितशिशुरूपे सच्चिदानन्दमूर्ते।
उरसि मम सदैवाननरूपेण कामं
विहर ससुखमम्बोत्सङ्गसिंहासनस्थे॥

(जा० च० ३९। ५०)

'हे भावसे प्राप्त होनेमें सुलभ श्रीमिथिलेशकुमारीजी! प्राणिमात्रकी रक्षा करनेमें समर्थ, शिशुरूप धारण की हुई, सुनयनाजीके उत्सङ्गरूपी सिंहासनपर विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी! स्वेच्छानुसार आप इसी शिशुस्वरूपसे मेरे हृदयमें सुखपूर्वक विहार करती रहें।'

तान्त्रिकाचार्य (शंकरजी)-की भावभरी प्रार्थनासे संतुष्ट जानकीजी प्रकृतिस्थ हो जाती हैं, आरामसे आँखें खोल देती हैं और समूचे रनिवासमें आनन्दकी लहर दौड़ जाती है।

प्रसन्नमना जानकीजीको सुनयनाजी दूध पिलाती हैं और वे प्रेमपूर्वक चिर-पिपासित-मुद्रामें—दुग्ध-पान करने लगती हैं। सारा वातावरण हर्ष-विभोर हो उठता है। राजा-रानी तन्त्राचार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे उनके ऊपर स्वर्ण, कोष, पुर, राज्य न्योछावर करने लगते हैं, जिन्हें अस्वीकार करते हुए वे कह पड़ते हैं—

हरि! हरि! यह सब तो मेरे ऊपर बरसायी गयी हरि-कृपा एवं गुरुकृपाका प्रभाव है। मुझे स्वर्ण, कोष, राज्य आदिसे क्या लेना-देना? यदि आपकी कुछ देनेकी ही अभिलाषा है तो मुझे इस कुमारीद्वारा पहना हुआ कोई कपड़ा दे दीजिये। जबतक वह मेरे पास रहेगा, तबतक आपकी पुत्रीके पास कोई बीमारी नहीं फटकने पायेगी। सुनयनाजी तत्काल वस्त्र देकर उनके चरणोंमें लोट जाती हैं। आशीर्वाद देकर मिथिलेशललीकी तीन बार पुनः परिक्रमा करके अपने सिरसे उनका पाद-स्पर्शकर आचार्यप्रवर विदा होते हैं।

ऐसी जगज्जननी जनकनन्दिनीजीको जो-भर प्रणाम—

तस्यै नमः सततमस्तु सहस्रकृत्वः
सीतेति नाम भुवनप्रथितं यदीयम्।
या सानुकम्पहृदयेन निजेन रामं
सर्वेश्वरं कृतवती परितो विमुग्धम्॥

(जा० च० १। २)

'जिन्होंने अपने सहज दयापरिपूर्ण हृदयद्वारा सब प्रकारसे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीको मुग्ध कर रखा है, जिनका 'श्रीसीताजी' ऐसा सुन्दर मनोहर मङ्गलकारी नाम आज तीनों लोकोंकी जिह्वापर विराजमान है, उन श्रीकिशोरीजीके लिये सहस्रों बार सर्वदा प्रणाम है।'

बालचरित बिलोकि हरषाऊँ

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥

(रा० च० मा० ७। ७५ ख)

भगवान् श्रीरामके बाल-लीलाओंके स्मरणसे काकभुशुण्डिजीका तन-मन पुलकित हो गया, और उन्होंने श्रीरामकी लीलाकथाकी महिमाका गुणगान करते हुए कहा—'हे पक्षिराज गरुडजी! जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं अयोध्यापुरीमें जाकर उनका जन्म-महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्षतक वहीं रहकर प्रभुकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥

(रा० च० मा० ७। ७५। ४)

अपने इष्टदेव बालरूप श्रीरामकी एक अलौकिक बाल-लीलाको सुनाते हुए काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुडजी! एक दिन अयोध्याके राजमहलके आँगनमें बालक राम अपने भाइयोंके साथ खेलते हुए विचरण कर रहे थे। उनका कोटिकाम-कमनीय श्याम-शरीर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान था। जब वह किलकारी मारकर मुझे पकडने दौडते, तब मैं दूर चला जाता था। इसपर वह मुझे रिझाने-हेतु पूआ दिखाते थे। जब मैं उनके चरणस्पर्श-हेतु उनके पास जाता तब वह दूर भागते हुए मुड-मुडकर मेरी ओर देखते थे। साधारण बच्चों-जैसी इस लीलाको देखकर मुझे भ्रम हो गया कि प्रभु कौन-सी विचित्र लीला कर रहे हैं।

हे पक्षिराज! इतनी-सी शंका करनेसे मैं प्रभुकी मायासे मोहित हो गया। बालक राम मुझे चकित देखकर मुसकराकर मुझे पकडने दौडे और मैं तुरंत आकाशमें उड गया। आकाशमें उडते हुए मैंने पीछे मुडकर देखा कि मुझे पकडने-हेतु फैली हुई प्रभुकी भुजा मेरे बिलकुल पास थी।

मैं भयभीत होकर जैसे-जैसे आकाशमें दूरतक उडता वैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरिकी भुजाको अपने पास देखता था—

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

(रा० च० मा० ७। ७९। ७-८)

हे गरुडजी! मैं ब्रह्मलोकतक उडकर गया। वहाँ भी मैंने प्रभुकी भुजाको अपने पास देखा। श्रीरामकी भुजा और मेरे बीच केवल दो अंगुलका फासला था। मैं अपनी गतिके अनुसार सातों आवरणोंको भेदकर आगे बढा। वहाँ भी उनकी भुजा देखकर मैं व्याकुल हो गया'—

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥
सप्तावरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

(रा० च० मा० ७। ७९ (क-ख))

मैंने भयभीत होकर आँखें बंद कर लीं। आँख खोलनेपर मैंने अपनेको अयोध्यामें पाया और मुझे देखकर प्रभु मुसकराने लगे। ज्यों ही उन्होंने हँसनेके लिये मुँह खोला, त्यों ही मैं उनके मुखमें चला गया।

हे पक्षिराज! मैंने उनके उदरमें अनेक ब्रह्माण्डोंके समूह देखे, जिनकी विचित्र रचनाएँ एक-से-एक बढकर थीं। ब्रह्माजी, शिवजी, सूर्य एवं चन्द्रमा, यम, लोकपाल, पर्वत, भूमि, नदी, तालाब, वन, देवता, मनुष्य, किंनर, सिद्ध तथा विभिन्न प्रकारके जड-चेतन जीव देखे, जिन्हें कभी न देखा था और न ही कभी उनके बारेमें सुना था।

मैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सौ वर्षतक रहा। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी रचना भिन्न थी। वहाँ अवधपुरी तथा सरयूजी भी भिन्न ही थीं। दशरथजी, कौसल्याजी तथा भरतजी आदि भाई भी भिन्न थे। इस प्रकार मैंने प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रामावतारकी अपार बाल-लीलाएँ देखीं। मैंने असंख्य ब्रह्माण्डोंमें एक ही राम देखे। इसके बाद मैंने अपने आश्रमपर कुछ समय व्यतीत किया। राम-जन्मका समाचार सुनकर मैं अवधपुरी पहुँचा और वहाँ कृपालु श्रीरामको देखा। दो घडीमें ही अनेक ब्रह्माण्डोंके लीला-दृश्य मेरे मानस-पटलपर एक ही साथ द्रुतगतिसे घूम गये। अब मैं मोहरूपी बुद्धिसे थककर व्याकुल हो गया। मेरी व्याकुलता देखकर प्रभु हँसने लगे और मैं तुरंत मुँहसे बाहर आ गया। पुनः श्रीराम वही लडकपनकी लीलाएँ करने लगे। मेरे मनमें शान्ति नहीं थी— मैं प्रभुकी प्रभुताका स्मरण करके सुध-बुध खो बैठा और 'हे आर्तजनोंके रक्षक!

रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिर पडा। प्रभुने अपनी मायाका विस्तार रोककर मेरे सिरपर हाथ रखा, जिससे मेरा सम्पूर्ण दुःख मिट गया'—

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥
(रा० च० मा० ७। ८३। १—४)

मैंने अनेक प्रकारसे प्रभुकी विनती की और कृपालु श्रीरामने मुझे सब गुणोंकी खान भक्ति प्रदान की। तबसे मुझे माया नहीं व्यापती है।

हे गरुडजी! श्रीराम और लक्ष्मणजीको नागपाशसे मुक्त करते समय आप मेरे समान ही प्रभुकी मायासे मोहित हो गये हैं। प्रभुकी कृपासे ही इससे छुटकारा सम्भव होगा। यह भी श्रीरामकी कृपा है कि आपने यहाँ आकर मुझे पवित्र किया है, जिससे प्रभुका गुणगान हुआ है। अस्तु, 'जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं और भक्तोंके लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं, तब-तब मैं अवधपुरीमें उनकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥
(रा० च० मा० ७। ७५। २-३)

भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला

(आचार्य श्रीगंगारामजी शास्त्री)

भगवान् शिवका एक नाम 'नटराज' भी है। नटोंका काम होता है अनेक प्रकारके चमत्कारपूर्ण करतब दिखाना, जिसे हम नटोंके खेल कहा करते हैं। भगवान् शिव ठहरे नटराज, इसलिये उनके कृत्य तो और भी अधिक रहस्यमय और चमत्कारोंसे भरे होंगे ही। उनकी त्रिपुरदहन-लीलाके सम्बन्धमें 'श्रीशिव महिम्न स्तोत्र' श्लोक-संख्या १८ में कहा गया है—

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥

हे ईश! आपने त्रिपुरका ध्वंस करनेके लिये पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरुको धनुष, सूर्य और चन्द्रको रथके पहिये और विष्णुको बाण बनाया। त्रिपुर तो आपके लिये तृणके समान था, परंतु उसे जलानेके लिये आपने इतना बडा आडम्बर (लीला) किया, यह किसलिये? जो ब्रह्मा तथा विष्णुसे अपराजेय कामदेवको दृष्टिविक्षेप-मात्रसे भस्म कर डालता है, उसके लिये त्रिपुरको जला देना तो मात्र तिनकेके समान है, फिर उसके लिये इतना और इस प्रकारका अभियान तो आडम्बर ही प्रतीत होता है। इच्छामात्रसे ही सृष्टिका संहरण करनेवाले शंकरके लिये किसी तन्त्रकी—साधनकी अपेक्षा ही नहीं। यह तो उक्त वस्तुओंको उन्होंने अपनी क्रीडाका साधन मात्र बनाया है।

शिवकी इस क्रीडाका—लीलाका वर्णन शिवपुराण, लिङ्गपुराण और महाभारतमें विस्तारके साथ किया गया है। भगवान्की छोटी-बडी प्रायः सभी लीलाओंमें कुछ-न-कुछ गूढ रहस्य छिपा रहता है, अतः उसीके सम्बन्धमें यहाँ कुछ विचार किया जा रहा है—

अन्तरिक्षमें बलवान् असुरोंके तीन पुर थे, जो सोने-चाँदी और लोहेके बने हुए थे। इन्द्र जब उन पुरोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भी पराजित न कर सका, तब सभी देवता ब्रह्माको आगे करके शिवजीके पास गये और उनसे उन तीनों पुरोंको नष्ट करनेकी प्रार्थना की। शिवजीने सभी देवताओं और विश्वकी समस्त उपलब्ध देश और कालके अन्तर्गत आनेवाली सामग्रीके सहयोगसे उन पुरोंको नष्ट करनेका बीडा उठाया। शिवजीके शताङ्ग-रथका निर्माण पृथ्वीसे हुआ। दिन-रात, कला-काष्ठा और ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष—धुरेका लट्ठा हुईं। धर्म, अर्थ और काम—इन

तानाको सयुक्त करक रथको वठक वनाया गयी। सूय आर चन्द्रमा रथके पहिये हुए। इन्द्र वरुण, यम आर कुवर—य चारा उस रथका खींचनवाल अश्व वन। धर्म सत्य तप आर अर्थ उसकी लगाम हुए। वषट्कार चावुक हुआ गायत्री छन्द आग वाँधनकी रस्सा हुई, सवत्सर धनुप हुआ सावित्री प्रत्यञ्चा हुई आर ब्रह्मा सारथि वन।

कहीं इसका वणन इस प्रकार मिलता ह—अस्ताचल आर उदयाचल हो इस रथक कूबर ह। जुआ वाँधनक लिय लट्ठ ह। सवत्सर ही इसका वग ह। अयन ही चक्रका घूमना ह अथवा उत्तरायण आर दक्षिणायन ही रथका धुरीक पट्ट ह। मुहूर्त वन्धुर-आवरण आर कला ही शम्या-शैल ह। अन्तरिक्ष इस रथका रक्षावरण है। स्वग आर माक्ष दा ध्वजाएँ ह। श्रद्धा ही इस रथका गति है। वर्ण आर पदक स्वरस युक्त मन्त्र ही इसका घठ ह। सहस्र फणस भूपित शपनाग इसक वन्ध ह। दिशा आर उपदिशा इस रथक पाद हैं। आवह, प्रवह आदि पवनक सात मार्ग हा इस रथक सप्त सोपान ह। लगाम थामकर रथ चलानवाल ब्रह्मा इसक सारथि ह। प्रणव ही उनका चावुक ह। मरु धनुप ह, प्रत्यञ्चा वासुकि ह। मन्दराचल वगलका दण्ड है। वदरूपा सरस्वती इस धनुपका घटा ह। महातजस्वा विष्णु इस धनुपक वाण ह अग्नि ही वाणका नाकक शल्य ह। यम इस वाणक पुख ह।

इस प्रकार पुराणाम जा शताङ्ग-रथका वर्णन किया गया है, उसम दश आर काल—इन दोनाका एक साथ समावेश किया गया ह। सूर्य आर चन्द्रको रथक पहिय वतानका आशय यही ह कि सूर्य और चन्द्र तथा ग्रह तारा नक्षत्र आदिके भ्रमणस ही यह विश्वरूपी रथ गतिमान् है।

इस प्रकार रथपर बैठकर महादव शकरन धनुपपर प्रत्यञ्चा चढाकर शरका सधान करत हुए पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित करक त्रिपुरका चिन्तन किया तो व तीना पुर मिलकर एक हो गय। उन तीना पुराक एक हात हा भगवान् शकरने उस त्रलोक्यसार धनुपको खाचत हुए वाण छाडा। उस वाणक छाडते ही महान् आतनाद हान लगा आर व तीना पुर उनम निवास करनवाले राक्षसासहित जलकर पश्चिमी समुद्रम गिर गय।

वास्तवम त्रिपुरजयका यह कथानक एक रूपक ह। विश्वक सृष्टिकता ब्रह्मा इस रथक चलानवाल हैं तथा काल हा इसकी गति ह—

काला हि भगवान् रुद्रस्तस्य सवत्सरा धनु।
तस्माद् राद्री कालरात्रिज्या कृता धनुषाऽजरा॥
(महाभारत कणपव ३४। ४८)

'काल ही भगवान् रुद्र ह जिनका सवत्सर धनुप है—रुद्रकी शक्ति राद्राका ही नाम कालरात्रि ह, जा कभा न टूटनवाली इसका प्रत्यञ्चा ह।'

विष्णुक द्वारा पालित यह अग्नाषामात्मक जगत् गतिशाल ह इसलिय इन तीनाका मिलाकर उनका वाण कहा गया ह।

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलन साम एव च।
अग्नाषामो जगत् कृत्स्न वष्णव चाच्यत जगत्॥

सृष्टिकता ब्रह्मा जिस रथका चलानवाले हा वह शिवका रथ यह विराट् विश्व ही ह। इस शिवपुराणके युद्धखण्ड (८। ५)म विस्तारक साथ वताया गया है—

अथ दवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलाकमया दिव्या रथा यत्नन सादरम्॥

'भगवान् रुद्रका यह सर्वलाकमय दिव्य रथ विश्वकर्माक द्वारा यत्नपूवक आदरसहित वनाया गया ह।' 'विश्वकर्मणा इस शब्दका अर्थ जहाँ विश्वकर्माद्वारा प्राप्त हाता है वहीं यह सकेत भी स्पष्ट है कि ससारके प्राणियाके कर्मों (तज)-से ही यह रथ निर्मित हुआ ह। महाभारतम आर भी स्पष्ट-रूपसे सकत है। जेस—

तथेव बुद्धया विहित विश्वकर्मकृत शुभम्।
तता विवुधशार्दूलास्ते रथ समकल्पयन्॥
(महाभारत कर्णपर्व ३४। १७)

'बुद्धिसे विहित ओर ससारभरक कर्मोस कृत इस रथको उन दवश्रष्ठाने सकल्पसे बनाया।' हमार मनक सकल्प-विकल्प आर इन्द्रियाक अधिष्ठाता दवताआक द्वारा मनाराज्यका यह रथ सकल्प-निर्मित ह।'

'सवभूतमय यह रथ सुवर्णका ह आर सवसम्मत है। इसका दाहिना चक्र सूर्य आर वायाँ चन्द्रमा हैं —

सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः।
रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यं वामाङ्गं सोम एव च॥
(लिङ्गपुराण पूर्वार्ध ८।६)

'पुरं शरीरमित्याहुः' इसके अनुसार यह शरीर ही पुर है। आँखमें स्थित इडा और पिङ्गला नामक नाड़ियाँ ही चन्द्र और सूर्य हैं। लिङ्गपुराणमें कहा गया है—

एषा सूर्यात्मूर्तिनिधाना दक्षिणा पथि।
वहन्ति प्राणपवनं सृष्टिसंहारकारकम्॥

इसके लिये लिङ्गपुराणमें सूर्यको रथका दाहिना चक्र कहा गया है और वामभागमें चन्द्रमाको इडा— 'वामाङ्गं सोम एव च'। सूर्यको द्वादश कला माना है और चन्द्रमाको षोडश कला। इसलिये इन चक्रोंमें बारह और सोलह अरे बताये गये हैं—

दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्।
अरेषु तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु॥
शशिनः षोडशाराः स्युः कला वामस्य सुव्रत।
ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम्॥
(लिङ्गपुराण पूर्वार्ध ८।७-८)

सत्ताईस नक्षत्र भी बायें अरोंके भूषण कहे गये हैं क्योंकि बारह राशियोंमें नक्षत्रोंके चरणोंके भागोंमें सत्ताईस नक्षत्रोंका विभाजन किया गया है। त्रिपुरतापिनीमें कहा गया है—

मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

मन, बुद्धि और चित्तको 'त्रिपुर' कहा गया है। तीन गुणोंसे युक्त इस शरीरमें तमोगुण ही लोह, सत्त्वगुण रजत और रजोगुण स्वर्ण है जिनसे निर्मित यह त्रिपुर क्रियाशील है। गुण रस्सीको भी कहते हैं, जो बाँधनेके काम आती है। श्रीमद्भगवद्गीता (७।१३)-के अनुसार इन तीन गुणोंसे आबद्ध होकर ही संसार चल रहा है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंसे पर होकर ही तुरीया अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार इच्छा, ज्ञान और क्रियाकी त्रित्व है और इनमें सामंजस्य होना ही त्रिपुरजय है। भाव यह है कि सत्त्व, रजस् और तमोगुणसे पार होना ही त्रिपुरजय है।

इस त्रिपुरके विकासरूपमें सूक्ष्मरूपसे जो सृष्टि बनती है उसे 'श्वेताश्वतरोपनिषद्'में लोहित, शुक्ल और कृष्णको त्रिवृत्त कहा है। इसीको कहा है—'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' कहता है। जिसके विस्तार 'बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्' के माध्यमसे विकल्पात्मिका सृष्टि बनती है।

इस शरीरमें मूलाधारसे सहस्रार-पर्यन्त तीन ग्रन्थियाँ हैं—ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि—इन तीन ग्रन्थियोंका त्रिपुर है। यह शरीर ही रथ है जिसके लिये ऋग्वेद (८।५८।३)-में कहा गया है—

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।

यह शरीररूपी रथ प्रकाशयुक्त है तथा पताकायुक्त है। इसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर ही तीन चक्र हैं जिनसे यह घूमता है अथवा सत्त्व, रज और तम—ये तीन चक्र हैं अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रिया ही तीन चक्र हैं अथवा संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण—ये तीन प्रकारके कर्म ही तीन चक्र हैं। इसमें कामना और वासनारूपी अनेक अरे हैं जो भलीभाँति स्थित हैं।'

प्रारम्भमें 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' का उद्धृत करते हुए 'रथाङ्गे चन्द्रार्कौ'—कहा गया था उसका तात्पर्य यह हुआ कि इस शरीररूपी रथके सूर्य और चन्द्रमामें सदैव प्राणवायुका संचार होनेसे ही यह रथ गतिमान् है, ये ही इसके दो पहिये हैं—दाहिना और पिंगला नामक सूर्यनाडीमें आदित्यकी बारह कला-रूप बारह अरे हैं, वामभागमें इडा नामक चन्द्रनाडीमें चन्द्रकी सोलह कला-रूप सोलह अरे हैं। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि भेदनेके लिये सुमेरु-मेरुदण्ड ही धनुष है जिसमें सुषुम्नाकी प्रत्यञ्चा और प्रणवके शर-संधानसे इस त्रिपुरका भेदन होता है, जिसके लिये कहा गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
(मुण्डकोपनिषद् २।२।८)

यही त्रिपुरजय—परम कल्याणकारी भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला है।

भगवान्‌की वामन-लीला

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी शर्मा एम्० ए० (हिन्दी संस्कृत), पी-एच्० डी०)

भगवान्‌की लीलाएँ भक्तोंके हृदयको आनन्दकी रसधारामें निमग्न कर देती हैं। भगवान्‌के जन्म और कर्म दिव्य होते हैं। उनकी पूरी समझ तो भगवत्कृपापर निर्भर करती है। फिर भी अपनी-अपनी सूझ और शक्तिके आधारपर उनका वर्णन—व्याख्यान किया जाता है। आकाश अनन्त है। उसका पार पाना तो अति कठिन है, फिर भी जैसे प्रत्येक पक्षी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उड़ान भरते हैं, उसी तरह भगवान्‌की लीलाओंका सुनना-सुनाना अपनी सीमित मेधाके साथ सब करते हैं। अनन्त भगवान्‌की अनन्त लीलाएँ हैं। व्यक्ति जो कुछ करता है—वह कर्म है, परंतु भगवान् जो करते हैं, वे उनकी लीलाएँ हैं। ये लीलाएँ भारतीय संस्कृतिकी चेतनाके रसमय विस्तार हैं। वामन-अवतारकी लीला उनमेंसे एक है। भगवान्‌के चौबीस अवतारोंमें वामन-अवतारका अपना अलग महत्त्व है। जयदेवने अपने गीतगोविन्दमें दस अवतारोंमें उनकी गणना की है।

वामन-लीलाका महत्त्व इसलिये और रोचक एवं जिज्ञास्य बन जाता है, क्योंकि उनकी लीलाके आरम्भिक बीज वैदिक वाङ्मयमें मिल जाते हैं। वामन-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले ऋग्वेदमें कई मन्त्र मिलते हैं। उनमें विष्णुसूक्तका निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

(ऋग्वेद १। १५४। १)

अर्थात् विष्णुकी शक्तिका वर्णन करते हैं, जिन्होंने पृथ्वीके प्रदेशोंको नापा और अपने तीन बड़े डगोंसे आकाशको स्थापित किया।

वामन-लीलामें भगवान्‌के तीन बड़े डगोंका अद्भुत वन्दनीय वर्णन है। वामनभगवान्‌की लीला कई पुराणोंमें आयी है, परंतु श्रीमद्भागवतपुराणमें उसका भाव-भरित और भक्तजन-रंजक विस्तार है।

वामनभगवान्‌का जन्म अदितिके गर्भसे होता है। बलिद्वारा देवोंके पराभवके बाद कश्यपजीके कहनेसे माता अदिति पयोव्रत[1]का अनुष्ठान करती हैं। भगवान् देवोंका इष्ट सम्पादन करनेके लिये और अपनी लीला करनेके लिये भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन अवतरित होते हैं। पहले वे शङ्ख, चक्र, गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-रूपमें प्रकट होते हैं। अत्यन्त आनन्दमयी वेला हो जाती है। देव-मुनि-पितर स्तुतियाँ करते हैं, अदिति प्रसन्न होती हैं और कश्यप जय-जयकार करते हैं। बादमें भगवान् ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लेते हैं। कश्यपको आगे करके उनका जन्म-संस्कार और यज्ञोपवीत-संस्कार ऋषि लोग कराते हैं।

(ब्राह्मणके लिये यज्ञोपवीतका विधान सात वर्ष अथवा ग्यारह वर्षकी अवस्थामें किया गया है। ऐसा माना जाता है कि जनेऊके निर्माता ब्रह्मा हैं, उसे त्रिगुणात्मक करनेवाले विष्णु हैं और उसका ग्रन्थिबन्धन करनेवाले शिव हैं तथा गायत्रीदेवी इसे अभिमन्त्रित करती हैं। जनेऊके एक-एक धागेमें एक-एक देवी-देवताकी प्रतिष्ठा होती है। इसका लोहेसे स्पर्श नहीं होना चाहिये। इसमें चाबी नहीं बाँधनी चाहिये। ऐसा करनेसे देवी-देवता उस जनेऊको छोड़कर भाग जाते हैं। ब्रह्मोपनिषद्‌में कहा है—'यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्'। अर्थात् जो अविनाशी ब्रह्म है, वही इस सूत्रमें है—यह समझकर जनेऊको धारण करना चाहिये।)

भगवान् वामनदेवके यज्ञोपवीत-संस्कारके समय बृहस्पतिने जनेऊ प्रदान किया, कश्यपने मूँजकी मेखला दी, सूर्यने गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अदितिने कौपीन, ब्रह्माने कमण्डलु, सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला और कुबेरने भिक्षापात्र दिया। ऐसे दिव्य ब्राह्मण बटुकके रूपमें भगवान् सौन्दर्य और तेजको विकीर्ण करते हुए सुशोभित हुए।

राजा बलि नर्मदा नदीके तटपर 'भृगुकच्छ' नामक स्थलपर भृगुवंशी ब्राह्मणोंके संरक्षणमें अश्वमेध-यज्ञ कर रहे थे। देवोंका हित-साधन करने और बलिपर कृपा करनेके लिये भगवान् वामनदेव उस यज्ञमें पधारे।

वे अपने उज्ज्वल तेजसे प्रभा विकीर्ण कर रहे थे। रूप छोटे बटुकका था, पर उस रूपमें वे अतीव सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। दण्ड-कमण्डलु, छत्र, मेखला, यज्ञोपवीत-युक्त उनके बाल-ब्रह्मचारी-रूपकी दिव्य छटा अत्यन्त मनोहारी थी। पुराणोंमें भगवान्‌के इस अद्भुत रूपका चित्रण इस प्रकार किया गया है—

१- पयोव्रत-अनुष्ठान पुत्र-प्राप्तिके निमित्त किया जाता है। श्रीमद्भागवतपुराणके अष्टम स्कन्धके सोलहवें अध्यायमें उसका विस्तृत वर्णन है।

माजीयुक् छत्रका दण्डो कृष्णाजिनधरो वटु ।
अधीतवदो वदान्तोद्धारको ब्रह्मनैष्ठिक ॥

अर्थात् उनकी मखला आर जनेऊ दोना मूँजक थे। वे छत्र आर दण्डका धारण किय हुए थे। उन्हान काले मृगका चम धारण कर रखा था। ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप था। वद पढे हुए थ। वदान्तका उद्धार करनवाल आर ब्रह्मनिष्ठ लग रह थे।

वामनरूपधारी भगवान् वासुदव वलिके यज्ञकी आर आये ता पृथ्वी काँपने लगी। पर्वत डिग गय। समुद्र क्षुब्ध हो उठ। आकाशम तारा-मण्डल अव्यवस्थित हा गया।

बलिकी यज्ञशालाम अमित तेजस्वी बाल-वटुक वामनके पहुँचत ही सभी सभासद् हतप्रभ हा गये। सार पुराहित और उनके शिष्याका तज सिमट-सा गया। सब अपने-अपन आसनस उठकर उनक स्वागतक लिय खडे हो गये। सबन उन्ह प्रणाम किया। बलिने अपन भाग्यका सराहा आर माना कि उनका यज्ञ सफल हा गया। उन्हान भगवान् बाल-वटुकका स्वागत किया।

वलिन अपने यज्ञका सफल करनकी भावनास याचक-रूपम आये ब्राह्मण-वटुकका अपना सब कुछ अर्पित करक उन्ह प्रसन्न करनकी अभिलाषा प्रकट की—

गा काञ्चन गुणवद् धाम मृष्ट
तथान्नपयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धास्तुरगान् गजान् वा
रथास्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥
(श्रीमद्भा० ८। १८। ३२)

अर्थात् हे महाराज। आपकी जा इच्छा हा उसे आप मुझस ले सकत हैं। आपका गाय चाहिय साना चाहिय सुसज्जित घर चाहिये, स्वादिष्ट भाजन पय पदाथ या ब्राह्मण-कन्या चाहिय सम्पत्तिस युक्त गॉव चाहिय घाडे हाथी आर रथ—जा भी इच्छा हा कहिय।

लीलाविहारी भगवान् वामन वलिक वशकी प्रशसा करते हैं—'महाराज आपक कुलम अनेक महापुरुष हुए हैं। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु-जेस वार हुए हे, प्रह्लाद-जैस भगवान्क भक्त हुए ह आपके पिता विराचन-जस ब्राह्मण-वत्सल हुए हैं। आप भी उसी परम्पराका पालन कर रह ह।' बाल-ब्रह्मचारी—लाला-वशधारी भगवान् वामन बलिक समपण आर वचनपर दृढ रहनकी अच्छी भूमिका तयार कर रह ह। महाराज वलि अपन भाग्यकी सराहना कर रह हैं। अपनका सफल-मनारथ मान रह हे कृतार्थ मान रहे है गद्गद हो रहे ह आर वामनभगवान्का अपन महलम ले जाकर उनक चरण पखार रह ह। विविध रत्नाभरणासे सुसज्जित बलिकी पत्नी विन्ध्यावली स्वर्ण-कलशस जल डाल रही हैं। ब्राह्मण पुरुषसूक्तस स्तुति कर रह हैं। उत्साह आर आनन्दका समुद्र लहरा रहा ह। वलि कह रह हैं—'महाराज, मन करता ह सभी कुछ आपके चरणाम अपित कर दूँ।'

(वलिकी पुत्री रत्नमालाम वामन वटुकका दखकर वात्सल्यभाव उमड पडता ह। साचती ह कान एसी भाग्यवती मॉ हागी जिसने इसे अपना दूध पिलाया हागा। मरी भी यही कामना ह, एस बच्चका अपना दूध पिलाऊँ। पर जब वामनके विराट्रूप आर पराक्रमका दखा ता उस मारनकी इच्छा हुई। इन्हीं भावनाआसे वह कृष्णवतारम पृतना बनी। दूध पिलाना आर मारनकी इच्छा पूतनाक चरित्रम हैं।)

वामनभगवान्न बलिका वचनस मजबूत बना लिया ता उन्हाने अपन पराक मापकी तान पग भूमि मॉगी। वलि समझात ह मर यहॉस याचक इतना समृद्ध हाकर जाता है कि उसे फिर मॉगना ही नहीं पडता। इतनी भूमिस क्या हागा? ब्राह्मण-वटुकने इतनेम ही अपनी पूर्ण सतुष्टि दिखाया ता बलि साचने लग—'बचारा बालक हैं, मॉगना जानता ही नहीं इस मॉगना आता ही नहीं। मुझ-जस राजास कितना तुच्छ नगण्य वस्तु मॉग रहा ह।' व ब्राह्मण-वटुकसे कहते ह—

अहा ब्राह्मणदायाद वाचस्त वृद्धसम्मता ।
त्व बाला बालिशमति स्वार्थ प्रत्यबुधो यथा॥
(श्रीमद्भा० ८। १९। १८)

अर्थात् 'हे ब्राह्मणपुत्र। तुम्हार वचन ता वृद्धा-जेस ह, पर तुम अभी बालक हा। तुम्हारी बुद्धि भी बालका-जेसी ह ओर तुम अपने स्वार्थक प्रति भी अनभिज्ञ-जस ही हा।'

वामन कहत हैं—'मैं सतापी ब्राह्मण हूँ। इतनस ही सतुष्ट हूँ। जा सतुष्ट नहीं ह वह ताना लाकाको प्राप्त करक भी सतुष्ट नहीं हागा।' वामनके तर्कोस सतुष्ट हाकर बलि महाराज हँसते हुए बाल—'मॉग ला।' उन्हान सकल्पक लिय जल उठाया। बलिक गुरु शुक्राचार्य उन्ह राकत हुए बाल—'य साक्षात् विष्णु ह। दवताआका हित साधन आये ह। य माया-माणवक (मायास ब्रह्मचारी बन हुए) हरि ह। तुम्हारी सारा सम्पत्ति छीन कर इन्द्रका द दग।' बलि महाराज कहत ह कि 'अब ता म वचन द चुका। दूसर मरा स्वभाव भा मुझ एसा हा करनक लिय प्ररित कर रहा ह फिर दान तप आदि काय ता मनुष्य अपन पूर्व-अभ्यासक अनुसार ही करता हे'—

दान तपा वाध्ययन महर्षे
स्तय महापातकमग्निदाहम्।

भगवान्की वामन-लीला

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी शर्मा एम्० ए० (हिन्दी सस्कृत) पी एच्० डी०)

भगवान्की लीलाएँ भक्ताके हृदयको आनन्दकी रसधाराम निमग्न कर देती ह। भगवान्क जन्म आर कर्म दिव्य हात हैं। उनकी पूरी समझ तो भगवत्कृपापर निर्भर करती हे। फिर भी अपनी-अपनी सूझ ओर शक्तिक आधारपर उनका वर्णन—व्याख्यान किया जाता हैं। आकाश अनन्त हे। उसका पार पाना तो अति कठिन हे, फिर भी जसे प्रत्यक पक्षी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उडान भरते ह, उसी तरह भगवान्की लीलाआका सुनना-सुनाना अपनी सीमित मेधाक साथ सब करत हैं। अनन्त भगवान्की अनन्त लीलाएँ हैं। व्यक्ति जो कुछ करता है—वह कर्म है, परतु भगवान् जा करत हैं, वे उनकी लीलाएँ हैं। ये लीलाएँ भारतीय सस्कृतिकी चेतनाके रसमय विस्तार ह। वामन-अवतारकी लीला उनमसे एक ह। भगवान्के चाबीस अवताराम वामन-अवतारका अपना अलग महत्त्व हें। जयदेवने अपने गीतगोविन्दम दस अवताराम उनकी गणना की हे।

वामन-लीलाका महत्त्व इसलिय ओर रोचक एव जिज्ञास्य बन जाता हे क्याकि उनकी लीलाक आरम्भके बीज वदिक वाड्मयम मिल जात हे। वामन-लीलासे सम्बन्ध रखनवाल ऋग्वदम कई मन्त्र मिलत ह। उनमे विष्णुसूक्तका निम्नलिखित मन्त्र ध्यान दन याग्य हैं—

विष्णार्नु क वीयाणि प्र वाच य पार्थिवानि विममे रजासि।
यो अस्कभायदुत्तर सधस्थ विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय ॥

(ऋग्वद १। १५४। १)

अर्थात् विष्णुकी शक्तिका वर्णन करते ह जिन्हाने पृथ्वीक प्रदेशाको नापा आर अपन तीन वड डगासे आकाशका स्थापित किया।

वामन-लीलाम भगवान्क तीन वड डगाका अद्भुत वन्दनाय वणन हे। वामनभगवान्की लीला कई पुराणाम आयी हे परतु श्रीमद्भागवतपुराणम उसका भाव-भरित और भक्तजन-रजक विस्तार ह।

वामनभगवान्का जन्म अदितिक गर्भस हाता ह। चलिद्वारा दवाक पराभवक याद कश्यपजीक कहनस माता अदिति *पयाव्रतका अनुष्ठान करती हैं।* भगवान् दवाका इष्ट सम्पादन करनक लिय आर अपनी लीला करनक लिय भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीक दिन अवतरित होते हैं। पहले वे शख, चक्र गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-रूपम प्रकट होते हैं। अत्यन्त आनन्दमयी वेला हा जाती है। दव-मुनि-पितर स्तुतियाँ करते हैं, अदिति प्रसन्न होती ह आर कश्यप जय-जयकार करते ह। बादम भगवान् ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लेत ह। कश्यपको आगे करके उनका जन्म-सस्कार ओर यज्ञापवीत-सस्कार ऋषि लोग कराते हैं।

(ब्राह्मणक लिय यज्ञोपवीतका विधान सात वर्ष अथवा ग्यारह वर्षकी अवस्थाम किया गया हे। एसा माना जाता है कि जनेऊक निर्माता ब्रह्मा ह, उसे त्रिगुणात्मक करनेवाले विष्णु हैं आर उसका ग्रन्थिवन्धन करनवाले शिव ह तथा गायत्रीदवी इसे अभिमन्त्रित करती हैं। जनऊके एक-एक धागम एक-एक दवी-दवताकी प्रतिष्ठा हाती हे। इसका लोहस स्पर्श नहीं हाना चाहिये। इसम चाबी नहीं बाँधनी चाहिये। एसा करनसे दवी-दवता उस जनेऊको छाडकर भाग जात हैं। ब्रह्मापनिपद्म कहा ह— **यदक्षर पर ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्**'। अर्थात् जो अविनाशी वह्म ह, वही इस सूत्रम है—यह समझकर जनऊको धारण करना चाहिये।)

भगवान् वामनदेवक यज्ञापवीत-सस्कारके समय वृहस्पतिने जनेऊ प्रदान किया कश्यपने मूँजकी मखला दी सूर्यने गायत्री-मन्त्रका उपदश किया। अदितिन कोपीन ब्रह्माने कमण्डलु, सरस्वतीन रुद्राक्षकी माला आर कुवरने भिक्षापात्र दिया। एस दिव्य ब्राह्मण वटुकक रूपमे भगवान् सान्दर्य आर तजको विकीर्ण करत हुए सुशाभित हुए।

राजा वलि नमदा नदीके तटपर 'भृगुकच्छ' नामक स्थलपर भृगुवशी ब्राह्मणाक सरक्षणम अश्वमध-यज्ञ कर रहे थ। दवाका हित-साधन करन आर वलिपर कृपा करनक लिये भगवान् वामनदव उस यज्ञम पधारे।

व अपन उज्ज्वल तजस प्रभा विकीण कर रह थ। रूप छाट वटुकका था पर उस रूपम व अतीव सुन्दर प्रतात हा रह थ। दण्ड-कमण्डलु, छत्र मखला यनापवात-युक्त उनके वाल-व्रह्मचारी-रूपकी दिव्य छटा अत्यन्त मनाहारी थी। पुराणाम भगवान्क इस अद्भुत रूपका चित्रण इस *प्रकार किया गया है—*

१- पयव्रत अनुष्ठान पुत्र-प्राप्तिक निमित्त किया जाता है। श्रीमद्भागवतपुराणके अष्टम स्कन्धक सालहवे अध्यायमें उसका विस्तृत वर्णन है।

माञ्जीयुक् छत्रका दण्डा कृष्णाजिनधरा वटु ।
अधीतवदो वदान्ताद्धारका ब्रह्मनैष्ठिक ॥

अथात् उनका मखला आर जनऊ दाना मूँजक थ। वे छत्र आर दण्डका धारण किय हुए थे। उन्हान काल मृगका चम धारण कर रखा था। ब्राह्मण-ब्रह्मचाराका रूप था। वद पढ हुए थे। वदान्तका उद्धार करनवाल आर ब्रह्मनिष्ठ लग रह थ।

वामनरूपधारी भगवान् वासुदव बलिक यनकी आर आये ता पृथ्वा काँपन लगी। पर्वत डिग गय। समुद्र क्षुब्ध हा उठ। आकाशम तारा-मण्डल अव्यवस्थित हा गया।

बलिकी यज्ञशालाम अमित तजस्वी बाल-वटुक वामनक पहुँचते ही सभी सभासद् हतप्रभ हो गय। सार पुराहित और उनक शिष्याका तज मिमट-सा गया। सब अपन-अपन आसनस उठकर उनक स्वागतक लिय खड हा गय। सबन उन्ह प्रणाम किया। बलिन अपने भाग्यका सराहा आर माना कि उनका यज्ञ सफल हा गया। उन्हान भगवान् बाल-वटुकका स्वागत किया।

बलिने अपने यनका सफल करनका भावनास याचक-रूपम आय ब्राह्मण-वटुकका अपना सब कुछ अर्पित करक उन्ह प्रसन्न करनकी अभिलाषा प्रकट का—

गा काञ्चन गुणवद् धाम मृष्ट
तथान्नपयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धास्तुरगान् गजान् वा
रथास्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥

(श्रीमद्भा० ८। १८। ३२)

अथात् ह महाराज! आपकी जा इच्छा हा उस आप मुझसे ल सकत ह। आपका गाय चाहिय साना चाहिय सुसज्जित घर चाहिय स्वादिष्ट भाजन पय पदार्थ या ब्राह्मण-कन्या चाहिय सम्पत्तिस युक्त गाँव चाहिय, घाड, हाथा आर रथ—जा भी इच्छा हा कहिय।

लीलाविहारी भगवान् वामन बलिके वशकी प्रशसा करत हैं—'महाराज आपक कुलम अनक महापुरुष हुए हैं। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु-जस वार हुए ह, प्रह्लाद-जस भगवान्‌क भक्त हुए ह आपक पिता विराचन-जस ब्राह्मण-वत्सल हुए हैं। आप भा उसा परम्पराका पालन कर रह हैं।' बाल-ब्रह्मचारी—लाला-वशधारी भगवान् वामन बलिके समपण आर वचनपर दृढ रहनका अच्छा भूमिका तयार कर रह ह। महाराज बलि अपन भाग्यकी सराहना कर रह हैं। अपनका सफल-मनारथ मान रह ह कृतार्थ मान रह हैं गद्गद हा रह ह आर वामनभगवान्‌का अपन महलम ल जाकर उनक चरण पखार रह ह। विविध रत्नाभरणास सुसज्जित बलिकी पत्नी विन्ध्यावली स्वण-कलशस जल डाल रही हैं। ब्राह्मण पुरुषसूक्तस स्तुति कर रह हैं। उत्साह आर आनन्दका समुद्र लहरा रहा ह। बलि कह रह हैं—'महाराज मन करता ह सभी कुछ आपक चरणाम अर्पित कर दूँ।'

(बलिकी पुत्री रत्नमालाम वामन वटुकका दखकर वात्सल्यभाव उमड पडता ह। साचती ह कान एसा भाग्यवती माँ हागी जिसन इस अपना दूध पिलाया हागा। मरा भा यही कामना ह, एस बच्चका अपना दूध पिलाऊँ। पर जब वामनक विराट्‌रूप आर पराक्रमका दखा ता उस मारनकी इच्छा हुई। इन्हीं भावनाआस वह कृष्णवतारम पूतना बनी। दूध पिलाना आर मारनकी इच्छा पूतनाक चरित्रम ह।)

वामनभगवान्‌न बलिका वचनस मजबूत बना लिया ता उन्हान अपन पराक मापकी तीन पग भूमि माँगी। बलि समझात ह मर यहाँस याचक इतना समृद्ध हाकर जाता ह कि उस फिर माँगना हा नहीं पडता। इतनी भूमिस क्या हागा? ब्राह्मण-वटुकन इतनम हा अपनी पूण सतुष्टि दिखायी ता बलि साचन लग—'बचारा बालक ह माँगना जानता ही नहीं इस माँगना आता हा नहीं। मुझ-जस राजास कितना तुच्छ नगण्य वस्तु माँग रहा ह।' व ब्राह्मण-वटुकस कहते हैं—

अहा ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मता ।
त्व बाला बालिशमति स्वार्थ प्रत्यबुधा यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। १९। १८)

अथात् 'ह ब्राह्मणपुत्र! तुम्हार वचन ता वृद्धा-जस हैं, पर तुम अभी बालक हा। तुम्हारी बुद्धि भा बालका-जसी ह आर तुम अपन स्वार्थक प्रति भी अनभिज्ञ-जस हा हा।'

वामन कहत हैं—'मैं सतापी ब्राह्मण हूँ। इतनस ही सतुष्ट हूँ। जा सतुष्ट नहीं ह, वह तीना लाकाका प्राप्त करक भी सतुष्ट नहीं हागा।' वामनक तर्कोस सतुष्ट हाकर बलि महाराज हँसत हुए बाल—'माँग ला।' उन्हान सकल्पक लिय जल उठाया। बलिक गुरु शुक्राचार्य उन्ह राकत हुए बाल—'य साक्षात् विष्णु ह। दवताआका हित साधन आय हैं। य माया-माणवक (मायास ब्रह्मचारी बन हुए) हरि ह। तुम्हारी सारी सम्पत्ति छीन कर इन्द्रका द दग।' बलि महाराज कहत ह कि 'अब ता म वचन द चुका। दूसर मरा स्वभाव भा मुझ एसा ही करनक लिय प्ररित कर रहा ह, फिर दान तप आदि कार्य ता मनुष्य अपने पूर्व-अभ्यासक अनुसार ही करता ह'—

दान तपा वाध्ययन महर्षे
स्तय महापातकमग्निदाहम्।

ज्ञानानि चैवाभ्यसता हि पूर्व
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ॥

(वामनपुराण ९०। ११४)

अर्थात् 'हे महर्षे! दान तप अध्ययन, चोरी, महापातक अग्निदाह, ज्ञान धर्म अर्थ और यश—ये पूर्वजन्मके अभ्याससे उत्पन्न होते हैं। मेरा अन्तर्मन मुझे प्रेरित कर रहा है।'

आज्ञा न माननेपर शुक्राचार्य बलिको शाप देते हैं—

मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रिय ॥

(श्रीमद्भा० ८। २०। १५)

—'मेरे शासनकी सीमाको पार करनेवाले तुम ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाओगे।' शापग्रस्त होनेपर भी बलि अपने वचनसे नहीं डिगे। चरण धोये। चरणोदक सिरपर चढाया वामन-भगवान्‌की पूजा की और दानका सकल्प कर दिया।

भगवान् वामनका आकार बढने लगा। सारा ब्रह्माण्ड आकाश दिशाएँ, पृथ्वी समुद्र, वन तथा वनस्पति उसमे समा गये। बलिके साथ ही वहाँ उपस्थित सभी सभासदोंने भगवान्‌के उस विराट्-रूपका दर्शन किया। भगवान्‌ने एक पगसे समस्त पृथ्वी तथा आकाश और दिशाओंको ढक लिया। दूसरे पगमे सारा स्वर्गलोक आ गया। तीसरे पगके लिये रचमात्र भी स्थान नही बचा। इस स्थितिको देख अत्यन्त विकल राक्षसोने उपद्रव प्रारम्भ कर दिया, पर विष्णुके सैनिकोंने उन्हे खदेड दिया। भगवान्‌की इच्छासे गरुडने बलि महाराजको वरुणपाशमे बाँध लिया। भगवान्‌ने बलिसे कहा कि वचन पूरा न होनेसे तुम्हे नरकमे जाना पडेगा। बलि इससे विचलित नहीं हुए। बोले, महाराज—

पद तृतीय कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। २)

—तीसरा पग मेरे सिरपर रख। मैं अपने वचनको झूठा नहीं होने दूँगा। उस समय राजा बलि बडी ही प्रशसा-योग्य वचन बोलते है—

बिभेमि नाह निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवता विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३)

अर्थात् 'महाराज, मैं नरकमे जानेसे नही डरता। अपने पदसे हटनेसे नहीं डरता, वरुणपाशमे बँधनेसे नहीं डरता असह्य कष्टसे नही डरता, परतु मै अपने असाधुवाद यानी अपयशसे डरता हूँ।'

पुन वे कहते है कि घर, परिवार, देश तथा जातिकी आसक्तिसे क्या लाभ है? मेरी आपके प्रति प्रेमनिष्ठा बनी इस कारण मै अपनेको परम सौभाग्यशाली समझता हूँ। बलि वरुणपाशमे बँधे हुए है। प्रह्लादजी वहाँ आ जाते हैं। बलि उन्हे नम्रतासे प्रणाम करते हैं। वे भगवान्‌को प्रणाम करके कहते हैं—'प्रभु! आपका देना और लेना दोनो ही सुन्दर है।' ब्रह्माजी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—'आपने बलिका सर्वस्व ले लिया अब आप इसे छोड दीजिये। यह दण्डके योग्य नहीं है। आप तो पत्र, पुष्प, फल तथा जलसे ही सतुष्ट हो जाते है, इसने तो अपना सब कुछ दे दिया। तब वामनकी लीला करनेवाले भगवान् कहते हैं'—

'ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।

(श्रीमद्भा० ८। २२। २४)

हे ब्रह्मन्! जिसपर मैं दया करता हूँ, उसकी सारी सम्पत्ति छीन लेता हूँ।

बलिने धनविहीन पीडित बन्धनग्रस्त, गुरु-शापित होकर भी अपना धर्म नही छोडा सत्य नहीं छोडा। बलिपर मेरी कृपा है। मैं इन्हे वह स्थान देता हूँ, जो देवताओंको भी सुलभ नहीं है। ये सावर्णि मनुकालमे स्वर्गके राजा बनेगे। तबतक ये सुतललोकमे रहेगे और मैं सभी प्रकारसे इनके लिये सरक्षण प्रदान करूँगा।

इस प्रकार भगवान्‌की वामन-लीला भक्तोंके हृदयको अपनी सर्वव्यापी कृपाकी रसनीय धारामे सराबोर कर देनेवाली है। भगवान् जब कृपा करते है—तब तीन कदम यानी तीन चीज माँगते हैं—तन, मन और धन। जो बलिकी तरह अपना तन मन और धन भगवान्‌को समर्पित कर देता है उसकी रक्षा भगवान् स्वय करते है। ब्रह्मलीन प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके विनय-भरे शब्दोसे इस लीलाका विराम दिया जाता है—

जो कारन वामन बने जिन नारायन नाम है।
तिनके पद पाथोजमे पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम है॥

शक्तिपीठ 'हिंगलाजदेवी' की लीला-कथा

(सुश्री धारजवन दिनकरभाई पटेल)

कई वर्ष-पूर्वकी यह एक अद्भुत सत्य घटना ह। उस समय म विद्यालयकी छात्रा थी। मर पिता व्यापारी कृषक थे। माताजी बडी धामिक स्वभावकी थीं। एक दिन पिताजी अपन साथ एक विचित्र वष-भूषाधारी 'फकीर' को लकर घरपर आये। शिष्टाचारके अनुसार घरक सभी लागाने फकारका अभिवादन किया। मन झटस उनस पूछा कि 'फकीर मान क्या ?' उतना ही शाघ्र प्रत्युत्तर मुझ मिला—'फिकरकी फाकी कर वह फकीर।' पिताजीने समझाया कि 'जिसन अपन मस्तकपर लदी हुई चिन्ता-रूपी गठराको प्रभुक चरणाम समर्पित कर चिन्तामुक्त हा गया ह, वह ईश्वरका नकबदा (भला दास) ही 'फक्कड साधु' या 'फकार' ह।' पिताजीकी बात मुझ समझम आ गयी।

उन फकारने जागिया (गरुआ) वस्त्र धारण कर रखा था। उनक ललाटम सिदूरका तिलक था ओर गलम चूना-पत्थरकी छाटी-बडी मालाएँ था। उनके कधपर झाला थी आर हाथम दवाका त्रिशूल था। मन उनक गलकी सुन्दर मालाआके बारम पूछा कि आपन इन्ह कहाँसे खरादी ह ?' फकीरने कहा—'इनक बारम ता लबा इतिहास ह क्या सुनना चाहती हा ?' मैंन कह दिया—'अवश्य कहिये क्या बात हे ?' फकीर स्वानुभव कहन लग—

'मुझ यावनकालम सम्पूर्ण शरीरपर श्वत कुष्ठ हो गया था। कई डॉक्टर वद्य-हकीमस आषधापचार करवाये लकिन काई फायदा नहीं हुआ—'राग बढता ही गया ज्या-ज्या दवा की।' आखिर एक जोगी बाबास रोग-निर्मूलनका उपाय पूछा। उन्हाने अपनी यागशक्तिस कहा कि 'तुम पदल ही 'हिगलाजदवी' क तीथस्थलकी यात्रा करा आर दवीके दर्शन करक उनसे अपन किय हुए पापाकी क्षमा-याचना करा, उस पवित्र स्थानम दा वर्षतक मानव्रतका पालन और तपस्या करा। तुम अवश्य रोगमुक्त हो जाआगे।'

डूबते हुएका तिनकका सहारा चाहिय। सबका जावित रहना अच्छा लगता ह न। मन जागी बाबाका बात मान ला आर पदल ही 'हिगलाजदवी' क दर्शनाक लिय चल पडा। वहाँ दा वर्ष मान-धारण-पूवक दवीक मन्त्रका जप किया। महाशक्तिशाली 'हिंगलाजदवी' का कृपास म एकदम अच्छा—राग-मुक्त हो गया। मर लिय ता 'हिगलाजदवी' हा मरा माँ मर पिता मर सब कुछ हैं। उन महाशक्तिकी जियारत (यात्रा) एव मिन्नत (प्रार्थना) हिदुआक साथ मुसलमान लाग भी करते हैं आर अपनी मन कामनाएँ सिद्ध करत ह।'

फकीरका स्वानुभव सुनकर मं ता आश्चर्यम पड गयी। स्वभावस हा शक्ति-उपासक हानस मरी इच्छा 'हिगलाजमाता-तीर्थ-क्षेत्र' की यात्रा एव दर्शन करनकी हुई। मन फकीरसे उस तीर्थ-क्षत्रका पता तथा दवाकी महिमा ओर वहाँके इतिहास आदिक बारम पूछा।

मरी उत्सुकता देखकर फकीर कहने लग कि धर्मशास्त्राम ५१ शक्तिपाठाका वर्णन हे। जहाँ-जहाँपर शिवपत्नी सतीक देहक खण्ड (टुकड) गिरे थे व ही शक्तिपीठ कहलाय। 'हिगलाज'म सतीका 'कपाल' (या किरीट) गिरा था, इसालिय ५१ शक्तिपाठाम 'हिगलाज-पीठ' का सर्वश्रेष्ठ माना गया हे। 'हिगलाजदवी'का मन्दिर अग्निदेवीके नामस समपण किया हुआ ह। वहाँके लाग 'हिगलाज' का 'हिगुदा' भी कहत हैं। शक्तिके उपासकाक लिय 'हिगलाजदेवी'के क्षेत्रका तीर्थयात्रा और दवीक दर्शन करना अति शुभ माना गया हे।'

आतुरतावश मन फकारस पूछा—'हिगलाजमाता'के मन्दिरतक पहुँचनका कोन-सा सुगम मार्ग ह ?'

फकारने कहा—'जब अखण्ड हिन्दुस्तान था (ई० स० १९८७ स पहल) तब लाग पश्चिम हिन्दुस्तानक 'कच्छ-प्रदश' क 'नारायण-सरोवर' म स्नान आर आदिनारायणमूर्तिके दर्शन करक 'काटश्वर' जात थे वहाँपर समुद्रस्नान करके 'काटश्वर-महादव' के दर्शन करक जहाजम बठकर 'करॉची' पहुँचत थे। करॉचीस 'मियानी-हिगलाज राडपर आगे ७० मील तय करक 'नागर ठाटा' पहुँचते थ आर वहाँस 'हिंगलाज पर्वत'की कदराम 'हिगलाजदेवी'क दर्शन करते थ। म भी इसी मार्गस तीर्थयात्रा करता हुआ 'हिगलाज-क्षत्र'म पहुँचा था।'

मने फकारस पूछा—'आपक गलम मालाएँ ह, उनका नाम क्या ह आर वे कहाँ मिलती ह ?'

फकारने कहा—'य मालाएँ चूना-पत्थरक मणिस बनती ह। एस पत्थर हिगलाज-क्षत्रम ही मिलत ह अन्यत्र नहीं। एसा छाटी मालाक दानाका 'टुमरा' कहत ह आर बडा

मालाके दानाको 'आशापुरी' कहते है। ऐसी मालाएँ खरीद करके यात्री हिंगलाजमाताके चरणोमे अर्पण करते हैं। हिन्दूयात्री देवीको 'हिंगलाज' कहते हैं, मुसलमान यात्री देवीको 'बीबी नानी' कहते है।

मैंने उत्सुकतावश फकीरसे पूछा कि 'ठुमरा' और 'आशापुरी' दानोके विषयमे क्या कोई चमत्कारिक कथा है?

फकीरने कहा—'हॉं, उस कथाको हिंगलाजदेवीकी 'लीला-कथा' कहते हैं। मैं तुम्हे 'लीला-कथा' सक्षेपमे सुनाता हूँ— एक बार कैलासपति शिव और देवी पार्वती आशापुरी जगलमार्गसे 'हिंगलाजपीठ' जा रहे थे। शिवजीने पार्वतीसे कहा—'मैं थक गया हूँ और भूखा भी हूँ। तुम यहाँ 'खिचडी' पकाओ, तबतक मैं जगलसे बाहर निकलनेका मार्ग ढूँढता हूँ।'

शिवजीने पार्वतीकी रक्षाके लिये मन्त्रयुक्त भस्मकी रेखा भी खीच दी इसलिये कि यदि कोई इस रेखाका उल्लघन करे तो भस्म हो जाय। इसके बाद शिवजी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपना अमोघ त्रिशूल भी पार्वतीको देकर वहाँसे निकल गये। पार्वती खिचडी बनाने लगीं। उसी समय एक भयकर असुर वहाँपर आ धमका। घने जगलमे अतीव सुन्दर पार्वतीको अकेली देखकर वह काम-पीडित हो गया और उन्हे पकडनेके लिये दौडा। यह देख क्रुद्ध पार्वतीने शक्तिशाली शिव-त्रिशूल असुरके पेटमे भोक दी। असुरके देहसे रक्तका फुहारा फूटा और रक्तबिन्दु खिचडीमे पड गये। अन्न अपवित्र हो गया।

कुछ ही समयमे शिवजी वापस लौटे और वहाँ अमङ्गल-दृश्य देखकर उन्होने पार्वतीको शान्त किया। मृत्युमुखमे जा रहे असुरने शिवजीके चरणकमलोमे अपना मस्तक रखकर प्रार्थना की कि जगदम्बा पार्वतीने ही अपने हाथसे त्रिशूल मेरे पेटमे घोप दी है अत आपको मुझे मुक्ति देनी ही पडेगी।

भगवान् आशुतोष शिवने असुरको 'तथास्तु' कह दिया। असुरका शरीर छूट गया और शरीर भस्मका पहाड बन गया। असुरकी आत्मा 'शिवलोक' को प्राप्त हो गयी।

महादेवकी आज्ञासे महादेवी पार्वतीने सब अपवित्र हुआ खाद्यान्न वनमे फेक दिया। खाद्यान्न—खिचडीके दाने तुरत ही चूना-पत्थर हो गये और उन चूना-पत्थरोको पवित्र 'ठुमरा' तथा 'आशापुरी' दाने (मणि) होनेका पार्वतीने वरदान दिया।

माता हिंगलाजकी लीला-कथा अद्भुत है।

परब्रह्मकी नित्यलीला

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार करनेसे हृदयमे सतत्वका उदय होता है और 'ब्रह्म नहीं है'—ऐसा माननेसे असदाचारका आरम्भ होता है। श्रुतिकी उक्ति है—

असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति॥ (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अर्थात् यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म नहीं है तो वह असत् (सदाचार-भ्रष्ट) ही हो जाता है। यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म है तो इसे ज्ञानीजन सत—सत्पुरुष समझते हैं।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप ब्रह्मसे ही प्राणियोका जन्म और जीवन है तथा प्रयाणके पश्चात् उसीमे प्रवेश भी होता है यथा—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। (तैत्तिरीयोप० ३। ६)

ब्रह्म आनन्दस्वरूप होनेसे आप्तकाम है। उसे न कोई कमी है और न कुछ प्रयोजन। इस स्थितिमे उसे सृष्टि-रचनादिमे प्रवृत्त होनेकी क्या आवश्यकता हुई? इस जिज्ञासाकी सम्भावना समझकर ब्रह्मसूत्रकार व्यासजीने उत्तर दिया है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

अभिप्राय है कि परब्रह्मका विश्व-रचनादिमे प्रवृत्त होना लोकमे जीवन्मुक्त आप्तकाम पुरुषोद्वारा बिना स्वप्रयोजन ही लोकहितमे प्रवृत्त होनेके समान लीलामात्र है। श्रीपराशरजीका श्रीविष्णुपुराणमे कथन है कि—

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय॥

(१। २। १८)

अर्थात् परब्रह्म विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और कालके रूपसे स्थित हैं, उनकी जगत्-रचनादि लीलाको बालकवत् क्रीडा ही समझे। जिस प्रकार खेलता हुआ बालक स्वभाववश किसी वस्तुको बनाता है और पुनः उसे बिगाड देता है, उस वस्तुके बनाने-बिगाडनेमें उसका कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता है, उसी प्रकार जगत्के सृजन-संहारमें परब्रह्मका कोई अन्य प्रयोजन नहीं होता। सृजन-संहार लीलामात्र है। प्रयोजनानन्तर कृति ही लीला कहलाती है। क्रीडनशीलता आनन्दका स्वभाव है। इसीलिये आनन्दस्वरूप ब्रह्म पूर्णकाम होनेपर भी लीला-संलग्न रहता है। यह कहा नहीं जा सकता कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके सृजन-संहारकी लीलाका आरम्भ कब हुआ और अन्त कब होगा? यह अनादि-अनन्त और नित्य-प्रवर्ती होनेसे नित्य-लीला है।

आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी लीला आनन्दस्वरूपा है। वस्तुतः स्वयं परब्रह्म ही नाना रूपोंमें प्रकट है। तैत्तिरीयोपनिषद्में उल्लिखित है कि परब्रह्मने विचार किया कि 'मैं प्रकट होऊँ और अनेक नाम-रूप धारण करके बहुत हो जाऊँ।' उसने तप किया, अपने संकल्पका विस्तार किया और जो कुछ देखने-समझनेमें आता है, उस समस्त जगत्की रचनाकर उसीमें वह प्रविष्ट हो गया, यथा—

स तपस्तप्त्वा इदꣳसर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अतः सब लीला होते हुए भी आनन्दकी लीला होनेसे आनन्दमयी है। इसे समझनेपर आनन्द-ही-आनन्द है, पर भावदृष्टिके बिना इस लीलाको देखकर भी वास्तविक रूपमें नहीं देखा जा सकता।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड परब्रह्मकी लीलाविभूतिमें हैं। लीलाविभूति एकपाद विभूति है। इसके परे असीम अनन्त त्रिपाद विभूति है। वह विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी है। वहाँका सब कुछ सच्चिदानन्दमय है। वही परब्रह्मका नित्य-धाम है, जिसे परव्योम, परमपद, वैकुण्ठ, साकेत एवं गोलोकादि कहते हैं। अनेक नाम भावके भेदसे हैं। वहाँ उभय विभूतिनाथ परब्रह्म परिकरों-सहित सच्चिदानन्दमयी लीलामें रत हैं। वहाँसे अखिल ब्रह्माण्डोंकी बहुरंगी लीलाओंका भी संचालन होता है।

परब्रह्म परम स्वतन्त्र होता हुआ भी प्रेमीके प्रेमाधीन है। इसलिये कभी-कभी स्वयं लीलाविभूतिमें भक्तोंके प्रेमाधीन हो उनके कल्याणके लिये ही लीला-विग्रह धारण करके मनोहारिणी लीलाएँ करता है—

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
(रा० च० मा० १। १४४। ७)

लीलाविभूतिकी लीलाएँ प्रेमियोंकी लालसाके अनुसार होती हैं, तथापि अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावनादिमें जो दिव्य लीलाएँ हुई थीं, वे भक्तोंकी लालसाके ही परिणाम हैं। लीलाविभूतिकी लीलाएँ यद्यपि त्रिपादविभूतिके लीला-सुधा-सिन्धुके सीकराश हैं, तथापि उनमें लोकचित्ताकर्षण एवं लोक-पावनका असीम शक्ति संयुक्त है।

लीलाविभूतिकी लीलाएँ सीमित देश-कालमें होती हैं। इसलिये वे अनित्य प्रतीत होती हैं, किंतु बात ऐसी नहीं है। परब्रह्मके नाम-रूप, लीला-धाम—ये चारों परात्पर ब्रह्म ही हैं, सच्चिदानन्द-विग्रह और नित्य हैं—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
(वसिष्ठसंहिता)

अतः परम प्रभुकी अवतारकालीन लीलाएँ भी नित्य ही हैं। उन लीलाओंके दर्शन आज भी उन भाग्यवान् भक्तोंको होते हैं, जिन्हें वह लीलाधन निज जनके रूपमें कृपापूर्वक वरण करता है। गोस्वामीजीकी तो मान्यता है कि प्रभु राम सीताजी और लक्ष्मणजी-सहित सब दिन चित्रकूटमें बसते हैं और राम-नामके प्रेमी जापकोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥
(दोहावली ४)

त्रिपादविभूतिसे दूर होते हुए भी प्रेमीजन विभूतिनाथ परब्रह्मसे दूर नहीं होते, क्योंकि लीलाविभूतिमें रहते हुए भी जिनके चारु चित्तरूपी चित्रकूटमें लीलाकथारूपा मन्दाकिनीके सलिल-सुधासे सिंचित स्नेहके सुभग वन होते हैं, उनमें श्रीसीतारामजीका विहार आज भी होने लगता है—

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥
(रा० च० मा० १। ३१)

इस प्रकार परब्रह्मकी परव्योममें होनेवाली नित्य-लीलाओंका प्रकाश भी प्रेमी भक्तोंके भावपूर्ण हृदयाकाशमें होने लगता है।

संत और सुधारक महात्मा कबीरकी सेवा-साधनासे भगवल्लीलाकी अनुभूति

ये कबीर अवश्य कोई जादूगर है।

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए० पी-एच्० डी०)

'क्या कबीरका घर यही है?' सर्वजित नामक एक आगन्तुकने आवाज दी।

कबीर घरमे नहीं थे। उसने पुन आवाज दी। 'अरे घरमे कोई है? हमे कबीरसे मिलना है। कहीं गलत मकानपर तो नहीं आ गये?'

कई बार द्वार खटखटाने तथा आवाज लगानेके बाद घरमसे कबीरजीकी पुत्री कमाली निकली और पुस्तकोसे लदे बेलको देख मुसकराते हुए बोली—'घर तो यही है, पर वे अभी बाहर गये है। आप बैलपर इतनी पुस्तके लादे हमारे यहाँ क्यो आये हैं? कृपया आप अपना परिचय तो दीजिये?'

'लडकी तू मुझे नहीं जानती। जानेगी भी कैसे? एक पिछड हुए परिवारकी कन्या है न?'

'जिज्ञासाके कारण की गयी धृष्टताके लिये क्षमा कर लेकिन आप कृपापूर्वक अपने विपयमे कुछ तो बतलाइये। आप यह पुस्तकोसे लदा बैल क्या लाये हैं? क्या पुस्तक बचनवाले हे? मरे बापू तो पढना नहीं जानते। फिर हम जुलाह गरीबीसे भरे अभावग्रस्त जीवनमे अपनी रोजी-रोटी ही बडी कठिनतासे जुटा पाते हैं हम आपकी कोई पुस्तक नही खरीद सकग। कमालीने अत्यन्त सहजतासे ये सारी बात कह दा।'

मूर्ख लडकी तू पुस्तक बेचनेवाला समझकर मेरा अपमान कर रही है? अरे मैं सर्वानन्द नामक प्रकाण्ड विद्वान् हूँ। इस क्षेत्रके अनेक विद्वानाको शास्त्रार्थमे हरा चुका हूँ।

'सुना है आपने अपना नाम बदल लिया है।'

'हाँ यह तो तुमने सच ही कहा है और ठीक ही सुना भी ह। चूँकि मैं विद्वत्तामं यहाँके सब पण्डिताको पराजित कर चुका हूँ। मरे बराबर काई बडा पण्डित—विद्वान् नहीं है अत मैंने पाण्डित्यकी सार्थकता सिद्ध करनेके लिये अपना नाम सर्वानन्दसे बदलकर सर्वजित कर लिया है।'

'फिर हमारे यहाँ पधारना कैसे हुआ महाशय?'

'मेरी माताजी अपनी काशी-यात्रामे एक बार तुम्हारे पिताजीके सत्सगमे आयी थीं और उनसे मन्त्रदीक्षा ले गयी थीं।'

'यह तो अच्छा किया माताजीने।' अवश्य ही वे उस मन्त्रदीक्षासे लाभान्वित हुई होगी। है न?

यह सुनकर सर्वजित क्रोधमे आ गये। परशुरामकी तरह भृकुटि चढाकर बोले—'मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता समझते हुए मेरी माताजीने एक दिन मुझसे कहा था—'मं तुझे सर्वजित तभी मानूँगी जब तुम कबीरजीको शास्त्रार्थमे पराजित कर दागे।' यह ताना मेरे मनमें काँटेकी तरह चुभा हुआ है। बार-बार मैं उस शूलकी चुभनको महसूस करता हूँ। ईर्ष्यासे जल रहा हूँ। इस असह्य पीडासे अपने मन-मस्तिष्कको उबार सकूँ इसीलिये इस बैलपर अपने शास्त्राको लादकर मैं काशीमें कबीर साहबका घर ढूँढता हुआ यहाँतक आया हूँ, उनसे शास्त्रार्थकर उन्हें हरानेके लिये।'

ससारमे जितने भी प्रतिभाशाली महापुरुष हुए हैं, उनके प्रारम्भिक जीवनके अध्ययनसे पता चलता है कि उनके जन्म परिस्थिति वातावरण या शरीरके किसी-न-किसी भागमे कोई जन्मजात कमी रही है जिसकी क्षतिपूर्ति उग्र किंतु समुन्नत-रूपम करके उन्होने समाज तथा ससारका विशेष कल्याण किया है। प्रतिभाको पागलपनका एक रूप कह सकते हैं। जिन जन्मजात कमियाको पूरा करनेकी चेष्टामे एक व्यक्ति बादमे पागल हा उठता है, उन्हीं कमियोकी पूर्तिके प्रयासमे दूसरा व्यक्ति प्रतिभाशाली बन जाता है। माताके वचन सर्वजितको काँटेकी तरह चुभ गये। उनका अहकार-रूपी सर्प फुकार उठा। वे कबीरको नीचा दिखानेके लिये अपने शास्त्रोको बैलपर लादकर काशी आये और कबीरके घरके सामने

पहुँचकर उन्होंने पुकारा था, 'क्या कबीरका घर यही है?'

कबीरकी पुत्री कमाली तो धीरेसे बोली थी कि 'उनका घर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी तकको नहीं मिला।' परंतु सर्वजितको यह बात सुनायी पड गयी।

इस उत्तरका मर्म न समझकर सर्वजित चकरा रहे थे कि इतनेमे कबीर साहब आ गये।

'महाशय, आप कौन हैं? आपने बडी कृपा की जो यह घर पवित्र किया। कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

महान् आश्चर्य! आप सर्वजित नामक प्रकाण्ड विद्वान्को नहीं पहचानते। इस क्षेत्रके सभी लाग कहते हैं कि सर्वजितके समान विद्वान् अन्य कोई नहीं है। मेंने सभी विद्वानोको पराजित किया है। मैं किसी भी विद्वान्से शास्त्रोके सम्बन्धमे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ।

'यह तो मेरे लिए बडे सौभाग्यका विषय हे कि आप-जैसे महान् विद्वान्के दर्शन हुए। मुझे आपसे बहुत कुछ सीखनेको मिलेगा। मैं धन्य हुआ। पधारिये।'

'पहले यहाँ मेरे आनेका उद्देश्य सुन लीजिये।'

'कहिये, क्या सेवा करूँ?'

'मुझसे शास्त्रार्थ कीजिये। मैं आपको चुनौती देता हूँ कि ब्रह्म, ज्ञान, आत्मा, परमात्मा एवं वेद आदि किसी भी विषयपर आप मुझसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं। प्रमाणके लिये और अपने तर्कोकी पुष्टि-हेतु मैं सभी धर्मग्रन्थोको अपने साथ बैलपर लादकर लाया हूँ। मेरे तर्क प्रमाणयुक्त होगे। मैंने इनका गम्भीर अध्ययन किया है। मैं आपको हराकर ही साँस लूँगा।'

'आप कबीरके घर पहुँचे हें'—यह बात गलत है। मेरी समझसे परे है। पता नहीं आप क्या कहना चाहते हें?'

'आपका घर कहाँ है?'

'विद्वन्! कबीरका कोई घर नहीं है'—

कबीरका घर सिखरपर जहाँ सिलहली गैल।
पाव न टिके पिपीलिका पंडित लादे बैल॥

'तात्पर्य यह कि कबीरका घर शिखरपर अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डोसे भी ऊपर हे, जिसका मार्ग इतना फिसलन-भरा है कि चींटी तकके पेर उसपर जम नहीं सकते जबकि पंडित तो लदे हुए बैलके साथ शिखरपर पहुँचना चाहता है।'

'आप व्यर्थकी बाते छोड मुझसे शास्त्रोमे वर्णित विषयोपर शास्त्रार्थ कीजिये।'

'भई! मैं तो एक साधारण अनपढ जुलाहा हूँ। शास्त्रोकी इतनी धार्मिक पुस्तक तो मैंने जीवनमे कभी देखी तक नहीं। इनमे कितना अथाह ज्ञान भरा है मुझे तो इसका भी कुछ पता नहीं।'

'आप व्यर्थकी बात करके हमे गुमराह कर रहे हैं।'

'नहीं, यह बात नहीं। सचमुच मुझे शास्त्रोमे वर्णित धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं है।'

'याद कीजिये! मेरी माताजी एक बार अपनी काशी-यात्रामे आपके सत्सगमे गयी थीं। उन्होने मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता बतायी और मुझे चिढाते हुए कहा था कि वे मुझे तभी सर्वजित मानेगी, जब मैं कबीरजीको शास्त्रार्थमे पराजित कर दूँगा। इसलिये मैं आपको हरा देनेके लिये पूरी तरह तैयार होकर आपके सामने खडा हूँ। आपको पराजित करके ही शान्त होऊँगा।' इतना कहनेके साथ ही सर्वजितने प्रश्न पूछना शुरू कर दिया—'यह बतलाइये कि यह जमाना कैसा हे? दुनियाकी कैसी चलन है?'

कबीरदासने अत्यन्त सरल वाणीमे कहा—'आप मेरी उलटी-पलटी बातोका मजाक न करे। मेरी राय तो यह है'—

डर लागै औ हाँसी आवै अजब जमाना आया रे॥
धन दौलत ले माल खजाना बेस्या नाच नचाया रे।
मुट्ठी अन्न साधु कोई माँगे, कहै नाज नहिं आया रे॥
कथा होय तहँ स्रोता सोवै वक्ता मूँड़ पचाया रे।
होय जहाँ कहिं स्वाँग, तमासा तनिक न नींद सताया रे॥
भंग तमाखू सुलफा गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै मधुवा चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनियामे ताते जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भई साधो का पाछे पछताया रे॥

आपने तो युगका दर्शन ही दिखा दिया। खूब गहराईसे दुनियाको देखा-परखा है। भला बतलाइये तो 'इस युगका व्यवहार केसा है? प्रजातन्त्रकी क्या अवस्था है? राज्यके

सिहासनपर कैस व्यक्ति जमे हुए हैं?'

कबीर—'प्रजातन्त्रका तो यह हाल है'—

बाबू ऐसो है ससार तिहारो, है यह कलि ब्यवहारा।
को अब अनख सहै प्रतिदिनको नाहिन रहन हमारा॥
सुमति सुभाव सबै कोई जानै, हृदया तत्त न बूझै।
निरजाव आगे सरजीव थापे लोचन कछुव न सूझै॥
तजि अमरत बिष काहे अंचवै गाँठी बाँधू खोटा।
चोरनको दिय पाट सिहासन साहुहिं कीन्हों ओटा॥
कह कबीर झूठो मिली झूठा ठग ही ठग ब्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है नाहीं है पतियारा॥

सर्वजित—'यह ससार कैसा है?'

कबीर—

रहना नहिं देस बिराना है॥
यह ससार कागदकी पुड़िया बूद पड़े घुल जाना है।
यह ससार काँटकी बाड़ी उलझ-पुलझ मरि जाना है॥
यह ससार झाड़ और झाँखर आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! सतगुरु नाम ठिकाना है॥

अन्तमे कबीरने कहा—'आपने मेरी बाते सुनीं—उसके लिये धन्यवाद। पर भाई मैं यह स्वीकार करता हूँ कि शास्त्रार्थमे म आपसे नही जीत सकता। आपका पुस्तकीय अध्ययन गम्भीर है।'

सर्वजित—'फिर भी आप अपने सिद्धान्त तो स्पष्ट कीजिये। आखिर आप क्या कहना चाहते हैं? आपका मार्ग कोन-सा हे?'

कबीर—'म जिस मार्गपर अग्रसर हो रहा हूँ, वह मार्ग इतना विशाल और कठोर हे कि उसे सर्वसाधारण समझ नही पाते ह।'

'आप उसे निर्गुण-उपासनाका नाम दते हैं न?'

इससे ज्यादा अच्छा तो उसे समन्वयवादका मार्ग कहना पसद करूँगा। मैंने सभी सम्प्रदायो शास्त्रों धर्मग्रन्थो और रहस्यवादी विचारोको इकट्ठाकर उनको एक बनाया हे। उसमे योग-तत्त्व वैष्णव-सम्प्रदाय तथा बुद्ध-धर्मके भी कुछ सिद्धान्त शामिल ह। भारतमे इस समय अनेक धर्मोका प्रभाव है। बिना इनके एकीकरणके मेरा निर्गुण-पथ सफल नहीं हो सकता। मेरे सिद्धान्त गीताके सिद्धान्तोसे भी मिलते हैं।

कुछ उदाहरण तो दीजिये?

कबीर—

सर्वकर्माणि मनसा सन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

'भाई, मैं तो योगमे ही आनन्द मानता हूँ और शरीररूप नवद्वारावाले घरसे सब कर्मोको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्द परमात्माके स्वरूपमे स्थिर रहना चाहता हूँ।'

'लोग कहते हैं कि आपके पथमे फूल भी हैं, पर काँटे अधिक हैं।'

यह कहना उचित है। इसमे लोगोको उनकी जीर्ण-शीर्ण रूढियो एव दूषित बातोके लिये फटकारना भी पडता है। बुरा-भला कहनेकी वृत्तिके लिये मैं लज्जित हूँ। क्षमा चाहता हूँ। मेरा निर्गुण-पथ जनताके हितका साधन है। मैंने धर्मके क्षेत्रमे महान् समानता लानेका प्रमाण दिया है। सत-साहित्यका यह एक मध्यम मार्ग है। मैं जानता हूँ कि ।

'कहिये कहिये कहते-कहते रुक क्या गये?'

मैं अपढ जुलाहा हूँ, लिखना-पढना जानता नहीं हूँ। मैं यह अनुभव करता हूँ कि शास्त्रार्थमे आप-जैसे सुशिक्षित महान् विद्वान्से नहीं जीत सकता। मैं अपनी हार मानता हूँ। मेरी हिम्मत आपसे शास्त्रार्थ करनेकी नहीं है।

सर्वजित—(सतुष्ट होकर) 'अगर आप अपनी हार मानते हैं तो यह बात लिखकर दे दीजिये।'

'क्षमा कर महोदय, मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि मैं पढना-लिखना नहीं जानता। जो कुछ कविता कहता हूँ, लोग उन्हे लिख लेते हैं। मैं सिर्फ अपने हस्ताक्षर करना जानता हूँ। वे अक्षर भी टेढे-मेढे बनते हैं। देखकर स्वयको लज्जा आती है। आप स्वय लिख ले। मैं अपने हस्ताक्षर कर दूँगा।'

लीजिय मैं लिखता हूँ।

क्या लिखा आपने?

सर्वजितने कबीरको हरा दिया।

'लाइये मैं हस्ताक्षर कर देता हूँ।' (यह कहकर कबीरजीने उस पर्चेपर बिना पढे ही हस्ताक्षर कर दिया।)

सर्वजित खुशी-खुशी उन्हे लेकर अपनी माताजीके

पास पहुँचे। माताजीको दिखाया तो वे आश्चर्यसे उछल उठीं। उनका चेहरा काले बादलोंकी तरह निराश हो गया।

'माताजी, आप पर्ची पढ़कर क्यों नाराज हो गयीं?'

'अरे मूर्ख, तूने ध्यानसे पढ़ा है कि उसमें क्या लिखा है?'

आप ही बतलाइये क्या लिखा है।

उसमें लिखा है कि 'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया है।'

मैं फिर काशी जाकर गलतीको दुरुस्त कराऊँगा।

दुविधामें फँसे सर्वजित उलटे पाँव कबीरके पास पहुँच गये। 'अपने लिखनेमें ही गलती हो गयी। मेरा ध्यान कहीं भटक गया'—यह कहकर उन्होंने कबीर साहबसे नयी पर्चीपर हस्ताक्षर करनेकी प्रार्थना की। वे तैयार हो गये। सर्वजितने फिर लिखा और माताजीको पर्ची दिखायी।

अरे मूर्ख! इसमें तो फिर वही लिखा है—'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया।'—ऐसा तीन बार हुआ। हैरान होकर सर्वजितने अपनी मातासे कहा—'माँ! ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं। न जाने क्या जादू कर देते हैं कि मैं कुछ-का-कुछ लिख जाता हूँ।'

सर्वजित अन्धकारमें हैं, उनकी माताजी कबीरकी महानतासे परिचित थीं। वे सर्वजितको सम्बोधित करते हुए कहने लगीं—'तेरे गुप्त मनमें, तेरी अन्तरात्मामें कबीरकी विद्वत्ता बैठी है। ऊपरी मनसे तू कबीरको हरानेकी बात करता है, जबकि तू प्रारम्भसे ही उनसे हारा हुआ है।' अब सर्वजित अपने मिथ्याभिमानपर लज्जित थे। उन्होंने कबीर साहबसे क्षमा माँगी और उनके शिष्य बन गये। उनका शास्त्राभिमान दूर हो गया।

अभिमानग्रस्त रोगीके भीतर जो नैतिक दुर्बलताएँ होती हैं, उन्हें उसका मन दूसरोंपर आरोपित करता है। उसके मनमें गलत विश्वास जम जाता है कि वे अवगुण उसमें नहीं हैं, बल्कि दूसरे व्यक्तियोंमें हैं। कबीर साहबने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिसे सर्वजितके मनोविकारका मर्म जान लिया था।

अब सर्वजितका ज्ञान-गर्व टूट चुका था। महात्मा कबीरकी सेवा-साधनाने उन्हें परमार्थ-पथपर ला खड़ा कर दिया था। वे कबीरके समस्त ज्ञान-व्यवहार एवं क्रियाओंमें भगवत्-लीलाके चमत्कारका दर्शन कर रहे थे और शनैः-शनैः शान्तमना सर्वजित तत्त्वज्ञानकी ओर अग्रसर होते हुए यथार्थ तत्त्वज्ञानके उन्मुक्त द्वारसे साक्षात् भगवत्-लीलाकी अनुभूति कर रहे थे। उनको समस्त दृश्य-प्रपञ्च लीलामय ही दृष्टिगत हो रहा था।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदासजी 'श्रीसंतजी महाराज')

परब्रह्म परमात्मप्रभुकी दिव्यतम लीलाएँ तो इतनी गूढ और अगाध हैं कि सामान्य मनुष्य उन्हें समझ ही नहीं पाता, जबकि लीलामय प्रभुके समस्त लीलावतरण प्राणिमात्रके कल्याणके लिये ही हुआ करते हैं। इन लीलावतरणोंमें जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ लीला-प्रधान होनेके कारण मानव-समुदायके लिये अनुकरणीय नहीं हैं, वहीं भगवान् श्रीरामकी लीलाएँ चरित-प्रधान होनेसे सभी मनुष्योंके लिये आदर्शमय होनेके कारण सर्वथा अनुकरणीय हैं। स्वामी श्रीवल्लभाचार्यजीने लीलाकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

'लीला नाम विलासेच्छा'

अर्थात् लीला भगवान्की मौज-मस्ती है क्रीडा है, यद्यपि उसका कोई उद्देश्य नहीं होता, परंतु यह लीला या क्रीडा किसी साधारण मनुष्यकी निरर्थक क्रीडा नहीं, बल्कि सोद्देश्यजनित है। भगवान्की प्रत्येक लीलाका कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। जैसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

भगत हेतु अवतरहिं गोसाईं।

भगवान् भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये तथा उनके जीवनमें सुधार लानेके लिये एवं उन्हें शिक्षोपदेश देनेके लिये ही लीला करते हैं।

इसके अनुसार सगुण-साकार भगवान् लोकके कल्याणके लिये अपनी इच्छासे लीला करते हैं। परात्पर ब्रह्मके सगुण-

साकाररूपमे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतरण भी लाक-कल्याणार्थ एव जन-जनक अनुकरणीय आदर्शक प्रतीक-रूपमे हुआ है।

भगवान् श्रीरामकी सारी लीलाएँ लोकका शिक्षा देनके उद्देश्यसे हुई हे, इसीलिये ईश्वर होनेपर भी वह अपने ऐश्वर्यको छिपाकर एक साधारण मनुष्य-जैसी लीला करते हे। पग-पगपर लोक-व्यवहारके लीला-कार्योम आदर्श-मर्यादा-स्थापनहेतु सचेष्ट एव तत्पर रहत हे। उन्ह सदैव इस बातका ध्यान रहता है कि किसी भी कार्यम लाक-शास्त्र-मर्यादाका कहीं उल्लघन ता नहीं हा रहा हे! प्रभुका सासारिक अवतरण ही जव लीला है तो उनकी क्रियाएँ नाटक या लीला ह, इसमे कहना ही क्या! भगवान् स्वय कहते हैं—'मनुष्यभावमापन्न किंचित्काल वसाम्यहम्'—'मनुष्यभावको प्राप्तकर कुछ कालतक में यहीं निवास करता हूँ।' भगवान्क कार्योम अह तथा स्वार्थ-भावना नहीं हाती, इसीलिये उनकी क्रियाएँ लीला कहलाती हैं, जवकि मनुष्यम अह तथा स्वार्थभावना होती हे इसलिय उसकी क्रिया लीला नहीं कही जाती। आप्तकाम तथा वीतराग महापुरुषाकी क्रियाएँ भी लीला कहलाती ह।

भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाआक सम्वन्धम महर्षि वाल्मीकिने कहा ह कि 'हर मनुष्यका कल्याण भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाआका अनुकरण करनसे हो सकता है। शास्त्र-मर्यादाके अनुसार आचरित होनेपर ही मनुष्यका सच्चा कल्याण हाता हे। जीवनम सयम हो, सदाचार हो सेवा हा तथा मर्यादाका पालन हा यही भक्तिकी साधना ह।' श्रीरामकी सारी लीलाएँ धमस्वरूप ह। वे चरित-प्रधान मर्यादापुरुषात्तम हें। उनके दिव्य चरितम अपार करुणाके मङ्गलमय स्रोत सर्वत्र लहराते नजर आते हैं। शील-शक्ति ओर सोन्दर्यकी त्रिवेणीका सगम उनके चरितमे सर्वत्र दीखता है। अहल्या-उद्धार-लीला-प्रसगम गोस्वामी तुलसीदासजीने विनय-पत्रिका (१००। ४)-म भगवान् श्रीरामका अनाविल शील दर्शाया है। जैसे—

सिला पाप-सताप बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हरि हरष हिय चरन छुएको पछिताउ॥

भगवान् श्रीरामके चरणरजस अहल्याका उद्धार हा जाता है, शिला दिव्य नारी-रूपम परिणत हा जाती है। चतना आर आनन्दकी मङ्गलमयी दृष्टिम सृष्टिका आर-छार भीग जाता है। चारा तरफ हर्षका वातावरण दिखायी पडता है, परतु शीलसिन्धु श्रारामक हृदयम शिलारूपम नारीका चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्ताप ह। यह उनक शाल एव पावन चरितकी वहुत ऊँची भूमिका है। यहाँ उपकारजन्य आनन्दके साथ चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्तापका सितासित-सगम ह। यह उनक शीलसागरकी अनुपम झाँकी ह।

गृध्रराज जटायुको सवास द्रवित हाकर उनका गादम लेना, अपनी जटास उनक शरारक रजका झाडना तथा उनके दु खका दखकर सीता-वियाग-जस असह्य सतापको भी स्वय भूल जाना ओर अपने हाथासे उनका अन्त्येष्टि-सस्कार सम्पन्न करना शालसागर श्रीरामके शालका अन्यतम उदाहरण है। आदर्श लीलाक अधिनायक भगवान् श्रीरामने गृध्रराज जटायुके प्रति जा पितृवत् आदरभाव उपस्थापित किया ह, वह लाक-व्यवहारादशाका चूडान्त निदर्शन हैं जन-जनक लिये लाकात्तम शिक्षण ह। वनगमनद्वारा उन्हाने मानवमात्रका तपस्या करनेकी सत्कर्म करनेकी, सत्सग करनकी शिक्षा दी हे। भगवान् श्रीराम जिस समय वनम पधारे, उस समय उनकी युवावस्था था, जगत्-जननी माँ सीता भी युवावस्थाम प्रवश कर चुकी थीं। भरे यौवनम उनका वनवास हुआ था। योवनम ही वनवासकी आवश्यकता होती है, क्याकि वृद्धावस्थाम इन्द्रियाँ जव स्वत दुर्बल हो जाती हे, तव सयम-साधना भगवच्चिन्तन आदिम वाधाएँ पडती हैं। अत युवावस्थाम इन्द्रियाका सयम ही सच्चा सयम कहा जाता ह। शक्ति हो सब प्रकारक भोग प्राप्त हा—फिर भी मन विषयाम न जाय यही सच्चा सयम है। सेवा-साधनाद्वारा स्वयको मुक्त करत हुए सर्वसाधारणको भी मुक्त करनेका—परमार्थ-पथम अग्रसर करनेका युवावस्था सबसे अच्छा समय ह। इसी लाक-कल्याणकी दृष्टिसे प्रभु राम लक्ष्मण एव जनकनन्दिनीके साथ युवावस्थामे ही भाग-विरक्त हाकर यागासक्त हो गये जिसम सुर, नर मुनि यक्ष, राक्षस गन्धव—सभाका नि श्रेयसप्रद कल्याण निहित था सुनिश्चित था।

दशरथनन्दन सीतापति आदर्श लीलावतारी प्रभु श्रीरामकी

चाहे गुरु विश्वामित्रके साथ जानेकी अविचलित-भावसे मर्यादा-पालनकी आदर्श लीला हो, सीता-स्वयवरमे परशुरामके समक्ष आदर्श शिष्टाचारका प्रदर्शन हो, पिताकी आज्ञाके पालनमे वनगमन-प्रसगका आदर्श हो अथवा लोक-मर्यादाके आदर्श-सरक्षण-हेतु सीता-परित्यागकी लीला हो—ये सभी अपने-आपमे दिव्यतम लीलाएँ हैं, मानवीय मूल्योकी स्थापनाके चूडान्त दृष्टान्त हैं। ये लीलाएँ अनुपम लोकोत्तर व्यवहारादर्शके साक्षात् अनुकरणीय सत्य-तथ्य, चिन्त्य-तत्त्व एव महान् परमोपयोगी विश्वकल्याणकारक अलौकिक कार्य हैं, जो सदैव अनुकरणीय हैं—वरणीय हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी थोडी आदर्श लीलाओद्वारा सभी साधको तथा भक्तोको सदाचार-साधन करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। सदाचारकी स्थापना प्राणिमात्रके लिये कल्याणप्रद है और इसीसे विश्वमे शान्तिकी स्थापना हो सकती है। इसी उद्देश्यसे भगवान्ने गीतामे कहा है—

धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

साधारणत हमारी चतना बहिर्मुखी होती है और यह बाहरके विषयोमें मनमाना अनियन्त्रित-रूपसे दौडती रहती है। जिस प्रकार समुद्रमे गोते लगानेपर ही रत्नकी प्राप्ति की जाती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकी आदर्श-लीलाओका विचारद्वारा मन्थन करनेपर ही सदाचारका मूल्य सुविदित होता है। सब कोइ सदाचारी बने, यही मूल प्रेरणा उनकी लीलाओद्वारा प्राप्त होती है।

सदाचार सच्ची मानवता और भगवद्भक्तिकी आधारशिला है। भगवान् श्रीरामकी लीलामे इसीकी सच्ची शिक्षा दी गयी है। इस समझनेके लिये शुद्ध हृदयकी आवश्यकता है। शुद्ध हृदयके निर्माणमे ईश्वर-नामके जप तथा कीर्तनका अधिक महत्त्व है, अत सब कोई प्रेमसे प्रभुका नाम ले—

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी पारिजात-हरण-लीला

(श्रीजयन्तीलालजी जोशी शास्त्री')

श्रीद्वारकानाथ प्रभुकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। भक्तगण बाललीला, कैशोरलीला, मधुरालीला एव द्वारकालीलाके रूपमे इन लीलाओका विभाजन करते है। ये लीलाएँ हैं तो एक ही परात्पर परब्रह्मकी, किंतु अवस्था एव स्थानभेदसे विद्वानाने इनका विविध रूपसे वर्णन किया है।

द्वारकाधीश श्रीकृष्णने माथुरमण्डलसे सौराष्ट्र प्रदेशमे निवास करनेका सकल्प किया। एतदर्थ देवशिल्पी विश्वकर्माद्वारा समुद्रतटपर द्वारका नगरीका निर्माण करवाया और समग्र यादवो-समेत वहाँपर निवास किया। प्रभुने द्वारकापुरीमे स्वर्गसे भी श्रेष्ठ राज-वैभव प्रस्थापित किया। तबसे उनका नाम द्वारकाधीश और द्वारकानाथ हुआ। द्वारकामे पधारनेके पश्चात् प्रभुने श्रीरुक्मिणी प्रभृति आठ पटरानिया एव भौमासुरद्वारा अपहृत सोलह हजार एक सौ राजकुमारियाके साथ विवाह सम्पन्न करनेकी लीला की।

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-गृहस्थ बनकर गृहस्थधर्मका यथोचित पालन करते हैं। प्रभुकी इसी गार्हस्थ्यलीलाके अन्तर्गत 'पारिजात-हरण-लीला' का भी समावेश होता है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (१०। ५९। ३८—४१)-मे इस लीलाका सक्षेपमे सकेत प्राप्त होता है। किंतु श्रीहरिवशपुराणके विष्णुपर्वमे इस लीलाका ६५ से ७६वे अध्यायतक विस्तारसे वर्णन प्राप्त होता है।

आइये उन श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी उस दिव्यलीलाका आस्वादन करे।

एक समय द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण मुख्य महिषी श्रीरुक्मिणीजीके व्रतोद्यापन-हेतु सपरिवार रैवतक पर्वतपर पधारे—

प्राप्तदारो महातेजा वासुदेव प्रतापवान्।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतक नृप॥
उपवासावसान हि रुक्मिण्या प्रतिपूजयन्।
तर्पयिष्यन् स्वय विप्राञ्जगाम मधुसूदन ॥

(हरि० विष्णु० ६५। ४-५)

वहाँ द्वारकाके सभी यदुकुमार, पटरानियाँ, दास-दासियाँ एव अन्य लोग भी सम्मिलित हुए। व्रतकी समाप्ति होनेपर प्रभुने पवित्र ब्राह्मणोका पूजन-अर्चन भोजन एव

मनोवाञ्छित दानसे सत्कार किया। राज्ञी रुक्मिणीका भी विशेष आदर किया। सभी स्वजनासे समन्वित प्रभु श्रीकृष्ण वहाँ विराजमान थे। उस समय उनसे मिलनेके लिय दवर्षि नारदजी वहाँ पधार। भगवान्न नारदजीका स्वागत किया एव शास्त्राक्त-विधिसे पूजन किया। प्रसन्न हाकर दवर्षि नारदने स्वर्गके पारिजात वृक्षका एक पुष्प दिया। प्रभुने वह पुष्प अपने समीप विराजमान देवी रुक्मिणीजीका द दिया—

> सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतम सताम्।
> पारिजाततरो पुष्प ददौ कृष्णाय भारत॥
> तद्वृक्षराजकुसुम रुक्मिण्या प्रददौ हरि ।
> पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत्॥
>
> (हरि० विष्णु० ६५। १४-१५)

प्रभुका सकेत पाकर देवी रुक्मिणीन वह पारिजात-पुष्प अपने केशपाशम लगा लिया। उस देवपुष्पको धारण करनसे देवी रुक्मिणीकी शोभा द्विगुणित हा गयी। तदनन्तर दवी रुक्मिणीजीसे श्रीनारदजी बोले—'देवि ! यह पुष्प सर्वथा तुम्हारे याग्य है। तुम्हारे सम्पर्कसे यह पुष्प भी सफल हुआ है।' इतना कहनेके पश्चात् पुष्पकी महिमाका बखान करते हुए कहने लगे—'देवि ! यह पुष्प एक वर्षतक म्लान नहीं हाता और मनोवाञ्छित सुगन्ध प्रदान करता है, इच्छानुसार सर्दी और गर्मी देता है तथा मनम जिन श्रष्ठ रसाको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, उन्ह भी यह पुष्प स्वय ही झरता (प्रदान करता) रहता है इसक सवनसे साभाग्य, एश्वर्य एव पुत्रकी प्राप्ति हाती है धारण करनेवालेक मनपसद रग बदलता है कामनानुसार स्थूल और सूक्ष्म हाता है तथा रात्रिके समय दीपककी भाँति प्रकाश दता है। पुष्पक प्रभावस क्षुधा, पिपासा, ग्लानि एव जरावस्था भी इच्छानुसार होती है। इस पुष्पसे गीत-सगीतका आनन्द भी प्राप्त हाता है। स्वर्गकी सभी देवियाँ इस पारिजात-पुष्पको धारण करती ह। एक वर्षक पश्चात् यह पुष्प स्वय पारिजात वृक्षक समीप चला जायगा। इस पुष्पको धारण करनेसे तुम प्रभुकी सभी रानियाम सुन्दर एव श्रष्ठ बनी रहागी।'

नारदजीक इन वचनाको सुनकर द्वारकाधीश प्रभुकी अन्य रानियाँ रुक्मिणीका अभिनन्दन करती हैं एव अपना आनन्द प्रकट करती ह।

रानी सत्यभामा इस समय अपन शिविरम विश्राम कर रही थीं। जव उनकी दासी आकर रुक्मिणीजाका प्राप्त इस महिमायुक्त विशिष्ट पारिजात-पुष्पका वृत्तान्त उन्ह सुनाती है तो व ईर्ष्यासे अत्यन्त क्रुद्ध हा जाती हैं एव रुष्ट होकर कापभवनम जाकर विलाप करती हैं—

> दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्धता
> ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव।
> क्रोधान्विता क्रोधगृह विविक्त
> विवेश तारेव घन सतायम्॥
>
> (हरि० विष्णु० ६५। ५२)

श्रीसत्यभामा रुष्ट हा गयी हैं, यह जानकर श्रीकृष्णजी उन्ह मनानेके लिय वहाँ जात हैं। प्रिया सत्यभामाकी स्थिति बहुत ही शाचनीय थी। वह बारम्वार कापाविष्ट एव मूर्च्छित हो जाती हैं। तब प्रभु दासीक हाथमस व्यजन लकर स्वय व्यजन करने लगते हैं। प्रभुके श्रीहस्तसे आती हुई पारिजात-पुष्पकी सौरभसे सत्यभामा जान जाती हैं और उठकर उपालम्भ देती हैं—'ह स्वामिन्! मैं तो आपको अपना एकमात्र समझती थी परतु आज यह बात मरी समझम आ गयी कि आपक भीतर मर लिये भी साधारण ही स्नेह है'—

> मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्य मन प्रभो।
> अद्य साधारण स्नेह त्वयि तावद् गतास्म्यहम्॥
>
> (हरि० विष्णु० ६६। ४७)

श्रीद्वारकाधीशजी प्रिया सत्यभामाको अनुनय-विनय एव माधुर्यसिक्त वचनासे समझाते हुए प्रमसे मनाते हैं तथा वचन देते हैं कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो स्वर्गसे पारिजात वृक्ष लाकर जितने समयतक तुम चाहागी, उतने समयतकके लिये तुम्हारे भवनक प्राङ्गणम स्थापित कर दूँगा—

> स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजात द्रुमेश्वरम्।
> गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्काल त्वमिच्छसि॥
>
> (हरि० विष्णु० ६७। ३२)

प्रभुके इन वचनास आश्वस्त हुई श्रीसत्यभामाजी स्नान करक नूतन वस्त्रालकार धारण करती हैं तथा प्रभुके लिये उत्तम भाजन बनाती ह। इसके बाद श्रीकृष्ण नारदजीको ससम्मान निमन्त्रित करत ह ओर उन्ह भाजन करानेके बाद स्वय भाजन करत ह।

भाजनापरान्त श्रीकृष्ण और सत्यभामा जव नारदजीके

सम्मुख बैठते हैं तो वार्तालापके ही प्रसगम नारदजी कहते हैं कि यह पारिजात-पुष्प मुझे देवराज इन्द्रने दिया था, जो मैने आपको द दिया है। देवमाता अदितिकी सेवासे सतुष्ट होकर उनके पति महर्षि कश्यपने अन्य दिव्य वृक्षासे सार ग्रहण करके यह दैवी वृक्ष निर्मित किया है। इस वृक्षके मन्दार, पारिजात एव कोविदार—य तीन नाम है।

जब नारदजीने पारिजातकी महिमा बतायी तो प्रभुन निवेदन किया कि ह ऋषिवर्य! दवराज इन्द्रके पास जाकर आप मेरी प्रार्थना सुनाइय कि वह कुछ दिनाके लिये मेरी रानियोके पुण्य-दान-धर्मार्थ और मेरी प्रसन्नताके लिये पारिजात वृक्ष हम प्रदान करे। यहाँका कार्य सम्पन्न हो जानपर वृक्षका पुन स्वर्गमे ल जा सकगे—

दत्त श्रुत्वाभिकाक्षन्ति दातु पत्न्यो मम प्रभो॥
पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च।
आनाययद् द्वारवतीं पारिजात महाद्रुमम्॥
दत्ते दाने पुन स्वर्गं तरु त्व नेतुमर्हसि।

(हरि० विष्णु० ६८। ६—८)

श्रीकृष्णका प्रस्ताव सुनकर नारदजीन कहा—'प्रभो! आपकी बात मैं इन्द्रक समीप अवश्य पहुँचा दूँगा, किंतु मुझे लगता है कि इन्द्र यह प्रस्ताव मानेगा नहीं, क्योकि पूर्वकालमे भगवान् शिवजीने मेर द्वारा यह वृक्ष मँगवाया था, परतु इन्द्रने शिवजीकी प्रार्थना करक वह वृक्ष स्वर्गमे ही स्थापित करा लिया था। वह इन्द्रपत्नी शचीका प्रिय कीडा-वृक्ष है।'

इसपर श्रीद्वारकाधाशप्रभुन नारदजीसे कहा कि मैं तो एक समयमे इन्द्रका छोटा भाई (उपेन्द्र-वामन) था। अत मेरा इन्द्रसे माँगनका अधिकार बनता है। फिर भी यदि इन्द्र नहीं दते हैं तो मे युद्ध करक लाऊँगा क्याकि मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं जाती।

तत्पश्चात् भगवान् द्वारकानाथक दूत बनकर दवर्षि नारद इन्द्रक समीप गय। इन्द्रने देवर्षिका स्वागत किया और आगमनका प्रयाजन पूछा। नारदजीने बताया कि मैं द्वारकाधीश-प्रभुका सदश लकर आपक समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने आपसे प्रार्थना की है—'स्वर्गमे जो पारिजात वृक्ष ह वह कुछ दिनाक लिय द्वारका भज दीजिये। जिससे रानी सत्यभामाका धर्म-काय सम्पन्न हो एव पृथ्वी-निवासी मनुष्य इस दिव्य वृक्षका दर्शन करक कल्याणान्वित हो'—

अय दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर।
पश्यन्त्वमरकल्याण मत्प्रभावाच्च मानवा॥

(हरि० विष्णु० ६९। ३६)

—इस प्रस्तावको सुनकर इन्द्रन कहा कि श्रीकृष्णका यह प्रस्ताव उचित नहीं है। स्वर्गकी वस्तुएँ मनुष्यलाकमे नहीं जा सकतीं। ऐसी मर्यादा है। इससे देवगण भी नाराज हो सकते ह। जब श्रीकृष्ण सपत्नीक स्वर्गम आयगे तब दिव्य वृक्षको देख सकगे। यदि स्वर्गकी सिद्धियाँ पृथ्वीलोकम चली जायँगी, तो मनुष्य इष्ट-पूर्त-यज्ञ-दान आदि पुण्यकर्म क्या करग ? आप सत्यभामाके लिये स्वर्गसे वस्त्र, अलकार, मणि चन्दन आदि ले जाइये।

इन्द्रकी बात सुनकर नारदजीन कहा कि यदि आप पारिजात नही दग तो द्वारकाधीश आपक साथ युद्ध करके बलात् पारिजात वृक्ष ले जायँगे। इस बातसे इन्द्र क्राधाविष्ट हाकर कहत हैं—'मुनिश्रेष्ठ! जबतक मे सग्रामभूमिम उपस्थित होकर चक्रपाणि श्रीकृष्णसे पराजित नहीं हो जाऊँगा, तबतक उन्ह पारिजात नही दूँगा'—

यावन्न सग्रामगतो जितोऽह चक्रपाणिना।
पारिजात न दास्यामि तावद् भो मुनिसत्तम॥

(हरि० विष्णु० ७०। ४६)

तत्पश्चात् नारदजी वापस द्वारकाधीशक पास आये और इन्द्रके साथ जो बातचीत हुई थी, उसे विस्तारस सुना दिया। इन्द्रके निर्णयको सुनकर श्रीकृष्णने भी ऋषिके माध्यमसे ही पारिजात-हरण करनेक अपने निश्चयस इन्द्रको अवगत करा दिया।

'श्रीकृष्ण पारिजात-हरणार्थ स्वर्गपर आक्रमण करनके लिय कृतनिश्चय ह'—यह जानकर इन्द्रको बडी चिन्ता हुई। वे दवगुरु बृहस्पतिजीसे मिले और स्थितिम अवगत कराय। बृहस्पतिजीने इन्द्रके दुर्व्यहारकी निन्दा की ओर युद्धमे न्यायपूर्ण निष्कर्ष निकलनेका आश्वासन दिया।

बृहस्पतिजीने क्षीरसागर-तटपर तपश्चर्याम लीन ऋषि कश्यप ओर माता अदितिका ये सब बात निवदित कीं। इस

प्रसगसे वे दोनो बहुत व्यथित हुए। कश्यपजीने कहा कि इन्द्रने देवशर्मा ऋषिका जो अपराध किया था, उन्हींके शापका यह परिणाम है। मैं दोनाके बीच युद्ध रोकनेका प्रयत्न करूँगा। बृहस्पतिके लौटनेपर अदिति और कश्यप दोनो भगवान् शिवकी आराधना-प्रार्थनामे लग गये—

तत्र सौम्य महात्मानमानर्च वृषभध्वजम्।
वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहित प्रभु ॥

(हरि० विष्णु० ७२। २७)

उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और दोनोको आशीर्वाद देकर बोले—'आपकी चिन्ता मैं जानता हूँ। इन्द्र-उपेन्द्र स्वाभाविक स्थितिमे आ जायँगे, श्रीकृष्ण पारिजात ले जायँगे। आप स्वर्गमे जाइये, आपके पुत्रोका कल्याण होगा। कश्यप-अदिति शिवजीको प्रणाम करके उनके आदेशानुसार स्वर्गके प्रति प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्ण भी सात्यकि और प्रद्युम्नको साथ लेकर गरुडारूढ हो स्वर्गमे जा पहुँचे। वे नन्दनवनमे पधारे तो पारिजात वृक्ष स्वय उनके पास आ गया। वे उसे गरुडपर स्थापित कर लिये। परिणामत श्रीकृष्ण और इन्द्रके बीच घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस भयानक युद्धसे जल, स्थल एव आकाशमे सभी विकम्पित हो गये। तब ब्रह्माजीके आदेशसे कश्यप और अदिति दोनाके मध्यम आ गये एव युद्ध-विरामके लिये समझाने लगे। दोनाने कश्यप-अदितिको प्रणाम किया और युद्ध बद किया।

तत्पश्चात् सब स्वर्गमे वापस लौटे। देवी शचीने श्रीकश्यप-अदितिका पूजन किया। अदितिने श्रीकृष्णको सूचित किया कि आप पारिजात वृक्ष द्वारकामे ले जाइये एव रानी सत्यभामाका पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर पुन स्वर्गमे लौटा दीजिये—

उपेन्द्र द्वारका गच्छ पारिजात नयस्व च।
वध्वा सम्प्रापयस्वेश पुण्यक हृदये स्थितम्॥
पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरु।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्य स्थाने यथोचिते॥

(हरि० विष्णु० ७५। ३८-३९)

तदनन्तर कश्यप-अदिति एव इन्द्र-शचीको प्रणाम करके पारिजात वृक्ष लेकर जब श्रीकृष्णजी प्रस्थानके लिये तैयार होते हैं तो शची कृष्णकी सभी पत्नियाके लिये वस्त्र, रत्न, माला तथा अलकार आदि उपहाररूपमे प्रदान करती हैं।

प्रद्युम्न, सात्यकि और पारिजातके साथ श्रीकृष्णके द्वारकापुरी पहुँचनेपर वहाँकी सारी प्रजा प्रसन्न हो जाती है एव पारिजातका दर्शन करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करती है। श्रीद्वारकाधीशने पारिजात वृक्षको रानी सत्यभामाके भवनके प्राङ्गणमे स्थापित किया। सत्यभामाने अतिशय प्रसन्नतापूर्वक भगवान्का एव दिव्य वृक्षराजका पूजन किया। सत्यभामाजीका पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर एक वर्षके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने पारिजात वृक्षको पुन स्वर्गलोकमे पहुँचा दिया—

सवत्सरे ततो याते केशिहामरसत्तम।
पारिजात पुन स्वर्गमानयत् सर्वभावन ॥

(हरि० विष्णु० ७६। २६)

निखिल जगन्नियन्ता श्रीद्वारकाधीशने अपनी प्रिय महिषी सत्यभामाके सम्मानके लिये जो यह दिव्य लीला की, वह असुरोको मोहित करनेवाली एव श्रद्धालु भक्तगणके लिये सकीर्तनीय, सस्मरणीय एव परम कल्याणकारिणी है।

मा भजन्तु विचक्षणा

तस्माद् देहमिम लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् । गुणसङ्ग विनिर्धूय मा भजन्तु विचक्षणा ॥
निस्सङ्गो मा भजेद् विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रिय । रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्वससेवया मुनि ॥

(श्रीमद्भा० ११। २५। ३३-३४)

यह मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। इसी शरीरमे तत्त्वज्ञान और उसमे निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है, इसलिये इस पाकर बुद्धिमान् पुरुषाको गुणाकी आसक्ति हटाकर मेरा भजन करना चाहिये। विचारशील पुरुषोको चाहिये कि बडी सावधानीसे सत्त्वगुणके सेवनसे रजोगुण और तमोगुणका जीत ले, इन्द्रियाको वशमें कर ले और मेरे स्वरूपको समझकर मेरे भजनमे लग जाय। आसक्तिको लेशमात्र भी न रहने दे।

वृन्दावनकी निकुंजलीलाका रस-रहस्य—राधा

[मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना]

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी डी० लिट्०)

वृन्दावनके नवनिकुज सुखपुज महलमे नित्य-निरन्तर चलनेवाली केलिलीलाका रस-रहस्य दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्रके विवेचनका विषय नहीं है। वेद और वेदान्त हाथ जोडकर जिस रग-महलके द्वार खडे हैं, उसमे न दास्यभावका प्रवेश है और न शान्तरसका।

जिस रसके वशीभूत होकर प्रभु ऊखलसे बँध जाते हैं, मैया साँटी दिखाती है तो भयभीत हो जाते हैं और 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' का समग्र ऐश्वर्य जिस गोकुल-रसके आगे बेसुध है, नन्दबाबा और यशोदा मैयाका हृदय जिस रसका अजस्र-स्रोत है वह अलौकिक वात्सल्यरस भी वृन्दावनकी सीमापर ही रह जाता है।

वह सख्यभाव, जिसे न प्रभुकी मर्यादाका ध्यान है, न उनके गौरवका, जो प्रभुके ऐश्वर्य और भय—दोनोसे अनभिज्ञ है, जो हरिसे धक्का-मुक्की करता है, आँखमिचौनी खेलता है और अपने मुखका ग्रास निकालकर प्रभुके मुखमे रख देता है जो प्रभुसे दाँव लेता है और दाँव न देनेपर खुलासा कह देता है—

'जाति पाँति हमसैं बड़ नाहीं नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।'

—वह सख्यरस जिसकी माधुरीमे डूबकर प्रभुको मैया यशोदाकी टेर भी सुनायी नहीं देती वह महामहिमामय सख्यरस वृन्दावनकी परिक्रमा ही किया करता है।

इसमे कोई सदेह नहीं कि शृगार रसराज है और उसका निवास व्रजयुवतियोके मन और नयनोमे है। नन्दनन्दनको छोडकर कोई दूसरा उनके कटाक्षोके मर्मको नहीं जान सकता। कोई कहे कि श्यामसुन्दर आ रहे हैं, तो व्रजाङ्गनाएँ ऐसी पुलकित-प्रमुदित हो जाती हैं कि उनके गहने हाथोमे ठस जाते हैं और जब यह सुध आती है कि कृष्ण मथुरासे नहीं लौटे, तो उनके आभूषण शिथिल हो जाते हैं—खिसकने लगते हैं।

गोपियोका यह माधुर्यरस कितना भाग्यशाली है। किंतु यह रस भी वृन्दावनके घाटपर पानी भरता है और वृन्दावनकी राजधानी श्रीचक्रका बिंदु नवनिकुज है।

वृन्दावनके नवनिकुजमे न दिन है न रात, न नींद है न भूख। निकुजविहारमे न एक ग्रास आरोगनेकी सुध है न एक घूँट पानी पीनेकी। भोजन-पानीकी स्थूलता महारस-विलासके आनन्दमे बाधा है—

रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास।
रसिक बिहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास॥

उस रसविलासकी लालसामे ठाकुरको अपना प्रभाव और प्रताप भी किरकिरा लगता है—

ताहि सुहाय न ठकुरई बड़ प्रताप बिस्तार।

निकुजलीला-रस विशुद्ध प्रेम-रस है। यह सहज स्वभाव-सिद्ध प्रेम है। उसका स्वभाव ही प्रेम है, इसलिये वहाँ प्रेमका कोई हेतु नहीं है। रूप गुण और ऐश्वर्य आदि वहाँ बहुत छोटी बात हैं।

इस निकुज-लीलामे नित्य-निरन्तर अविनाभाव-सम्बन्ध सिद्ध है। श्यामा-श्याम या राधा-माधवके विलग होनेकी कल्पना तक नहीं, फिर भी *'मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना।'*

बाँहामें बाँह मिलाकर युग-युगान्तरसे कल्प-कल्पान्तरसे एक-दूसरेको निहार रहे हैं, फिर भी लगता है कि एक-दूसरेने एक-दूसरेको कभी देखा ही नहीं—

ऐसौ भ्रम होत मैं कबहू देख्यौ न री।

भावोंका वहाँ कैसी सुकुमारता है कि—*'सासा समुझि सुर बालियै डोल नयन की कोर।'*

वहाँ सुकुमारताकी अत्यन्त दिव्यता है। रह कलिका

वह तन्मयता जिसम श्यामसुन्दर प्रियाजीके रस-विवश हैं। प्रेम-रसपानके लिये वे लाडलीको नाना भाँतिसे रिझाते हैं, मोरोंके साथ नाचते हैं। शृगारकुजम उनके मनम लालसा होती है कि उन्हे राधाकी वेणी गूँथनेका सौभाग्य प्राप्त हो। अत वे अपने कघेरूपी कोमल करोसे राधाका केश-सँवारते हैं।

वृन्दावनके रसिक भक्ताका तन-मन-प्राण यह नित्य-निकुजलीला ही है। वह सौन्दर्य, जिसकी एक किरण भी मनम आ विराजे तो सर्वत्र सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य खिल उठता है। वह पूर्ण सौन्दर्य, जो देश और कालकी सीमाम नहीं बँधा, वह सौन्दर्य, जिसे चन्द्रमा देख ले तो लज्जित हो जाय, कामदेव उसकी झाँकी पा ले तो सुध-बुध खो बैठे।

वह शोभा जो प्रतिपल—प्रतिक्षण नवीन ही बनी रहती है और प्रतिपल नवीनता ही उसकी एक मात्र अवस्था है। श्यामा-श्याम अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यकी निधि हैं। भक्तरसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीकी वाणी है कि—

'राग ही म रग रह्यौ रग के समुद्र मे ए दोउ आगे।

रसका समुद्र और वहाँ भी रसकी प्यास अनन्त प्यास। सौन्दर्य-माधुर्यके समुद्रकी लहर ही उन श्यामा-श्यामकी लीला हैं। प्रकृति-पुरुष तो उसकी छायामात्र हैं।

रसके आत्मप्रकाश, आत्म आस्वादन अथवा रसके आत्म-परिचयका दूसरा नाम है आनन्द। श्रुति कहती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
'आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्द प्रयन्त्यभिसविशन्ति। आनन्दो ब्रह्म।'

विश्वका उपादानकारण भी आनन्द है और निमित्त-कारण भी आनन्द है। उस आनन्दसे विश्वमे नित्य नये खेल, नया निर्माण और ध्वस होता है। आनन्द ही विश्वका प्राण-तत्त्व है। विश्व-प्रपच वस्तुत आनन्दका ही प्रपच है। योगी गोरखनाथ इसे 'चिद्‌विलास' कहते है। यह रस शाश्वत है और यह रस ही ईश्वर है—'**रसो वै स** '। रस-समुद्रकी लहरोका नाम ही लीला है। उन लहरासे ही विश्व आविर्भूत और तिरोभूत होता है। परतु रसिक भक्तोके लिये विश्व-प्रपचक सम्बन्धम सोचना साध्य नहीं है, उनका साध्य तो एक मात्र श्यामा-श्यामकी नित्य-कलि है जहाँ ऐश्वर्य रसकी किरकिरी है। जो पूर्ण सत्ता हे, पूर्ण आनन्द है वही प्रेम है, रस है, वही निकुजलीला हे। दूलह-दुलहिन, बिहारी-बिहारिन प्रिया-लाल आदि नाम रसिक भक्ताके प्राण-आधार हे और निकुजलीलाक दर्शनकी प्यास ही उनका जीवन-दर्शन ह—

एसे ही देखत रहा जनम सुफल कर माना।
छिन न टरो पल हाहु न इत उत रहो एक ही तानो॥

भगवल्लीलाधाम द्वारकाका माहात्म्य एवं इसमे भक्तोद्वारा लीलानुभूति

(डॉ० श्रीकमलजी पुजाणी एम्० ए० पी एच्० डी०)

पुराणाम वर्णित भारतकी सात पुण्यवती एव मोक्ष-दायिनी नगरिया—अयाध्या मधुरा, हरिद्वार काशी काञ्ची उज्जैन तथा द्वारकाम द्वारकाका विशेष महत्त्व है। यह सौराष्ट्र (गुजरात)-क पश्चिमी समुद्रतटपर स्थित पवित्र तीर्थ-क्षेत्र ह। भगवान् श्रीकृष्णक जीवनसे सम्बन्ध होनेक कारण इस तीर्थ-क्षेत्रका महत्त्व वढ गया है। इसक विना चार धामकी यात्रा अपूर्ण रहती है।

महाभारतक अनुसार भगवान् श्रीकृष्णका जन्म मथुराम कस तथा अन्य असुराक सहारार्थ हुआ था। इस कार्यका पूरा करनेके बाद श्रीकृष्ण द्वारका चले गये थे। आगे चलकर यादवाने श्रीकृष्णक नेतृत्वमे द्वारकाको 'स्वर्णनगरी' बना दिया था। इस प्रकार द्वारका भगवान् श्रीकृष्णकी कर्म-भूमि है। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् प्राचीन द्वारकापुरी समुद्रम डूब गयी केवल द्वारकाधीशके विशाल मन्दिरको समुद्रने नहीं डुवाया। आज देश-विदेशसे अनेक लाग द्वारकाकी यात्रापर आते हैं और भगवान् द्वारकाधीशके दर्शन करते हैं। इस भगवल्लीला-क्षेत्रम अनेक सता एव भक्ताको भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलानुभूतियाँ हुई हैं। यहाँ हम दा

विशिष्ट भक्ताकी लीलानुभूतिका निरूपण करते हैं, जिनमे एक भक्त (विझात) द्वारकाके निकटवर्ती गाँवम निवास करते थे और दूसरे भक्त (पीपाजी) द्वारकाके दूरवर्ती प्रदेशम रहते थे।

(१)

भक्त विझातद्वारा लीलानुभूति

द्वारकासे आठ-दस कोसकी दूरीपर स्थित विसावाडा नामक गाँवमे आजसे लगभग दो सौ वर्ष-पूर्व विझात नामके एक राजपूत रहते थे। वे भगवान् द्वारकाधीशके अनन्य भक्त थे। पूर्वजासे मिली पर्याप्त जमीन-जायदादके कारण उन्ह आजीविकाकी कोई चिन्ता नहीं थी। द्वारकाकी यात्रापर आनवाले सतो और भक्तोको वे अपनी हवेलीम बुला लेते थे और उनकी सेवा-शुश्रूषा करके अपनेको कृतार्थ समझते थे। इस सेवा-परायणताके कारण भगवान् द्वारकाधीश एव उनके भक्तोंके परमसेवी विझातको विसावाडा और आस-पासके लोग 'विझात भगत' कहकर बुलान लगे।

विझात भगतने एक व्रत ले रखा था—वे भगवान् द्वारकाधीशके मन्दिरकी ध्वजाके दर्शनके बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। प्रात काल अपने नित्यकर्मसे निवृत्त होनके बाद वे अपनी घोडीपर सवार होकर द्वारकाकी ओर निकल पडते थे और भगवान् द्वारकाधीशकी ध्वजाके दर्शनकर घर लौट आते थे। मार्गमे इष्टदेवकी महिमाका गुणगान करते हुए दीन-दुखियाकी सेवा-सहायता भी करते थे।

एक दिन जब विझात भगत ध्वजाके दर्शन करके घरकी ओर लाट रहे थे, तब उन्हाने एक पगडीधारी वणिक्को झाडीक पीछे खाना खाते दखा।

गर्मीके दिन थे। प्याससे भगतजीका गला सूख रहा था इसलिय उन्हाने घोडीका झाडीकी ओर घुमा लिया ओर वणिक्के निकट जाकर पूछा—'सेठजी क्या द्वारकाकी यात्रापर निकल हे?'

अपन पीछस आयी आवाजको सुनकर सेठजीने गर्दन घुमायी ओर सामने राजसी वस्त्रमे सुसज्जित घोडेपर सवार व्यक्तिको दखकर विनम्र स्वरम उत्तर दिया—'सरकार! पारबदर जा रहा हूँ, रास्तेम भूख लगी इसलिये झाडीके पीछे बैठकर जलपान कर रहा हूँ। आइये, आप भी प्रसाद ग्रहण कीजिये—शुद्ध घीकी सुखडी और मसालेदार चिउडा है।'

'भूख नही है सेठजी! बस, थोडा पानी पिला द'—भगतजीने कहा।

'बिना कुछ खाये सबेरे-सबेरे पानी पियेगे तो पाचन-क्रिया खराब हो जायगी, अत सुखडीके एक-दो टुकडे और दो-चार चम्मच चिउडा खा लीजिये, फिर पानी पी लीजियेगा'—सेठजीने आग्रह किया।

वणिक्की बात मानकर भगतजीने थोडा प्रसाद ग्रहण किया और फिर पानी पीकर धन्यवादके स्वरमे कहा—'मेरे साथ विसावाडा चलिये। भोजन और विश्रामके बाद पोरबदर चले जाइयेगा।'

'नहीं सरकार! मुझे शामतक पोरबदर पहुँचना है। बडी लडकीके यहाँ कल सीमन्त है। चिट्ठी देरसे पहुँची, इसलिये गहने-कपडे लेकर तुरत घरसे निकल पडा'—सेठजीने स्थिति स्पष्ट की।

'मरे विचारम इतना जोखिम उठाकर अकेले जाना अच्छा नहीं है। आप तो जानते हैं कि यह काबाओका मुल्क है, जिन्हाने वीर अर्जुनको भी लूट लिया था।' भगतजीने चेतावनी दी—'मेरी बात मानकर विसावाडा चलिये। मैं शामतक आपको पोरबदर पहुँचा दूँगा।'

भगतजीकी बात मानकर सेठजी घोडीपर बैठ गय। अभी झाडीके बाहर ही निकले थे कि पीछेसे घाडाकी टाप सुनायी दी। भगतजीने कहा—'सेठजी, डाकुआके घोड़ [illegible] आ रहे हैं। आप गहनो-कपडाकी गठरी मुझ दकर [illegible] पगडडीसे विसावाडा पहुँच जाइये और [illegible] ठहरिये, मैं झाडियोको पार करत हुए आ [illegible]।'

भगतजीकी आज्ञाके अनुसार [illegible] और पगडडीपर दौडने लग। [illegible] मार्ग चुना किंतु व डाकुओंका [illegible] घोडीसे नीचे गिर पड। [illegible] भगवान् द्वारकाधीश [illegible] लिय डाकुओंके [illegible]

'छीन [illegible]' [illegible] अपन [illegible]

ज्यो ही डाकू गठरी छीननेके लिये आगे बढे, विज्ञातक वेशमे खडे द्वारकाधीश एकसे अनेक हो गये। प्रभुकी यह रूप-लीला देखकर डाकुओकी आँखे चकाचौंधसे भर गयी। वे अधे-से होकर इधर-उधर दौडने लगे और अन्तमे भयभीत होकर भाग गये।

विज्ञात भगत प्रभुकी यह अनुग्रह-लीला देखकर विस्मित हो गये और बार-बार मस्तक झुकाकर उनके प्रति अपना नमन समर्पित करने लगे।

(२)

भक्त पीपाजीद्वारा लीलानुभूति

एक बार सत पीपाजी अपनी सहचरी सीतादेवीके साथ द्वारका पधारे। भगवान् द्वारकाधीशकी मनोरम मूर्तिके दर्शन करनेके बाद वे समुद्रतटपर गये और एक नाविकसे बोले—

'हम सोनेकी द्वारका देखना चाहते है। तुम जानते हो वह कहाँ है?'

'हाँ नावमे बैठ जाइये।' नाविकने कहा।

दोनो हर्षित होकर नावमे बैठ गये। नाव जब समुद्रके मध्य पहुँची तब सतने नाविकसे पूछा—'कठे द्वारका? (द्वारका कहाँ है?)

नाविकने पानीमे हाथ डालकर जवाब दिया—'अठे द्वारका।' (द्वारका यहाँ है।)

—ये शब्द सुनते ही भक्त दम्पती भगवान् द्वारकाधीशका स्मरण करते हुए पानीमे कूद पडे।

अपने भक्तोका श्रद्धा अविचल बनाये रखनेके लिये भगवान् द्वारकाधीशने अपनी लीलासे पानीमे सोनेकी द्वारका निर्मित की। फिर रुक्मिणीजीको साथ लेकर वे भक्त दम्पतीका स्वागत करनेके लिये चल पडे और उन्हे सम्मानपूर्वक राजमहलमे ले आये तथा अपने स्वजनो-परिजनोका परिचय दिया। प्रभुके आतिथ्यका आनन्द लूटते हुए वे अपने घर-गृहस्थीको भी भूल गये।

एक दिन प्रभुने उन दोनोसे पूछा—'क्या आपको अपने घरकी याद नहीं आती?'

'प्रभु! हमारा सच्चा घर तो यही है। मोह-माया और मिट्टी-पत्थरसे बने कच्चे घरको हम क्या याद करे?' सत पीपाजीने उत्तर दिया।

'आपकी बात सही है, परतु आप तो द्वारकाकी यात्रापर निकले हे। यदि आप घर न लौटगे तो लोग समझेगे कि आप पानीमे डूब गये हैं इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप यथाशीघ्र घर लौट जायँ। मेरे भक्तोके सम्बन्धमे कोई ऐसी-वैसी बात करे, यह मुझसे सहन नहीं होता।'

'अच्छी बात है प्रभु! हम कल ही घर लौट जायँगे, परतु लोग कैसे मानेगे कि हमने सच्ची द्वारका देखी है?' पीपाजीने प्रश्न किया।

'इसके लिये मैं अपने शख-चक्रकी छाप आपकी दाहिनी भुजापर अकित कर देता हूँ।' इतना कहकर प्रभुने पीपाजीकी दाहिनी भुजापर अपने शख-चक्रकी छाप अकित कर दी और रुक्मिणीजीने सीतादेवीको अपनी साडी भेट की।

दूसरे दिन द्वारकाधीश और रुक्मिणीजी भक्त दम्पतीको समुद्रतटतक छोडने गये। वे समझ न पाये कि हम किस रास्तेसे गुजरकर समुद्रतटपर पहुँचे है। उनके कपडे कोरे थे किंतु हृदय तो भगवल्लीलाकी अनुभूतिसे पूर्णत सराबोर हो चुका था।

तस्मै नमोऽस्त्वथ सदाऽसकृदम्बिकाया नाथाय वायुतनयाभिधया स्मृताय।
य श्रीविदेहतनयादशयानसून्वोर्लब्धानुकम्पजनमुख्य उदारसेव ॥

(जा० च० १।६)

जो श्रीविदेहकुमारी और श्रीदशरथनन्दनजीके कृपापात्रोमे मुख्य हैं, जिनकी सेवा सकल मनोरथोको सिद्ध करनेवाली है तथा जो केङ्कर्य-लोभसे पवन-पुत्र श्रीहनुमान्-नामसे स्मरण किये जाते हैं उन अम्बिकापति भगवान् श्रीसदाशिवजीके लिये हमारा बारम्बार सर्वदा प्रणाम है।

भगवान्‌का लीलाधाम—भारत

(श्रीयज्ञनारायणजी त्रिपाठी)

पवित्रतम यह भारत देश भगवान् राम, कृष्ण और ऋषियाकी जन्मस्थली तथा तप स्थली रहा है। तीर्थोंकी मणिमालासे समन्वित इस देशमे काशी, वृन्दावन, गङ्गा एव यमुना आदि सभी मुक्तिके धाम हैं। इसीलिये शास्त्रोमे कहा गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका ॥

—ये सभी भगवान्‌के धाम हैं। इन धामोमे रहकर शुभकर्म करनेपर अवश्य ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इसी दृष्टिसे तीर्थ-विशेष काशीके सम्बन्धमे कहा गया है कि '**काशीमरणान्मुक्ति** ।' पुरुषोत्तमभगवान् श्रीरामने लका-विजयोपरान्त जब कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके निर्देशानुसार सभी तीर्थोंकी यात्राका क्रम बनाया तब उन्होने तीर्थोंकी महिमा बताते हुए कहा कि—'सभी तीर्थोमे उत्तम तीर्थ धर्मारण्य है। जिसे ब्रह्मा विष्णु और नीललोहित भगवान् महादेवने मिलकर स्थापित किया था।' इसी महिमाके कारण परिजनसहित प्रभु श्रीराम वहाँ पहुँचकर सुवर्णा नदीके दोनो ओर श्रीरामेश्वर तथा श्रीकामेश्वर शिवलिङ्गाकी स्थापना की। इस पवित्र तीर्थस्थलके नाम चारो युगोमे परिवर्तित हुए हैं, जैसे—

धर्मारण्य कृतयुगे त्रेताया सत्यमन्दिरम्।
द्वापरे वेदभवन कलौ मोहेरक स्मृतम्॥

अर्थात् सत्ययुगमे धर्मारण्य, त्रेताम सत्यमन्दिर द्वापरमे वेदभवन और कलियुगमे मोहेरक नाम प्रसिद्ध हुआ।

ईश्वरकी लीलामयी दृष्टिसे देखनेपर यह सार्वभौम देश बडा ही गौरवशाली रहा है। यहाँ त्रेताम श्रीरामने और द्वापरमे श्रीकृष्णने अवतरित होकर भिन्न-भिन्न लीलाएँ करते हुए दुष्टाका सहार किया। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मोहग्रस्त अर्जुनसे इसी आशयको स्पष्ट करते हुए कहा कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥

(गीता ४। ७)

पुत्र-शोक-सतप्त धृतराष्ट्रका समस्त क्रोध भीमपर ओर गाधारीका पाँचो पाण्डवोपर था। महाभारतका युद्ध समाप्त होनेपर जब विजयी पाण्डवाने धृतराष्ट्रका प्रणाम किया तब धृतराष्ट्रने खिन्न-मनसे सभीको गले लगाया लेकिन भीमको गले लगाते समय उनकी नीयत बदल गयी और वे भीमको अपनी भुजाओम दबाकर उसके शरीरको तोड देना चाहते थे। परतु मधुसूदन धृतराष्ट्रका आन्तरिक विचार ताड गये और भीमको झटका देकर दूर कर दिया तथा उसके स्थानपर भीमकी एक लौह-प्रतिमा धृतराष्ट्रकी बाँहोमे दे दी जिसे उन्होने भीम समझकर दोनों हाथोसे ताड डाला। जब गाधारी पाँचो पाण्डवाको शाप देनेके लिये उद्यत हुईं तो निखिल ब्रह्माण्डनायक माधवने लीलामयी कृपा करके सम्पूर्ण क्रोध अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया और शापको इस प्रकार सहर्ष स्वीकार किया कि 'यादव-समुदाय आपसमे लडकर ही नष्ट होगा।' गाधारीके इस शापको सुनकर सभी काँपने लगे। यद्यपि प्रभुपर शापका किचित्-मात्र भी प्रभाव पडना असम्भव है तथापि भक्ताकी रक्षाके लिये उन्होने लीला-सवरणके समय शापको निमित्त बनाया था। तारणहार प्रभु कृष्णने मुसकानके साथ उस शापको अङ्गीकार करते हुए कहा—'शुभे! मैं जानता हूँ ऐसा होनेवाला है वृष्णिकुलका सहारक मेरे अतिरिक्त ओर कोन हो सकता है?'

ऐसे लीलाधारीकी पावन तीर्थमयी भूमिपर कौन जन्म लेना नहीं चाहता है। फ्रासके एक सुप्रसिद्ध अग्रेज विद्वान् जव इस देशमे आये तो यहाँके हिन्दूधर्मसे इतने प्रभावित हुए कि आजीवन यहीं रहकर इस धर्मके समक्ष नतमस्तक होकर भगवान्‌की भक्तिम लग गये। एक और अग्रेज इजीनियर भारतम बाँध बनाने-हेतु आये थे, परतु वे भी प्रभु-लीलासे प्रभावित हाकर सन्यासी बन गये। उन्हाने ता यहाँतक कहा कि—'आह! मे भारत-भूमिपर क्यो नहीं पैदा हुआ क्या मैंने इतना समय व्यर्थ गँवाया?'

साधारण मानवकी तो बात ही क्या? इस अखण्ड ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुकी लीला-भूमिपर देवलाकवासी देवता भी जन्म ग्रहण करनेकी कामना करते ह—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात्॥

(विष्णुपुराण २। ३। २४)

अत इस पवित्रतम तीर्थ-भूमिमे जन्म लकर ईश्वरकी भक्तिक अतिरिक्त दूसरे कार्योंम एक भी क्षण नष्ट करना उचित नहीं है, क्याकि मनुष्य-शरीर तो बड भाग्यस मिलता है। प्रभु रामके अनन्य भक्त श्रीतुलसीदासजीने सही कहा ह—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथन्हि गावा॥

(रा० च० मा० ७। ४३। ७)

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलास्थलीका महत्त्व

[श्रीवृदावन एक पलक लौं रहिये]

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलास्थली श्रीवृन्दावन-धाम मुझे बहुत लुभाता है। बार-बार जानेको मन करता है, कुछ गिनी-चुनी जगह बची हैं जहाँ कुज हैं बालू हैं और घनश्यामक प्रतियोगी मोर हैं तथा बालूपर झरी हुई पत्तियो आदिको साफ करना ही कुजविहारीकी सेवा है कभी-कभी व्रजभाषाके पदाके गायनकी गूँज है। श्रीवृन्दावन-विहारीकी महिमा अपूर्व है, पास बुलाते हैं ओर अन्तर्हित हो जात हैं खिझाते हैं और फिर अपनेसे दूर कर देते हैं दूर करके एक और हूक भर देते हैं, ऐसे 'निपट निर्मोही'-से क्या वास्ता रखे। ऐसे ही व बार-बार करते हैं, बार-बार तोडते हैं और सब कुछ छीनते रहते हैं। नाते-रिश्ते, माह-छाह, मद-मात्सर्य, काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष—सब छीकास उतारकर ढरका देते है, उसमसे केवल ऊपरकी मलाई उतार लेते हें। एकदम नि स्व कर देते हैं। इसके बाद कोई चारा नहीं रहता सिवाय उनक पास जानके। परतु जाना क्या इतना आसान है? कितनी तरहक सशयो और नकली आकर्पणाके आवरण डाल देते हैं जिससे श्रीवृन्दावनकी राह दीखती ही नहीं। जो लोग श्रीवृन्दावनम विराजते है, बस जात हैं नित्य भजन गाते हें, सुनते हें, श्रीबाँकेविहारीजीकी झाँकी प्राप्त करते है, उनको भी कभी-कभी राह भूल जाती है। वे पीठामे, गद्दियाम, आश्रमामे हरि-इच्छासे उलझ जाते हें। श्रावृन्दावनविहारीने उन्ह इन्हीं खिलौनाम अटका दिया हैं। उनक श्रीवृन्दावन-प्रवेशका श्लोक मैं प्रतिदिन कई बार पढता हूँ कि—

> वर्हापीड नटवरवपु कर्णयो कर्णिकार
> विभ्रद् वास कनककपिश वैजयन्तीं च मालाम्।
> रन्ध्रान् वणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
> र्वृन्दारण्य स्वपदरमण प्राविशद् गीतकीर्ति.॥

एक आर अभिनयकुशल नटकी तरह नाना प्रकारकी भूमिकाएँ ग्रहण करते हुए कितने विलग दीखते हैं, दूसरी आर वरकी तरह—दूल्हका तरह कितने पास कितने अपन दीखते हैं। क्या अद्भुत माहिनी शोभा है, मानो मोर-मुकुट सिरपर विश्वके साता रगामे उनके स्निग्ध-श्यामल केशपाश ढक गये हो, कानोमे कनेरके फूल खुँसे हुए, सुनहले-पीले उत्तरीय और अधोवस्त्रकी दमकम नीलकमल-सी दहकी आभा खिलती हुई, गलेमे वनमाला पडी हुई, बाँसकी बाँसुरीके छिद्रोको अधरामृतका लाभ मिलता हुआ ग्वाल-बालोके साथ श्रीवृन्दावनमे उनका प्रवेश होता है,जैसे रगमचपर नेपथ्यसे बडे नाटकके नायकका प्रवेश हो। पर यह नायक अद्भुत है, श्रीवृन्दावनमे विहरणके लिये नगे पैर आता है। उसके और श्रीवृन्दावनकी भूमिके बीचमे कोई अन्तराल नहीं है, बिना उस पैरके पड भूमि तृणाकुरासे पुलकित कैसे होगी, बिना तृणाकुराके गउआकी तृप्ति कैसे होगी, बिना गउआकी तृप्तिके गापाल कैसे हागे और बिना गोपाल हुए गोपीजनवल्लभ कैसे हागे? बाँसुरी बजाकर जादू फेर देगे—श्रीवृन्दावनपर और श्रीवृन्दावनवासियोपर तथा फिर स्वय गीत बनकर छा जायँगे कण्ठाम।

श्रीवृन्दावनम वे क्यो बार-बार लुका-छिपी करते हैं, उनसे श्रीराधाका रूप सँभलता नहीं इसलिये या उनसे सहज जीवन जीनेवालेका सहज दुरावहीन प्यार जिसम कोई अधिकार नहीं, बस अधिकारहीनताका दर्द है हमारे-उनके बीच परस्पर क्या हो सकता है, वे ठहरे परब्रह्म हम ठहरीं मूढमति ग्वालिन। अपने भीतर भरा नहीं जाता। इतना रस-सम्भार सँभालना परब्रह्मके वूतेका नहीं। श्रीवृन्दावन धरतीपर है सही पर धरतीसे कुछ अलग है। वह धरती होनेका भाव है उसी प्रकार जैसे श्रीराधा शरीरमात्र नहीं। वह भी है। वह परम प्रीतमकी प्रियाजू होनेका भाव है। एसे वृन्दावनम यात्रा उस भावको ग्रहण करनेवाले मनस हाती है।

अपनी हालको श्रीवृन्दावन-यात्राकी वात करूँ। बडी कडी धूप थी, अभा आँखाके सामने हर-भर बाग आर ताल ता नहीं आ रह थे, पर धूपकी विलेया जरूर लाटने लगी थी। ठीक पाँच रज 'गभारा' म विल्वमगल-गाष्ठा शुरू

हुई। उद्घाटनके बाद दो पद हवेली-सगीतकी शैलीमे गाये गये। पहला पद छित स्वामीका था—

'ए हो ब्रजराज अचरा पसारि मग्गौ ब्रज माहिं बसिवो।

दूसरा था सूरदासका—

श्रीवृंदावन एक पलक लौं रहिये।

दूसरा पद बहुत मार्मिक लगा। में तो अधिक दर रुक न सका, श्रीबाँकेविहारीक दर्शनके लिये चला गया। ग्रीष्मम फूलासे उनका शृगार होता है, फिर अक्षयतृतीया थी बेला और गुलाबका फूल-बँगला बना था। पूरा मन्दिर महँ-महँ महँक रहा था। ठाकुर इन फूलाके बीच बाँके खडे थे। मेरी आँखोके सामने स्वामी हरिदासका प्रसग झूम गया। जीव गोस्वामीने उनसे कहा—सबक पास ठाकुर हैं आपक पास नहीं। कहा जाता है स्वामी हरिदास ठाकुर-ठकुरानीकी स्तुति करने लगे और दोनो उनकी दोना हथेलियोपर आ विराज, थिरकने लगे, साथ ही स्वामीजी भी थिरकने लगे।

इतनेमे दोना विग्रह मिलकर एक हो गय। वही बाँकेविहारी हुए। शिवके अर्धनारीश्वर-रूपमे तो हर-गौरी अलग-अलग बाय-दाय रहते हैं, पर बाँकेविहारीकी छवि एसी है कि कभी उसमसे राधा झाँकती दिखायी पडती हैं आर कभी माधव। इस मूर्तिम सही अर्थम *'राधा भेल मधाई'* -की ही झाँकी हे अन्यथा अकेले माधवमे एसा सौभाग्य-गुण कहाँ होता।

शाम कुछ गहरी हुई, वृन्दावनसे चला और पदकी पक्तियाकी फिर सुधि आयी। श्रीवृन्दावनमें एक पल रहनेको मिल जाय तो कितना बडा भाग्य है। एक पल कम नहीं होता, पर पल-जैसा पल हो पलक-जैसी पलक हो, झपे नहीं, एकटक वृन्दावनकी तरफ उत्सुक हो जाय उदग्र हो जाय इसी बेलाम तो श्यामसुन्दर लौटते हैं। गाय आगे, बछडे गायासे भी आगे आर उनके खुरसे मथी जाती धूलिसे धूसरित श्रमसीकरसे झलकित श्यामसुन्दर पीछे आ रहे हैं। दिनभरकी उपासी आँखाको 'रूपपारनौ' (पारण) करायगे व्रत सफल होगा—*'बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो।'* राधा किसी कानेमे अधछिपी उस रूपपर अटकी हुई हैं एक पल श्यामसुन्दर दिख जायँ फिर क्या श्यामसुन्दर दीखते भी हैं आर नहीं भी दीखते हैं। कभी भी पूरे नहीं दीखत। आँखे जहाँ फँसती हैं फँसी रह जाती हैं। एकान्तम तो और नहीं देख पातीं आँख क्योकि तब राम-रोम आँख बन जाते हे, आँख कान बन जाती हैं तथा कान बन जाते हे मुरलीकी तान। उन्ह देखते-देखते युग एक पल हो जाते ह, उन्ह जाहते-जोहते पल युग बन जाते हैं। एक पल श्रीवृन्दावनम रहना बडा सुख है और उसस बडा दु ख भी। परतु इस दु खम एक आस्वाद है कि दु खी हानेका मन करता हे। काश, हम भी वैसे दु खी हो सकते कि दु खके अतिशयम श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा तज देते, श्रीकृष्णके गोलोकधाम जानेकी इच्छा छोड देते, बस यही मनाते रहते, यह चाह यह दारुण चाह बनी रह। चाह रहती है तो सभी नर्म गान बन जाते हैं पूरा जीवन श्रीकृष्णके हाथो लुटनेके लिय दही बन जाता है।

कई बार एसा भाव उठा हे, फिर कुछ बाधाएँ घिर आयी ह। बुद्धि कहती हे कि श्रीवृन्दावन अब कहाँ गोविन्द अब कहाँ श्रीवृन्दावनम वशीकी तान अब कहाँ, कदम्ब-तमाल-करीलके सघन कुज अब कहाँ ? बडे शानदार भवन हैं, वे ही आश्रम हैं, हर स्थानपर अधिकारकी लडाई है—वही वशीवादन हे देवदूत होनेकी भयकर प्रतिस्पर्धा है—वही परम पुरुषार्थ की चाह हे। यहाँ एक पलभी रहना कितना असह्य लगता है। कभी-कभी कोई उत्तर नहीं मिलता। स्व० सत्यनारायण कविरत्नका विलाप याद आता है कि 'अब ब्रज ब्रज नहीं रहा, वह अब यात्रा नहीं रही, विचरण नहीं रहा, वह अब गद्दीका चिपकाव हो गया हे गद्दीक वैभवका स्थायीभाव हो गया है।'

दूसरी आर श्रीवृन्दावनके साथ जुडी जनभावना कहती है—यह सब झूठ, लाला अभी भी यहीं हैं लाली ही श्रीवृन्दावनकी धरती बन गयी हे लाला इस धरतीको छाडकर जायँगे कहाँ ? अक्रूरक साथ जा गय व विष्णुके वैभवशाली चतुर्भुज-रूप थे। वह किशार चपल बालक ता श्रीवृन्दावनम ही रह गया। उसे श्रीवृन्दावनक कण-कणम दखनेकी कोशिश करो।

मुझ श्रीवृन्दावनसे लौटत समय बराबर श्रीकृष्णक ये चाहक, श्रीराधाके य चरणचचराक याद आत हैं और उस समयका एक-एक पल श्रीवृन्दावनकी रज बनकर रसस उमड जाता ह। पर हाय र प्रपच आर हाय र लालाकी छलनाक एस पल जा आसकी तरह ढुलक जात हैं काली डामरकी सडकपर फिर ता लगता ह कि श्रीवृन्दावनम एक पलक लौ भी रहना हुआ नहीं।

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

तव कथामृत तप्तजीवन
कविभिरीडित कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गल श्रीमदातत
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

प्रभो! तुम्हारी लीला-कथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगाके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बडे-बडे ज्ञानी महात्माओ—भक्त कवियाने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमे भूलोकम वे ही सबसे बडे दाता है।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'भगवल्लीला-अङ्क' पाठकोकी सेवामे प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले कई वर्षोंसे सुविज्ञ जनाका यह आग्रह था कि भगवत्-लीलासे सम्बन्धित साहित्य 'कल्याण'के विशेषाङ्क-रूपम प्रकाशित किया जाय। मदनमोहन व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी असीम अनुकम्पासे इस वर्ष यह सुअवसर प्राप्त हुआ।

भगवान्‌के परम दिव्य नाम, स्वरूप, गुण और लीला-चरित इतने मधुर हैं कि उनके श्रवण-चिन्तन और मननसे व्यक्तिका मन स्वाभाविक रूपसे प्रभुमे आकृष्ट हो जाता है। इसलिये हमारे आर्षग्रन्थाके वाङ्मय—साहित्यमे भगवान्‌के लीला-चरित्रोका ही मुख्यरूपसे वर्णन हुआ है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि भगवान् और भगवान्‌की लीलामे परस्पर भेद है क्या? पर वास्तवम ऐसा नहीं है। जैसे समुद्रके जल एव उसके तरगमे कोई भेद नहीं होता दोनो एक हैं और अभिन्न हैं वैसे ही प्रभु और उनकी लीला भी परस्पर अभिन्न हैं। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं, उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय मनोहर-मूर्ति भावुक भक्ताके लिये जैसी मनमोहिनी है, वैसी ही उनकी लीलाएँ भी मनमोहिनी हैं। अर्थात् भगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य हैं तो भगवान्‌की लीलाएँ भी सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप और नित्य हैं। इसीलिये बडे-बडे योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा सिद्ध जन भी प्रभुके मधुर-मनोहर लीला-चरित और सगुण-साकार-स्वरूप-माधुरीम मोहित हो जाते हैं तथा उनके लीला-चरित-गुणाका चिन्तन करने लगते हैं। भगवान् शकराचार्यने लिखा—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रह कृत्वा त भजन्ते'

अर्थात् जिनकी इस भवाटवीसे मुक्ति हा गयी—ऐसे मुक्तजन भी लीलापूर्वक देह धारणकर भगवान्‌के लीला-चरितका गुण-गान किया करत हैं। इसीलिये आप्तकाम परम निष्काम, आत्माराम श्रीशुकदेवजी महाराजने नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त होते हुए भी महासहिताका अध्ययन किया और श्रीमद्भागवतके रूपम भगवान्‌के सगुण-साकार-स्वरूपक लीलाआका अभिव्यञ्जन भी किया। यह बात सनकादि ऋषियोके लिये भी कही जाती है।

जब शुद्ध ब्रह्म अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे कोटि-काम-कमनीय मनोहर सगुण-साकार-मूर्तिम प्रादुर्भूत होते हैं, उस समय तत्त्वज्ञको भी उनका वह दिव्य दर्शन निर्विशेष ब्रह्म-दर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दकी अनुभूति कराता है। जिस प्रकार सूर्यको दूरबीन आदि यन्त्राके द्वारा देखनेपर उसमे जो विचित्रता प्रतीत होती है, वह केवल नेत्रासे देखनेपर प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार लीला-शक्तिसे उपहित सगुण ब्रह्मदर्शनमे जो आनन्दानुभव होता है, वह शुद्ध-बुद्ध परमेश्वरके साक्षात्कारम भी नहीं होता। इसी कारण सगुण-साकार सच्चिदानन्द भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन होनेपर तत्त्वज्ञ-शिरोमणि विदेहराज जनकने कहा था—

सहज बिरागरूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चद चकोरा॥

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

महाराज जनकके उस बरबस ब्रह्मसुख-त्याग और रामदर्शनानुरागमे क्या कारण था? केवल यही कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूर्यको अपने नेत्रासे ही देखते थे, किंतु इस समय वे उसकी लीलाशक्तिरूप दूरबीन-यन्त्रसे उपहित स्वरूपका दर्शन कर रहे थे। कवल नेत्रसे दीखनेवाले आदित्यनारायणकी अपेक्षा दूरवीक्षणसे युक्त आदित्य-दर्शनमे विशेषता है।

वस्तुत तत्त्वज्ञ कवल निवृत्तिक अन्त करणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके

योगसे आविर्भूत हुए भगवान्के सगुण-साकार-स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होता है।

इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ पुरुषोंको भक्तियोगके द्वारा अपने सौन्दर्य-माधुर्यका रसास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भगवान्के अवतारका एक मुख्य प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना भी है। इस प्रकार प्रभु—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—के अनुसार साधुजनोंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंके विनाशके लिये तथा धर्म-संस्थापनके लिये तो अवतार ग्रहण करते ही हैं, इसके साथ ही इनके अवतरित होनेका एक प्रयोजन यह भी है कि वे जिज्ञासु-साधकोंको भी अपना मधुरतम भक्तियोग प्रदानकर अनुगृहीत करें।

कुछ विज्ञजनोंका यह भी मत है कि भगवान् यद्यपि आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम है, अतएव उनके भीतर किसी प्रकारकी कामनाका होना तो सम्भव ही नहीं, फिर भी वे अपने आनन्द-विलासके लिये लीला करते हैं जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवत्-लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको परम प्रफुल्लित करता है। परमात्मप्रभु अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं—'एकोऽहं बहु स्याम्।' श्रीकृष्णावतारके बाल-लीलाके संदर्भमें बालकृष्ण प्रभु मणिमय स्तम्भमें अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आह्लादित होते हैं। उस प्रतिबिम्बको माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं, माखन हाथसे गिर पड़ता है, तब रोने भी लगते हैं। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती हैं। इस प्रकारकी प्रभु-लीलाएँ अनन्त हैं—

हरि अनंत हरि कथा अनंता।

प्रस्तुत अङ्कमें आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपोंका उनके लौकिक एवं अलौकिक गुणोंका श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाओंके साथ-साथ पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी परम मनोहर लीलाओं—लीला-रहस्यों तथा उन अवतारोंके ऐकान्तिक भक्तों सेवकों, उपासकों एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका यथास्थान चित्रण करते हुए प्रभु-लीलाका दर्शन, साथ ही लीला-रहस्योंका उद्घाटन और लीला-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार-प्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका समायोजन करनेका प्रयास किया गया है। जिससे सर्वसाधारणको परमात्मप्रभुकी लीलाओंका सम्यक् दर्शन-चिन्तन एवं मनन हो सके तथा संसारके लोगोंमें एकाग्रता, अनन्यता और सद्वृत्तियोंका उदय भी हो।

'भगवल्लीला-अङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। इस वर्ष हमने लेखक महानुभावोंसे सामान्य लेख न भेजकर विशेष लेखोंको भेजनेका अनुरोध किया था। हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। यथासाध्य 'विशेषाङ्क' में उनके प्रकाशनका भी प्रयास किया गया। परंतु स्थानाभावके कारण सम्पूर्ण लेखोंको यथास्थितिमें प्रकाशित करना कथमपि सम्भव नहीं था। इस कारण कुछ लेखोंको संक्षिप्त भी करना पड़ा तथा कुछ लेख प्रकाशित नहीं किये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यन्त खेद है। यद्यपि बचे हुए लेखोंमेंसे कुछ लेखोंको आगे साधारण अङ्कोंमें भी यथासाध्य प्रकाशित करनेका प्रयास करेंगे फिर भी जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके उन लेखक महानुभावोंसे हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं, कृपया हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर अन्यथा न समझें तथा 'कल्याण' पर अपनी कृपामयी दृष्टि बनाये रखें। उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर भगवान्की लीलाओंसे सम्बन्धित सामग्री तैयार करके यहाँ प्रेषित की है।

इस वर्ष 'भगवल्लीला-अङ्क' के सामग्रीकी अधिकताके कारण इस अङ्कके साथ दो मासके 'परिशिष्टाङ्क' निकाले जा रहे हैं। जिसमें 'फरवरी' मासका एक परिशिष्टाङ्क तो विशेषाङ्कके साथ ही समायोजित है तथा 'मार्च' मासका दूसरा परिशिष्टाङ्क भी साथ ही प्रेषित किया जा रहा है।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, साधक-भक्तों आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने 'विशेषाङ्क' की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। भगवान्की लीला-चरित्रों एवं भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं क्योंकि उन्हींके

भक्तिभावपूर्ण एव उच्च-विचारपूर्ण लेखासे 'कल्याण'को सदा शक्ति-स्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेह-भरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपने त्रुटियो तथा व्यवहार-दोषके लिये सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'भगवल्लीला-अङ्क' के सम्पादनमे जिन भक्तो, साधको, उपासका, सतास और विद्वान् लेखकोसे हमे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हे हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते।

सर्वप्रथम मैं सर्वभारती 'काशिराज-न्यास' के अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिहजीके प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होने भारतवर्षमे परम्परासे सम्पन्न होनेवाली रामलीलाओ तथा भारतसे बाहर विदेशाम होनेवाली रामलीलाओसे सम्बन्धित लेख 'विशेषाङ्क'-के लिये भिजवानेका कष्ट किया। तदनन्तर मैं वाराणसीके समादरणीय प० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो नि स्वार्थ-भावसे 'कल्याण' को निरन्तर अपनी सेवाएँ समर्पित करते रहते हैं। 'गोधन'के सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके भी हम आभारी हैं, जिन्होने इस 'विशेषाङ्क'के लिये कई विशिष्ट महानुभावोसे सामग्री एकत्र करके भेजनेका कष्ट किया तथा अपने पूज्य पिता श्रीरामशरणदासजीके सग्रहालयसे कई दुर्लभ सामग्रियाको उपलब्ध कराया।

इस अङ्कके सम्पादनमे अपने सम्पादकीय विभागके वयोवृद्ध विद्वान् प० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एव अन्य महानुभावोने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन सशोधन एव चित्र-निर्माण आदिमे जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है वे सभी हमारे अपने हैं उन्हे धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमे 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है अपना कार्य भगवान् स्वय करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार 'भगवल्लीला-अङ्क'के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आनन्दकन्द परमात्मप्रभुकी मधुर-मनोहर लीलाओका चिन्तन-मनन एव स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, जिसके फलस्वरूप भगवत्कृपासे विशेष आनन्दकी अनुभूति प्राप्त हुई। हमे आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकाका भी इस पवित्र लीला-कथा-रसपानका सुअवसर प्राप्त होगा तथा वे भक्ति-भाव-समन्वित आनन्दका अनुभव करेगे।

अन्तमे हम अपनी त्रुटियोके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवतकी कुछ पक्तियाँ निवेदन करते हैं, जिन्हे श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षित्‌को लीला-कथाओके निष्कर्षरूपमे सुनाया था। इसे पाठकोको ध्यानपूर्वक पढकर आत्मसात् करनेका प्रयास अवश्य करना चाहिये—

हे कुरुश्रेष्ठ! विश्व-विधाता भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियो और शक्तियाके आश्रय हैं। जा कुछ मैंने सक्षेपमे कहा है, वह सब उन्हींकी लीला-कथा है। भगवान्‌की लीलाओका पूर्ण वर्णन तो स्वय ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। [अत] जो लोग अत्यन्त दुस्तर ससार-सागरसे पार जाना चाहते है अथवा जो लोग अनेक प्रकारके दु ख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके हो अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं—

एता कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्न ।
लीलाकथास्ते कथिता समासत
कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीश ॥
ससारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्य प्लवो भगवत पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुसो भवेद् विविधदु खदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ३९-४०)

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरि ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

(दिसम्बर १९९७)

कोड		मूल्य		डाकखर्च
श्रीमद्भगवद्गीता				
	गीता तत्त्व विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)			
1	बृहदाकार	८० ००	■	१९ ००
2	ग्रन्थाकार	४० ०	■	९ ००
3	साधारण संस्करण	३० ००	■	८ ०
457	अँग्रेजी अनुवाद	३५ ००	■	८.००
800	तमिल	५० ०	■	१३ ०
	गीता साधक-संजीवनी— (टीकाकार-स्वामी श्रीरामसुखदासजी)			
5	बृहदाकार	१०० ००	■	२२ ००
6	ग्रन्थाकार	६० ००	■	१५ ००
7	मराठी अनुवाद	७० ०	■	१० ०
467	गुजराती अनुवाद	७५ ००	■	१५.००
458	अँग्रेजी अनुवाद	४५.००	■	८ ००
763	बँगला अनुवाद	७० ००	■	१६ ०
788	परिशिष्ट (७वाँ अध्याय)	३ ००	■	१ ००
8	गीता-दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजी)	२५ ०	■	५.००
504	(मराठी अनुवाद) सजिल्द	२५ ००	■	५ ००
556	(बँगला अनुवाद) सजिल्द	३५ ००	■	५ ०
468	(गुजराती अनुवाद) सजिल्द	२५ ००	■	५ ०
784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ दीपिका	१०० ०	■	१५ ००
748	ज्ञानेश्वरी मूल गुटका	२० ००	■	४ ०
10	गीता शांकर भाष्य—	४० ०	■	६ ००
581	गीता रामानुज भाष्य—	३५ ००	■	५ ००
11	गीता चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजीपोद्दार)	२०		३ ००
	गीता—मूल पदच्छेद, अन्वय भाषा-टीका			
17	सचित्र सजिल्द	१२ ०	■	४ ००
12	(गुजराती)	२ ००	■	४ ००
13	(बँगला)	१५ ०	■	४ ००
14	(मराठी)	२० ००	■	४ ०
726	(कन्नड)	१८	■	५ ००
772	(तेलगू)	१५ ००	■	३ ०
	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित			
16	सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें	१५ ००	■	३ ००
15	(मराठी अनुवाद)	२० ००		४ ००
18	भाषा टीका टिप्पणी-प्रधान विषय मोटा टाइप	९ ००	■	२ ००
771	(तेलगू)	९ ००	■	३ ०
502	मोटे अक्षर, सजिल्द	१३ ००	■	३ ००
718	तात्पर्यके साथ (कन्नड)	८ ००	■	२ ०
743	(तमिल)	१३ ००	■	३ ००
815	श्लोकार्थ सहित(उड़िया)	१३ ०	■	२ ०
19	गीता—केवल भाषा	६ ००	■	१ ००
750	पाकेट साइज	३ ००		१ ०
663	केवल भाषा (तेलगू)	५ ०	■	१ ००
795	(तमिल)	५ ००		१ ०
700	गीता छोटी साइज मूल	१ ०	■	१ ००
20	भाषा टीका पाकेट साइज	४ ००		१
633	(सजिल्द)	७	■	२
455	(अँग्रेजी)	४ ००	■	१ ००
534	(सजिल्द)	७ ०	■	१ ००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
496	गीता—भाषा टीका पाकेट साइज (बँगला)	४ ००	■	१ ०
714	(असमिया)	५ ०	■	२ ००
21	श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम भीष्मस्तवराज अनुस्मृति गजेन्द्रमोक्ष	१० ०	■	२ ०
22	गीता—मूल मोटे अक्षरोंवाली	५ ००		२ ००
538	सजिल्द	६ ००	■	४ ००
23	गीता—मूल विष्णुसहस्रनाम सहित	२ ०		१ ०
661	पाकेट साइज (कन्नड़)	४ ०	■	१ ०
662	(तेलगू)	३ ०	■	१ ००
793	(तमिल)	४ ०		२ ००
739	(मलयालम)	३ ०	■	१ ०
541	(उड़िया)	२ ०	■	१ ००
488	नित्यस्तुति —गीता मूल विष्णुसहस्रनाम सहित	४ ०		१ ००
24	गीता—मूल(माचिस आकार)	२ ००	■	१ ००
566	गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता	० १५	■	१ ००
	(कम से कम ५०० प्रति एक साथ भेजी जा सकती हैं।)			
288	गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन—	२ ०		१ ००
289	गीता निबन्धावली—	२ ५०	▲	१ ००
297	गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप—	० ७५	▲	१ ००
	गीता माधुर्य—स्वामी रामसुखदासजीद्वारा			
388	(हिन्दी)	८ ०	▲	१ ००
389	(तमिल)	१० ००	■	२ ००
390	(कन्नड़)	४ ५०	▲	२ ००
391	(मराठी)	८ ०	▲	१ ००
392	(गुजराती)	५ ००	▲	१ ०
393	(उर्दू)	८ ००	▲	२ ०
394	(नेपाली)	५		२ ००
395	(बँगला)	६ ०	▲	१ ००
624	(असमिया)	६ ००	▲	१ ०
754	(उड़िया)	६ ०		१ ००
487	(अँग्रेजी)	८		१ ००
679	(संस्कृत)	६ ०	▲	२ ००
470	गीता रोमन गीता मूल श्लोक एवं अँग्रेजी अनुवाद	१० ००	■	२ ०
503	गीता दैनन्दिनी (1998)—			
	पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर	२५. ०		४ ०
615	पाकेट साइज	१२ ००	■	३ ०
506	पाकेट साइज (साधारण)	१०		३ ०
464	गीता-ज्ञान प्रवेशिका	१० ०		२ ००
508	गीता सुधा तरंगिनी-गीताका पद्यानुवाद	४ ००	■	१ ००
रामायण				
	श्रीरामचरितमानस बृहदाकार, मोटा टाइप सजिल्द			
80	आकर्षक आवरण राजसंस्करण	१८० ००	■	१९ ००
81	सटीक मोटा टाइप आकर्षक आवरण	९५ ०	■	१ ०
697	साधारण	७५.	■	१० ०
82	मझला साइज सजिल्द	४५ ००		५. ०
456	अँग्रेजी अनुवाद सहित	७ ०	■	९ ००
786	अँग्रेजी (मझला साइज)	५०	■	६ ०
83	मूलपाठ मोटे अक्षरोंमें सजिल्द	५० ००	■	६ ०
84	मूल मझला साइज	२५ ०	■	४ ०

- ■ कम से कम रु० ५०० की पुस्तकें एक साथ लेने पर ▲ चिह्न वाली पुस्तकोंपर ३०% एवं ■ चिह्नवाली पुस्तकों पर १५ % डिस्काउन्ट दिया जाता है। १५०० रु० की मूल्यसे अधिककी पुस्तकें एक साथ चलान करनेपर सामान्य पैकिंग खर्च नहीं लिया जाता तथा रेलभाड़ा बाद दिया जाता है।
- ■ जिन पुस्तकोंका मूल्य अंकित नहीं है वे अभी उपलब्ध नहीं हैं। बादमें मिल सकती हैं।
- ■ पुस्तकोंके मूल्योंमें परिवर्तन होनेपर पुस्तकपर छपा मूल्य ही देय होगा।
- ■ पुस्तकें डाकसे मँगवानेपर ५ % पैकिंग खर्च डाकखर्च तथा १० रु० प्रति पैकेट रजिस्ट्री खर्च अतिरिक्त देय है।
- ■ पूरी जानकारी हेतु सूचीपत्र मुफ्त मँगवायें। विदेशोंमें निर्यातके लिए मूल्यका अलग सूचीपत्र उपलब्ध है।
- ■ जो पुस्तकें अन्य भाषाओंमें छपी हैं उनका विवरण भाषा क्रममें भी दिया गया है।

कोड		मूल्य	डाकखर्च
85	श्रीरामचरितमानस मूल गुटका	१७ ००	■ २ ००
790	श्रीरामचरितमानस केवल भाषा	५५ ००	■ ८ ०
799	गुजराती ग्रन्थाकार	८५ ०	■ ९ ००
785	गुजराती (मझला)	४५ ०	■ ५
	श्रीरामचरितमानस-अलग-अलग काण्ड		
94	बालकाण्ड-सटीक	१२ ००	२ ०
95	अयोध्याकाण्ड	११ ००	■ २
98	सुन्दरकाण्ड	३ ००	■ १ ००
101	लकाकाण्ड	६ ०	■ २ ०
102	उत्तरकाण्ड	६ ००	■ २ ००
141	अरण्य किष्किन्धा एव सुन्दरकाण्ड सटीक	६ ०	२ ००
99	सुन्दरकाण्ड-मूल गुटका	१ ५०	■ १ ०
100	सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप	३ ०	■ १ ००
	मानसपीयूष-		
86	टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)		
75	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक		
76	दो खण्डोंमें सेट	१५	■ १६
77	केवल भाषा	१००	■ १ ०
583	(मूलमात्रम्)	६५ ००	११
78	सुन्दरकाण्ड मूलमात्रम्	१	३ ०
452			
453	(अँग्रेजी अनुवादसहित सेट तीनों खण्डोंमें)	२५	■ २५ ०
454			
74	अध्यात्मरामायण—सटीक सजिल्द	४० ००	■ ५
223	मूल रामायण	१ ०	■ १ ०
	अन्य तुलसीकृत साहित्य		
105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	१७ ०	■ २ ०
106	गीतावली—	१७ ०	■ २
107	दोहावली—	८ ००	२ ०
108	कवितावली—	९ ०	■ २ ०
109	रामाज्ञाप्रश्न—	४ ०	१ ०
110	श्रीकृष्णगीतावली—	३ ०	■ १ ०
111	जानकीमगल—	२	■ १ ०
112	हनुमानबाहुक—	१ ५०	■ १ ०
113	पार्वतीमगल—	२ ०	■ १ ०
114	वैराग्यसदीपनी—	१	१
115	बरवै रामायण—	१	■ १ ०
	सूर साहित्य		
555	श्रीकृष्ण माधुरी	१२ ०	३
61	सूर विनय पत्रिका	१२	३
62	श्रीकृष्ण बाल माधुरी	१३ ०	३
735	सूर राम चरितावली	११	■ ३ ००
547	विरह पदावली	१ ०	३
	पुराण उपनिषद् आदि		
	श्रीमद्भागवत सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका		
28	भाषानुवाद सचित्र सजिल्द	९ ०	■ ९
25	शुकसुधासागर बृहदाकार, बड़े टाइपमें	२ ००	■ २५
26	श्रीमद्भागवत महापुराण—सटीक—		
27	दो खण्डोमें सेट	१६	२
564 565	अंग्रेजी सेट	१५० ००	■ २
29	मूल मोटा टाइप		७ ०
124	मूल मझला	३५	■ ६
	श्रीप्रेम सुधासागर—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका		
30	भाषानुवाद, सचित्र सजिल्द	३	५ ०
31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र सजिल्द	१६	■ ३
	महाभारत—हिन्दी टीका सहित सजिल्द सचित्र		
728	[छ खण्डोंमें] सेट	७२ ०	■ ६५ ०
38	महाभारत खिलभाग हरिवंशपुराण—हिन्दी टीका	१	११
637	जैमिनीय अश्वमेध पर्व	५०	७ ००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा सचित्र		
39 511	सजिल्द सेट (दो खण्डोमें)	१५० ००	■ १७ ००
44	पद्मपुराण-सचित्र सजिल्द	८५	८
613	शिवपुराण बड़ा टाइप	७० ०	■ ८ ०
789	शिवपुराण मोटा टाइप	८० ०	■ ९ ०
539	मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क	७५	■ ९ ००
46	श्रीमद्देवीभागवत केवल भाषा	७	७ ०
48	श्रीविष्णुपुराण सानुवाद सचित्र सजिल्द	५ ०	६
640	नारद विष्णु पुराणाङ्क	८० ००	६ ०
279	सक्षिप्त स्कन्दपुराण-सचित्र सजिल्द	१००	■ ११ ००
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	७५ ०	■ ८ ०
517	गर्गसहिता सचित्र सजिल्द	५५ ०	■ ७
47	पातञ्जलयोग प्रदीप पातञ्जलयोग सूत्रोंका वर्णन	६०	■ ७
135	पातञ्जलयोगदर्शन-	७ ००	१ ०
582	छान्दोग्योपनिषद् सानुवाद शकर भाष्य	५	७ ०
577	बृहदारण्यकोपनिषद्-	७ ०	१
66	ईशादि नौ उपनिषद् अन्वय हिन्दी व्याख्या	३० ०	५
67	ईशावास्योपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य	२ ५०	१
68	केनोपनिषद्	७ ०	१
578	कठोपनिषद्-	८	■ १ ०
69	माण्डूक्योपनिषद्	१५	३
513	मुण्डकोपनिषद्-	६ ०	१
70	प्रश्नोपनिषद्-	६	१
71	तैत्तिरीयोपनिषद्	१५ ००	१
72	ऐतरेयोपनिषद्	५ ०	१ ०
73	श्वेताश्वतरोपनिषद्-	१३ ०	२ ०
65	वेदान्त-दर्शन हिन्दी व्याख्या सहित सजिल्द	४५ ०	■ ४ ०
698	मार्क्सवाद और रामराज्य स्वामी करपात्रीजी	१ ०	८
639	श्रीनारायणीयम् सानुवाद	२५ ०	■ ४
201	मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद		
	भक्त चरित्र		
40	भक्तचरिताङ्क सचित्र सजिल्द	८	९
51	श्रीतुकाराम चरित जीवनी और उपदेश	२२	■ २.
53	भागवतरत्न प्रह्लाद	११	■ २ ०
123	चैतन्य चरितावली सम्पूर्ण एक साथ	७	■ १
751	देवर्षि नारद	८ ०	३
167	भक्त भारती		
168	भक्त नरसिह मेहता	७	१
169	भक्त बालक गोविन्द मोहन आदिकी गाथा	३	१
685	(तेलगू)	४ ०	१
170	भक्त नारी मीरा शबरी आदिकी गाथा	३	■ १
171	भक्त पञ्चरत्न रघुनाथ दामोदर आदिकी	३ ५	■ १
682	(तलगू)	५	१
172	आदर्श भक्त शिबि रन्तिदव आदिकी गाथा	५	१
687	(तलगू)	५	■ ५
173	भक्त सप्तरत्न दामा रघु आदिकी भक्तगाथा	३	१
174	भक्त चन्द्रिका सखू, विट्ठल आदि छ भक्तगाथा	४	१
175	भक्त कुसुम जगन्नाथ आदि छ भक्तगाथा	४	१
176	प्रेमी भक्त बिल्वमगल जयदव आदि पाँच	४	१
177	प्राचीन भक्त मार्कण्डेय उत्तङ्क आदि	५	■ १
178	भक्त सरोज गङ्गाधरदास श्रीधर आदि	३ ५	१ ०
179	भक्त सुमन नामदेव राँका बाँका आदि भक्तगाथा	५	१ ०
180	भक्त सौरभ व्यासदास प्रयागदास आदि	५	■ १
181	भक्त सुधाकर रामचन्द्र लाखा आदि भक्तगाथा	५	१
182	भक्त महिलारत्न रानी रत्नावती हरदेवी आदि	५ ०	■ १ ०
183	भक्त दिवाकर सुव्रत वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	३ ५	१
184	भक्त रत्नाकर माधवदास विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	३ ५	१
185	भक्तराज हनुमान् हनुमान्जीका जीवनचरित्र	३	१ ०
608	(तमिल)	५	२
767	तेलगू	३	१
186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र-	२ ५	१

* जय श्रीरामके चित्र कम-से-कम २५०/१०० प्रति ही भेज जा सकते हैं। फुटकर भजनमें चित्रोंके खराब होनेकी सम्भावना है।

कोड	मूल्य		डाकखर्च
187 प्रेमी भक्त उद्धव-	२५	●	१००
642 (तमिल)	४५	■	१ ०
686 (तेलगू)	३००	■	१००
188 महात्मा विदुर	२५०	■	१००
189 भक्तराज ध्रुव-	२५०		१ ०
292 नवधा भक्ति-भरतजीमें नवधा भक्ति सहित	३००	▲	१०
385 नारदभक्तिसूत्र-सानुवाद	१००	▲	१ ०
330 (बँगला)	२००	▲	१००
499 (तमिल)	१००	▲	१००
121 एकनाथ-चरित्र	१०	■	२००

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	मूल्य		डाकखर्च
683 तत्त्वचिन्तामणि (सभी खण्ड एक साथ)	६०	■	१०
814 साधन कल्पतरु	५०००	■	१ ००
527 प्रेमयोगका तत्त्व-(हिन्दी)	९		२००
242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा-	९००		३०
521 प्रेमयोगका तत्त्व (अँग्रेजी अनुवाद)	६००		२००
528 ज्ञानयोगका तत्त्व (हिन्दी)	८००	▲	२ ०
520 (अँग्रेजी अनुवाद)	८०	▲	२००
266 कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)	६००		१००
267 (भाग-२)	६		१००
303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय- (भ०यो त भाग १)	६००		१ ०
298 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य (भ यो त भाग २)	५००	▲	१००
243 परम साधन-भाग-१	६००	▲	२
244 भाग-२	५.		२००
245 आत्मोद्धारके साधन भाग १	७००		२
335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति (आ सा० भाग २)	६००	▲	२००
579 अमूल्य समयका सदुपयोग	४००		१०
666 अमूल्य समयका सदुपयोग- (तेलगू)	५००	▲	१००
246 मनुष्यका परम कर्तव्य भाग-१	६००	▲	२
247 भाग २	६००		२००
611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति-	५००	▲	१००
588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	६.००		१००
248 कल्याणप्राप्तिके उपाय तत्त्वचिन्तामणि भाग-१	८ ०	▲	२००
275 (बँगला)	८.००		२०
249 शीघ्र कल्याणके सोपान- त० चि २/१	७००	▲	२००
250 ईश्वर और संसार- २/२	७०	▲	२ ०
253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि ३/१	५.००		२००
519 अमूल्य शिक्षा- ३/२	५००		१००
251 अमूल्य वचन- ४/१	६००		२०
252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा- ४/२	६ ०	▲	२०
254 व्यवहारमें परमार्थकी कला- ५/१	६००		२०
255 श्रद्धा विश्वास और प्रेम ५/२	७		२००
258 तत्त्वचिन्तामणि ६/१	५०		२००
257 परमानन्दकी खेती- ६/२	५.००		२ ०
260 समता अमृत और विषमता विष ७/१	६	▲	२
259 भक्ति भक्त भगवान् ७/२	६००		२००
256 आत्मोद्धारक सरल उपाय-	६०	▲	२ ०
61 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	२००		१
262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	५. ०		१००
768 (तेलगू)	५००		१ ०
263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	४००		१००
720 (कन्नड़)	५००	▲	१००
766 (तेलगू)	४०		१०
264 मनुष्य जीवनकी सफलता भाग १	५ ०	▲	२
265 भाग-२	५. ०		२ ०
268 परमशान्तिका मार्ग भाग १	६००	▲	२ ०
69 „ भाग-२	६००	▲	२
543 परमार्थ सूत्र संग्रह	५.०	▲	१००
769 साधन नवनीत	५००	▲	१
599 हमारा आश्चर्य	५.०	▲	१
272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	५.००	▲	१००
273 नल दमयन्ती-	२००		१००
645 (तमिल)	५. ०	●	१०

कोड	मूल्य		डाकखर्च
274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी-	३००	▲	१००
276 परमार्थ पत्रावली-बँगला प्रथम भाग	३५०		१००
277 उद्धार कैसे हो?-५१ पत्रोंका संग्रह	४००	▲	१००
278 सच्ची सलाह ८० पत्रोंका संग्रह	५.०	▲	१००
280 साधनोपयोगी पत्र-७२ पत्रोंका संग्रह	४ ०	▲	१ ०
281 शिक्षाप्रद पत्र-७० पत्रोंका संग्रह	६००	▲	२००
681 रहस्यमय प्रवचन	५०	▲	२००
282 पारमार्थिक पत्र ९१ पत्रोंका संग्रह	६००		२ ०
284 अध्यात्म-विषयक पत्र-	४,००	▲	१००
283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ-	३५०		१ ०
480 (अँग्रेजी)	४००	▲	१००
680 उपदेशप्रद कहानियाँ	५००	▲	२००
320 वास्तविक त्याग	४ ०		१००
285 आदर्श भ्रातृप्रेम-	३००	▲	१००
286 बालशिक्षा-	२००	▲	१००
287 बालकोंके कर्तव्य-	३००		१ ०
290 आदर्श नारी सुशीला-	२००	▲	१००
312 (बँगला)	२००	▲	१००
665 (तेलगू)	३ ०		१००
644 (तमिल)	२००		१
291 आदर्श देवियाँ-	१२५	▲	१ ०
293 सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-	१००		१००
294 सत महिमा	१००		१ ०
295 सत्संगकी कुछ सार बातें (हिन्दी)	१ ०	▲	१००
296 (बँगला)	०५०	▲	१००
466 (तमिल)	१००		१०
678 (तेलगू)	१००	▲	१ ०
300 नारीधर्म-	१५०	▲	१००
301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म-	१००		१००
310 सावित्री और सत्यवान-(हिन्दी)	१५०	▲	१००
609 (तमिल)	१५०	▲	१००
664 (तेलगू)	१५०	▲	१००
717 सावित्री सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला (कन्नड़)	३०	▲	१००
299 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	२००		१००
304 गीता पढ़नेके लाभ-	०५०	▲	१००
703 (असमिया)	५०		१००
536 गीता पढ़नेके लाभ और सत्यकी शरणसे मुक्ति- (तमिल)	२५०		१ ०
305 गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव-	१२५		१००
309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	१५०		१ ०
311 वैराग्य परलोक और पुनर्जन्म-	१००		१ ०
317 अवतारका सिद्धान्त-	५		१००
306 भगवान् क्या हैं?-	१००	▲	१००
307 भगवान्‌की दया-	२००	▲	१ ०
308 सामयिक चेतावनी-	५०		१००
313 सत्यकी शरणसे मुक्ति-	०५०	▲	१००
672 (तेलगू)	१०	▲	१००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति और गीता पढ़नेसे लाभ (कन्नड़)	२००	▲	१ ०
314 व्यापार सुधारकी आवश्यकता	५	▲	१००
623 धर्मके नामपर पाप -	०२५	▲	१००
315 चेतावनी	०५०	▲	१
316 ईश्वर साक्षात्कार-नाम-जप सर्वोपरि साधन है-	०५०	▲	१००
318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है-	०५०		१ ०
270 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द-	५०	▲	१००
271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?-	०५०	▲	१००
319 हमारा कर्तव्य	०५०	▲	१००
321 त्यागसे भगवत्प्राप्ति (गजलगीतासहित)	०५०	▲	१ ०
326 प्रेमका सच्चा स्वरूप-	०५०	▲	१००
329 शोक नाशके उपाय-	५०		१०
322 महात्मा किसे कहते हैं ?			
324 श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव			

कोड	मूल्य		डाकखर्च
328 चतु श्लोकी भागवत-	०५०	▲	१ ००

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन

कोड	मूल्य		डाकखर्च
050 पदरत्नाकर-	३५ ००	■	५ ००
049 श्रीराधा माधव चिन्तन	४० ०	●	६ ०
058 अमृत कण-	१४ ००	■	३ ००
332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता-	१२ ००	■	३ ००
333 सुख शान्तिका मार्ग	११ ०		२ ०
343 मधुर	११ ००	■	२ ००
056 मानव जीवनका लक्ष्य	९ ०	●	२ ००
331 सुखी बननेके उपाय-	९ ०		२ ०
334 व्यवहार और परमार्थ-	१ ००	■	२ ००
514 दु खमें भगवत्कृपा-	९	●	२ ००
386 सत्सग सुधा-	९ ००		२ ०
342 सतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल	१० ००		२ ००
347 तुलसीदल	१० ०	■	२ ००
339 सत्सगके बिखरे मोती-	९ ०	■	२ ०
349 भगवत्प्राप्ति एव हिन्दू संस्कृति-	१२ ००		३ ०
350 साधकोका सहारा-	११ ०	■	३ ०
351 भगवच्चर्चा भाग ५	१५.००		३ ००
352 पूर्ण समर्पण-	१५	■	२
354 आनन्दका स्वरूप-	८ ५०		१ ००
355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१ ०		१ ००
356 शान्ति कैसे मिले ? (लो प सुधार भाग ४)	१०		२
357 दु ख क्यों होते हैं ?	१०	●	२ ०
38 प्रम सत्सग सुधा माला	९ ००		१ ००
348 नैवद्य	९		२
337 दाम्पत्य जीवनका आदर्श-	७ ००		१
336 नारीशिक्षा	७		१ ००
340 श्रीरामचिन्तन-	८		२ ०
338 श्रीभगवन्नाम चिन्तन-	८ ००	▲	२
345 भवरोगकी रामबाण दवा	७		१ ०
346 सुखी बनो	६		१
341 प्रेमदर्शन-	८ ००		२
353 लोक परलोकका सुधार (कामक पत्र भाग १	८		२ ००
358 कल्याण कुज (क० कु० भाग १)	६ ०		१ ०
359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प (भाग २)	६		१ ०
360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (भाग-३)	७		२ ००
361 मानव कल्याणके साधन (भाग-४)	१० ०	●	२
362 दिव्य सुखकी सरिता- (भाग-५)	५		१ ०
363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (भाग ६)	५ ००		१ ०
364 परमार्थकी मन्दाकिनी (भाग ७)	४ ०		१
365 गोसेवाके चमत्कार (तमिल)	३ ५०		१ ००
366 मानव धर्म	५ ०		१ ००
367 दैनिक कल्याण सूत्र	४		२
368 प्रार्थना इक्कीस प्रार्थनाओका सग्रह	२ ५०		१ ०
777 प्रार्थना पीयूष	२		१ ०
369 गोपीप्रेम	२		१
370 श्रीभगवन्नाम	१		१ ००
373 कल्याणकारी आचरण	१		१
374 साधन पथ सचित्र	३ ०		१ ०
375 वर्तमान शिक्षा	२		१ ०
376 स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी	२ ५०		१
377 मनको वश करनेके कुछ उपाय	१		१
378 आनन्दकी लहरें	१ ५		१
379 गोवध भारतका कलक एव गायका माहात्म्य	२		१
380 ब्रह्मचर्य-	२ ०		१ ०
381 दीनदुखियोके प्रति कर्तव्य	१		१
382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	१ ५		१
344 उपनिषदोंके चौदह रत्न-	४		१
371 राधा माधव रस सुधा (षोडशगीत) सटीक	१ ५		१
383 भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा	१		१
384 विवाहमे दहेज	१	▲	१

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन

कोड	मूल्य		डाकखर्च
465 साधन सुधा सिन्धु	७० ०	■	९
400 कल्याण पथ-	७ ००	▲	२ ००
605 जित देखूँ तित तू—	७		२ ०
406 भगवत्प्राप्ति सहज है	५ ०		२
535 सुन्दर समाजका निर्माण	८ ००		२ ००
401 मानसमें नाम वन्दना	७ ००		१
403 जीवनका कर्तव्य	८ ०		१
436 कल्याणकारी प्रवचन (हिन्दी)	४ ०		१ ००
404 (गुजराती)	४		१ ०
816 (बंगला)	३ ०		१ ००
405 नित्ययोगकी प्राप्ति-	६ ००		१
407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता-	४ ००		१
408 भगवान्‌से अपनापन	३ ००		१
409 वास्तविक सुख	५ ००		१
411 साधन और साध्य-	४ ५०		१ ०
412 तात्त्विक प्रवचन (हिन्दी)	४ ५०		१
413 (गुजराती)	४ ००		१ ००
414 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?	५ ०		१
410 जीवनोपयोगी प्रवचन	४ ०		१
822 अमृत बिन्दु	४ ०		१
415 किसानोके लिये शिक्षा	१ ००		१
416 जीवनका सत्य	३		१ ०
417 भगवन्नाम	३ ०		१
418 साधकोके प्रति-	४ ०		१
419 सत्संगकी विलक्षणता	२ ०		१ ०
545 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग	२ ००		१
420 मातृशक्तिका घोर अपमान	२ ०		१
421 जिन खोजा तिन पाइयाँ	४ ५०		१
422 कर्मरहस्य- (हिन्दी)	२ ५		१ ०
423 (तमिल)	३		१
424 वासुदेव सर्वम्	३		१
425 अच्छे बनो	३ ०		१
426 सत्सगका प्रसाद	४		१ ०
431 स्वाधीन कैसे बनें	१		१ ०
702 यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	१ ००		१
652 हम कहाँ जा रहे हैं ? विचार करें	५		१
589 भगवान् और उनकी भक्ति	४ ००		१
603 गृहस्थोके लिये	१ ०		१
617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३		१ ०
625 (बंगला)	३		१
758 (तेलगू)	३ ०		१ ०
796 (उड़िया)	२		१ ०
427 गृहस्थमे कैसे रहें ?- (हिन्दी)	४		१
428 (बँगला)	२ ५		१
429 (मराठी)	५		१
128 (कन्नड)	२ ७५		१
430 (उड़िया)	४ ०		१
472 (अँग्रेजी)	३ ५०		१
553 (तमिल)	८		१
733 (तेलगू)	६		२
432 एकै साधे सब सधै-	३		१ ०
655 (तमिल)	५		२
761 (तेलगू)	५		२
607 सबका कल्याण कैसे हो ? (तमिल)	२		१
433 सहज साधना	३		१
434 शरणागति (हिन्दी)	२		१
568 (तमिल)	४		१
757 (उड़िया)	३		१
759 (तेलगू)	३		१
435 आवश्यक शिक्षा	२		१
730 संकल्प पत्र	२		१
515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन	१ ००		१
606 (तमिल)	२		१ ०
770 अमरताकी ओर	४		१

कोड	मूल्य		डाकखर्च
773 भक्तके उद्गार	० ५०		१ ००
775 सत्सगके अमृत कण	० ५०	▲	१ ०
580 गायकी महत्ता और उसकी आवश्यकता	० ५	▲	१ ००
438 दुर्गतिसे बचो (हिन्दी)	१ ००		१ ०
449 (बगला) (गुरुतत्त्व सहित)	२		१
439 महापापसे बचो (हिन्दी)	१ ०		१
451 (बँगला)	१		१ ०
549 (उर्दू)	१ २५	▲	१ ००
731 (तेलगू)	१ ५०	▲	१ ००
440 सच्चा गुरु कौन ?	१ ०		१ ०
781 अलौकिक प्रेम	० ५		१ ००
442 सतानका कर्तव्य (हिन्दी)	० ५		१
413 (बँगला)	१ ०		१ ०
797 (उडिया)	१ ००	▲	१ ०
591 (तमिल)	३ ००	▲	१ ००
444 नित्य स्तुति -	१ ००		१ ०
729 सार सग्रह	० ५०		१ ०
445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? (हिन्दी)	१ ००		१
450 (बँगला)	१ ५०		१ ००
554 (नेपाली)	२५	▲	१ ००
446 आहार शुद्धि (हिन्दी)	० ५०		१
632 सब जग ईश्वररूप है	४ ००		१ ०
551 आहार शुद्धि- (तमिल)	१ ५०		१ ०
447 मूर्तिपूजा (हिन्दी)	० ५०	▲	१ ००
469 (बँगला)	१		१ ०
69 (तमिल)	१ ५		१
734 मूर्तिपूजा आहार शुद्धि (तेलगू)	२ ००		१ ००
448 नाम जपकी महिमा (हिन्दी)	१ ००		१
671 (तेलगू)	१ ०		१ ०
550 (तमिल)	१ ५०	▲	१ ००
723 नाम जपकी महिमा आहार शुद्धि (कन्नड़)	३ ००		१
441 सच्चा आश्रय	१ ०		१

नित्यपाठ साधन-भजन हेतु

कोड	मूल्य		डाकखर्च
592 नित्यकर्म पूजा प्रकाश	२४ ०		३ ००
610 व्रत परिचय	१८		३
045 एकादशी व्रतका माहात्म्य	३ ५	■	१
052 स्तोत्ररत्नावली सानुवाद	१५ ०	■	२ ०
117 दुर्गासप्तशती मूल मोटा टाइप	१० ००		२ ००
118 सानुवाद	११ ०		२ ००
489 सजिल्द	१५	■	३
206 विष्णुसहस्रनाम सटीक	२ ०	■	१
226 मूलपाठ	१ ००		१
740 (मलयालम)	१		१ ०
670 (तेलगू)	१ ०	■	१ ०
737 (कन्नड़)	१ ५०	■	१ ०
207 रामस्तवराज और रामरक्षास्तोत्र			
211 आदित्य हृदयस्तोत्रम् हिन्दी अँग्रेजी अनुवाद सहित	१ ००	■	१
224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र भक्त बिल्वमगलरचित	२ ०	■	१ ०
674 (तेलगू)	१ ५		१ ००
231 रामरक्षास्तोत्रम्	१	■	१ ००
675 (तेलगू)	१ ५०	■	१ ००
715 महामन्त्र राज स्तोत्रम्	२ ५०	■	१
704 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००		१
705 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००	■	१ ०
706 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	२		१ ००
707 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००	■	१ ००
708 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००	■	१ ०
709 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००		१
710 श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्	२	■	१ ०
711 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००	■	१ ०
712 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	२.०	■	१ ०
713 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	२ ००	■	१ ००
495 दत्तात्रेय वज्रकवच सानुवाद	२ ०	■	१ ००
2 9 नारायणकवच सानुवाद	१ ००		१ ०

कोड	मूल्य		डाकखर्च
230 अमोघशिवकवच सानुवाद	१ ००		१ ०
563 शिवमहिम्नस्तोत्र	१ ००	■	१
524 ब्रह्मचर्य और सध्या गायत्री-	२ ०	■	१ ०
054 भजन सग्रह-पाँचों भाग एक साथ	१८ ०	■	४
063 पद पद्माकर-	५		२ ०
140 श्रीरामकृष्णलीला भजनावली ३२८ भजनसग्रह	१ ०	■	२ ०
142 चेतावनी पद सग्रह-(दोनों भाग)	१ ०		२ ४०
144 भजनामृत ६७ भजनोका सग्रह	५	■	१ ०
153 आरती-सग्रह-१०२ आरतियोका सग्रह	३ ०	■	१
807 सचित्र आरतिया	५ ०	■	१
208 सीतारामभजन-	१ ५		१ ००
221 हरेरामभजन दो माला (गुटका)	१ ५	■	१ ००
222 १४ माला	७	■	२ ००
576 विनय पत्रिकाके पैंतीस पद	२	■	१ ०
225 गजेन्द्रमोक्ष सानुवाद, हिन्दी पद्य भाषानुवाद	१ ००		१ ०
699 गङ्गालहरी	१	■	१ ००
688 प्रश्नोत्तरी	१		१ ०
227 हनुमानचालीसा- (पाकेट साइज)	१	■	१ ००
695 (छोटी साइज)	१		१ ००
600 (तमिल)	१ ५	■	१ ०
626 (बँगला)	१	■	१ ०
676 (तेलगू)	१ ०		१ ००
738 (कन्नड)	१		१ ००
828 (गुजराती)	१		१ ००
228 शिवचालीसा-	१ ०		१ ००
203 अपरोक्षानुभूति	१ ००		१ ००
774 गीताप्रेस परिचय	४	■	१ ०
139 नित्यकर्म प्रयोग	६ ०		२
210 सन्ध्योपासनविधि मन्त्रानुवादसहित	१ ५		१ ००
220 तर्पण एव बलिवैश्वदेवविधि मन्त्रानुवादसहित	१ ५		१ ०
236 साधकदैनन्दिनी-	२ ००		१
209 रामायण मध्यमा परीक्षा पाठ्यपुस्तक-	० ७५		१ ०
614 सन्ध्या	१ ००		१

बालकोपयोगी पाठ्यपुस्तकें

कोड	मूल्य		डाकखर्च
573 बालक अङ्क (कल्याण वर्ष २७)	८० ०		०
461 हिन्दी बालपोथी (भाग-१)	२ ००		१ ००
212 (भाग २)	२ ००		१ ००
684 (भाग-३)	२ ०	■	१ ००
764 (भाग ४)	४ ०	■	१ ००
765 (भाग ५)	४ ०	■	१ ०
125 रगीन (भाग-१)	२ ५०	■	१ ०
216 बालककी दिनचर्या	२ ०		१ ०
214 बालकके गुण	२ ५०	■	१ ००
217 बालकोकी सीख	२ ०		१
219 बालकके आचरण	२		१ ०
218 बाल अमृत वचन-	२ ००		१ ००
696 बाल प्रश्नोत्तरी	२		१ ०
215 आओ बच्चों तुम्हें बताये-	२		१ ००
213 बालकोकी बोलचाल	२		१ ००
145 बालकोकी बाते-	५		१ ०
146 बड़ोके जीवनसे शिक्षा	५ ०		१ ०
150 पिताकी सीख-	६ ००	■	२ ०
197 सस्कृतिमाला (भाग १)	२ ००		१
516 आदर्श चरितावली	३ ००	■	१
396 आदर्श ऋषिमुनि	३ ००		१ ००
397 आदर्श देशभक्त	२ ५०		१ ००
398 आदर्श सम्राट-	३ ००		१ ०
399 आदर्श सत	२ ५०		१ ०
402 आदर्श सुधारक	२ ५०		१
136 विदुरनीति	६ ००	■	२
138 भीष्मपितामह	८ ००		१
116 लघु सिद्धान्त कौमुदी	२ ००		३ ०
148 वीर बालक	४ ००		१ ००
149 गुरु और माता पिताके भक्त बालक	४		१ ०

कोड	मूल्य		डाकखर्च
152 सच्चे ईमानदार बालक-	३ ५०	■	१ ००
155 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ-	३ ००	■	१ ००
156 वीर बालिकाएँ-	३ ००	■	१ ००
727 स्वास्थ्य सम्मान और सुख	२ ००	■	१ ०
स्त्रियोपयोगी एव सर्वोपयोगी प्रकाशन			
154 ज्ञानमणिमाला-	२ ५०	■	१ ००
202 मनोबोध	४ ००	■	१ ००
746 भ्रमण नारद	२ ००	■	१ ००
747 सप्तमहाव्रत	२ ००	■	१ ००
542 ईश्वर	२ ००	■	१ ०
196 मननमाला	१ २५		१ ०
57 मानसिक दक्षता-	१५ ००	■	३ ००
59 जीवनमें नया प्रकाश-(ले० रामचरण महेन्द्र)	१० ००		२ ०
60 आशाकी नयी किरणें	११ ००	■	२
119 अमृतके घूँट	९		२ ०
132 स्वर्णपथ-	८ ००		२ ००
55 महकते जीवनफूल-	१५.	■	३ ००
64 प्रेमयोग-	१३ ०	■	१ ००
103 मानस रहस्य-	२४ ००		२ ००
104 मानस शका-समाधान-	८ ०	■	२ ०
501 उद्धव-सन्देश-	१० ००	■	२ ००
460 रामाश्वमेध	१०	■	२ ००
191 भगवान् कृष्ण-	३	■	१ ००
601 -(तमिल)	५ ०	■	१ ००
641 (तेलगू)	४ ००	■	१
193 भगवान् राम-	३ ००		१
195 भगवान्पर विश्वास	३ ००	■	१ ००
120 आनन्दमय जीवन	८ ००		२ ००
130 तत्त्व विचार	९ ००		२ ०
133 विवेक-चूडामणि	८		२ ००
701 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२ ०		१ ००
742 (तमिल)	२ ५		१
752 (तेलगू)	२ ०		१ ०
762 (बगला)	२ ००		१ ००
826 (उड़िया)	२ ०		१ ००
802 (मराठी)	२ ००	▲	१
783 (अग्रेजी)	२ ००	▲	१
131 सुखी जीवन-	७ ०		१
122 एक लोटा पानी-	८ ००		२
134 सती द्रौपदी-	६ ००		२
137 उपयोगी कहानियाँ-	५ ०		१
157 सती सुकला	२ ५		१
158 महासती सावित्री-	१ ५०		१
147 चोखी कहानियाँ	३		१
159 आदर्श उपकार- (पढ़ो समझो और करो)	६ ०		२ ०
160 कलेजेके अक्षर-	६ ०	■	२ ००
161 हृदयकी आदर्श विशालता-	६		२
162 उपकारका बदला	६ ०		२ ०
163 आदर्श मानव हृदय-	६ ००		२ ०
164 भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा	६		२
165 मानवताका पुजारी-	६ ००		२
166 परोपकार और सच्चाईका फल-	६ ०		२
510 असीम नीचता और असीम साधुता	६ ०		२
129 एक महात्माका प्रसाद-	१२ ०		२
151 सत्सगमाला-	३ ०		१
धारावाहिक चित्रकथा			
190 बाल चित्रमय श्रीकृष्णलीला-	६		२
192 बालचित्रमय रामायण-	४		१
238 कन्हैया (धारावाहिक)	६		२
239 गोपाल	६ ०		२
240 मोहन	६		२
241 श्रीकृष्ण-	६		२
079 रामलला-	६		२ ०

कोड		मूल्य		डाकखर्च
529 श्रीराम (धारावाहिक)		६ ०	■	२ ०
756 गणेश		४ ००		२ ००
204 ॐ नम शिवाय (द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा)		१० ००	■	२ ००
787 जय हनुमान		१ ०	■	२
205 नवदुर्गा		५.००		२ ००
779 दशावतार		६ ००		२ ०
537 बाल चित्रमय बुद्धलीला		३	■	२ ०
194 बाल चित्रमय चैतन्यलीला		३ ०		२ ००
693 श्रीकृष्ण रेखा चित्रावली		६ ००		२
656 गीता माहात्म्य की कहानियाँ		५	■	१
651 गो सेवाके चमत्कार		६ ०		२ ००
कल्याण के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क				
635 शिवाङ्क-	(कल्याणवर्ष ८)	८ ०	■	११ ०
41 शक्ति अङ्क-	(९)	८० ०		८
616 योगाङ्क -	(१०)	६		९ ०
627 सत अङ्क	(१२)	९ ०		१ ०
604 साधनाङ्क-	(१५)	७५		९ ०
028 श्रीभागवत सुधासागर	(१६)	९ ००		९
44 सक्षिप्त पद्मपुराण	(१९)	८५	■	८
539 मार्कण्डेय ब्रह्मपुराणाङ्क	(२१)	७५ ००		७ ०
43 नारी अङ्क-	(२२)	७ ०		८
659 उपनिषद अङ्क	(२३)	९ ०		९
518 हिन्दू सस्कृति अङ्क	(२४)	७५ ०		९
279 सक्षिप्त स्कन्दपुराण	(२५)	१ ०		१०
40 भक्त चरिताङ्क	(२६)	८० ०		९ ०
573 बालक अङ्क	(२७)	८ ०		९ ०
640 स० नारद विष्णु पुराणाङ्क	(२८)	८०		११ ०
667 सतवाणी अक	(२९)	८५ ०		९
587 सत्कथा अङ्क	(३)	६५		८
636 तीर्थाङ्क-	(३१)	८५		१२
660 भक्ति अङ्क	(३२)	८० ०		११
46 सक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत	(३४)	७ ०		८.०
574 सक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क	(३५)	७५ ०		९
631 स० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	(३७)	७५		८
789 शिवपुराण (बड़ा टाइप)	(३९)	८०		६
572 परलोक पुनर्जन्माङ्क	(४३)	७		२
517 गर्ग सहिता- [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओका वर्णन]	(४४ एव ४५)	५५ ०		७
657 श्रीगणेश अङ्क	(४८)	६ ०		१
42 हनुमान अङ्क	(४९)	५		६
791 सूर्याङ्क	(५३)	४५ ०		६
कल्याण एव कल्याण कल्पतरुके पुराने मासिक अक				
525 कल्याणके विभिन्न मासिक-अक		३		१
602 Kalyana Kalpataru (Monthly Issues)		२ ५		१
अन्य भारतीय भाषाओके प्रकाशन				
सस्कृत				
679 गीतामाधुर्य		६		२
बंगला				
540 साधक सजीवनी पूरा सेट		७		१६ ००
556 गीता दर्पण		३५		५
013 गीता पदच्छेद		१५		४ ०
626 हनुमानचालीसा		१		१ ०
496 गीता भाषाटीका पाकेट साइज		४		१
275 कल्याण प्राप्तिके उपाय (तत्त्व चिन्ता भाग १)		८		२
395 गीतामाधुर्य-		६		२
428 गृहस्थमे कैसे रहें ? -		२५		१
816 कल्याणकारी प्रवचन		३		१
276 परमार्थ पत्रावली- भाग १		३ ५०		१
449 दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व		२		१ ०
463 चित्र जय श्रीकृष्ण		१३ ०		
450 हम ईश्वरको क्यो मानें- नाम जपकी महिमा		१५		१
312 आदर्श नारी सुशीला		२		१
330 नारद एव शाण्डिल्य भक्ति सूत्र-		२		१

कोड	मूल्य		डाकखर्च
625 देशकी वर्तमानदशा तथा उसका परिणाम-	३ ००		१ ००
762 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२ ००		१ ००
469 मूर्तिपूजा-	१ ००	▲	१ ००
296 सत्सगकी सार बातें	० ५०		१ ०
443 संतानका कर्तव्य	१ ००	▲	१ ००
मराठी			
748 ज्ञानेश्वरी मूल गुटका	२० ०	■	३ ००
784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ दीपिका	१ ००	■	११ ०
7 साधक सजीवनी टीका-	७ ००	■	१ ००
504 गीता-दर्पण-	२५ ००	■	५ ०
14 गीता पदच्छेद-	२० ००	■	४ ००
15 गीता माहात्म्यसहित	२० ००	■	४ ००
391 गीतामाधुर्य-	८ ००	▲	२ ००
429 गृहस्थमें कैसे रहे ?-	५ ०		२ ००
गुजराती			
467 साधक-सजीवनी	७५.००	■	१ ००
468 गीता दर्पण	२५ ०	■	५.००
12 गीता पदच्छेद-	२० ००	■	४ ०
392 गीतामाधुर्य	५ ००	▲	२ ००
799 श्रीरामचरितमानस गुजराती ग्रन्थाकार	८५ ००	■	९ ००
785 मझला	४५ ०		५ ००
404 कल्याणकारी प्रवचन-	४ ००	▲	२
544 चित्र जय श्रीकृष्ण	१३ ००	■	
413 तात्त्विक प्रवचन-	४ ०		२ ००
828 हनुमान चालीसा	१ ००	■	१ ००
तमिल			
8 ० गीता तत्त्वविवेचनी	५० ००	■	९ ०
743 गीता मूल	१३ ०	■	२ ००
795 गीता भाषा	५.	■	१ ००
793 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम	४ ००	■	१ ०
389 गीतामाधुर्य	१० ००	■	२ ००
127 उपयोगी कहानियाँ	५ ०	■	२ ००
646 चोखी कहानियाँ	५ ००	■	१ ०
600 हनुमानचालीसा	१ ५०	■	१
794 विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्रम	१ ००	■	१ ००
601 भगवान् श्रीकृष्ण	५ ०	■	१ ००
608 भक्तराज हनुमान्	५ ००	■	१ ००
642 प्रेमी भक्त उद्धव	४ ५०	■	१ ००
647 कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	७ ००		२
648 श्रीकृष्ण ( )	७ ००	■	२ ००
649 गोपाल ( )	७	■	२ ००
650 मोहन ( )	७	■	२ ०
742 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२ ५०	▲	१
553 गृहस्थम कैसे रहे ?	८ ००	▲	२
536 गीता पढ़नेके लाभ सत्यकी शरणसे मुक्ति	२ ५		१ ००
591 महापापसे बचो सतानका कर्तव्य-	३ ०		१ ००
466 सत्सगकी सार बातें-	१ ०		१ ०
365 गोसेवाके चमत्कार	३ ५		१ ०
423 कर्मरहस्य	३ ०		१ ०
568 शरणागति	४ ००	▲	१ ०
569 मूर्तिपूजा	१ ५०		१
551 आहारशुद्धि	१ ५०		१ ०
645 नल दमयन्ती	५ ००		१
644 आदर्श नारी सुशीला	२ ००		१
643 भगवान्के रहनेके पांच स्थान	३		१ ०
550 नाम जपकी महिमा	१ ५०		१ ०
499 नारद भक्ति सूत्र	१		१ ००
606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२ ००	▲	१ ००
609 सावित्री और सत्यवान	१ ५०		१ ००
607 सबका कल्याण कैसे हो ?	२		१
655 एकै साधै सब सधै	५ ००		२

कोड	मूल्य		डाकखर्च
कन्नड़			
726 गीता पदच्छेद	१८ ००	■	३ ००
718 गीता तात्पर्यके साथ	८ ००	■	२ ०
661 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	४ ००	■	२ ००
736 नित्यस्तुति आदित्य हृदयस्तोत्रम्	१ ००	■	१ ००
738 हनुमत स्तोत्रावली	१ ००	■	१ ००
737 विष्णुसहस्त्रनाम	१ ५०		१ ००
721 भक्त बालक	४ ००	■	१ ००
716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	४ ००	▲	१ ००
390 गीतामाधुर्य	४ ५०	▲	१ ०
128 गृहस्थमे कैसे रहे ?	२ ७५	▲	१ ००
720 महाभारत के आदर्श पात्र	५		१ ००
717 सावित्री सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला	३ ०		१ ०
723 नाम जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३ ००	▲	१ ००
725 भगवान्की दया एवं भगवानका हेतु रहित सौहार्द	२ ०	▲	१ ००
598 वास्तविक सुख	४ ००		१ ००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति गीता पढ़नेके लाभ	२ ००		१ ००
असमिया			
714 गीता भाषा टीका पाकेट साइज	५ ००	■	२ ००
624 गीतामाधुर्य	६ ०	▲	२ ००
703 गीता पढ़नेके लाभ	५०	▲	१ ००
उड़िया			
813 गीता पाकट साइज	४ ०	■	१ ००
815 गीता श्लोकार्थ सहित	१३ ००	■	२ ००
541 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम सहित	२ ०	■	१ ००
817 कर्म रहस्य	२ ००	▲	१ ००
798 गुरु तत्त्व	१ ०	▲	१ ००
९97 सन्तान का कर्तव्य तथा आश्रय	१ ०	▲	१ ००
754 गीतामाधुर्य	६ ००	▲	१ ००
757 शरणागति	३ ००	▲	१ ००
430 गृहस्थमें कैसे रहे ?-	४ ००	▲	१ ०
796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२ ००	▲	१
नेपाली			
394 गीतामाधुर्य-	५ ००	▲	२ ०
554 हम ईश्वरको क्यों माने	० २५		१ ०
उर्दू			
393 गीतामाधुर्य	८ ००		२ ०
549 महापापसे बचो	१ २५		१ ००
590 मनकी खटपट कैसे मिटे-	० ८०		१ ००
तेलगू			
692 चोखी कहानियाँ	४.००	■	१ ००
682 भक्तपञ्चरत्न	५ ०	■	१ ०
686 प्रेमीभक्त उद्धव	३ ००	■	१ ००
687 आदर्शभक्त	५	■	१
685 भक्तबालक	४ ०	■	१ ०
688 भक्तराज ध्रुव	२ ००	■	१ ००
753 सुन्दरकाण्ड सटीक	३	■	१ ००
691 श्रीभीष्मपितामह	८ ००	■	१ ०
732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्तोत्रम्	१ ०	■	१ ०
676 हनुमान चालीसा	१ ००	■	१ ००
641 भगवान् श्रीकृष्ण	४ ०		१ ००
662 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	३ ००	■	१ ०
663 गीता भाषा	५	■	१ ००
670 श्रीविष्णु सहस्त्रनाम मूलम्	१ ००		१ ०
674 गोविन्द दामोदर स्तात्र	१ ५०		१ ००
675 स० रामायणम रामरक्षास्तोत्रम्	१ ५०	■	१ ०
677 गजेन्द्र मोक्षम्	१ ००	■	१ ००
771 गीता तात्पर्य सहित	९ ०	■	१ ००
801 श्रीललिता सहस्त्रनाम	२ ०	■	१ ००
772 गीता पदच्छेद अन्वयसहित	१५ ०	■	१ ००
767 भक्तराज हनुमान्	३ ०	■	१ ००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
766 महाभारतके आदर्श पात्र	४.००		१.००
760 महत्वपूर्ण शिक्षा	३.००	▲	१.००
768 रामायणके आदर्श पात्र	५.००	▲	१.००
733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६.००	▲	१.००
761 एकै साधे सब सधै	५.००	▲	१.००
759 शरणागत एवं मुकुन्दमाला	३.००	▲	१.००
752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
734 आहार शुद्ध मूर्ति पूजा	२.००		१.००
664 सावित्रि सत्यवान	१.५०		१.००
665 आदर्श नारी सुशीला	३.००		१.००
666 अमूल्य समयका सदुपयोग	५.००	▲	१.००
672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.००	▲	१.००
671 नामजपकी महिमा	१.००	▲	१.०
678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१.००		१.००
731 महापापसे बचो	१.५०	▲	१.००
758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३.००	▲	१.००
689 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३.००		१.००
690 बालशिक्षा	३.०	▲	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
मलयालम			
739 गीता विष्णु मूल	३.०	■	१.०
740 विष्णु सहस्रनाम मूल	१.०	■	१.०
चित्रपुस्तकें			
237 जयश्रीराम भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१३.००		
546 जयश्रीकृष्ण भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण (बंगला एवं गुजरातीमें भी)	१३.०	■	
491 हनुमान्‌जी (भक्तराज हनुमान्)	५.०	■	
492 भगवान् विष्णु-	५.००		
560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	५.००	■	
548 मुरलीमनोहर (भगवान् मुरलीमनोहर)	५.००	■	
437 कल्याणचित्रावली (कल्याणमें मुद्रित १५ चित्रोंका संग्रह)	८.००	■	
776 सीताराम	५.००		
812 नवदुर्गा (दुर्गाजी के नौ रूप)	५	■	
630 गो सेवा	५.०		
531 बाँके बिहारी	५.०	■	

Our English Publications

Code / Title	Price		Postage
457 Shrimad Bhagavadgita—Tattva-Vivechani (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	35.00	■	8.00
458 Shrimad Bhaga adgita—Sadhak Sanjivani (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary)	45.00	■	8.00
455 Bhaga adgita (With Sansk t Text and Engl sh T anslation) Pocket size	4.00	■	1.00
534 Bound	7.00	■	1.00
470 Bhagavadgita—Roman Gita (With Sanskrit Text and Engl sh Translation)	10.00	■	2.00
487 Gita Madhurya—English (By Swami Ramsukhdas)	8.00	▲	1.00
452 Shrimad Valmiki Ramayana (With Sanskrit Te t and Engl sh Translation) Set of 3 volumes	250.00	■	25.00
456 Shri Ramacha itamanas (With Hindi Text and Engl sh T anslation)	70.00	■	8.50
786 (Midum Size)	50.00	■	6.00
564 Shrimad Bhagvat (W th Sanskrit Text and Engl sh Translation) Set	150.00	■	20.00
by Jayadayal Goyandka			
477 Gems of Truth [Vol I]	5.00	▲	1.00
478 [Vol. II]	5.00	▲	1.00
479 Sure Steps to God-Realization	8.00	▲	2.00
481 Why to Devine Bliss	4.00	▲	1.00
482 What is Dharma? What is God?	1.00	▲	1.00
480 I structive Eleven Stories	4.00	▲	1.00
520 Secret of Jnana Yoga	8.00	▲	1.00
521 Prem Yoga	6.00	▲	1.00
522 Karma Yoga	7.00	▲	2.00
523 The Sec et of Bhakti Yoga	7.50	▲	2.00

Code / Title	Price		Postage
658 Secrets of Gita	4.00	▲	1.00
by Hanuman Prasad Poddar			
484 Look Beyond the Veil	8.00	▲	1.00
622 How to Attain Eternal Happiness ?	8.00	▲	1.00
483 Turn to God	7.00	▲	1.00
485 Path to Divinity	7.00	▲	1.00
by Swami Ramsukhdas			
498 In Search of Supreme Abode	4.00	▲	1.00
619 Ease in God-Realization	4.00	▲	1.00
471 Benedictory Discourses	3.50	▲	1.00
473 Art of Living	3.00	▲	1.00
472 How to Lead A Household Life	3.50	▲	1.00
620 The Divine Name and its Practice	2.50	▲	1.00
486 Wavelets of Bliss & the Divine Message	1.50	▲	1.00
570 Let us Know the Truth			
638 Sahaj Sadhna	2.50	▲	1.00
634 God is Everything	3.00	▲	1.00
621 Invaluable Advice	2.50	▲	1.00
474 Be Good			
669 The Divine Name	2.50	▲	1.00
497 Truthfulness of Life			
476 How to be Self-Reliant	1.00	▲	1.00
552 Way to Attain the Supreme Bliss	1.00	▲	1.00
Other Publications			
494 The Immanence of God (By Madanmohan Malaviya)	2.00	■	1.00
562 Ancient Idealism for Modernday Living	1.00	▲	1.00
783 Abortion Right or wrong you Decide	2.00	▲	1.00
808 Ne a Durga	5.00	■	1.00

'कल्याण' के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १० सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक ज्ञानप्रद वर्णन हैं। यह विशेषाङ्क योगके कल्याणकारी और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंको और आकृष्ट कर 'योग' के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५ सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों वीतराग महात्माओं एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना योगसाधना प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें) [वर्ष १७, सन् १९४३ ई०]—धर्म अर्थ काम मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान वैराग्य भक्ति योग नीति सदाचार अध्यात्म, राजनीति कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा गया है।

संक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १९, सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअयोध्या श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा तुलसीवृक्षकी महिमा भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती गङ्गाकी महिमासहित, यमुना-स्नान तीर्थ, व्रत देवपूजन श्राद्ध दानादिके विषयमें भी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २१, सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणकारी महान् साधना उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती) तीर्थ-माहात्म्य भगवद्भक्ति ज्ञान योग सदाचार आदि अनेक गम्भीर रोचक विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त पुराणोंमें) है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२ सन् १९४८ ई०]—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक सामग्री इसके

उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनो और देवियोसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई०]—इसमे नौ प्रमुख उपनिषदो (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एव श्वेताश्वतर) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है एव अन्य ४५ उपनिषदोका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलापर टिप्पणीसहित प्राय सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-सस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय सस्कृति—विशेषत हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, सस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-सस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय सस्कृतिके उपासको, अनुसधानकर्ताओ और जिज्ञासुओके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

सक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमे भगवान् शिवकी महिमा सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एव बहुत-से रोचक ज्ञानप्रद प्रसग और आदर्श चरित्र भी वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २६, सन् १९५२ ई०]—इसमे भगवद्विश्वासको बढानेवाल भगवद्भक्तो, ईश्वरोपासको और महात्माआके जीवन-चरित्र एव विभिन्न-विचित्र भक्तिपूर्ण भावोकी ऐसी पवित्र, सरस, मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हे।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकासे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयाका बृहद् सग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषत बालकाके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालस अबतकक भारतके महान् बालको एव विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकाके भी प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक तथा अनुकरणीय जीवन-वृत्त एव आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

सक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २८, सन् १९५४ ई०]—'नारदपुराण' तथा 'विष्णुपुराण' के इस सयुक्त सक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरम पुराणोचित महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गाके वर्णनसहित, वेदोके छहा अङ्गो—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-शास्त्र) का विशद वर्णन तथा भगवान्‌की सकाम उपासनाका विस्तृत विवचन है। 'विष्णुपुराण' के उल्लेखनीय विषयामे भगवान् विष्णुकी महिमा जगत्‌की उत्पत्ति, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार, ध्रुव-प्रह्लाद-चरित एव भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्रासहित इसमे गृहस्थाके सदाचार, श्राद्ध-विधि, जातकर्म, उपनयन आदि विशिष्ट सस्काराका भी ज्ञानवर्धक वर्णन है। दो महत्त्वपूर्ण पुराण एकहीम सुलभ होनेसे इसकी उपयोगिता बढ गयी हे।

सतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २९, सन् १९५५ ई०] सत-महात्माओ और अध्यात्मचेता महापुरुषोके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधना (वचन और सूक्तियो) का यह बृहत् सग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा सग्रहणीय हे।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३० सन् १९५६ ई०]—जीवनमे भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य सत्य, अहिसा विनय प्रेम उदारता दानशीलता, दया धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाआका यह बृहत् सग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और, इसकी कल्याणकारी बाते हृदयङ्गम करनेयोग्य और सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१ सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कम तीर्थोकी महिमा उनका स्वरूप, स्थिति एव तीर्थ-सवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमे देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोमे पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयागी बातोका भी उल्लेख है। अत भारतके समस्त तीर्थोका अनुसधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा सकलन है जा सभी तीर्थाटन-प्रेमियाके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और सग्रहणीय हे। (सन् १९५७ के बाद तीर्थाक मार्गो और यातायातक साधनाम हुए परिवर्तन (सशोधित रूप) इसम सम्मिलित नहीं हैं।)

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई०]—इसमे ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारो और विभिन्न पक्षोपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही अनेक भगवद्भक्तोके शिक्षाप्रद-अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३४ सन् १९६० ई०]—इसमे पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओका सरस एव कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसगोके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एव उपासनापर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अत साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमे जगत्की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एव तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमे शास्त्रोक्त सदाचार त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकोके लिये इसका अनुशीलन उपादेय है।

संक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३६ सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन तत्त्व-रहस्य महिमा लीला-विहार अवतार आदिके रोचक किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ज्ञानप्रद और कल्याणकारी है। इसमे भगवान् शिवकी पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोका भी उपयोगी संकलन है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७ सन् १९६३ ई०]—इसमे भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओकी एकरूपता महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है। उपयोगी अनुष्ठेय सामग्रीके रूपमे इसमे अनेक स्तोत्र मन्त्र कवच आदि भी दिये गये हैं।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमे परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यो और सिद्धान्तोपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषो तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५ सन् १९७०-७१ ई०]—श्रीराधाकृष्णकी दिव्य मधुर लीलाओका इसमे बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस-मधुर कथाएँ ज्ञानप्रद भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमे अनुराग बढ़ानेवाली है।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०]—भगवान् गणेश अनादि सर्वपूज्य आनन्दमय ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। 'आदौ पूज्यो विनायक —इस उक्तिके अनुसार भी गणपतिकी अग्रपूजा सुप्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित ही है। महामहिम गणेशका इन्ही सर्वमान्य विशेषताओ और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन 'कल्याण' के इस (पुनर्मुद्रित) विशेषाङ्कमे उपलब्ध है। इसमे श्रीगणेशकी लीला-कथाओका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९ सन् १९७५ ई०]—इसमे श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोका तात्त्विक और प्रामाणिक एव सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र ध्यान एव पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी उपयोगी संकलन है। अत साधकोके लिये यह उपादेय है।

सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३ सन् १९७९ ई०]—यह सूर्य-महिमा सूर्य-तत्त्व, सूर्यका प्रभाव त्रिकाल-संध्यामे सूर्य सूर्योपासनासे लाभ सूर्योपासनासे रोग-निवारण आदि अनेक उपयोगी लेखोसे अलंकृत है। अनेक प्रेरणास्पद उपाख्यानोके साथ दो मासिक अङ्क भी संलग्न है।

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम

१-भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान-वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमे सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोके अतिरिक्त अन्य विषयोके लेख 'कल्याण' मे प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोको घटाने-बढाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोमे प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण' का वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतवर्षमे ८० रु० (सजिल्द विशेषाङ्कका ९० रु०) और विदेश (Foreign)-के लिये (नेपाल-भूटानको छोडकर) US $ 11 डालर (Sea mail) रु० ४०० भारतीय मुद्रा तथा US $ 22 डालर (Air mail) रु० ८०० भारतीय मुद्रा नियत है।

३-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अत ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते है।** यद्यपि वर्षके किसी भी महीनेमे ग्राहक बनाये जा सकते हैं तथापि जनवरीसे उस समयतकके प्रकाशित (पिछले) उपलब्ध अङ्क उन्हे दिये जाते हैं। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते, छ या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-**ग्राहकोको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये।** वी० पी० पी० से 'कल्याण' मँगानेमे ग्राहकोको वी० पी० पी० डाकशुल्क अधिक देना पडता है एव 'कल्याण' भेजनेमे विलम्ब भी हो जाता है।

५-'कल्याण' के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क दो-तीन बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमे सूचित करे।

६-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोके पहले कार्यालयमे पहुँच जानी चाहिये। पत्रोमे **'ग्राहक-सख्या' पुराना और नया—पूरा पता स्पष्ट एव सुवाच्य अक्षरोमे लिखना चाहिये।** यदि कुछ महीनोके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति भेजनेमे कठिनाई हो सकती है। यदि आपके पतेमे कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण' के प्रेषण -सम्बन्धी कोई अनियमितता/सुझाव हो तो अपनी स्पष्ट 'ग्राहक-सख्या' लिखकर हमे सूचित करे।

७-रग-बिरगे चित्रोवाला बडा अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुन प्रतिमास साधारण अङ्क ग्राहकोको उसी शुल्क-राशिमे वर्षपर्यन्त भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण'का प्रकाशन बद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हो उतनेमे ही सतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकोको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन कोड नम्बर एव अपनी ग्राहक-सख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमे अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयके लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका सदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-सख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

३-'कल्याण' मे व्यवसायियोके विज्ञापन किसी भी दरमे प्रकाशित नहीं किये जाते।

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्ककी कम-से-कम २५ प्रतियाँ इस कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार-प्रसारमे सहयोगी बन सकते हैं। ऐसा करनेपर ६ ०० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हें (कमीशन) प्रोत्साहन-राशि दिया जायगा। जनवरी मासका विशेषाङ्क एव फरवरी मासका साधारण अङ्क रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एव आगेके मासिक अङ्क (मार्चसे दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था है।

५-जनवरी १९९८ के इस विशेषाङ्क **'भगवल्लीला-अङ्क'** के अन्तमे ही फरवरी मासका अङ्क भी सलग्न है। अत ग्राहक महोदय फरवरी मासका अङ्क मँगानेके लिये कृपया पत्र-व्यवहार न करे।

'कल्याण' की दशवर्षीय ग्राहक-योजना

दशवर्षीय सदस्यता-शुल्क ५०० रुपये (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ६०० रुपये) हैं। विदेश (Foreign)-के लिये US $ 90 डालर (Sea mail) तथा US $ 180 डालर (Air mail)-का है। इस योजनाके अन्तर्गत व्यक्तिके अलावा फर्म प्रतिष्ठान आदि सस्थागत ग्राहक भी बन सकते हैं। यदि 'कल्याण' का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोंतक ग्राहकोको अङ्क नियमितरूपसे जाते रहेगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

पजीकृत-सख्या—जी० आर०—१३

प्र० ति० १-१-९८

LICENCE NO -3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE PAYMENT

परब्रह्म परमात्माका स्वरूप

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप सबके परम कारण, परब्रह्म पुरुषोत्तम यहाँ—इस पृथ्वीलोकमे हैं वही वहाँ परलोकमे अर्थात् देव-गन्धर्वादि विभिन्न अनन्त लोकोमे भी हैं, तथा जो वहाँ हैं, वही यहाँ भी हैं। एक ही परमात्मा अखिल ब्रह्माण्डमे व्याप्त हैं। जो उन एक ही परब्रह्मको लीलासे नाना नामो और रूपोमे प्रकाशित देखकर मोहवश उनमे नानात्वकी कल्पना करता है उसे पुन -पुन मृत्युके अधीन होना पडता है उसके जन्म-मरणका चक्र सहज ही नहीं छूटता। अत दृढरूपसे यही समझना चाहिये कि वे एक ही परब्रह्म परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तिके सहित नाना रूपोमे प्रकट हैं और यह सारा जगत् बाहर-भीतर उन एक परमात्मासे ही व्याप्त होनेके कारण उन्हींका स्वरूप है।

मनसैवेदमाप्तव्य नेह नानास्ति किचन। मृत्यो स मृत्यु गच्छति य इह नानेव पश्यति॥

परमात्माका परमतत्त्व शुद्ध मनसे ही इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत्मे एकमात्र पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका स्वरूप है। यहाँ परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यहाँ विभिन्नताकी झलक देखता है वह मनुष्य मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जन्मता-मरता रहता है।

अङ्गुष्ठमात्र पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥ एतद्वै तत्॥

यद्यपि अन्तर्यामी परमेश्वर समानभावसे सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, तथापि हृदयमे उनका विशेष स्थान माना गया है। परमेश्वर किसी स्थूल-सूक्ष्म आकार-विशेषवाले नहीं हैं, परतु स्थितिके अनुसार वे सभी आकारोसे सम्पन्न हैं। क्षुद्र चींटीके हृदयदेशमे वे चींटीके हृदय-परिमाणके अनुसार परिमाणवाले हैं और विशालकाय हाथीके हृदयमे उसके हृदय-परिमाणवाले बनकर विराजित हैं। मनुष्यका हृदय अङ्गुष्ठ-परिमाणका है और मानव-शरीर ही परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी माना गया है। अत मनुष्यका हृदय ही परब्रह्म परमेश्वरकी उपलब्धिका स्थान समझा जाता है। इसलिये यहाँ मनुष्यके हृदय-परिमाणके अनुसार परमेश्वरको अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणका कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वरको अपने हृदयमे स्थित देखनेवाला स्वाभाविक ही यह जानता है कि इसी भाँति वे सबके हृदयमे स्थित हैं, अतएव वह फिर किसीकी निन्दा नहीं करता अथवा किसीसे घृणा नहीं करता।

अङ्गुष्ठमात्र पुरुषो ज्योतिरिवाधूमक । ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्व ॥ एतद्वै तत्॥

मनुष्यकी हृदय-गुफामे स्थित वे अङ्गुष्ठमात्र पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमानका नियन्त्रण करनेवाले स्वतन्त्र शासक हैं। वे ज्योतिर्मय हैं। सूर्य अग्निकी भाँति उष्ण प्रकाशवाले नहीं परतु दिव्य निर्मल और शान्त प्रकाशस्वरूप हैं। लौकिक ज्योतियोमे धूम्ररूप दोष होता है ये धूम्ररहित—दोषरहित, सर्वथा विशुद्ध हैं। अन्य ज्योतियाँ घटती-बढती हैं और समयपर बुझ जाती हैं परतु ये जैसे आज हैं वैसे ही कल भी हैं। इनकी एकरसता नित्य अक्षुण्ण है। ये कभी न तो घटते-बढते हैं और न कभी मिटते ही हैं।

यथोदक दुर्गे वृष्ट पर्वतेषु विधावति। एव धर्मान् पृथक् पश्यस्तानेवानुविधावति॥

जैसे वर्षाका जल एक ही है, पर वह जब ऊँचे पर्वतकी ऊबड-खाबड चोटीपर बरसता है तो वहाँ ठहरता नहीं, तुरत ही नीचेकी ओर बहकर विभिन्न वर्ण, आकार और गन्धको धारण करके पर्वतमे चारो ओर बिखर जाता है। इसी प्रकार एक ही परमात्मासे प्रवृत्त विभिन्न स्वभाववाले देव-असुर-मनुष्यादिको जो परमात्मासे पृथक् मानता है और पृथक् मानकर ही उनका सेवन करता है उसे भी बिखरे हुए जलकी भाँति ही विभिन्न देव-असुरादिके लोकोमे एव नाना प्रकारकी योनियोमे भटकना पडता है वह ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकता।

यथोदक शुद्धे शुद्धमासिक्त तादृगेव भवति। एव मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥

परतु वही वर्षाका निर्मल जल यदि निर्मल जलमे ही बरसता है तो वह उसी क्षण निर्मल जल ही हो जाता है। उसमे न तो कोई विकार उत्पन्न होता है और न वह कहीं बिखरता ही है। इसी प्रकार हे गौतमवशीय नचिकेता! जो इस बातको भलीभाँति जान गया है कि जो कुछ है वह सब परब्रह्म पुरुषोत्तम ही है उस मननशील—ससारके बाहरी स्वरूपसे उपरत पुरुषका आत्मा परब्रह्ममे मिलकर उसके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त हो जाता है। [कठोपनिषद्]